॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२९

श्रीवात्स्यायनमुनिप्रणीतं

कामसूत्रम्

श्रीयशोधरविरचित 'जयमङ्गला' व्याख्यासहितं

हिन्दीव्याख्याभाष्योपेतञ्च

हिन्दीव्याख्याकार

श्रीदेवदत्त शास्त्री

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० १३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
29
*****

THE

KĀMASŪTRAM

OF

ŚRĪ VĀTSYĀYANA MUNI

With the Jayamaṅgalā Sanskrit Commentary of
Śrī Yaśodhara

Edited with Hindi Commentary

By

ŚRĪ DEVDUṬṬA ŚĀSTRĪ

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publisher and Distributor of Oriental Cultural Literature
P. O, Chaukhambha, P. Box No. 139
Jadau Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane
VARANASI (INDIA)

Phone : 65889

Third Edition 1982

Price : Rs. 150-00

Also can be had of :—

CHAUKHAMBHA VISVABHARATI

Post Box No. 65

Chowk (Opposite Chitra Cinema)

VARANASI-221001

Phone : 65444

आमुख

कामशास्त्र : ऐतिहासिक परम्परा

अनुश्रुति है कि ब्रह्मा ने मानव-जीवन को नियमित तथा व्यवस्थित बनाने एवं जीवन का लक्ष्य निर्धारित करने के लिए एक संविधान प्रस्तुत किया जो एक लाख अध्यायों का था। उस संविधान में जीवन के हर क्षेत्र का संस्पर्श करते हुए हर विषय का विशद निरूपण और संयमन था। उस शास्त्रार्णव का मन्थन कर मनु ने आचारशास्त्र का एक पृथक् संस्करण प्रस्तुत किया जो मानव-धर्मशास्त्र—मनुसंहिता या मनुस्मृति के नाम से विख्यात है। उसी मनुस्मृति का संक्षिप्त रूप आज प्रचलित और व्यवहृत है।

उस विशाल संविधान से अर्थशास्त्रविषयक भाग को अलग कर आचार्य बृहस्पति ने वार्हस्पत्यम् अर्थशास्त्र की रचना की। मानव-धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के अनन्तर महादेव जी के अनुचर नन्दी ने उस संविधान ग्रन्थ से कामशास्त्र विषयक भाग को आलग कर एक हजार अध्यायों का कामशास्त्र सम्पादित किया। उसी संस्करण से श्वेतकेतु ने पाँच सौ अध्यायों का एक संक्षिप्त संस्करण तैयार किया। इसके बाद पाञ्चाल देश के बाभ्रव्य ने श्वेतकेतु द्वारा सम्पादित संस्करण को संक्षिप्त कर डेढ़ सौ अध्यायों का एक संक्षिप्त संस्करण तैयार किया जिसमें सात अधिकरण थे।

यहीं से कामशास्त्र की नई परम्परा का सूत्रपात होता है। बाभ्रव्य ने अधिकरणों और अध्यायों की कल्पना प्रयोगों के आधार पर की थी। ब्रह्मा से लेकर बाभ्रव्य तक की कामशास्त्र की परम्परा का पर्यवेक्षण करने से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा ने शास्त्र की रचना न कर कामशास्त्रीय प्रवचन किया था और बाभ्रव्य ने उसे शास्त्र का रूव सर्वप्रथम प्रदान किया। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि कामशास्त्र का रचनाकाल प्रवचनकाल से प्रारम्भ होता है। यह बात कामसूत्र के छठे सूत्र से भी प्रमाणित है। यह भी सिद्ध होता है कि प्रवचनकाल के बहुत दिनों बाद शास्त्रों के संक्षिप्तीकरण एवं सम्पादन की प्रणाली प्रचलित हुई।

बाभ्रव्य द्वारा सम्पादित कामशास्त्र का व्यापक प्रचलन हो जाने के बाद पाटलिपुत्र की गणिकाओं द्वारा अनुरोध किए जाने पर आचार्य दत्तक ने बाभ्रव्य

के कामशास्त्र के छठे भाग वैशिक नामक प्रकरण को पृथक् कर सम्पादित किया। तदनन्तर आचार्य चारायण ने साधारण नाम के अधिकरण को बाभ्रव्य के कामशास्त्र से पृथक् किया और आचार्य सुवर्णनाभ ने साम्प्रयोगिक नाम के अधिकरण को, आचार्य घोटकमुख ने कन्यासम्प्रयुक्तक नाम के अधिकरण को, आचार्य गोनर्दीय ने भार्याधिकारिक नाम के अधिकरण को, आचार्य गोणिकापुत्र ने पारदारिक नाम के अधिकरण को तथा आचार्य कुचुमार ने औपनिषदिक नाम के अधिकरण को बाभ्रव्य के कामशास्त्र से पृथक् कर सम्पादित किया। बाभ्रव्य द्वारा सम्पादित कामशास्त्र अतिशय विस्तृत और विशाल होने के कारण सर्वसाधारण के लिए उपयोगी न था और आचार्य दत्तक से लेकर कुचुमार तक के आचार्यों ने कामशास्त्र के एक-एक अंश मात्र का ही संक्षिप्तीकरण एवं सम्पादन किया था जिससे सम्पूर्ण कामशास्त्र के विषय का सर्वांगीण अध्ययन न किया जाकर आंशिक अध्ययन ही किया जाता था। इस अभाव और सर्वांगशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव कर आचार्य वात्स्यायन ने कामसूत्र की रचना की। कामसूत्र की रचना कर चुकने पर आचार्य वात्स्यायन ने अपना मन्तव्य इस प्रतिज्ञा-वाक्य द्वारा प्रकट किया है—'सर्वमर्थमल्पेन ग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम्'—अर्थात् थोड़े ही में सभी प्रयोजनों का समावेश इस कामसूत्र में है।

कामसूत्र : परिचय

कामसूत्र का प्रणयन अधिकरण, अध्याय और प्रकरणबद्ध किया गया है। ग्रन्थकार ने ग्रंथ लिखने से पूर्व जो विषयसूची तैयार की थी उसका नाम उसने 'शास्त्रसंग्रह' रखा है अर्थात् वह संग्रह जिससे यह विषय (कामसूत्र) शासित हुआ है। शास्त्रसंग्रह प्रथम अधिकरण के प्रथम अध्याय का प्रथम प्रकरण है। कामसूत्र के प्रथम अधिकरण का नाम 'साधारण' है। इस अधिकरण में ग्रन्थगत सामान्य विषयों का परिचय है। इस अधिकरण में पाँच अध्याय और प्रकरण हैं। विषय-विवेचन के आधार पर अध्यायों और प्रकरणों के नामकरण किए गए हैं।

प्रथम अधिकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यही है कि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति कैसे की जा सकती है? मनुष्य को श्रुति, स्मृति, अर्थविद्या आदि के अध्ययन के साथ कामशास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। कामसूत्रकार ने सुझाव दिया है कि व्यक्ति को पहले विद्या पढ़नी चाहिए, फिर अर्थोपार्जन करना चाहिए। इसके बाद विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश कर नागरकवृत्त का आचरण करना चाहिए। विवाह से पूर्व किसी दूती

या दूत की सहायता से किसी योग्य नायिका से परिचय प्राप्त कर प्रेम सम्बन्ध बढ़ाना चाहिए और फिर उसी से विवाह करना चाहिए। ऐसा करने पर गार्हस्थ्य जीवन, नागरिक जीवन सदैव सुखी और शान्त बना रहता है।

द्वितीय अधिकरण का नाम 'साम्प्रयोगिक' है। सम्प्रयोग का अर्थ सम्भोग होता है। इस अधिकरण में स्त्री-पुरुष के सम्भोग विषय की ही व्याख्या विभिन्न रूप से की गई है, इसलिए इसका नाम 'साम्प्रयोगिक' रखा गया है। इस अधिकरण में दस अध्याय और सत्रह प्रकरण हैं। कामसूत्रकार ने बताया है कि पुरुष अर्थ, धर्म और काम इन तीनों वर्गों को प्राप्त करने के लिए स्त्री को अवश्य प्राप्त करे किन्तु जब तक सम्भोग कला का सम्यक् ज्ञान नहीं होता है तब तक त्रिवर्ग की प्राप्ति समुचित रूप से नहीं हो सकती है और न आनन्द का उपभोग ही किया जा सकता है।

तीसरे अधिकरण का नाम 'कन्यासम्प्रयुक्तक' है। इसमें बताया गया है कि नायक को कैसी कन्या से विवाह करना चाहिए? उससे प्रथम किस प्रकार परिचय प्राप्त कर प्रेम-सम्बन्ध स्थापित किया जाए? किन उपायों से उसे आकृष्ट कर अपनी विश्वासपात्री प्रेमिका बनाया जाए? और फिर उससे विवाह किया जाए। इस अधिकरण में पाँच अध्याय और नौ प्रकरण हैं। उल्लिखित नौ प्रकरणों को सुखी दाम्पत्य जीवन की कुञ्जी ही समझना चाहिए। कामसूत्रकार विवाह को धार्मिक बन्धन मानते हुए दो हृदयों का मिलन स्वीकार करते हैं। पहले दो हृदय परस्पर प्रेम और विश्वास प्राप्त कर एकाकार हो जाएँ तब विवाह बन्धन में बँधना चाहिए। यही इस अधिकरण का सारांश है। यह अधिकरण सभी प्रकार की सामाजिक, धार्मिक मर्यादाओं के अन्तर्गत रहते हुए व्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थन करता है।

चतुर्थ अधिकरण का नाम 'भार्याधिकारिक' है। इसमें दो अध्याय और आठ प्रकरण हैं। विवाह हो जाने के बाद कन्या 'भार्या' कहलाती है। एकचारिणी और सपत्नी (सौत) दो प्रकार की भार्या होती हैं। इन दोनों प्रकार की भार्याओं के प्रति पति के तथा पति के प्रति पत्नी के कर्त्तव्य इस अधिकरण में बताए गए हैं। इस अधिकरण में स्त्रीमनोविज्ञान और समाज-विज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन निहित है।

पाँचवें अधिकरण का नाम 'पारदारिक' है। इसमें छह अध्याय और दस प्रकरण हैं। परस्त्री और परपुरुष का परस्पर प्रेम किन परिस्थितियों में उत्पन्न होता है? बढ़ता है और विच्छिन्न होता है, किस प्रकार परदारेच्छा पूरी की

जा सकती है ? और व्यभिचारी से स्त्रियों की रक्षा कैसे हो सकती है ? यही इस अधिकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

छठे अधिकरण का नाम 'वैशिक' है। इसमें छह अध्याय और बारह प्रकरण हैं। इस अधिकरण में वेश्याओं के चरित्र और उनके समागम-उपायों आदि का वर्णन किया गया है। कामसूत्रकार ने वेश्यागमन को एक दुर्व्यसन मानते हुए बताया है कि वेश्यागमन से शरीर और अर्थ दोनों की क्षति होती है।

सातवें अधिकरण का नाम 'औपनिषदिक' है। इसमें दो अध्याय और छह प्रकरण हैं। इस अधिकरण में. नायक-नायिका एक दूसरे को मंत्र, यंत्र, तंत्र, औषधि आदि प्रयोगों से किस प्रकार वशीभूत करें ? नष्टराग को पुनः किस प्रकार उत्पन्न किया जाए ? रूप-लावण्य को किस प्रकार बढ़ाया जाए ? तथा बाजीकरण प्रयोग आदि मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं। औपनिषदिक का अर्थ 'टोटका' है।

इस तरह इस शास्त्र में ७ अधिकरण, ३६ अध्याय, ६४ प्रकरण और १२५० सूत्र (श्लोक) हैं।

पाठानुशीलन से प्रतीत होता है कि वर्तमान पुस्तकों में मूल प्रति से भिन्न सूत्रानुक्रम है। अनुमान है कि सबसे पहले नन्दी ने ही ब्रह्मा के प्रवचन से कामशास्त्र को अलग कर उसका प्रवचन किया। कामशास्त्र के बाद मनुस्मृति और अर्थशास्त्र प्रतिपादित होने का भी अनुमान होता है क्योंकि मनु और बृहस्पति ने ग्रन्थ का प्रवचन न कर पृथक्करण किया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की पृथक्करण-प्रणाली का सूत्रपात प्रवचन-काल के बहुत बाद से प्रारंभ हुआ है। नन्दी द्वारा कहे गए एक हजार अध्यायों के कामशास्त्र को श्वेतकेतु ने संक्षिप्त कर पांच सौ अध्यायों का संस्करण प्रस्तुत किया।

स्पष्ट है कि ब्रह्मा के द्वारा प्रवचन किए गए शास्त्र में से नन्दी ने काम-विषयक शास्त्र को एक हजार अध्यायों में विभक्त किया था। उसने अपनी ओर से किसी प्रकार का घटाव-बढ़ाव नहीं किया क्योंकि वह प्रवचन-काल था। प्रवचन-काल की परंपरा थी कि गुरुओं, आचार्यों से जो कुछ पढ़ा या सुना जाता था उसे ज्यों का त्यों शिष्यों और जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाता था, अपनी ओर से कोई जोड़-तोड़ नहीं किया जाता था। प्रवचन-काल के अनन्तर शास्त्रों के संपादन, संशोधन और संक्षिप्तीकरण का आरंभ होता है। श्वेतकेतु प्रवचन-काल के बाद का प्रतीत होता है क्योंकि

उसने नन्दी के कामशास्त्र के एक हजार अध्यायों का संक्षिप्तीकरण और संपादन किया था। बल्कि यह कहना अधिक संगत होगा कि श्वेतकेतु के काल से शास्त्र के संपादन और संक्षिप्तीकरण की पद्धति प्रचलित हो गई थी और बाभ्रव्य के समय में वह पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी।

कामसूत्र के रचयिता : वात्स्यायन

चणक्य और वात्स्यायन के जीवन, स्थितिकाल और नामकरण पर अतीत काल से मतभेद चला आ रहा है। हेमचन्द्र, वैजयन्ती, त्रिकाण्ड शेष और नाममालिका कोशों में कौटल्य और वात्स्यायन ये नाम एक ही व्यक्ति के माने गए हैं। इनके अतिरिक्त चाणक्य, विष्णुगुप्त, मल्लनाग, पक्षिलस्वामी, द्रामिल या द्रोमिण, वररुचि, मेयजित्, पुनर्वसु और अंगुल नाम भी इन्हीं के साथ जोड़े गए हैं। दस वर्ष पूर्व कोटलीय अर्थशास्त्र का अनुशीलन जब हमने प्रकाशित कराया था तब इस संबंध में पर्याप्त प्रमाणों द्वारा यह निर्णय दिया था कि ये नाम भ्रमवश जोड़े हुए जान पड़ते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी एक के द्वारा की गई गलती को उत्तरोत्तर अपनाया गया है।

हिन्दी विश्वकोश (चादिवर्ग पृ० २७४) में नीतिसार के रचयिता कामन्दक को चाणक्य (कौटल्य) का प्रधान शिष्य कहा गया है। कोशकारों के मत से कामन्दक ही वात्स्यायन था और कामन्दक-नीतिसार में उन्होंने प्रारंभ में ही कौटल्य का अभिनन्दन कर उनके अर्थशास्त्र के आधार पर नीतिसार लिखने की बात कही है।

इसके विपरीत कामन्दकीय नीतिसार की उपाध्याय-निरपेक्षिणी टीका के रचयिता ने कौटल्य ही को न्यायभाष्य, कौटल्य भाष्य (अर्थशास्त्र), वात्स्यायनभाष्य और गौतमस्मृतिभाष्य–इन चार भाष्यग्रन्थों का रचयिता माना है[1]।

यदि हम कामन्दकीय नीतिसार[2] एवं गौतमधर्मसूत्र के मस्करी भाष्य[3] को देखते हैं तो कौटल्य के लिए 'एकाकी' और 'असहाय' विशेषणों के प्रयोग मिलते हैं।

सुबन्धु द्वारा लिखित वासवदत्ता[4] में कामसूत्रकार का नाम मल्लनाग

---

१. अलवर राजकीय लायब्रेरी की पुस्तकसूची का परिशिष्ट पृ० ११०
२. का० नीति० १।५ ३. गौ० धर्म०—मस्करीभाष्य
४. कामसूत्रविन्यास इव मल्लनागघटितकान्तारसमोदः।

उल्लिखित है। कामसूत्र के लब्धप्रतिष्ठ जयमंगला टीकाकार यशोधर ने वात्स्यायन का वास्तविक नाम मल्लनाग माना है[१]।

इस प्रकार कौटल्य, वररुचि, मल्लनाग सभी को वात्स्यायन कहा जाता है—अभी तक यह निर्णय नहीं किया जा सका है कि वात्स्यायन कौन था ? न्यायभाष्यकर्त्ता वात्स्यायन और कामसूत्रकार वात्स्यायन एक ही थे या भिन्न-भिन्न। आचार्य सूर्यनारायण व्यास (उज्जैन) ने हमारे अनुरोध पर वात्स्यायन पर अपना मत व्यक्त करते हुए एक सूचना भेजी है जिसमें उन्होंने न्यायभाष्यकर्त्ता वात्स्यायन और कामसूत्रकार वात्स्यायन को एक ही माना है।

जिस प्रकार वात्स्यायन के नामकरण पर मतभेद है उसी प्रकार उनके स्थितिकाल में भी अनेक मतवाद और प्रवाद प्रचलित हैं। आधुनिक इतिहासकारों में म० म० हरप्रसाद शास्त्री वात्स्यायन को ईसवी पहली शताब्दी का मानने का आग्रह करते हैं किन्तु शेष प्रायः सभी मूर्द्धन्य इतिहासकारों में कुछ तो तीसरी शती और कुछ चौथी शती स्वीकार करते हैं।

आचार्य सूर्यनारायण व्यास ने कालिदास और वात्स्यायन के कृतित्व की तुलना करते हुए वात्स्यायन को कालिदास के बाद ईसवी पूर्व प्रथम शती का माना है। व्यासजी ने ऐतिहासिक और आभ्यन्तरिक अनेक प्रमाणों द्वारा अपने मत की पुष्टि की है किन्तु उन्होंने वात्स्यायन नाम के पर्यायों की ओर कोई संकेत नहीं किया है।

हम इस स्थल पर वात्स्यायन के जीवन, स्थितिकाल और जन्मभूमि आदि पर अपना कोई मत देना उचित इसलिए नहीं समझ रहे हैं कि वात्स्यायन पर हम एक अनुशीलन-ग्रन्थ लिख रहे हैं जो यथाशीघ्र प्रेस में दिया जा सकेगा। उक्त ग्रन्थ में हमने प्राच्य-पाश्चात्य ऐतिहासिक साक्ष्यों के अतिरिक्त अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग साक्ष्यों के आधार पर वात्स्यायन विषयक मत-मतान्तरों पर विचार किया है।

कामसूत्र-प्रणयन का प्रयोजन

वात्स्यायन ने कामसूत्र में मुख्यतया धर्म, अर्थ और काम की व्याख्या की है। धर्म, अर्थ और काम को वेदान्त की भाषा में त्रयी कहा जाता है। वात्स्यायन का कहना है कि 'धर्म परमार्थ का सम्पादन करता है, इसलिए धर्म का बोध कराने वाले शास्त्र का होना आवश्यक है। अर्थसिद्धि के लिए तरह-तरह

१. तमुपायमाचिख्यासु राचार्यमल्लनागः पूर्वाचार्यमतानुसारेण शास्त्रमिदं प्रणीतवान्।

के उपाय करने पड़ते हैं इसलिए उन उपायों को बतानेवाले अर्थशास्त्र की आवश्यकता पड़ती है और सम्भोग के पराधीन होने के कारण स्त्री और पुरुष को उस पराधीनता से बचने के लिए कामशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है'।

वस्तुतः जो धर्म के व्यापक रूप को, उसके प्रच्छन्न रहस्य को समझने की चेष्टा नहीं करते, वे अनजाने ही कामशास्त्र का विरोध किया करते हैं। कामशास्त्र के विरोध की यह प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। काम-मैथुन को स्वभावसिद्ध मानकर मैथुन क्रिया में मनुष्य और पशु को समान मानने वाले नीतिकारों ने भी कामशास्त्र की उपयोगिता पर ध्यान नहीं दिया है किन्तु वात्स्यायन का कहना है कि संभोग के लिए कामशास्त्र का ज्ञान परम आवश्यक है क्योंकि यदि स्त्री अथवा पुरुष दोनों में से कोई भी भयभीत, लज्जान्वित अथवा पराधीन होता है तो ऐसे समय जिन उपायों की आवश्यकता पड़ती है उन्हें कामशास्त्र ही बतलाता है। दाम्पत्य जीवन अथवा सम्भोगसुख को आनन्ददायक बनाने के लिए चौंसठ कलाओं की आवश्यकता पड़ती है। इन कलाओं का ज्ञान धर्मशास्त्र या अर्थशास्त्र से नहीं होता। इसलिए गार्हस्थ्य जीवन को सुखी, सम्पन्न और आनन्दमय बनाने के लिए कामशास्त्र का जानना जरूरी है।

कामशास्त्र से ही यह जाना जाता है कि सम्भोग का सर्वोत्तम और आध्यात्मिक उद्देश्य है—पति-पत्नी में आध्यात्मिकता, मानव-प्रेम और परोपकार तथा उदात्त भावनाओं का विकास। इस उद्देश्य का ज्ञान पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों को नहीं हो सकता। सम्भोग के उद्देश्य को न समझनेवाले मनुष्य पशुओं की भाँति रमण किया करते हैं।

कामशास्त्र से ही हमें यह रहस्य-बोध होता है कि मैथुन का वास्तविक सुख—१. सम्भोग, सन्तानोत्पत्ति, जननेन्द्रिय तथा कामसंबंधी समस्याओं के प्रति आदर्शमय भाव, २. मनुष्य जाति का उत्तरदायित्व, ३. अपने सहचर या सहचरी के प्रति उच्चभाव, अनुराग, श्रद्धा और हित-कामना—इन्हीं तीन भावों पर निर्भर है।

आत्मीयता के बिना विवाह या प्रेम विफल हुआ करते हैं। दम्पति में, प्रेमी-प्रेमिकाओं में परस्पर कलह, अनबन, सम्बन्ध-विच्छेद, गुप्त व्यभिचार, वेश्यावृत्ति, नारी-अपहरण, अप्राकृतिक व्यभिचार आदि अनेक दुष्परिणामों और दुर्घटनाओं का मूल कारण कामशास्त्र के अध्ययन के प्रति उदासीनता या उससे अनभिज्ञता है।

इसी प्रयोजन को सम्मुख रखकर वात्स्यायन ने कामसूत्र की रचना की है। वात्स्यायन का दावा है कि यह शास्त्र पति-पत्नी के धार्मिक, सामाजिक नियमों का शिक्षक है। जो दम्पति इस शास्त्र के अनुसार दाम्पत्य जीवन व्यतीत करेंगे उनका जीवन काम-दृष्टि से सदा-सर्वदा सुखी रहेगा। पति-पत्नी आजीवन एक दूसरे से सन्तुष्ट रहेंगे। उनके जीवन में एजपत्नीव्रत या पातिव्रत को भंग करने की चेष्टा या भावना कभी पैदा नहीं हो सकती। आचार्य का कहना है कि जिस प्रकार धर्म और अर्थ के लिए शास्त्र की आवश्यकता होती है उसी प्रकार काम के लिए भी शास्त्र की आवश्यकता होने से कामसूत्र की रचना की गई है।

व्यावहारिक या आध्यात्मिक किसी भी दृष्टि से काम की उपयोगिता और उसके प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता। स्त्री और पुरुष विद्युत की दो धाराओं के समान होते हैं। एक आकर्षण करती है और दूसरी अपकर्षण। जब दोनों मिल जाती हैं तो बिजली प्रकट होती है। भारतीय विज्ञान स्त्री को सौरतत्त्वयुक्त और पुरुष को चन्द्रतत्त्वयुक्त मानता है। सूर्य अपनी शक्ति से पृथ्वी का रस ग्रहण करता है और चन्द्रमा पृथ्वी पर सुधावर्षण करता है। सौरतत्त्वमय स्त्री का रज चन्द्रतत्त्वमय पुरुष के वीर्य को खींच कर अपने अन्दर धारण करता है। यही स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण का मुख्य कारण है।

यदि हम स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण पर शरीरविज्ञान तथा मनोविज्ञान के आधार पर विमर्श करें तो रहस्य का स्पष्टीकरण हो जाता है। यौनमनोविज्ञान के मत से स्त्री और पुरुष का परस्पर आकर्षण भिन्नलिङ्गी होने के कारण हुआ करता है। अध्यात्मदर्शन का सिद्धान्त है कि पुरुष स्त्री के बिना और स्त्री पुरुष के बिना अपूर्ण रहती है। पूर्णता को प्राप्त करने के लिए ही स्त्री और पुरुष एक दूसरे से मिलने के लिए लालायित रहते हैं।

यह विज्ञानसम्मत मत है कि कामवासना जन्मकाल से ही शरीर में समायी रहती है। कामवासना को केवल स्वाभाविक प्रवृत्ति या मानसिक संवेग मान लेना उचित न होगा। शरीरविज्ञान का मत है कि शरीर में कुछ ऐसी ग्रंथियाँ रहती हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के द्रव भरे रहते हैं और उन्हें मनुष्य की जीवनी शक्ति सदैव संचरणशील बनाए रखती है। जीवनी शक्ति द्वारा संचाचित वे द्रव संचरणशील बनकर सूक्ष्म नलिकाओं द्वारा प्रवाहित होकर रक्त के साथ मिल जाते हैं। उन द्रव पदार्थों का स्राव ही मनुष्य के स्वभाव, चरित्र पर असर डाला करता है।

वात्स्यायन ने यह स्पष्ट सलाह दी है कि पुरुष और स्त्री को धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा उनके अंगभूत शास्त्रों के अध्ययन के साथ कामशास्त्र, उसकी अंगभूत विद्याओं (साहित्य, संगीत, कला) का अध्ययन आवश्यक है। स्त्रियों के लिए उसकी विशेष व्यवस्था यह है कि यौवन से पूर्व स्त्री को अपने पिता के घर में धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और कामशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। विवाह हो जाने के बाद पति की अनुमति लेकर स्त्री को कामशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

वात्स्यायन के कामसूत्र का मुख्य प्रयोजन यही है कि वह स्त्रीधारा को पुरुषधारा में मिलाकर उसे मुक्ति की अधिकारिणी बना दे तथा पुरुष और स्त्री की अनर्गल, अनियंत्रित पाशविक प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर दोनों की शारीरिक, मानसिक, लौकिक, पारलौकिक उन्नति में योग दे एवं दोनों का मधुर समन्वय कराकर उनकी पूर्णता सिद्ध कर दे।

रचना-शैली

अधिकरण, अध्याय, प्रकरण से निबद्ध कामसूत्र की रचनाशैली कौटलीय-अर्थशास्त्र की भाँति है। जिस प्रकार कौटल्य ने सूत्र और भाष्य की रचना की है उसी प्रकार कामसूत्रकार वात्स्यायन ने भी सूत्र और भाष्य लिखा है। कौटल्य ने अपने मत की पुष्टि के लिए प्राचीन श्लोकों को उद्धृत किया है। वात्स्यायन ने भी यही शैली स्वीकार की है। कौटल्य ने विभिन्न आचार्यों के मतों को देते हुए 'इति कौटल्यः', 'नेति कौटल्यः' लिखकर अपनी सहमति और असहमति प्रकट की है। वात्स्यायन ने भी पूर्ववर्ती प्राचीन आचार्यों का मत उद्धृत जरते हुए सहमति के रूप में 'इति वात्स्यायनः' तो लिखा है किन्तु उसने कौटल्य के समान खुलकर 'नेति कौटल्यः' की भाँति 'नेति वात्स्यायनः' लिखकर विरोध नहीं प्रकट किया है। सम्भवतः वात्स्यायन मध्यममार्ग को अपनाना उचित समझता था। उसमें निषेध या विरोध करने के लिए कौटल्य का सा साहस नहीं दीख पड़ता।

कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र को विधान कहकर उसके अनुकूल आचरण करने का आह्वान किया है। उसके विरुद्ध एक इंच भी चलना उसे स्वीकार नहीं था किन्तु वात्स्यायन ने इस प्रकार की कोई पाबन्दी नहीं लगाई है।

वात्स्यायन का कहना है कि शास्त्र का प्रभाव परोक्ष और प्रत्यक्ष सर्वत्र रहता है। प्रयोग का हेतु शास्त्र ही होता है। शास्त्र का जो कुछ नियम और विधान होता है उसका प्रच्छन्न प्रभाव परम्परागत प्रयोगों, व्यवहारों में

रहता है। जो भी लोकव्यवहार हैं, लोंकमान्यताएँ हैं, परम्पराएँ हैं उनके बीज में शास्त्र का प्रभाव अवश्य रहता है।

वात्स्यायन का यह भी कहना है कि शास्त्र में अच्छी बुरी सभी प्रकार की वस्तुएँ होती हैं। जिस प्रकार आयुर्वेद गधी के दूध का गुण रोगविशेष के लिए वर्णन करता है किन्तु उसका तात्पर्य यह नहीं है कि सभी लोग गाय-भैंस के दूध के समान गधी का दूध नित्य पिएँ उसी प्रकार कामसूत्र में भी सभी प्रकार की अनुकूल-प्रतिकूल बातों का वर्णन है किन्तु देश, काल, परिस्थिति, गुण, स्वभाव और धर्म के अनुसार ही उन्हें अपनाना चाहिए। परायी स्त्री के साथ सम्भोग करने का जो विधान वात्स्यायन ने बतलाया है उसे वह सर्वथा जायज नहीं कहता। उसका कहना है कि यह तो निहायत निन्दित कर्म है किन्तु राजनैतिक कारणों या प्रयोजनों पर राष्ट्र के हित के लिए परदारगमन-विधान के अनुकूल आचरण करना उचित है। औपनिषदिक अधिकरण में तरह-तरह के यंत्र, मंत्र, तंत्र, टोना, टोटका और औषधियों का उल्लेख करते हुए वात्स्यायन ने यह भी चेतावनी दी है कि इनमें से यदि किसी विषय की आवश्यकता पड़े तो उस विषय के विशेषज्ञ से राय लेकर ही प्रयोग किया जाए। केवल शास्त्र पढ़कर आँखें मूँद कर व्यवहार करना खतरनाक होगा।

कौटल्य के जमाने की मान्यताएँ, परिभाषाएँ, आचार-विचार, भौगोलिक सीमाएँ आदि वात्स्यायन के जमाने में बहुत-कुछ बदली हुई जान पड़ती हैं। जिस प्रकार कौटल्य ने अपने युग का प्रतिनिधित्व कौटलीय अर्थशास्त्र में किया है उसी प्रकार वात्स्यायन ने अपने युग का प्रतिनिधित्व कामसूत्र में किया है।

वात्स्यायन ने नगर, पत्तन, खर्वट, द्रोणमुख आदि की जो परिभाषाएँ बतलायी हैं वे कौटल्य की परिभाषाओं से सर्वथा भिन्न हैं। वात्स्यायन का नागरकवृत्त भी कौटल्य के नागरकवृत्त से बहुत अधिक साम्य नहीं रखता। इस प्रकार के अन्तर्दर्शन से उन लोगों की मान्यताएँ स्वतः असिद्ध हो जाती हैं जो वात्स्यायन और कौटल्य को एक ही व्यक्ति मानते हैं और वात्स्यायन को कौटल्य का समकालिक या थोड़े समय पश्चात् का समझते हैं।

कामसूत्र पर आधारित ग्रंथ और टीकाएँ

कामसूत्र, कामशास्त्र, कामकला, कामकलाविज्ञान, कोकशास्त्र आदि अनेक नामों से हिन्दी में अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं किन्तु प्रायः उन सब में दिमागी ऐयाशी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। केवल अर्थोपार्जन का लक्ष्य रखकर ऐसे

ग्रन्थ प्रणीत और प्रकाशित हुए हैं जिनसे कामसूत्र और वात्स्यायन के महत्त्व को ठेस पहुँची है। कामसूत्र पर आधारित कुछ प्रामाणिक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में अवश्य लिखे गए हैं। कामसूत्र के साम्प्रयोगिक, पारदारिक, भार्य्याधिकारिक और औपनिषदिक अधिकरणों के आधार पर कोक पण्डित ने रतिरहस्य लिखा है। साम्प्रयोगिक, पारदारिक और औपनिषदिक अधिकरणों के आधार पर भिक्षु पद्मश्री ने नागरसर्वस्व की रचना की है। ज्योतिरीश्वर ने कामसूत्र के साम्प्रयोगिक, कन्यासम्प्रयुक्तक, पारदारिक और औपनिषदिक अधिकरणों को लेकर पञ्चसायक ग्रन्थ की रचना की है। कुचुमार के सिद्धान्तों पर आधारित एक कुचोपनिषद् भी लिखा गया है। इनके अतिरिक्त अनङ्गरङ्ग, कोकसार, आदिशास्त्र, कामरत्न भी कामसूत्र के आधार पर लिखे गए हैं तथा कई एक संक्षिप्त हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं।

कामसूत्र की सबसे अधिक प्रशस्त और ख्यातिप्राप्त टीका जयमङ्गला है। टीकाकार यशोधर को उनकी जयमङ्गला ने यथा नाम तथा गुणः सिद्ध कर दिया है। जयमङ्गला से प्रतीत होता है कि इससे पूर्व कामसूत्र की कई टीकाएँ थीं किन्तु उनमें कुछ न कुछ त्रुटि या अभाव देखकर यशोधर ने जयमङ्गला टीका लिखी। जयमङ्गला टीका के बाद हिन्दी या संस्कृत में अबतक कामसूत्र की कोई ऐसी टीका नहीं लिखी गई है जो कामसूत्र मूल ग्रन्थ की भाँति यशस्विनी हो।

कामसूत्र के जितने भी उपलब्ध संस्करण हैं उनके प्रकरणों और सूत्र-संस्थाओं में परस्पर अन्तर है। वात्स्यायन ने कामसूत्र के प्रारम्भ में शास्त्र-संग्रह प्रकरण में जो विषयसूची दी है, उसके अनुसार प्रचलित संस्करणों में प्रकरणों और सूत्रों की संख्या घट-बढ़ कर मिलती है। ऐसी स्थिति में मूल ग्रंथ को पुनः सम्पादित कर प्रकाशित करना चाहिए। ऐसा प्रयास हमारी ओर से किया जा रहा है। साथ ही जिस प्रकार भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्रों को विषय और प्रसंग के अनुसार सम्पादित कर पुनः संयोजित किया है इसी प्रकार का प्रयास हम अपने कामसूत्र के अनुशीलन में कर रहे हैं। इस वैज्ञानिक पद्धति से वर्ण्य विषयों के प्रसंग एक ही स्थल पर मिल जाएँगे।

और मेरा यह प्रयास

पूछा जा सकता है कि संस्कृत और हिन्दी में कामसूत्र की टीकाएँ उपलब्ध होते हुए मैंने पाँचवें सवार में अपना नाम लिखाने का प्रयास क्यों किया? मेरा विनम्र निवेदन है कि अनेक टीकाओं के होते हुए भी कामसूत्र

की व्याख्या अब तक नहीं लिखी गई है। मेरी व्याख्या कैसी है? इसे तो पाठक और आलोचक स्वयं समझेंगे किन्तु मैं इतना स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि मेरी व्याख्या अध्यात्मदर्शन, चित्तविकलन और समाजविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में लिखी गई है। मुझे खेद है कि यत्र-तत्र मैंने यशःप्राप्त टीकाकार यशोधर से पुनर्भूः आदि अनेक शब्दों एवं सूत्रों की निरुक्ति-व्युत्पत्ति में अपना मतभेद व्यक्त किया है, मेरा यह मतभेद बुद्धिविलास की पृष्ठभूमि पर नहीं बल्कि व्याकरण, इतिहास और आचारशास्त्र पर आधारित है।

ग्रन्थ के अन्तर्गत आए हुए पारिभाषिक एवं संज्ञाशब्दों की सूची का सम्पादन मेरे आत्मीय श्री द्वारकाप्रसाद शास्त्री, संग्रहाध्यक्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने किया है। हिन्दी में पुस्तकालय-विज्ञान का प्रवर्तन करने में उन्होंने प्रथम श्रेय प्राप्त किया है, उनका यह विषय होने से सूची अवश्य प्रामाणिक और वैज्ञानिक होगी, पाठकों और शोधकर्ताओं को इससे निःसन्देह लाभ प्राप्त होगा।

वाराणसी के विश्वविख्यात प्रकाशन-संस्थान चौ० सं० सी० तथा चौ० वि० के उदीयमान संचालक बन्धुद्वय—श्री मोहनदास गुप्त तथा श्री विट्ठलदास गुप्त इसे प्रकाशित कराकर विद्वानों के कर कमलों तक पहुँचा रहे हैं, एतदर्थ उन्हें भूरिशः धन्यवाद देता हूँ।

प्रयाग

देवदत्त शास्त्री

विषय-सूची

॥ श्रीः ॥

कामसूत्रम्

हिन्दीभाष्योपेत 'जयमङ्गला' टीकासहितम्

साधारणं नाम प्रथममधिकरणम्

अथ शास्त्रसंग्रहः प्रथमोऽध्यायः

धर्मार्थकामेभ्यो नमः ॥ १ ॥

धर्म, अर्थ और काम को नमस्कार है ॥ १ ॥

जयमङ्गलाटीका

वात्स्यायनीयं किल कामसूत्रं प्रस्तावितं कैश्चिदिहान्यथैव ।
तस्माद्विधास्ये जयमङ्गलाख्यां टीकामहं सर्वविदं प्रणम्य ॥

इह चत्वारो वर्णा ब्राह्मणादयः, चत्वारश्चाश्रमा ब्रह्मचारी गृहस्थो वैखानसो भिक्षुरिति । तत्र ब्राह्मणादीनां गृहस्थानां मोक्षस्यानभिमतत्वात् त्रिवर्गः पुरुषार्थः । तत्रापि धर्मार्थयोर्हेतुत्वात्काम एव फलभूतः प्रकृष्टः पुरुषार्थ इति कामवादिनः । स चोपायं विना न भवतीति तमुपायमाचिख्यासुराचार्यमल्लनागः पूर्वाचार्यमतानुसारेण शास्त्रमिदं प्रणीतवान् ।

ननु तद्धेतुत्वाद्धर्मार्थावेवोपादेयौ, तौ च शास्त्रविहितौ ? सत्यम्—तद्धेतुत्वेऽप्युपायान्तरापेक्षत्वात्संप्रयोगपराधीनः कामः, संप्रयोगश्चोपायमपेक्षते, उपायपरिज्ञानं च कामशास्त्रात्, न धर्मार्थशास्त्राभ्याम् । वक्ष्यति च प्रयोजनवाक्यम्—'संप्रयोगपराधीनत्वात्स्त्रीपुंसयोरुपायमपेक्षते, सा चोपायप्रतिपत्तिः कामसूत्रात्' इति ।

तत्रोपायोऽभिधेयः । तत्प्रकाशनं कामशास्त्रेण क्रियमाणं प्रयोजनम् । अन्यथा कथं प्रतिपत्तिः शास्त्रात् अनधीतशास्त्राणां तु तच्छास्त्रोपायपरिज्ञानं स्वतोऽसंभवात्, परोपदेशात्स्यात् । परोपदेशश्चेत्कथं न शास्त्राभ्युपगमः, तथा चेदमुपायपरिज्ञानं

तद्घुणाक्षरकल्पम्, सम्यक्करणीयवर्जनीयापरिज्ञानात्। ततश्चोपायबाहुल्यात्तैर्नागरिकैरनागरिका नागरिकाः क्रियन्ते, तथा चोक्तम्—'यदविज्ञातशास्त्रेण कदाचित्साधितं भवेत्। न चैतद्बहु मन्तव्यं घुणोत्कीर्णमिवाक्षरम्' इति ॥

यदपि कामशास्त्रविदां केषांचिद्व्यवहाराकौशलम्, तत्तेषामेव दोषः, न शास्त्रस्य, प्रतिपत्तिदोषाच्च शास्त्रानर्थक्यं सर्वत्र तुल्यम्, नहि चिकित्साद्यर्थेषु शास्त्रेषु सर्वे तद्विदः पथ्याहारादिकं सेवन्ते। तस्मात्तदर्थिनो ये भक्तिश्रद्धान्वितास्तेऽपि शास्त्रप्रयोजनहेतवः।

तत्र देवतानमस्कारपूर्वकं शास्त्रप्रणयनमविघ्नितप्रसरं भवतीत्याह—'धर्मार्थकामेभ्यो नमः' इति।

अर्थशब्दस्याजाद्यदन्तत्वेऽपि न पूर्वनिपातः, धर्मस्याभ्यर्हितत्वात्। वक्ष्यति च—'पूर्वः पूर्वो गरीयान्' इति ॥ १ ॥

हिन्दी भाष्य

भारतीय संस्कृति और साहित्य की यह परम्परा है, कि ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त में मङ्गलाचरण करना चाहिए। तदनुसार आचार्य वात्स्यायन ने ग्रन्थ आरम्भ करते हुए धर्म, अर्थ और काम की वन्दना की है।

मङ्गलाचरण के इस सूत्र में किसी देवी-देवता की वन्दना नहीं बल्कि ग्रन्थ में प्रतिपाद्य विषय धर्म, अर्थ और काम की वन्दना की गई है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य ने स्वयं कहा है—

अन्यदेवतासद्भावेऽपि किमिति तेभ्यो नम इत्याह—

शास्त्रे प्रकृतत्वात् ॥ २ ॥

इस शास्त्र में मूलरूप में धर्म, अर्थ और काम का उपदेश किया गया है इस लिए धर्म, अर्थ, काम को ही नमस्कार किया गया है ॥ २ ॥

'अधिकृतानधिकृते प्रतिपत्तिर्बलीयसी' इति न्यायात्। यथा न पुरुषार्थत्वेन कामोऽस्मिञ्शास्त्रेऽधिकृतस्तथा तद्द्वारेण धर्मार्थादपि, एतदुपदिष्टोपायपूर्वकं प्रवर्तमानस्य त्रिवर्गसिद्धेः। तथा च वक्ष्यति—'अन्योन्यानुबद्धं त्रिवर्गं सेवेत।' तथा—'सवर्णायामनन्यपूर्वायां शास्त्रतोऽधिगतायां धर्मोऽर्थः पुत्राः संबन्धः पक्षवृद्धिरनुपस्कृता रतिश्च' इति।

तेषां चाधिकारात्तदधिष्ठात्र्यो देवता अधिकृताः, उपचाराच्छब्दवाच्याः, अन्यथा धर्मादीनां वक्ष्यमाणलक्षणानामदेवत्वात्मकत्वान्नमस्कारो नोपपद्येत, अधिष्ठातृदेवतास्तित्वं चागमात्। तथाहि—'पुरूरवाः शक्रदर्शनार्थमितः स्वर्गं गतो मूर्तिमतो धर्मादीन्दृष्ट्वोपागम्य धर्ममेवेतरावनादृत्य प्रदक्षिणीचकार, ततोऽसौ ताभ्यां

तिरस्कारार्मर्षिताभ्यामभिशप्तः, ततोऽस्य कामाभिशापादुर्वशीविरहोत्पत्तिरभूत्, तस्यां च कथञ्चिदुपशान्तायामर्थाभिशापादतिप्रवृद्धलोभश्चातुर्वर्ण्यस्यार्थमाहृतवान्। ततोऽर्थापहाराद्यज्ञादिक्रियाविरहोद्विग्नैर्ब्राह्मणैर्दर्भपाणिभिर्हतो ननाश' इत्यैतिहासिकाः ॥ २ ॥

भारतीय सभ्यता की आधारशिला चतुर्वर्ग—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है। मनुष्य की समस्त अभिलाषायें इन्हीं चारों में अन्तर्निहित रहती हैं। मानव-देह में आवश्यकताओं को चाहने वाले केवल चार ही अङ्ग हैं और धर्म, अर्थ आदि चारों पदार्थ उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते हैं।

हमारे अन्तर्गत शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा ये ही चार अङ्ग अनन्त-कामनाओं एवं आवश्यकताओं के केन्द्र माने जाते हैं। इनकी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से हुआ करती है। शरीर के पोषण और संवर्द्धन के लिए अर्थ की, मनस्तुष्टि के लिए काम की, बुद्धि के लिए धर्म की और आत्मा की शान्ति के लिए मोक्ष की आवश्यकता पड़ती है। ये आवश्यकताएँ अनिवार्य हैं, अपरिहार्य हैं। क्योंकि बिना भोजन-वस्त्र के शरीर कृश और निष्क्रिय बन जाता है। बिना काम (स्त्री) के मन कुण्ठित और निकम्मा बन जाता है, बिना धर्म (सत्य, न्याय) के बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बिना मोक्ष के आत्मा पतित बन जाता है।

बुद्धि का ज्ञान से समवायसंबंध रहता है। ज्ञान की वृद्धि के साथ बुद्धि का विकास होता है। एक मानी में बुद्धि और ज्ञान एक ही पदार्थ के दो भाग हैं। जिस प्रकार बुद्धि और ज्ञान यमज हैं उसी प्रकार धर्म और ज्ञान भी एक ही पदार्थ के दो भाग हैं। क्योंकि ज्ञानकी वृद्धि के साथ ही धर्म की वृद्धि हुआ करती है। धर्म में ज्ञान का जितना अंश रहता है और ज्ञान में धर्म का जितना अंश रहता है उसी के अनुसार बुद्धि में स्थिरता हुआ करती है।

जिस प्रकार धर्म से बुद्धि का संबंध है, उसी प्रकार शरीर का अर्थ से, मन का काम से और आत्मा का मोक्ष से संबंध है। इन्हीं अर्थ, धर्म, काम में मनुष्य के जीवन, रति, मान, ज्ञान, न्याय, स्वर्ग आदि की समस्त कामनाओं का समावेश होता है। तात्पर्य यह कि जीवन की अभिलाषा अर्थ में; स्त्री-पुत्र आदि की काम में; यश, ज्ञान और न्याय की धर्म में और परलोक की कामना मोक्ष में समाविष्ट हो जाती है। इस तरह चारों पदार्थ एक दूसरे के आधार और आधेय बन जाते हैं। क्योंकि अर्थ—भोजन-वस्त्र के बिना शरीर की स्थिति नहीं रह सकती है और न काम (रति) के बिना शरीर ही उत्पन्न हो सकता है। बिना शरीर के मोक्षसाधन नहीं

हो सकता है और मोक्षसाधन के बिना अर्थ और काम को सहयोग और सहायता नहीं मिल सकती है। इसलिए मोक्ष की सच्ची कामना रखकर ही अर्थ (धन-संपत्ति) और काम (स्त्री) का उपभोग करना चाहिए। यदि मोक्ष की सच्ची कामना के बिना अर्थ और काम का उपभोग कोई करता है तो वह स्वार्थी और कामी है, समाज और राष्ट्र का शत्रु है। प्रकट है कि जहाँ स्वार्थ और कामलोलुपता बढ़ जाती है वहीं समाज और राष्ट्र का पतन होता है। केवल धर्मपूर्वकप्राप्त अर्थ और काम ही मोक्ष के सहायक माने गए हैं, धर्मविरुद्ध नहीं। आर्य-सभ्यता में धर्मपूर्वक अर्थ और काम का ग्रहण करके मोक्ष प्राप्त करना ही मानव-जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

इसीलिए आचार्य वात्स्यायन कामसूत्र को प्रारंभ करते हुए धर्म, अर्थ और काम की वन्दना करते हैं। आचार्य का कामसूत्र वासनाओं को और काम की वन्दना करते हैं। आचार्य का कामसूत्र वासनाओं को भड़काने अथवा कामुकों के लिए नहीं है बल्कि जो 'काम' को मोक्ष का सहायक मान कर धर्मपूर्वक 'काम' (स्त्री) का उपभोग करते हैं उन्हीं के लिए हैं।

तत्समयावबोधकेभ्यश्चाचार्येभ्यः ॥ ३ ॥

इसलिए धर्म, अर्थ और काम के समय—तत्त्व का बोध करनेवाले आचार्यों को नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

तेषां धर्मादीनां समयस्तत्त्वम्, अवबोधयन्तीत्यवबोधकाः तत्समयस्यावबोधका इति। षष्ठीसमासप्रतिषेधस्यानित्यत्वम्, 'तत्प्रयोजको हेतुश्च' इति निदर्शनात्। ये तत्समयं प्रतिपादयितुं तच्छास्त्रं प्रणीतवन्तस्तेभ्यो नमः, नान्येभ्य इत्यर्थः ॥ ३ ॥

कुत इत्यत आह—

तत्सम्बन्धात् ॥ ४ ॥ इति ॥

क्योंकि उन आचार्यों का कामशास्त्र से संबंध है ॥ ४ ॥

तेषामिह शास्त्रे संबन्धादित्यर्थः, तत्प्रणीतशास्त्रसंक्षेपेण हि शास्त्रस्य प्रणयनात् ॥ ४ ॥

प्राचीन आचार्यों ने सिद्धान्त और व्यवहार रूप में यह सिद्ध करके बतलाया है कि 'काम' को मर्यादित करके उसको अर्थ और मोक्ष के अनुकूल बनाना केवल धर्म के ही अधीन है। निरंकुश काम को नियंत्रित और मर्यादित करके मोक्ष, अर्थ और काम के बीच सामञ्जस्य धर्म ही स्थापित कर सकता है। तात्पर्य यह कि धर्मानुसार जीवन व्यतीत करते हुए मनुष्य लोक और परलोक दोनों बना सकता है। वैशेषिक दर्शन ने 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' कह कर यह स्पष्ट कर दिया है कि धर्म

वही है जिससे अर्थ-काम-संबन्धी ऐहिक सुख एवं मोक्ष-संबंधी पारलौकिक सुख की सिद्धि होती है। यहाँ अर्थ और काम से उतना ही प्रयोजन है जितने से शरीर-यात्रा और मनस्तुष्टि का निर्वाह हो सके और अर्थ तथा काम में आसक्ति का भाव न पैदा हो। मनु ने भी इसी का समर्थन करते हुए कहा है कि—'जो लोग अर्थ और काम में आसक्त नहीं हैं, उन्हीं के लिए धर्म-ज्ञान कहा गया है और इस धर्म-ज्ञान की जिज्ञासा रखनेवालों के लिए वेद ही परम प्रमाण है।'[1]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैशेषिक दर्शन के मत से अभ्युदय का तात्पर्य लोकनिर्वाह मात्र है और लोकनिर्वाह मात्र ही वेदानुकूल धर्म है।

मीमांसा दर्शन धर्म की मीमांसा करते हुए कहता है कि 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।' अर्थात् वेद की आज्ञा ही धर्म है। हिन्दू सभ्यता की बुनियाद वेद की शिक्षा ही है। इसलिए निष्कर्ष यही निकलता है कि संसार से उतना ही अर्थ और काम लिया जाय जिससे मोक्ष को सहायता मिले। इसी धर्म के लिए महाभारतकार ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा है कि—'मैं दोनों हाथ उठाकर चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा हूँ कि अर्थ और काम को धर्मपूर्वक ही ग्रहण करने में कल्याण है परन्तु इसे कोई सुनता नहीं[2]।'

वस्तुतः धर्म वह नियम है जो लोक और परलोक के बीच सामंजस्य स्थापित करता है, जिसके द्वारा अर्थ, काम और मोक्ष आसानी से मिल जाते हैं। प्राचीन आचार्यों द्वारा बताया गया यही धर्म के तत्त्व का बोध है।

धर्म की भाँति अर्थ भी भारतीय सभ्यता की आधार-शिला है। जबतक मनुष्य अर्थ-शुद्ध नहीं होता तब तक उसे मोक्ष हर्गिज नहीं मिल सकता। जिस प्रकार आत्मा के लिए मोक्ष की आवश्यकता है, बुद्धि के लिए धर्म की आवश्यकता है और मन के लिए 'काम' की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर के लिए अर्थ की भी आवश्यकता हुआ करती है। मोक्ष की आवश्यकता तो केवल मनुष्य को ही हुआ करती है। किन्तु अर्थ और काम के बिना चराचर जगत् के किसी भी जीव का निर्वाह संभव नहीं है।

भारतीय विचारकों ने कदाचित् इसीलिए अर्थ पर बहुत सावधानी से विशद विवेचन किया है। मनु का कहना है कि समस्त पवित्रताओं में

---

१. अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥

२. ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष नहि कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किन्न सेव्यते॥—महाभारत।

अर्थ की पवित्रता सर्वश्रेष्ठ है।[१] अर्थ-संग्रह के लिए मनु का आदेश है कि जिस व्यापार में जीवों को तनिक भी पीड़ा न पहुँचे अथवा बहुत कम दुःखी होना पड़े, उसी कार्य-व्यापार से आपत्तिरहित काल में निर्वाह करना चाहिए। अपने शरीर को क्लेश दिए बिना स्तुत्य उपायों द्वारा केवल निर्वाहमात्र के लिए अर्थ-संग्रह करना चाहिए। स्वाध्याय में बाधक अर्थों को छोड़ देना चाहिए।[२] यजुर्वेद का कहना है कि 'इस समस्त चराचर जगत् में ईश्वर को व्याप्त समझ कर किसी का धन लेने की इच्छा न करो, जो कुछ ईश्वर ने दिया है उसी पर संतोष रखना चाहिए। इस प्रकार आजीवन कर्मरत रहने से मोक्ष मिल सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं है'।[३]

वेदों, उपनिषदों के अतिरिक्त आचार्यों ने अपने-अपने शास्त्रों में अर्थ-संबंधी जो तत्त्वबोध कराया है उसका सारांश यही है कि मुमुक्षु को संसार से उतने ही भोग्य पदार्थों को लेना चाहिए जितने के ग्रहण करने से किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचे।

धर्म और अर्थ की भाँति 'काम' भी हिन्दू सभ्यता का आधार है। यह भी धर्म और अर्थ की भाँति मोक्ष का सहायक है। यदि काम को नियंत्रित और मर्यादित न किया जाए तो अर्थ कभी मर्यादित नहीं हो सकता और बिना अर्थ-मर्यादा के मोक्ष नहीं मिल सकता। इसलिए भारतीय ऋषियों, आचार्यों ने 'काम' के विषय में बहुत गंभीरता से विचार किया है। संसार के किसी भी साहित्य में अभी तक अर्थ-शुद्धि के मूल आधार 'काम' पर उतनी गंभीरता और सूक्ष्मता से विचार नहीं किया गया है जितना कि भारतीय साहित्य में हुआ है।

पाश्चात्य विचारकों ने अर्थ और काम को एक ही मान कर प्रायः विचार किया है, किन्तु भारतीय आचार्यों ने जिस प्रकार शरीर और मन को पृथक् रखकर विचार किया है उसी प्रकार शरीर से संबंध रखने वाले 'अर्थ' को और मन से संबंध रखने वाले 'काम' को एक दूसरे से पृथक् मान कर विचार किया है।

---

१. सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।

२. अद्रोहेणैव भूतानां······स्वाध्यायस्य विरोधिनः।—मनुस्मृति।

३. ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

काम एक महती मानसी शक्ति है। यह शक्ति भौतिक कार्यों में प्रकट होकर तथा अन्तःकरण की क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त होकर दो भागों में बँट जाती है। यही शक्ति कभी चैतन्य के रूप में और कभी भौतिक शक्ति के रूप में प्रकट हुआ करती है। कहीं तो यह छितरा कर काम करती है और कहीं संवरणरूप में काम करती हुई जान पड़ती है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन चित्त की इन्हीं आन्तरिक और बाह्य शक्तियों के ऐसे छितरावों (विक्षेपों) और संवरणों का संघर्षस्थल बना रहता है। अणु-अणु, परमाणु-परमाणु में मन की यह द्विधाशक्ति समायी हुई है। इसका एक भाग बहिर्मुख है तो दूसरा अन्तर्मुख है। एक भाग व्यक्ति को प्रवृत्ति की ओर झुकाता है तो दूसरा भाग निवृत्ति की ओर।

मन की मूल वासनाएँ ही मूल प्रवृत्तियाँ कहलाती हैं। समस्त वासनाओं या मूल प्रवृत्तियों का यदि वर्गीकरण किया जाए तो वित्तैषणा, दारैषणा और लोकैषणा इन तीन ही भागों में सभी वासनाओं या मन की मूल प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है। धन, स्त्री, पुत्र और यश आदि की कामना के मूल में आनन्द का उपभोग रहता है। सभी प्रकार की वासनाओं, इच्छाओं या प्रवृत्तियों का प्राण आनन्द ही है।

तैत्तिरीय उपनिषद् का कथन है कि 'आनन्द से ही भूतों की उत्पत्ति होती है, आनन्द से ही उत्पन्न सभी वस्तु और जीव-समुदाय जीवित रहते हैं और आनन्द में ही लीन होते हैं। आनन्द ही सब कुछ है[1]।'

बृहदारण्यक उपनिषद् कहती है कि 'आनन्द का एक मात्र स्थान उपस्थ (गुप्तेन्द्रिय) है[2]।' अन्य सभी वस्तुएँ आनन्द के साधन हैं। वित्त, स्त्री और लोक आदि सब कुछ आनन्द को बढ़ाने के लिए हैं।

स्वामी शङ्कराचार्य का कहना है कि अन्तरात्मा पहले अकेला था किन्तु कालान्तर में वह विषयों को खोजने लगा। जैसे, मेरे स्त्री-पुत्र हों और उनके भरण-पोषण के लिए धन हो। उन्हीं के लिए व्यक्ति प्राणों की परवाह न करके अनेक कठिनाइयाँ झेलकर कर्म करता है। वह उनसे बढ़कर और किसी वस्तु को श्रेष्ठ नहीं समझता। यदि उसे उक्त वस्तुओं में

---

१. आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।
—तैत्तिरीय, अनुवाक ३।

२. सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनम्।
—बृहदारण्यक, २, ४, ११।

एक की भी उपलब्धि न हुई तो वह अपने जीवन को अपूर्ण और असफल समझता है। वह मृतप्राय बना रहता है। उनमें से एक की भी क्षति हो जाने पर वह अपने को अकृतार्थ समझने लगता है।[1]

जीवन की पूर्णता, या अपूर्णता, सफलता या असफलता का मापक यन्त्र आनन्द ही है। विषयों से संबंध जोड़ने में व्यक्ति को प्रभूत आनन्द मिलता है। इसलिए यह स्वभावतः सिद्ध है कि उसके इच्छित विषयों में से एक के भी नष्ट होने पर वह व्यक्ति अपने आपको नष्ट समझता है और उसकी उपलब्धि से वह अपने आप को कृतार्थ समझता है। ब्रह्मसूत्र के शांकर भाष्य में श्री शंकराचार्य ने इसे स्पष्ट स्वीकार किया है।[2] इन उदाहरणों से निष्कर्ष यह निकलता है कि हर व्यक्ति मिथुन (जोड़े) के द्वारा अपनी पूर्णता की इच्छा रखता है। सृष्टि के आदि में जब ब्रह्म एकाकी था तो उसके मन में यही संकल्प उत्पन्न हुआ था कि 'एकोऽहं बहु स्याम्'। एक से अनेक हो जाने की इच्छा ही अपूर्णता से उत्पन्न होनेवाले अभाव को व्यक्त करती है।

वस्तुतः व्यक्ति रति की खोज करता है, वह उसे बढ़ाना चाहता है, अनेक बनकर आनन्द का उपभोग करना चाहता है—

'स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत्'।[3]

—उसे अकेले में आनन्द नहीं मिला। अकेला रहने में कोई आनन्द नहीं रहता, अतएव उसने दूसरे की कामना की।

इससे तीन बातें सिद्ध हुईं—एक तो यह कि दो भिन्नताओं के बीच के संबंध को 'काम' कहते हैं। यह एक प्रवृत्ति है जो विषय और विषयी को एकात्म बनाती है।

दूसरी बात यह कि काम-प्रवृत्ति—विषय और रमण की इच्छा—आदि शक्ति है।

वह अकेला था, इसका उसे बोध था—

'आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत् सोऽहमस्मि इत्यग्रे व्याहरत् ततोऽहं नामाभवत्'।[4]

—वह आत्मा पहले एक ही था। वह पुरुषविध था। उसने अपने अलावा और किसी को नहीं पाया, 'मैं हूँ' इस प्रकार पहले उसने वाक्य कहा······।

---

१. शंकराचार्य : शतश्लोकी ३१।

२. भार्यापुत्रादिषु सकलेषु विकलेषु वा अहमेव सकलो वा विकलो वेति।
—ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य।

३. बृहदारण्यक १, ४, ३।
४. बृहदारण्यक १, ४, १।

'मैं हूँ' का बोध होने पर भी वह आनन्दित नहीं हुआ इसलिए दूसरे की कामना की—स द्वितीयमैच्छत्—वह दूसरा विषय था। फिर विषय ने अनेक का रूप धारण किया—

'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इति।[१]—उसने चाहा कि मैं अनेक हो जाऊँ, मैं उत्पन्न करूँ।

'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इति।[२]—उसने सोचा कि मैं अनेक हो जाऊँ, मैं सर्जन करूँ।

'स ऐक्षत लोकान्नु सृजा' इति।[३]—उसने सोचा कि मैं लोकों की सृष्टि करूँ।

उसके ऐसा सोचने और चाहने आदि सभी क्रियाओं के मूल में केवल काम-प्रवृत्ति है। ज्यों ही उसे 'अहमस्मि'—मैं हूँ का बोध हुआ त्योंही वह डरा और एक सहायक की इच्छा करने लगा—

'सोऽबिभेत्तस्मादेकाकी बिभेति सहायमीक्षांचक्रे......'।[४]

जीव जब अविद्याग्रस्त हुआ तो उसे अपने अस्तित्व का बोध हुआ कि मैं हूँ। इसके बाद उसे अपनी पूर्व परिस्थिति को जानने की इच्छा हुई, जिससे उसके मन में 'द्वितीय' का बोध हुआ। द्वितीय का मानसिक बोध होते ही वह भयभीत हुआ, उसे उस ओर से विकर्षण हुआ और विकर्षण से फिर आकर्षण उत्पन्न हुआ कि एकाकी रमण नहीं किया जा सकता है, अतः मन में उत्पन्न द्वितीय की इच्छा प्रबल हुई 'स द्वितीयमैच्छत्'।

जीव को पहले द्वितीय का बोध होता है; उसके बाद भय होता है। भय तभी उत्पन्न होता है जब भिन्नता होती है और जहाँ भय उत्पन्न होता है वहाँ विकर्षण अर्थात् भय के नाश के लिए खोयी हुई वस्तु की कामना उत्पन्न होती है। दार्शनिक दृष्टि से इसी आकर्षण-विकर्षण, प्रवृत्ति-निवृत्ति, राग-द्वेष, प्रेम-भय में अविद्या (महामाया) का स्वरूप स्थिर रहता है। इसी में अनन्तकाल से अनन्त जीव-समुदाय फँसा हुआ है। इस प्रकार के सारे अज्ञान के मूल में दूसरे के प्रति आकर्षण और दूसरों को अपने से अलग समझना ही है।

अतः सिद्ध होता है आकर्षण एवं काम की मिथुन आकांक्षा ही विश्व-वासना है। अविद्या, आकर्षण आदि सभी वासनाओं के मूल में काम निहित है इसीलिए वेदों, पुराणों में काम को आदिदेव कहा गया है—

---

१. तैत्तिरीय २, ३।
२. छान्दोग्य ३, २, ३।
३. ऐतरेय १, ३।
४. बृहदारण्यक २, ४, २।

......'कामस्तदग्रे समवर्तत'।[1] एवं 'कामो जज्ञे प्रथमो'।[2]

काम आदि में उत्पन्न हुआ। देवता, पितर या मनुष्य कोई उसकी समानता न कर सके।

शैव धर्म में सारे विश्व के मूल में शिव और शक्ति का संयोग माना गया है—

शिव-शक्ति-समायोगाद् जायते सृष्टिकल्पना।

इतना ही नहीं, शैव मत के अनुसार आध्यात्मिक पक्ष में आदि-वासना पुरुष और प्रकृति के संबंध से प्रकाशित है और वही भौतिक पक्ष में स्त्री-पुरुष के सम्भोग में परिणत होती है।[3]

शिवपुराण समस्त जगत् को शक्ति और शक्तिमान् से उत्पन्न हुआ शैव और शाक्त मानता है। स्त्री और पुरुष से ही उत्पन्न हुआ यह विश्व 'स्त्री-पुंसात्मक' ही है। ब्रह्म शिव है और माया शिवा है। पुरुष परम ईशान है और स्त्री प्रकृति परमेश्वरी है। सभी पुरुष परमेश्वर हैं और सभी स्त्रियाँ परमेश्वरी हैं। इन्हीं दोनों का मिथुनात्मक संबंध ही मूल वासना है। इसी को आकर्षण कहते हैं और इसी को 'काम' कहते हैं।'[4]

इसके अतिरिक्त शिवपुराण में आठ अध्याय से बारह अध्याय तक काम के विषय में जो विवेचन किया गया है उसमें 'काम' को मैथुनविषयक 'काम' के अर्थ में ही प्रयुक्त किया गया है। उसका यह कथन कितना सत्य है कि विश्वामित्र, शुकदेव, श्रृङ्गी जैसे ऋषि और राम जैसे साक्षात् परमात्मा के अवतार भी काम के पंजे में फँस गए हैं।

शिवपुराण की धर्मसंहिता में लिखा है—'कामः संकल्प एव हि'—अर्थात् संकल्प के मूल में विषयासक्ति ही रहती है।

ठीक इसी से मिलती-जुलती 'काम' की परिभाषा आचार्य वात्स्यायन ने कामसूत्र में लिखी है—

---

१. अथर्ववेद १९।५२।१। २. वही ९।२।१९।

३. भूता वा वर्तमाना वा अनित्या वापि सर्वशः।
कामात् सर्वे प्रवर्त्तन्ते लीयन्ते बुद्धिमागताः॥

४. शक्तिशक्तिमदुत्थं तु शाक्तं शैवमिदं जगत्।
स्त्रीपुंसप्रभवं विश्वं स्त्रीपुंसात्मकमेव च।
परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा मायेति कथ्यते।
पुरुषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी।
शंकरः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी॥

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयोगेन मनसा अधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः ।

—अर्थात् आत्मा से संयुक्त मन से अधिष्ठित पाँच ज्ञानेन्द्रियों की अपने-अपने विषयों में जो अनुकूल प्रवृत्ति है वही 'काम' है ।

शैव धर्म की भाँति शाक्त मत भी संसार की सृष्टि को मैथुनजन्य मानता है । उसका कथन है कि 'नाद शिव-शक्ति का मैथुन है । उसका सिद्धान्त है कि 'शब्द की अभिव्यक्ति के पूर्व द्वन्द्व का होना निश्चित है । जब द्वन्द्व है तब मिथुन का संबंध मैथुन अवश्य है ।'

श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, मैत्री, अनुकम्पा, आलिंगन, चुम्बन आदि आकर्षण (काम) के सभी रूपों में मिथुन संबंध—आकर्षण अथवा 'काम' यही मानसिक भाव जागरूक रहते हैं । इसीलिए सभी दार्शनिकों ने 'काम' को एक स्वर से आदिदेव माना है[1] ।

वस्तुतः काम मन का रेतस् है, शिशु के कोमल हृदय में सर्वप्रथम वही स्पन्दित होता है । जो सत्य को देखने की चाह रखता है वही इसे पहचान सकता है । 'काम' एक महती शक्ति है, इसके अनेक भाव, अनेक विभाव और अंग, उपांग हैं । यह आदिदेव है । चित्तयंत्र को चलाने वाली अदृश्य शक्ति है । इस शक्ति के तत्त्व को समझने के लिए आचार्य वात्स्यायन कामसूत्र का उपन्यास कर रहे हैं—'तत्संबन्धात्' ।

जिन पूर्ववर्ती आचार्यों से कामसूत्र का संबंध पिछले सूत्र द्वारा बताया गया है उनके ही ग्रन्थों को संक्षिप्त करके वात्स्यायन-कामसूत्र की रचना हुई है । इसलिए अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए आचार्य वात्स्यायन ने उन्हें नमस्कार किया है ।

'प्रजापतिर्हि' इत्यादिनागमविशुद्ध्यर्थं गुरुपूर्वक्रमलक्षणं संबन्धमाह—

प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच ॥ ५ ॥

प्रजापति ने प्रजाओं को उत्पन्न करके उनके नियमित जीवन के संविधान धर्म, अर्थ और काम के साधनभूत शास्त्र का सबसे पहले एक लाख श्लोकों में प्रवचन किया ॥ ५ ॥

---

१. कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं तदासीत् ।
सतोबन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥
—ऋग्वेद १०।१२९।४ ।

प्रजापतिर्हीति–हिशब्दो यस्मादर्थे, अविपरीतोऽयमागमो गुरुपरम्परयान्वाख्यायते। यतः स्थितिनिबन्धनमिति–प्रजानां तिस्रोऽवस्थाः, सर्गस्थितिप्रलयलक्षणाः, तत्र सर्गादूर्ध्वं प्रबन्धेनावस्थानं स्थितिः। सा हि द्विविधा, शुभा चाशुभा च। त्रिवर्गोऽपि द्विविधः, उपादेयोऽनुपादेयश्च, तत्र पूर्वो धर्मोऽर्थः काम इति, द्वितीयोऽप्यधर्मोऽनर्थो द्वेष इति। तत्र धर्मादमुत्र शुभा गतिः, अधर्मादशुभा। अर्थादिहैव परिभोगो धर्मप्रवर्तनं च, अनर्थात्क्लिष्टजीवनमधर्मप्रवर्तनं च। कामात्सुखं प्रजोत्पत्तिश्च, द्वेषान्नोभयम्, तस्य च निःसुखस्याप्रजस्य तृणस्येव स्थितिः। इत्येवं स्थितेस्त्रिवर्गो निबन्धनम्।

तस्योपेयानुपेयस्य प्राप्तिपरिहारौ नोपायं विनेति तदुपायशासनत्वाच्छास्त्रं च सम्यगुपचारात्तन्निबन्धनम्। शतसहस्रेणेति लक्षेण। अग्रे प्रोवाचेति–तदानीं शास्त्रान्तराभावादिदमेवाग्र्यमिति। श्रुतिरपि सर्वजनविषयेति तामेव हृदिस्थामनुसंचिन्त्य साधारणभूतं स्मार्तशास्त्रं प्रकर्षेणोवाच ॥ ५ ॥

भारतीय सभ्यता का सिद्धान्त है कि जब तक द्वन्द्व है तब तक दुःख अवश्य रहेगा। अतः द्वन्द्व को समूल काटना चाहिए। अद्वैत शिव है। विषयों की आग की ज्वाला यहां नहीं है। भारतीय दार्शनिकों ने इसी को मनुष्यमात्र का गम्य स्थान बतलाया है। इसी की प्राप्ति के लिए भारतीय वाङ्मय निर्मित हुआ है। जितनी विद्याएँ हैं वे सब ब्रह्मविद्या में प्रतिष्ठित हैं।

'सभी देवताओं, मनुष्यों आदि से पूर्व विश्व के निर्माता, भुवनों के पालनकर्त्ता प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व के लिए ब्रह्मविद्या कही जो सभी विद्याओं की प्रतिष्ठा है[1]।'

इस उपनिषद् वाक्य से यही सिद्ध है कि ब्रह्मविद्या में कामशास्त्र की प्रतिष्ठा है। वात्स्यायन का यह कथन कि कामशास्त्र का प्रवचन सर्वप्रथम ब्रह्मा ने प्रजाओं के जीवन को नियमित बनाने के लिए किया है—परंपरागत और सुसंगत है। ब्रह्मा ने कामशास्त्र को धर्म, अर्थ और काम का साधनभूत समझकर इसका प्रवचन किया था। क्योंकि धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की चरम परिणति मोक्ष है। मोक्ष प्राप्त करना ही मानव-जीवन का उद्देश्य है। इसलिए जब तक मोक्ष के साधन को भलीभाँति न समझा जाए तब तक मोक्ष की देहली तक पहुंचना भी मुश्किल है।

कामशास्त्र का प्रवचन करना ब्रह्मा के लिए इसलिए आवश्यक था कि काम आदिदेव है, इसकी शक्ति महान् है। जब तक काम का नियमित साधन

१. मुण्डक उपनिषद् १–१।

नहीं किया जाएगा तब तक जीवन नियत और नियमित नहीं बन सकता। हमारी प्रत्येक साधना, कठिन तपस्या पर पानी फिर सकता है। योगवासिष्ठ का कहना है—

> ताहशोऽपि बहुज्ञोऽपि जीवन्मुक्तोऽप्यसौ मुनिः।
> निरिच्छोऽपि निरागोऽपि न किंचिदुपमोप्यलम्।
> सबाह्याभ्यन्तरं नित्यमाकाशविशदोऽपि च।
> नारदोऽपि कथं ब्रह्मन् मदनस्खलितोऽभवत्।
> सर्वस्या एव राजर्षे भूतजातेर्जगत्त्रये।
> देवादेरपि देहोऽयम् द्वयात्मैवस्यात् स्वभावतः।
> अज्ञमस्त्वथ तज्ज्ञं वा यावत्स्वान्तं शरीरकम्॥[1]

—'ब्रह्मन्, नारदऋषि जीवन्मुक्त, इच्छारहित, बहुज्ञ और विरागी कहे जाते हैं। वे भीतर और बाहर से आकाश के समान निर्मल, नित्य और विशद हैं, फिर भी वे मदनस्खलित और काम के वशीभूत कैसे हो गए?

सुनिए राजर्षि, तीनों लोकों के जितने भी प्राणी हैं चाहे वे देवता या मनुष्य अथवा कुछ भी हों उन सबका शरीर स्वभाव से द्वयात्मक है। जब तक शरीर रहता है तब तक शरीर-धर्म स्वभाव से ही अनिवार्य है।'

प्राकृतिक वासना का दमन निरोध से नहीं होता है। क्योंकि सभी प्राणी प्रकृति के सनुसार चलते हैं, निग्रह क्या करेगा—

> 'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ?'[2]

इसलिए मूलभूत सहज प्रवृत्तियों का निरोध करने की कोशिश बेकार है। कामशास्त्र की मनुष्यजीवन में सर्वोपरि उपयोगिता समझ कर ही सर्वप्रथम ब्रह्मा ने प्राणियों के कल्याण के लिए इस शास्त्र का प्रवचन किया है—यह आचार्य के कहने का तात्पर्य है। साथ ही इस कथन से ग्रन्थ की प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है। इसी प्रकार आयुर्वेद, नाट्यशास्त्र, व्याकरण, वेद आदि की उत्पत्ति उनके अधिष्ठातृ देवताओं से बनायी गयी है। इस भारतीय ग्रन्थ-रचना-परम्परा का अनुसरण करते हुए आचार्य ने कामशास्त्र की परंपरा का उद्भव ब्रह्मा से बतलाया है। उनके बाद के आचार्यों का परिचय क्रमशः निम्नांकित सूत्रों द्वारा दिया गया है—

तस्यैकदेशिकं मनुः स्वायम्भुवो धर्माधिकारिकं पृथक् चकार॥ ६॥

---

१. योगवासिष्ठ : निर्वाण, पूर्वार्द्ध ८५, १०५, १०८।
२. गीता।

ब्रह्मा द्वारा रचित एक लाख अध्यायों के उस शास्त्र के धर्मविषयक भाग को स्वयम्भू के पुत्र मनु ने पृथक् कर लिया ॥ ६ ॥

तस्येति—प्रजापतिप्रोक्तस्यैकदेशास्त्रय:, तत्र यत्र धर्मोऽधिकृतस्तन्मनुः पृथक्चकार, यत्रार्थस्तद् बृहस्पतिः। यत्र कामस्तन्नन्दीति। स्वायंभुव इति वैवस्वतनिवृत्त्यर्थम्। धर्माधिकारिकमिति—धर्मप्रस्तावो यत्रास्ति तत्, धर्मशास्त्रमित्यर्थः ॥६॥

बृहस्पतिरर्थाधिकारिकम् ॥ ७ ॥

बृहस्पति ने अर्थशास्त्र-संबंधी विभाग को पृथक् कर अपना अर्थशास्त्र बनाया ॥ ७ ॥

अर्थाधिकारिकमिति—अर्थशास्त्रं चकारेत्यर्थः। द्वयोरप्यनयोरप्रस्तुतत्वान्नाध्यायसंख्या दर्शिता ॥ ७ ॥

महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक् कामसूत्रं प्रोवाच ॥ ८ ॥

महादेव के अनुचर नन्दी ने उस शास्त्र में से एक हजार अध्यायों वाले कामसूत्र को अलग कर लिया ॥ ८ ॥

महादेवेति—महादेवमनुचरति यः, नान्योऽयं नन्दिनामा कश्चित्। तथा हि श्रूयते—दिव्यं वर्षसहस्रमुमया सह सुरतसुखमनुभवति महादेवे वासगृहद्वारगतो नन्दी कामसूत्रं प्रोवाचेति। अत्राध्यायसंख्यानमुक्तम्, शास्त्रस्याप्रस्तुतत्वात् ॥ ८ ॥

तदेव तु पञ्चभिरध्यायशतैरौद्दालकिः श्वेतकेतुः सञ्चिक्षेप ॥ ९ ॥

नन्दी के उस कामसूत्र को उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने पाँच सौ अध्यायों में संक्षिप्त किया ॥ ९ ॥

तदेव त्विति—नन्दिप्रोक्तम्, तस्यैकदेशम्। तुशब्दो विशेषणार्थः। औद्दालकिरिति—उद्दालकस्यापत्यं यः श्वेतकेतुः। तथाहि परदाराभिगमनं लोके प्रागासीत्, यथोच्यते—'पक्वान्नमिव राजेन्द्र सर्वसाधारणाः स्त्रियः। तस्मात्तासु न कुप्येत न रज्येत रमेत च ॥' इति। इयमौद्दालकेन व्यवस्था निर्वर्तिता, तथा चोक्तम्—'मद्यपानान्निवृत्तिश्च ब्राह्मणानां गुरोः सुतात्। परस्त्रीभ्यश्च लोकानामृषेरौद्दालकादपि ॥ ततः पितुरनुज्ञानाद्गम्यागम्यव्यवस्थया। श्वेतकेतुस्तपोनिष्ठः सुखं शास्त्रं निबद्धवान् ॥' इति ॥ ९ ॥

तदेव तु पुनरध्यर्धेनाध्यायशतेन साधारण-साम्प्रयोगिक-कन्यासम्प्रयुक्तक-भार्याधिकारिक-पारदारिक-वैशिक-औपनिषदिकैः सप्तभिरधिकरणैर्बाभ्रव्यः पाञ्चालः सञ्चिक्षेप ॥ १० ॥

इसके बाद पाञ्चालदेश के निवासी बभ्रु के पुत्र ने श्वेतकेतु के पाँचसौ अध्यायों के कामसूत्र को डेढ़ सौ अध्यायों में साधारण, साम्प्रयोगिक, कन्यासम्प्रयुक्तक, भार्याधिकारिक, पारदारिक, वैशिक तथा औपनिषदिक इन सात अधिकरणों में विभक्त करके संक्षिप्त किया ॥ १० ॥

तदेवं त्विति—यदेवौद्दालकिसंक्षिप्तम् , पुनरर्थतो ग्रन्थतश्च संचिक्षेप । सर्वत्र परदाराभिगमनं सामान्येन प्रतिषिद्धम्, इह तु विशेषेणेत्येव पारदारिकमत्रोक्तम् । अध्यर्धेन—पञ्चाशदधिकेन । तत्रोत्तरेषामधिकरणानामस्य साधारणत्वात्साधारणम् । संप्रयोगः प्रयोजनमस्येति सांप्रयोगिकम् । कन्यायाः संप्रयुक्तं संप्रयोगो यस्मिन्निति कन्यासंप्रयुक्तकम् । भार्याधिकारिणी यस्मिन्नस्तीति भार्याधिकारिकम् । तथा पारदारिकम् । वेशो वेश्यावृत्तम्, तत्प्रयोजनमस्येति वैशिकम् । तथौपनिषदिकम् , उपनिषद्रहस्यम् । साधारणाद्युपादानं शास्त्रशरीरख्यापनार्थम्, एतावन्तोऽर्थाः शास्त्र इति, आचार्योऽपि तथैव स्वशास्त्रमतः संचिक्षेप । सप्तभिरिति नियमार्थम् । अधिक्रियन्ते प्रकरणार्था येष्वित्यधिकरणानि । बाभ्रव्यो बभ्रोरपत्यं यः पाञ्चालः, 'मधुबभ्र्वोः—' इति यञ् ॥ १० ॥

ब्रह्मा ने मनुष्यों के जीवन को नियमित बनाने तथा जीवन का लक्ष्य निर्धारित करने के लिए एक संविधान तैयार किया, जो एक लाख अध्यायों का था और जिसमें जीवन के हर क्षेत्र का विशद निरूपण और संयमन था। उस विशाल ग्रन्थार्णव को मथकर मनु ने आचार-शास्त्र का एक पृथक् संस्करण प्रस्तुत किया जो मानव धर्मशास्त्र या मनुस्मृति के नाम से विख्यात है। मनु द्वारा सम्पादित मनुस्मृति आजकल असली रूप में उपलब्ध नहीं है, प्रचलित स्मृति उसी स्मृति का संक्षिप्त संस्करण है जिसे मनु ने प्रस्तुत किया था।

उसी विशाल ग्रन्थ से आचार्य बृहस्पति ने अर्थशास्त्रविषयक भाग अलग करके बार्हस्पत्यम् अर्थशास्त्र की रचना की। बृहस्पति के इस अर्थशास्त्र के मत कौटलीय अर्थशास्त्र में तो मिलते हैं किन्तु मूल ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। तीन दशक पूर्व लन्दन में एक बार्हस्पत्यम् अर्थशास्त्र का संस्करण छपा था, जिसे भगवद्दत्त बी० ए० ने अपनी वैदिक मेगजीन (लाहौर) में छापा था, किन्तु वह असली बार्हस्पत्यम् अर्थशास्त्र नहीं है। वह बहुत बाद का है, उसके विचार और सिद्धान्त निहायत लचर और परस्पर विरुद्ध हैं।

मानव धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के बाद महादेव के अनुचर नन्दी ने उस महान् ग्रन्थ से कामशास्त्रविषयक भाग को पृथक् कर एक हजार अध्यायों का कामशास्त्र सम्पादित किया। उसी संस्करण से श्वेतकेतु ने पाँच सौ अध्यायों का एक संक्षिप्त संस्करण तैयार किया। इसके बाद पांचाल देशवासी

बाभ्रव्य ने श्वेतकेतु के संस्करण को संक्षिप्त कर डेढ़ सौ अध्यायों का एक नया संस्करण प्रस्तुत किया जिसमें सात अधिकरण बनाए गए।

आचार्य बाभ्रव्य से कामशास्त्र के संपादन की नई परंपरा का सूत्रपात होता है। प्रयोगों के आधार पर उन्होंने अधिकरणों और अध्यायों की कल्पना की है। ब्रह्मा से लेकर बाभ्रव्य तक की कामशास्त्र की रचना-परंपरा पर विहंगम दृष्टि डालने से ग्रन्थ-रचना-पद्धति की परंपरा और उसके इतिवृत्त का भी बोध हो जाता है। ब्रह्मा ने शास्त्र की रचना नहीं की, उन्होंने उसका प्रवचन किया था। इससे सिद्ध है कि कामशास्त्र का रचनाकाल प्रवचनकाल से प्रारंभ होता है।

कामसूत्र के छठे, सातवें सूत्र से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा के प्रवचनशास्त्र से पहले मनु ने मानवधर्म अलग किया, फिर बृहस्पति ने उसीसे अर्थशास्त्र को अलग किया, इसके बाद नन्दी ने कामशास्त्र को पृथक् किया।

पाठानुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि मूलप्रति से भिन्न सूत्रानुक्रम वर्तमान पुस्तकों में है। ऐसा अनुमान है कि सबसे पहले नन्दी ने ही ब्रह्मा के द्वारा प्रवचन किए गए शास्त्र से कामशास्त्र को अलग कर उसका प्रवचन किया। मनुस्मृति और अर्थशास्त्र इसके बाद संपादित हुए होंगे। क्योंकि मनु और बृहस्पति ने ग्रंथ का प्रवचन न कर पृथक्करण किया है। यह पृथक्करण-प्रणाली प्रवचनकाल से बहुत दिन बाद की है। इसके बाद श्वेतकेतु नन्दी के एक हजार अध्यायों का संक्षिप्तीकरण कर पाँच सौ अध्यायों का एक संस्करण तैयार करता है। स्पष्ट है कि ब्रह्मा के द्वारा प्रवचन किए गए शास्त्र में से नन्दी ने कामविषयक सूत्रों को एक सहस्र अध्यायों में विभक्त किया। उसने अपनी ओर से घटाया-बढ़ाया नहीं था, इसलिए कि वह प्रवचन-काल था। जो कुछ पढ़ा, सुना था उसे उसने ज्यों का त्यों शिष्यों और जिज्ञासुओं के सामने सुना कर उस पर अपना अभिमत व्यक्त किया। किन्तु श्वेतकेतु के समय में संक्षिप्तीकरण और संपादन-पद्धति का प्रचलन हो चुका था और बाभ्रव्य के समय में तो ग्रन्थ-प्रणयन और संपादन की एक प्रशस्त प्रणाली प्रचलित हो गई थी।

तस्य[1] षष्ठं वैशिकमधिकरणं पाटलिपुत्रिकाणां गणिकानां नियोगाद् दत्तकः पृथक् चकार ॥ ११ ॥

(पाटलिपुत्र की गणिकाओं द्वारा अनुरोध किये जाने पर आचार्य दत्तक ने बाभ्रव्य द्वारा संक्षिप्त किए गए कामशास्त्र के छठे भाग (वैशिक) नामक अधिकरण को पृथक् किया ॥ ११ ॥

१. पाठान्तर—तस्यैकदेशम्।

तस्येति—बाभ्रव्यसंक्षिप्तस्य। षष्ठमितीयमेवानुपूर्वी नान्येति प्रदर्शनार्थम्, अन्यथा पाठादेव संख्या लब्धा। तां चानुपूर्वी वर्णयिष्यामः। पाटलिपुत्रिकाणामिति—मगधेषु पाटलिपुत्रं नाम नगरं तत्र भवा इति। 'रोपधेतोः प्राचाम्' इति वुञ्।

नियोगादिति—अन्यतमो माथुरो ब्राह्मणः पाटलिपुत्रे वसतिं चकार। तस्योत्तरे वयसि पुत्रो जातः। तस्य जातमात्रस्य माता मृता पितापि तत्रान्यस्यै ब्राह्मण्यै तं पुत्रत्वेन दत्त्वा कालेन लोकान्तरं गतः। ब्राह्मण्यपि ममायं दत्तकः पुत्र इत्यनुगतार्थमेव नाम चक्रे, स च तया संवर्धितोऽचिरेण कालेन सर्वा विद्याः कलाश्चाधीतवान्। व्याख्यानशीलत्वाद्दत्तकाचार्य इति प्रतीतिमुपागतः। एकदा च तस्य चेतस्येवमभवत्, लोकयात्रा परा ज्ञेयास्ति, सा प्रायशो वेश्यासु स्थितेति। ततो वेश्याजनं परिचयपूर्वकं प्रत्यहमुपागम्य तथा तां विवेद यथा स एवोपदेशग्रहणायास्य प्रार्थनीयोऽभूत्। ततोऽसौ वीरसेनाप्रमुखेण गणिकाजनेनाभिहितः, अस्माकं पुरुषरञ्जनमुपदिश्यतामिति। तन्नियोगात्पृथक् चकारेत्याम्नायः।

अन्यस्तु श्रद्धामधिगम्य युक्तियुक्तमाह—'यत्र गर्भयात्रायां दत्तकनामा तत्पदावघूतेन प्रतिशयितेन त्र्यक्षेण शप्तः स्त्री बभूव' पुनश्च कालेन लब्धवरः पुरुषोऽभूत्। तेनोभयज्ञेन पृथक्कृतमिति।

यदि बाभ्रव्योक्तमेव पृथक्कृतं किमपूर्वं स्वसूत्रेषु दर्शितम्। येनोभयरसज्ञता कल्प्यते। यदि चायमर्थः शास्त्रकृतोऽप्यभिमतः स्यात्तदानीं 'नियोगादुभयरसज्ञो दत्तकः' इत्येवमभिदध्यात्॥ ११॥

तत्प्रसङ्गात् चारायणः साधारणमधिकरणं पृथक् प्रोवाच। सुवर्णनाभः साम्प्रयोगिकम्। घोटकमुखः कन्यासम्प्रयुक्तकम्। गोनर्दीयो भार्याधिकारिकम्। गोणिकापुत्रः पारदारिकम्। कुचुमार औपनिषदिकमिति॥ १२॥

इसी प्रसंग से आचार्य चारायण ने साधारण नाम के अधिकरण का पृथक् प्रवचन किया। आचार्य सुवर्णनाभ ने साम्प्रयोगिक नाम के अधिकरण को पृथक् किया। आचार्य घोटकमुख ने कन्यासम्प्रयुक्तक नाम के अधिकरण को पृथक् किया। गोनर्ददेश के निवासी आचार्य गोनर्दीय ने भार्याधिकारिक नाम के अधिकरण को पृथक् किया। गोणिकापुत्र ने पारदारिक नाम के अधिकरण को इस शास्त्र से पृथक् किया। तथा आचार्य कुचुमार ने औपनिषदिक नाम के अधिकरण को पृथक् किया॥ १२॥

तत्प्रसङ्गाच्चारायणः साधारणमधिकरणं पृथक्प्रोवाच। सुवर्णनाभः सांप्रयोगिकम्। घोटकमुखः कन्यासंप्रयुक्तकं। गोनर्दीयो भार्याधिकारिकम्। गोणिकापुत्रः

पारदारिकम् । कुचुमार औपनिषदिकमिति । दत्तकेन वैशिकं पृथक्कृतमित्येतत्प्रसङ्गाच्चारायणादयोऽपि पृथक्प्रकर्षेणोचुः । प्रकर्षश्च ग्रन्थेषु स्वमतप्रकाशनम् । तच्च स्थानस्थानेषु स्वशास्त्रे दर्शयिष्यति ॥ १२ ॥

एवमित्यादिना स्वशास्त्रस्य प्रयोजनमाह—

एवं बहुभिराचार्यैस्तच्छास्त्रं खण्डशः प्रणीतमुत्सन्नकल्पमभूत्[1] ॥ १३ ॥

इस प्रकार यह शास्त्र विभिन्न आचार्यों द्वारा विभिन्न खण्डों में पृथक्-पृथक् विभक्त हो कर बिखर-सा गया है ॥ १३ ॥

तच्छास्त्रं बाभ्रव्योक्तम् । खण्डश इति—खण्डं खण्डं कृत्वा । उत्सन्नकल्पमीषदुत्सन्नमिव, क्वचिद्दृश्यमानत्वात् । नन्द्यादिप्रणीतमुत्सन्नमेवेत्यर्थोक्तम् ॥ १३ ॥

तत्र दत्तकादिभिः प्रणीतानां शास्त्रावयवानामेकदेशत्वात् महदिति च बाभ्रवीयस्य दुरध्येयत्वात् संक्षिप्य सर्वमर्थमल्पेन ग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम्[2] ॥ १४ ॥

क्योंकि दत्तक आदि आचार्यों ने पृथक्-पृथक् अधिकरणों को लेकर अपने-अपने ग्रंथों का निर्माण किया था। इसलिए ये खण्ड समग्र-शास्त्र के अंशमात्र थे। तथा आचार्य बाभ्रव्य का मूलग्रन्थ विशाल होने से साधारण मनुष्यों के लिए दुरध्येय था। इसलिए वात्स्यायन ने बाभ्रव्य के उस महान् ग्रंथ को संक्षिप्त करके थोड़े ही में सम्पूर्ण विषयों से सम्पन्न इस कामसूत्र की रचना की है ॥१४॥

तत्रेति—शास्त्रप्रस्थाने । शास्त्रावयवानामिति—अवयवभूतानाम् । एकदेशार्थत्वान्न कामाङ्गीभूताशेषवस्तुपरिज्ञानम् । बाभ्रवीयस्येति—बाभ्रव्यप्रोक्तस्य संपूर्णशास्त्रस्याप्रयोजनमाह—तस्य संपूर्णस्यापि महदिति कृत्वा दुःखेनाध्ययनम् । तत्सप्तभिरधिकरणैः सप्त सहस्राणि (सप्त—शास्त्राणि) संक्षिप्य, सर्वमर्थमल्पेन ग्रन्थेनेति संपूर्णतां स्वध्येयतां च दर्शयति । इदमिति बुद्धिस्थमाह । प्रणीतमिति समाप्तमाशंसते ॥ १४ ॥

पाँचवें सूत्र से लेकर १२वें सूत्र तक कामशास्त्र की उत्पत्ति और परंपरा का वर्णन किया गया है। इस शास्त्र की परंपरा प्रजापति ब्रह्मा से प्रारंभ होती है। ब्रह्मा ने मानवजाति की उन्नति और उसकी परंपरा बनाए रखने के उद्देश्य से अर्थ, धर्म और काम इन तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए सौ सहस्र अध्यायों में उपदेश दिया था। उस प्रवचन में से धर्माधिकारिक अंशों को लेकर मनु ने मनुस्मृति की स्वतंत्र रचना की,

१. पाठान्तर—अभवत् ।

२. पाठान्तर—सर्वमल्पेन ग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतवानिति वात्स्यायनः ।

बृहस्पति ने अर्थपरक विषयों को लेकर अर्थशास्त्र की स्वतन्त्र रचना की। तथा महादेव के अनुचर नन्दी ने उसी प्रवचन में से काम-विषयक अंशों को लेकर एक सहस्त्र अध्यायों में कामसूत्र की स्वतन्त्र रचना की।

ब्रह्मा से लेकर नन्दी तक की परंपरा से यह स्पष्ट होता है कि कामशास्त्र ब्रह्मा की मानवी सृष्टि से भी पहले था। मनुष्यों की उत्पत्ति के बाद उनकी उन्नति और मानवी-परंपरा की रक्षा के लिए ब्रह्मा ने कामशास्त्र का भी उपदेश किया जो धर्म और अर्थ से सम्बद्ध रहा। कालान्तर में भगवान् शिव के अनुचर नन्दी ने उस विशाल प्रवचन के आधार पर सहस्त्र अध्यायों का एक स्वतन्त्र कामशास्त्र रचा। तात्पर्य यह कि कामशास्त्र का आदि प्रवर्तक नन्दी है।

भगवान् शिव का अनुचर नन्दी कौन था ? एक तो नन्दी वृषभ (बैल) प्रसिद्ध है जिस पर शिवजी सवारी करते हैं। वस्तुतः शिव जी गणदेवता हैं, उनके अनुचरों—गणों में नन्दी गणमुख्य था। वह शिव जी को सदैव प्रसन्न बनाए रखने की चेष्टा रखता था, इसलिए उसको नन्दी कहा जाने लगा। कामशास्त्र की भाँति नाट्यशास्त्र का भी आदि प्रवर्तक नन्दी ही माना जाता है।

कामशास्त्र विषयक जो प्रवचन नन्दी ने किया था वह एक सहस्त्र अध्यायों में संगृहीत किया गया। कालान्तर में उद्दालक-पुत्र श्वेतकेतु ने पाँच सौ अध्यायों में उसे संक्षिप्त किया। उसी विषय को संक्षिप्त करके पांचाल निवासी बाभ्रव्य ने साधारण, सांप्रयोगिक, कन्यासंप्रयुक्तक, भार्याधिकारिक, पारदारिक, वैशिक तथा औपनिषदिक नाम के सात अधिकरणों में विभक्त किया। उसने केवल एक सौ पचास अध्यायों में ही विषयों का अन्तर्भाव भलीभाँति किया।

बाभ्रव्य द्वारा कामशास्त्र का इस प्रकार संक्षिप्तीकरण और सम्पादन किए जाने के बाद उसके द्वारा निर्धारित अधिकरणों पर ही परवर्ती आचार्यों ने अलग-अलग स्वतन्त्र रचनाएँ कीं। जैसे—आचार्य दत्तक ने 'वैशिक' अधिकरण पर, चारायण ने साधारण अधिकरण पर, सुवर्णनाभ ने साम्प्रयोगिक अधिकरण पर, घोटकमुख ने कन्यासाम्प्रयुक्त अधिकरण पर, गोनर्दीय ने भार्याधिकारिक अधिकरण पर, गोणिकापुत्र ने पारदारिक अधिकरण पर और आचार्य कुचुमार ने औपनिषदिक अधिकरण पर, स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे हैं। किन्तु इन आचार्यों की रचनाएँ एकांगी होने से और बाभ्रव्य की रचना अतिविस्तृत होने से सर्वसाधारण को अध्ययन का समुचित लाभ होते न देखकर आचार्य वात्स्यायन ने सभी के मतों, दृष्टिकोणों को लेकर न असंम्बद्ध

विस्तृत और न अत्यन्त संक्षिप्त कामसूत्र की रचना की, जिसमें थोड़े ही में सभी प्रयोजनों का समावेश हुआ है—'सर्वमर्थमल्पेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम् ।'

उपर्युक्त प्रतिज्ञा-संकल्प स्वयं वात्स्यायन का ही लिखा हुआ है। उन्होंने ग्रन्थ का आरंभ करते हुए यह दावा किया है कि थोड़े ही में सभी प्रयोजनों का सम्यक् समावेश इस कामसूत्र में किया गया है।

यह ग्रन्थ-लेखन की एक आचार्य शैली है, जिससे अपरिचित आलोचकों को भ्रम हो जाता है कि इस प्रकार का अंश लेखक से भिन्न किसी दूसरे का लिखा हुआ है, क्योंकि लेखक स्वयं अपना नाम-निर्देश करते हुए ऐसा नहीं लिख सकता है किन्तु सूत्रकाल में ग्रन्थ लिखने की यह सामान्य पद्धति थी। चाणक्य (कौटल्य) ने भी इसी पद्धति को कौटलीय अर्थशास्त्र लिखते समय अपनाया था। प्रारंभ और अन्त के अतिरिक्त बीच-बीच में जहाँ उसका पूर्वाचार्यों से मतभेद हुआ वहाँ उसने 'नेति कौटल्यः' लिखा है और जहाँ अपना अभिमत व्यक्त करना था वहाँ 'इति कौटल्यः' लिखा है। वात्स्यायन कौटल्य का समकालीन या परवर्ती था, उसने कौटलीय अर्थशास्त्र की पद्धति पर कामसूत्र की रचना की है।

तस्येत्यादिना स्वशास्त्रस्यार्थावयवानाचष्टे—

तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः ॥ १५ ॥

वात्स्यायन मुनि प्रणीत उस कामसूत्र के प्रकरण, अधिकरण और समुद्देश की सूची यह है[1] ॥ १५ ॥

अयमिति वक्ष्यमाणो ग्रन्थः । प्रक्रियन्ते प्रस्तूयन्ते येष्वर्था इति प्रकरणानि । तेषामधिकरणानां च समुद्देशः संक्षेपेणाभिधानम् ॥ १५ ॥

शास्त्रसंग्रहः । त्रिवर्गप्रतिपत्तिः । विद्यासमुद्देशः । नागरकवृत्तम् । नायकसहायदूतीकर्मविमर्शः । इति साधारणं प्रथमाधिकरणम् अध्यायाः पञ्च । प्रकरणानि पञ्च ॥ १६ ॥

१ शास्त्रसंग्रह २ त्रिवर्गप्रतिपत्ति ३ विद्यासमुद्देश ४ नागरकवृत्त ५ नायकसहायदूतीकर्मविमर्श—इन पाँच प्रकरणों से युक्त साधारण नाम का पहला अधिकरण है। इस अधिकरण में पाँच अध्याय और पाँच ही प्रकरण हैं ॥ १६ ॥

---

१. अधिकारपूर्वक विषयारंभ जहाँ होता है उसे प्रकरण कहते हैं, जिसमें प्रकरण होते हैं उसे अधिकरण कहते हैं और संक्षिप्त कथन को समुद्देश कहते हैं।

शास्त्रस्य संग्रहः, त्रिवर्गप्रतिपत्तिः इत्यादय उक्तार्थाः। तत्साहचर्य्याद्ग्रन्थ-भागा अपि तत्समाख्याः, यथा कंसवधकाव्यमिति ॥ १६ ॥

कामसूत्र ग्रन्थ का अनुबन्धन अधिकरण, अध्याय और प्रकरण में किया गया है। प्रथम अधिकरण का नाम साधारण इसलिए रखा गया है कि इस अधिकरण में ग्रन्थान्तर्गत सामान्य विषयों का परिचय है, किसी सिद्धान्त की व्याख्या या तात्विक विवेचन नहीं किया गया है। इस अधिकरण में अध्याय और प्रकरण पाँच-पाँच हैं। दोनों के नामकरण भी समान ही है। जैसे—

प्रथम अध्याय, प्रथम प्रकरण—शास्त्र-संग्रह। शास्त्र-संग्रह का तात्पर्य यहाँ पर इस ग्रन्थ की सूची से है। ग्रन्थकार ग्रन्थ लिखने से पूर्व एक विषय-सूची (सिनाप्सिस) तैयार करता है। फिर उसी के आधार पर वह ग्रन्थ का निर्माण करता है। वात्स्यायन ने अपने ग्रन्थ की विषय-सूची का नाम शास्त्र-संग्रह रखा है। अर्थात् वह संग्रह जिससे यह ग्रन्थ शासित हुआ है।

द्वितीय अध्याय, द्वितीय प्रकरण—त्रिवर्गप्रतिपत्ति। धर्म, अर्थ और काम—ये तीन त्रिवर्ग कहलाते हैं। त्रिवर्ग की प्राप्ति का नाम त्रिवर्गप्रतिपत्ति है। इस अध्याय और प्रकरण में यह बतलाया गया है कि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति कैसे की जा सकती है।

तृतीय अध्याय, तृतीय प्रकरण—विद्यासमुद्देश। समस्त विद्याओं की नाम-सूची को यहाँ पर विद्यासमुद्देश कहा गया है। इस अध्याय का मुख्य प्रयोजन है कि मनुष्य को श्रुति, स्मृति, अर्थ विद्या तथा उसकी अंगभूत विद्या दण्डनीति के अध्ययन के साथ कामशास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। यहाँ पर विद्याओं की नाम-सूची से तात्पर्य ६४ कलाओं से ही है।

चतुर्थ अध्याय, चतुर्थ प्रकरण—नागरकवृत्त — नागरक से कामसूत्रकार का तात्पर्य विदग्ध या रसिक व्यक्ति से है और वृत्त का तात्पर्य आचरण नहीं बल्कि दिनचर्या समझना चाहिए।

कामसूत्रकार का सुझाव है कि मनुष्य को पहले विद्या पढ़नी चाहिए, फिर अर्थोपार्जन करना चाहिए, इसके बाद विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश कर नागरक वृत्त का आचरण करना चाहिए। जब तक व्यक्ति काम-कलाओं की शिक्षा प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक उसे विवाह करने का अधिकार नहीं है। गार्हस्थ्य जीवन, दाम्पत्य जीवन को सुचारु बनाने के लिए अर्थसंग्रह अवश्य करना चाहिए। सुशिक्षित, धन-सम्पन्न व्यक्ति ही विवाहित जीवन को सुचारु बनाने में क्षम्य हुआ करता है।

पंचम अध्याय, पंचम प्रकरण—नायक सहाय दूती-कर्म-विमर्श। वात्स्यायन का मत है कि विवाह से पूर्व अपने वर्ण, धर्म के अन्तर्गत नायक नायिका का और नायिका नायक का चुनाव कर परस्पर प्रेम-संबंध स्थापित करें। कदाचित् इस प्रकार के प्रेम-संबंध स्थापित करने में किसी प्रकार की अड़चन हो तो सहायता के लिए किसी स्त्री या पुरुष को माध्यम बना लेना चाहिए। प्रेमी-प्रेमिकाएँ किस प्रकार संबंध स्थापित करें, किस प्रकार के व्यक्ति को अपना माध्यम बनाएँ, इत्यादि इन्हीं विषयों का विशद विवेचन इस अध्याय और प्रकरण में है।

प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनम्। प्रीतिविशेषाः। आलिंगनविचाराः। चुम्बनविकल्पाः। नखरदनजातयः। दशनच्छेद्यविधयः। देश्याउपचाराः। संवेशनप्रकाराः। चित्ररतानि। प्रहणयोगाः। तद्युक्ताश्च। सीत्कृतोपक्रमाः। पुरुषायितम्। पुरुषोपसृप्तानि। औपरिष्टकम्। रतारम्भावसानिकम्। रतविशेषाः। प्रणयकलहः। इति साम्प्रयोगिकं द्वितीयमधिकरणम्। अध्याया दश। प्रकरणानि सप्तदश ॥ १७ ॥

—अब दूसरे अधिकरण के अन्तर्गत अध्यायों और प्रकरणों का निर्देश करते हैं—

१. प्रमाण, काल और भावों के अनुसार रति की व्यवस्था करना, २. प्रीतिभेद ३. आलिंगन-विधि ४. चुम्बन-प्रकार ५. नखच्छेदन-प्रकार ६. दन्तच्छेदन-प्रकार ७. विभिन्न प्रदेशों के निवासियों की विभिन्न प्रवृत्तियाँ ८. सम्भोग की विधियाँ ९. विचित्र प्रकार के विशिष्ट रत १०. मुट्ठीमारना ११. विभिन्न आघातों से उत्पन्न सी-सी करना १२. थकने पर पुरुष का स्त्री के समान आचरण करना १३. पुरुष का निकट खसकना १४. औपरिष्टक अर्थात् मुखमैथुन १५. सम्भोग के आरम्भ में और अन्त में कर्त्तव्य १६. रत-राग के प्रकार और १७. प्रणयकलह इस अधिकरण में ये १७ प्रकरण हैं और दस अध्याय हैं ॥ १७ ॥

इस द्वितीय अधिकरण का नाम साम्प्रयोगिक है। सम्प्रयोग का अर्थ सम्भोग होता है। कामशास्त्र का ग्रंथ होने से इस ग्रंथ में यह विशेष रूप से बतलाया गया है कि पुरुष अर्थ, धर्म और काम इन तीनों वर्गों की प्राप्ति के लिए 'स्त्रियंसाधयत'—स्त्री को प्राप्त करे। सूत्रकार वात्स्यायन स्त्री को प्राप्त करने का प्रधान लक्ष्य सम्भोग ही समझता है। किन्तु जब तक सम्भोग-क्रिया का सम्यक् ज्ञान न हो तब तक सफलता नहीं मिलती और न आनन्द का उपभोग ही किया जा सकता है।

इस अधिकरण के सभी प्रकरण और सम्पूर्ण कामसूत्र स्त्री-पुरुष के संभोग–मैथुन की ही व्याख्या भिन्न-भिन्न रूप से करता है। वस्तुतः यदि विचार किया जाए तो समस्त मानव-जीवन काम-वासना से ओत-प्रोत रहता है। इसीलिए वेदों, उपनिषदों में भी स्त्री-पुरुष के मिथुन-संबंधों के उदाहरण यत्र-तत्र दिए गए हैं। ऋग्वेद में संभोग के जिन दस उपांगों का उल्लेख किया गया है वे कामसूत्र की उपर्युक्त संभोग-क्रियाओं के अन्तर्गत हैं। यह कोई अनुचित विषय या शास्त्र नहीं है। आध्यात्मिक दृष्टि से भी जगद्वैचित्र्य मैथुनात्मक एवं कामात्मक है। काम का प्रमुख भाग आकर्षण है अथवा आकर्षण का प्रमुख अंग काम है। यही आकर्षण जब बड़ों के प्रति होता है तब वह श्रद्धा, भक्ति आदि पुनीत भावों में दिखाई पड़ता है, वही आकर्षण बराबरवालों के प्रति मित्रता, प्रेम और सखाभाव के रूप में परिणत होता है, वही अपने से छोटों के प्रति दया, अनुकम्पा के रूप में प्रकट होता है और बच्चों के प्रति वात्सल्य भाव बनता है। वही काम माता के स्तनों में वात्सल्य के रूप में, प्रेमी का आलिंगन करते समय कामरूप में और वही काम दीनों दुखियों के प्रति करुणा, कृपा के रूप में अवतरित होता है।

किन्तु इन सभी रूपों में एक ही मानसिक भाव प्रभावित रहता है, वह है मिथुन का संबंध—आकर्षण अथवा काम। इसीलिए बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है—

'काममय एवायं पुरुषः।' पुरुष काममय है। काम मन का रेतस् है।

वरणविधानम्। सम्बन्धनिर्णयः। कन्याविस्रम्भणम्। बालायाः उपक्रमाः। इङ्गिताकारसूचनम्। एकपुरुषाभियोगः। प्रयोज्यस्योपावर्तनम्। अभियोगतश्च कन्यायाः प्रतिपत्तिः विवाहयोगः। इति कन्यासम्प्रयुक्तकं तृतीयाधिकरणम्। अध्यायाः पञ्च। प्रकरणानि नव॥ १८॥

अब कन्या सम्प्रयुक्त नाम के तीसरे अधिकरण के प्रकरणों का निर्देश किया जाता है—

१. कन्यावरण २. (विवाह) सम्बन्ध का निश्चय करना ३. (कन्या) को विश्वास दिलाना ४. कन्या में प्रेम उत्पन्न करने का ढंग ५. इशारों आदि का समझना ६. चेष्टाओं, इशारों, बहानों से देखी हुई कन्या से विवाह करने का प्रयत्न ७. कन्या द्वारा अपने चहेते को अपनी ओर आकृष्ट करना ८. अपने प्रेमी को अभियोगों द्वारा प्राप्त करना और ९. विवाह संबंध—नौ प्रकरणों से युक्त इस तीसरे अधिकरण में पाँच अध्याय और प्रकरण ९ हैं॥ १८॥

इस अधिकरण के नौ प्रकरण सुखी दाम्पत्यजीवन की कुंजी हैं। काम-सूत्रकार वात्स्यायन विवाह को धार्मिक बन्धन मानते हुए हृदयों का मिलन स्वीकार करता है। वह लड़कियों को न तो भेड़-बकरी समझ कर मनचाहे खूँटे पर बाँधने का समर्थक है और न उन्हें उच्छृङ्खल और व्यभिचारिणी बनने की स्वतन्त्रता देता है। इसीलिए उसका विधान है कि लड़कियाँ और लड़के यौवनावस्था प्राप्त करने पर ६४ कलाओं का अध्ययन करें और अपना जीवन-साथी ढूँढ़ने में अपने हृदय और अपनी बुद्धि का अधिकाधिक उपयोग करें।

उपर्युक्त नौ प्रकरणों में जितने विषय हैं सभी सामाजिक, धार्मिक मर्यादाओं के अन्तर्गत और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के उन्नायक हैं। वात्स्यायन ने बहुत गहराई से विचार करके इन नौ प्रकरणों का विधान बनाया है। हम इस सत्य से इनकार नहीं कर सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर दो ऐसे तत्त्व रहते हैं जो एक दूसरे से विशिष्ट हैं। उनमें एक तर्क पूर्ण वृत्ति है और दूसरा विचार-शून्य वृत्ति। यही वृत्ति अपने को काम—सम्भोग, भूख, प्यास और अनेक इच्छाओं के रूप में प्रकट करती है। दर्शनशास्त्र की मान्यता है कि 'इच्छैव एता भूतजातयः।' समस्त प्राणिसमूह इच्छा मात्र है। इच्छाओं के कारण ही मनुष्य का चित्त अशान्त भटकता रहता है। इच्छाओं की तृप्ति के लिए मनुष्य हर कोशिश करता है। इच्छाएँ सदैव तृप्ति चाहती हैं। परिस्थिति प्रतिकूल होने पर इच्छाएँ जब पूरी नहीं होतीं तो वे चित्त में समाहित होकर विक्षोभ उत्पन्न करती हैं। यह भी सत्य है कि किसी व्यक्ति को उसकी मनचाही वस्तु देश, काल, समाज या परिस्थिति के बन्धन से या राजदण्ड के भय से न मिलकर किसी दूसरे को मिल जाती है तो उसकी इच्छा क्रियारूप में परिणत हो जाती है। कदाचित् वह इच्छा क्रियारूप में न परिणत हुई तो एक वेग के रूप में मन में समा जाती है और परिणाम यह होता है कि उस व्यक्ति के मन और मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ जाता है। हत्याएँ, आत्महत्याएँ और पागलपन की जो घटनाएँ समाज में घटित होती हैं उनके मूल में अधिकांश इच्छाएँ ही रहती हैं। इसलिए वात्स्यायन ने मनोवैज्ञानिक आधार पर कन्यासंवरण के प्रकरणों का विभाजन किया है।

एकचारिणीवृत्तम्। प्रवासचर्या। सपत्नीषु ज्येष्ठावृत्तम्। कनिष्ठावृत्तम्। पुनर्भूवृत्तम्। दुर्भगावृत्तम्। आन्तःपुरिकम्। पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिः। इति भार्याधिकारिकं चतुर्थमधिकरणम्। अध्यायौ द्वौ प्रकरणान्यष्टौ ॥ १९ ॥

अब चौथे अधिकरण के अध्यायों और प्रकरणों का निर्देश करते हैं—इस अधिकरण का नाम 'भार्याधिकारिक' है। इसमें ८ प्रकरण और दो अध्याय हैं॥ १९॥

१. केवल अपने पति पर ही अनुराग रखने वाली पत्नी का कर्तव्य। २. पति के परदेश जाने पर पत्नी का कर्त्तव्य ३. ज्येष्ठ पत्नी का अपनी सौतों के साथ व्यवहार ४. सबसे छोटी पत्नी का अपने से बड़ी सौतों के साथ बरताव ५. दूसरी बार विवाहित विधवा का कर्त्तव्य ६. अभागिनी पत्नी का अपनी सौतों तथा अपने पति को प्रसन्न रखने का विधान ७. अन्तःपुर के प्रति कर्त्तव्य और ८. पति का अपनी बहुत-सी पत्नियों के प्रति कर्त्तव्य॥ १९॥

विवाह हो जाने के बाद कन्या 'भार्या' कहलाती है। एकचारिणी और सपत्नी (सौत) दो प्रकार की भार्या होती है। इन दोनों प्रकार की भार्याओं के कर्त्तव्य इस अधिकरण में बताए गए हैं। वात्स्यायन गार्हस्थ्यजीवन को सुखी और सम्पन्न बनाने का विधान समझता है। उसे यह भी ज्ञात है कि वह कौन-सी चिनगारी है जो सारे घर को जलाकर भस्म कर देती है। वह घर को हरा-भरा बनाए रखने की मंगल-कामना रखता हुआ गृहस्थों को आजीवन सुखी बने रहने के लिए इस अधिकरण द्वारा सुझाव प्रस्तुत करता है। धर्मशास्त्र का यह कथन कि 'न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते'—घर को घर नहीं कहते बल्कि घरवाली ही घर है—हृदयंगम करके भार्या के कर्त्तव्यों का विधान प्रस्तुत करता है। स्त्री-मनोविज्ञान का सूक्ष्म पारखी होने के कारण वह एक मध्यम मार्ग अपनाता है जैसा कि प्रकरणों के नामकरण से ज्ञात है।

स्त्री-पुरुषशीलावस्थापनम्। व्यावर्त्तनकारणानि। स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषाः। अयत्नसाध्या योषितः। परिचयकारणानि। अभियोगाः। भावपरीक्षा। दूतीकर्माणि। ईश्वरकामितम्। अन्तःपुरिकं दाररक्षितकम्। इति पारदारिकं पञ्चममधिकरणम्। अध्यायाः षट् प्रकरणानि दश॥ २०॥

अब पारदारिक नाम के पाँचवें अधिकरण के प्रकरणों का निर्देश करते हैं। इसमें छह अध्याय और दस प्रकरण हैं—

१. स्त्री और पुरुष के शील की व्यवस्थापना २. परपुरुष के साथ संबंध करने में रुकावट डालने वाले कारण ३. स्त्रियों को वशीभूत करने में सिद्ध पुरुष ४. अनायास वशीभूत होनेवाली स्त्रियाँ ५. परिचय प्राप्त करने के उपाय ६. अभियोग ७. भावों की परीक्षा ८. दूतीकर्म ९. ऐश्वर्यशाली पुरुषों की इच्छा पूरी

करने के उपाय और १०. व्यभिचारी पुरुषों से स्त्रियों की रक्षा। यह दस प्रकरण-युक्त पारदारिक नाम का पाँचवाँ अधिकरण है। इसमें छह अध्याय और दस प्रकरण हैं ॥ २० ॥

इस अधिकरण का मुख्य प्रयोजन परस्त्री और परपुरुष का परस्पर प्रेम-संबंध किन स्थितियों में उत्पन्न होता है, बढ़ता है और विच्छेद होता है। किस प्रकार परदार-इच्छा पूरी की जा सकती है और कैसे व्यभिचारी से स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा हो सकती है।

स्त्री और पुरुष के बीच एक ही शक्ति अनेक रूपों में क़ायम रहती है और वह है—प्रेम। प्रेम का यदि कोई कहीं पर बीज है तो वह केवल मिथुन-भावना ही है। प्रेम का मुख्य ध्येय दार्शनिक भाषा में 'सम्प्रयोग' (संभोग) माना गया है। प्रेम से संबंध रखनेवाले जितने व्यवहार हैं वे सब 'मैथुन-प्रेम' में अन्तर्हित रहते हैं। वे इससे भिन्न नहीं किए जा सकते। जैसे आत्म-प्रेम, पितृ-मातृ-प्रेम, शिशु-वात्सल्य, मैत्री, विश्वप्रेम, विषम-वासनाओं से प्रेम और भावनाओं के प्रति श्रद्धाभाव आदि। चित्त-विश्लेषण शास्त्र इन सभी प्रवृत्तियों को दारैषणा—मैथुन-वासना की अभिव्यक्तियाँ मानता है। यही वासना स्त्रीजाति और पुरुषजाति के संबंध में सम्प्रयोग—संभोग की ओर प्रवृत्त होती है तथा अन्य परिस्थितियों में उसी उद्देश्य से दूसरी ओर मोड़ी भी जा सकती है साथ ही साथ संभोग में परिणत होने से रोकी भी जा सकती है। बावजूद इसके यह वासना अपना प्राकृतिक स्वभाव समग्रतः या अंशतः सुरक्षित रखती है और उसकी जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है।

विश्व-मानव की समस्त वासनाएँ मुख्यतया वित्तैषणा, दारैषणा और लोकैषणा इन तीन भागों में विभक्त हैं। यदि सूक्ष्म वर्गीकरण किया जाए तो समस्त वासनाएँ केवल दारैषणा में ही अन्तर्भूत हो जाती है। क्योंकि स्त्री की कामना का ही सार आकर्षण है। और आकर्षण स्त्री-पुरुष के मिलन-संयोग में परिणत हो जाया करता है। धन, स्त्री या यश की कामना केवल आनन्द के लिए की जाती है। आनन्द ही सभी वासनाओं का मूल कारण है। यही मूल प्रेरक शक्ति है। इसका स्थूल अनुभव मैथुन से प्राप्त किया जा सकता है। सांसारिक जीवन में मैथुन पराकाष्ठा का आनन्द है। इसलिए सभी आनन्दों को मैथुन-आनन्द का रूपान्तर समझने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।[1]

स्त्री-पुरुषों की मूलभूत प्रवृत्तियों के पारखी वात्स्यायन ने इस अधिकरण

१. फ्रायड।

के प्रकरणों को लिखते समय सभी वासनाओं के प्राण आनन्द को ही समक्ष रखा है ॥ २१ ॥

गम्यचिन्ता । गमनकारणानि । उपावर्तनविधिः । कान्तानुवर्तनम् । अर्थागमोपायाः । विरक्तलिङ्गानि । विरक्तप्रतिपत्तिः । निष्कासनप्रकाराः । विशीर्णप्रतिसंधानम् । लाभविशेषः । अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारः । वेश्याविशेषाश्च इति वैशिकं षष्ठमधिकरणम् । अध्यायाः षट् । प्रकरणानि द्वादश ॥२१ ॥

अब वैशिक नाम के छठे अधिकरण के प्रकरणों का निर्देश करते हैं। इस अधिकरण में छह अध्याय और बारह प्रकरण हैं—

१. गम्य पुरुष-विचार २. किसी एक व्यक्ति के साथ संभोग करने के कारण ३. अपनी ओर आकृष्ट करने की विधि ४. अपने प्रेमी के साथ विवाहिता पत्नी की भाँति वेश्या का आचरण ५. अर्थोपार्जन के उपाय ६. विरक्त पुरुष के चिह्न ७. विरक्त पुरुष की पुनः प्राप्ति ८. निकालने के उपाय ९. निकाले हुए के साथ पुनः सन्धि करना १०. लाभविशेष का विचार ११. अर्थ (धर्म) तथा अनर्थ (अधर्म) के अनुबन्ध, संयम संबंधी विचार और १२. वेश्याओं के भेद—इन बारह प्रकरणों से युक्त वैशिक नाम का यह छठा अधिकरण है॥२१॥

इस अधिकरण में वेश्याओं के चरित्र तथा उनके समागम-उपायों आदि का वर्णन किया गया है। वात्स्यायन ने वेश्यागमन को एक प्रकार का दुर्व्यसन माना है और उसका कथन है कि वेश्यागमन से शरीर तथा अर्थ दोनों का सर्वनाश होता है, किन्तु वेश्या समाज का एक अंग है, उसका उपभोग समाज करता ही है, इसलिए सामान्य मनुष्यों और वेश्याओं के हित को ध्यान में रखते हुए ग्रंथकार ने इस अधिकरण में वेश्याओं के चरित्र का विशद विवेचन किया है।

यह तो अनुभवजन्य बात है कि 'काम' एक शक्ति है और वह अति चंचल है। जब-जब इस शक्ति का उन्नयन होता है तब-तब भावों एवं संवेगों की उत्पत्ति होती है। हर वासना के साथ भावात्मक अनुभूति रहती है। हमारी जो इच्छाएँ ग्रंथि का रूप धारण कर लेती है वही वासना कहलाने लगती है। वासनाओं के वेग को संवेग कहा जाता है। मनुष्य के हृदय में अनुकूल या प्रतिकूल वेदना की उत्पत्ति ही भाव कहलाती है, यही भाव बढ़ते-बढ़ते संवेग का रूप धारण कर लेता है, विषयों की सत्ता से या स्मृति से अथवा कल्पित विषयों से भी भय, प्रेम आदि के संवेग जाग्रत हुआ करते हैं। यह निःसन्देह अनुभवसिद्ध है कि विषयों के सन्निकर्ष से कोई न कोई

भाव या संवेग उत्पन्न अवश्य होता है। गीता ने भी इसका समर्थन—संगात् संजायते कामः—संग से काम होता है—कह कर किया है। काम के साथ उसका संवेग होता है। जितने भी वासनाव्यूह हैं सभी के साथ संवेग सम्बद्ध रहता है। हमारी चित्तवृत्ति के ज्ञानमय, भावमय और क्रियामय ये ही तीन रूप हैं। भाव या संवेग का जागरण ज्ञान के कारण होता है। मनश्चक्र में सोयी हुई अतुल काम-शक्ति प्रेरक स्फुलिंगों को पाकर ही जाग्रत हुआ करती है। बाह्य अथवा आभ्यन्तर उद्दीपकों से उत्पन्न संवेदनाएँ तथा ज्ञानात्मक मनोभाव ही कामशक्ति के प्रेरक स्फुलिंग होते हैं। इनकी प्रेरणा पाकर संवेग के साथ कामशक्ति बहिर्मुख हुआ करती है।

मानव-मन विचारों के उच्च शिखर पर रहते हुए भी नवीन संवेदनाओं की खोज में नीचे उतर आया करता है। हर व्यक्ति को भाव परिवर्तन की इच्छा हुआ करती है। मनुष्य स्वभाव से ही परिवर्तन, नवीनता, सुंदरता प्रिय है। योगवासिष्ठ का कथन है—

न प्राप्तिक्षणे वस्तु प्रथमे तुष्टये तथा।
न प्राप्त्येकक्षणादूर्ध्वमिति को नानुभूतवान्।[1]

—जैसे पहले क्षण किसी वस्तु की प्राप्ति से तृप्ति होती है। वैसे तृप्ति प्राप्त होने के दूसरे क्षण में नहीं मिलती—ऐसा किसने अनुभव नहीं किया है।

यदि सोचा जाए तो नवीनता का दूसरा नाम ही अभिरुचि है। जहाँ नवीनता है वहीं रमणीयता रहती है—

क्षणे क्षणे यन्नवतां विधत्ते तदेव रूपं रमणीयतायाः।[2]

—रमणीयता का वही रूप है जो क्षण-क्षण में नवीनता को प्राप्त होता है। संवेग के कारण हमारी क्रियाएँ प्रतीक्षण परिवर्तित हुआ करती हैं। पहले उत्सुकता जागती है इसके बाद तृष्णा का जागरण होता है। जिस समय मनुष्य के मन में संवेग का पूर्ण उदय होता है उस समय उसे एक दिन एक वर्ष के समान जान पड़ने लगता है—

कान्ताविरहिणं पुरुषं वासरं वत्सरायते।

जब संवेग के अवरोधक पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होने देते तब चित्त व्याकुल हो जाता है, चिन्ताओं का जाल बिछ जाता है, हृदय में हलचल मच जाती है। सामाजिक नियमों के अनुसार काम का निरोध-अवरोध जबर्दस्ती करना पड़ता है। जब कि युग-युग से समाज यह अनुभव करता आ रहा है कि काम-वासना का नियंत्रण पूरी तरह से नहीं किया जा सकता। समाज का

---

१. निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध ४४२ ! २. कालिदास।

नियंत्रण सिर्फ यहीं तक सीमित रहता है कि वासना शारीरिक क्रिया में परिणत न होने पाए—मानसिक द्वन्द्व भले ही प्रबल होता रहे।

भारतीय दर्शन शास्त्र का सिद्धान्त है कि यदि सहजवासनाओं को प्रकट होने नहीं दिया जाए तो वे निरुद्ध हो जाती हैं अवश्य किन्तु उनका उन्मूलन नहीं होता—

विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्ज्यं……(गीता)

अर्थात् निराहार रहनेवाले व्यक्ति के विषय तो निकल जाते हैं किन्तु रस रह जाता है। यदि कभी अनुकूल परिस्थिति पाकर विषय सामने आ जाए तो रस पुनः उठ खड़ा हो सकता है। सारांश यही निकलता है कि निरोध से कामशक्ति और संवेग का नाश नहीं हो सकता है।

निरोध से हम जिन वासनाओं को दबाना चाहते हैं, वे दबती नहीं बल्कि सुलगने लगती हैं, किसी न किसी रूप में अपना प्रभाव डालती रहती हैं। स्वाभाविक बात है कि जिस बात की मनाही होती है उसी को करने के लिए उत्सुकता और आतुरता बढ़ती है। शास्त्र और समाज की दृष्टि से परकीया-स्त्री का संसर्ग अधर्म है, उसके साथ संभोग निषिद्ध है, इस प्रकार के मनाही का परिणाम यह होता है कि परकीया का रस रसोत्तम माना जाता है। इन्हीं आधारभूत सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखकर वात्स्यायन ने वैशिक अधिकरण की रचना समाजकल्याण के लिए की है।

सुभगंकरणम्। वशीकरणम्। वृष्याश्च योगाः। नष्टराग-प्रत्यानयनम्। वृद्धिविधयः। चित्राश्च योगाः। इत्यौपनिषदिकं सप्तममधिकरणम्। अध्यायौ द्वौ। प्रकरणानि षट्॥ २२॥

१. रूप, गुण आदि का उत्पादन २. मंत्र, यंत्र, तंत्र द्वारा वश में करना ३. वाजीकरण प्रयोग ४. नष्ट राग को पुनः पैदा करना ५. गुप्त इन्द्रिय की वृद्धि के प्रयोग तथा ६. चित्र-विचित्र प्रयोग—इन छह प्रकरणों से युक्त औपनिषदिक नाम का यह सातवाँ अधिकरण है, जिसमें दो अध्याय हैं॥ २२॥

एवं षट्त्रिंशदध्यायाः। चतुःषष्टिः प्रकरणानि। अधि-करणानि सप्त। सपादं श्लोकसहस्रम्। इति शास्त्रस्य संग्रहः॥२३॥

इस प्रकार इस शास्त्र में ३६ अध्याय, ६४ प्रकरण, ७ अधिकरण और १२५० श्लोक हैं। इतना ही इस शास्त्र का संक्षेप है॥ २३॥

षट्त्रिंशदित्यादिना स्वशास्त्रस्यावयवसमुदायाभ्यां संख्यानमाह। तत्राध्याय-संख्यानं पूर्वशास्त्रेभ्य इदं स्तोकमिति दर्शनार्थम्। प्रकरणाधिकरणसंख्यानमन्य-निरपेक्षार्थम्। श्लोकसंख्यानमहीनाधिकत्वज्ञापनार्थम्॥

शास्त्रं चेदं तन्त्रमावापश्चेति द्विधा स्थितम् । तत्र तन्त्र्यते जन्यते रतिर्येन तत्तन्त्रमालिङ्गनादि, तदुपदिश्यते येन तदपि तन्त्रं सांप्रयोगिकमधिकरणम् । समन्तादावाप्यन्ते स्त्रियः पुरुषाश्च येन स आवापः । समागमोपाय इत्यर्थः । स येनोपदिश्यते तदप्यावापः कन्यासंप्रयुक्तकाद्यधिकरणचतुष्टयम् । तत्र तन्त्रावापानुष्ठानं न साधारणानुष्ठानं विनेति प्राक्साधारणमुच्यते । औपनिषदिकं तु तन्त्रावापाभ्यामसिद्धे व्याप्रियत इत्यन्ते वक्ष्यति । तदुभयमपि तन्त्रावापान्तर्गतमेव, तदङ्गत्वात् । तत्र साधारणे शास्त्रसंग्रहप्रकरणमादावुक्तम् , तत्र शास्त्रस्य संगृह्यमाणत्वात् ॥ २३ ॥

उत्तरग्रन्थसंधानमाह—

संक्षेपमिममुक्त्वास्य विस्तरोऽतः प्रवक्ष्यते ।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासभाषणम् ॥ २४ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे
शास्त्रसंग्रहः प्रथमोऽध्यायः ।

इस प्रकार अधिकरण, अध्याय, प्रकरण आदि की सूची संक्षेप में बतला कर अब उसी का विस्तार किया जा रहा है क्योंकि लोक में विद्वानों के लिए संक्षेप और विस्तार दोनों की आवश्यकता होती है ॥ २४ ॥

संक्षेपमिति—अस्येति शास्त्रस्य । विस्तरोऽतः प्रवक्ष्यते संक्षेपादूर्ध्वम् । किमर्थमेवं शास्त्रविन्यास इत्यत आह—इष्टं हीति । लोके ये शास्त्रेऽधिकृतास्ते विद्वांसः । तेषां संक्षेपविस्तराभ्यां शास्त्रस्य मनसि धारणमिष्टम्, प्रज्ञातप्रकरणार्थत्वादसंमोहो यथाभिलषितप्रकरणार्थप्रत्यवमर्शः स्यात् ॥ २४ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां साधरणे प्रथमेऽधिकरणे शास्त्रसंग्रहः प्रथमोऽध्यायः ।

आचार्य वात्स्यायन ने इस सातवें अधिकरण का नाम 'औपनिषदिक' रखा है। औपनिषदिक का स्थूल अर्थ 'टोटका' होता है । इस अधिकरण में काम वासना की पूर्ति के साधन एवं भौतिक जीवन की सफलता के उपायों को विस्तार से बताया गया है । तंत्र, औषधि आदि के रूप में जो टोटके लिखे गए हैं, उनमें स्वेच्छाचारित, उच्छृङ्खलता और असामाजिकता अशिष्टता, निर्दयता की भावना न उत्पन्न हो—यह विवेक रखा गया है ।

यंत्र, मंत्र, तंत्र, टोटके हमारी संस्कृति और साहित्य के प्रमुख अंग हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद से लेकर आजतक के साहित्य ने तथा वैदिककाल से लेकर आजतक के भारतीय जीवन ने इन्हें अपने जीवन-कार्यों में अपनाया है इसलिए वात्स्यायन के लिए इस अंगविशेष पर विचार करना नितान्त आवश्यक था। शास्त्र के अन्त में इन प्रयोगों को देकर वात्स्यायन जनभावना, जनरुचि और जनकल्याण का समादरण एवं संपादन किया है।

इन्हें पढ़कर सामान्य व्यक्ति विचलित न हों या विभ्रम में न पड़ जाएँ इसलिए अहिंसा, ब्रह्मचर्य और परपीड़न तथा जनकल्याण का उद्देश्य जगह-जगह व्यक्त किया गया है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमाधिकरणे
शास्त्रसंग्रहः प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ त्रिवर्गप्रतिपत्तिनामको द्वितीयोऽध्यायः

शतायुर्वै पुरुषो विभज्य कालमन्योन्यानुबद्धं परस्परस्यानुपघातकं त्रिवर्गं सेवेत ॥ १ ॥

शतंजीवी मनुष्य अपने जीवन काल को आश्रमों में विभक्त कर धर्म, अर्थ, काम इन तीनों का उपभोग इस प्रकार करे कि ये तीनों एक दूसरे से सम्बद्ध भी रहें और परस्पर विघ्नकारी भी न हों ॥ १ ॥

त्रिवर्गप्रतिपत्तिफलं शास्त्रम्। तस्मिन्प्रतिपत्तौ विप्रतिपत्तौ वा तदुपायपर्येषणमपि युक्तम्। तस्माच्छास्त्रसंग्रहादनन्तरं त्रिवर्गप्रतिपत्तिरुच्यत इति प्रकरणसंबन्धः।

प्रतिपत्तिस्त्रिविधा, अनुष्ठानमवबोधः संप्रतिपत्तिश्चेति। तत्र प्राधान्यादनुष्ठानमधिकृत्याह—

शतायुरिति—शतमायुरस्येति शतायुः। शतशब्दः सामान्यवाच्यपि वर्षगतसंख्यानमाह-वृत्तौ तथार्थस्य विवक्षितत्वात्। कालविभागार्थं चेत्तदपि विच्छिन्नायुषो विभागासंभवात्।

पुरुष इति—प्राधान्यख्यापनार्थम्। स्त्रीणां तु पुरुषाधीना त्रिवर्गसेवेत्यस्वातन्त्र्यम्।

विभज्य—वक्ष्यमाणेन न्यायेन।

अन्योन्यानुबद्धमिति—धर्मादीनामन्यतं द्वाभ्यामेकेन वानुबद्धम्।

तद्यथा—प्रजार्थिनो धर्मपत्न्यामनभिप्रेतायानृतावभिगमनं धर्मोऽर्थानुबद्धः।

प्रजार्थिनोऽभिप्रेतायामृतावभिगमनं धर्मः कामानुबद्धः।

अपरिणीतस्य सवर्णाननभिप्रेतकन्यालाभोऽर्थो धर्मानुबद्धः।

परिणीतस्याधमवर्णादभिप्रेतकन्यालाभोऽर्थः कामानुबद्धः।

धर्मपत्न्यामभिप्रेतायां कामातृरायामनृतौ कामो धर्मानुबद्धः।

परिणीतस्य निष्किञ्चनस्यामभवर्णायामर्थवत्यामभिप्रेतायामधिगतायां कामोऽर्थानुबद्धः। इत्येकानुबद्धाः॥

अपरिणीतस्य सवर्णायामनन्यपूर्वायामभिप्रेतायां यथाविधिसंयोगो धर्मोऽर्थकामानुबद्धः।

तस्यैवाभिप्रेतसवर्णकन्यालाभोऽर्थो धर्मकामानुबद्धः।

तस्यैवार्थरूपवत्यां परस्परोत्कण्ठयोद्वाहितायां कामो धर्मार्थानुबद्धः। इति द्व्यनुबद्धाः।

परस्परस्यानुपघातकमिति। यत्रानुवन्धो नास्ति तत्रैकमितरयोरनुपघातकम्, एकानुवन्धे चान्यस्यानुपघातकं सेवेत। अत्रोदाहरणं वक्ष्यामः॥ १॥

मनुष्य की पूर्ण आयु सौ वर्ष की है। सौ वर्ष के इस जीवन को सुचारु और सुखी बनाने के लिए ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों में विभक्त कर धर्म, अर्थ और काम का साधन, सम्पादन इस ढंग से करना चाहिए कि धर्म, अर्थ, काम में परस्पर विरोधाभास न हो और वे एक दूसरे के पूरक बन कर मोक्ष प्राप्त करने में सहायक बनें।

संसार के सभी मनुष्य दीर्घ जीवन, ज्ञान, सम्मान, काम, न्याय और मोक्ष की इच्छा रखते हैं। मनुष्येतर प्राणी केवल दीर्घ जीवन की कामना मनुष्य के समान रखते हैं। वेदों की शिक्षा ही एकमात्र ऐसी है जो प्राणिमात्र के दीर्घ जीवन की सुविधा का ध्यान रखते हुए समस्त मनुष्यों को उनकी इच्छाओं में विवेक उत्पन्न करा कर, तथा समानाधिकार दिलाकर सब को मोक्ष की ओर अग्रसर करती है।

'शतायुर्वै पुरुषः' लिख कर वात्स्यायन यह स्पष्ट कर देते हैं कि कामसूत्र का उद्देश्य वासनाओं की ज्वाला में जला कर मनुष्य को रोगी और अल्पायु बनाना नहीं बल्कि नीरोग और विवेकी बना कर सौ वर्ष तक की पूर्ण आयु प्राप्त कराना है।

दीर्घ जीवन के लिए सबसे पहला उपाय सात्विक आहार है। दूध, दही, घी, फल, फूल, हविष्य की गणना सात्विक आहार में की गयी है। इनका सेवन करने से मनुष्य कभी बीमार नहीं होता। सदैव प्रसन्न मुख बना रहता है और दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त शक्ति, सौन्दर्य, सुमेधा, स्मृति, धारणा और अनेक दिव्य शक्तियों की प्राप्ति होती है।

भोजन के अतिरिक्त मनुष्य को शतंजीवी बनाने वाले वायु, पानी और परिश्रम हैं। स्वच्छ जल-वायु का नित्य सेवन करना, खुले और पवित्र वातावरण में रहना तथा शारीरिक श्रम करना—दीर्घ जीवन प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

आहार-विहार के बाद चिन्ता की निवृत्ति भी दीर्घ जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी है। चिन्ता ग्रस्त व्यक्ति घुल-घुल कर मरते हैं। चिन्ता और चिता में चिन्ता ही बड़ी है, क्यों कि चिता केवल मुर्दों को ही जलाती है पर चिन्ता जीवित मनुष्यों को जला कर भस्म कर देती है—

चिन्ता चिता द्वयोर्मध्ये चिन्ता याति गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहति जीवितम्॥

इस लिए दीर्घ जीवन की इच्छा रखने वालों को सदैव चिन्ता-मुक्त रहना चाहिए।

इसके बाद दीर्घ जीवन के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। योगशास्त्र का कहना है कि 'ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः' अर्थात् ब्रह्मचर्य से वीर्य प्राप्त होता है और 'वीर्यं बाहुबलम्' वीर्य से शारीरिक शक्ति बढ़ती है। वेद में लिखा है कि 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्युमुपाघ्नत–बुद्धिमान्' विद्वान् व्यक्ति ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मृत्यु को जीत सकते हैं।

ब्रह्मचर्य का सहायक सदाचार है। जो व्यक्ति निष्ठावान् , नियम-संयम संपन्न, शील, सत्य और चरित्र को अपनाए रहते हैं वही ब्रह्मचर्य का साधन करते हुए शतायु हुआ करते हैं। 'सदाचारेण पुरुषः शतवर्षाणि जीवति'—सदाचार से मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहता है।

वात्स्यायन के कथन का उद्देश्य यही है कि मनुष्य काम का उपभोग विवेक, संयम, सदाचार और निष्ठा के द्वारा करता हुआ सौ वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त करे। वह अपनी आयु को इस अवधि के चार आश्रमों में विभक्त कर ले। पहला विभाजन ब्रह्मचर्य अवस्था का है। भारतीय सभ्यता में सबसे प्रधान अंग ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचारी बन कर बालक गुरु के पास जा कर चार बातों का अभ्यास करता है—अनेक प्रकार की विद्याएँ पढ़ना, वीर्यरक्षा द्वारा शक्ति का संचय करना, सादगी के साथ जीवन व्यतीत करने का अभ्यास करना और नित्य सन्ध्योपासन, स्वाध्याय और प्राणायाम का अभ्यास करना। भारतीय आर्यसभ्यता की इमारत इन्हीं चार स्तम्भों पर आधारित है। ब्रह्मचर्य जीवन के उक्त चार साधनों से मनुष्य के जीवन को सफल बनाने वाली जितनी बातें हैं सभी प्राप्त होती हैं।

आयु का प्रथम भाग ब्रह्मचर्य जब परिपक्व हो जाय तो मनुष्य को विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष का सम्पादन विधिवत् करना चाहिए। वात्स्यायन यहाँ पर यह संकेत करते हैं कि अर्थ, धर्म और काम का उपभोग इस ढंग से किया जाए कि वे परस्पर सम्बद्ध रहें और एक दूसरे के प्रति विघ्नकारी न सिद्ध हों। स्पष्ट है कि यदि ब्रह्मचर्य अवस्था का नियम पालन ठीक ढंग से नहीं किया जाता है तो गृहस्थाश्रम अधूरा, क्षुब्ध और असफल रहता है। इसलिए प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक आश्रम में पहुँच कर उसके नियमों का पालन विधिवत् करने से ही सफलता संभव है।

ब्रह्मचर्य को गृहस्थाश्रम से सम्बद्ध बनाने का तात्पर्य यही है कि वीर्यरक्षा, सदाचरण, शील, स्वाध्याय यदि ब्रह्मचर्याश्रम में ठीक ढंग से किया गया

तो गृहस्थाश्रम में दाम्पत्य जीवन अकलुष, आनन्दमय और श्रेय-प्रेय सम्पादक बन सकता है। आनन्दमय, धर्म-कर्म पूर्वक गृहस्थाश्रम व्यतीत होने पर वानप्रस्थ का साधन शान्ति से और निर्विघ्न हो सकता है। और वानप्रस्थ की साधना संन्यासाश्रम में जा कर मोक्ष प्राप्त कराने में सहायक होती है।

इस लिए आचार्य त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की साधना की सफलता के लिए चारों आश्रमों में अपनी आयु को विभक्त कर दीर्घजीवी बनने का उपदेश देते हैं।

वयोद्वारेण कालविभागमाह—

बाल्ये विद्याग्रहणादीनर्थान् ॥ २ ॥

अब क्रमशः आयु के विभाग लिखते हैं।

बाल्यावस्था में विद्योपार्जन करना चाहिए ॥ २ ॥

बाल्य इति—वयोविभागस्तन्त्रान्तर उक्तः—'आ षोडशाद्भवेद्बालो यावत्क्षीरान्नवर्तनः। मध्यमः सप्तति यावत्परतो वृद्ध उच्यते ॥' इति। विद्याग्रहणमादिर्येषामर्थानां तान्सेवेतेति ॥ २ ॥

एवम्—

कामं च यौवने ॥ ३ ॥

युवावस्था में काम का सेवन करना चाहिए ॥ ३ ॥

तदोचितत्वात् ॥ ३ ॥

स्थाविरे धर्मं मोक्षं च ॥ ४ ॥

वृद्धावस्था में धर्म और मोक्ष का अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ४ ॥

स्थाविरे धर्ममोक्षावनुभूतविषयत्वात्। मोक्षग्रहणं परमतापेक्षम्, ज्ञानवादिनां चतुर्वर्गः पुरुषार्थः, अस्मिन्नेव काले तैरप्याध्यात्मिकं चिन्त्यमिति।

ननु त्रिवर्गस्य नियतकालत्वादन्योन्यानुबन्धो नास्ति, ततश्चासेवनप्रसङ्ग इति। नायं नियमः, अनुबद्धत्वाभावे निरबद्धमप्युक्तम् ॥ ४ ॥

अथवा यथाकालमहन्यहनि सेवा, प्रतिषेधपरत्वाद्धर्मादिनियमस्य। यथाकालं धर्मादिषु सेव्यमानेषु यद्यनुषङ्गादितरानुबन्धः, भवतु न दोषाय—

अनित्यत्वादायुषो यथोपपादं वा सेवेत् ॥ ५ ॥

किन्तु जीवन का कोई ठिकाना नहीं इसलिए जिस समय जितना भी हो सके उतना सेवन करना चाहिए ॥ ५ ॥

अनित्यत्वादिति—वर्षशतादर्वाग्विनाशदर्शनात्। यथोपपादमिति—यद्यदोपपद्यते तदा सेवेत। बाल्येऽर्थम्, धर्ममपि। यौवने कामम्, धर्मार्थावपि।

स्थाविरे धर्म, अर्थकामानुष्ठानसामर्थ्यं चेत्तावपीति। अन्यथैकसेवायामसमग्रः पुरुषार्थः स्यात्।

सेवेतेति पुनर्वचनं पूर्वस्मात्पक्षात्पक्षान्तरा[द]र्थम् ॥ ५ ॥

अन्यस्मिन्पक्षे विद्याग्रहणार्थस्य सेवायाः कालत्रयेऽप्यसंभवान्नियमयति—

ब्रह्मचर्यमेव त्वा विद्याग्रहणात् ॥ ६ ॥

विद्या अध्ययन काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ॥ ६ ॥

यावद्विद्या न गृह्यते तावत्कामं न सेवेत, अन्यथा ह्यधर्मः, तद्ग्रहणविघातः, विद्यार्थलाभाभावश्च। भूम्याद्यर्जने तु न नियमः।

अन्ये तु विद्याग्रहणवर्जं प्रायेण भूम्याद्यर्जनं न संभवति, अतस्त्रयस्त्रिंशदब्दाश्चत्वारश्च मासा इति प्रत्येकं वयो विभज्य योजयन्ति।

अस्मिन्विभागे षोडषवर्षादूर्ध्वं कामस्य भावात्, बाल्येऽपि धर्मार्थकामान्सेवेतेत्युक्तमनुष्ठानम् ॥ ६ ॥

धर्म, अर्थ, काम ये तीन पुरुषार्थ हैं और बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था ये तीन जीवन की अवस्थाएँ हैं। मनुष्य की औसत उम्र सौ वर्ष की मानी गयी है। सौ वर्ष की इस अवधि को तीन कालों में बाँट कर तीन प्रकार के पुरुषार्थों का उपार्जन और उपभोग करना चाहिये—यह वात्स्यायन का मत है।

वात्स्यायन के मत से जन्म से सोलह वर्ष तक बाल्यावस्था, सत्तर[1] वर्ष तक युवावस्था और इसके बाद वृद्धावस्था होती है। इसलिए बाल्यावस्था में विद्या पढ़नी चाहिए, युवावस्था में अर्थ और काम का उपार्जन और उपभोग करना चाहिए तथा वृद्धावस्था में धर्म और मोक्ष के लिए प्रयत्न करना चाहिए, तथापि आचार्य का यह भी कहना है कि जीवन का कोई ठिकाना नहीं है। शरीर अनित्य है, इसलिए यथासमय यथासंभव जिन-जिन पुरुषार्थों की प्राप्ति हो सके कर लेनी चाहिए।

यहाँ एक प्रश्न पैदा होता है कि जीवन को अनित्य समझ कर बाल्यावस्था में ही काम का उपार्जन और उपभोग कर लेने की राय वात्स्यायन देते हैं, इस प्रकार की शंका न पैदा हो इसलिए आचार्य आगे के सूत्र में स्पष्ट करते हैं—

---

१. साधारणतया मनुष्य की आयु चार अवस्थाओं में धर्मशास्त्रकारों ने विभक्त की है, किन्तु वात्स्यायन तीन ही अवस्थाएँ मानते हैं। प्रौढ़ावस्था को सूत्रकार ने नहीं माना है। दूसरे आचार्य ५० वर्ष की अवस्था में रिटायर होने की राय देते हैं किन्तु वात्स्यायन इसके लिए ७० वर्ष की आयु निर्धारित करते हैं।

'ब्रह्मचर्यमेव त्वा विद्याग्रहणात्'—विद्याध्ययनकाल में ब्रह्मचर्य का पालन कठोरता और निष्ठापूर्वक करना चाहिए।

आचार्य कौटल्य ने भी यही व्यवस्था दी है कि मुण्डनसंस्कार हो जाने पर वर्णमाला तथा गिनती का अभ्यास करना चाहिए। उपनयन हो जाने के बाद शिष्ट आचार्यों एवं विद्वानों से त्रयी विद्या की शिक्षा लेनी चाहिए। सोलह वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पूर्णरूप से पालन करना चाहिए। इसके बाद गोदानविधि के साथ विवाह करना चाहिए। विवाह के बाद अपने शिक्षण की वृद्धि के लिए सदैव विद्या-वयोवृद्ध पुरुषों के सम्पर्क में रहना चाहिए, क्योंकि विद्वान् पुरुषों की संगति ही विनय का मूल है।[1]

वात्स्यायन और कौटल्य दोनों प्रथमावस्था में विद्याध्ययन और ब्रह्मचर्य पर ज़ोर देते हैं, इसलिए कि विद्या और विनय का हेतु इन्द्रिय जय है, अतः काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष ज्ञान से इन्द्रियों को जीतना चाहिए।[2]

अवबोधोऽपि। स्वरूपं यतश्च परिज्ञातं तदुभयमप्याह—

अलौकिकत्वाददृष्टार्थत्वादप्रवृत्तानां यज्ञादीनां शास्त्रात्प्रवर्तनम्, लौकित्वाद्दृष्टार्थत्वाच्च प्रवृत्तेभ्यश्च मांसभक्षणादिभ्यः शास्त्रादेव निवारणं धर्मः ॥ ७ ॥

पारमार्थिक एवं परोक्ष फल देने वाले यज्ञ आदि कार्यों में जल्दी प्रवृत्त न होने वाले मनुष्य का शास्त्र के आदेश से प्रवृत्त होना एवं इसी लोक में प्रत्यक्ष फल मिलने से मांस आदि खाने में प्रवृत्त मनुष्य का शास्त्र के आदेश से निवृत्त होना—यही प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो प्रकार का धर्म है ॥ ७ ॥

अलौकिकत्वादिति—तत्र लोके रूपादिवदविदितस्वरूपत्वादलौकिका यज्ञादयः। ननु विशिष्टद्रव्यगुणकर्मात्मकत्वाद्विदितस्वरूपाः कथमलौकिका इत्यत आह—अदृष्टार्थत्वादिति—तेषामनन्तरं फलस्यादर्शनात्।

येऽदृष्टफलाः सन्तोऽलौकिका न ते प्रेक्षावद्भिरदृष्टसामर्थ्यौषधिवत्प्रवर्त्यन्त इत्यप्रवृत्ताः। आदिशब्दात्तपश्चरणादयः। तेषामप्रवृत्तानां शास्त्रात्प्रवर्तनं धर्म इति। अयं प्रवृत्तिरूपो धर्मः।

लौकिकत्वाद्दृष्टार्थत्वादिति। ये दृष्टतृप्त्यादिफलाः सन्तो लौकिकास्ते तदर्थिभिर्मृगादिमांसभक्षणवत्प्रवर्त्यन्ते। तस्मात्प्रवृत्तेभ्यश्च मांसभक्षणादिभ्यः। आदिशब्दात्सत्त्वाभिद्रोहपरस्वादानादिभ्यः। शास्त्रादेव निवारणं प्रतिषेधनमिति। अयं निवृत्तिरूपः ॥ ७ ॥

---

१. कौटलीय अर्थशास्त्र—विनयाधिकारिक अ० ५ प्रकरण २।
२. कौटलीय अर्थशास्त्र—विनयाधिकारिक अ० ६ प्रकरण ३।

महाभारत में लिखा है कि 'धारण करने से लोग इसे धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा को धारण करता है, जो धारण के साथ रहे वह धर्म है—यह निश्चय है'।

धारणाद्धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यत्स्याद्धर्मसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥[1]

इससे सिद्ध होता है कि धर्म बहुत व्यापक शब्द है। कोशग्रंथों में धर्म के अर्थ ये मिलते हैं—(१) सुकृत या पुण्य, (२) वैदिक विधि, यज्ञादि, (३) यमराज, (४) न्याय, (५) स्वभाव, (६) आचार, (७) सोमरस का पीने वाला।

तथा (१) शास्त्र विहित कर्म के अनुष्ठान में उत्पन्न होने वाले भावी फल का साधन स्वरूप शुभ अदृष्ट या पुण्यापुण्य रूप भाग्य, (२) श्रौत और स्मार्त धर्म, (३) विहित क्रिया से सिद्ध होने वाले गुण या कर्मजन्य अदृष्ट, (४) आत्मा, (५) आचार या सदाचार, (६) गुण, (७) स्वभाव, (८) उपमा, (९) यज्ञ, (१०) अहिंसा, (११) न्याय, (१२) उपनिषद्, (१३) धर्मराज या यमराज, (१४) सोमाध्यायी, (१५) सत्संग, (१६) धनुष, (१७) ज्योतिष में लग्न से नवम स्थान या भाग्यभवन और (१८) दान आदि।

निरुक्तकार धर्म शब्द का अर्थ नियम बतलाते हैं और धर्म शब्द का धातुगत अर्थ धारण करना है। इन दोनों अर्थों के समन्वय से यही तात्पर्य निकलता है कि जिस नियम ने इस संसार को धारण कर रखा है वही धर्म है।

उपर्युक्त धर्म के जो लक्षण बताए गए हैं उन्हीं लक्षणों का समवेत भाव ही कामसूत्रकार का तात्पर्य जान पड़ता है। कामसूत्र नियामक शास्त्र है। मनुष्य किन नियमों का पालन करते हुए अर्थ, धर्म, काम की प्राप्ति कर सकता है यही कामसूत्र का अभिप्रेत कथन है। वे कौन से नियम हैं जिन्होंने संसार को धारण कर रखा है? किन नियमों के अनुसार चलने पर सुख प्राप्त हो सकता है? इसी का समाधान कामसूत्र में मिलता है। धर्म से सुख मिलता है, यह शास्त्रमत है। लोकमत भी इसी का समर्थन करके कहता है—'धनाद्धर्मं ततः सुखम्'। धन से धर्म होता है और धर्म से सुख होता है। यह सुख लौकिक पारलौकिक भेद से दो प्रकार का है। जिससे इन दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो वही धर्म है। सभी लोग आनन्द और सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। और सुख की प्राप्ति का साधन धर्म है। वैशेषिक मत से धर्म वही है जिससे संसार में अभ्युदय प्राप्त हो और परलोक में मोक्ष प्राप्त हो सके—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' कामसूत्रकार ने

१. कर्ण पर्व ६९।५८।

धर्म का जो लक्षण बतलाया है उसके मूल में लोक में अभ्युदय और परलोक में कल्याण प्राप्त करने की भावना निहित है।

कथमत्र शास्त्रं प्रमाणमिति चेदुत्तरमत्र वक्ष्यति—

तं श्रुतेर्धर्मज्ञसमवायाच्च प्रतिपद्येत ॥ ८ ॥

उपर्युक्त सातवें सूत्र में बताए गए धर्म को विद्वान् लोग वेद से और साधारण पुरुष धर्मज्ञ पुरुषों से सीखें ॥ ८ ॥

तमित्युक्तस्वरूपं धर्मम्। श्रुतेरिति—स्मृत्यनुगताद्वेदात्, योऽधिकृतः शास्त्रे अनधिकृतो वा धर्मज्ञसमवायात्। श्रुतिस्मृत्यर्थतत्त्वज्ञसंसर्गादित्यर्थः। प्रतिपद्येतावबुध्येत ॥ ८ ॥

विद्वान् पुरुष धर्म की शिक्षा वेदों से ग्रहण करें—कामसूत्रकार का यह निर्देश शास्त्र सम्मत है। मनु का कथन है कि समस्त वेद धर्म का मूल है—

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।[1]

श्रीमद्भागवतपुराण तो यहाँ तक कहने का साहस रखता है कि—वेद में कहा हुआ धर्म है और उससे विपरीत अधर्म है—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।[2]

आचार्य वात्स्यायन ने विद्वानों को वेद से धर्माचरण सीखने की राय इसलिए दी है कि धर्म का तत्त्व गुहा में निहित है—धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्—उस तत्त्व को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को आत्मनिरीक्षण, श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करना आवश्यक है। विद्वान् वही है जो निहित, प्रच्छन्न तत्त्वों को जानता है। कामसूत्र का मुख्य तात्पर्य 'काम' का वास्तविक विवेचन और विश्लेषण करना ही है। जो धर्म के तत्त्व को समझता है वही काम के तत्त्व को समझ सकता है।

साधारण पुरुषों से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो स्वयं वेदाध्ययन, श्रवण, मनन में असमर्थ हैं किन्तु स्मृतियों द्वारा बताए गए, धर्मज्ञों द्वारा निर्दिष्ट पथ पर आरूढ़ रहते हैं। कामसूत्रकार यहाँ पर श्रुति और स्मृति दोनों का समन्वय करते हैं। तात्पर्य यह कि श्रुति में जो बतलाया गया है वही धर्म स्मृति में भी बतलाया गया है। ऐसा वह कौन-सा धर्म है जो स्मृति में बतलाया गया है और श्रुति-सम्मत है। इसका समाधान मनुस्मृति करती है—

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥[3]

---

१. मनुस्मृति २।६। २. श्रीमद्भागवत ६।१।४४।
३. अधिकरण १५ अ० १ सूत्र १।३।

—श्रुति और स्मृति में बताया गया सदाचार ही परमधर्म है। इसलिए अपने आपको पहचानने वाला व्यक्ति सदा सदाचार से युक्त रहे।

वात्स्यायन ने थोड़े में बहुत ही मर्म-भरी बात कह दी है। विद्वान् और सामान्य दोनों प्रकार के व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वे सदाचारी बनें। सदाचार ही काम की पृष्ठभूमि है।

विद्याभूमिहिरण्यपशुधान्यभाण्डोपस्करमित्रादीनामर्जनमर्जितस्य विवर्धनमर्थः ॥ ९ ॥

धर्म का लक्षण बतलाने के बाद वात्स्यायन अर्थ की परिभाषा प्रस्तुत करते हैं—

विद्या, भूमि, सुवर्ण, पशु, धान्य, बरतन आदि घर का सामान तथा मित्रों एवं वस्त्राभूषण, गृह आदि वस्तुओं को धर्मपूर्वक प्राप्त करना और प्राप्त किए हुए की वृद्धि करना अर्थ है ॥ ९ ॥

विद्या आन्वीक्षिक्यादयः। भूमिः कृष्टा, कृष्या वा। हिरण्यं सुवर्णादि। पशुर्हस्त्यश्वादिः। धान्यं पूर्वमध्यावरवापः। भाण्डोपस्करं गृहोपकरणं लोहकाष्ठमृद्विदलचर्ममयम्। मित्रं सहपांशुक्रीडितादि। आदिशब्दाद्वस्त्राभरणादयः।

अर्जनं द्विविधम्—निष्पन्नानां हस्त्यादीनां स्वीकरणम्, अनिष्पन्नानां धान्यादीनां निष्पादनम्। अर्जितस्येत्येकवचनमेकैकस्य द्रव्यस्यार्जनवर्धनयोरन्वर्थोपदर्शनार्थम्, अन्यथा समुदायस्यैवार्जनं वर्धनं चार्थः स्यात्। वर्धनमुपचयभोगादिव्यापारदर्शनार्थम्, तयोः शास्त्रेणोपदिश्यमानत्वात् ॥ ९ ॥

आचार्य चाणक्य ने कौटलीय अर्थशास्त्र में अर्थ की परिभाषा लिखते हुए बताया है कि 'मनुष्यों की वृत्ति (जीविका) ही अर्थ है। अर्थात् मनुष्यों की जीविका और उस जीविका के साधन पृथ्वी का लाभ प्राप्त करना और पालन करना 'अर्थ' है।'

वात्स्यायन और कौटल्य इस विषय में एकमत हैं। कौटल्य ने कौटलीय अर्थशास्त्र लिखने का तात्पर्य तत्त्वदर्शन बतलाया है और यही तात्पर्य कामसूत्रकार का भी है।

जिस प्रकार धर्म से बुद्धि का संबन्ध है उसी तरह अर्थ से शरीर का संबंध और काम से मन का संबंध तथा मोक्ष से आत्मा का संबंध है। इन्हीं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में मनुष्य की समस्त लौकिक पारलौकिक कामनाओं का समावेश हो जाता है। अर्थात् जीवन की कामनाएँ अर्थ में, स्त्री-पुत्र आदि की कामनाएँ काम में, यश, न्याय, ज्ञान की इच्छा धर्म में और परलोक की कामना मोक्ष में निहित रहती है। कामसूत्रकार का मन्तव्य यही जान पड़ता है कि जिस प्रकार अर्थ—भोजन, वस्त्रादि के बिना शरीर की स्थिति नहीं रह

सकती, काम—रति के बिना शरीर उत्पन्न नहीं हो सकता है तथा बिना शरीर के मोक्ष साधन नहीं हो सकता है उसी तरह बिना मोक्ष का मार्ग निर्धारित किए अर्थ और काम को भी सहायता नहीं मिल सकती है। तात्पर्य यह कि जब तक मोक्ष की सच्ची कामना नहीं जागती है, तब तक अर्थ और काम का उचित उपयोग नहीं हो सकता है। स्वार्थी और कामी समाज को नष्ट कर देते हैं। इसलिए कामसूत्रकार धर्मपूर्वक अर्थोपार्जन का नियम करते हैं।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि मोक्ष से अर्थ और काम को सहायता जब मिलती है तब अर्थ और काम से मोक्ष को और मोक्ष से अर्थ काम को परस्पर सहायता दिलाने वाला नियम कौन-सा है? इस प्रश्न का उत्तर कामसूत्रकार ने पिछले सूत्र में देते हुए बताया है कि अर्थ, काम और मोक्ष में परस्पर सामंजस्य उत्पन्न करने वाला धर्म है। धर्मपूर्वक मोक्ष साधन से अर्थ और काम की उचित व्यवस्था हुआ करती है और धर्मपूर्वक अर्थ तथा काम को ग्रहण करने से मोक्ष सुलभ हो जाता है।

तमध्यक्षप्रचाराद्वार्तासमयविद्भ्यो वणिग्भ्यश्चेति ॥ १० ॥

उस अर्थ को अध्यक्षप्रचार से तथा कृषि, वाणिज्य आदि के तत्त्वज्ञों से और व्यापारियों से सीखना चाहिए ॥ १० ॥

अध्यक्षाः प्रचरन्त्यनेनेत्यध्यक्षप्रचारः। वार्ता शास्त्रम्। तस्माच्छास्त्रेयोऽधिकृतः, इतरश्च वार्तासमयविद्भ्यः कृषिपाशुपाल्यवणिज्यादितत्त्वविद्भ्यः। वणिग्भ्य इत्युपलक्षणार्थम्, कर्षकेभ्यो गवादिपोषकेभ्यश्च प्रतिपद्येतेत्येवम् ॥ १० ॥

अर्थ को अध्यक्षप्रचार से सीखने का जो संकेत किया गया है, इसे समझने में प्रायः अनेक टीकाकारों को भ्रम हुआ है। कामसूत्रकार का अध्यक्ष-प्रचार से तात्पर्य कौटलीय अर्थशास्त्र के अध्यक्षप्रचार अधिकरण से है। इस अधिकरण में कौटल्य ने राज्य-संरक्षण, भूमि-संरक्षण, नागरिकों के संरक्षण के निमय तथा दुर्गों के निर्माण का विधान, राजकर की वसूली एकाउण्टेण्ट जनरल आफिस के नियम और उसकी व्यवस्था, शासन-प्रबंध रत्नों की पारिख, धातुओं की पारिख, सुनारों के कर्त्तव्य और नियम, कोठार और उसके अध्यक्ष के कार्य, विक्रय-विभाग के नियम, लड़कियों की सुरक्षा, शस्त्रागार की व्यवस्था, तोलमाप का निरूपण, चुंगी के विविध प्रकार उसके नियम आदि ३६ विषयों का निरूपण किया है। वात्स्यायन अपने पूर्ववर्ती अर्थशास्त्री कौटल्य के अध्यक्षप्रचार अधिकरण से अर्थोपार्जन और अर्थ-व्यवस्था सीखने का सुझाव देते हैं। जयमंगला टीकाकार यशोधर को 'अध्यक्ष-प्रचार' शब्द से कौटलीय अर्थशास्त्र के अध्यक्षप्रचार अधिकरण को ग्रहण

करना शायद अभीष्ट नहीं था, उन्होंने 'अध्यक्षाः प्रचरन्त्यनेनेत्यध्यक्षप्रचारः' व्याख्या करके धनी लोग जिस व्यवहार पर चलते हैं वह अध्यक्ष प्रचार है— अर्थ माना है, किन्तु वार्ता का अर्थ टीकाकार ने कौटलीय अर्थशास्त्र में बताए गए अर्थ से ही ग्रहण किया है। वार्ता का अर्थ करते हुए कौटल्य कहता है कि जिस विद्या से नय और अपनय (उचित समय पर खेत बोने के सुफल और न बोये जाने के कुफल) का ज्ञान होता है वह 'वार्ता' है।[1] टीकाकार यशोधर ने वार्ता का अर्थ तो कौटल्य सम्मत स्वीकार किया है किन्तु कौटल्य की भाँति वार्ता को वह विद्या न मान कर शास्त्र मानता है। 'वार्ता शास्त्रम्' शास्त्र और विद्या में बहुत बड़ा अन्तर होता है। वार्ता चार विद्याओं के अन्तर्गत एक विद्या है। इन विद्याओं से ही विभिन्न विषयों के शास्त्रों की रचना हुई है।

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः ॥ ११ ॥

'काम' का लक्षण बतलाते हुए आचार्य लिखते हैं—कान, त्वचा, आँख, जिह्वा, नाक इन पाँच इन्द्रियों की इच्छानुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध अपने इन विषयों में प्रवृत्ति ही काम है अथवा इन इन्द्रियों की प्रवृत्ति से आत्मा जो आनन्द अनुभव करता है, उसे 'काम' कहते हैं ॥ ११ ॥

त्वगिति कार्येन्द्रियम्। कामो द्विविधः, सामान्यो विशेषश्च। तत्र सामान्यमाह—आत्मसंयुक्तेन मनसेति। आत्मा समवायिकारणम्, सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नादिगुणानां तत्र समवायात्। तत्र यदास्य प्रयत्नगुण उत्पद्यते तदायं मनसा संयुज्यते, मन इन्द्रियेण इत्यनेन क्रमेणाधिष्ठितानाम्। स्वेषु स्वेष्विति–तथाक्रमं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु। आनुकूल्यत इति। यदात्मनः शब्दादीन्विषयान्भोक्तुमिच्छा भवति तदा प्राप्याप्राप्यकारिणां श्रोत्रादीनां बुद्धीन्द्रियाणामानुलोम्येन या प्रवृत्तिः।

इच्छोपगृहीता शब्दादिबुद्धिरित्यर्थः, सा विषयोपभोगस्वभावा काम इत्युपचर्यते, आत्मा हि तद्द्वारेण विषयं भुञ्जानः सुखमनुभवति यत्तत्सुखं प्रधानं कामः–तस्य निबन्धनमिच्छोपगृहीता प्रवृत्तिः, सापि काम इत्युच्यते। तस्माद्धेतुफलभेदात्सामान्यकामो द्विविधः। प्रातिकूल्यतः प्रवृत्तिस्तु दुःखहेतुत्वाद्द्वेष इत्यर्थोक्तम् ॥ ११ ॥

भारतीय दर्शन का सिद्धान्त है कि विद्या और अविद्या यही दो मुख्य बीज हैं। जब ये दोनों समान मात्रा में एक दूसरे से मिलते हैं तब तीसरा बीज भी उत्पन्न हो जाता है। मन, प्राण और वाक् तीनों अव्यय और जगत् के

१. कौटलीय अर्थ शास्त्र, अ० २ प्र० १ विद्यासमुद्देश

साक्षी माने जाते हैं। इनमें से प्राण जब मन को अधिक मात्रा में ग्रहण करता है तब वह विद्या कहलाता है और जब वह वाक् को अधिक मात्रा में लेता है तब अविद्या कहलाता है। यह अविद्या विद्या रूप आत्मा का वह स्वाभाविक विकार है जो कि बाहर के पदार्थों को अपने में मिला लिया करता है, जिससे ज्ञान निर्विषयक और सविषयक इन रूपों में बँट जाता है। जो निर्विषयक ज्ञान होता है वह आत्मा का मुख्य रूप है किन्तु वही जब बाह्य पदार्थों को अपने में समाहित कर सविषयक होता है तब विषयों के परिच्छेद से परिच्छिन्न बन जाता है। तात्पर्य यह कि ज्ञान में किसी विषय के प्रवेश होने की शक्ति को ही अविद्या कहते हैं।

इस अविद्या शक्ति में जो विषय बन कर प्रविष्ट हुआ जान पड़ता है वही 'काम' है। क्यों कि ज्ञान के साथ ही साथ इच्छा, आकर्षण का संवेग बढ़ता है और यदि वह ज्ञान में प्रविष्ट न होता तो आकर्षण की इच्छा न होती, क्योंकि जिस मनुष्य ने जिस वस्तु का उपयोग, श्रवण, दर्शन, स्पर्शन कभी नहीं किया है उसे उस वस्तु का ज्ञान न होने से इच्छा और आकर्षण नहीं उत्पन्न हो सकते। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि ज्ञान में जिस विषय का संस्कार उत्पन्न हो जाता है, वह वासना के रूप में ज्ञान में विद्यमान रहता है और जब उस विषय को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है, आकर्षण पैदा होता है तो उस इच्छा या आकर्षण को 'काम' कहते हैं। चूंकि वह इच्छा ज्ञान के विषय अर्थात् वासना से उठती है इस लिए उस विषय की वासना को भी 'काम' कहते हैं। वात्स्यायन का मुख्य अभिप्राय यही है। इस 'काम' के कारण ही एक वस्तु दूसरी वस्तु पर आकृष्ट हो कर संयोग करती है। इसलिए 'काम' को ही सृष्टि का अर्थात् दो वस्तुओं के मेल से नयी वस्तु की उत्पत्ति का कारण माना गया है।

विशेषकामो द्विविधः प्रधानमप्रधानं च। तदुभयमपि दर्शयन्नाह—

स्पर्शविशेषविषयात्त्वस्याभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थप्रतीतिः प्राधान्यात्कामः ॥ १२ ॥

इस सूत्र में 'काम' की व्यावहारिक व्याख्या करते हुए आचार्य लिखते हैं—

चुम्बन, आलिङ्गन आदि प्रासङ्गिक सुख के साथ कपोल, स्तन, नितम्ब आदि विशेष अंगों के स्पर्श करने से आनन्द की जो फलवती प्रतीति होती है वह 'काम' है ॥ १२ ॥

स्पर्शविशेषविषयात्त्विति—वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि, तेषां वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दकर्मनिष्पादनात्। तत्र स्त्रीपुंसयोर्यदधोव्यञ्जनं संबा-

धकादि तन्मात्रस्वभावं तत्त्वगिन्द्रियमेव, तस्य कश्चिदेव प्रदेश उपस्थेन्द्रियमुच्यते यो विसृष्टयवस्थायामानन्दकर्म जनयति ।

तस्य व्यञ्जनस्य योऽन्तर्गतः स्पर्शविशेषस्तस्मिन्विषये प्रतीतिरसावर्थप्रतीति-स्त्वगिन्द्रियबुद्धिः, अस्याः संप्रयोगेच्छालक्षणः कामिताख्यो भावः कारणम् । अस्येति—स्त्र्यात्मनः, पुरुषात्मनश्च । तत्र स्त्र्यात्मनः पुरुषाद्व्यञ्जनस्पर्शविशेषविषये स्त्रीव्यञ्जनत्वगिन्द्रियप्रतीतिः, पुरुषात्मनश्च स्त्रीव्यञ्जनस्पर्शविशेषविषये पुरुष-व्यञ्जनत्वगिन्द्रियप्रतीतिरित्यर्थः । विशेषग्रहणात्पुरुषस्योरुकक्षादिस्पर्शनविषये स्त्रिया-श्चोरुनाभ्यादिस्पर्शविषये प्रतीतिर्निरस्ता, तस्या अप्रधानत्वात् । एवंविधा प्रतीतिः सामान्यकाम एव ।

कथं विशेषत्वमिति चेदाह—फलवतीति । तस्यां प्रतीतौ प्रबन्धेनोत्पद्यमा-नायां शुक्रक्षरणं तत्तुल्यकालमेव चानन्दाख्यं फलं सुखमित्युक्तम् । तेन युक्ता-स्पर्शविशेषविषये प्रतीतिरपरा भवति, तस्याश्च पूर्विकैव प्रतीतिरफला कारणम्, अतो विषयभेदात्स्वरूपभेदाच्च द्विधा प्रतीतिः । अर्थप्रतीतिरिति—अर्थग्रहणात्स्वप्र-व्यञ्जनस्पर्शार्थस्यालीकत्वात्फलवत्यपि न कामः, तस्य अप्रधानत्वात् ।

यद्येवं वियोनावयोनौ वानभिप्रेतेऽर्थप्रतीतिरेवंविधाप्यस्तीत्यत आह—आभि-मानिकसुखानुविद्धेति—आभिमानिकं चुम्बनादिसुखं वक्ष्यति, चुम्बननखदशनच्छे-द्यादिषु हि तत्र तत्र स्थाने प्रयोज्यमानेषु स्त्रीपुंसो रागसंकल्पवशात्सुखमित्यभि-मन्यते, तेन सुखेनानुविद्धेत्याक्षिप्तसंस्कारेऽर्थप्रतीतिः प्राधान्यात्कामः, तेन वियो-नावयोनौ वानभिप्रेतस्त्रीपुंसयोः फलवत्यर्थप्रतीतिर्न कामः, आभिमानिकसुखा-भावादप्राधान्यात् । तस्मात्स्प्रष्टव्यविशेषविषयो विशेषः कामः ॥ १२॥

इस सूत्र में 'फलवती अर्थप्रतीतिः' इस शब्द में गंभीर भाव निहित है । कामसूत्र के यशस्वी टीकाकार यशोधर ने इस शब्द का भाव चुम्बन, आलिङ्गन से लेकर वीर्यक्षरण पर्यन्त आनन्द होना लिखा है । किन्तु हमें आचार्य वात्स्यायन का दृष्टिकोण यशोधर से भिन्न प्रतीत होता है । यहाँ पर आचार्य का मुख्य उद्देश्य सुयोग्य सन्तानोत्पादन ही समझना उचित होगा क्योंकि वेद और उपनिषद् भी इसी आशय को व्यक्त करते हैं—

आरोहतल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनस्य पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रतिजागरासि ॥[1]

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या संभवे ह ॥[2]

१. अथर्व० १४।२।३१ । २. अथर्व० १४।२।३२

तां पूषं छिवतमामरेयस्व यस्यां बीजं मनुष्या ३ वपन्ति ।
या न ऊरू विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥[1]
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वा बध्नात् सविता सुशेवाः ।
ऊरुं लोकं सुगमत्रपन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥[2]
आ रोहोरुमुपधत्स्व हस्त परिष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥[3]
यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥[4]

—हे वधू, तू प्रसन्न होकर इस पलंग पर चढ़ और इस अपने पति के लिए सन्तान को उत्पन्न कर तथा इन्द्राणी की भाँति हे सौभाग्यवती, चतुरता से सूर्योदय से पूर्व उषःकाल में ही जाग जा।

—विद्वान् लोग पहले भी अपनी पत्नियों को प्राप्त हुए हैं और अपने शरीरों को उनके शरीरों से भलीभाँतिं मिलाया है, इसलिए हे महान् ऐश्वर्य-वाली और प्रजा को प्राप्त होने वाली स्त्री तू भी अपने इस पति से मिल।

हे पालन कर्त्ता परमेश्वर, जिस स्त्री में आज बीज बोना है, उसे प्रेरित कर, जिससे वह हमारी कामना करती हुई अपनी जाँघों को फैलाए और हम कामना करते हुए अपने लिङ्ग का प्रहार उसकी योनि पर करें।

हे वधू, मैं तेरे पति के द्वारा जंघाओं के बीच के योनि-मार्ग को सुगम बनाता हूँ और तुझे वरुण के उस उत्कृष्ट बन्धन से छुड़ाता हूँ, जिसको सविता ने बाँधा है।

हे पुरुष, तू जाँघों के ऊपर आजा, हाथ का सहारा दे, प्रसन्न चित्त हो कर पत्नी को चिपका ले और हर्ष मनाते हुए तुम दोनों संतान पैदा करो जिससे सविता देव तुम्हारी आयु बढ़ाएँ।

इस वैवाहिक कार्य से जो मलिनता हम दोनों के द्वारा हुई है उस कम्बल के दाग़ को हम छुड़ा लें।

उपर्युक्त वेद मंत्रों का सारांश यह है कि—

१–मैथुन रात में ही करना चाहिए जिससे किसी प्रकार का भय, संकोच और लज्जा का अनुभव न हो।

२–मैथुन से पूर्व आलिंगन और चुम्बन अवश्य करना चाहिए। जिससे स्त्री-पुरुष दोनोंको आनन्दकी प्रतीति हो तथा आलिंगन से जो विद्युत्-परिवर्तन

१. अथर्व० १४।२।३८ २. अथर्व० १४।१।५८
३. अथर्व० १४।२।३९ ४. अथर्व० १४।२।६६

होता है उससे केवल लज्जा ही नहीं दूर होती बल्कि आनन्द का उद्रेक भी होता है।

३–स्त्री और पुरुष दोनों प्रसन्नतापूर्वक इस कार्य में सम्मिलित हों। मैथुन के समय दोनों इस बात की सावधानी रखें कि गर्भ मार्ग को पीड़ा न पहुँचे। क्योंकि स्त्रियों के गर्भ मार्ग में एक बारीक झिल्ली रहती है जो प्रायः प्रथम समागम में खुलती है। इसलिए खासकर पुरुष को उससे सावधान रहना चाहिए कि ऐसा अवसर न उपस्थित होने पाए कि स्त्री को कष्ट पहुँचे।

४–स्वाभाविक आसन से ही मैथुनक्रिया श्रेयस्कर होती है क्योंकि अस्वाभाविक आसनों से विकलांग सन्तान पैदा होती है।

५–संभोग के बाद स्त्री-पुरुष को सचैलस्नान करना चाहिए। इसका तात्पर्य आरोग्यरक्षा और स्वच्छता है।

छान्दोग्य उपनिषद्[1] स्त्री-संभोग की तुलना सामवेद के वामदेव्यगान से करते हुए कहती है—

'प्रेयसी को सन्देश भेजना 'हिंकार' है, इशारा करना 'प्रस्ताव' है, रति 'उद्गीथ' है, संभोग 'प्रतिहार' है और वीर्यपात 'निधन' है।'

हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ आदि सामवेद गान के स्वर हैं जो वामदेव्य गान में विशेष प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार की तुलना करने के बाद उपनिषद् फलश्रुति बतलाती है—

'जो इस वामदेव्य गान को मैथुन से ओतप्रोत जानता है, वह मैथुन करने में प्रवीण होता है, सन्तानवाला होता है, जीवन भर सुखी रहता है, बहुत दिन जीता है, धनवान् और कीर्तिशाली होता है। इसलिए किसी स्त्री को न छोड़ना चाहिए यही व्रत है।'

इससे यह स्पष्ट है कि कामसूत्रकार ने चुम्बन, आलिंगन से फलवती अर्थ-प्रतीति का तात्पर्य सन्तानोत्पत्ति ही दृष्टिगत रख कर इस सूत्र की रचना की है।

तं कामसूत्रान्नागरिकजनसमवायाच्च प्रतिपद्येत ॥ १३ ॥

उस कामविज्ञान को कामसूत्र जैसे शास्त्रों से तथा काम-व्यवहार-निपुण नागरिकों से प्राप्त करना चाहिए ॥ १३ ॥

तमित्युक्तस्वरूपं सामान्यं विशेषम्, प्रधानमप्रधानं च, कामसूत्रादस्मादेव, शास्त्रेऽधिकृतो यः इतरश्च नागरिकसमवायात्कामव्यवहारज्ञसंपर्कात्प्रतिपद्येतेति ॥

कामसूत्रकार का यह आग्रह है कि कामशास्त्र का अध्ययन कामसूत्र जैसे आचार्यप्रोक्त आकर ग्रंथों से करे अथवा सुयोग्य नागरिक से। यहाँ पर शास्त्र

१. छान्दोग्य० २।१।३।१।

और आचार्य दोनों की महत्ता प्रस्तुत की गई है किसी भी विषय को समझने तथा उस पर योग्यता प्राप्त करने के लिए शास्त्र और आचार्य की शरण लेनी चाहिए। गीता में भगवान् कृष्ण ने 'तद्विद्धिप्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'—तथा 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणान्ते'—कह कर इस परंपरा की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने यह भी स्पष्ट घोषित किया है कि जो व्यक्ति शास्त्रविधि को छोड़ कर इधर-उधर भटकता है वह न तो सिद्धि प्राप्त कर सकता है, न लौकिक सुख प्राप्त कर सकता है और न मोक्ष ही प्राप्त कर सकता है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥[1]

कामसूत्रकार का नागरिकजन से तात्पर्य विदग्धजन, रससिद्ध अथवा कामशास्त्र के आचार्य से है। आचार्य वही है जो शिष्य को ऐसी शिक्षा दे कि वह धर्म, अर्थ, काम को सहज प्राप्त कर मोक्षगामी बने। उपनिषद् का ऋषि-शिष्य को भलीभाँति शिक्षित कर चुकने के बाद उसे उपदेश देता है—

सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः, प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।[2]

सदा सच बोलो, धर्म का आचरण करो, अप्रमत्त होकर स्वाध्याय करते रहो—गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके सन्तान-परंपरा को मत तोड़ना।

सन्तान-परंपरा टूटने न पाए इसलिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व ब्रह्मचारी को विधिवत् कामशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। इसके बाद विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। यही वात्स्यायन के कथन का उद्देश्य है।

अर्थ, धर्म और काम इन तीनों के लक्षण और उनकी प्राप्ति के साधन बतला कर वात्स्यायन इनकी उत्तरोत्तर उत्कृष्टता और प्रामाणिकता बतलाते हैं—

एवं धर्मादीनि युगपत्सेवितुमधिगन्तुं वा न संभवन्तीति गुरुलाघवमपि बुध्येतेत्याह—

एषां समवाये पूर्वः पूर्वो गरीयान् ॥ १४ ॥

धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की संहति में काम से श्रेष्ठ अर्थ है और अर्थ से श्रेष्ठ धर्म है ॥ १४ ॥

समवाये—संनिपाते, तदुपायसंनिधानात्। पूर्वः पूर्व इति—कामादर्थो गरीयान् कामस्यार्थसाध्यत्वात्। ततोऽपि धर्मः, अमुत्राप्यर्थस्य धर्मसाध्यत्वात् ॥ १४ ॥

१. गीता अ० १६ श्लोक २३।
२. तैत्तरीय० बल्ली १ अनु० ११ अ० १।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, काम-क्रोध-लोभ से रहित होना, प्राणियों की प्रिय और हितकारिणी चेष्टा में तत्पर रहना—ये सब वर्णों के सामान्य धर्म हैं।

वात्स्यायन वर्णाश्रम व्यवस्था के पक्षपाती हैं। इसीलिए उन्होंने सामान्य भाव से धर्म को श्रेष्ठ बतलाया है।

अहिंसा समाज व्यवस्था और सहअस्तित्व को क़ायम रखती है, संसार में जो कुछ है वह सत्य ही है इसलिए सत्य सर्वोपरि धर्म है तथापि अहिंसा को अपनाये रखना चाहिए। अहिंसा को छोड़ देने से सत्य भी हाथ नहीं आता है।

चोरी न करने को अस्तेय कहते हैं। अस्तेय सत्य व्यवहार का एक अंग है सत्य के इसी अंग पर समाज के व्यवहार आधारित रहते हैं।

अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तुओं के लेने या उपभोग करने की इच्छा न रखना 'अकाम' है। तात्पर्य यह कि मनुष्य को अपनी इच्छाएँ और आवश्यकताएँ सीमित रखनी चाहिए।

अहिंसा का दूसरा रूप अक्रोध है। अपने अन्दर छिपे हुए क्रोध को पहचानना हर मनुष्य का कर्त्तव्य है।

सर्वभूतहित की भावना मनुष्य जीवन को ऊँचा उठाने में सर्वोपरि है। सत्य, अहिंसा, अक्रोध और अकाम आदि सभी इसके अन्तर्गत हैं। सर्वात्मभाव हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिए और सर्वभूतहित हमारी साधना होनी चाहिए।

इन्हीं कारणों से वात्स्यायन ने धर्म को अर्थ और काम से श्रेष्ठ माना है। जो व्यक्ति धर्म की इन भूमिकाओं को स्वीकार कर लेता है उसके लिए अर्थ और काम करतल गत हैं। आचार्य का मुख्य प्रयोजन कामशास्त्र की महत्ता की व्याख्या और उसकी व्यावहारिक उपयोगिता व्यक्त करना है, किन्तु जब तक व्यक्ति धर्म के तत्त्व को नहीं समझता है तब तक वह कामतत्त्व की देहली तक नहीं पहुँच सकता है।

नायं सर्वविधिविषयक्रम इत्यत आह—

अर्थश्च राज्ञः। तन्मूलत्वाल्लोकयात्रायाः। वेश्यायाश्चेति त्रिवर्गप्रतिपत्तिः॥ १५॥

इस प्रकार के सामान्य नियम के बाद अर्थ, धर्म, काम के विशेष नियमों का उल्लेख करते हैं—अर्थ सांसारिक जीवन का मूलसूत्र है इसलिए राजा के लिए धर्म और काम से अधिक अर्थ आवश्यक होता है और वेश्या के लिए सबसे अधिक धन और काम आवश्यक होता है। धर्म, अर्थ और काम के लक्षण और उनकी प्राप्ति के साधन समाप्त हुए॥ १५॥

अर्थस्तु राज्ञो गरीयान् तन्मूलकत्वादिति, वर्णाश्रमाचारलक्षणा लोकयात्रा सा मा भूदन्यथेति तस्याः पालनं राज्ञो धर्मः, तच्च प्रभुशक्तौ सत्याम्। प्रभुशक्तिश्च कोषदण्डबलम्, ते चार्थत इति तन्मूला लोकयात्रा।

वेश्यायाश्चार्थो गरीयान्, अर्थप्रतिबद्धत्वात्तज्जीविकायाः। वेश्या हि कामातुरब्राह्मणाभिप्रेतनागरकविषयौ धर्मकामावुपनतौ त्यक्त्वा पश्चाद्भविष्यत इत्यनिष्टेऽप्ययमर्थद इति प्रवर्तते। त्रिवर्गप्रतिपत्तिरनुष्ठानावबोधलक्षणोक्तेत्यर्थः॥१५॥

चाणक्य का कहना है कि—

धर्मस्य मूलमर्थः—धर्म का मूल अर्थ है।

अर्थस्य मूलं राज्यम्—अर्थ का मूल राज्य है।

राज्यमूलमिन्द्रियजयः—राज्य का मूल इन्द्रियजय है।

कौटल्य के अनुसार राजा की अर्थप्रधान वृत्ति होनी चाहिए। उससे वह धर्म और राज्य दोनों को उपलब्ध कर सकता है और राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए उसे इन्द्रियजित होना चाहिए। कौटल्य के इन विचारों से वात्स्यायन के उक्त विचार पूर्ण साम्य रखते हैं।

इदानीं विप्रतिपत्तिपूर्विकां संप्रतिपत्तिं दर्शयन्नाह—

धर्मस्यालौकिकत्वात्तदभिदायकं शास्त्रं युक्तम्। उपायपूर्वकत्वादर्थसिद्धेः। उपायप्रतिपत्तिः शास्त्रात्॥ १६॥

धर्म का बोध कराने वाले शास्त्र की आवश्यकता व्यक्त करते हुए वात्स्यायन कहते हैं—

धर्म परमार्थ का सम्पादन करता है, इसलिए धर्म का बोध कराने वाले शास्त्र का होना आवश्यक और उचित है। अर्थसिद्धि के लिए कई तरह के उपाय करने पड़ते हैं, इसलिए उन उपायों को बतानेवाले अर्थशास्त्र की भी आवश्यकता है॥ १६॥

धर्मस्येत्यादि। कामसूत्र एव तद्विप्रतिपत्तिं दर्शयति—अलौकिकत्वादिति, यथोक्तं प्राक्। अभिधायकं ज्ञापकम्। अर्थसिद्धेरिति–अर्जनवर्धनाख्या चार्थसिद्धिः। अन्यथोपायं विना प्रवर्तमानस्यानर्थोऽपि स्यात्। तत्संशयश्च तत्र धर्मार्थमर्थार्थं च शास्त्रं युक्तम्॥ १६॥

धर्म का ज्ञान तीन प्रकार से होता है—एक तो धर्मात्मा विद्वानों की शिक्षा, दूसरा आत्मा की शुद्धि तथा सत्य को जानने की इच्छा और तीसरा परमात्मा प्रोक्त वेद-विद्या का ज्ञान। अथर्ववेद धर्म का लक्षण बतलाते हुए कहता है—

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च[1]।

तैत्तिरीय आरण्यक[2] धर्म के विषय का विस्तृत विवेचन करता है—जिसका सारांश यह है कि ऋत से लेकर प्रजाति पर्यन्त धर्म के जो बारह लक्षण होते हैं उन सबके साथ स्वाध्याय और प्रवचन करने का उपदेश है। क्योंकि सभी गुणों में विद्या गुण प्रधान है इसलिए सब धर्म लक्षणों के साथ स्वाध्याय और प्रवचन करने का वेदविहित नियम है।

तैत्तिरीय आरण्यक धर्म का पारमार्थिक रूप व्यक्त करते हुए बड़े जोरदार शब्दों में कहता है—

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो भूर्भुवः स्वः सुवर्ब्रह्मैतद् पास्वैतत्तपः॥

दम, शम, दान, यज्ञ और प्रेमभक्ति से तीनों लोकों में व्यापक ब्रह्म की जो उपासना की जाती है उसे तप कहते हैं। ऋत अर्थात् तत्त्व मानने, सत्य बोलने, श्रुत अर्थात् सब विद्याओं को सुनने, शान्त अर्थात् अच्छे स्वभाव के धारण करने में प्रवृत्त रहना ही तप है। सत्य का नाम ऋत भी है। सत्य-भाषण और सत्य के आचरण से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है क्योंकि सत्य से ही नित्य मोक्षसुख और संसारसुख प्राप्त होता है और फिर उससे कथमपि स्खलन नहीं होता है।

याज्ञवल्क्य स्मृति का कहना है कि पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्रांग मिश्रित वेद ये चौदह विद्याएँ धर्म के स्थान हैं—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥[3]

और मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वसिष्ठ—ये बीस ऋषि धर्मशास्त्र के रचयिता हैं। इन सभी धर्मशास्त्रकारों ने यही बताया है कि यज्ञ करना, सदाचार, इन्द्रियों का दमन, अहिंसा, दान, वेदों का स्वाध्याय करना—यही परमधर्म है। धर्म का मात्र उद्देश्य है विषयों से चित्तवृत्तियों का निरोध कर आत्मज्ञान प्राप्त करना। इसीलिए वात्स्यायन ने धर्म को पारमार्थिक कहा है।

अर्थ का क्षेत्र मोक्ष और धर्म की अपेक्षा अधिक व्यापक माना गया है। जिस प्रकार आत्मा के लिए मोक्ष की, बुद्धि के लिए धर्म की और मन के लिए काम की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। मोक्ष और धर्म की आवश्यकता केवल मनुष्य को ही होती है किन्तु अर्थ और काम के बिना तो मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग और तृण, पल्लव

१. अथर्ववेद १२।५।३।७। २. प्रपाठक १०। ३. आचाराध्याय ३।

किसी का भी निर्वाह नहीं हो सकता। एक बार काम के विना भी काम चलाया जा सकता है, मनोरंजन को त्यागा जा सकता है किन्तु जिस अर्थ पर प्राणिमात्र के शरीर स्थिर हैं, सभी की जिन्दगी ठहरी हुई है, उस अर्थ की प्रधानता का अनुमान अनायास किया जा सकता है और उसकी मीमांसा भी बड़ी सावधानी से करनी चाहिए। क्योंकि उसके अनुचित संग्रह से मोक्ष-मार्ग विगड़ सकता है। आर्य-सभ्यता में इसलिए अर्थ का महत्त्व स्वीकार करते हुए अर्थशास्त्रों की रचनाएँ हुई हैं।

अर्थशास्त्र जीवन की प्रत्येक समस्या का सभी दृष्टियों से समाधान करता है। पृथ्वी को प्राप्त करने तथा उसकी रक्षा के लिए प्राचीन आचार्यों ने जितने अर्थशास्त्र लिखे हैं प्रायः उन सभी को संगृहीत कर कौटल्य ने कौटलीय अर्थशास्त्र की रचना की है, इसी कौटलीय अर्थशास्त्र की लेखन-प्रणाली को अपनाकर वात्स्यायन ने कामसूत्र की रचना की है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र[1] में धर्म और अर्थ में कुशल राजपुरोहित तक का उल्लेख है। धर्मसूत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय धर्म या विधान ही है किन्तु अर्थशास्त्र में सभी आर्थिक सिद्धान्तों और नियमों का विवेचन है। अर्थशास्त्र का मुख्य विषय राजनीति है। मानवमात्र के समस्त लौकिक कल्याणों का स्वरूप अर्थशास्त्र के अन्तर्गत निहित है। इसलिए जीवन के सभी प्रयोजनों की सिद्धि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत निहित है।

कामार्थं त्वयुक्तमित्याह—

तिर्यग्योनिष्वपि तु स्वयं प्रवृत्तत्वात् कामस्य नित्यत्वाच्च न शास्त्रेण कृत्यमस्तीत्याचार्याः ॥ १७ ॥

धर्म और अर्थ संबंधी शास्त्रों की उपयोगिता को सिद्ध करने के बाद कामशास्त्र की उपयोगिता पर अन्य आचार्यों का मत उद्धृत किया जा जा रहा है—

पशुपक्षियों में भी विना सिखाए स्वयं काम की प्रवृत्ति देखी जाती है तथा काम के अविनाशी होने से यह सिद्ध होता है कि इस विषय का शास्त्र बनाने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा कुछ आचार्यों का कहना है ॥ १७ ॥

तिर्यग्योनिष्वपीति—गवादिष्वपि तमोबहुलेषु शास्त्रोपदेशं विना कामः प्रवर्तमानो दृश्यते, किं पुनर्मनुष्येषु रजोबहुलेषु न प्रवर्तते। तथा चोक्तम्—'विनोपदेशं सिद्धो हि कामोऽनाख्यातशिक्षितः। स्वकान्तारमणोपाये को गुरुर्मृगपक्षिणाम् ॥' इति।

१. आपस्तम्ब २, ५।१०।१४।

नित्यत्वाच्चेति—आत्मनि द्रव्यपदार्थे सदैवेच्छाद्वेषादयो गुणाः स्थिताः ततश्च नित्यः कामः। तथा चोक्तम्—'मुमुक्षवोऽपि सिद्धयन्ति विरागाद्राग-पूर्वकात्। विषयेच्छानुबन्धिन्यो निसर्गात्प्राणिनां धियः ॥' तस्मात् प्रवर्तमानेन शास्त्रेण कार्यं तन्निवर्तनं तु युक्तम्। आचार्या भर्मार्थमोक्षवादिनः ॥ १७ ॥

अत्र संप्रतिपत्तिमाह—

संप्रयोगपराधीनत्वात् स्त्रीपुंसयोरुपायमपेक्षते ॥ १८ ॥

इसका समाधान करते हुए वात्स्यायन मुनि कहते हैं—

सम्भोग में पराधीन होने से स्त्री और पुरुष को उस पराधीनता से बचने के लिए शास्त्र की अपेक्षा हुआ करती है ॥ १८ ॥

संप्रयोगपराधीनत्वादिति—विशेषः सामान्यो वा कामः संप्रयोगपराधीनः। संप्रयोगश्च द्विविधः, आयतनसंप्रयोगोऽङ्गसंप्रयोगश्च। तत्रायतनं कामस्य स्त्र्यधिष्ठानम्, अङ्गानि च माल्यादीनि। तथा चोक्तम्—'मुखं कामस्तदङ्गानि भूषणालेपनस्रजः। तथोपवनहर्म्याग्रवल्लकीमदिरादयः ॥ यस्यायतनमुद्दाम-रूपयौवनविभ्रमाः। ललनाश्चाटुदाक्षिण्याश्चाकृष्टजनमानसाः ॥' इति।

तत्र य आयतनसंप्रयोगः स च द्विविधः, बाह्य आभ्यन्तरश्च। तत्र यो रहसि स आभ्यन्तरो रताख्यः, स विशेषकामस्य निमित्तम्। बाह्यः समागम-लक्षणो रतस्य।

यश्च बुद्धीन्द्रियाणां यथास्वमङ्गैः संप्रयोगः सोऽङ्गसंप्रयोग इति। इन्द्रियार्थ-संनिकर्षलक्षणः। स च सामान्यकामस्य निमित्तम्।

अनयोश्च कामयोर्यथास्वं पुर्वोक्तमेवेच्छाकारणम्। तत्पूर्वकत्वात्। तद-भावेऽभावात्।

तत्राद्यः संप्रयोगः समागमलक्षणः, स स्त्रीपुंसयोरन्यतरानिच्छया रक्षणा-ल्लज्जया भयाद्वा परतंत्रायान् न घटत इत्यत्रायमुपायमपेक्षते।

रताख्यश्च पाश्चात्यश्चतुःषष्टिप्रयोगानभिज्ञायां कथं स्यादिति तन्त्र-मुपायम्।

द्वितीयोऽपि संप्रयोगो नित्यनैमित्तिकनागरिकसंवृत्तं विना न भवतीत्यु-पायापेक्षा ॥ १८ ॥

वस्तुतः जो धर्म के व्यापक रूप को उसके प्रच्छन्न रहस्य को समझने की चेष्टा नहीं करते हैं वे कामशास्त्र का विरोध किया करते हैं। कामशास्त्र के विरुद्ध यह प्रवृत्ति पुरातनकाल से चली आ रही है। काम—मैथुन को स्वभावसिद्ध मान कर मैथुनक्रिया में मनुष्य और पशु को समान मानने वाले नीतिकारों ने भी कामशास्त्र की उपयोगिता पर ध्यान नहीं दिया है।

कामशास्त्र व्यभिचार फैलाने का साधन है, यह प्रवृत्ति स्थूल विचारों से उत्पन्न होती है। राज्य—सत्ताएँ भी अपनी कठोर धाराओं द्वारा इस प्रवृत्ति का समर्थन करती हैं।

किन्तु वात्स्यायन का कहना है कि संभोग के लिए शास्त्र-ज्ञान आवश्यक इसलिए है कि यदि स्त्री अथवा पुरुष दोनों में से कोई भी भयभीत, लज्जान्वित अथवा पराधीन होता है तो उसे उपायों की आवश्यकता पड़ती है—ये उपाय शास्त्र बतलाते हैं। दाम्पत्य जीवन अथवा संभोग-सुख को आनन्ददायक बनाने के लिए ६४ कलाओं की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी कलाओं, ऐसे उपायों का ज्ञान धर्मशास्त्र या अर्थशास्त्र से नहीं होता है। इसलिए वात्स्यायन यह व्यवस्था देता है कि गार्हस्थ्य जीवन सुखी, सम्पन्न और आनन्दमय बनाने के लिए कामशास्त्र का जानना अत्यावश्यक है।

कामशास्त्र से ही यह जाना जाता है कि सम्भोग का सर्वोत्तम और आध्यात्मिक उद्देश्य है पति-पत्नी में आध्यात्मिकता, मानव-प्रेम और परोपकार तथा उदात्त भावनाओं का विकास। इस उद्देश्य का ज्ञान पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों को नहीं हो सकता। संभोग के उद्देश्य को न समझने वाले मनुष्य गाय, बैल, भैंस की भाँति रमण करने वाले होते हैं।

कामशास्त्र से ही हमें यह बोध होता है कि मैथुन का वास्तविक सुख- १. सम्भोग, सन्तानोत्पत्ति और जननेंद्रिय तथा कामसंबंधी समस्याओं के प्रति आदर्शमय भाव, २. मनुष्य जाति का उत्तरदायित्व, ३. अपने सहचर या सहचरी के प्रति उच्चभाव, अनुराग, श्रद्धा और हित की कामना—इन तीन भावों पर निर्भर है।

दाम्पत्य प्रेम या प्रिय-प्रेयसी की आत्मीयता के बिना विवाह या प्रेम विफल होता है। दम्पतियों में परस्पर कलह, अनबन, सम्बन्ध-विच्छेद, गुप्त व्यभिचार, वेश्यावृत्ति, नारी-अपहरण, अप्राकृतिक व्यभिचार आदि अनेकों दुष्परिणामों और घटनाओं का मूल कारण कामशास्त्र के प्रति उदासीनता और अनभिज्ञता है।

सा चोपायप्रतिपत्तिः कामसूत्रादिति वात्स्यायनः ॥ १९ ॥

कामशास्त्र पति-पत्नी के धार्मिक और सामाजिक नियम की शिक्षा देता है। जो दम्पती कामशास्त्र के अनुसार दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते हैं उनका जीवन काम-दृष्टि से पूर्णतया सुखी देखा जाता है। वे जीवन भर एक दूसरे से सन्तुष्ट रहते हैं। उनके जीवन में एकपत्नीव्रत या पातिव्रत को भंग करने की चेष्टा या आकांक्षा कभी पैदा ही नहीं हुआ करती है और उपायों द्वारा प्राप्त वह ज्ञान कामसूत्र से प्राप्त होगा—यह वात्स्यायन का मत है ॥ १९ ॥

उपायपरिज्ञानं च कामसूत्रात् तेनोपदिश्यमानत्वात्। वात्स्यायन इति स्वगोत्रनिमित्ता समाख्या, मल्लनाग इति च संस्कारिकी ॥ १९ ॥

कामसूत्र जैसे शास्त्रों से ही यह जाना जाता है कि सीत्कार, विलास और उपसर्ग—सम्भोग की ये तीन मुख्य क्रियाएँ हैं। इनके अतिरिक्त तीन प्रकार के पुरुष, तीन जाति की स्त्रियाँ, तीन प्रकार का सम सम्भोग, छह प्रकार का विषम सम्भोग, सम्भोग के तीन वर्ग, वर्ग-भेद से ९ प्रकार के सम्भोग, काल-भेद से ९ प्रकार के संभोग और सम्भोग के सभी २७ प्रकार हैं। सम्भोग काल में पुरुष और स्त्री को कब और कैसा आनन्द मिलता है, प्रथम समागम में कौन-सी गड़बड़ी होती है, वीर्यपात का स्त्री पर क्या प्रभाव पड़ता है, सम्भोग काल में विभिन्न आसनों की क्या उपयोगिता होती है, अनाड़ी व्यक्तियों द्वारा संभोग किए जाने पर स्त्रियों में कैसे-कैसे रोग पैदा हो जाते हैं इत्यादि विधियाँ जो स्त्री-पुरुष की परस्पर दूध और पानी की भाँति एकात्म बनाए रखती हैं, कामशास्त्र के अध्ययन से ही प्राप्त होती हैं। इसलिए आचार्य का कथन है कि काम के लिए शास्त्र उसी प्रकार उपयोगी है जैसे धर्म और अर्थ के लिए होता है।

गवादिषु कथमिति चेत्तदाह—

तिर्यग्योनिषु पुनरनावृतत्वात् स्त्रीजातेश्च, ऋतौ यावदर्थं प्रवृत्तेरबुद्धिपूर्वकत्वाच्च प्रवृत्तीनामनुपायः प्रत्ययः ॥ २० ॥

पशु-पक्षियों में तो स्त्री जाति स्वाधीन, बन्धनरहित होती है। जिससे ऋतुकाल ही में वह तृप्त होती है। संभोग में उसकी प्रवृत्ति होने से तथा विवेक बुद्धि न होने से पशु-पक्षियों के लिए स्वाभाविक कामेच्छा ही काम-प्रवृत्तियों को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त उपाय है ॥ २० ॥

पुनः शब्दो विशेषणार्थः। अनावृतत्वादिति—रक्षणाद्यावरणाभावात् स्त्री-जातिः स्वतन्त्रा, किं तत्रोपायेनेत्यनुपायः प्रत्यय इति संबन्धः। प्रत्ययशब्देनोभयरूपोऽपि संप्रयोग उक्तः, तस्य कामोत्पत्तौ निमित्तत्वात्। तत्रावरणाभावादाचार्योक्तोपायशून्यः समागम इत्यर्थः।

ऋतौ यावदर्थमिति। ऋतुकाल एव ते तिर्यञ्चः संप्रयुज्यन्ते, मनुष्यास्तु प्रजार्थमृतौ स्त्रीरमणार्थं चानृतावपीत्यसमानम्। तथा चोक्तम्—'ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम्' इति।

तत्रापि यावदर्थं यावदेव तृप्तिलक्षणोऽर्थो निष्पद्यते तावदेव संप्रयुज्यन्ते। न तु द्वितीयं संप्रयोगिणमपेक्षन्ते, किमस्य तृप्तिरभून्न वेति। तस्मादसमानार्थत्वादनुपाय आन्तरसंप्रयोगः।

तत्र समानार्थजन्यमेव प्रेम स्त्रीरक्षणोपायो नास्तीति मनुष्येष्वेवमिति चेदत एवास्योपदेशः। अन्यथान्यसमानार्थत्वादनुपायः। तत्पत्न्याः पुरुषान्तरगमने न कश्चित्पुरुषार्थोऽस्य स्यात्। तथा चोक्तम्—'भजते संभृतप्रेमा परं चेदस्य कामिनी। नष्टे धर्मे हते वृत्ते सुखं दूरे हतं कुलम्॥' तस्मात्समानार्थताजन्यमेव प्रेम स्त्रीरमणोपायः। यच्च स्त्रीरक्षणार्थं मनुप्रोक्तमसुकुमारत्वसाधनार्थं कुट्टनादि गृहकर्म तदुपायोद्वेगजननादनुपाय एव। तथा चोक्तम्—'कर्माण्यसुकुमाराणि रक्षणार्थेऽवदन्मनुः। तासां स्रज इवोद्दामगजालानोपसंहिताः॥ असति प्रेम्णि-तत्सर्वमित्याचार्या व्यवस्थिताः। समानार्थतया तच्च न शास्त्रेणोपदिश्यते॥' इति।

अबुद्धिपूर्वकत्वादिति—धर्मोऽर्थः पुत्राः संबन्धः पक्षवृद्धिः स्यादित्येवं बुद्धि-पूर्वं न प्रवर्तन्ते, केवलं पशुधर्ममात्रेणेत्यनुपायः प्रत्यय आन्तरसंप्रयोगः। अनु-बन्धोपायरहितत्वात्। तस्माद्दैवरक्ताः किंशुका इति किं तिर्यग्योनिषु शास्त्र-प्रणयनेन। अनुकूलेषु वा पुरुषेषु। इतरत्र तु विपर्ययेण सोपायः प्रत्यय इति युक्तं शास्त्रप्रणयनम्॥ २०॥

वात्स्यायन का कहना है कि मनुष्य-योनि में उत्पन्न स्त्री और तिर्य-ग्योनि में उत्पन्न चिड़िया में बहुत अन्तर होता है। स्त्री चिड़िया की तरह न तो स्वतंत्र होती है और न विवेकशून्य। वह समाज और वंश की मर्यादाओं से बँधी रहती है। उसमें लोक-लज्जा, कुल-लज्जा और धर्म-भय रहता है। इसीलिए अक्सर किसी विशेष पुरुष का किसी विशेष स्त्री के साथ संबंध होने में अनेक कठिनाइयाँ और बाधाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं। पशुपक्षियों के समान मनुष्य की कामेच्छा केवल पाशविक धर्म नहीं है। मनुष्य को धर्म, अर्थ, संतानोत्पत्ति, वंशवृद्धि कई उद्देश्य सामने रखने पड़ते हैं।

इसके अतिरिक्त पशुपक्षी में भाई-बहिन, माता-पिता के संबंधों का विवेक नहीं रहता है और न उनका दाम्पत्य जीवन आजीवन ही रहता है। दाम्पत्य जीवन को आजीवन सुख से बिताने के लिए शास्त्र की नितान्त आवश्यकता रहती है।

धर्मे विप्रतिपत्तिमाह—

न धर्मांश्चरेत्। एष्यत्फलत्वात्। सांशयिकत्वाच्च॥ २१॥

अब धर्म, अर्थ और काम के आचरण करने की आवश्यकता पर पुनः शंका उपस्थित करते हैं—

धर्मों का आचरण न करना चाहिए क्योंकि भविष्य में मिलनेवाला फल अनिश्चित होता है। उसके मिलने में भी संशय होता है॥ २१॥

एष्यत्फलत्वादिति—यज्ञादयो नैहलौकिका जन्मान्तरफला उक्ताः। हस्त-गतद्रव्यत्यागं न प्रेक्षावान्समीहते किं त्विहैव तेन कृष्यादिफलं निष्पाद्योपभुङ्क्ते,

न परम्परामपेक्षते । सांशयिकत्वाच्च भविष्यतः फलस्येति । उपस्कारतस्तप-श्चर्याक्लेशादर्थक्षयाच्च निष्पादितेऽपि यज्ञादौ ततः किं स्वर्गादिफलं स्यान्न वेति संदिग्धम्, कारणानां कार्योत्पादननियमादर्शनात् । संदिग्धे च कोऽसंशयितार्थ-त्यागेन प्रवर्तते इति हेतुद्वयम् ॥ २१ ॥

तत्र प्रथमस्य लोकप्रसिद्धिमाह—

को ह्यबालिशो हस्तगतं परगतं कुर्यात् ॥ २२ ॥

कौन ऐसा मूर्ख होगा जो हाथ में आई हुई वस्तु को दूसरे के हाथ सौंप देगा ॥ २२ ॥

को हीति । अबालिशः प्रेक्षावान् । यथा कश्चित्स्वहस्तगतं द्रव्यं परहस्तीकृतं कार्यकाले स्वयं गत्वा साध्यं हारितं भक्षितं वानेन स्यादिति न विप्रकृष्टं करोति । तथा जन्मान्तरे भोक्ष्येऽहमिति यज्ञादिषु नियोज्य विप्रकृष्टं कः कुर्यात् ॥ २२ ॥

तत्र तत्स्यादिह द्रव्यसाध्यं फलं तावन्मात्रकं तावत्कालं वामुत्र विपरीतमित्याह—

वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात् ॥ २३ ॥

और यदि वह सुख मिलना निश्चित भी हो तब भी यह लोकोक्ति चरितार्थ होती है—

कल मिलनेवाले मोर से आज मिलता हुआ कबूतर अच्छा है ॥ २३ ॥

वरमद्येति । यथा पक्षिमांसार्थिनो महतः श्वो मयूरलाभादद्य कपोत-लाभोऽपि गरीयांस्तद्वदिहापीति ॥ २३ ॥

द्वितीयस्य लोकप्रसिद्धिमाह—

वरं सांशयिकान्निष्कादसांशयिकः कार्षापणः । इति लौकायतिकाः ॥ २४ ॥

तथा जैसा कि नास्तिकों का कथन है कि—असंदिग्ध रूप से मिलने वाला ताँबे का कार्षापण सन्देह से प्राप्त होने वाले सोने के कार्षापण से अच्छा है ॥ २४ ॥

वरमिति । गृहाण कार्षापणम्, नो चेदेष्यति मेऽद्य हेमशतं ततो निष्कंदास्यामीति । तत्र प्रत्युपस्थितकार्यस्यासंदिग्धः स्वल्पोऽपि कार्षापणो गरीयान् । संदिग्धनिष्कात् । लौकायतिका इति लौकायतमधीयते ये । उक्थादिपाठाट्ठक्प्रत्ययः ॥ २४ ॥

अब वात्स्यायन मुनि इसका समाधान करते हैं—

(१) धर्मों का आचरण अवश्य करना चाहिए क्योंकि धर्म का उपदेश करने वाले वेद और शास्त्र ईश्वरकृत और मंत्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा बनाए गए हैं इसलिए वे निश्चय ही सत्य हैं।

२–शास्त्रों द्वारा बताए गए अभिचार कर्मों एवं शान्ति, पुष्टिवर्द्धक कर्मों के फलों का अनुभव इसी जन्म में होता है।

३–नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, तारागण और ग्रह-चक्रों की प्रवृत्ति भी लोगों की भलाई के लिए बुद्धिवाद—सम्पन्न जान पड़ती है।

४–लोगों का जीवन वर्णाश्रम धर्म पर निर्भर है।

तत्र संप्रतिपत्तिमाह—

शास्त्रस्यानभिशङ्क्यत्वादभिचारानुव्याहारयोश्च क्वचित्फलदर्शनान्नक्षत्रचन्द्रसूर्यताराग्रहचक्रस्य लोकार्थं बुद्धिपूर्वकमिव प्रवृत्तेर्दर्शनाद्वर्णाश्रमाचारस्थितिलक्षणत्वाच्च लोकयात्राया हस्तगतस्य च बीजस्य भविष्यतः सस्यार्थे त्यागदर्शनाच्चरेद्धर्मानिति वात्स्यायनः ॥ २५ ॥

५–हाथ में आए हुए बीज को भावी अनाज की आशा से त्याग देना जैसे मूर्खता नहीं है उसी प्रकार भावी मोक्ष की आशा रखकर धार्मिक कृत्यों को करना सार्थक है; व्यर्थ नहीं ॥ २५ ॥

शास्त्रस्येति। धर्मस्यालौकिकत्वात्तदभिधायकं शास्त्रमुक्तम्, तच्छास्त्रं पौरुषेयमपौरुषेयं च, तत्र पूर्वमभिशङ्कनीयम्—किमिदं सत्यं मिथ्या वेति, पुरुषा हि रागादिभिरविद्यया चोपप्लुता वितथमपि ब्रुवन्ति। अपौरुषेयं च वेदाख्यं पुरुषसंबन्धाभावाददुष्टमनभिशङ्कनीयम्। यथोक्तम—'दोषाः सन्ति न सन्तीति पौरुषेयस्य युज्यते। वेदे कर्तुरभावात्तु दोषशङ्कैव नास्ति नः॥' इति। अपौरुषेयत्वसाधनमन्यत्रोक्तम्। तेनेह चरेद्धर्मानिति संबन्धः तेन संशयितत्वादित्येतदसिद्धम्।

अभिचारो हिंसात्मकं कर्म। अनुव्याहारः शान्तिकपौष्टिकम्। तयोश्चोदितयोः 'अभिचरञ्श्येनेन यजेत्' इत्यादिना। क्वचिदिति यत्र प्रयुज्यते [तत्र] हिंसाशान्तिपुष्टिफलदर्शनाच्छेषस्याप्यग्निहोत्रादेः स्वर्गादिफलं भविष्यतीति चरेद्धर्मान्। नह्यपौरुषत्वेनाभिन्नयोः शास्त्रावयवयोर्वितथावितथत्वभेदो युज्यते। वितथत्वे चेतरस्यापि वितथत्वप्रसङ्गात्।

अदृष्टसाधनमाह नक्षत्रेति। नक्षत्राण्यश्विन्यादीनी। चन्द्रसूर्यौ प्रसिद्धौ। ताराग्रहा अङ्गारकादयः पञ्च। तेषां चक्रमिव चक्रं संनिवेशविशेषो द्वादशराशिविभक्तः। तस्य—लोकार्थं नात्मार्थम्। बुद्धिपूर्वकमिवेति—बुद्धिपूर्वकस्येव। यथा कश्चित्पुरुषो बुद्धिपूर्वं प्रवर्तते तद्वदेवैते सूर्यादयो नक्षत्रेण युज्यमाना अन्यथान्यथा प्रवर्तमाना दृश्यन्ते। न च तथैवेतीवार्थः तथा ह्येषां न 'लोकस्येदं करिष्यामः' इति प्रवृत्तिः।

सा च शास्त्रान्तरे बहुप्रकारोक्ता। दर्शनादिति वचनात्प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धेति-दर्शयति। तस्यां च प्रवृत्तौ लोकस्य शुभाशुभात्मकं फलं द्विविधम्। साधारण-मसाधारणं च। तत्र साधारणं सुभिक्षदुर्भिक्षादि। तच्च ग्रहचारे द्रष्टव्यम्। असाधारणं तु प्रतिसत्त्वं नियतं लाभालाभसुखदुःखादि। तच्च जातके द्रष्टव्यम्। सैवंविधा प्रवृत्तिः कारणान्तरमदृष्टं गमयति। तच्च लोकस्य शुभाशुभात्कर्मणः। किमन्यथैषामेकरूपाणां कारणान्तरनिरपेक्षाणां सदा प्रवृत्तिरप्रवृत्तिर्वा स्यात्। कालान्नियम इति चेत्सोऽपि कारणनिरपेक्षः सर्वदा स्यात्। तस्मादस्ति तत्प्रवर्तकमदृष्टमिति चरेद्धर्मम्। उक्तं च–'नक्षत्रग्रहपञ्जरमहर्निशं लोककर्मविक्षिप्तम्। भ्रमति शुभाशुभमखिलं प्रकाशयत्पूर्वजन्मकृतम्॥' इति।

वर्णाश्रमेति—वर्णा ब्राह्मणादयः। आश्रमाः ब्रह्मचारिगृहस्थादयः। तेषामाचारः स्वधर्मः। तस्य स्थितिर्व्यवस्था। सैव लक्षणं यस्या लोकयात्रायाः सा। लौकायतिकैर्मा भूदव्यवस्थायां मात्स्यो न्याय इति दृष्टार्थं वर्णिता। संवरणमात्रं हि त्रयी इति। लोकयात्राविद इति तां च लोकविश्वासनार्थमाचरद्भिः कथं नाचरितो धर्मः। दृष्टार्थश्च यद्यदृष्टार्थोऽपि स्यात्को विरोधः। एतेन 'न धर्मांश्चरेत्' इति प्रतिज्ञाया अभ्युपगमबाधां दर्शयति। यच्चोक्तमेष्यत्फलमत्वादिति तद्दृष्टेऽप्यस्तीति दर्शयन्नाह—हस्तगतस्येति। तुल्ये भविष्यत्फलत्वे सत्यप्येकत्र प्रवृत्तिरन्यत्र निषेध इत्ययुक्तमुक्तम्। न कदाचित्तत्र दृष्टमिति चेत्कथं तर्हि लोकवैचित्र्यम्। नहि सर्वत्र समानाद्दृष्टात्कारणादैश्वर्यादिफललाभः। नापि, स्वाभाविकम्, तदा सिद्ध्यसिद्धिप्रसङ्गात्॥ २५॥

धर्माचरण के लिए वात्स्यायन वेद और शास्त्र को ईश्वरकृत और ऋषि-प्रणीत कह कर इन्हें सत्य मानता है। इनकी सत्यता प्रमाणित होने पर वह धर्म को भी प्रामाणिक मानता है।

(१) वेद ईश्वरकृत हैं—इसके प्रमाण स्वयं वैदिक ग्रंथ हैं—

अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्।
यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः॥
—बृहदारण्यक उपनिषद्

त्रयो वेदा अजायन्त ऋग्वेद एवाग्नेरजायत।
यजुर्वेदो वायोः सामवेदः आदित्यात्॥—ऐनरेय ब्राह्मण
त्रयो वेदा अजायन्त आग्नेर्ऋग्वेदः।
वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः॥ —शतपथ ब्राह्मण
अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात्। —छान्दोग्य उपनिषद्
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ —ऋग्वेद

यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभा विवाराः।—यजुर्वेद
यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपारुषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्॥ —अथर्ववेद

उपर्युक्त उदाहरणों से ऋक्, यजुः, साम और अथर्व की अपौरुषेयता और ईश्वरदत्तता सिद्ध होती है। विधि और मंत्र जिसमें हों वह वेद है। मीमांसा-दर्शन इस पर अपना मत देते हुए कहता हैः—

चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः। विधिमन्त्रयोरकार्थ्यमैकशब्द्यात्॥

अर्थात् प्रेरणात्मक लक्षण वाला अर्थ ही धर्म है। विधि (प्रेरणा) और मंत्र का एक ही अर्थ है क्योंकि प्रेरणात्मकों को मंत्र कहते हैं।

इससे वात्स्यायन के मत की पुष्टि होती है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं और उनमें धर्मोपदेश है।

वात्स्यायन का यहाँ पर शास्त्र से तात्पर्य धर्मशास्त्र से है। स्मृतियाँ धर्मशास्त्र में प्रमुख मानी गयी हैं। मनु, याज्ञवल्क्य आदि साक्षात् कृतधर्मा ऋषियों-मुनियों ने स्मृतियों में जो धर्मादेश, धर्मोपदेश दिया है वह सार्वकालिक और सर्वजनीन है। उनका धर्मोपदेश यथार्थ की पृष्ठभूमि पर सामाजिक अभ्युदय और पारलौकिक कल्याण के लिए हुआ है। इसलिए स्मृतियाँ सत्य हैं, उनके बताए हुए मार्ग पर धर्माचरण करना उचित है—यह वात्स्यायन का अभिप्राय है।

(२) शास्त्र-प्रतिपादित शुभ-अशुभ कर्मों का फल हमें इसी जीवन में मिल जाता है। पूर्वमीमांसा का कथन है कि जिन कर्मों के करने का आदेश श्रुति में मिलता है वे नित्य, नैमित्तिक और काम्य—तीन प्रकार के होते हैं। दैनिक होम नित्यकर्म है, नैमित्तिक कर्म विशेष अवसरों पर किए जाते हैं। ये दोनों आदेश के रूप में हैं और इन्हें अवश्य करना चाहिए। काम्य कर्म विशेष कामनाओं की पूर्ति के लिए किए जाते हैं। प्रत्येक कर्म में कुछ अंश प्रधान और कुछ अंश गौण होते हैं।

यज्ञ, होम का प्राकृतिक और प्रत्यक्ष फल वायुमण्डल की शुद्धि है प्रज्वलित अग्नि अपने ऊपर की और आस-पास की वायु को गर्म करके उसे ऊपर ढकेलती है। शून्य को भरने के लिए इधर-उधर से ठंडी वायु कुंड की ओर खिंची आती है और गर्म होकर वह भी ऊपर जाती है। यह चक्कर जारी रहता है। इस क्रिया में इधर-उधर उड़ते हुए, पड़े हुए हानिकारक जीव कुण्ड से गुजरते हुए भस्म हो जाते हैं। जो कोई भी इस परिवर्तन-क्षेत्र में होता है उसे वायु-शुद्धि का तत्काल फल मिलता है, मंत्रों का पाठ यज्ञ करने

वाले को समुन्नत बनाता है। मीमांसाकार के मत से यज्ञों का जो फल है उसका संबंध वर्तमान से है।[१]

पूर्वमीमांसा का विषय धर्म-जिज्ञासा है और धर्म से वह कर्म अभिप्रेत है जिसकी विधि वेद में बतायी गयी है। इन कर्मों का फल अवश्य मिलता है। यही नहीं कर्म-फल की ही प्राप्ति के लिए किए जाते हैं। मीमांसा के शब्दों में 'फल मनुष्य के लिए है और मनुष्य कर्म के लिए है,'[२] भले ही कर्म की प्रेरणा इसलिए की जाती है कि ऐसा कर्म कल्याणकारी होता है। हमारी नैतिक भावना की माँग यह है कि पुण्य कर्म और सुख का मेल हो। पाप और दुख का मेल हो। जैमिनि इस सिद्धान्त का पक्षपाती है कि शुभ कर्मों के फल शुभ और अशुभ कर्मों के फल अशुभ मिलते हैं। यही वात्स्यायन का भी अभिप्राय है।

(२) नक्षत्र, ग्रह आदि की प्रवृत्ति मानव की भलाई के लिए है। श्रुति के मंत्र भाग में कई स्थलों पर यह बताया गया है कि 'सूर्य ही सब प्रजाओं का प्राण है। सब प्राणी सूर्य से ही पैदा होते हैं।' विषुवद् वृत्त और क्रान्ति वृत्त का शरीर की बनावट से बहुत सम्बन्ध बताया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में इस विषय का विवेचन करते हुए बताया गया है कि—

यथा वै पुरुषः एवं विषुवान्। तस्य यथा दक्षिणोऽर्द्धः एवं पूर्वोऽर्द्धो विषुवतः। यथोत्तरोऽर्द्धः एवमुत्तरोऽर्द्धो विषुवतः तस्मादुत्तर इत्याचक्षते। प्रवाहुक्सतः शिर एव विषुवान्। विदलसंहित इव वै पुरुषः। तद्धापि स्यूमेव मध्ये शीर्ष्णो विज्ञायत इति।[३]

इस प्रकार श्रुति के प्रमाण से सिद्ध है कि मनुष्य की आत्मा अर्धेन्द्र अर्थात् इन्द्र का आधा भाग है। अपूर्णता (अर्द्ध भाग) के रह जाने से मनुष्यादि प्राणियों का आत्मा इन्द्र अपने आपको अपूर्ण—अपर्याप्त समझता है क्योंकि अकेला प्राणी रमण नहीं कर सकता—'तस्मादेकाकी न रमते तद् द्वितीयमैच्छत्।' वह मनोविनोद, क्रीड़ा के लिए दूसरे की इच्छा करता है। यह जीवमात्र का नियम है।

इसलिए अनेक श्रुतियों का कथन है कि जब तक पुरुष दार-संग्रह—विवाह नहीं कर लेता तब तक वह अधूरा रहता है।[४] वाजिश्रुति का कहना है जिन दो आत्माओं (स्त्री-पुरुषों) का संबंध होता है, वे तब तक आधे या

१. पूर्वमीमांसा अ० ६। २. पूर्वमीमांसा ३ : १ : ५–६।

३. शतपथ—८।७।२।३।

४. अर्द्धमुहैतदात्मनो यन्मिथुनम्। यदा वै स मिथुनेन अथ सर्वोऽथ कृत्स्नः।

अधूरे रहते हैं जब तक एक अर्द्ध का दूसरे से मिथुन संबंध नहीं हो जाता है। यह जाया (स्त्री) आधा भाग है। इस लिए जब तक जाया प्राप्त नहीं की जा सकती तब तक सृष्टि नहीं हो सकती है।[1]

(४) लोगों का जीवन वर्णाश्रम धर्म पर निर्भर है—वात्स्यायन का यह कथन संकुचित, सीमित दृष्टिकोण से परे जान पड़ता है। वात्स्यायन के मत से ब्राह्मणादि वर्ण केवल मनुष्यों में ही नहीं अपितु सृष्टि में वर्तमान चेतन-अचेतन सभी पदार्थ चार वर्णों में विभक्त हैं। जो आग्नेय पदार्थ हैं वे ब्राह्मण हैं, जो ऐन्द्र हैं वे क्षत्रिय हैं। जो विश्वेदेव हैं वे वैश्य हैं तथा पूष देवता के पदार्थ शूद्र हैं। सभी पदार्थ अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेव तथा पूष देवता से भिन्न-भिन्न प्रकृति के पैदा होते हैं। अतः सभी पदार्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों विभाग हैं। मनुष्यों की इस बुनियादी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए वात्स्यायन ने कामसूत्र में पुरुषों, स्त्रियों का विभाजन गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार करके उनके लिए काम-कला का निर्देश किया है।

(५) नैतिक जीवन की बुनियाद धर्म है, धर्म का आचरण कभी त्याज्य नहीं कहा जा सकता है। छान्दोग्य उपनिषद् में सनत्कुमार ने नारद से कहा—'सुख भूमा (समग्र) में है, अल्प में सुख नहीं हैं।'[2] नैतिक जीवन यज्ञ-रूप है, वह अपने आपको दूसरों में मिला देता है।

धर्म की उपमा वृक्ष से देते हुए छान्दोग्य उपनिषद् कहती है—धर्म के तीन स्कन्ध हैं—

१. यज्ञ, अध्ययन और दान पहला स्कन्ध है।

२. तप दूसरा स्कन्ध है।

३. ब्रह्मचारी का आचार्य-कुल में वास करना तीसरा स्कन्ध है।[3]

यज्ञ करना, वेदादि धर्मग्रन्थों को पढ़ना, दान देना यह मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है। स्वाध्याय एक प्रकार का तप ही है। यज्ञ और दान वही कर सकता है जो कमाने की योग्यता रखता हो और अपनी कमाई में से कुछ त्याग करने की भावना रखता हो। जीवन को समुन्नत और सफल बनाने के लिये तप आवश्यक है। अच्छे आचरणों की पैदायशी नहीं होते; उन्हें हमें दूसरों से लेने पड़ते हैं। इसके लिए प्रत्येक को प्रयत्न करना पड़ता है। यह प्रयत्नकाल ब्रह्मचारी आचार्यकुल में व्यतीत करता है जहाँ नैतिक आचार की बुनियाद पड़ती है।

मनुष्य यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तप और शुद्धाचरण का परित्याग न करके नित्य इनका उपयोग करता रहे–यही वात्स्यायन के कथन का अभिप्राय है।

१. शतपथ १४।४।२।५। २. ७।१३। ३. २।२३।

अर्थे विप्रतिपत्तिमाह—

नार्थांश्चरेत्। प्रयत्नतोऽपि ह्येतेऽनुष्ठीयमाना नैव कदाचित्स्युः, अननुष्ठीयमाना अपि यदृच्छया भवेयुः॥ २६॥

अब अर्थ प्राप्ति के संबंध में आचार्य निम्नांकित पाँच सूत्रों द्वारा शंका उपस्थित करते हैं—

अर्थोपार्जन के लिए प्रयत्न न करना चाहिए क्योंकि प्रयत्न करने पर भी कभी-कभी धन नहीं प्राप्त होता और बिना प्रयत्न के भी अकस्मात् अर्थ की प्राप्ति हो जाती है॥ २६॥

नार्थानिति। उपायात्किलार्थसिद्धिः, उपायानुष्ठानं च यत्नस्तथानुष्टेदि त्यर्थः, तदन्वयव्यतिरेकानुविधानार्थसिद्धेः। तदाह—प्रयत्नत इति। प्रयत्नेनार्ज्यमाना नैव कदाचित्स्युरित्यर्थोक्तम्, यदा स्युस्तदा कालसंनिधानादिति मन्यन्ते। अनुष्ठीयमानाः प्रयत्नेनेत्यर्थः। यदृच्छयेत्वेवमेव स्युः। अकस्मान्निधानादिदर्शनात्। तस्मादुपायपरिज्ञानार्थं शास्त्रमप्यनर्थकम्॥ २६॥

किं कृतं तर्ह्येतदित्याह—

तत्सर्वं कालकारितमिति॥ २७॥

क्योंकि यह सब कुछ काल के अधीन हैं॥ २७॥

कालो नाम द्रव्यपदार्थो नित्यः। तेन कारितमिति प्रयोजकव्यापारेण पुरुषस्य परामत्ततामाह॥ २७॥

तदेव दर्शयन्नाह—

काल एव हि पुरुषानर्थानर्थयोर्जयपराजययोः सुखदुःखयोश्च स्थापयति॥ २८॥

काल ही मनुष्यों को अर्थ और अनर्थ में, जय और पराजय में, सुख और दुःख में रखता है॥ २८॥

काल एवेति। हेयोपादेयाः षट्पदार्था लाभालाभादयः। तेषु काल एव मूलमिति न त्यागोपादानार्थं स्वयं यत्नमातिष्ठेदित्यर्थः॥ २८॥

लोकप्रसिद्धिमाह—

कालेन बलिरिन्द्रः कृतः। कालेन व्यपरोपितः। काल एव पुनरप्येनं कर्तेति कालकारणिकाः॥ २९॥

काल ने ही बलि को इन्द्र बना दिया और काल ने ही पुनः उसे इन्द्र-पद से गिरा दिया तथा काल ही सम्भवतः उसे फिर इन्द्र बना दे। इस प्रकार काल को ही सब कार्यों का कारण मानने वाले आचार्य कहते हैं॥ २९॥

कालेनेति । हेयप्रकृतिकोऽप्यसुरत्वादनर्होऽपि शाक्रे पदे प्रेरितः स्थापितः । व्यपरोपित इति—परिवर्तमानेन तस्मात्पदादपनीय पाताले नियोजितः । पुनरप्येनं कर्तेति—विपरिवर्तिष्यमाणः प्रेरयन्निन्द्रं करिष्यतीत्यर्थः । तथा चाहुः—'कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः । कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥' कालकारणिका ये कालकारणमधीयते । ईश्वरकारणिका अप्येवमेव द्रष्टव्याः । तुल्ययोगक्षेमत्वात् ॥ २६ ॥

अत्र संप्रतिपत्तिमाह—

पुरुषकारपूर्वकत्वात् सर्वप्रवृत्तीनामुपायः प्रत्ययः ॥ ३० ॥

अब आचार्य स्वयं निम्नांकित दो सूत्रों द्वारा अपनी ही शंका का समाधान कर रहे हैं—

किन्तु सब कामों के परिश्रम द्वारा सफल होने के उपायों को समझना भी कार्य-साधन कारण है ॥ ३० ॥

पुरुषकारपूर्वकत्वादिति—कालादुपायतो वार्थसिद्ध्यै तदर्थिनो याः प्रवृत्तयस्ताः सर्वाः पुरुषकारपूर्विका द्रष्टव्याः, उभयत्रापि पुरुषकारस्य व्याप्रियमाणत्वात् । पुरुषकारश्चोपायं विना नार्थं साधयतीत्युपायः प्रत्ययः । कारणमर्थसिद्धेरित्यर्थः ।

यथैव हि पुरुषकारोऽर्थसिद्धौ कालमपेक्षते तथा शक्तिदेशसाधनान्युपायमपेक्षन्ते, तेषु सर्वेष्वसत्सु कालस्याकिंचित्करत्वात् । असति काले तेषामसामर्थ्यात् । तस्माच्छक्तिदेशकालसाधनानि परस्परापेक्षाणि कार्यस्य साधकानीति तान्येवोपायः । तत्र शक्त्यादिषु पुरुषकारादर्थसिद्धिः । अनन्तगुणेषु त्ववश्यमेव कदाचित् स्याद्यादृच्छिकी कस्यचिदर्थसिद्धिः । सापि यादृच्छिकमेवोपायमाश्रित्य ॥ ३० ॥

यदाह—

अवश्यंभाविनोऽप्यर्थस्योपायपूर्वकत्वादेव । न निष्कर्मणो भद्रमस्तीति वात्स्यायनः ॥ ३१ ॥

वात्स्यायन का कहना है कि प्रयत्न द्वारा अवश्यभावी कार्यों के भी सिद्ध होने से ज़ाहिर है कि निकम्मा पुरुष सुख नहीं पाता है ॥ ३१ ॥

अवश्यमिति । यतश्चैवं तस्मान्निष्कर्मण उपायानुष्ठानरहितस्य । भद्रं कल्याणम् । पूर्वजन्मकृतं कर्म निष्फलं प्रसज्येतेति चेत्, न । परस्परापेक्षमुभयं फलतीति दृष्टव्यम् । यथोक्तम्—'दैवं मानुषं हि कर्म लोकं पालयति' । एतेन दैवमात्रवादोऽपि प्रत्युक्तः ॥ ३१ ॥

वात्स्यायन के इस सिद्धान्तवाद का समर्थन ऐतरेय ब्राह्मण के शुनः शेप आख्यान[1] के उस संचरण-गीत से होता है जिसका अन्तरा 'चरैति' 'चरैवेति'

[1] ऐतरेय ब्राह्मण ७।१३–१८।

है और जिस गीत को इन्द्र ने पुरुष-वेष धारण कर राजा हरिश्चन्द्र के अल्पायु पुत्र रोहित को सुना कर उसे दीर्घायुष्य प्रदान किया था। गीत का सार यह है–

श्रम से जो नहीं थकता उसे ही लक्ष्मी प्राप्त होती है। बैठे हुए निठल्ले आदमी को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसी का मित्र है जो बराबर चलता रहता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

जो पुरुष चलता रहता है उसकी जाँघों में फूल फूलते हैं, उसकी आत्मा भूषित होकर फल प्राप्त करती है। चलनेवाले के पाप थक कर सोए रहते हैं। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है। खड़े रहने वाले का सौभाग्य खड़ा हो जाता है। पड़े रहने वाले का सौभाग्य सोता रहता है और उठकर चलने-वाले का सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

सोने वाले का नाम कलि है, अँगड़ाई लेने वाले का नाम द्वापर है, उठ कर खड़ा होने वाला त्रेता है और चलने वाला सतयुगी है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है, चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है। सूर्य का परिश्रम देखो जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिवे चलते रहो, चलते रहो।

ऐतरेय ब्राह्मण और कामसूत्रकार के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो निष्कर्ष यही निकलता है कि चलने का नाम जीवन है। पड़ाव डाल देने का नाम जिन्दगी नहीं है। जीवन-पथ पर थक कर सो जाना, आलसी बनकर रुक जाना मूर्च्छा है। जागने का नाम जीवन है। जो उद्यमी है, क्रियाशील है उसी को अर्थसिद्धि प्राप्त होती है। उपनिषदों में भी कहा गया है कि—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः[1]
न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिङ्गात्[2]

जिनमें संकल्प-शक्ति नहीं है, जो प्रमादी और मिथ्याचारी हैं उन्हें आत्म-दर्शन नहीं हो सकता है। जो कमर कस कर अर्थ-सिद्धि के लिए खड़े हो जाते हैं, इन्द्र उन्हीं का मित्र है—इन्द्र इच्चरतः सखा।[3]

कामविप्रतिपत्तिमाह—

न कामांश्चरेत् । धर्मार्थयोः प्रधानयोरेवमन्येषां च सतां

१. मुडक० ३।२।५। २. मुण्डक० ३।२।४। ३. ऐतरेय ब्राह्मण।

प्रत्यनीकत्वात् । अनर्थजनसंसर्गमसद्व्यवसायमशौचमनायतिं चैते पुरुषस्य जनयन्ति ॥ ३२ ॥

धर्म और अर्थ के बाद अब वात्स्यायन मुनि 'काम' पर तर्क प्रस्तुत करते हैं—

काम का आचरण न करना चाहिए, क्योंकि यह प्रधानभूत धर्म और अर्थ तथा सज्जनों के विरुद्ध है। काम मनुष्य में बुरे आदमियों का संसर्ग, बुरे काम, अपवित्रता तथा कुत्सित परिणामों को उत्पन्न करता है ॥ ३२ ॥

न कामानिति। प्रधानयोरिति—ताभ्यां कामोत्पत्तेः। प्रत्यनीकत्वादिति—कामासक्ततया धर्मस्यानाचरणात्, तद्विलोमाचरणाच्च। अर्थस्यानर्जनात्। मद्य-नटनर्त्तकीनटीपारितोषिकासद्व्ययाद्विरोधवर्ती कामः।

सतामिति—ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धाः सन्तः कामासक्तिं त्यजन्ति। तेषां च प्रत्यनीकवर्तिनोऽनर्थजना नटनर्तकगायकादयः, तैः संपर्कं जनयन्ति। असद्व्यवसायम्—अशोभनव्यवसायं निशीथाभिसरणप्राकारलङ्घनादिकम्। अशौचं—यथोक्तशौचाकरणात्। अनायतिमप्रभावं कामगर्दभ इति ॥ ३२ ॥

तथा प्रमादं लाघवमप्रत्ययमग्राह्यतां च ॥ ३३ ॥

तथा प्रमाद, अपमान, अविश्वास को उत्पन्न करता है और कामी आदमी से सभी लोग घृणा करने लगते हैं ॥ ३३ ॥

तथा प्रमादं शरीरोपघातं परदारादिगमनादौ। लाघवं तारल्यं सहसाप्रवर्तनात्। अप्रत्ययमविश्वासमसत्सङ्गमात्। अग्राह्यतां हेयतामपूज्यवृत्तित्वात् ॥३३॥

बहवश्च कामवशगाः सगणा एव विनष्टाः श्रूयन्ते ॥ ३४ ॥

और ऐसा सुना जाता है कि बहुत से काम के वश में आकर परिवार सहित नष्ट हो गए ॥ ३४ ॥

बहवोऽनेके कामायत्ता विनष्टा इति संबन्धः। सगणाः। न केवलं सेवितारः, तत्परिवारा अपीत्यर्थः ॥ ३४ ॥

तथा च दृढीकरणार्थमाख्यानकम्—

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश ॥ ३५ ॥

उदाहरण देते हैं—

जैसे भोजवंशी दाण्डक्य नामक राजा काम के वशीभूत होकर ब्राह्मण की कन्या से सम्भोग करने के कारण अपने परिवार और राज्यसहित नष्ट हो गया ॥ ३५ ॥

दाण्डक्य इति संज्ञा। भोज. इति भोजवंशजः। अभिमन्यमानोऽभिगच्छन्।

स हि मृगयां गतो भार्गवकन्यामाश्रमपदे दृष्ट्वा जातरागो रथमारोप्य जहार। ततो भार्गवः समित्कुशानादायागत्य तामपश्यन्नभिध्याय च यथावृत्तं राजानमभिशशाप। ततोऽसौ सबन्धुराष्ट्रः पांसुवर्षेणावष्टब्धो ननाश। तत्स्थानमद्यापि दण्डकारण्यमिति गीयते ॥ ३५ ॥

देवराजश्चाहल्यामतिबलश्च कीचको द्रौपदीं रावणश्च सीतामपरे चान्ये च बहवो दृश्यन्ते कामवशगा विनष्टा इत्यर्थचिन्तकाः ॥ ३६ ॥

अन्य उदाहरण—

इन्द्र अहल्या से, महाबली कीचक द्रौपदी से तथा रावण सीता से कामुक भाव रखने से विनष्ट हुआ। और भी अनेक काम के वशीभूत होकर नष्ट होते देखे गए हैं—अर्थचिन्तकों का ऐसा कहना है ॥ ३६ ॥

देवराज इन्द्रोऽहल्यामभिमन्यमान इत्येव। स हि गौतमाश्रमे तद्भार्यामहल्यां चकमे। ततः समित्कुशानादायागते गौतमे तद्भार्याहल्या शक्रं गर्भस्थमकरोत्। तदैवोपनिमन्त्रणेन गौतमः सभार्य एवाश्रमान्तरं गतः। ततस्तेन योगचक्षुषा समुपलब्धेन्द्रागमनेनास्मै समुपनायितमासनत्रयं दृष्ट्वा चासौ किमेतद्भार्याद्वितीयस्य ममेति जाताशङ्को ध्यानेन यथावृत्तमवलोक्य रोषात्सहस्रभगो भवेति शशाप। ततोऽसौ देवराजोऽपि कामाद्विनाशप्रख्यां तादृशीमवस्थामाससाद, यस्याद्यापि कलङ्कोऽहल्यायै जार इति नास्तमेति। अतिबलो नागसहस्रबलत्वात्। सोऽपि कामाद् द्रौपदीमभिलषन्भीमसेनेन हत इति प्रतीतमेतत्। विनश्यन्तो दृश्यन्त इत्यत्र प्रत्यक्षं प्रमाणम्, किं तत्र पूर्ववृत्तोदाहरणेनेति मन्यन्ते ॥ ३६ ॥

अत्र संप्रतिपत्तिमाह—

शरीरस्थितिहेतुत्वादाहारसधर्माणो हि कामाः। फलभूताश्च धर्मार्थयोः ॥ ३७ ॥

अब स्वयं किए गए तर्क का समाधान वात्स्यायन मुनि इस प्रकार करते हैं—

शरीर की स्थिति का हेतु होने से 'काम' आहार के समान है। और धर्म तथा अर्थ का फलभूत भी यही है ॥ ३७ ॥

आहारसधर्माण इत्याहारतुल्याः। यथाहारोऽजीर्णादिदोषं जनयन्नपि प्रतिदिने शरीरस्थितये सेव्यते तथा कामोऽपि, अन्यथा रागोद्रेकादुन्मादादिदोषेण न शरीरस्थितिरिति। फलभूताश्च धर्मार्थयोरिति—सुखार्थं धर्मार्थयोः सेवा। तदसेवायां तौ वन्ध्यभूतौ केवलमायासफलौ स्याताम्। तथा चोक्तम्—'धर्ममूलः स्मृतः स्वर्गस्तत्रापि परमाः स्त्रियः। गृहस्थधर्मो दुर्वारो नराणां धर्मयत्नजः ॥ हिताश्चापत्य-

संतानैः स्त्रियस्त्विह परत्र च । परं संप्रत्ययो भोगप्रकर्षार्थाय वै स्त्रियः ॥' ॥ ३७ ॥

उपर्युक्त छह सूत्रों द्वारा सोदाहरण तर्क प्रस्तुत कर वात्स्यायन ने यह बताया है कि काम मनुष्य को पतित, घृणित और दयनीय बनाकर अंत में उसका सर्वनाश कर देता है। इस तर्क के समर्थन में जो उदाहरण दिए गए हैं वे अर्थ-चिन्तकों के हैं। अर्थ-चिन्तकों से तात्पर्य अर्थशास्त्र के निर्माताओं से है। कौटल्य ने भी राजा को इन्द्रियजित् बनने की सलाह देते हुए लिखा है कि विद्या और विनय का हेतु इन्द्रियजय है अतः काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्षज्ञान से इन्द्रियों को जीतना चाहिए। कान, त्वचा, नाक़, जीभ, और नेत्र को उनके विषयों—शब्द, स्पर्श, गंध, रस और रूप में प्रवृत्त न होने देना इन्द्रियजय कहलाता है।[1]

कौटल्य ने काम के विषय में भोजवंशी दाण्डक्य नाम के राजा और देवराज इन्द्र का उदाहरण दिया है। उसी उदाहरण को वात्स्यायन ने भी उद्धृत किया है।[2] अपने द्वारा किए गए तर्कों का उत्तर देते हुए वात्स्यायन कहते हैं कि काम, आहार का समानधर्मा है। जिस प्रकार भोज्य पदार्थों के खाने से शरीर में रोग पैदा होते हैं फिर भी शरीर-धारण के लिए भोजन करना ही पड़ता है उसी प्रकार काम से अनेक मानसिक विकार, सामाजिक अपवाद उत्पन्न होते हुए भी उसे त्यागा नहीं जा सकता है, क्योंकि यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है। काम से संसार का उद्भव और विकास हुआ है, यदि काम का आचरण न किया जाए तो सृष्टि शून्य हो जाए।

---

१. कौटलीय अर्थशास्त्र अ० ६ प्र० ३।

२. भोजवंशी राजा दाण्डक्य शिकार खेलने गया था, आश्रम में भार्गव की लड़की के सौन्दर्य पर वह मुग्ध हो गया। कामान्ध होकर उसने ब्राह्मण की लड़की का जबर्दस्ती हरण किया और उसे ले गया। ऋषि भार्गव समिधाएँ लेकर जब आश्रम में आए तो अपनी लड़की को न देख कर उन्होंने योगबल से पता लगा लिया कि राजा दाण्डक्य उसे हर ले गया। राजा के इस पापाचरण पर क्रुद्ध होकर ऋषि ने सपरिवार राष्ट्र और राज्य के नाश होने का शाप राजा को दे दिया। उस शाप के कारण दाण्डक्य के राज्य में घनघोर रेत की बरसा हुई, जिससे समस्त राज्य और राजपरिवार विनष्ट हो गया। दाण्डक्य राजा का राज्य आधुनिक दण्डकारण्य माना जाता है।

गौतम-पत्नी अहल्या के साथ इन्द्र का; द्रौपदी के साथ कीचक का और सीता के साथ रावण के पापाचरण और उनके कलंक एवं विनाश की कथा साधारणतया सभी जानते हैं।

कामसूत्रकार के इस समाधान में दार्शनिक तत्त्व निहित है। आहार शब्द यहाँ पर विशद, व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

अन्नममृतं, अन्नं वै प्रजापतिः, अन्नं वा अस्य सर्वस्य योनिः, अस्यैवान्नम् इदं सर्वम्, अन्नमात्मा, अन्नात्पुरुषः, अहमन्नम्, अहमन्नादः, अहं ब्रह्म, अन्नं ब्रह्म, अन्नमयं हि सौम्यं मनः, मनोऽन्नम्, अन्नाद् वीर्यम्, आत्मनः अन्नम्। अन्नात् शुक्रम्, शुक्रं ब्रह्म सनातनम्, तदेव शुक्रममृतं तद् ब्रह्म।

उपर्युक्त उपनिषद् वाक्य का सारांश यही है कि सभी कुछ अन्न एवं अन्न से ही है। खाई जानेवाली वस्तु अन्न है और खानेवाला भी अन्न है। अन्न के इस विशद अर्थ में 'आहार' और 'काम' इन दोनों शब्दों में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। उपनिषद् और कामसूत्र के इस तात्त्विक विवेचन को डाक्टर फ्रायड ने कई जगह स्वीकार किया है यह लिखकर कि—'जो मैथुन वासना को और कामशक्ति को नापसन्द करते हैं वे एरॉस (ERos) शब्द का प्रयोग कर सकते हैं जिसका तात्पर्य पोषण करने वाली शक्ति है।' आहार उसी श्रेणी में आता है।

'अस्तित्व की कामना' ही आदिशक्ति या मूलशक्ति है, इसी से दारैषणा, लोकैषणा और वित्तैषणा की अभिव्यक्ति होती है। 'मैं रहूँ' मेरी सत्ता पृथक् रहे यह अस्तित्व की कामना का एक अंग है। अपनी रत्ता, अपनी अभिवृद्धि, शरीर-रत्ता के लिए आहार की तृष्णा जो शरीरगत पदार्थ-सार की पूर्ति करती है, त्तुधा, तृष्णा, प्यास या यश की तृष्णा जो मानसिक शरीर के लिए आहार है, लोकैषणा—का यही आदि स्वरूप है।

'मैं एक से अनेक हो जाऊँ' 'मैं सारे अर्थजात का प्रभु बन जाऊँ' इस प्रकार की वित्तैषणा तृष्णा का दूसरा रूप है।

सन्तान पैदा कर मैं अनेक हो जाऊँ, साहचर्यभाव के लिए मैथुन-तृष्णा-मिथुन की इच्छा, अपने आधे भाग स्त्री की इच्छा, अधिकार और शक्ति की इच्छा आदि इस प्रकार की प्रमुख इच्छाएँ तृष्णा का तीसरा स्वरूप मानी जाती हैं।

'अस्तित्व की वासना' की अभिव्यक्ति आहार-ग्रहण में हुआ करती है। यही वासना सारी विश्व-क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का मूल है। अस्तित्व की वासना के जितने भी रूप हैं वे सब 'काम' हैं। मुण्डकोपनिपद्[1] पुरुष के उन्नीस मुख बतलाता है—पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ, पाँच कर्म-इन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त, यद्यपि सभी विषयजात इन मुखों का आहार है अथवा काम्य है तथापि काम को आहार इसलिए नहीं कहा जाता है कि

१. माण्डूक्य. ३

आहार शब्दके मूल में जो मानसिक रति है वह आकर्षण है। उस वस्तु के प्रति 'काम' है। अतः काम शब्द का ही व्यवहार उचित माना गया है। काम मानसिक भावविशेष है। इसे आहार नहीं कहा जा सकता है। हाँ, आहार का समानधर्मा माना जा सकता है।

यद्येवं तर्हि दोषप्रसङ्ग इत्यत आह—

बोद्धव्यं तु दोषेष्विव। नहि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते। नहि मृगाः सन्तीति यवा नोप्यन्त इति वात्स्यायनः ॥ ३८ ॥

यदि काम से दोष उत्पन्न हों तो अन्न से उत्पन्न होने वाले दोषों की भाँति उन्हें दूर करने का उपाय जानना चाहिए। क्योंकि यह कैसे हो सकता है कि भिखारियों के भय से भोजन न बनाया जाय, जंगली जानवरों के डर से जौ न बोए जाएँ—यह वात्स्यायन का कथन है ॥ ३८ ॥

बोद्धव्यमिति। अजीर्णादिदोषेष्विव बोद्धव्यम्, प्रतिविधानमिति शेषः। इदमाह—यत्र क्वचन दोषप्राप्तिरवश्यं सेव्यश्च कामस्तं दोषप्रतिविधानेन सेवेतेति। अयं च न्यायो लोकेष्वप्यस्तीति दर्शयति—नहीत्यादिना। तथा चोक्तम्—'तृणानामिव हि व्यर्थं नृणां जन्म सुखद्विषाम्। दोषास्तु परिहर्तव्या इत्याचार्यैः स्थिरीकृतम्' ॥ ३८ ॥

उपर्युक्त सूत्रों में वात्स्यायन ने कामशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने तथा काम का सेवन करने का समर्थन किया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका[1] में धर्म के विषय का भाष्य करते हुए लिखा है कि—'आँख आदि इन्द्रियों को अधर्म से हटा कर आलस्य से छुड़ा कर धर्म में लगाना चाहिए, स्वाध्याय, तप और इन्द्रिय-निग्रह द्वारा आत्मोन्नति करनी चाहिए। उचित अर्थ-व्यवस्था द्वारा धन-संग्रह करना चाहिए और सुयोग्य व्यवहारों द्वारा उस धन को बढ़ाना चाहिए। इसके बाद सुयोग्य सन्तान उत्पन्न कर अर्थ, धर्म, काम को सफल बनाना चाहिए।' 'प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च' का भाष्य करते हुए स्वामी जी ने यहीं पर लिखा है कि 'सन्तानों की उत्पत्ति करने का जो व्यवहार है उसी को 'पुत्रेष्टि' कहते हैं। उसमें श्रेष्ठ भोजन और ओषधिसेवन सदा करते रहना चाहिए। पुत्र और कन्याओं के जन्मसमय में स्त्री और बालकों की रक्षा युक्तिपूर्वक करनी चाहिए।'

स्वामी दयानन्द जी की इस व्याख्या से वात्स्यायन का यह मन्तव्य

१. वेदोक्तधर्मविषयः पृष्ठ १०१

सिद्ध हो जाता है कि काम, धर्म और अर्थ का परिणाम है। काम से उत्पन्न होने वाले दोषों को अन्न से उत्पन्न होने वाले दोषों की तरह दूर करने का उपाय करना चाहिए—यह वात्स्यायन का मत है। जिस प्रकार अधिक भोजन कर लेने से अजीर्ण हो जाता है, धीरे-धीरे कोष्ठबद्धता बढ़ जाती है, रस-परिपाक में गड़बड़ी हो जाती है, रस न बनने से मांस-मज्जा, धातु और वीर्य नहीं बनता, स्नायुदौर्बल्य, रक्त की कमी, वीर्यविकार आदि दोषों के कारण शरीर जराजीर्ण बन जाता है और मनुष्य मरने के निकट आ जाता है। उसी तरह अधिक काम-सेवन से भी यही हालत हो जाती है।

एक बात और है जैसे आहार त्याग देने से या पौष्टिक पदार्थों के न खाने से शरीर सूख जाता है, इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और क्षुधा, पिपासा तीव्र होकर शरीर को सोखने लगती हैं, उसी प्रकार काम-निरोध से भी हानि पहुँचती है, अनेक मानसिक-शारीरिक रोग पकड़ लेते हैं। ऐसी स्थिति में सारांश यह निकलता है कि बलात् नियंत्रण और अतिशय भोग ये दोनों उपाय हानिकर हैं। किसी प्रकार की विवशता या अभाव में यदि निरोध किया जाय और काम-दोष उत्पन्न हो जाएँ तो संभोग-संयोग द्वारा उन दोषों को दूर किया जाए और अतिशय संभोग से यदि दोष उत्पन्न हों तो संयम द्वारा उन्हें दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए—यही वात्स्यायन का अभिप्राय है।

उदाहरण द्वारा वात्स्यायन समझाते हैं कि द्वार पर भिखारियों की भीड़ लगी हुई देखकर इस भय से भोजन न बनाया जाए कि उन्हें देना पड़ेगा तथा जंगली जानवरों के कारण खेती न की जाए—यह बुद्धिमानी नहीं होगी। इसलिए कामप्राप्ति की चेष्टा करनी चाहिए और साथ ही उसके दोषों से बचने का प्रयत्न भी करना चाहिए।

अनुष्ठानलक्षणायाः प्रतिपत्तेः फलमाह—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

एवमर्थं च कामं च धर्मं चोपाचरन्नरः।
इहामुत्र च निःशल्यमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ ३९ ॥

इस सम्बन्ध में प्राचीन लोगों द्वारा कहे गए श्लोक उद्धृत करते हैं—इस विषय के ये श्लोक हैं—

इस प्रकार धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील पुरुष इस लोक और परलोक दोनों जगह सुख प्राप्त करता है ॥ ३९ ॥

एवमिति—यथोक्तेन न्यायेन प्रतिष्ठापिताचरणमर्थं प्रागाचरणतः, ततोऽधिगतार्थः कामं धर्मं च। इहामुत्र चेति—इहलोके परलोके च निःशल्यं सुखमश्नुत

इति । अनुतापाभावात्समग्रो मे पुरुषार्थ इति मनःप्रीतिमवाप्नोतीत्यर्थः । त्रिवर्ग ह्यसेवमानस्य तावदिह लोके नैहिकं सुखमवाप्तमिति विप्रतीकारम्, दुरन्तकामानुबन्धनान्नापि परलोके, न मया मूढेन प्राकृतमवदातं कर्मेति धर्मानुषक्तत्वात् । नास्तिकनिरीहकसुखद्विषस्त्वेकाङ्गविकलत्वात्सशल्यमवाप्नुवन्तीति मन्यते ॥३९॥

'परस्परस्यानुपघातकमन्योन्यानुबद्धम्' इत्युक्तम्, तस्यैव संग्रहः श्लोकद्वयेन—

किं स्यात्परत्रेत्याशङ्का कार्ये यस्मिन्न जायते ।
न चार्थघ्नं सुखं चेति शिष्टास्तत्र व्यवस्थिताः ॥
त्रिवर्गसाधकं यत् स्याद्द्वयोरेकस्य वा पुनः ।
कार्यं तदपि कुर्वीत न त्वेकार्थं द्विबाधकम् ॥ ४० ॥

किन्तु इन्हें इस प्रकार प्राप्त करे कि एक पुरुषार्थ दूसरे पुरुषार्थ का बाधक न बने । जैसे धार्मिक भावना रखकर धन पैदा करना चाहिए, अनुचित ढंग से नहीं । इसी प्रकार काम की प्राप्ति का ऐसा प्रयत्न किया जाय कि धर्म की उपेक्षा न की जा सके । जिस कार्य के करने में यह शंका न हो कि परलोक में क्या होगा, तथा जो अर्थ के विपरीत न हो और सुख देने वाला भी हो उसी कार्य को शिष्ट लोग करते हैं । जो काम धर्म, अर्थ, काम इन तीनों का अथवा इनमें से केवल दो का ही साधक हो उस कार्य को करना चाहिए किन्तु जो कार्य दो वर्गों का बाधक हो उसे न करना चाहिए ॥ ४० ॥

वात्स्यायन ने श्लोक के रूप में अपने से पूर्व आचार्यों के जो कथन उपस्थित किए हैं उनकी यह पद्धति कौटल्य की है । आचार्य कौटल्य ने भी कौटलीय अर्थशास्त्र में इसी ढंग से श्लोकों को उद्धृत कर अपने कथन को प्रामाणिक बनाया है ।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमाधिकरणे
त्रिवर्गप्रतिपत्तिर्द्वितीयोऽध्यायः ॥
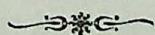
किं स्यादिति—उपघातः पूर्वेणोत्तरस्य, उत्तरेण वा पूर्वस्य । तत्र यस्मिन् कार्येऽर्थोऽपि साधयिष्यते यस्तत्र किं स्यात् । अपायोऽनपायो वेत्याशङ्का नास्ति धर्माबाधनात् । यच्च सुखं नार्थं हन्ति तस्मिन्नर्थे सुखे च शिष्टास्त्रिवर्गविदः स्थिताः, अनुष्ठातुम् । पूर्वबाधके तु न स्थिताः । यस्तु दानेन धर्मोऽर्थं बाधते ब्रह्मचर्येण च विद्याग्रहणमर्थः कामं तस्मिन्नुत्तरबाधके स्थिता इत्यर्थोक्तम् । 'अपि नाम त्रिवर्गेऽस्मिन्सेवेतोत्तरबाधकम् । पूर्वस्य तु प्रधानत्वान्न सेव्यः पूर्वबाधकः ॥' इति ।

त्रिवर्गसाधकमिति—धर्मादीनां यदन्यतमं कार्यमनुष्ठेयमात्मन इतरयोस्तु साधकं तत्कुर्वीत, अयमुत्तमः पक्षो द्वयनुबन्धेऽन्तर्भूतः । द्वयोर्वैकस्येति—त्रयाणां यद्द्वयोरात्मनः इतरस्य च साधकं तदपि कुर्वीतेति । अयं मध्यमः पक्ष एकानुबन्धेऽन्तर्भूतः । एतदुभयमपि प्रागुदाहृतम् । यदेकस्यात्मन एव साधकं तदपि कुर्वीतेति । अयं जघन्यो निरनुबन्धेऽन्तर्भूतः । तद्यथा—पञ्चानां महायज्ञानां प्रवर्तनं धर्मो निरनुबन्धः । भूम्याद्यर्जनमर्थो निरनुबन्धः । परिचारिकायामभिप्रेतायां कामो निरनुबन्धः । अस्मिन्पक्षे परस्परस्यानुपघातकं दर्शयन्नाह—न त्वेकार्थं द्विबाधकमिति, एक आत्मैवार्थः प्रयोजनं यस्य तदेकार्थं द्वयोर्बाधकं न कुर्यात् । अतिदानेन धर्मोऽर्थं बाधते कामं च बाधते । तपसा चात्यन्तसेवितेन कामं बाधित्वा शरीरक्षयादर्थमुपहन्ति । तथार्थस्तादात्मिक उपादीयमानः पुरूरवस इव धर्मकामौ बाधते । कामस्तूत्तमवर्णासु दाण्डक्यस्येवान्यत्र वात्यासेवित उभयं बाधते । यदेकस्य साधकमन्यस्य बाधकं तत्पूर्वोत्तरबाधापेक्षया कुर्यात् । तच्च यथोक्तं प्रागिति ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां साधारणे प्रथमेऽधिकरणे त्रिवर्गप्रतिपत्तिर्द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ विद्यासमुद्देशप्रकरणनामकः तृतीयोऽध्यायः

एवं प्रतिपन्नत्रिवर्गस्य सिद्धौ प्रथम उपायो यद्विद्याग्रहणम्, अगृहीतविद्यस्यानन्तरव्यापारासंभवात् । इति विद्यासमुद्देश उच्यते । समुद्देशश्च संक्षेपाभिधानम् । निर्देशश्च शास्त्रान्तरादुपदेशाच्चापेक्षणीयः ।

यथा च तासां ग्रहणं तथा दर्शयन्नाह—

धर्मार्थाङ्गविद्याकालाननुपरोधयन् कामसूत्रं तदङ्गविद्याश्च पुरुषोऽधीयीत ॥ १ ॥

धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा इनके अंगभूत शास्त्रों के अध्ययन के साथ ही पुरुष को कामशास्त्र के अंगभूत शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए ॥ १ ॥

धर्मेत्यादि । तत्र धर्मविद्या श्रुतिः स्मृतिश्च । अर्थविद्या वार्ताशास्त्रम् । तयोरङ्गविद्या—दण्डनीतिः, योगक्षेमसाधनात् । आन्वीक्षिकी तु तत्त्वनिश्चयहेतुत्वात् । तासां प्रधानानां यथास्वमध्ययनकालाननुपरोधयन्नहापयन्, अन्तरान्तरा कामसूत्रमिदमेव तदङ्गविद्याश्च गीतादिका अधीयीत पाठश्रवणाभ्याम् ॥ १ ॥

वात्स्यायन ने यहाँ पर विद्या शब्द का प्रयोग किया है। धर्मविद्या और अर्थविद्या तथा उसकी अंगभूत विद्याओं को पढ़ने के साथ कामशास्त्र और उसकी अंगभूत विद्याओं को पढ़ने की राय दी गई है।

हमारा भारतीय वाङ्मय चौदह विद्याओं और सात सिद्धान्तों पर आधारित है, इन्हीं के अनेक अवान्तर भेद क्रमशः उत्तरोत्तर विविध शास्त्रों और सिद्धान्तों के रूप में प्रचलित और प्रवर्द्धित हुए हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति में चार वेद, छह शास्त्र (वेदाङ्ग), मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र इन चौदह विद्याओं का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त पाञ्चरात्र, कापिल, अपरान्तरतम, ब्रह्मिष्ठ, हैरण्यगर्भ, पाशुपत और शैव इन सात सिद्धान्तों का वर्णन है।

उपर्युक्त चौदह विद्याओं के तीन सौ शास्त्र और सत्तर महातंत्र अवान्तर भेद हैं। महाभारत से ज्ञात होता है कि महातंत्र बृहदाकार थे तथा शास्त्र उनसे न्यून और संक्षिप्त। यह विद्या-विस्तार शिव (विशालाक्ष) ने कहा था। महाभारत का ही कथन है कि ब्रह्मा के त्रिवर्गशास्त्र से शिव (विशालाक्ष) ने अर्थभाग (अर्थशास्त्र) को अलग किया। उस अर्थभाग में अनेक विषय थे। कालान्तर में उन्हीं के आधार पर अलग-अलग अनेक ग्रंथ लिखे गए। जैसे—

१ लोकायतशास्त्र २ धनुर्वेदसूत्र ३ व्यूहशास्त्र ४ रथसूत्र ५ अश्वसूत्र ६ हस्तिसूत्र ७ हस्त्यायुर्वेद ८ शालिहोत्र ९ यंत्रसूत्र १० वाणिज्यशास्त्र

११ गन्धशास्त्र १२ कृषिशास्त्र १३ पाशुपताख्यशास्त्र १४ गोवैद्य १५ वृक्षायुर्वेद १६ तक्षशास्त्र १७ मल्लशास्त्र १८ वास्तुशास्त्र १९ वाकोवाक्य २० चित्रशास्त्र २१ लिपिशास्त्र २२ मानशास्त्र २३ धातुशास्त्र २४ संख्याशास्त्र २५ हीरकशास्त्र २६ अदृष्टशास्त्र २७ तांत्रिकश्रुति २८ शिल्पशास्त्र २९ मायायोगवेद ३० माणव विद्या ३१ सूदशास्त्र ३२ द्रव्यशास्त्र ३३ मत्स्यशास्त्र ३४ वायसविद्या ३५ सर्पविद्या ३६ भाव्यग्रंथ ३७ चौरशास्त्र ३८ मातृतंत्र ।

उपर्युक्त ३८ प्रकार की विद्याएँ अर्थशास्त्र की अंगभूत विद्याएँ हैं। इनमें से अधिकांश का उल्लेख कौटलीय अर्थशास्त्र में हुआ है।

वेद के छह अंगों में से एक अंग कल्प है। कल्प का शब्दार्थ विधि, नियम और न्याय है। जिस शास्त्र में विधि, नियम और न्याय के संक्षिप्त, सारभूत और निर्दोष वाक्यसमूह रहते हैं उन्हें कल्पसूत्र कहा जाता है।

कल्पसूत्रों के तीन भेद हैं—श्रौत, गृह्य और धर्म। श्रौतसूत्रों में यज्ञों के विधान और नियम हैं। गृह्यसूत्रों में जन्म से लेकर मृत्यु तक के समस्त लौकिक, पारलौकिक कर्त्तव्यों, अनुष्ठानों का विधान है और धर्मसूत्रों में विभिन्न धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक कर्तव्यों, अधिकारों, दायित्वों का वर्णन और विवरण है।

कल्पसूत्र की भाँति धर्मशास्त्र भी श्रौत धर्मशास्त्र और स्मार्त धर्मशास्त्र—दो भागों में विभक्त है। सभी धर्मशास्त्रों का मूल उद्देश्य कर्मफल में विश्वास, पुनर्जन्म में विश्वास, और मुक्ति पर आस्था है। इन्हीं तीन बातों का विस्तार जीवन के विभिन्न अंगों, कार्यों और उद्देश्यों को लेकर धर्मशास्त्रों में हुआ है। इन्हीं का विस्तार मनु, याज्ञवल्क्य, गौतम, वसिष्ठ, पराशर, शंख, लिखित, हारीत आदि स्मृतिकारों ने अपनी-अपनी स्मृतियों में किया है।

बौधायन ने औपजंघ्य, कात्य, काश्यप, गौतम, प्रजापति, मौद्गल्य, हारीत आदि धर्मशास्त्रकारों का उल्लेख किया है। वसिष्ठ ने गौतम, प्रजापति, यम और हारीत को बतलाया है। मनु ने अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, बैखानस और शौनक के नाम मनुस्मृति में लिखे हैं। इनके अतिरिक्त कुमारिलभट्ट ने अठारह धर्मसंहिताओं की, याज्ञवल्क्यस्मृति में याज्ञल्क्य ने बीस धर्मशास्त्रों की और मिताक्षराकार ने ३६ धर्मशास्त्रग्रन्थों की चर्चा की है।

वात्स्यायन का उद्देश्य धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के इसी व्यापक क्षेत्र के अध्ययन का है। इसके साथ ही कामशास्त्र और उसके अंगभूत शास्त्र (संगीत शास्त्र) के अध्ययन के लिए वह परामर्श देता है।

धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र की भाँति ही कामशास्त्र भी जीवनोपयोगी जीवन्त भावनाओं और प्रक्रियाओं का अद्भुत शास्त्र है। वात्स्यायन धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र की भाँति 'कामसूत्र' पढ़ने की सलाह देता है—सूत्रकार यहाँ पर कामशास्त्र

के स्थान पर कामसूत्र लिखकर यह स्पष्ट व्यक्त कर रहा है कि जिस प्रकार अर्थशास्त्र के क्षेत्र में केवल कौटलीय अर्थशास्त्र ही एकाकी और लब्धप्रतिष्ठ है, उसी प्रकार कामशास्त्र के क्षेत्र में प्राचीन ग्रंथों की अनुपलब्धि होने से वात्स्यायन का यह कामसूत्र ही उपयोगी है। यह ग्रंथ मानवजीवन और मानवविज्ञान का अद्वितीय सहचर और साधन है।

कामसूत्रकार कामसूत्र के साथ इसके अंगभूत शास्त्र संगीत को पढ़ने का अनुरोध करता है। इसका तात्पर्य यही है कि जिस प्रकार कामशास्त्र सृष्टि-रचना का सहायक है उसी प्रकार संगीतशास्त्र की नादविद्या संसार-रचना समझने का एक मुख्य साधन है। स्वरों से देवता, ऋषि, ग्रह, नक्षत्र, रंग, छन्द आदि का संबंध निरर्थक नहीं बल्कि तत्त्वपूर्ण, सार्थक और सत्य है।

संगीत के सहायक वाद्ययंत्र हैं। प्राचीन शास्त्रों में तंत्रीगत, आनद्ध, रन्ध्रयुक्त और धातुनिर्मित चार भाग वाद्ययंत्रों के किये गये थे। फिर इन्हीं से अनगिनत वाद्ययंत्र निकले हैं। संगीत ब्रह्मानन्द का सहोदर माना गया है। अर्थ, धर्म और काम को त्रिवर्ग कहा गया है यह त्रिवर्ग ही मोक्ष का साधन है। वात्स्यायन के अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र और संगीतशास्त्र के अध्ययन के अनुरोध का तात्पर्य मोक्ष की प्राप्ति ही समझना चाहिए।

प्राग्यौवनात् स्त्री। प्रत्ता च पत्युरभिप्रायात्॥ २॥

उक्त विद्याओं का अध्ययन केवल पुरुष ही न करें बल्कि स्त्रियों को भी करना चाहिए—इस मन्तव्य का स्पष्टीकरण करते हुए वात्स्यायन मुनि कहते हैं—

यौवनावस्था से पूर्व ही स्त्री को पिता के घर में धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और संगीतशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए और यदि विवाह हो गया हो तो पति की अनुमति से उसे कामशास्त्र पढ़ना चाहिए॥ २॥

प्रागिति—प्राग्यौवनात्स्त्री कामसूत्रं तदङ्गविद्याश्चाधीयीत पितुर्गृह एव। तरुण्याः परिणीतत्वादस्वतन्त्रायाः कुतोऽध्ययनम्। 'युवतिः' इति पाठान्तरम्, तत्र स्त्रीपर्यायो द्रष्टव्यः। प्रत्ता चेति—प्रकर्षेण दत्ता, निष्ठायामेव 'अच उपसर्गात्तः' इति तत्त्वम्। ऊढेत्यर्थः। त्रिविधं दानम्, मनसा वाचा कर्मणा चेति। पत्युरभिप्रायादिति—यदा पत्यानुज्ञाता तदाधीयीत, अन्यथा स्वैरिणीत्याशङ्कनीया स्यात्॥ २॥

योषितां शास्त्रग्रहणस्याभावादनर्थकमिह शास्त्रे स्त्रीशासनमित्याचार्याः॥ ३॥

स्त्रियों को शास्त्र-अध्ययन करना उचित नहीं है—ऐसी शंका यहाँ उपस्थित करते हैं—

कतिपय आचार्यों का कथन है कि स्त्रियों में शास्त्र का मर्म समझने का अभाव होने से उनको कामविद्या तथा उसकी अंगभूत विद्याएँ पढ़ाना निरर्थक है ॥ ३ ॥

शास्त्रग्रहणस्याभावादिति—तासां शास्त्रानधिकारात्, शास्त्रं ग्रहीतुमसमर्थत्वाच्च। इहेति—कामशास्त्रे स्त्रियमुद्दिश्य शासनम्, इदं कार्यमिदं नेत्येवंरूपम्, उपदेष्टुमनर्थकम् इत्याचार्या मन्यन्ते ॥ ३ ॥

प्रयोगग्रहणं त्वासाम्। प्रयोगस्य च शास्त्रपूर्वकत्वादिति वात्स्यायनः ॥ ४ ॥

वात्स्यायन मुनि समाधान करते हैं कि स्त्रियों को कामशास्त्र के सिद्धान्तों के क्रियात्मक प्रयोग का अधिकार तो है ही और क्रियात्मक प्रयोग विना-शास्त्रज्ञान के भलीभाँति नहीं हो सकता है। अतएव, कामसूत्र का अध्ययन अनुचित नहीं है ॥ ४ ॥

प्रयोगग्रहणमिति—प्रयुज्यत इति प्रयोगोऽर्थस्तद्ग्रहणं तासाम्, तद्विज्ञेभ्यो मा भूच्छास्त्रग्रहणम्। स च योषिदुपयोगीति शास्त्रेणावेदितः कथमन्यैरुपदिश्यते तस्मान्नानर्थकं स्त्रीशासनम् ॥ ४ ॥

मैथुन-संभोग का मात्र उद्देश्य वासनाओं की तृप्ति ही नहीं है, इससे भी अधिक इसका सामाजिक और आध्यात्मिक उद्देश्य होता है। स्त्रियों में संभोग की स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता है। किन्तु यह प्रवृत्ति तो प्राणिमात्र में रहती है। पशु, पक्षी, जलचर सभी प्राणी संभोग-क्रियाएँ करते हैं। मनुष्य और मनुष्येतर प्राणी में एक ही अन्तर है—विवेक का। यदि मनुष्य विवेक-शून्य होकर संभोगरत होता है तो उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। इस अन्तर को दूर करने के लिए काम के चरम उद्देश्य की पूर्ति के लिए कामशास्त्र की शिक्षा स्त्री और पुरुष के लिए समान रूप से अनिवार्य और आवश्यक है। 'हम क्या करें क्या न करें, कैसे करें कैसे न करें' जब यह दुविधा हमारे मन में पैदा होती है उस समय शास्त्र हमारी सहायता करता है—

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ'।

ऐसी दुविधा में शास्त्र ही प्रमाण बनता है। यदि स्त्री शास्त्र का अध्ययन किए रहती है तो उसे अपने दाम्पत्यजीवन में अथवा कौमारावस्था में उचित-अनुचित का विचार करने में सरलता होती है। दुविधा के जाल में वह नहीं फँस सकती है।

मीमांसा दर्शन का कहना है कि सृष्टि के आरम्भ से ही स्त्रीधारा एवं पुरुषधारा—ये दो स्वतंत्र धाराएँ चली हैं—

द्वे धारे स्वतन्त्ररूपत्वात् ।[1]

जिस प्रकार विद्युत् शक्ति में आकर्षण और विकर्षण दोनों शक्तियाँ रहती हैं किन्तु दोनों के मिलाने से ही प्रकाश और गति संचालित होती है उसी प्रकार पुरुष और स्त्री इन दोनों शक्तियों के सहयोग से ही सृष्टि संचालित है। ये दोनों अलग रह कर निष्क्रिय हैं। मीमांसा दर्शन का सिद्धान्त है कि स्त्रीधारा पुरुषधारामयी हो कर ही कैवल्य की अधिकारिणी होती है—

स्त्रीधारा पुंधारामयी कैवल्याधिकारिणी ।[2]

कामशास्त्र का मुख्य उद्देश्य यही है कि वह स्त्रीधारा को पुरुषधारा में मिलाकर उसे मुक्ति की अधिकारिणी बना दे तथा पुरुष और स्त्री की अनर्गल, अनियंत्रित पाशविक प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर दोनों की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, लौकिक और पारलौकिक उन्नति में योग दे एवं दोनों का मधुर समन्वय कराकर उनकी पूर्णता सिद्ध कर दे।

कामशास्त्र का अध्ययन करने से पुरुष और स्त्री दोनों अपनी-अपनी अनर्गल भोगवृत्तियों को एक दूसरे में केन्द्रीभूत एवं नियंत्रित कर आत्म-संयम और आत्मत्याग के अभ्यास द्वारा आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति में सहायक बनते हैं।

शास्त्र के अध्ययन से पुरुष और स्त्री के बीच मधुरतम समन्वय और सामंजस्य स्थापित होता है। उसमें वह पवित्रता रहती है जो सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की सुव्यवस्था, सुख, स्वास्थ्य, शान्ति की रक्षा करती है।

इसके अतिरिक्त स्त्री और पुरुष जाति में मौलिक भेद होने से दोनों की प्रकृति और प्रवृत्ति में भी मौलिक अन्तर रहता है। कामशास्त्र के अध्ययन से स्त्री पुरुष की और पुरुष स्त्री की प्रकृति और प्रवृत्ति को पहचान कर, समझ कर भिन्न होते हुए भी दूध और पानी की तरह मिल जाते हैं।

इसलिए स्त्री को कामशास्त्र पढ़ाना आवश्यक है—वात्स्यायन का यह मत समीचीन है।

तन्न केवलमिहैव। सर्वत्र हि लोके कतिचिदेव शास्त्रज्ञाः। सर्वजनविषयश्च प्रयोगः ॥ ५ ॥

अब शास्त्र के परोक्ष प्रभाव को उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत करते हैं—

यह बात केवल कामशास्त्र के लिए ही नहीं है बल्कि संसार में सर्वत्र

१. धर्मपाद, सूत्र ५५   २. धर्मपाद, सूत्र ५६

शास्त्रज्ञों की संख्या कम है और शास्त्रों के बताए हुए प्रयोगों को सब लोग जानते हैं ॥ ५ ॥

तत्र केवलमिहैवेति—तत्प्रयोगग्रहणं--न केवलमिहैवास्मिन्नेव कामशास्त्रे। सर्वत्र हीति—हिशब्दो हेतौ, सर्वेषु व्याकरणज्योतिःशास्त्रादिषु दृश्यते, तदेव दर्शयति—लोक इत्यादिना। कतिचिदेव शास्त्रज्ञा ये तद्ग्रहणसमर्थाः। तेभ्यः समर्थैरसमर्थैश्च प्रयोगो गृह्यत इति सर्वजनविषयः। प्रयोगग्रहणं च शास्त्रग्रहणात् प्रधानम्। गृहीतस्यापि शास्त्रस्य प्रयोगज्ञानफलत्वात् ॥ ५ ॥

प्रयोगस्य च दूरस्थमपि शास्त्रमेव हेतुः ॥ ६ ॥

और दूर होते हुए भी प्रयोग का हेतु शास्त्र ही है ॥ ६ ॥

प्रयोगस्य चेति। गृहीतशास्त्रस्य दूरस्थमपीति शास्त्रज्ञजनाधारत्वात्, विप्रकृष्टमपि शास्त्रं पारम्पर्येण हेतुः। एकः शास्त्रज्ञः प्रयोगं गृह्णाति, ततोऽन्यः, ततोऽन्य इति ॥ ६ ॥

अत्र दृष्टान्तमाह—

अस्ति व्याकरणमित्यवैयाकरणा अपि याज्ञिका ऊहं क्रतुषु प्रयुञ्जते ॥ ७ ॥

उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

व्याकरण शास्त्र के होते हुए भी अवैयाकरण याज्ञिक यज्ञों में विकृतियों का सही प्रयोग करते हैं ॥ ७ ॥

अस्तीति। शब्देनाचोदितार्थस्य युक्त्या विमृश्य च स्थापनमूहः। स च प्रातिपदिकलिङ्गवचनान्तरोपादानेन व्याकरणे उक्तः। तद्व्याकरणमस्ति यतोऽयमूहः पारम्पर्याशयात्, इत्यवैयाकरणा अपि याज्ञिकास्तं क्रतुषु प्रयुञ्जते।

तद्यथा—'आग्नेयमष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत्' इति प्रकृतिप्रयोगः। 'सौर्यं चरुं निर्वपेद्ब्रह्मवर्चसकामः' इति विकृतिप्रयोगः। अत्र सूर्यमुद्दिश्योहः। निर्वपेदितिलिङ्गात् सौर्यं चरुं निर्वपेदाग्नेयवदिति ॥ ७ ॥

अस्ति ज्यौतिषमिति पुण्याहेषु कर्म कुर्वते ॥ ८ ॥

ज्योतिष शास्त्र के होते हुए भी ज्योतिष न जानने वाले लोग व्रत-पर्वों में सम्पन्न होने वाले विशेष कृत्यों को किया करते हैं ॥ ८ ॥

पुण्याहेष्विति। अस्ति ज्यौतिषमित्यज्यौतिषिका अपि कुतश्चिदुपलभ्य शस्तदिनेषु कर्म कुर्वते। तत्र शास्त्रमेव हेतुः ॥ ८ ॥

तथाश्वारोहा गजारोहाश्चाश्वान् गजांश्चानधिगतशास्त्रा अपि विनयन्ते ॥ ९ ॥

तथा महावत और घुड़सवार हस्तिशास्त्र और शालिहोत्र को बिना पढ़े हुए हाथियों और घोड़ों को क़ाबू में कर लेते हैं ॥ ९ ॥

तथेति। अनधिगतशास्त्रा इति हस्त्यश्ववैद्यकं हस्तिशिक्षेत्यनधीत्याम्नायात्, पोषणादम्यादिकं कर्म कुर्वतः इत्येव। तत्रापि शास्त्रमेव हेतुः ॥ ९ ॥

न शास्त्रे एवायं न्यायो यद्दूरस्थमपि हेतुः, किन्तु लोकेऽपीत्याह—

तथास्ति राजेति दूरस्था अपि जनपदा न मर्यादामतिवर्तन्ते तद्वदेतत् ॥ १० ॥

जिस तरह दण्ड देने वाले राजा की विद्यमानता जानकर राजधानी से दूर रहने वाली प्रजा राजाज्ञाओं का उल्लंघन नहीं करती, उसी तरह यह कामशास्त्र है जिसको बिना पढ़े भी लोग उसका व्यवहार करते हैं ॥ १० ॥

अस्ति राजेति। दूरस्था अदृष्टराजत्वात्। अस्ति व्यवस्थापकः, यत इयं व्यवस्थेति तद्भयान्न मर्यादामतिक्रामन्ति। तद्वदेतदिति दार्ष्टान्तिके योजनीयम्॥१०॥

पाँचवें सूत्र से लेकर दसवें सूत्र तक वात्स्यायन मुनि शास्त्र के परोक्ष प्रभाव की महत्ता और सत्ता का वर्णन करते हैं। वात्स्यायन का तात्पर्य इतना ही है कि प्रयोग का हेतु शास्त्र ही होता है। शास्त्र का जो कुछ नियम और विधान होता है उसका प्रच्छन्न प्रभाव परम्परागत प्रयोगों, व्यवहारों में रहता है। हमारे जो भी लोक-व्यवहार हैं, हमारी जो भी लोकमान्यताएँ और परम्पराएँ हैं उनके बीज में शास्त्र का प्रभाव अवश्य रहता है। जैसे व्याकरण शास्त्र के परम्परागत विद्यमान होते हुए भी अवैयाकरण याज्ञिक यज्ञ की विकृतियों को परम्परागत समझते हैं।

संहितापाठ में आठ प्रकार की विकृतियाँ होती हैं—

जटा माला शिखा रेखा, ध्वजो दण्डो रथो घनः ॥
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः ॥[1]

जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ, घन—ये आठ प्रकार की विकृतियाँ हैं।

इन विकृतियों को समझने के लिए व्याकरण का ज्ञान अपेक्षित होता है क्योंकि [2]संहिता, [3]पद, [4]क्रम, [5]पञ्चसन्धि का जब तक ज्ञान न होगा,

१. कात्यायन प्रातिशाख्य
२. परः सन्निकर्षः संहिता—पा० अ० १। ४। १०९
३. पदविच्छेदोऽसंहितः— कात्यायन प्रातिशाख्य
४. क्रमः स्मृतिः प्रयोजनः—कात्यायन प्रातिशाख्य
५. क्रमः, उत्क्रमः, व्युत्क्रमः, अभिक्रमः, संक्रमः—पंचसन्धयः

विकृतियों को समझकर संहितापाठ करना कठिन हो जाता है। लेकिन परम्परागत प्राप्त ज्ञान के कारण अवैयाकरण भी अष्टविकृतिपूर्वक संहिता का पाठ कर लिया करते हैं। इसी प्रकार महावत और घुड़सवार भी बिना शास्त्रज्ञान के हस्ति-अश्वसंचालन तथा वशीकरण कर्म में प्रवीण होते हैं।

अथवास्त्येव शास्त्रग्रहणं कासांचिदित्याह—

सन्त्यपि खलु शास्त्रप्रहतबुद्धयो गणिका राजपुत्र्यो महामात्रदुहितरश्च ॥ ११ ॥

स्त्रियों को शास्त्र समझने की बुद्धि नहीं होती इस आक्षेप का निराकरण करते हुए सूत्रकार कहता है—

ऐसी गणिकाएँ, राजपुत्रियाँ और मन्त्रियों की पुत्रियाँ हैं जो केवल प्रयोगों में ही नहीं बल्कि कामशास्त्र और संगीतशास्त्र में निपुण हैं ॥ ११ ॥

सन्त्यपीति। शास्त्रेण प्रहता खिन्ना बुद्धिर्यासामिति। महामात्रेति—महती मात्रा येषामिति सामन्ता महासामन्ता वा। हस्तिशिक्षायां वा तल्लक्षणमनुसर्तव्यम् ॥ ११ ॥

गणिकाओं और राजपुत्रियों को कामशास्त्र और उसके अंगभूत संगीतशास्त्र की व्यावहारिक और तात्त्विक शिक्षा देने की भारतीय पद्धति बहुत पुरातन है। भारतीय समाज में वेश्याओं का समादरण उनके रूप, वय, आकर्षण के साथ ही उनकी विद्वत्ता, योग्यता और परिचयचारुता के कारण होता रहता है। बौद्ध जातकों की 'आम्रपाली' और भास के नाटक दरिद्रचारुदत्त की 'वसन्तसेना' रूप और गुण में आदर्श महिला समझी जाती थीं। बड़े-बड़े सम्राट् और सन्त भी उनके पास आया-जाया करते थे।

राजपुत्रियों में उज्जयिनी के प्रद्योत चण्डमहासेन की अनिन्द्य-सुन्दरी कन्या वासवदत्ता जितनी सुन्दर थी उतनी ही कलाप्रवीण प्रसिद्ध थी। कौशाम्बीनरेश उदयन को राजा प्रद्योत ने छल द्वारा इसलिए बंदी बनाया था कि वह वासवदत्ता को वीणा बजाने की अपनी अद्वितीय कला में पारंगत कर दे।

प्राचीन काल से सामाजिक शिष्टाचार और कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए राजकुमार और राजकुमारियाँ गणिकाओं के पास भेजी जाती थीं।

विदुषी, रूपवती गणिकाएँ भारतीय समाज में आदरणीय ही नहीं बल्कि मंगल-सामग्री मानी जाती रही हैं। इसलिए उनका नाम मंगलामुखी भी था। ज्योतिष के अनुसार यात्राकाल में गणिका का दर्शन मंगलसूचक माना जाता है। यज्ञकाल में भी गणिकाओं का स्थान ऋत्विजों के सान्निध्य में निश्चित रहता था—

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं
तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमक्रयाया
अयोगूं कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥[1]

गणिकाएँ समाज का एक प्रमुख अंग मानी जाती रही हैं, उनकी प्रतिष्ठा का ख़याल जनता और शासन दोनों रखते थे। ऐसी गणिकाएँ तथा ललित-कला एवं संगीत कला के आचार्य राजा-रईसों की सन्तानों के एकान्त शिक्षक हुआ करते थे।

तस्माद्वैश्वासिकाज्जनाद्रहसि प्रयोगाञ्छास्त्रमेकदेशं वा स्त्री गृह्णीयात् ॥ १२ ॥

इसलिए विश्वस्त स्त्री से एकान्त स्थान में समस्त प्रयोगों की, कामशास्त्र की, संगीतशास्त्र की अथवा इनके आवश्यक अंशों की शिक्षा स्त्रियों को ग्रहण करनी चाहिए ॥ १२ ॥

तस्मादिति—यस्मात्प्रयोगग्रहणं शास्त्रग्रहणं चोभयं तस्मात्, वैश्वासिकाद्विश्वासार्हात्, लज्जानिवृत्त्यर्थम्। प्रयोगान् या शास्त्रग्रहणासमर्था दुर्मेधा। शास्त्रम्, तद्ग्रहणसमर्था मेधाविनी। शास्त्रैकदेशं वा संप्रयोगाङ्गं या मध्यमेधाविनी सा गृह्णीयात् ॥ १२ ॥

अभ्यासप्रयोज्यांश्च चातुःषष्टिकान् योगान् कन्या रहस्येकाकिन्यभ्यसेत् ॥ १३ ॥

अभ्यास से सफल होने वाली चौसठ कलाओं के प्रयोगों का अभ्यास कन्या को एकान्त स्थल पर करना चाहिए ॥ १३ ॥

अभ्यासेति। चातुःषष्टिकांश्चतुःषष्टिभवान्। कन्येति। तदानीमभ्यस्तं यौवने प्रयुज्यते। रहसीति लज्जानिवृत्त्यर्थम्। एकाकिन्याचार्यनिरपेक्षा ॥ १३ ॥

कः पुनर्वैश्वासिक इत्याह—

आचार्यास्तु कन्यानां प्रवृत्तपुरुषसंप्रयोगा सहसंप्रवृद्धा धात्रेयिका। तथाभूता वा निरत्ययसम्भाषणा सखी। सवयाश्च मातृष्वसा। विस्रब्धा तत्स्थानीया वृद्धदासी। पूर्वसंसृष्टा वा भिक्षुकी। स्वसा च विश्वासप्रयोगात् ॥ १४ ॥

१. यजुर्वेद अ० ३ मं० ५ तथा—नर्माय पुँश्चलूं हसायकारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं—यजुर्वेद—३०।२०

विश्वस्त स्त्री-शिक्षिका का निर्देश करते हैं—

निम्नांकित छह प्रकार की आचार्याओं में से कोई एक कन्याओं की आचार्या हो सकती है—

१. पुरुष के साथ संभोग कराने का अनुभव प्राप्त कर चुकी हो ऐसी साथ में पाली-पोसी, खेली हुई धाय की लड़की।

२. अथवा निश्छल हृदय की ऐसी सखी जो सम्भोग का अनुभव कर चुकी हो।

३. अपनी ही उम्र की मौसी।

४. मौसी के समान विश्वासयोग्य बूढ़ी दासी।

५. कुल, शील, स्वभाव से पूर्व परिचित भिक्षुणी-संन्यासिनी।

६. अपनी बड़ी बहिन ॥ १४ ॥

आचार्यास्त्विति। तु शब्दो विशेषणार्थः, पुरुषाणां स्वातन्त्र्यात्सुलभा उपदेष्टारः।

तत्र प्रवृत्तपुरुषसंप्रयोगा पुरा चानुभूतरसत्वादभिज्ञा धात्रेयिका धात्र्या अपत्यम्, सा हि सहसंप्रवृद्धत्वाद्विश्वास्या। इत्येक आचार्यः।

तथाभूता चेति—प्रवृत्तपुरुषसंप्रयोगा सखी वा, निरत्ययेति—निर्दोषसंभाषणत्वाद्विश्वास्या। इति द्वितीया।

सवयाश्चेति तुल्यवयाः प्रीतिविश्वासयोरास्पदम्। चशब्दात्तथाभूतेति वर्तते। मातृष्वसा मातुर्भगिनी। इति तृतीया।

विस्रब्धेति विश्वस्ता। तत्स्थानीया मातृष्वसृतुल्या मातृभगिनीत्वेन गृहीता वृद्धदासी विदितबहुवृत्तान्ता। इति चतुर्थी।

पूर्वसंसृष्टा पूर्वं यया सह प्रीतिरुत्पन्ना सा विश्वास्या भिक्षुकी भिक्षणशीला या काचित्सा देशहिण्डनकुशला। इति पञ्चमी।

स्वसा च ज्येष्ठा भगिनी। विश्वासप्रयोगादिति—यदा तत्समक्षं विश्वासात् पुरुषान्तरेण संप्रयुक्ता स्यात्। अन्यथा स्वसा स्वसारमपि नेर्ष्यया शिक्षयति। इति षष्ठी। इत्युक्तम्। ग्रहणं कामसूत्रं तदङ्गविद्याः।

तासामङ्गविद्यानामयमुद्देशः। शास्त्रान्तरे चतुःषष्टिर्मूलकला उक्ताः।

तत्र कर्माश्रया चतुर्विंशतिः। तद्यथा—गीतम्[१], नृत्यम्[२], वाद्यम्[३], लिपिज्ञानम्[४], वचनं चोदारम्[५], चित्रविधिः,[६] पुस्तकर्म,[७] पत्रच्छेद्यम्[८], माल्यविधिः,[९] आस्वाद्यविधानम्,[१०] रत्नपरीक्षा,[११] सीव्यम्,[१२] रङ्गपरिज्ञानम्,[१३] उपकरणक्रिया[१४], मानविधिः,[१५] आजीवज्ञानम्,[१६] तिर्यग्योनिचिकित्सितम्,[१७] मायाकृतं[१८] पाषण्डसमयज्ञानम्, क्रीडाकौशलम्,[१९] लोकज्ञानम्,[२०] वैचक्षण्यम्,[२१] संवाहनम्[२२], शरीरसंस्कारः,[२३] विशेषकौशलं[२४] चेति।

द्यूताश्रया विंशतिः—तत्र निर्जीवाः पञ्चदश । तद्यथा—आयुःप्राप्तिः,[१] अक्षविधानम्,[२] रूपसंख्या,[३] क्रियामार्गम्,[४] बीजग्रहणम्,[५] नयज्ञानम्,[६] करणादानम्,[७] चित्राचित्रविधिः,[८] गूढराशिः,[९] तुल्याभिहारः,[१०] क्षिप्रग्रहणम्,[११] अनुप्राप्तिलेखास्मृतिः,[१२] अग्निक्रमः,[१३] छलव्यामोहनम्,[१४] ग्रहदानं[१५] चेति । सजीवाः पञ्च—उपस्थानविधिः,[१] युद्धम्,[२] रुतम्,[३] गतम्,[४] नृत्तं[५] चेति ।

शयनोपचारिकाः षोडश । तद्यथा—पुरुषस्य भावग्रहणम्[१], स्वरागप्रकाशनम्[२], प्रत्यङ्गदानम्,[३] नखदन्तयोर्विचारौ,[४] नीवीस्रंसनम्,[५] गुह्यस्य संस्पर्शनानुलोम्यम्[६], परमार्थकौशलम्,[७] हर्षणम्,[८] समानार्थताकृतार्थता,[९] अनुप्रोत्साहनम्,[१०] मृदुक्रोधप्रवर्तनम्,[११] सम्यक्क्रोधनिवर्तनम्,[१२] क्रुद्धप्रसादनम्,[१३] सुप्तपरित्यागः,[१४] चरमस्वापविधिः[१५] गुह्यगूहनमिति[१६] ।

चतस्र उत्तरकलाः । तद्यथा—साश्रुपातं रमणाय शापनम्,[१] स्वशपथक्रिया,[२] प्रस्थितानुगमनम्,[३] पुनः[४] पुनर्निरीक्षणं च ।

इति चतुःषष्टिर्मूलकलाः । आस्वेवान्तरनिविष्टानामन्तरकलानामष्टादशाधिकानि पञ्चशतान्युक्तानि । तत्र कर्मद्यूताश्रयाः प्रायश आबालं गच्छन्ति ।

ता एवान्यथा विभज्य चतुःषष्टिरत्रोक्ताः । यास्तु शयनोपचारिका उत्तरकलाश्च ताः प्रायशस्तन्त्रस्याङ्गतां प्रतिपद्यन्ते, इति पाञ्चालिक्यामेव चतुःषष्ट्यामन्तरकला वेदितव्याः । ताश्च यथाप्रस्तावं वक्ष्यन्ते ॥ १४ ॥

पुरुषों को आचार्य और शिक्षक सर्वत्र सुलभ होते हैं किन्तु स्त्रियों के लिए कामशास्त्र की शिक्षा की व्यवस्था के लिए आचार्या की नियुक्ति सरल नहीं है । इसलिए वात्स्यायन ने छह प्रकार की स्त्रियों में से किसी एक को कामशास्त्र की प्रयोगात्मक शिक्षा देने के लिए चुनने की सलाह दी है । इस निर्बंधन में विश्वास, आत्मीयता और पवित्रता निहित है । सीखने-सिखाने में संकोच, लज्जा नहीं होगी, साथ ही चरित्र भी उज्ज्वल बना रहेगा । कामसूत्रकार ने उक्त छः प्रकार की आचार्याओं का परिगणन काम की ६४ कलाओं की शिक्षा के लिए किया है । इन कलाओं का निरन्तर अभ्यास करने से दक्षता प्राप्त हो सकती है । सूत्रकार ने यह भी अवकाश दे दिया है कि यदि पूरी कलाओं के सीखने का अवसर न मिले अथवा सिखानेवाली आचार्या न मिले, तो जितना भी समय मिल रहा हो उतने ही में और आधी, तिहाई, चौथाई कलाओं को जाननेवाली भी मिले तो उससे उतनी कलाएँ सीख लेनी चाहिए ।

तत्राप्यौपयिकीं चतुःषष्टिमाह—

गीतम्[१], वाद्यम्[२], नृत्यम्[३], आलेख्यम्[४], विशेषकच्छेद्यम्[५], तण्डुलकुसुमवलिविकाराः[६], पुष्पास्तरणम्[७], दशनवसनाङ्गरागः[८],

मणिभूमिकाकर्म, शयनरचनम्, उदकवाद्यम्, उदकाघातः, चित्राश्च योगाः, माल्यग्रथनविकल्पाः, शेखरकापीडयोजनम्, नेपथ्यप्रयोगाः, कर्णपत्रभङ्गाः, गन्धयुक्तिः, भूषणयोजनम्, ऐन्द्रजालाः, कौचुमाराश्च योगाः, हस्तलाघवम्, विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया, पानकरसरागासवयोजनम्, सूचीवानकर्माणि, सूत्रक्रीडा, वीणाडमरुकवाद्यानि, प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वाचकयोगाः, पुस्तकवाचनम्, नाटकाख्यायिकादर्शनम्, काव्यसमस्यापूरणम्, पट्टिकावानवेत्रविकल्पाः, तक्षकर्माणि, तक्षणम्, वास्तुविद्या, रूप्यपरीक्षा, धातुवादः, मणिरागाकरज्ञानम्, वृक्षायुर्वेदयोगाः, मेषकुकुटलावकयुद्धविधिः, शुकसारिकाप्रलापनम्, उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्, अक्षरमुष्टिकाकथनम्। म्लेच्छितविकल्पाः, देशभाषाविज्ञानम्, पुष्पशकटिका, निमित्तज्ञानम् यन्त्रमातृका, धारणमातृका, सम्पाठ्यम्, मानसी काव्यक्रिया, अभिधानकोशः, छन्दोज्ञानम्, क्रियाकल्पः, छलितकयोगाः, वस्त्रगोपनानि, द्यूतविशेषः, आकर्षक्रीडा, बालक्रीडनकानि, वैनयिकीनाम्, वैजयिकीनाम् व्यायामिकीनां च विद्यानां ज्ञानम्, इति चतुःषष्टिरङ्गविद्याः। कामसूत्रस्यावयविन्यः ॥१५॥

अब कामसूत्र की उपायभूत ६४ कलाओं के नाम बतलाते है

१ गीतम्—गाना।

२ वाद्यम्—बाजा बजाना।

३ नृत्यम्—नाचना।

४ आलेख्यम्—चित्रकारी।

५ विशेषकच्छेद्यम्—भोजपत्र के पत्रों को तिलक की आकृति में काटना।

६ तण्डुलकुसुमवलिविकाराः—पूजन के लिए चावल और रंग-बिरंगे फूलों को सजाना।

७ पुष्पास्तरणम्—घर या कमरों को फूल से सजाना।

८ दशनवसनाङ्गरागः—शरीर, कपड़ों और दाँतों पर रंग चढ़ाना।

९ मणिभूमिका कर्म—फर्श पर मणियों को बिछाना ।
१० शयनरचनम्—शय्या की रचना ।
११ उदकवाद्यम्—पानी को इस तरह बजाना कि उससे मुरजनाम के बाजे की ध्वनि निकले ।
१२ उदकघातः—जल क्रीड़ा करते समय कलात्मक ढंग से छींटे मारना ।
१३ चित्रयोगाः—विभिन्न औषधियों, मंत्रों और तंत्रों के प्रयोग ।
१४ माल्यग्रथनविकल्पाः—विभिन्न प्रकार से मालाएँ गूथना ।
१५ शेखरकापीडयोजनम्—शेखरक और आपीडक नाम के शिर के आभूषणों को उचित स्थान पर धारण करना ।
१६ नेपथ्यप्रयोगाः—अपने को या दूसरों को वस्त्रालंकार से सजाना ।
१७ कर्णपत्रभङ्गः—हाथी दाँत, शंख से अलंकारों को बनाना ।
१८ गन्धयुक्तिः—कई द्रव्यों को मिला कर सुगन्धि तैयार करना ।
१९ भूषणयोजनम्—आभूषणों में मणियाँ जड़ना ।
२० ऐन्द्रजालयोगः—इन्द्रजाल की क्रीड़ाएँ करना ।
२१ कौचुमारयोगाः—कुचुमार तंत्र में बताए गए बाजीकरण प्रयोग, सौन्दर्य-वृद्धि के प्रयोग ।
२२ हस्तलाघवम्—हाथ की सफाई ।
२३ विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया—विभिन्न ढंग से साग, तरकारी और भोजन बनाने का कौशल ।
२४ पानकरसरागासवयोजनम्—पेय पदार्थों के बनाने का कौशल ।
२५ सूचीवानकर्माणि—सीना, पिरोना, जाली बुनना ।
२६ सूत्रक्रीडा—हाथ के सूत से पशु-पक्षियों, मंदिरों, मकानों के चित्र बना लेना ।
२७ वीणाडमरुकवाद्यानि—वीणा, डमरू तथा अन्य बाजे बजाना ।
२८ प्रहेलिका—पहेलियों को बूझना ।
२९ प्रतिमाला—अन्त्याक्षरी प्रतियोगिताका कौशल ।
३० दुर्वाचक योग—ऐसे श्लोक कहना जिनके उच्चारण और अर्थ दोनों कठिन हों ।[1]
३१ पुस्तकवाचनम्—पुस्तक बाँचने की कला ।

१. जैसे—अजा चचेरे लवणा बिबोधे
नामर्दकायेऽसुरभिः प्रचोदे
आचार भ्रष्टा भट भाट चोदे
धीचोद माचोद हरामजादे

३२ नाटकाख्यायिकादर्शनम्—नाटकों, ऐतिहासिक कथाओं का ज्ञान।
३३ काव्यसमस्यापूरणम्—कविता द्वारा समस्यापूर्ति।
३४ पट्टिकावेत्रवानविकल्पाः—बेत और सरकण्डे आदि की वस्तुएँ बनाना।
३५ तक्षकर्माणि—सोने-चाँदी के गहनों और बरतनों पर मीनाकारी, पच्चीकारी।
३६ तक्षणम्—बढ़ईगिरी।
३७ वास्तुविद्या—गृह-निर्माण-कला।
३८ रूप्यरत्नपरीक्षा—मणियों और रत्नों की परीक्षा।
३९ धातुवादः—धातुओं को मिलाना, शोधना।
४० मणिरागाकरज्ञानम्—मणियों को रँगना और उन्हें खदान से निकालना।
४१ वृक्षायुर्वेदयोगाः—वृक्षों और लताओं की चिकित्सा, उन्हें इच्छानुसार छोटा, बड़ा बना लेने की कला।
४२ मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः—भेड़ा, मुर्गा और लावकों को लड़ाना।
४३ शुक-शारिकाप्रलापनम्—तोता, मैना को पढ़ाना।
४४ उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्—शरीर और शिर की मालिश की कला।
४५ अक्षरमुष्टिकाकथनम्—सांकेतिक अक्षरों के अर्थ जान लेना।[1]
४६ म्लेच्छितविकल्पाः—गुप्तभाषाविज्ञान।
४७ देशभाषाविज्ञानम्—विभिन्न देश की भाषाओं का ज्ञान।
४८ पुष्पशकटिका—फूलों से रथ, गाड़ी आदि बनाना।
४९ निमित्तज्ञानम्—शकुन-विचार।
५० यंत्रमातृका—स्वयंचालित यंत्रों को बनाना।
५१ धारणमातृका—स्मरणशक्ति बढ़ाने की कला।
५२ सम्पाठ्यम्—किसी सुने हुए या पढ़े हुए श्लोक को ज्यों का त्यों दुहरा देना।
५३ मानसीकाव्यक्रिया—विच्छिन्न अक्षरों से श्लोक बनाना।
५४–५५ अभिधानकोशछन्दोविज्ञानम्—शब्दकोशों और छन्दों का ज्ञान।

महाकवि दुःखभंजन शतघटिकः (काशी) का यह दुर्वाचक योग श्लोक है, जो पढ़ने में दुर्वाचक है और उसका अर्थ लगाना साधारण बुद्धि का काम नहीं है।

१. जैसे—फाचैवैज्येआश्राभाश्राकामापौमाचैव—यहाँ फा आदि से फागुन आदि बारह मास अभिप्रेत हैं।

५६ क्रियाकल्पः—काव्यालंकार का ज्ञान ।

५७ छलितयोगाः—बहुरूपियापन ।

५८ वस्त्रगोपनानि—छोटे कपड़े इस तरह पहने कि वह बड़ा दिखायी पड़े और बड़ा छोटा दिखाई पड़े ।

५९ द्यूतविशेषः—विभिन्न प्रकार की द्यूत-क्रीड़ाओं की कला ।

६० आकर्षक्रीडा—पासा खेलना ।

६१ बालक्रीडनकानि—बच्चों के विभिन्न खेलों का ज्ञान ।

६२ वैनयिकीनां विद्यानां ज्ञानम्—विनय सिखानेवाली विद्या, आचारशास्त्र ।

६३ वैजयिकीनां विद्यानां ज्ञानम्—विजय दिलानेवाली विद्याएँ, कौटलीय अर्थशास्त्र ।

६४ व्यायामिकीनां विद्यानां ज्ञानम्—व्यायामविद्या ।

कामसूत्र की अंगभूत ये ६४ विद्याएँ हैं ॥ १५ ॥

(१) गीतमित्यादि—गीतवाद्यनृत्यालेख्यानि चत्वारि प्रायः स्वशास्त्रविहित-प्रपञ्चानि तथापि संक्षेपतः कथ्यन्ते—'स्वरगं पदगं चैव तथा लयगमेव च । चेतोवधानगं चैव गेयं ज्ञेयं चतुर्विधम् ।

(२) घनं च विततं वाद्यं ततं सुषिरमेव च । कांस्यपुष्करतन्त्रीभिर्वेणुना च यथाक्रमम् ।

(३) 'करणान्यङ्गहाराश्च विभावो भाव एव च । अनुभावो रसाश्चेति संक्षेपान्नृत्यसंग्रहः ॥'

(४) आलेख्यमिति—'रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम् । सादृश्यं वर्णिकाभङ्ग इति चित्रं षडङ्गकम् ॥' इति । एतानि परानुरागजननान्यात्म-विनोदार्थानि च ।

(५) विशेषकच्छेद्यमिति—विशेषकस्तिलको यो ललाटे दीयते, तस्य भूर्जादि-पत्रमयस्यानेकप्रकारं छेदनमेव च्छेद्यम् । पत्रच्छेद्यमिति वक्तव्यम् । वक्ष्यति च—'पत्रच्छेद्यानि नानाभिप्रायाकृतीनि प्रेषयेत्' इति । सत्यम् । विशेषकग्रहणमा-दरार्थम्, विलासिनीनामतिप्रियत्वात् ।

(६) तण्डुलकुसुमवलिविकारा इति—अखण्डतण्डुलैर्नानावर्णैः सरस्वती-भवने कामदेवभवने वा मणिकुट्टिमेषु भक्तिविकाराः । तथा कुसुमैर्नानावर्णैर्ग्रथितैः शिवलिङ्गादिपूजार्थं भक्तिविकाराः । अत्र ग्रथनं माल्यग्रथन एवान्तर्भूतम् । भक्ति-विशेषेणावस्थापनं कलान्तरम् ।

(७) पुष्पास्तरणमिति—यन्नानावर्णैः पुष्पैः सूचीवानादिबद्धैरभ्यस्यते तदेव, वासगृहोपस्थानमण्डपादिषु यस्य पुष्पशयनमित्यपरा संज्ञा ।

(८) दशनवसनाङ्गराग इति—रागशब्दः प्रत्येकं योज्यते । तत्राङ्गरागोऽङ्ग-

मार्ष्टिः कुङ्कुमादिना। रञ्जनविधिरिति वक्तव्ये दशनादिग्रहणमादरार्थम्। विलासिनीनां दशनादिसंस्कारस्यात्यन्ताभीष्टत्वात्। इति

(९) मणिभूमिकाकर्मेति—मणिभूमिका कृतकुट्टिमा भूमिः, ग्रीष्मे शयनापानकार्थं तस्यां मरकतादिभेदेन करणम्।

(१०) शयनरचनमिति—शयनीयस्य कालापेक्षया रक्तविरक्तमध्यस्थाभिप्रायादाहारपरिणतिवशाच्च रचनम्।

(११) उदकवाद्यमिति—उदके मुरजादिवद्वाद्यम्।

(१२) उदाकाघात इति। हस्तयन्त्रमुक्तैरुदकैस्ताडनम्। तदुभयं जलक्रीडाङ्गम्।

(१३) चित्राश्च योगा इति—नानाप्रकारदौर्भाग्यैकेन्द्रियपलितीकरणादयः, ईर्ष्यया परातिसंधानार्थाः, तानौपनिषदिके वक्ष्यति। एते च कौचुमारयोगेषु नान्तर्भवन्तीति पृथगुक्ताः। कुचुमारेण तेषामनुक्तत्वात्।

(१४) माल्यग्रथनविकल्पा इति—माल्यानां मुण्डमालादीनां देवतापूजनार्थं नेपथ्यानां ग्रथनविकल्पाः।

(१५) शेखरकापीडयोजनमिति—ग्रथनविकल्प एवायम् किंतु योजनं कलान्तरम्, तत्र शेखरकस्य शिखास्थानेऽवलम्बनन्यासेन परिधापनात्। आपीडस्य च मण्डलाकारेण ग्रथितस्य काष्ठिका (?) योगेन परिधापनात्। नानावर्णैः पुष्पैर्विरचनं योजनम्। पुनर्विरचनवचनमादरार्थम्। तदुभयं नागरकस्य प्रधानं नेपथ्याङ्गम्।

(१६) नेपथ्यप्रयोगा इति—देशकालापेक्षया वस्त्रमाल्याभरणादिभिः शोभार्थं शरीरस्य मण्डनाकाराः।

(१७) कर्णपत्रभङ्गा इति—दन्तशङ्खादिभिः कर्णपत्रविशेषा नेपथ्यार्थाः।

(१८) गन्धयुक्तिरिति—स्वशास्त्रविहितप्रपञ्चा प्रतीतप्रयोजनैव।

(१९) भूषणयोजनमिति—अलंकारयोगः। स द्विविधः, संयोज्योऽसंयोज्यश्च। तत्र संयोज्यस्य कण्ठिकेन्द्रच्छन्दादेर्मणिमुक्ताप्रवालादिभिर्योजनम्। असंयोज्यस्य कटककुण्डलादेर्विरचनं योजनम्। तदुभयं नेपथ्याङ्गम्। न तु शरीरे भूषणयोजनम्। तस्य नेपथ्यप्रयोगा इत्यनेनैव सिद्धत्वात्।

(२०) ऐन्द्रजाला इति—इन्द्रजालादिशास्त्रप्रभवा योगाः। सैन्यदेवालयादिदर्शनादहंभावविस्मापनार्थाः।

(२१) कौचुमारा इति—कुचुमारस्यैते सुभगंकरणादयः उपायान्तरासिद्धसाधनार्थाः।

(२२) हस्तलाघवमिति—सर्वकर्मसु लघुहस्तता, कालातिपातनिरासार्थम्। द्रव्यहानिषु वा लाघवं क्रीडार्थं विस्मापनार्थं च।

(२३) विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया ।

(२४) पानकरसरागासवयोजनमिति—चतुर्विध आहारः, भक्ष्यभोज्यलेह्यपेयमिति । तत्र भोज्यम्—भक्तव्यञ्जनयोर्व्यञ्जनराधनं प्रायशो न सुज्ञानमिति व्यञ्जनाग्रचस्य शाकस्योपादानेन दर्शयति । तत्र शाकं दशविधम् । यथोक्तम्—'मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डप्ररूढकम् । त्वक्पुष्पं कण्टकं चेति शाकं दशविधंस्मृतम् ॥' पेयं द्विविधम्, अग्निनिष्पाद्यमितरच्च । तत्र पूर्वं यूषाख्यम् । तच्च द्विविधम्, मुद्गादिनिर्यूहकृतं क्वाथरसं च । भक्ष्यं खण्डखाद्यादि । एषां नानाप्रकाराणां क्रिया पाकविधानेन निष्पादनम् ।

यदनग्निनिष्पादनं पेयं तद् द्विविधम्, संधानकृतमितरच्च । तत्राद्यं द्रावितमद्रावितं च । तत्र यद्गुडतिन्तिडिकादिजलेन संयोज्य क्रियते तद्द्रावितं पानकाख्यम् । यदद्रावकौषधेन तालमोचाफलानि संयोज्य निष्पाद्यते तदद्रावितं रसाख्यम् । आसवग्रहणेन संधानमुपलक्षयति । तन्मृदुमध्यतीक्ष्णसंधानयोजनात्तथाविधमेव निष्पाद्यते ।

रागग्रहणं लेह्यं सूचयति । तस्य त्रैविध्यात् । तथा चोक्तम्—'रागो रागविधानज्ञैर्लेह्यश्चूर्णो द्रवः स्मृतः । लवणाम्लकटुस्वाद ईषन्मधुरसंयुतः ॥' इति । एतच्चतुर्विधमास्वाद्यकलायाः प्रपञ्चितं शरीरस्थित्यर्थम् । योगविभागोऽग्निजानग्निजकर्मदर्शनार्थः ।

तत्र पाकेन शाकादिक्रिया विना पाकेन पानकादियोजनम् । अन्यथा ह्यास्वाद्यविधिरित्युक्तं स्यात् । तस्मात्कर्मभेदादास्वाद्यविधानज्ञोऽपि द्विविधः, तद्वशादेकापि कला द्विधाकृत्योक्ता ।

(२५) सूचीवानकर्माणीति—सूच्या यत्सन्धानकरणं तत्सूचीवानं त्रिविधम्—सीवनम्, ऊतनम्, विरचनम्, तत्राद्यं कंचुकादीनाम् । द्वितीयं त्रुटितवस्त्राणाम् । तृतीयं कुथास्तरणादीनाम् । इयं प्रतीतार्थैव ।

(२६) सूत्रक्रीडेति—नालिकासंचारनालादिसूत्राणामन्यथान्यथा दर्शनम् । छित्त्वा दग्ध्वा च पुनरच्छित्त्वादग्ध्वा दर्शनम्, तच्चाङ्गुलिन्यासात् । देवकुलादिदर्शनम् । इत्येवंप्रकारा क्रीडार्थैव ।

(२७) वीणाडमरुकवाद्यानीति—वादित्रान्तर्गतत्वेऽपि तन्त्रीवाद्यं प्रधानम् । तत्रापि वीणावाद्यम् । डमरुकवाद्यमावश्यकार्यम्, बालोपक्रमहेतुत्वाद् दुर्विज्ञेयत्वाच्च । ततो ह्यक्षराणि स्पष्टान्युच्चार्यमाणानि श्रूयन्ते ।

(२८) प्रहेलिकेति—लोकप्रतीता क्रीडार्था वादार्था च ।

(२९) प्रतिमालेति—यस्या अन्त्याक्षरिकेति प्रतीतिः । सा क्रीडार्था वादार्था च । यथोक्तम्—'प्रतिश्लोकं क्रमाद्यत्र संधायाक्षरमन्तिमम् । पठेतां श्लोकमन्योन्यं प्रतिमालेति सोच्यते ॥' इति ।

(३०) दुर्वाचकयोगा इति—शब्दतोऽर्थतश्च दुःखेनोच्यत इति दुर्वाचकम्। तस्य प्रयोगाः क्रीडार्था वादार्थाश्च । यथा काव्यादर्शे—'दंष्ट्राग्रद्धर्या प्राग्यो द्राक्ष्मामम्ब्वन्तःस्थामुच्चिक्षेप । देवध्रुट्क्षिद्ध्यृत्विक्स्तुत्यो युष्मान्सोऽव्यात्सर्पात्केतुः ॥' इति । अस्यार्थः—दंष्ट्राग्रस्य ऋद्धया प्राक्पूर्वं द्राक्शीघ्रं क्ष्मां पृथ्वीमम्ब्वन्तःस्थां पातालस्थामुच्चिक्षेपोत्क्षिप्तवान् । देवान्द्रुह्यन्तीति देवद्रुहोऽसुरास्तान्क्षिणोतीति देवध्रुट्क्षित् । हिशब्दः पादपूरणे । ऋत्विग्भिः स्तुत्यः । सर्पानत्तीति सर्पाद्गरुडः स केतुर्ध्वजो यस्येति ।

(३१) पुस्तकवाचनमिति—भरतादिकाव्यानां पुस्तकस्थानां शृङ्गारादिरसापेक्षया गीततः स्वरेण वाचनम् । अनुरागजननार्थमात्मविनोदार्थं च ।

(३२) नाटकाख्यायिकादर्शनमिति—काव्येषु गद्यपद्येषु नाटकस्य बहुप्रपञ्चत्वात्, आख्यायिकायाश्च प्रधानगद्यत्वाद्दर्शनं परिज्ञानमिति । आदरार्थं विशेषाभिधानम्, काव्यदर्शनमिति नोक्तम् ।

तत्र नाटके दश रूपकाणि । यथोक्तम्—'नाटकमङ्को वीथी प्रकरणमीहामृगो डिमो भाणः । व्यायोगसमवकारौ प्रहसनमिति नाटकविकल्पाः ॥'

(३३) काव्यसमस्यापूरणमिति—समस्यते संक्षिप्यत इति समस्या । इहासामान्यात् 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः' इति वृद्धिर्न भवति । यद्वा 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इत्यन्यप्रकृतेरपि यत् । बहुलग्रहणात् । काव्यस्य श्लोकस्य समस्या पाद इत्यर्थः । तस्याः पूरणं क्रीडार्थं वादार्थं च । तद्यथा काव्यादर्शे—'आश्वासं जनयति राजमुख्यमध्ये' इति । अयं वा (पा) द उद्योगपर्वणि विष्णुयाने त्रिभिः पादैः संग्रथितव्य इति समस्या दत्ता । तत्र त्रयः पादाः—'दौत्येन द्विरदपुरं गतस्य विष्णोर्बन्धार्थं प्रतिविहितस्य धार्तराष्ट्रैः । रूपाणि त्रिजगति भूतिमन्ति रोषादाश्वासञ्जनयतिराजमुख्यमध्ये ॥' इत्यादि । अत्र विष्णोर्बन्धार्थं दुर्योधनादिभिर्मन्त्रः कृतः । त्रिषु लोकेषु भूतिमन्ति रूपाणि (आशु) शीघ्रमासन्बभूवुः । जनस्य सभागतस्य, यतीनां रामकर्णादीनाम्, राजमुख्यानां वाह्लीकप्रभृतीनां च मध्य इति । एताः प्रहेलिकादयः षड् वचनकौशलान्तराः कला इह प्रायश उपयुज्यन्त इति संगृहीताः ।

(३४) पट्टिकावेत्रवानविकल्पा इति—पट्टिका छुरिका (?) । पट्टिकाया वानविकल्पाः खट्वाया आसनस्य च वेत्रैर्वानविकल्पाः प्रतीतार्थाः ।

(३५) तक्षकर्माणीति—कुन्दकर्माण्यपद्रव्यार्थानि ।

(३६) तक्षणमिति—वर्धकिकर्म । शयनासनाद्यर्थम् ।

(३७) वास्तुविद्येति—गृहकर्मोपयोगिनी ।

(३८) रूप्यरत्नपरीक्षेति—रूप्यमाहतद्रव्यं दीनारादि, रत्नं वज्रमणिमुक्तादि, तेषां गुणदोषमूल्यादिभिः परीक्षा व्यवहाराङ्गम् ।

(३९) धातुवाद इति—क्षेत्रवादः । स हि मृत्प्रस्तररत्नधातूनां पातनशोधन-मेलनादिज्ञानहेतुरर्थार्थः ।

(४०) मणिरागाकरज्ञानमिति—स्फटिकमणीनां रञ्जनविज्ञानमर्थार्थं भूषणार्थं च । पद्मरागादिमणीनामुत्पत्तिस्थानज्ञानमर्थार्थम् ।

(४१) वृक्षायुर्वेदयोगा इति—रोपणपुष्टिचिकित्सावैचित्र्यकृतो गृहोद्यानार्थाः ।

(४२) मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिरिति—सजीवद्यूतविधानमेतम् । तत्रोपस्थानादिभिश्चतुरङ्गैर्युद्धविधानं क्रीडार्थं वादार्थं च ।

(४३) शुकसारिकाप्रलापनमिति—शुकसारिका हि मानुषभाषया प्रलापिताः सुभाषितं पठन्ति संदेशं च कथयन्ति ।

(४४) उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलमिति—मर्दनं द्विविधम्, पादाभ्यां हस्ताभ्यां च । तत्र पादाभ्यां यन्मर्दनं तदुत्सादनमुच्यते । हस्ताभ्यां यच्छिरोऽभ्यङ्गकर्म तत्केशमर्दनम् । केशानां तत्र मृद्यमानत्वात्तैरेव तद्व्यपदेशः । शेषाङ्गेषु मर्दनं संवाहनम् । केशग्रहणमत्रादरार्थम् । तत्र कौशलं पराराधनार्थम् ।

(४५) अक्षरमुष्टिकाकथनमिति—अक्षराणां मुष्टिरिव मुष्टिका गुप्तिरिति । सा साभासा निराभासा च । तत्र साभासा अक्षरमुद्रेत्युच्यते । तथा कथनं गूढवस्तुमन्त्रणार्थं ग्रन्थसंक्षेपार्थं च । तस्या आचार्यरविगुप्तेन चन्द्रप्रभाविजयकाव्ये प्रकरणं पृथगुक्तम् । यथोक्तम्—'गहनप्रसन्नसर्वां कतिपयसूत्रामिमामनन्तमुखीम् । अनधीत्याक्षरमुद्रां वादसमुद्रे परिप्लवते ॥' इति । तत्रेदमुदाहरणम्—'मेवृमिकसिंकतुवृधमकुंमी मूधसबांसुशकनिधकआव्याः । फाचैवैज्येआश्राभाआकामापौमा चैव ॥' इति । अस्या आर्याया अयमर्थः—प्रथमपादेन मेषादयो राशय उक्ताः । द्वितीयेन राशीनां लग्नात्प्रभृति मूर्तिधनसहजबान्धवसुतशत्रुकलत्रनिधनधर्मकर्मायव्यया इति विशेषसंज्ञाः । इतरार्धेन फाल्गुनादयो मासा इति । निराभासा [भूत] मुद्रेत्युच्यते ॥ तया कथनं गुह्यवस्तुमन्त्रणार्थम् । यथोक्तम्—'मुष्टिः किसलयं चैव च्छटा च त्रिपताकिका । पताकाङ्कुशमुद्राश्च मुद्रा वर्गेषु सप्तसु ॥ अङ्गुल्यश्चाक्षराण्येषां स्वराश्चांगुलिपर्वसु । संयोगादक्षरं युक्तं भूतमुद्रा प्रकीर्तिता ॥' इति । एवमन्यापि काव्यसंज्ञाभूतमुद्रा द्रष्टव्या ।

(४६) म्लेच्छितविकल्पा इति—यत्साधुशब्दोपनिबद्धमप्यक्षरविन्यासादस्पष्टार्थं तन्म्लेच्छितं गूढवस्तुमन्त्रार्थम् । तस्य विकल्पा बहवः पूर्वाचार्योक्ताः । तद्यथा—'कौटिलीयं यदि क्षान्तैः स्वरयोर्ह्रस्वदीर्घयोः । बिन्दूष्मणोर्विपर्यासाद् दुर्बोधमिति संज्ञितम् ॥ अकौ खगौ घङौ चैव चटौ तपौ यशौ तथा । एते व्यस्ताः स्थिराः शेषा मूलदेवीयमुच्यते ॥ ग्रहनयनवसुसमेतं षडाननाख्यानि सागरा मुनयः । ज्वलनाङ्गं तुकभृङ्गं दुर्लिखितं गूढलेख्यमिदम् ॥' इति । एवं प्रकारा अन्येऽपि द्रष्टव्याः ।

(४७) देशभाषाविज्ञानमिति—अप्रकाश्यवस्तुज्ञापनार्थं तद्देशीयैर्व्यवहारार्थं च।

(४८) पुष्पशकटिकेति—पुष्पाणि निमित्तीकृत्याहं प्रणीता (?)।

(४९) निमित्तज्ञानमिति—निमित्तं धर्मक्षमावर्गेऽन्तर्गतं (?) शुभाशुभादेशपरिज्ञानफलम्। तत्र च प्रष्टुरभिज्ञानार्थम्. एवंरूपया स्त्रिया तव संप्रयोग इति कामोपहसितप्राया आदेशा इति। निमित्तज्ञानमिति सामान्येनोक्तम्।

(५०) यन्त्रमातृकेति—सजीवानां निर्जीवानां यन्त्राणां यानोदकसंग्रामार्थं घटनाशास्त्रं विश्वकर्मप्रोक्तम्।

(५१) धारणमातृकेति—श्रुतस्य ग्रन्थस्य धारणार्थं शास्त्रम्। यथोक्तम्—'वस्तु कोषस्तथा द्रव्यं लक्षणं केतुरेव च। इत्येते धारणादेशाः पञ्चाङ्गरुचिरं वपुः ॥' इति।

(५२) संपाठ्यमिति—संभूय क्रीडार्थं वादार्थं च। तत्र पूर्वधारितमेको ग्रन्थं पठति, द्वितीयस्तमेवाश्रुतपूर्वं तेन सह तथैव पठति।

(५३) मानसीति—मनसि भवा चिन्ता। दृश्यादृश्यभेदविषया द्विधा। तत्र कश्चिद्व्यञ्जनाक्षरैः पद्मोत्पलाद्याकृतिभिर्यथास्थितानुस्वारविसर्जनीययुतैः श्लोकमनुक्तार्थं लिखति। अन्यश्च मात्रासंधिसंयोगासंयोगच्छन्दोविन्यासादिभिरभ्यासादतीवाक्षरं (?) पठति। इति दृश्यविषया। यदा तु तथैव तानि यथाक्रममाख्यातानि श्रुत्वा पूर्ववदुन्नीय पठति, तदा दृश्यविषया न भवति। सा चाकाशमानसीत्युच्यते। तदुभयं क्रीडार्थं वादार्थं च।

काव्यक्रियेति—संस्कृतप्राकृतापभ्रंशकाव्यस्य करणं प्रतीतप्रयोजनम्।

(५४) अभिधानकोष इति—उत्पलमालादिः।

(५५) छन्दोज्ञानमिति—पिङ्गलादिप्रणीतस्य च्छन्दसो ज्ञानम्।

(५६) क्रियाकल्प इति—काव्यकरणविधिः काव्यालंकार इत्यर्थः। त्रितयमपि काव्यक्रियाङ्गं परकाव्यावबोधार्थं च।

(५७) छलितकयोगा इति—परव्यामोहनार्थाः। यथोक्तम्—'यद्रूपमन्यरूपेण संप्रकाश्य हि वञ्चनम्। देवेतरप्रयोगाभ्यां ज्ञेयं तच्छलितं यथा ॥ दिव्यं शूर्पणखारूपं व्यचरद्वायुनन्दनः। छलितं चानभिश्रुत्य श्रुत्वा रामं च कीचकम् ॥' (?) इति।

(५८) वस्त्रगोपनानीति—वस्त्रेणाप्रकाश्यदेशस्य संवरणं यथा तद्भूयमानमपि तस्मान्नापैति। त्रुटितस्यात्रुटितस्येव परिधानम्। महतो वस्त्रस्य संवरणादिनाल्पीकरणम्। इति गोपनानि।

(५९) द्यूतविशेषा इति—निर्जीवद्यूतविधानमेतत्। तत्र ये प्राप्त्यादिभिः पञ्चदशभिरङ्गैर्मुष्टिक्षुल्लकादयो द्यूतविशेषाः प्रतीतार्थाः।

(६०) आकर्षक्रीडेति—पाशकक्रीडा। द्यूतविशेषत्वेऽपि पुनर्वचनमत्रादरा-

र्थम् । सश्रृङ्गारत्वाद् दुर्विज्ञेयत्वाद्वा । अक्षहृदयापरिज्ञाने हि नलयुधिष्ठिरयोरपि पराजयात् ।

(६१) बालक्रीडनकानीति । गृहकन्दुकपुत्रिकादिभिर्यानि बालानां क्रीडनानि तानि बालोपक्रमार्थानि । एता एकषष्टिकला उक्ताः ।

(६२) वैनयिकीनामिति । स्वपरविनयप्रयोजनाद्वैनयिक्य आचारशास्त्राणि । हस्त्यादिशिक्षा च ।

(६३) वैजयिकीनामिति । विजयप्रयोजना वैजयिक्यः । दैव्यो मानुष्यश्च । तत्र दैव्योऽपराजितादयः । मानुष्यो याः सांग्रामिक्यः शस्त्रविद्याः ॥

(६४) व्यायामिकीनामिति । व्यायामप्रयोजना व्यायामिक्यो मृगयाद्याः । एतास्तिस्र आत्मोत्कर्षरक्षणार्था जीवार्थाः ॥ इति चतुःषष्टिरङ्गविद्या इति । कामसूत्रस्यावयविन्योऽवयवभूताः । तदभावे कामसूत्रस्याप्रवृत्तेः ॥ १५ ॥

वात्स्यायन ने यहाँ पर कलाओं का वर्गीकरण नहीं बल्कि उनका परिगणन किया है। कलाओं की गणना के संबंध में सबसे अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध संख्या ६४ है। शुक्रनीति तथा तंत्र ग्रन्थों में कलाओं की संख्या ६४ ही दी गयी है, कहीं-कहीं सोलह, बत्तीस और चौसठ कलाओं के नाम दिए गए हैं और कहीं चौसठ से भी अधिक। ललितविस्तर में पुरुषकला के रूप में ८६ नाम गिनाए गए हैं। और कामकला के रूप में ६४ नाम हैं। प्रबंधकोश में कलाओं की संख्या ७२ लिखी हुई है। क्षेमेन्द्र की लिखी हुई पुस्तक कलाविलास में सर्वाधिक कलाओं के नाम दिए गए हैं। उनमें ६४ लोकोपयोगी कलाएँ हैं जिनमें ३२ धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति की और ३२ मात्सर्य-शील-प्रभाव और मान की हैं। इनके अतिरिक्त ६४ कलाएँ सुनारों की सोना चुराने की, ६४ कलाएँ वेश्याओं की नागरिकों को मोहित करने की, १० भेषज कलाएँ, और १६ कायस्थों की कलाएँ हैं, जिनमें उनके लिखने का कौशल और लेखनकला द्वारा जनता और शासन को धोखा देने की बातें हैं। इनके अतिरिक्त गणकों की कलाओं एवं १०० सार कलाओं का वर्णन है।

वात्स्यायन एवं अन्यान्य आचार्यों द्वारा की गई कला-परिगणना पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि तत्कालीन आचार्य किसी भी विषय या कृत्य में निहित कौशल को कला मानते थे। सामान्यतः उपयोगी और ललित दोनों प्रकार की कलाएँ कला-कोटि में परिगणित होती थीं।

'कला' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है—

यथा कलां यथा शफम् यथा ऋणं संनयामसि ।[1]

---

1. ऋग्वेद ८।४७।१६

उपनिषदों में भी कला शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर हुआ है—

'प्राचीदिक्कला। दक्षिणादिक्कला। उदीचीदिक्कला। एष सोऽय! चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलम् पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिन् लोके भवति। प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति। य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते।'

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, षड्विंशब्राह्मण, सांख्यायनब्राह्मण, तैत्तरीय आरण्यक आदि वैदिक ग्रन्थों में कला के प्राचीन प्रयोग मिलते हैं। भरत के नाट्यशास्त्र[1] से पूर्व कला शब्द का अर्थ ललितकला में प्रयुक्त नहीं हुआ। कला का जो वर्तमान अर्थ है इस अर्थ का द्योतक शब्द भरत से पूर्व 'शिल्प' शब्द था। ब्राह्मण ग्रन्थों और संहिताओं में 'शिल्प' शब्द कला के अर्थ में व्यवहृत होता रहा है। पाणिनि की अष्टाध्यायी और बौद्ध ग्रन्थों में शिल्प शब्द का प्रयोग उपयोगी और ललित दोनों प्रकार की कलाओं के लिए होता था। अष्टाध्यायी में शिल्पी, कारुशिल्पी और चारुशिल्पी शब्द उपयोगी और ललित दोनों प्रकार की कलाओं के बोधक हैं। कौषीतकि ब्राह्मण[2] में नृत्य और गीत को शिल्प माना गया है।

वात्स्यायन की कलासूची में 'काव्यसमस्यापूरणम्', 'काव्यक्रिया', 'क्रियाकल्प' और 'मानसी' जैसी काव्यकलाओं की नामावली है। किन्तु अनेक प्राचीन एवं आधुनिक विद्वानों के मत से काव्य साहित्य है कला से वह पृथक् है।[3] क्षेमेन्द्र की कलासूची को छोड़कर प्रायः सभी प्राचीन कलासूचियों में काव्य को कला मानकर स्थान दिया गया है। वात्स्यायन की कलासूची देखने से यह स्पष्ट बोध होता है कि उनकी दृष्टि में कला का साधारण अर्थ स्त्री-प्रसादन एवं वशीकरण है। जिस क्रिया से, जिस कौशल से कामिनियाँ प्रसन्न हों, वशीभूत हो जाएँ वही कला है। वात्स्यायन की इस दृष्टि में उद्देश्य, विनोद और रसानुभूति ही है। वात्स्यायन के युग में अथवा उससे आगे और पीछे के काल में मनोरञ्जक काव्य एवं रसानुभूति उत्पन्न करने

---

१. न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

२. २९-५।

३. साहित्यसंगीतकलाविहीनः (भर्तृहरि), रसात्मकं वाक्यं काव्यम् (साहित्य-दर्पण), काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥ (काव्य-प्रकाश)

वाला काव्य दोनों ६४ कलाओं के अन्तर्गत सन्निविष्ट थे। कविता और वनिता का अभेद संबंध प्रायः सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है—

सा कविता सा वनिता यस्याः श्रवणेन स्पर्शनेन च।
कविहृदयं पतिहृदयं सरलं तरलं च सत्वरं भवति ॥

—वही कविता है और वही वनिता है जिसके सुनने और स्पर्श करने से कवि का हृदय और पति का हृदय तुरन्त सरल और तरल बन जाए। कविता और वनिता की भाँति कवि और कलाकार का अभिन्न संबंध पुरातन से चला आ रहा है। कवि और चितेरे में कोई अन्तर नहीं माना गया है। एक भावनाओं को शब्दों द्वारा उतारता है तो दूसरा रेखावृत्तियों द्वारा। कवि और चित्रकार (कलाकार) दोनों सहृदय होते हैं। उनकी वही कृति सफल समझी जाती है जो सहृदय के चित्त को तन्मय कर सके। काव्य के उक्ति-वैचित्र्य और सहृदय-रंजन ये दो गुण ऐसे हैं जो उसे कला की पाँत में स्थान दिलाते हैं।

वात्स्यायन ने कामसूत्र में जिन ६४ कलाओं का परिगणन किया है उन्हें वे कामसूत्र की अंगभूत विद्या कहते हैं।

आचार्य शङ्कर का मत है कि 'सा विद्या या विमुक्तये'—विद्या वही है जिसका प्रयोजन मोक्ष के लिए हो। इसमें सन्देह नहीं कि वात्स्यायन के कामसूत्र का प्रयोजन अंत में मोक्ष प्राप्त करना ही है। कामसूत्र की अंगभूत विद्याएँ उस मोक्ष के साधन हैं।

वात्स्यायन ने जिन ६४ कलाओं की नामावली कामसूत्र में प्रस्तुत की है उन सभी कलाओं के नाम यजुर्वेद के तीसवें अध्याय में मिलते हैं। इस अध्याय में कुल २२ मंत्र हैं जिनमें से चौथे मंत्र से लेकर बाईसवें मंत्र तक उन्हीं कलाओं और कलाकारोंका उल्लेख है।

पाञ्चालिकी च चतुःषष्टिरपरा। तस्याः प्रयोगानन्ववेत्य सांप्रयोगिके वक्ष्यामः ॥ कामस्य तदात्मकत्वात् ॥ १६ ॥

पूर्व परिगणित ६४ कलाओं से भिन्न पाञ्चाल देश की ६४ कलाएँ हैं। वे पाञ्चाली कलाएँ कामात्मक हैं, इसलिए उनका वर्णन आगे साम्प्रयोगिक अधिकरण में किया जाएगा ॥ १६ ॥

पाञ्चालिकी चेति। पाञ्चालप्रभवा तत्प्रोक्तत्वाद्वा। चतुःषष्टिरङ्गविद्याः। तदभावेऽपि तस्याः प्रवृत्तेः। तस्या इति पाञ्चालिक्याः। अन्ववेत्य यथायथं विषयमनुसृत्य। सांप्रयोगिकेऽधिकरणे वक्ष्यामः। कामस्य तदात्मकत्वादिति। चतुःषष्टिस्वभावत्वात्। पूर्वस्यास्तु चतुःषष्टेस्तन्त्रान्तरे दृष्टप्रयोगत्वात्, इह तदङ्गताप्रतिपत्त्यर्थमुद्देशमात्रमुक्तम् ॥ १६ ॥

कलाग्रहणे फलमाह—

आभिरभ्युच्छ्रिता वेश्या शीलरूपगुणान्विता ।
लभते गणिकाशब्दं स्थानं च जनसंसदि ॥ १७ ॥

गुण, शील और रूप सम्पन्न वेश्या इन कलाओं द्वारा उत्कर्ष प्राप्त कर 'गणिका' का पद प्राप्त करती है और जन-समाज में आदरणीय बनती है ॥१७॥

आभिरिति । कलाभिरभ्युच्छ्रिता जातोत्कर्षा । वेश्येति प्रायशो ग्रहणमस्या इति दर्शनार्थम् । शीलं सुस्वभावः । रूपं संस्थानं वर्णश्च । गुणा नायिकाया वैशिके वक्ष्यमाणाः । गणिकाशब्दमिति । वेश्या सामान्यशब्दवाच्यापि विशिष्टं गणिकाभिधानं लभते इत्यर्थः, एवंलक्षणत्वाद्गणिकायाः । स्थानं च जनसंसदीति-जनसभायामासनभूमिं लभते । न वेश्येत्यवगण्यते ॥ १७ ॥

पूजिता सा सदा राज्ञा गुणवद्भिश्च संस्तुता ।
प्रार्थनीयाभिगम्या च लक्ष्यभूता च जायते ॥ १८ ॥

राजा उसका सम्मान करता है, गुणवान् लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और उससे कलाएँ सीखने के लिए लोग प्रार्थना करते हैं इस तरह वह सब का लक्ष्यबिन्दु बन जाती है ॥ १८ ॥

राज्ञा पूजिता छत्रभृङ्गारादिदानेन । गुणवद्भिः संस्तुता असाधारणमस्याः कलाकौशलमिति प्रशंसिता । प्रार्थनीया कलोपदेशार्थिनामभिगमनार्हा । विदग्धानां रतार्थिनां लक्ष्यभूता निदर्शनभूता देवदत्तावत् ॥ १८ ॥

योगज्ञा राजपुत्री च महामात्रसुता तथा ।
सहस्रान्तःपुरमपि स्ववशे कुरुते पतिम् ॥ १९ ॥

६४ कलाओं के प्रयोगों को जानने वाली राजपुत्री और मंत्रिपुत्री, हज़ारों रनिवास वाले पति को भी वश में कर सकती है ॥ १९ ॥

योगज्ञा गीतादिप्रयोगज्ञा । सहस्रान्तःपुरमिति प्रभूतदारोपलक्षणम् । स्ववशे आत्मनो वशे ॥ १९ ॥

तथा पतिवियोगे च व्यसनं दारुणं गता ।
देशान्तरेऽपि विद्याभिः सा सुखेनैव जीवति ॥ २० ॥

तथा पति से वियुक्त होने पर अथवा महान् विपत्ति में फँस जाने पर कदाचित् उसे अपरिचित स्थान में भी जाना पड़े तो वह अपनी कलाओं द्वारा सुखपूर्वक निर्वाह कर सकती है ॥ २० ॥

तथा पतिवियोगे पत्यौ प्रोषिते, तथा व्यसनं दारुणं वैधव्यलक्षणं गता निर्वेदात्त्यक्तस्वदेशा अन्यस्मिन्नपि देशे सुखेनैव जीवति, विद्योपदेशदानात् ॥ २० ॥

पुरुषमधिकृत्याह—

नरः कलासु कुशलो वाचालश्चाटुकारकः ।
असंस्तुतोऽपि नारीणां चित्तमाश्वेव विन्दति ॥ २१ ॥

स्त्रियों की कलाओं की विशेषता कहने के बाद पुरुषों के संबंध में कहते हैं—वार्तालाप करने में निपुण, चाटुकार आदमी यदि कुशल कलाकार हो तो वह अप्रशंसनीय होते हुए भी स्त्रियों के चित्त को शीघ्र आकृष्ट कर लेता है ॥ २१ ॥

नर इति । वाचाल इति कलासम्बन्धद्वारेणैव बहुभाषी, नान्यथा । माभूदनागरकत्वप्रसङ्ग इति । चाटुकारकः प्रियस्य कर्ता । कलाग्रहणेन हि संस्कारवत्त्वात् । असंस्तुतोप्यपरिचितोऽपि चित्तं विन्दति गृह्णाति । आश्वेव न कालमपेक्षते । संप्रयोगात्स्त्रीपुंसयोः ॥ २१ ॥

कलानां ग्रहणादेव सौभाग्यमुपजायते ।
देशकालौ त्वपेक्ष्यासां प्रयोगः संभवेन्न वा ॥ २२ ॥

कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने मात्र से ही सौभाग्य जाग उठता है । किन्तु यदि देश और काल की परिस्थिति प्रतिकूल हो तो इन कलाओं के प्रयोगों की सफलता में सन्देह हो जाता है ॥ २२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशस्तृतीयोऽध्यायः ।

ग्रहणादेवाभिजायते सौभाग्यम् । अर्थोऽनर्थप्रतीघातः, कामो यशश्चेत्यर्थोक्तम् । तत्रापि देशकालापेक्षा । अस्मिन्देशे नागरकाः कलाकुशलाः, घटानिबन्धनादिकामा वेति प्रयोगः । नागरकशून्यो वा देशः, गुणद्विषो वात्र प्रतिवसन्ति, व्यसनकालो वा नागरकाणामिति, न वा प्रयोगसंभवः, अन्यथा तत्परिज्ञानं दोषफलं स्यादिति ॥ २२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां साधारणे प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशस्तृतीयोऽध्यायः ।
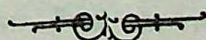
नागरकवृत्तप्रकरणनामकः चतुर्थोऽध्यायः

शास्त्रकार एव प्रकरणसंबन्धमाह—

गृहीतविद्यः प्रतिग्रहजयक्रयनिर्वेशाधिगतैरर्थैरन्वयागतैरुभयैर्वा गार्हस्थ्यमधिगम्य नागरकवृत्तं वर्तेत ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्यव्रत रखते हुए विद्योपार्जन करना चाहिए। इसके बाद दान, विजय, व्यापार तथा श्रम से धनोपार्जन करके अथवा पैतृक सम्पत्ति से या दोनों से विवाह आदि करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए और नागरकों (रसिकों) की भाँति आचरण करना चाहिए ॥ १ ॥

गृहीतविद्य इति—तस्य नागरकवृत्तवर्तने योग्यत्वात्। गृहीतविद्यस्याप्यसति पत्नीयोगे नागरकवृत्तस्यासंभवादाह—गार्हस्थ्यमिति। पत्नीसंयोगेऽपि यदि गार्हस्थ्यं गृहकर्म नागरकयोग्यं तन्नार्थं विनेत्याह—अर्थैरिति। तेऽपि न विनोपायैरित्याह—प्रतिग्रहेति। तत्र ब्राह्मणः प्रतिग्रहेण, तद्वृत्तित्वात्। क्षत्रियः शस्त्रजीवित्वाज्जयेन। वैश्यः क्रयेण वार्तोपलक्षणार्थेन। शूद्रः कारुकुशीलवादिः कृते कर्मणि यो निर्वेशो भृतिस्तेनार्जितैः। गृहस्थकर्म प्राप्येति न निष्किचनस्यायं विधिः।

अन्वयागतैरिति—पितृपितामहागतैः। अत्र पत्नीयोगादनन्तरमेव गार्हस्थ्याधिगमः। उभयैर्वेति—प्रतिग्रहाद्यागतैरन्वयागतैश्च। सत्स्वप्यन्वयागतेष्वपूर्वार्जनं कार्यमिति दर्शयति। नागरको विदग्धजनः। एतद्वृत्त्यपेक्षया वा भविष्यद्वृत्त्या नागरकस्तस्य वृत्तं वर्तेतेति तस्य सामान्यवृत्तिर्नागरकविशिष्टा वृत्तिः कर्म वा भवति। चातुर्वर्ण्यंगृहस्थमधिकृत्येदं शास्त्रम्। अस्य चेदं प्रकरणं शरीरम्। तदाश्रितस्य हि सर्वशास्त्रानुष्ठानात् ॥ १ ॥

विद्या ग्रहण करने का मुख्य तात्पर्य कामशास्त्र और उसकी अंगभूत विद्याएँ हैं। वात्स्यायन यहाँ पर चारों वर्णों की गार्हस्थ्य-व्यवस्था का विधान बतलाता है। उसका मुख्य उद्देश्य नागरकवृत्त का आचरण करने से है। रसिक व्यक्तियों की भाँति आचरण करने के लिए पत्नी की आवश्यकता पड़ती है। पत्नी प्राप्त करने के लिए विवाह करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का विधान बतलाकर वात्स्यायन यह स्पष्ट करता है कि अपहरण, बलात्कार द्वारा स्त्री प्राप्त करने की चेष्टाएँ असामाजिक और अव्यावहारिक हैं। ब्रह्मचर्यपूर्वक कामशास्त्र और ६४ कलाओं का अध्ययन करने के बाद विधिपूर्वक विवाह करके ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

गृहस्थी चलाने के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है और अर्थोपार्जन के लिए समुचित उद्योग करने चाहिए। इसलिए वात्स्यायन का कहना है कि कामकला की शिक्षा प्राप्त करने के बाद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों वर्ण क्रमशः दान, वीरता, व्यवसाय तथा श्रम आदि कर्मों द्वारा धनोपार्जन करें। इसके बाद विवाह करें। विवाह करने और गृहस्थी चलाने में अपनी कमाई तथा पिता, पितामह की कमाई दोनों का उपयोग किया जा सकता है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए व्यक्ति को सभ्य नागरिक की भाँति जीवन बिताना चाहिए।

यत्र तस्य वृत्तं तत्र स्थितिमाह—

नगरे पत्तने खर्वटे महति वा सज्जनाश्रये स्थानम्। यात्रावशाद्वा ॥ २ ॥

नागरिक—निवास कहाँ और कैसा होना चाहिए इसका निर्देश वात्स्यायन मुनि करते हैं—नगर में, पत्तन में, खर्वट में अथवा महत् में सज्जनों के बीच निवास करना चाहिये। और जीविकार्थ परदेश में भी निवास करना चाहिए ॥ २ ॥

नगर इति—नगरमष्टशतग्रामीमध्ये तद्व्यवहारस्थानम्। पत्तनं यत्र राजधानी स्थिता। खर्वटं द्विशतग्रामीमध्ये। महति वेति—चतुःशतग्रामीमध्ये द्रोणमुखं नाम खर्वटान्महद्भवति। एषामन्यतमेऽवस्थानं युज्यते। कुत इत्याह—सज्जनाश्रय इति प्रतिपदं योज्यम्। यात्रावशाद्वेति—यत्र वा स्याद्यापनं शरीरस्थितिर्ग्रामे तत्रावस्थानम्, तन्निबन्धनत्वादितरवृत्तेः ॥ २ ॥

तत्रापि गृहमन्तरेण न संभवतीत्याह—

तत्र भवनमासन्नोदकं वृक्षवाटिकावद्विभक्तकर्मकक्षं द्विवासगृहं कारयेत् ॥ ३ ॥

वहाँ जलके समीप वृक्ष-वाटिका सहित घर बनाए। तथा दो वासगृह हों एक बहिःप्रकोष्ठ दूसरा अन्तःप्रकोष्ठ ॥ ३ ॥

तत्रेति—नगरादीनामन्यतमे भवनं गृहं कारयेदिति संबन्धः। आसन्नोदकं नदीवाप्यादिसमीपे जलमकदर्थितं क्रीडाङ्गं च। वृक्षवाटिकावदिति—यस्यां दिशि जलं तस्यां वृक्षवाटिकया गृहोद्यानेन युक्तम्। विभक्तकर्मकक्षमिति—कर्मार्थं कक्षाः प्रकोष्ठकानि विभक्ता यस्य; उच्चावचेन हि गृहकर्मणि क्रियमाणे गृहमरमणीयं स्यात्। द्विवासगृहमिति—शयनार्थेन च युक्तम्। एतावद्वृत्तोपयोगिगृहविधानम्, शेषं वास्तुविद्यायां द्रष्टव्यम् ॥ ३ ॥

टीकाकार यशोधर के मत से नगर का तात्पर्य ८०० गाँवों के मध्य बसा हुआ शहर, पत्तन का राजधानी, खर्वट का तात्पर्य २०० गाँवों के बीच बसा हुआ सबसे बड़ा गाँव और महत् का तात्पर्य ४०० गाँवों के मध्य बसा हुआ बड़ा गाँव है। यशोधर इसका दूसरा नाम 'द्रोणमुख' बताते हैं।

कौटलीय अर्थशास्त्र, कामसूत्रकार वात्स्यायन और उसके टीकाकार यशोधर—दोनों से भिन्न मत रखता है—अर्थशास्त्र के मत से आठ सौ गाँवों को जोड़कर एक 'स्थानीय' बनता है। चार सौ गाँवों के समूह को जोड़ने से 'द्रोणमुख' दो सौ गाँवों के जोड़ने से 'खार्वटिक' और दस गाँवों को जोड़ने से 'संग्रहण' बनता है। ऐसा मालूम होता है कि अर्थशास्त्र में लिखित स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक और संग्रहण आज कल के ज़िला, तहसील, नोइटीफाइडएरिया और टाउन एरिया के समान रहे होंगे। अर्थशास्त्र नगर उसी को कहता है जहाँ नगरपालिका का प्रबंध हो और पत्तन से उसका तात्पर्य राजधानी ही रहा है। कामसूत्र का 'महत्' और कौटलीय अर्थशास्त्र का द्रोणमुख यशोधर के बताए हुए परिमाण से समान हैं किन्तु कौटलीय अर्थशास्त्र में 'महत्' का कोई उल्लेख नहीं है और कामसूत्र में 'स्थानीय' 'द्रोणमुख', 'संग्रहण' की चर्चा नहीं है जब कि कामसूत्र की रचना-पद्धति अर्थशास्त्र पर ही आधारित है। यही नहीं 'तमध्यक्ष प्रचाराद् वार्तासमयविद्-भ्यो वणिग्भ्यश्चेति' सूत्र लिखकर कौटलीय अर्थशास्त्र के अध्यक्ष प्रचार अधिकरण से कृषि, वाणिज्य आदि आर्थिक तत्त्वों को समझने की राय दी गई है।[1] किन्तु यहाँ पर भौमिक परिभाषाओं में अर्थशास्त्र और कामसूत्र में मतभेद स्पष्ट है।

श्रीमद्भागवत[2] में पुर, ग्राम, व्रज उद्यान, क्षेत्र, आराम, आश्रम आकर, खेट, खर्वट, घोष और पत्तन—ये नाम आये हैं—

पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरात्।
खेटखर्वटघोषांश्च ददतुः पत्तनानि च॥

टीकाकार श्रीधर स्वामी खर्वट और पत्तन की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

खर्वटः गिरिद्रोण्याश्रयो ग्रामः
पत्तनं राजधानी।

श्रीधर स्वामी के मत से पहाड़ की दून (द्रोणी) में स्थित गाँव खर्वट कहलाता है। हलायुध कोश के अनुसार—खर्वट—चार सौ गाँवों का गाँव जिसमें नदी और पर्वत रहते हैं।

१. कामसूत्र ११२११०   २. ७१२११४

शास्त्रकारों, कोशकारों और टीकाकारों के इस मतभेद के बावजूद वात्स्यायन का अभिप्राय समझने में दिक्कत नहीं होती है। वात्स्यायन नागरकवृत्त का आचरण करने के लिए ऐसे स्थान में निवास करने की सलाह देते हैं जहाँ नागरक के हृदय का रस सूखने न पाए, उसकी रसभरी भावनाएँ उत्तरोत्तर वर्द्धमान होती रहें। यह तभी हो सकता है, जब कि नागरकवृत्त के उपयोगी सभी साधन सुलभ हों। ऐसे साधन नगर (महतीपुरी), पत्तन (राजधानी) तथा खर्वट और महत् अर्थात् तहसील और जिला के केन्द्रों में आसानी से उपलब्ध हुआ करते हैं। इन साधनों में जहाँ दैनिक उपयोग, उपभोग की वस्तुएँ अपेक्षित हैं वहाँ उनसे अधिक प्राकृतिक सौन्दर्य की अपेक्षा नागरक को हुआ करती है। इसलिए नगर, पत्तन, खर्वट, महत् आदि की स्थिति प्रकृति की गोद में हो—यह ध्यान रखना सर्वोपरि है। नदी का सुन्दर किनारा हो, पर्वत और हरा-भरा वन भी उपान्त में हो। ऐसी जगह पर नागरक का भवन होना चाहिए। अपनी रुचि बढ़ाने के लिए गृहवाटिका भी बनायी जाए तथा निवास के लिए दो वासस्थान होने चाहिए एक बहिः प्रकोष्ठ दूसरा अन्तः प्रकोष्ठ।

तस्मिन्कारिते आधेयानां न्यासमाह—

बाह्ये च वासगृहे सुश्लक्ष्णमुभयोपधानं मध्ये विनतं शुक्लोत्तरच्छदं शयनीयं स्यात्। प्रतिशय्यिका च। तस्य शिरोभागे कूर्चस्थानम् वेदिका च। तत्र रात्रिशेषमनुलेपनं माल्यं सिक्थकरण्डकं सौगन्धिकपुटिका मातुलुङ्गत्वचस्ताम्बूलानि च स्युः। भूमौ पतद्ग्रहः। नागदन्तावसक्ता वीणा। चित्रफलकम्। वर्तिकासमुद्गकः। यः कश्चित्पुस्तकः कुरण्टकमालाश्च। नातिदूरे भूमौ वृत्तास्तरणं समस्तकम्। आकर्षफलकं द्यूतफलकं च। तस्य बहिः क्रीडाशकुनिपञ्जराणि। एकान्ते च तक्षतक्षणस्थानमन्यासां च क्रीडानाम्। स्वास्तीर्णा प्रेङ्खादोला वृक्षवाटिकायां सप्रच्छाया। स्थण्डिलपीठिका च सकुसुमेति भवनविन्यासः॥४॥

अब बहिः प्रकोष्ठ की सज्जा का निर्देश करते हैं—

बाहरी प्रकोष्ठ में बहुत नरम, सुगन्धित बिस्तर लगा होना चाहिए। सिरहाने और पैताने दोनों ओर तकिए लगे हों। शय्या बीच में झुकी होनी चाहिए। उस पर सफेद धुली हुई चादर बिछी हो और ऊपर मसहरी तनी

हो। और उसी चारपाई के पास उसी प्रकार बिछी हुई एक दूसरी चारपाई रति कर्म के लिए हो। उस पलंग के सिरहाने कूर्च स्थान पर पलंग की ऊँचाई के बराबर वेदिका हो। उस वेदिका में रात का बचा हुआ अंगराग लेपन, पुष्पमालाएँ, मोमबत्ती, सुगन्धिपात्र, मातुलुंग वृक्ष की छाल और पान रखे हों। शय्या के समीप धरती पर पीकदान रखा हो, हाथी दाँत की खूँटी पर टँगी हुई वीणा, चित्र बनाने का चित्रफलक, तूलिका और रंग के डिब्बे, सजी हुई पुस्तकें और शीघ्र न मुरझानेवाली कुरण्टक पुष्प की माला हो। पास ही भूमि पर एक गोल आसन बिछा हो जिसके पीछे की ओर सिर और पीठ के सहारे के लिए एक गाव तकिया या मसनद हो तथा द्यूत क्रीड़ा के लिए आकर्षफलक और द्यूतआकलक हों। बाहरी प्रकोष्ठ के बाहर खूँटियों पर पालतू पक्षियों के पिंजरे टँगे रहें तथा किसी एकान्त जगह पर अपद्रव्य बनाने तथा बढ़ईगीरी का काम करने और अन्य प्रकार के विनोदों के लिए स्थान हो। वृक्षवाटिका में लतामण्डप बने हों, जिन पर फूलों से बिछी हुई वेदिका हो और झूले पड़े हों। इस प्रकार भवन-विन्यास समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

बाह्य इति। आभ्यन्तरं वासगृहमन्तर्दाराणां शयनार्थम्। बाह्ये च प्रकोष्ठे कृते रत्यर्थं शयनीयं स्यात्। श्लक्ष्णं खट्वाश्रयप्रतिपादिकास्तरणतूलिकादिभिः सुरभितं च। उभयोपधानं शिरश्चरणभागयोर्न्यस्तोपधानम्। मध्ये विनतमाक्रान्तम्। मृदुकमित्यर्थः। शुक्लोत्तरच्छदमिति। शुक्लस्य प्रच्छदपटस्य प्रत्यहं द्वित्रैर्वा दिवसैः प्रक्षालनीयत्वादित्यवश्यं तदुपरि देयम्। प्रतिशय्यिका चेति। तस्य समीपे संप्रयोगार्थं तत्प्रतिच्छन्दिका किंचिन्न्यूनोत्सेधा यस्यामाशय्यका स्यात्। इत्येवं विधिः। अयमाचारवताम्।

वेश्याकामिनस्तु शयनीयपदे उभयं निर्वर्तयन्ति। न तेषां प्रतिशय्यिका। तथा चोक्तम्—'संप्रयुज्येत यत्रस्थो नायकः प्रियया सह। न तत्रोपहते विद्वाञ्शयीत शयने शुचिः।' इति। तस्येति शयनीयस्य पश्चात्पार्श्वभागानां निकृष्टत्वाच्छिरोभाग एव कूर्चासनस्य देवतानुस्मरणार्थस्य स्थापनं स्यात्। यथोक्तम्—'शयनीयशिरोभागे न्यस्तकूर्चे शुचिः शुभे। कृतेष्टदेवतायोगो यायाच्छयनमात्मवान् ॥' वेदिका चेति। कुड्योपाश्रया शयनीयतुल्योत्सेधा हस्तमात्रविस्तारा कृतकुट्टिमा चतुरिका स्यात्। तत्र वेदिकायां रात्रिशेषं रात्र्युपयुक्तशेषमनुलेपनं चन्दनादिकं प्रातरुपभोगार्थं स्यात्, माल्यं रात्रिशेषम्। सिक्थकरण्डकं सिक्थकसंपुटिका। सौगन्धिकं सुगन्धद्रव्यनिर्वृत्तं स्वेदापनोदार्थम्, तस्य पुटिका तमालादिपत्रमयी। मातुलुङ्गत्वचो मुखवैरस्यापनोदार्थम्, दुष्टमारुतनिवारणार्थं च। यथोक्तम्—'सायं

लीढ्वा कामी मध्वक्तं मातुलुङ्गदलकल्कम्। स्त्रीभुजपञ्जरसंस्थः खलेन नहि ह्लेप्यते मरुता॥' इति ताम्बूलानि च सज्जितानि रात्रिपरिभोगार्थं स्युः। भूमौ पतद्ग्रहः। न वेदिकायाम्। प्रक्रान्तत्वाद्व्यवच्छिद्यते। यत्रस्थेन वा नायकेनोपयुक्तताम्बूलादि निष्ठीवितं पतद् गृह्णाति सा भूमिः तत्र स्यात्। नान्यत्र। अभूमित्वात्।

वीणा निचोलावगुण्ठिता वादनार्था। चित्रफलकमालेख्यार्थम्। वर्तिकासमुद्गकश्चित्रकर्मोपयोगी। यः कश्चिदिति सामान्यनिर्देशेऽपि यत्तदानीं काव्यं भावितं तस्य पुस्तको वाचनार्थं स्यादित्यर्थादेवावगम्यते। कुरण्टकमालाश्चेति। तासां शोभामात्रफलानां सुरतसंमर्दनाप्यम्लायमानत्वात्। तद्धारणे च सौभाग्यश्रुतेर्विशेषाभिधानम्। एता वीणादयोऽनुपघातार्थं वासगृहभित्तिनिहितनागदन्तेष्वासज्य स्थापिता यथाप्रयोजनं चादातव्याः। अनुरूपस्थाननिवेशनमपि वैदग्ध्यजननमिति गम्यते। नातिदूरे शयनीयस्य भूमौ, न पर्यङ्के वेत्रासने वा तत्रस्थस्याशोभितत्वात्। वृत्तास्तरणं लोके प्रतीतम्। समस्तकमुपरिन्यस्तमस्तकमासनार्थं स्यात्। कूर्चेषु तावत्कालिकमासनम्।

आकर्षफलकं द्यूतफलकं च क्रीडार्थं भूमौ कुड्याश्रितं स्यात् काले च प्रसारयेत्। तस्येति वासगृहस्य—नातिदूरे बहिस्तत्सविधागारके क्रीडार्थं यानि शकुनानि तत्पूर्णानि पञ्जराणि नागदन्तावसक्तानि स्युः, नाभ्यन्तरे पुरीषोत्सर्गादिदोषात्। एकान्त इति—एकदेशे। यत्रासमये न पश्यति तत्र तक्षकर्मणस्तक्षणस्य च स्थानम्। अन्यासां च क्रीडार्थं लज्जाहेतूनामेकान्ते स्थानम्। स्वास्तीर्णेति—आतपपरिहारार्थमुपरि घनशाखाप्रतानत्वात्सुसंछन्ना। प्रेङ्खादोला प्रेरणया या दोल्यते। सुखावहा क्रीडार्थं स्यात्। वृक्षवाटिकायामित्येव न गृहाभ्यन्तरे। चक्रदोला तु चक्रपरिभ्रमणेन। सा प्रेङ्खेति निगद्यते। सप्रच्छायेति—उपरिपुष्पलतावच्छिन्नत्वात्प्रकृष्टच्छायोपेता। स्थण्डिलमयी पीठिका चेति—कृतकुट्टिमा वेदिका सकुसुमेति—लतामण्डपिकेत्यर्थः। तत्रापानकादिभिरवस्थानात्। भवनविन्यास उत्थापनावस्थापनाभ्याम्॥ ४॥

वात्स्यायन ने नागरक के भवन-विन्यास का जो दिग्दर्शन कराया है, उसमें प्राचीन भारत की रईस जाति का सांगोपांग परिचय है। जिसमें परिष्कृत रुचि और विज्ञान निहित है—

नागरक के विशाल प्रासाद का बहिःप्रकोष्ठ जिसमें नागरक स्वयं रहा करता था, उसकी बनावट और सजावट निहायत शानदार थी। नागरक के प्रकोष्ठ में एक शय्या पड़ी रहती थी जिसके दोनों सिरों पर दो उपधान (तकिया) होते थे और उस पर श्वेतप्रच्छदपट (सफेद चादर) पड़े होते थे। बिछौना बहुत ही सुकोमल और बीच में झुका हुआ होता था।

इसी शय्या के पास एक प्रतिशय्यिका (दूसरी शय्या) भी पड़ी होती थी जो उससे कुछ नीची होती थी। बृहत्संहिता[1] में लिखा है कि नागरक की शय्याएँ साधारणतः असन, स्यन्दन, हरिद्र, देवदारु, चन्दन, शाल आदि के वृक्षों की लकड़ियों से बनती थीं किन्तु इस बात का विशेष खयाल रखा जाता था कि शय्या के लिए चुने हुए वृक्ष की ऐसी लकड़ी न ली जाए जो बाढ़ से उखड़ा हुआ हो, हाथी से तोड़ा या उखाड़ा गया हो, फल-फूल से समन्वित दशा में काटा गया हो, चैत्य या श्मशान से लाया गया हो, सूखीलता से लिपटा हुआ हो या उस पर बिजली गिरी हो।

भारत का प्राचीन नागरक शय्या को गृहस्थ का मर्मस्थान मान कर शय्या के निर्माण और उसकी सजावट के प्रति सदैव जागरूक रहता था। बराहमिहिर[2] ने लिखा है कि भारत का नागरक या रईस अशुभ और अमंगल-जनक वृक्षों को भवन के सर्वाधिक सुकुमार स्थान पर नहीं ले जा सकता था, क्योंकि उसकी मान्यता थी कि राज्य का सुख गृह है, गृह का सुख कलत्र है और कलत्र का सुख सुन्दर सुकोमल शय्या है। शय्या को मंगलजनक मानकर चन्दन की लकड़ी शय्या के लिए सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। तिंदुक, शिंशपा, देवदारु और असन की लकड़ी अन्य लकड़ियों से नहीं मिलायी जाती थी। सरई और शाल की लकड़ी को मिलाना शुभ समझा जाता था। चन्दन की भाँति हरिद्रक और पदुमकाठ की लकड़ी शुभ समझी जाती थी। शय्या में गजदन्त लगाना मांगलिक समझा जाता था किन्तु गजदन्त के पत्तर काटते समय विभिन्न चिह्नों पर मंगल-अमंगल का अनुमान हर समय किया जाता था। शय्या के हर पाँव विशुद्ध, निष्कलंक रखे जाते थे। जरा-सी गाँठ का पड़ जाना अपशकुन समझा जाता था। इस तरह उस समय के रईस की शय्या का निर्माण एक कठिन समस्या बन जाती थी।

इस प्रकार सहेजकर बन्धेज से बनवायी गयी नागरक की शय्या की सजावट के संबंध में वात्स्यायन कहता है कि—

शय्या के शिरोभाग में कूर्च स्थान पर नागरक के इष्टदेव की प्रतिमा हो, उसके पास ही वेदिका पर चन्दन, पुष्प, माला, उपलेपन आदि रखे हों। इसी वेदिका पर सिक्थ-करण्डक (मोमबत्ती की पिटारी), सौगन्धिकपुटिका (इत्रदान) रखा हो, यहीं पर मातुलुंग की छाल और पान के बीड़े भी रखे हों। नीचे फर्श पर पीकदान (पतद्ग्रह) रखा रहे। ऊपर हाथी के दाँत की खूँटियों पर कपड़े के खोल से ढकी हुई वीणा टँगी रहे, वहीं पर पुस्तकें रखी

पान

1. ७–१–६ 2. बृ० सं० ७६ अध्याय

हों, चित्रफलक, तूलिका और रंग के डिब्बे रखे हों, देर तक न मुरझाने वाली कुरण्टक की माला भी टाँगी रहे, थोड़ी दूर में एक आस्तरण (बिछौना) पड़ा रहना चाहिए जिस पर शतरंज की गोटियाँ और द्यूत के पाँसे तथा अस्त्र रखे हों।

बहिः प्रकोष्ठ के बाहर बरामदे पर शुक, शारिका, लाव, तित्तिर, कुक्कुट आदि पक्षियों के पिंजड़े टँगे हुए हों।

कामसूत्र में बहिः प्रकोष्ठ की सजावट का जो वर्णन है ऐसा ही एक वर्णन मृच्छकटिक नाटक में उस समय किया गया है, जब शर्विलक नाम का चोर चारुदत्त के घर में चोरी के लिए घुसा तो वह यह देखते ही दंग रह गया कि घर क्या पूरा नाट्यगृह बना हुआ था। कहीं वीणा, मृदंग, दर्दुर, पणव आदि वाद्य टँगे हुए हैं, कहीं विविध प्रकार की पुस्तकें सजी हुई रखी हैं, कहीं चित्रफलक, कहीं द्यूतफलक रखे हैं।

सरस हृदय नागरक के लिए वीणा और चित्रफलक ये दो वस्तुएँ जीवन संगिनी के समान प्रिय थीं। वीणा को असमुद्रोत्पन्न रत्न कहते हुए मृच्छकटिक में इसकी बहुत प्रशंसा की गयी है—

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या
संकेतके चिरयति प्रवरो विनोदः।
संस्थापना प्रियतमाविरहातुराणाम्।
रक्तस्य रागपरिवृद्धिकरः प्रमोदः।

वात्स्यायन ने बहिः प्रकोष्ठ का जितना सजीव वर्णन किया है वह सर्वांगतया वास्तविक है किन्तु पता नहीं क्यों अन्तः प्रकोष्ठ का वर्णन उन्होंने नहीं के बराबर किया है। केवल अन्तःपुर की वृक्ष-वाटिका, वहाँ के लता-मण्डप और झूला का संकेत मात्र किया है। किन्तु कादम्बरी आदि काव्यों तथा नाटकों में अन्तःपुर के विशद वर्णन मिलते हैं।

कादम्बरी में अन्तःपुर (भीतरी प्रकोष्ठ) का बहुत ही मोहक वर्णन है। राजा चन्द्रापीड ने जिस समय कादम्बरी के अन्तःपुर में प्रवेश किया तो अन्तःपुर की दीवारों की सजीव चित्रकारी देखकर वह क्षण भर के लिए स्तब्ध हो गया था। दीवारों के ऊपरी भाग में कल्पवल्ली के चित्र अङ्कित थे। छत पर अधोमुख विद्याधरों के चित्र थे। पलङ्ग पर नील चादर के ऊपर श्वेत तकिये के सहारे अधसोयी हुई कादम्बरी महावराह के श्वेत दन्त का सहारा लिए हुए धरित्री की भाँति महनीय और कमनीय जान पड़ती थी।

अभिलषितार्थ- चिन्तामणि[1] से प्रतीत होता है कि समृद्ध नागरकों के घर की दीवारें स्फटिकमणि के समान स्वच्छ और दर्पण के समान चिकनी हुआ करती थीं। उनके ऊपर विद्युत् निर्माण में कुशल, सूक्ष्मरेखा-विशारद शिल्पी जो पत्रलेखन में कोविद होते थे—विविध रस के चित्र अङ्कित करते थे।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्र सूत्रम्[2] से प्रतीत होता है कि अन्तःपुर की नारियों में मनोरंजन की भावना सर्वोपरि रहती थी। चित्रकारी उनका प्रमुख मनोविनोद था। चित्रकला को सर्वश्रेष्ठ कला की संज्ञा दी जाती थी और वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करने वाली समझी जाती थी। जिस घर में चित्रकला का वास रहता था वह मंगलमय समझा जाता था। इसीलिए हर नागरक के भवन में तूलिका, रंग भरने की डिबिया तथा चित्रफलक विद्यमान रहता था। अन्तःपुर-वासिनियाँ समय-समय पर चित्र कला द्वारा अपना मनोरंजन किया करती थीं। वे चित्र काष्ठ या हाथी दाँत के चित्र फलक पर अथवा चिकने शिलापट्ट या वस्त्र पर बनाये जाते थे।

वेदान्त ग्रंथ पञ्चदशी[3] से जाना जाता है, कि कपड़े पर बनाए जाने वाले चित्र धौत, मण्डित, लांछित और रंजित चार प्रकार के बनाए जाते थे। कपड़े का धोया हुआ रूप धौत, चावल के मांड से घोटा हुआ चित्र मंडित, काजल से रेखांकित चित्र लांछित और उस पर रंग भर देने पर वह रंजित कहलाता था।

तत्रस्थस्य वृत्तं द्विविधम्—नित्यं नैमित्तिकं च। तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्यः, गृहीतदन्तधावनः, मात्रयानुलेपनं धूपं स्रजमिति च गृहीत्वा, दत्त्वा सिक्थकमलक्तकं च, दृष्ट्वादर्शे मुखम्, गृहीतमुखवासताम्बूलः, कार्याण्यनुतिष्ठेत् ॥५॥

अब नागरक की दिनचर्या और रात्रिचर्या का दिग्दर्शन कराते हैं—वह नागरक प्रातःकाल उठकर शौच से निवृत्त होकर दाँतों को साफ करके उचित मात्रा में मस्तक में चन्दन आदि का लेप करके, बालों को धूप से सुवासित कर और सुगन्धित माला पहनकर, सिक्थक (मोम) और अलक्तक (अलता) का प्रयोग करके शीशे में मुँह देखकर सुगन्धित ताम्बूल खाकर अपने दैनिक कार्यों में लगे ॥ ५ ॥

स इति। नायकः शयनात्प्रातरुत्थायास्युदितत्वपरिहारार्थं कृतनियतकृत्यः कृतमूत्रपुरीषोत्सर्गः गृहीतदन्तधावनो जग्धदन्तकाष्ठः। अत्रान्तरे यथास्वं सन्ध्या-

१. ३-१३४ २. खण्ड ३।४५–४८ ३. ६।१–३

वन्दनादेर्धर्मस्यानुष्ठानमर्थप्राप्तम्। मात्रयेति। प्रभूतानुलेपनादिग्रहणादनागरकः स्यात्। कार्यानुष्ठाने प्रस्तुतत्वात् धूपमगुर्वादिना।

स्रजं शेखरकमापीडं वा। अलक्तकं विशिष्टरागार्थम्, दत्त्वेत्यर्थादोष्ठयोः। ईषदार्द्रयालक्तकपिण्डया घृष्टौष्ठं ताम्बूलमुपयुज्य सिक्थकगुटिकया ताडयेदित्यर्थक्रमः, आदर्शे मुखमवलोक्य, मङ्गलार्थं प्रसाधनगुणदोषज्ञानार्थं च गृहीतमुखवासताम्बूल इति। गन्धयुक्तिविहितां मुखवासगुटिकां कपोले निधाय पुनरुपयोगार्थं च ताम्बूलं हस्तवर्तिकायां गृहीत्वेत्यर्थः। कार्याणि त्रिवर्गसाधनान्यनुतिष्ठेत्॥

अनुष्ठितेषु तेषु शरीरसंस्कारार्थमाह—

नित्यं स्नानम्। द्वितीयकमुत्सादनम्। तृतीयकः फेनकः। चतुर्थकमायुष्यम्। पञ्चमकं दशमकं वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम्। सातत्याच्च संवृतकक्षास्वेदापनोदः॥ ६॥

प्रतिदिन स्नान करे, दूसरे दिन मालिश कराए, तीसरे दिन साबुन लगाए। चौथे दिन दाढ़ी और मूछ के बाल कटाए। तथा पाँचवें दिन अथवा दसवें दिन गोपनीय अंगों के बाल कटाए। ढकी हुई काँखों के पसीनों को सदैव सुगन्धित पाउडर से सुखाता रहे॥ ६॥

नित्यमिति—प्रत्यहं स्नानम्, ओजस्करत्वात्पवित्रत्वाच्च। द्वितीयकमिति—यस्मिन् दिने कृतमुत्सादनं तदनन्तरं दिनं प्रथमम्, तस्माद् द्वितीयेऽह्नि शरीरदार्ढ्यार्थं स्यात्। एकान्तरितमित्यर्थः। तृतीयक इति—तृतीयेऽह्नि जङ्घयोः फेनको देयः स्यात्। द्विदिनान्तरित इत्यर्थः। अन्यथा ऊर्ध्वं जङ्घे कर्कशे स्याताम्। चतुर्थकमिति—त्रिः पक्षस्य च श्मश्रुनखरूपाणि वर्धयेदित्ययमागमः। अत्र केषांचिन्नागरकाणामुपायभेदात्कालभेदः। तत्रायुष्यं श्मश्रुकर्म क्षुरेण तच्चतुर्थेऽह्नि स्यात्। दिनत्रयान्तरितमित्यर्थः। कर्तर्या तु वपनमेव स्यात्।

प्रत्यायुष्यमिति—यद् गह्ये क्षुरेण कर्म तत्पञ्चमेऽहनि,। यत्तु लोम्नामुत्पाटनेन तद्दशमे स्यादित्याह—दशमकं वेति। तत्र लोम्नां चिरेणोद्गमनात्। तथा चोक्तम्—'आयुष्यं तच्चतुर्थेऽह्नि स्याद्यत्तु क्षुरकर्मणा। प्रत्यायुष्यं यदुद्धाराल्लोम्नां तद्दशमेऽहनि॥' इति। एवमर्थं च सामान्येन त्रिः पक्षस्यालंकारकर्मेति नोक्तम्। अहीनमिति—स्नानादिपञ्चकमविकलं स्यादित्यर्थः। सातत्यादिति सर्वदा कक्षां विवर्त्य स्यात़व्यम्। यदा तत्किंचित्कुर्यात्स्यात्तदा संश्लेषान्नियतमस्याः स्वेदः। तं संततं कर्पटेनापनुदेत्। अन्यथा वैगन्ध्यमवैदग्धं च जनयेत्॥ ६॥

कामसूत्र से विदित है कि भारत का प्राचीन नागरक विद्या और कला का सदुपयोग करने में जिस प्रकार सावधान रहता था उसी प्रकार वह धन का भी कृपणभोक्ता नहीं था। उसकी दिनचर्या से ही प्रकट होता है कि वह

प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में सो कर जागता था, उठते ही हाथ मुँह धोकर दातून से दाँतों को साफ़ करता था। नागरक की दातून कैसी होती थी, इसका परिचय बृहत्संहिता[1] में मिलता है—

नागरक की दातून को भृत्यगण एक सप्ताह पूर्व सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित करने की प्रक्रिया प्रारंभ कर दिया करते थे। पहले गोमूत्र में हर्रे का चूर्ण मिलाया जाता था, और फिर उसमें दातून को एक सप्ताह तक भिगोया जाता था। उसके बाद इलायची, दालचीनी, तेजपात, अंजन, मधु और काली मिर्च से सुवासित जल में उसे डुबोया जाता था। इस प्रकार तैयार की गई दातून को मंगलदायिनी समझा जाता था। उस समय का नागरक दातून का उपयोग केवल स्वास्थ्य और सफाई के लिए ही नहीं करता था बल्कि उसे मांगलिक भी समझता था। इसलिए इस बात का हमेशा विचार रखा जाता था कि किस तिथि को किस वृक्ष की दातून करनी चाहिए। इसकी चिन्ता नागरक के पुरोहित और भृत्यगण को सदैव करनी पड़ती थी।

दातून कर चुकने के बाद नागरक अनुलेपन करता था। कामसूत्रकार केवल चन्दन का ही अनुलेपन करने की सलाह देता है। यशोधर ने जयमंगला टीका में बतलाया है कि चन्दन को उलटा-सीधा पोत लेना प्रशस्त रुचि के विपरीत है। इसलिए अनुलेपन उचित मात्रा में और कलात्मक ढंग से करने का निर्देश वात्स्यायन करता है।

चन्दन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के द्रव्यों के भी अनुलेपन तैयार किए जाने का प्रचलन उस समय मिलता है। कस्तूरी, अगुरु, केसर आदि के साथ दूध या मलाई मिलाकर अनुलेपन तैयार किए जाते थे। आयुर्वेद शास्त्र का कथन है कि इस प्रकार के अनुलेपन की सुगन्धि देर तक ठहरती है और शरीर के अंग स्निग्ध और चिकने होते हैं।

अनुलेपन के पश्चात् केशों को धूप से धूपित करने की क्रिया की जाती थी। यह इसलिए कि बाल उड़ें नहीं, सफेद न होने पाएँ तथा चिकने और मुलायम बने रहें। वराहमिहिर ने चेतावनी देते हुए बृहत्संहिता[2] में लिखा है कि—'बढ़िया से बढ़िया वस्त्र पहनो सुगन्धित माला धारण करो, क़ीमती अलंकारों से अपने अंगों को सजा लो लेकिन अगर केश सफेद हो गए तो सभी अलंकरण फीके हो जाएँगे।' इसीलिए भारत का प्राचीन रसिक नागरक केशों को कृष्ण बनाए रखने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता था।

१. ७७।११–३४ २. ७७।१

बृहत्संहिता[1] में केशों को धूपित करने की विधि बतायी गयी है—कपूर या केसर अथवा कस्तूरी से सुगन्धि उतारी जाती थी, उस सुगन्धि से केशों को सुवासित करके कुछ देर तक उन्हें छोड़ दिया जाता था, इसके बाद स्नान किया जाता था।

केशों के सुवासित हो जाने के बाद नागरक पुष्पमाला धारण करता था। माला के बनाने तथा पुष्प को चुनने में भी नागरक की विशेष रुचि के साथ ही कला का प्रयोजन ध्यान में रखा जाता था। ऋतु के अनुसार चम्पा, जुही, मालती आदि पुष्पों की मालाएँ धारण की जाती थीं, किन्तु रतिकाल में कुरण्टक-पुष्प की माला विशेष प्रयुक्त हुआ करती थी इसलिए कि आलिंगन, चुम्बन, अंगमर्दन के समय दबने पर भी पुष्प गिरें नहीं, मुरझाएँ नहीं।

माल्य धारण करने के बाद वात्स्यायन सिक्थक और अलक्तक धारण करने की बात करता है। प्रस्तुत प्रसंग नागरक की दिनचर्या का है, नागरी का नहीं। ऐसी अवस्था में पुरुष के अलक्तक धारण करने की बात समझ में नहीं आती। लाक्षारस को अलक्तक कहा जाता है, जिसे आजकल अलता या महावर कहते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा कहीं भी वर्णन नहीं मिलता है कि पुरुष अलता का प्रयोग अधरों या पैरों पर किया करता था। कदाचित् वात्स्यायन का अभिप्राय नखों की रँगाई से हो सकता है, क्योंकि नखों की सजावट के विभिन्न वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इसलिए यहाँ यह समझना अनुचित नहीं होगा कि नागरक अलक्तक से नखों को रँग कर फिर उन पर मोम घिसता रहा हो। इसके बाद वह शीशे में अपना मुँह देखता था। उस ज़माने में काँच के शीशे का प्रयोग समृद्ध नागरकों के यहाँ नहीं होता था। सोने या चाँदी के चौकोर पत्तल बनाकर उन्हें घिसकर ख़ूब चिकना किया जाता था, इसके बाद उन पर पालिश चढ़ायी जाती थी। दर्पण में मुख देखने के बाद वह पान खाता था।

ताम्बूल भारतीय संस्कृति में सांस्कृतिक द्रव्य माना जाता है। साधारण स्वागत-सम्मान से लेकर देव-पूजन तक में इसका प्रयोग होता है। वराह-मिहिर ने बृहत्संहिता[2] में लिखा है कि—ताम्बूल सेवन से मुख में कान्ति और सुगन्धि आती है, वाणी में माधुर्य उत्पन्न होता है। अनुराग की वृद्धि होती है, सौन्दर्य बढ़ता है, सौभाग्य का आवाहन होता है और कफजन्य रोग दूर होते हैं।

स्कन्दपुराण के कई अध्यायों में ताम्बूल का विभिन्न प्रकार से वर्णन

१. ७७।११ २. ७७।३४–३५

मिलता है। ताम्बूल-बीटक लगाना और ताम्बूल खाना एक बहुत बड़ी कला मानी गयी है। भारत के प्राचीन रईसों, नागरकों के यहाँ ताम्बूलवाहिकाएँ इस कला की विशिष्ट मर्मज्ञा हुआ करती थीं। ताम्बूल-बीटक (बीड़ा) लगाने की विधि बतलाते हुए वराहमिहिर ने लिखा है कि—सुपाड़ी, कत्था और चूना ये तीन ताम्बूल के मुख्य उपकरण हैं, इनके अतिरिक्त विविध भाँति की सुगन्धियाँ, मसाले भी छोड़े जाते हैं। कत्था, चूना और सुपारी की सन्तुलित मात्रा रखनी चाहिए। यदि कत्था अधिक पड़ जाए तो लाली कालिमा में बदल जाती है, अधर भद्दे हो जाते हैं। सुपारी अधिक पड़ जाने से लाली फीकी हो जाती है और अधरों की शोभा उखड़ जाती है। चूना अधिक हो जाने से मुख-क्षत हो जाने का भय रहता है। साथ ही मुख की सुगन्धि बिगड़ जाती है और यदि पत्तियाँ अधिक हों तो सुगन्धि बिखर जाती है। रात को पत्ते अधिक देने चाहिए और दिन को सुपारी।

ताम्बूल-सेवन करने के बाद नागरक उत्तरीय सँभालता था और अपने दैनिक कार्य में संलग्न हो जाता था।

वात्स्यायन नित्य स्नान, हर दूसरे दिन मालिश, हर तीसरे दिन फेनक (साबुन) लगाने की तथा हर चौथे दिन दाढ़ी, मूछ के बाल कटवाने की, पाँचवें या दसवें दिन गुह्यांगों के बाल साफ़ करने की और ढकी हुई काँखों में आनेवाले पसीने को सुखाने की सम्मति देता है।

स्नान किस तरह किया जाए इसकी कोई विधि वात्स्यायन ने नहीं लिखी है, इसका कारण यह है कि उस समय की स्नान-विधि आम तौर से सर्वत्र प्रचलित थी। कोई विशेषता नहीं समझी जाती थी, किन्तु उस समय का वह साधारण स्नान आज के लिए एक विशेष योग-सा प्रतीत होता है। भारत का प्राचीन नागरक किस प्रकार स्नान करता था इसका परिचय प्राचीन काव्यों, नाटकों, कथा-ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। कादम्बरी में वर्णित स्नान-विधान बहुत मोहक और रुचिवर्द्धक है, इस वर्णन के आधार पर जाना जाता है कि—

नागरक कार्य-व्यापार से निपटकर मध्याह्न से कुछ पहले स्नान के लिए तैयार हो जाता था। स्नान से पूर्व अल्पकालिक व्यायाम समवयस्क मित्रों के साथ करता था। थोड़ा विश्राम कर वह स्नानागार में पहुँचता था जहाँ पर संगमर्मर की एक चौकी रखी होती थी। उसके आसपास सोने-चाँदी के पात्रों में औषधियों से सुवासित जल भरा रहता था। नागरक एक बहुमूल्य आस्तरण पर पहले बैठता था, परिचारिकाएँ उसके केशों पर सुगन्धित आमलक

(आँवला) का कल्क धीरे-धीरे मलती थीं। और फिर शरीर में सुगन्धित तैल का मर्दन करती थीं। मस्तिष्क के तन्तुओं को सचेत बनाए रखने के लिए नागरक की गर्दन पर देर तक मालिश की जाती थी। इसके बाद नागरक उठकर जल से भरी हुई द्रोणी में थोड़ी देर तक बैठता था इसके बाद संगमरमर की चौकी पर स्नान के लिए आ बैठता था। परिचारक सिर पर सुगन्धित वारिधारा गिराते और नागरक स्नान कर ख़ूब तृप्त हो जाता था। स्नान कर चुकने के बाद वह सर्प-निर्मोक (साँप की केंचुल के समान) धौत वस्त्र धारण करता था। भींगे हुए बालों का पानी सूखने के लिए वह सिर पर क्षौमवस्त्र लपेट लेता था। इसके बाद पूजागृह में पहुँच कर संध्या, उपासना आदि करता था[1]।

कामसूत्र का स्नान-विधान व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक उपयोगी जान पड़ता है। स्नान तो नित्य करना चाहिए किन्तु शरीर का उत्सादन एक दिन का अन्तर देकर कराना चाहिए। फेनक का उपयोग शरीर की स्वच्छता और कोमलता के लिए करना चाहिए किन्तु नित्य नहीं हर तीसरे दिन।

नाख़ून, दाँत और बालों की सफाई की ओर भारत का नागरक सदा सावधान रहता था। नखों के काटने की कला की चर्चा वैदिक साहित्य में भी मिलती हैं।[2] संस्कृत साहित्य से विदित होता है कि नाख़ूनों को त्रिकोण, चन्द्राकार, दन्तुल आदि विभिन्न आकृतियों में काटा जाता था। गौड़ देश के लोग लम्बे नाख़ून पसन्द करते थे, दक्षिणापथ के सीधे और छोटे तथा उत्तरापथ के लोग मझोले नख रखने का शौक़ रखते थे।

वात्स्यायन चौथे दिन हजामत बनाने की राय देता है। हजामत और नाख़ून बनाने एवं कटाने की प्रथा भारत में बहुत पुरानी है। वैदिक काल में भी लोग हजामत बनवाते और नाख़ून कटवाते थे। वैदिक साहित्य में 'क्षुर' और 'नखकृन्तक' शब्दका प्रयोग ही यह प्रमाणित करता है। ऋग्वेद[3] तथा उसके बाद के वैदिक साहित्य[4] में 'श्मश्रु' शब्द का प्रयोग है। दाढ़ी और मूछ दोनों को मिलाकर 'श्मश्रु'[5] कहा जाता था और शिर के बालों को केश। यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों में शिर के बालों (केश) का प्रयोग अनेकों बार हुआ

१. कादम्बरी—कथामुख। २. नखनिकृन्तनम्।
३. ऋग्वेद, २।११।१७, ८।३३।६, १०।२३।१, १०।२६।७, १०।१४२।४
४. अथर्ववेद ५।१९।१४, ६।६८।२, वा० सं १९।९२, २०।५
५. शतपथ ब्राह्मण २।५।२।४८

है।[१] वेदों के अध्ययन से स्पष्ट जान पड़ता है कि वैदिक काल के आर्यों में केशों के प्रति अधिक मोह रहा है। अथर्ववेद में ऐसे अनेक मंत्र है जिनमें केश बढ़ने की प्रतीक्षा की गयी है।[२] अथर्ववेद में केश बढ़ाने की औषधि के प्रयोग भी हैं किन्तु ऐसे प्रयोग केवल स्त्रियों के निमित्त ही हैं।

कुछ ऋषियों को शिर पर लम्बे बाल रखने का शौक था। वे उन्हें विभिन्न प्रकार से गूँथते भी थे। कोई पीछे जूड़ा बाँधते थे, कोई समेट कर खोपड़ी में बाँधते थे और कोई-कोई कपाल की ओर जूड़े को झुका लिया करते थे। इस प्रकार के केशों को वेद में 'कपर्द' कहा गया है।[३] ऋग्वेद में एक स्थल पर एक युवती को 'चतुष्कपर्दा'[४] और एक जगह सिनीवाली देवी को 'सुकपर्दा'[५] कहा गया। इस प्रकार स्त्रियाँ भी विशिष्ट प्रकार से बालों को सँवारती रही हैं।

ऋग्वेद में वासिष्ठ ऋषियों को 'दक्षिणतः कपर्दाः' अर्थात् दाहिनी तरफ जटावाले--कहा गया है।[६]

जो ऋषि या देवता लम्बे केश रखते थे किन्तु गाँठ नहीं बाँधते थे उन्हें 'पुलस्ति' कहा जाता था[७]। जो ऋषि, देवता केश, दाढ़ी और मूछ बढ़ाये रहते थे उन्हें ऋग्वेद में 'श्मश्रु' (मोटी दाढ़ी, मूछ वाला) कहा गया है। इन्द्र और पूषन् वेदों में श्मश्रु कहलाते थे। तैत्तिरीय संहिता में दाढ़ी और मूछ का रखना पुरुषत्व का चिह्न कहा गया है।[८] मेगस्थनीज़ ने भी अपने यात्रा-वर्णन में लिखा है कि 'हिन्दू लोग मृत्यु पर्यन्त दाढ़ी, मूछ सँभाल कर रखते थे। उपर्युक्त विवरण से यह जाना जाता है कि प्राचीनकाल में कोई दाढ़ी, मूँछ रखते थे और कोई मुड़वा दिया करते थे।

हजामत का मुख्य उपकरण अस्त्र 'क्षुर' से ही 'क्षौर' शब्द निष्पन्न होता है। यह 'क्षुर' शब्द ऋग्वेद में तीन बार प्रयुक्त हुआ है। एक मंत्र में

---

१. अथर्ववेद ५।१९।३, ६।१३६।३, वाजसनेयी सं० १९।२, २०।५, शतपथ ब्राह्मण २।५।२।४८

२. देहप्रत्नात् तनयाजातान् ।
जातान्वर्षीयस्कृधि ॥ अ० वे० ६।१३६।२
यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्द्धनाम्–अ०वे० ६।१३७।१

३. नमः कपर्दिने–यजुर्वेद   ४. ऋ० वे० १०।११४।३

५. वा० सं० ११।५६

६. ऋग्वेद ७।३३।१ २. नमः कपर्दिने च पुलस्तयेचनमः—वा० सं० १९–४३

७. ऋग्वेद १०।२३।१, १०।२६।२७   ८. तै० सं० ५।५।१।१

क्षुर शब्द का प्रयोग छूरी या तलवार के अर्थ में हुआ है[1]। दो मंत्रों में 'भूरिजोः[2]' यह द्विवचनान्त प्रयोग हुआ है, इससे जाहिर होता है कि यह प्रयोग केशकर्त्तन को लक्ष्य करता है। अथर्ववेद में 'भूरिज' शब्द के साथ 'क्षुर[3]' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है, जिसका तात्पर्य हज़ामत से ही है। अन्यत्र भी अथर्ववेद[4] में 'क्षुर' शब्द का प्रयोग हज़ामत के लिए ही हुआ है।

अथर्ववेद,[5] शतपथब्राह्मण,[6] तैत्तिरीय संहिता,[7] मैत्रायणी संहिता,[8] वाजसनेयी संहिता[9] में क्षुर शब्द का प्रयोग अस्त्र के रूप में असन्दिग्ध रूप से हुआ है। जै० उ० ब्रा०[10] में 'क्षुरधारा', बृहदारण्यक[11] में 'क्षुरस्य धारा', कठोपनिषद्[12] में 'क्षुरस्य धारा', कौषीतकि उपनिषद्[13] में 'क्षुरः' शब्द के प्रयोग अस्त्र के ही अर्थबोधक हैं। कौषीतकि में 'क्षुरधाव' शब्द अस्त्र रखने का आधार या 'खोल' के अर्थ में आया है सही किन्तु वैदिक काल में हज़ामत और उसके व्यवसाय का अस्तित्व असंदिग्ध है, क्योंकि वप्तृ (हज्ज़ाम) और वप् (हज़ामत) शब्दों की स्थिति ही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

ऋग्वेद और उसके पश्चात् वैदिक साहित्य में वप्तृ शब्द हज्ज़ाम के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[14]। इसके अतिरिक्त हज़ामत की क्रिया से संबंधित 'वप्' धातु से निष्पन्न 'वपन' शब्द वैदिक साहित्य में प्रयुक्त हुआ है[15]।

कुछ वैदिक आर्य दाढ़ी मूँछ भी बनवाते थे इसका प्रमाण ऋग्वेद में

---

१. पविषु क्षुरः ऋ० १।१६६।१०।

२. शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरम्—ऋ० ८।४।१६।

३. ओष्ठे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव—२०।१२७।४

४. येनावपत् सविता क्षुरेण, सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य, गोमानश्वमान् भगस्तु प्रजावान् ॥ ६।६८।३

५. अ. वे. १२।५।२०   ६. श. ब्रा० २।६।४।४, ३।१।२।७

७. तैत्तिरीय सं० २।१।५।७, ५।५।६।१   ८. मै० सं० २।८।७

९. वा० सं० १५।४   १०. जै० उ० ब्रा० ३।१३।९

११. तद्यावती क्षुरस्य धारा यावद्वा मक्षिकायाः पत्रम्। बृ० उ० ३।२।२

१२. क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया। कठ० १।३।१४

१३. यथा क्षुरः क्षुरधाने हितः। कौ० उ० ४।१९

१४. ऋग्वेद १०।१४२।४, अ० वे० ८, तै० ब्रा० १।६।३

१५. तै० सं० २।७।१७।१, श० ब्रा० ३।१।२।१.

मिलता है—'वप्तेव वपति श्मश्रु'[१]। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद में एक जगह केश, दाढ़ी, मूँछ मुड़ाने का उल्लेख मिलता है।[२]

उपर्युक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि वैदिककाल में दाढ़ी, मूँछ को उस्तरे से साफ़ कराया जाता था।

वैदिक काल के बाद रामायण और भारत काल में ब्राह्मण केश और दाढ़ी-मूँछ के बाल बनवाते थे, कोई कोई दाढ़ी मूँछ रखते भी थे। क्षत्रिय लोग सिर के केश और दाढ़ी मूँछ सँवारते थे। तपस्वी लोग जटा और दाढ़ी-मूँछ रखते थे। वनगमन के समय श्रीराम के सिर के बाल बढ़े हुए थे, उन्होंने बरगद का दूध लगा कर उन्हें जटा बनाया था[३]। वैद्यक का सर्वाधिक प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ चरक माना जाता है। उसमें यह स्पष्ट लिखा गया है कि—त्रिः पक्षस्य केशश्मश्रुलोमनखान् संहारयेत्।[४]

अर्थात् सिर के बाल, दाढ़ी, मूँछ और गोपनीय स्थान के बाल तथा नाखूनों को कटाना चाहिए। प्रति पाँचवें दिन हज़ामत कराने की आज्ञा आयुर्वेद के आचार्यों ने दी है किन्तु यदि यह संभव न हो तो 'त्रिर्मासादस्य लोमनखान् संहारयेत्' महीना भर में तीन बार तो ज़रूर बाल बनवाने चाहिए। इसके साथ ही केश रखने का भी ज़िक्र आया है—प्रसिद्धकेशः स्यात्।[५]

नैषधीय चरित से ज्ञात है, कि भारत में बाल सँवारने का भी रिवाज था। केशों को कंघी से सँवार कर बीच से माँग निकाली जाती थी। नैषधकार ने उसे 'द्विफाल' कहा है—

विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो न सिन्धुरुत्सर्गजलव्ययैर्मरुः।
अमानि तत्तेन निजायशोयुगं द्विफालबद्धाश्चिकुराःशिरःस्थितम्[६]॥

इसके अतिरिक्त बौधायन, गोभिल और मनु आदि धर्म-शास्त्रकारों ने हज़ामत बनवाने की व्यवस्था अपने अपने धर्मशास्त्रों में दी है—पर्वसु केशश्मश्रुलोमनखवापनम्।[७]

बौधायन स्नातकों के लिए नियम करता है कि प्रत्येक पर्व (अमावस,

---

१. ऋग्वेद १०।१४२।४

२. यत्क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा, वप्ता वपसि केशश्मश्रु। शुभं मुखं मान आयुः प्रमोषीः—अ० वे० ८।२।१७

३. जटाः कृत्वागमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय। अयोध्याकांड ५२-५८।

४. चरक—सू० अ० ८ ५. चरक—सू० अ० ८

६. नै० च० १।१६ ७. बौधायनस्मृति २।५।७

पूर्णमासी) पर सिर के बाल, दाढ़ी-मूँछ और गुह्यांग के बालों को मुँड़वाना चाहिए।

गोभिल का कथन है कि दाढ़ी, मूँछ, बाल, नख और गुह्यांगों के बाल अवश्य बनवाने चाहिए किन्तु शिखा नहीं—केशश्मश्रुलोमनखानि वापयीत शिखावर्जनम्।[1]

इस संबंध में मनु का विधान है कि—

षष्ठ्यष्टम्यौ त्वमावस्यायामुभयत्र चतुर्दशीम्।
वर्जयेत् पौर्णमासीं च तैले मासे भगे क्षुरे॥[2]
चूड़ाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात्॥[3]
मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः।[4]
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्॥[5]
शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम्।[6]

इन उद्धरणों से सिद्ध है कि वैदिककाल से लेकर वर्तमानकाल तक केश, दाढ़ी, मूँछ और गुह्यांग के बाल तथा नाख़ून कटाने का रिवाज़ भारतवर्ष में प्रचलित था।

पुरातत्त्व की सामग्री से भी ज्ञात होता है कि भरहुत, साँची के स्तूपों में जो आकृतियाँ हैं उनमें दाढ़ी, मूँछ नहीं हैं। राजा प्रसेनजित्, अजातशत्रु तथा भगवान् बुद्ध के काल में भी दाढ़ी, मूँछ मुड़ाने का रिवाज़ था।

इसलिए अनल्पमति आचार्य वात्स्यायन ने देश, काल की प्रथा एवं रसिक, विदग्धजनों की रुचि और शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य सौन्दर्य की दृष्टि से दाढ़ी मूँछ, नख और लोम बनवाने का विधान किया है।

कामसूत्र की जयमंगला टीका के टीकाकार यशोधर ने इस सूत्र पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—

चतुर्थकमिति त्रिः पक्षस्य च श्मश्रुनखरोमाणि वर्धयेदित्ययमागमः। अत्र केषांचिन्नागरकाणामुपायभेदात्कालभेदः। तत्र आयुष्यं श्मश्रुकर्म क्षुरेण तच्चतुर्थेऽह्नि स्यात्। दिनत्रयान्तरमित्यर्थः। कर्तर्या तु पञ्चकमेव स्यात् प्रत्याथुष्यमिति यद्गुह्ये क्षुरेण कर्म तत्पञ्चमेऽहनि यत्तु लोम्नामुत्पाटनेन तद्दशमे स्यादित्याह तथा चोक्तम्—

1. गोभिलसूत्र
2. मनु० अ० ४
3. मनु० अ० २ श्लोक ३५
4. मनु० अ० २ श्लोक २१९
5. मनु० अ० ६ श्लोक ५२
6. मनु० अ० ५ श्लोक ४०

आयुष्यं तच्चतुर्थेऽह्नि स्याद्यत्तु क्षुरकर्मणा ।
प्रत्यायुष्यं यदुद्धाराल्लोम्नां तद्दशमेऽहनि ॥

टीकाकार के उपर्युक्त कथन का भाव यही है कि एक पखवारे में तीन बार दाढ़ी, नख और रोम उतरवाने चाहिए। यही शास्त्रसम्मत मत है। किन्तु कुछ नागरिकों में चौथे दिन दाढ़ी के बाल, पाँचवें दिन गुप्तांग के बाल तथा दसवें दिन दाढ़ी और गुप्तांग दोनों के बाल उतरवाने का रिवाज है।

वात्स्यायन ने यहाँ पर दो बातें मुख्य रूप से कही हैं—एक तो यह कि नित्य स्नान करना चाहिए। दूसरे उसने हज़ामत को 'आयुष्य' कहा है। इससे प्रतीत होता है कि भारतीय आर्यजाति में नित्य स्नान की परंपरा बहुत पुरानी और अनिवार्य रूप से चली आ रही है। दाढ़ी के बालों को आयुष्य इसलिए कहा गया है कि आर्य लोग बालों को आयुष्यवर्द्धक मानते हैं।

कपड़े से ढकी रहनेवाली बग़लें हमेशा किसी करपट (रूमाल) से पोछी जाएँ इसलिए कि पसीना जमकर दुर्गन्ध न पैदा कर दे।

पूर्वाह्णापराह्णयोर्भोजनम् । सायं चारायणस्य ॥ ७ ॥

पूर्वाह्णापराह्णयोरिति—दिनं रात्रिमष्टधा विभज्य पूर्वाह्णे त्रिभिर्भागैः कार्याण्यनुतिष्ठेत्, चतुर्थे स्नानादिकं कृत्वा भुञ्जीत। अपराह्णे च पश्चिमे भागे बलाधानार्थं पुनर्भुञ्जीतेत्याचार्याणां मतमनुक्तमपि ज्ञेयम्, मतान्तरोपन्यासात्। सायमिति—पूर्वाह्णे प्रदोषे च चारायणस्य मतम्। न तथापराह्णे द्वितीयभोजनं बलमाधत्ते यथा रात्रिरिति (रात्राविति)। तथा चोक्तम्—'अजीर्णे भोजनं यच्च यच्च जीर्णे न भुज्यते। रात्रौ न भुज्यते यच्च तेन जीर्यन्ति मानवाः' ॥ ७ ॥

स्नान के बाद भोजन और दिवा-शयन का विधान बतलाते हैं—

मध्याह्न और अपराह्न में दो बार भोजन करना चाहिए। किन्तु आचार्य चारायण का कहना है कि दूसरा भोजन सायंकाल ही अच्छा होता है ॥ ७ ॥

भोजनानन्तरं शुकसारिकाप्रलापनव्यापाराः । लावककुक्कुटमेषयुद्धानि तास्ताश्च कलाक्रीडाः । पीठमर्दविटविदूषकायत्ता व्यापाराः । दिवाशय्या च ॥ ८ ॥

भोजनानन्तरमिति। पूर्वाह्णे भोजनानन्तरं शुकसारिकाप्रलापनादयो दिवाशयनान्ता व्यापाराः स्युः, तेषामयमेव कालः। तास्ताश्चेति—या याः प्रहेलिकाप्रतिमालादिभिः क्रीडा उक्ताः। पीठमर्दादीन्वक्ष्यति, तेष्वायत्ता व्यापाराः संधिविग्रहादयः। दिवाशय्येति—दिवाशयनमधर्मोऽपि ग्रीष्म एव क्षयकाले शरीरपुष्टयर्थमनुज्ञातम्, शरीरस्य धर्मधारणत्वात् ॥ ८ ॥

भोजन के बाद तोता और मैना को पढ़ाना, उनसे बातें करना, लावक, मेढ़े और मुर्गों की लड़ाई देखना, विविध प्रकार की कलाओं और क्रीड़ाओं द्वारा विनोद करना तथा प्रिय कार्यों के सहायक पीठमर्द, विट और विदूषक के सुपुर्द किए गए कार्यों की ओर ध्यान देना, इसके बाद सो जाना ॥ ८ ॥

भारत का प्राचीन नागरक क्या खाता रहा होगा, इस जिज्ञासा की पूर्ति प्रबंधकोष, हर्षचरित, कादम्बरी आदि ग्रंथों के वर्णनों से हो जाती है। कादम्बरी के कथामुख से जाना जाता है कि नागरक के भोजन में भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य और पेय सभी प्रकार के पदार्थ रहते थे। गेहूँ, चावल, जौ, चना, दाल, घी, मांस सभी वस्तुएँ रसोई में नित्य प्रयुक्त हुआ करती थीं। भोजन नमकीन पदार्थों से प्रारंभ किया जाता था और मिठाइयों से समाप्त होता था।

भोजन के बाद नागरक शुक-सारिकाओं से बातें करता था। प्राचीन भारत में शुक-सारिका अन्तःपुर से लेकर तपोवन तक सर्वत्र सम्मानित थे। उस समय के नागरक और तापस का इन पक्षियों के साथ पारिवारिक संबंध स्थापित था। शुक-सारिकाएँ मनुष्य के सुख-दुःख के अन्तरंग, अभिन्न साथी बने हुए थे।

प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है कि उस युग में नागरक के केलिगृह और अन्तःपुर के प्राङ्गण से लेकर लड़ाई के भयंकर मोर्चों और ऋषियों, तपस्वियों के आश्रमों में पक्षियों का अभिन्न संबंध था। यह पक्षी नागरकों, नागरियों के विनोद का साथी भी था, साथ ही रहस्यों, गुप्त मर्मों को बतानेवाला दूत भी था। उस समय के राजाओं के अन्तःपुरों में ऐसे पक्षियों का बहुत सम्मान और उपयोग होता था। पक्षियों से सगुन भी विचारे जाते थे। प्रियतम के वियोग में पक्षी बहुत बड़ा सहायक बनकर सान्त्वना प्रदान करता था, प्रणय-कलह हो जाने पर प्रेमी-प्रेमिकाओं के प्रेम को जोड़ने की कड़ी भी बन जाता था और युद्धकाल में गोपनीय समाचारों को देश-देशान्तरों तक पहुँचाता था।

नागरकों के भवन के प्रथम प्रकोष्ठ में ही कुक्कुट, कुरक, कपिंजल, लावक और वार्तिक पक्षी रखे जाते थे जिनकी लड़ाइयाँ देखकर नागरक भोजनोपरान्त का मनोरंजन साधता था।

शुक-सारिकाएँ प्रायः शयनकक्ष में ही पिंजरबद्ध रहते थे जहाँ पर नागरक दिवाशय्या पर लेटे हुए उनसे मजेदार बातें किया करता था। शुक-सारिकाओं से बातें करना, मेष, कुक्कुट के युद्ध देखना वात्स्यायन की गिनायी हुई ६४ कलाओं के अन्तर्गत मनोरंजन था।

अन्तःपुर के प्रथम प्रकोष्ठ में ही चकोर, कादम्ब, हारीत और कोकिल भी उन्मत्त होकर चहकते और कूजते रहते थे। उस समय के नागरक के जीवन के हर तन्तु के साथ पक्षी बँधे हुए से प्रतीत होते हैं—हर नागरक की भवन-वलभी में अलसाते हुए, आँखें झपाते हुए पारावत हैं; तो एक ओर मान किए बैठी हुई मानिनी नायिका को सहसा हँसा देने में कुशल शुक, और दूसरी ओर दृष्टि पड़ते ही अज्ञात प्रणयिनी की वियोग-व्यथा को प्रकट कर देने वाली सारिका है।

भवन-दीर्घिका की ओर निकल जाने पर मृणालतन्तुभक्षी कलहंस और प्रिय का एकान्त सन्देशवाहक राजहंस अपनी मन्द-मन्द गति से दर्शक को मोहित कर लेते थे, वहीं पर चूत-कषायकण्ठ से वियोगिनी के हृदय में हूक भरनेवाली कोकिल कुहकती है तो पायन में पैजनियाँ बाँधे सारस गर्दन उठाकर अपनी क्रेंकार ध्वनि से भवन-दीर्घिका और प्रमदवन को झंकृत कर देता था। अन्तःपुरिकाओं के पायल की झनकार सुनते ही थिरक-थिरक कर नाचने वाले मयूर और चन्द्रिका-रस पान कर मदविह्वल बना हुआ चकोर मुग्धा नायिका के हृदय में बरबस हलचल भर दिया करते थे।[1]

इनके अतिरिक्त नागरक को सगुन बताने वाले पक्षी भी नागरक के जीवन-साथी बने हुए थे। उन शकुन-निर्देशक पक्षियों में श्यामा, श्येन, शशघ्न, वंजुल, मयूर, श्रीकर्ण, चक्रवाक, चाष, भाण्डीरक, खंजन, शुक, काक, कपोत, भारद्वाज, कुलाल, कुक्कुट, खर, हारीत, गृध्र और चटक प्रमुख माने जाते थे।[2]

शुक-सारिका रसिक नागरकों के विनोद और संयोग के ही साधन न थे बल्कि विद्वानों और तपस्वियों के आश्रमों में रहते हुए वेद वेदाङ्ग पर चर्चा करते हुए तत्त्वज्ञों के भी दाँत खट्टे कर दिया करते थे। भगवान् शंकराचार्य जब मंडन मिश्र से शास्त्रार्थ करने माहिष्मती पहुँचे तो उन्होंने एक पनिहारिन से मण्डन मिश्र का घर पूछा। पनिहारिन ने उत्तर दिया—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा, जानीहि तं मण्डनमिश्रधाम॥

जहाँ शुक-सारिकाएँ 'स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं' का शास्त्रार्थ करती हुई दरवाज़े पर पिंजरे में बन्द हों, वही मण्डनमिश्र का घर समझ लो।[3]

हर्षचरित के लेखक बाणभट्ट ने अपने पूर्वज कुबेरभट्ट का परिचय देते हुए लिखा है कि उनके घर के पालतू पक्षी शुक-सारिकाओं ने समस्त वेद-वेदाङ्ग

१. कादम्बरी २. बृहत्संहिता ८८।१ ३. शंकर-दिग्विजय

का अभ्यास कर लिया था। यजुर्वेद और सामवेद का सस्वर पाठ करते हुए विद्यार्थियों को वे पक्षी पद-पद पर टोकते थे, उनकी गलतियाँ निकालते थे—

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः
सांसारिकैः पंजरवर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा वटवः पदे पदे
यजूंषि सामानि च यस्य शंकिताः॥[1]

वस्तुतः पक्षी संस्कृत साहित्य और भारतीय लोकजीवन के अन्तरंग उपकरण हैं। इनके बिना जीवन का कोई भी क्षेत्र नीरस बन सकता है। इसलिए नागरक-वृत्त को समुन्नत बनाए रखने के लिए वात्स्यायन ने नागरक की दिनचर्या के साथ पक्षियों का सहकार जोड़ा है।

गृहीतप्रसाधनस्यापराह्णे गोष्ठीविहाराः॥ ९॥

गृहीतप्रसाधनस्येति—प्रस्तुतव्यापारमुपसंहृत्य गृहीतवैहारिकवेषस्यापराह्णेऽह्नश्चतुर्थभागे गोष्ठीविहारा गोष्ठ्यां क्रीडा इति। एतद्दैवसिकं वृत्तम्॥ ९॥

अब दिवाशयन के बाद तीसरे पहर की दिनचर्या बतलाते हैं—तीसरे पहर वस्त्रालंकार से विमंडित नागरक गोष्ठी-विहारों में सम्मिलित हो॥ ९॥

प्रदोषे च संगीतकानि। तदन्ते च प्रसाधिते वासगृहे संचारितसुरभिधूपे ससहायस्य शय्यायामभिसारिकाणां प्रतीक्षणम्॥ १०॥

रात्रिभवमाह—प्रदोषे चेति—प्रतिष्ठितायां संध्यायां रजनीमुखे संगीतकानि नृत्यगीतवादित्रकाणि प्रकाराणि स्युः। तदन्ते च संगीतकान्ते। प्रसाधिते संमार्जनपुष्पोपकारशयनरचनादिभिः, वासगृहे बाह्ये, संचारितो विस्तारितः सुरभिधूपो यत्रेति, वासगृहं व्याप्य बहिरुपक्रान्त इत्यर्थः। ससहायस्येति—सहायान् वक्ष्यति, तेषामप्यत्र व्यापारात्। शय्यायामिति—शय्यासमीपे स्थितस्य, गौरवानुरागख्यापनार्थं न तावदप्यासीत शय्याम्, स्वयं वा गमनं कदाचित्स्यादिति। आभिमुख्येन कान्तं सरन्तीत्यभिसारिकाः। तासां कृतसंकेतानां प्रतीक्षणम्॥१०॥

और सायंकाल संगीत-गोष्ठी में सम्मिलित होने के बाद सुसज्जित वासगृह में अपने सहायकों के साथ बैठकर अभिसारिका के आगमन की प्रतीक्षा करे॥१०॥

दूतीनां प्रेषणम्, स्वयं वा गमनम्॥ ११॥

दूतीनां संप्रेषणम्, संकेतितकालातिक्रमे तत्संप्रेषणेऽपि मानादनागमे स्वयं वा गमनं गौरवानुरागख्यापनार्थम्॥ ११॥

१. कादम्बरी—१२

विलंब होने पर दूती को बुलाने भेजे अथवा स्वयं उसे बुलाने जाए ॥११॥

आगतानां च मनोहरैरालापैरुपचारैश्च ससहायस्योपक्रमाः ॥१२॥

मनोहरैरिति—स्वागतम्, इदमासनमास्यताम्, साधु कृतं दयिते यदागतासि, त्वत्प्रतिबद्धजीवित एवास्मि, तत्किमिति कालोऽतिक्रामितः, इत्यादिभिरालापैः। उपक्रमाः प्रत्युद्गमादयः। ससहायस्येति—सहाया अपि तद्वचनमनुकुर्वन्तः स्वव्यापारेणोपक्रमेरन् ॥ १२ ॥

आयी हुई नायिकाओं को मित्रों सहित मधुर वार्तालाप और रसमय व्यवहार करके सम्मानित करे ॥ १२ ॥

वर्षप्रमृष्टनेपथ्यानां दुर्दिनाभिसारिकाणां स्वयमेव पुनर्मण्डनम्, मित्रजनेन वा परिचरणमित्याहोरात्रिकम् ॥ १३ ॥

प्रमृष्टं विलुप्तम्। दुर्दिनाभिसारिका—दुर्दिनकालेऽभिसरन्ति याः स्वयमेव नान्येन। लक्ष्यभूतानां गौरवानुरागख्यापनार्थम्, पुनर्मण्डनं वर्षेणोत्पादितवैकृतत्वात्, आसन्नोपभोगकालत्वाच्च। मित्रजनेनात्मनि विशेषेण पुनर्मण्डनम्। नव्यवृत्तीनां परिचरणं चेति संवाहनवीजनादिकं सर्वासामेव परिचारकैः कारयितव्यम्। एतद्बाह्यस्त्रीषु नान्तर्दारेषु। आहोरात्रिकमहोरात्रभवम्। सांप्रयोगिकं च रात्रिभवं सांप्रयोगिके वक्ष्यति ॥ १३ ॥

यदि बरसात के कारण नायिका के वस्त्र गीले हो गए हों तो खुद ही उसके वस्त्र बदलकर उसका शृङ्गार करे और मित्रों से भी उसकी सेवा में सहायता ले। इस प्रकार नागरक की दिनचर्य्या और रात्रिचर्य्या समाप्त हुई। ॥ १३ ॥

नागरक की दिनचर्य्या बतलाते हुए वात्स्यायन उसे सज-धज कर गोष्ठी-बिहार में जाने की सलाह देता है। प्रसाधन का आशय साज-शृङ्गार है जो वस्त्र और अलंकारों द्वारा पूर्ण माना जाता है। प्राचीन भारत के नागरक के वस्त्रालंकार कैसे थे इसका अनुमान पुरातन मूर्तियों और चित्रों से किया जा सकता है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र[1] में भी इसके संबंध में कुछ संकेत किए हैं। उनके कथनानुसार क्षौम, कार्पास, कौषेय और राङ्कव—ये चार प्रकार के वस्त्र आभिजात्य नागरक पहनते हैं। अलसी के रेशों को निकालकर उनसे जो वस्त्र बनाए जाते थे वे क्षौम कहलाते थे। क्षौम वस्त्र छाल से भी बनते थे। कपास से बने हुए वस्त्र कार्पास, शहतूत के कीड़ों से निकली हुई रेशम के बने हुए वस्त्र कौशेय और ऊन के बने हुए वस्त्र राङ्कव कहलाते थे। ये चारों प्रकार से वस्त्र निबन्धनीय, प्रक्षेप्य और आरोप्य—इन प्रकारों से पहने

१. अध्याय २३

जाते थे। पगड़ी, साड़ी आदि निबन्धनीय कहलाते थे, चोलक और चोली प्रक्षेप्य तथा उत्तरीय—चादर—दुपट्टा आदि आरोप्य थे।

इस प्रकार के वस्त्रों को धारण करने के बाद नागरक अलंकार धारण करता था। वराहमिहिर ने तेरह प्रकार के रत्नों और नौ प्रकार के सोने से बने हुए अलंकारों का उल्लेख बृहत्संहिता में किया है। वज्र, मुक्ता, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, पुलक, रुधिराख, भीष्म, स्फटिक और प्रवाल इन तेरह प्रकार के जवाहरातों से नागरक के विभिन्न अलंकार बनते थे और जाम्बूनद, शातकौम्भ, हाटक, वेणव, शृङ्गी, शुक्तिज, जातरूप, रसविद्ध और आकरउद्गत इन नौ प्रकार के सोने की जातियों और रत्नों को मिलाकर निम्नांकित अलंकार बनते थे—

आवेध्य, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य, आरोप्य। अंग को छेद कर पहने जाने वाले अलंकार आवेध्य कहलाते थें। अंगद, वेणी, शिखाहढ़िका, श्रोणीसूत्र, चूड़ा-मणि आदि बाँधकर पहने जाने वाले आभूषण निबन्धनीय कहे जाते थे। ऊर्मिका, कटक, वलय, मंजीर आदि अंग में डालकर पहने जाने वाले अलंकार प्रक्षेप्य कहलाते थे। हार, नक्षत्रमालिका आदि आरोपित किए जाने वाले अलंकार आरोप्य कहलाते थे।

वस्त्रों और रत्नालंकारों को धारण करने के बाद नागरक माल्य-अलंकार धारण करता था। वे माल्य आठ प्रकार के होते थे—उद्वर्तित, वितत, संघाट्य, ग्रन्थिमत् , अवलम्बित, मुक्तक, मंजरी और स्तवक। मालाओं को धारण कर वह मंडन-द्रव्यों से मंडित होता था।

कस्तूरी, कुंकुम, चन्दन, कर्पूर, अगुरु, कुलक, दन्तसम, पटवास, सहकार, तैल, ताम्बूल, अलक्तक, अंजन, गोरोचन आदि उस समय के मण्डन-द्रव्य थे। इन द्रव्यों की सहायता से नागरक भ्रूघटना, केशरचना आदि योजनामय अलंकार एवं देश-काल की परिस्थिति के अनुसार श्रमजल, मद्य-मद आदिजन्य तथा दूर्वा, अशोक, पल्लव, यवांकुर, रजत, त्रपु, शंख, तालदल, दन्तपत्रिका, मृणाल, वलय आदि निवेश्य से मंडित होकर विहार गोष्ठियों में जाता था।

वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में जिन ६४ कलाओं के नाम गिनाए हैं। उनमें से दो-तिहाई कलाएँ बौद्धिक या साहित्यिक हैं। दिवाशय्या के बाद वस्त्रालंकार से विमण्डित नागरक जिन गोष्ठियों में भाग लेता था, वे गोष्ठियाँ अधिकतर बौद्धिक एवं साहित्यिक ही हुआ करती थीं। उच्चकोटि के श्रीमंत नागरक की गोष्ठी के सात प्रधान अंग होते थे—

विद्वांसः कवयो भट्टाः गायकाः परिहासकाः।
इतिहासपुराणज्ञाः सभा सप्तांगसंयुता॥

विद्वान्, कवि, भाट, गायक, मसखरे, इतिहासज्ञ और पुराणज्ञ ये सातों अंग बौद्धिक और काव्यशास्त्र-विनोदों में भाग लिया करते थे। वात्स्यायन के अनुसार अच्छी और बुरी दो तरह की गोष्ठी जमती थी। एक तो मनचले लोगों की गोष्ठी—जिसमें जुआ, हिंसा आदि कुकर्म सम्मिलित रहते थे[1] और दूसरी भले लोगों की गोष्ठी[2] जिसमें खेल और विद्याएँ प्रधान थीं।[3]

प्राचीन काल में पदगोष्ठी, काव्यगोष्ठी, जलगोष्ठी, गीतगोष्ठी, नृत्यगोष्ठी, वाद्यगोष्ठी, वीणागोष्ठी,[4] आदि अनेक प्रकार की गोष्ठियों में प्रबुद्ध नागरक भाग लिया करते थे। नृत्य, गीत, वाद्य, चित्र आदि कलाएँ, काव्य और कहानियाँ इन गोष्ठियों के विषय थे। पदगोष्ठी, काव्यगोष्ठी और जल्पगोष्ठी विद्यागोष्ठी की अंगभूत गोष्ठियाँ थीं। विद्यागोष्ठी का विशेष समादरण था—निरवद्या विद्या-गोष्ठीः भावयन्।

काव्यगोष्ठी में काव्य-प्रबन्धों का आयोजन होता था, जल्पगोष्ठी में आख्यान, आख्यायिका, इतिहास और पुराण आदि सुने-सुनाए जाते थे। पदगोष्ठी में अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, विन्दुमती, गूढचतुर्थपाद आदि तरह-तरह की बुद्धिवर्द्धक पहेलियाँ रहती थीं।[5]

बाण ने हर्षचरित में वीरगोष्ठियों का भी उल्लेख किया है, जिसमें रणभूमि में साका करने वाले योद्धाओं की कथाएँ कही-सुनी जाती थीं।[6] इस प्रकार की गोष्ठियों में भारत के प्राचीन नागरक के बुद्धिचातुर्य का परीक्षण होता था और साथ ही मनोरञ्जन भी होता था। गोष्ठी-विनोद के बाद सायंकाल संगीत का आयोजन हुआ करता था।

वात्स्यायन मुनि ने संगीत के लिए प्रदोषकाल को उपयुक्त माना है। यह समय रसिक नागरक की स्निग्ध, रसमयी वृत्तियों को चंचल और चटुल बनाने में सहायक होता है। प्रदोषकाल का वर्णन करते हुए बाण ने हर्षचरित में सजीव चित्र अंकित किया है—

'तरुण कपि के लाल मुख की भाँति लाल सूर्य अस्ताचल को चले गए। आकाश ऐसे लाल हो गया मानो विद्याधरी अभिसारिकाओं के चरणों में लगे

१. लोकविद्विष्टा परहिंसात्मिका गोष्ठी २. लोकचित्तानुवर्त्तिनी
३. क्रीडामात्रैककार्या ४. जिनसेनकृत महापुराण
५. कादम्बरी ७ ६. हर्षचरित ७१

महावर से पुत गया हो। सन्ध्या की कुसुम्भी लाली दिशाओं को रँगती हुई रक्त चन्दन के द्रव की भाँति आकाश में बिखर गयी। सरोवरों में हंस कमलों का मधु पीकर छके हुए ऊँघने लगे। रात की साँस की तरह वायु मन्द-मन्द बहने लगा। पके ताल फल की त्वचा की कलौंस मिली ललाई की भाँति सन्ध्या की लाली के साथ पहला अँधेरा धरती पर फैल गया। कुटज के जंगली फूलों की भाँति तारे नभ में छिटक गए। निशा लक्ष्मी के कान में खोंसी हुई चम्पा की कली जैसे दीपक बढ़ते हुए अँधेरे को हटाने लगे। चन्द्रमा के हलके और पीले उजाले से अंधकार के हटने पर पूर्वी दिशा का मुख ऐसा निकला मानो सूखते हुए नीले जल के घटने से जमना का बालू-भरा किनारा निकल आया हो। चुहचुही के पंख के रंग से रँगा-सा अँधेरा विरता हुआ आकाश छोड़कर धरती पर खिले नीले कमलों के सरोवरों पर छा गया। रात्रिवधू के अधरराग की भाँति लाल चन्द्रमा ऐसा उग आया मानो वह उदयाचल की खोह में रहनेवाले सिंह के पंजों से मारे गए अपनी ही गोद के हिरन के रुधिर से रँग गया था। उदयाचल पर फैली चन्द्रकान्त-मणि से बही जलधाराओं ने अँधेरे को धोकर बहा दिया। पूर्वचन्द्र आकाश में उठकर सफेद चाँदनी से सागर को ऐसे भरने लगा जैसे हाथीदाँत का बाल-मकरमुखी पनाला गोलोक से दूध की धारा बहा रहा हो। इस प्रकार प्रदोष समय स्पष्ट हो उठा।'[1]

अनुमान लगाया जा सकता है कि सातवीं शती में प्रदोषकाल के प्रति बाण की जो रसवती भावना रही है उससे किसी क़दर कम वात्स्यायन की नहीं हो सकती है। नागरक वृत्तियों को मुखर और आह्लादमयी बनाने के लिए वात्स्यायन ने प्रदोषकाल को चुनकर अपनी सूक्ष्मेक्षिणी बुद्धि और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

संगीतगोष्ठी समाप्त कर नागरक वासगृह में पहुँचकर अभिसारिका की प्रतीक्षा किया करता था। 'प्रसाधिते वासगृहे' का अर्थ टीकाकारों ने 'धूप से सुगन्धित किया हुआ कमरा' किया है, किन्तु यह ग़लत अर्थ है। प्राचीन काल में राजा, रईसों और सम्पन्न नागरकों के यहाँ 'वास'गृह बने हुए होते थे, जहाँ पर विवाह के बाद वर-वधू का चतुर्थी कर्म सम्पादित हुआ करता था। वासगृह में एक ही पलंग रहता था जिस पर वर-वधू या प्रियतम-प्रेयसी बैठकर प्रेमालाप, आलिंगन, चुम्बन आदि रतिक्रीड़ाएँ क्रिया करते थे।[2]

---

१. हर्षचरित : एक अध्ययन, पृष्ठ १६—वासुदेवशरण अग्रवाल।

२. औंधकृत अजन्ता चित्रावली।

वासगृह के द्वारपक्ष (दरवाजे के पार्श्वों) पर कामदेव की रति और प्रीति दोनों स्त्रियों की आकृतियाँ चित्रित रहती थीं। दोनों पार्श्वों पर मंगल-दीप जला करते थे। एक ओर फूलों से बोझिल रक्त अशोक के नीचे धनुष पर बाण रखे हुए निशाना साधे हुए कामदेव का चित्र बना रहता था।[1] श्वेत चादर से ढके हुए पलंग के बाजू में कांचन आचामरुक (सोने की झारी) रखी होती, दूसरी ओर हाथीदाँत का डिब्बा लिए हुए सोने की पुत्तलिका खड़ी रहती थी। सिरहाने पर पानी से भरा हुआ चाँदी का निद्राकलश रखा रहता था।[2]

वासगृह की भित्तियों पर गोल-गोल दर्पण लगे हुए होते थे जिनमें प्रियतमा के अनेक प्रतिबिम्ब पड़ा करते थे। ग्यारहवीं शती में ऐसे वासगृहों को 'आदर्शभवन'[3] कहा जाने लगा था और बाद में ये सीसमहल, आरसी-महल कहलाने लगे।

घटानिबन्धनम्, गोष्ठीसमवायः, समापानकम्, उद्यान-गमनम्, समस्याः क्रीडाश्च प्रवर्तयेत् ॥ १४ ॥

घटानिबन्धनमिति—देवानामुद्दिश्य यात्रा घटा, नागरकाणां तत्र संहत्यमानत्वात्। तस्या निबन्धनं गणधर्मेण व्यवस्थापनम्। गोष्ठीसमवायो गोष्ठ्यां नागरकाणां काव्यकलाविषयं समवायनं संप्रधारणं प्रवर्धयेत्। यदपराह्णे गोष्ठीविहार इति नित्यकर्मोक्तं तस्य क्रीडामात्रफलत्वादिदं विशिष्यते। समापानकमिति—संभूय समन्तात्पानमापानकमित्यर्थः। यन्नायिकया सहैकस्य मात्रया पानं तत्सरकाख्यं नित्यमेव स्यात्। उद्यानगमनमिति—बहिः स्वकारितेऽन्यकारिते वोद्याने गमनं च विहार इत्यर्थः। गृहवाटिकागमनं तु नित्यमेव स्यात्। समस्याः क्रीडाश्चेति—समस्यन्ते समग्रीभवन्ति नागरका यासु ताः समस्याः। अधिकरणे यप्रत्ययः। पूर्ववत्संभूय क्रीडा इत्यर्थः। ता द्विविधाः—माहिमान्यो देश्याश्च। एतत्पञ्चविधं कर्म नायकः प्रवर्तयेत् ॥ १४ ॥

अब पाँच प्रकार के सामूहिक विनोदों का वर्णन करते हैं—घटानिबन्धन, गोष्ठीसमवाय, समापानक, उद्यानगमन और समवयस्क मित्रों के साथ खेल खेलना—इन पाँच प्रकार की क्रीड़ाओं में नागरक को यथावसर प्रवृत्त होना चाहिए ॥ १४ ॥

---

१. हर्षचरित (१४८) २. हर्षचरित (१४८)
३. तिलकमंजरी (१७१)

घटानिबन्धन—घटानिबन्धन देवायतन में जाकर सामूहिक नृत्य, गान करने अथवा गोष्ठी का बोधक है।[1] प्राचीन भारत का नागरक प्रत्येक ऋतु में विभिन्न उत्सवों का आयोजन करता था। शरद्, हेमन्त, वसन्त, ग्रीष्म और वर्षाकाल के अनेक उत्सवों का विवरण प्राचीन ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। देवार्चनविषयक उत्सवों का उल्लेख शारदातनय के भावप्रकाश[2] में मिलता है—अष्टमीचन्द्र, शक्रार्चा या इन्द्रपूजन, सुवसन्तक, मदनोत्सव, बकुल तथा अशोक वृक्षों के उत्फुल्ल करने के उत्सव और क्रीडैक-शाल्मली। वस्तुतः ये सभी उत्सव वसन्त काल के ही हैं। कामसूत्र की जयमंगला टीका के टीकाकार यशोधर ने कुछ वसन्तकालीन उत्सवों को ग्रीष्म में भी मनाने का उल्लेख किया है—जैसे—उद्यानयात्रा, सलिल-क्रीड़ा, नवाम्र-खादनिका और आम तथा माधवी लता का विवाह।

उपर्युक्त प्रायः सभी उत्सव घटानिबन्धन विनोद में सम्मिलित हैं किन्तु विशेष रूप से कामदेवपूजन तथा मदनोत्सव के अवसरों पर जो गोष्ठियाँ जमती थीं उन्हें 'घटानिबन्धन कहा' जाता रहा है। मदनोत्सव का मनोहारी वर्णन करते हुए डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी[3] ने लिखा है—

'सम्राट् श्रीहर्षदेव के विवरण से जान पड़ता है कि दोपहर के बाद सारा नगर मदनोत्सव के दिन पुरवासियों की करतल ध्वनि, मधुरसंगीत और मृदंग के मधुर घोष से मुखरित हो उठता था। नगर के लोग (पौरजन) मदमत्त हो जाते थे। राजा अपने प्रासाद की सबसे ऊपर वाली चन्द्रशाला में बैठकर नगरवासियों के आमोद-प्रमोद देखा करते थे। नगर की कामिनियाँ मधुपान करके ऐसी मतवाली हो जाती थीं कि सामने जो कोई पुरुष पड़ जाता उस पर पिचकारी (शृंगक) के जल की बौछार करने लगती थीं। बड़े-बड़े रास्तों के चौराहे मर्दल नामक बाजे के गंभीर घोष और चर्चरी ध्वनि से शब्दायमान हो उठते थे। ढेर का ढेर सुगन्धित अबीर दशों दिशाओं में इतना उड़ता रहता था कि दिशाएँ रंगीन हो उठती थीं। जब नगरवासियों का आमोद पूरे चढ़ाव पर आ जाता तो नगरी के सारे राजपथ केशरमिश्रित अबीर से इस प्रकार भर उठते थे मानो उषा की छाया पड़ रही हो। लोगों के शरीर पर शोभायमान अलंकार और सिर पर पहने हुए अशोक के लाल फूल इस लाल-पीले सौन्दर्य को और भी अधिक बढ़ा देते थे। ऐसा जान पड़ता था कि नगरी के सभी लोग सुनहरे रंग में डुबो दिए गए हैं।

---

१. यदगारघटाट्टकुट्टिमस्रवदिन्दूपलतुन्दिलापयाः—श्रीहर्ष

२. पृष्ठ १२७ ३. प्राचीन भारत का कला विकास—पृष्ठ १०४

राजकीय प्रासाद तथा अन्य समृद्धिशाली भवनों के सामने वाले आँगन में निरन्तर फव्वारा छूटा करता, जिससे अपनी-अपनी पिचकारी में जल भरने की होड़-सी मची रहती थी, इस स्थान पर पौरयुवतियों के बराबर आते रहने से उनकी माँग के सिन्दूर और गाल के अबीर झरते रहते थे। सारा आँगन लाल कीचड़ से भर जाता था और फर्श सिन्दूरमय हो उठता था।

उस दिन वेश्याओं के मुहल्ले में सबसे अधिक हुड़दंग दिखाई देता था। रसिक नागरिक पिचकारियों में सुगन्धित जल भर कर वेश्याओं के कोमल शरीर पर फेंका करते थे और वे सीत्कार करके सिहर उठती थीं। वहाँ इतना अबीर उड़ता था कि सारा मुहल्ला अन्धकारमय हो जाता था।

अन्तःपुर की रसिक परिचारिकाएँ हाथ में आम्रमंजरी लिए हुए द्विपदी खण्ड का गान करती नृत्य करने लगती थीं। इस दिन इनका आमोद मर्यादा की सीमा पार कर जाता था। वे मदपान से मत्त हो उठती थीं। नाचते-नाचते उनके केशपाश शिथिल हो जाते थे, कबरी (जूड़ा) को बाँधने वाली मालती माला खिसककर न जाने कहाँ गायब हो जाती थी। पैर के नूपुर झटकन-मटकन के वेग को न सँभाल सकने के कारण दुगुने ज़ोर से झनझनाते रहते थे—नगरी के भीतर और बाहर सर्वत्र आमोद और उल्लास की प्रचंड आँधी बह जाती थी।'

घटानिबन्धन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रवर्तन वसन्तावतार के दिन हुआ करता था। इसी दिन कामदेव की पहली पूजा नागरकों और नागरियों द्वारा की जाती थी।

दूसरा मनोरंजन 'गोष्ठीसमवाय' बतलाया गया है। इस प्रकार की गोष्ठियाँ नागरक अपने घर पर ही आयोजित करता था अथवा किसी गणिका के घर पर आयोजित हुआ करती थीं। विद्या और कला में कुशल गणिकाएँ गोष्ठीसमवाय में अनिवार्य रूप से भाग लिया करती थीं और पुरुषों की भाँति विविध प्रकार की काव्य-समस्याओं, मानसी, काव्यक्रिया, पुस्तक-वाचन, दुर्वाचक योग, देशभाषाविज्ञान, छन्द, नाटक, आख्यान आदि बौद्धिक एवं उपयोगी कलाओं में भाग लेती थीं, साथ ही नृत्य, गाना, रसालाप द्वारा उपस्थित सभ्यों का मनोविनोद भी किया करती थीं।

तीसरा मनोरंजन 'समापानक' है। खूब छक कर सामूहिक रूप से मदिरा पान करना 'समापानक' है। इस प्रकार के समापानक मनोरंजन साल में एकाध बार ही किए जाते थे, क्योंकि कौटलीय अर्थशास्त्र से प्रतीत

होता है कि उस ज़माने में भी मदिरा बनाने, पीने, बेचने पर कठोर नियंत्रण था। आजकल की भाँति उस समय भी सरकार का आबकारी विभाग शराब के ठेकों और शराब के निर्माण आदि की व्यवस्था करता था। इस प्रकार के व्यवस्थापक को 'सुराध्यक्ष' कहा जाता था जो शराब के बनवाने, बेचने का प्रबन्ध कुशल व्यक्तियों द्वारा किया करता था। सुविधानुसार शराब के ठेके भी वही दिया करता था।

नाजायज़ शराब बेचने पर दण्ड दिया जाता था। शराब के आयात, निर्यात पर नियंत्रण रखा जाता था। खुलेआम शराब पीने की पूरी मनाही थी। शराब पीकर बक-झक करने वालों को गिरफ्तार किया जाता था। उधार और कर्ज के रूप में शराब नहीं बेची जाती थी। मद्यशालाओं का निर्माण सरकारी नक्शे के अनुसार होता था। सरकारी गुप्तचर विभाग का यह काम था कि वह प्रति दिन की शराब की खपत को नोट करता रहे।

उस समय मेदक, प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरेय और मधु—छह प्रकार की शराब बनती थी।

यहाँ यह स्मरणीय है कि 'समापानक' जैसे मनोरंजनों के अवसर पर मद्यनिर्माण एवं मद्यपान का अलग सरकारी कानून था। ऐसे अवसरों पर केवल मेदक, प्रसन्ना, श्वेत सुरा और आसव नाम के ही मद्य पिए जाते थे। सुराध्यक्ष की अनुमति से नागरकगण इन्हें अपने घर पर भी बना लिया करते थे। मदन-महोत्सव आदि विशेष अवसरों पर केवल चार दिन तक खुलकर सामूहिक रूप से मद्यपान करने की छूट सरकार की ओर से दी जाती थी। उस अवसर पर सुराध्यक्ष से व्यक्तिगत या सामूहिक आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

समापानक विनोद में नागरक हिलमिल कर मद्यपान करते थे, गाना-बजाना और नृत्य करते थे। समापानक गोष्ठियाँ नगरों और नगरों से बाहर भी आयोजित हुआ करती थीं।

कामसूत्र से ही विदित होता है कि उन दिनों राजभवनों में प्रायः आपानकोत्सव या पान-गोष्ठी के आयोजन हुआ करते थे। ऐसे अवसरों पर बाहरी प्रेमी लोग बेरोकटोक राजभवन में प्रविष्ट हो जाया करते थे।[1]

नागानन्द नाटक में मलयवती के विवाह के उपलक्ष्य में विद्याधर लोगों के आपानकोत्सव मनाने का उल्लेख है जिसमें विद्याधरियों द्वारा दी हुई मदिरा का बचा-खुचा भाग विद्याधरों ने बड़े चाव से पिया।[2]

१. ६।२८ २. तृतीय अंक, पृष्ठ ४७

दशकुमारचरित में विदर्भराज अवन्तिवर्म्मन् द्वारा आयोजित एक आपानक गोष्ठी का उल्लेख है जिसमें सपत्नीक राजा, सामन्त तथा अन्य प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित हुए थे।[१]

गोष्ठियों में जी भरकर मनोरंजन किया जाता था, एक दूसरे पर फब्तियाँ कसी जाती थीं, जोकर और भाँड़ वेश्याओं की बड़ी दुर्गति किया करते थे। समापानक उत्सव को आजकल के होलिकोत्सव के समान समझना चाहिए। वात्स्यायन ने समापानक में इस प्रकार मद्यपान की विधि को 'वैनोदिकी' कला माना है।

'उद्यानगमन' चौथा मनोविनोद है। उस समय उद्यानगमन मनोविनोद किस ढंग से सम्पादित होता था, इसे कामसूत्रकार ने स्वयं बतलाया है कि 'उद्यान यात्रा के लिए पहले से एक दिन निश्चित कर लिया जाता था। उस दिन दोपहर से पूर्व ही नागरकगण बन-ठन कर तैयार हो जाते थे। यह यात्रा किसी ऐसे उद्यान या वन की की जाती थी जो नागरकों के निवासस्थान से इतनी दूरी पर हो कि शाम तक घर वापस पहुँच सकें। इन उद्यान यात्राओं में कभी-कभी अन्तःपुरिकाएँ भी साथ रहती थीं और कभी-कभी गणिकाओं को भी ले जाया जाता था। उद्यानयात्रा एक प्रकार का गोठ या पिकनिक थी। ऐसी पार्टियों में हिन्दोल लीला, समस्यापूर्ति, आख्यायिका, विन्दुमती आदि अनेक प्रकार की पहेलियों के खेल होते थे। कुक्कुट, लाव, मेष, बटेर आदि पशु-पक्षियों की लड़ाइयाँ करायी जाती थीं। इसी अवसर पर कहीं-कहीं क्रीडैकशाल्मली खेल खेला जाता था। यह खेल सेमल के पेड़ के नीचे खेला जाता रहा है। यशोधर ने लिखा है कि विदर्भ प्रदेश के नागरक इस खेल में अधिक शौक और दख़ल रखते थे।

पाँचवाँ मनोविनोद समस्याक्रीड़ाओं का है। जो सामूहिक रूप से खेली जाती थीं। यह काव्यकला संबंधी क्रीड़ाएँ प्रायः हर उत्सव में स्थान पाती थीं, किन्तु कभी-कभी खास तौर से इसी विषय के दंगल कराए जाते थे। इस विनोद में मुख्यतया निम्नांकित काव्यक्रीड़ाएँ हुआ करती थीं।

(१) प्रतिमाला—इसे अन्त्याक्षरी भी कहा जाता है। एक पक्ष श्लोक पढ़ता था और प्रतिपक्ष श्लोक के अन्त्याक्षर से प्रारम्भ कर दूसरा अन्य श्लोक पढ़ता था।

(२) दुर्वाचनयोग—इसमें ऐसे कठिन-कठिन शब्दों के श्लोक रखे जाते थे जिन्हें आसानी से पढ़ना संभव नहीं होता था। जयमंगलाकार ने ऐसे ही एक श्लोक को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है—

१. २।८।२६५

दंष्ट्राग्रदध्वों प्रग्योद्राक् चमामम्बन्तः स्थामुन्चिक्षेप ।
देवध्रुट्च्छिद्धृत्विक् स्तुत्यो युष्मानसोऽव्यात् सर्वास्केतुः ॥

३ मानसीकला—इस विनोद में श्लोक के अक्षरों की जगह पर कमल या अन्य किसी पुष्प की पंखुड़ियाँ बिछा दी जाती थीं और उन पंखुड़ियों से ही श्लोक पढ़ा जाता था। इसका एक दूसरा रूप यह भी था कि फूल न रखकर पढ़नेवाले को सिर्फ एक बार इतना बतला दिया जाता था कि अमुक स्थान पर यह मात्रा है, कहाँ पर अनुस्वार है कहाँ पर विसर्ग है। बस इतने से ही उसे पूरा श्लोक बनाना पड़ता था।

४ अक्षरमुष्टि—यह समस्या दो तरह की होती थी सभासा और निरवभासा। किसी नाम को संक्षिप्त करके बोलना सभासा है जैसे फाल्गुन-चैत्र-वैशाख को संक्षिप्त करके फा-चै-वै बोलना। गुप्त भाव से बातचीत करना निरवभासा के लिए अनेक प्रकार के संकेत काम में लाए जाते रहे हैं। इसमें एक विधि अक्षरमुष्टि है। इसमें कवर्ग अक्षरों के लिए मुट्ठी बाँधी जाती है, चवर्ग के लिए हथेली फैला दी जाती है। इसका विधान यह है कि जो कुछ कहना होता है पहले उसके अक्षरों के वर्गों के संकेत किए जाते हैं। वर्ग बतलाने के बाद अँगुलियों को उठाकर वर्गाक्षर बतलाए जाते हैं। जैसे 'ग' कहना है तो पहले वर्ग बतलाने के लिए मुट्ठी बाँधी गयी इसके बाद तीसरी अँगुली उठाकर अक्षर बतला दिया गया। वर्ग और अक्षर बतलाने के बाद पैर उठाकर या चुटकी बजाकर मात्राएँ बतलाई जाती हैं।

उस समय का प्रत्येक नागरक ऐसे काव्य विनोदों का अभ्यास प्रयत्नपूर्वक करता था। क्योंकि यश, कीर्ति और लाभ के स्रोत भी ऐसे खेल माने जाते थे। इनके अतिरिक्त अक्षक्रीड़ा, द्यूत समाह्वय, जल क्रीड़ा, उदकक्ष्वेड़िका, कुसुमावचय आदि क्रीड़ाएँ होती थीं।

तत्र घटानिबन्धनमाह—

पक्षस्य मासस्य वा प्रज्ञातेऽहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तानां नित्यं समाजः ॥ १५ ॥

पक्षस्य मासस्य वातिक्रान्तस्यावसानिकेऽहनि। प्रज्ञात इति—यद्दिनं यस्या देवताया लोकप्रसिद्धं तत्प्रज्ञातम्, यथा गणपतेश्चतुर्थी, सरस्वत्याः पञ्चमी, शिवस्याष्टमीत्यादि, तत्र देवतायाः संनिधानात्। सरस्वती च नागरकाणां विद्याकलास्वपि देवता। तस्या आयतने पञ्चम्याम्। नियुक्तानामिति—नायकेन पूजाचारिकत्वे प्रतिपक्षं प्रतिमासं च ये नियुक्ता नागरकनटादयो नर्तितुं तेषां समाजः सव्यापारानुष्ठानेन मिलनम्। यस्मिन्प्रवृत्ते नागरकाः सामाजिकीभवन्ति। नित्यमिति तत्र तत्राहनि ॥ १५ ॥

पूर्व सूचना के अनुसार पन्द्रहवें दिन या महीना भर में निश्चित दिन में सरस्वती के भवन में नागरक गण एकत्र हों ॥ १५ ॥

अन्येष्वहःसु धूपविलेपनघटा, तस्या निबन्धनमाह—

कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः । द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजा नियतं लभेरन् । ततो यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा । व्यसनोत्सवेषु चैषां परस्परस्यैककार्यता ॥ १६ ॥

कुशीलवाश्चेति—आगन्तवोऽन्यस्मादागता नटनर्तकाः प्रेक्षणकमेषां प्रज्ञातेऽहन्यन्यत्र वाहनि दद्युर्दर्शयेयुः, नियुक्तास्तु भृतिप्रतिबद्धाः यात्राकुशीलवत्वात् प्रज्ञात एव दर्शयन्ति । इदमुक्तं भवति—पूजाचारिकैः पात्रापात्रमनपेक्ष्यैव प्रेक्षणमवश्यं ते दर्शयितव्या इति । द्वितीय इति—प्रथमेऽहनि प्रेक्षणकव्यग्रत्वात् तृतीयादिष्वपि क्लिष्टदानं स्यात् । तेभ्य इति नियुक्तेभ्यः पूजाचारिकेभ्यः । पूजा प्रेक्षणकफलम् । नियतमिति । एतावत्प्रेक्षणकमूल्यमागन्तूनामिति पूर्वकल्पितं प्राप्नुयुः । अनियतान्प्रेक्षणकान् रागाद्वस्त्रादिदानलक्षणं प्रथमे वाह्नि रङ्गमध्ये नागरकेभ्यो लभेरन् ।

तत उत्तरकालम् । यथाश्रद्धमिति—पुनर्द्रष्टुं यदि श्रद्धास्ति पुनरागन्तूनां नृत्यतां दर्शनं नो चेदुत्सर्गः प्रियालापैः संप्रेषणम् । यदा पुनः पुनर्दर्शनकौतुकं तदा दर्शनविशेषमाह—व्यसनोत्सवेषु चैषामिति—आगन्तूनां कस्यचिद्व्याधौ शोके वा व्यसने तथा विवाहादावुत्सवे व्यग्रस्य तत्कर्म तन्नियुक्तेन कुशीलवेन प्रेक्षणकाविघातार्थं संवाह्यम्, नियुक्तानां वा कस्यचिद्व्यसनोत्सवे तदागन्तुनेति परस्परकैकार्यता स्यात् ॥ १६ ॥

और स्थायी नियुक्त नट, नर्तक आदि कलाकार समाज-उत्सव में भाग लें । बाहर से आए हुए नट, नर्त्तक भी दर्शकों को अपनी कला-कुशलता का परिचय दें और दूसरे दिन वे उचित पुरस्कार प्राप्त करें । इसके बाद यदि नागरकों में उनके प्रति आदर भाव हो तो उन्हें कला-प्रदर्शन के लिए ठहरा लें अन्यथा विदा कर दें । आगन्तुक कलाकारों और स्थानीय कलाकारों में परस्पर सहयोग और एकता की भावना होनी चाहिए । संपत्ति और विपत्ति में एक दूसरे का साथ दें ॥ १६ ॥

आगन्तूनां च कृतसमवायानां पूजनमभ्युपपत्तिश्च । इति गणधर्मः ॥ १७ ॥

कृतसमवायानामिति—ये नागरकपदेऽभिषिक्ता घटां द्रष्टुमन्यस्मादागतास्तेषां —चारिकैर्माल्यानुलेपनादिभिः पूजनम् । पारिषदनागरकैश्च यथापरिचयं माङ्ग-

लिकम् । अभ्युपपत्तिश्चेति—व्यसने साहाय्यं तत्प्रतीकारेण । गणधर्म इति—तत्र-स्थानामागन्तूनां कुशीलवनागरकाणां यथास्वपरधर्म उक्तः ॥ १७ ॥

सरस्वती भवन में आयोजित समाज-उत्सव देखने के लिए यदि ऐसे व्यक्ति आएँ जो गोष्ठी के सदस्य न हों और बाहर से आए हुए हों तो उनकी अभ्यर्चना और अतिथि-सत्कार यथाविधि करना चाहिए। किसी प्रकार की आपत्ति आने पर उनकी सहायता भी करनी चाहिए। यही गणधर्म है ॥१७॥

वात्स्यायन के ज़माने में पंचमी तिथि की रात में सरस्वती जी के मंदिर में समाजोत्सव मनाया जाता था। उस समय के उत्सवों में 'समाज' प्रथम श्रेणी का उत्सव माना जाता था। इस उत्सव में अच्छा ख़ासा जमघट जुटता था। स्थानीय नट-नटियों के अलावा बाहर से भी नट, नटी, नर्तक, कुशीलव आदि अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए आया करते थे। प्रत्येक कलाकार अपनी कला द्वारा दर्शकों को प्रसन्न और मंत्रमुग्ध करने का प्रयत्न किया करता था। दूसरे दिन उन्हें पूर्व स्वीकृत पारिश्रमिक दिया जाता था। बाहर से आए हुए कलाकारों के ठहरने, भोजन आदि के प्रबंध का भार एक-एक व्यावसायिक श्रेणी पर छोड़ दिया जाता था। पंचमी के अतिरिक्त अन्यान्य तिथियों पर भी अन्यान्य देवालयों में इस प्रकार का समाजोत्सव मनाया जाता था।

'समाज' आर्य जाति का बहुत पुराना और संभवतः आदि उत्सव है। वैदिक काल में 'समाज' का नाम 'समन'[1] था। जो एक प्रकार का मेला कहा जा सकता है। इन समनों में पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियाँ भी दिल बहलाने के लिए बहुत बड़ी तादाद में इकट्ठा हुआ करती थीं।[2] पुरस्कार प्राप्त करने की आशा रखकर कवि[3], धनुर्धर[4] और रेस के घोड़े[5] भी वहाँ पहुँचते थे। धन

१. प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणायामि सवनेषु दीधृषिः ॥
ऋग्वेद २।१६।७

तथा आनो जग्मे सुमतिं संभलो गनेदिनां कुमारी सहनो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै ॥ अथर्ववेद २।३६।१

२. स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ऋग्वेद १।१२४।८

३. ऋग्वेद २।१६।७

४. वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते विततावि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती । ऋ० ६।७५।३

५. समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितंनमोभिः ।
आतिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥ ऋ० ९।९६।२

और यश प्राप्त करने की कामना रखकर कलामर्मज्ञ गणिकाएँ भी अपना कला-प्रदर्शन करने के लिए उपस्थित हुआ करती थीं।[1]

इनके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण बात इस मेले में यह होती थी कि मनचाहा वर प्राप्त करने के लिए वयस्क कुमारी कन्याएँ भारी संख्या में भाग लेती थीं।[2] और रात-रातभर मेले की कार्यवाही चालू रहती थी।[3] कभी-कभी आग भी लग जाया करती थी, जिससे मेले का सारा मज़ा किरकिरा हो जाता था। दर्शकों में भगदड़ मच जाती थी और भीड़ तितरबितर हो जाती थी।[4]

रामायण और महाभारत-काल में 'समन' उत्सव 'समाज' के नाम से अभिहित होने लगा। महाभारत तथा पुराणों, जातक ग्रन्थों और जैन ग्रन्थों में 'समाज' का प्रचुर वर्णन मिलता है। इस उत्सव की परंपरा वैदिककाल से लेकर ईसवी सातवीं शती तक अविच्छिन्न मिलती है।

वाल्मीकि-रामायण में कई स्थलों पर 'समाज' उत्सव का उल्लेख मिलता है। लक्ष्मण ने अयोध्या को 'समाजोत्सव शालिनी[5]' कहा है। श्रीराम के वनवास करने पर शोकातुर नागरक कहते हैं कि 'अब श्रीराम का 'महत्सु समाजेषु[6]' दर्शन नहीं मिलेगा'। शासक-रहित देश में जो विकार उत्पन्न हो जाते हैं उनका वर्णन करते हुए रामायण में बताया गया है कि 'ऐसे देश में नटनर्तकों की कला और 'समाज[7]' समुन्नत नहीं हो सकते'। वाल्मीकि-रामायण से यह भी ज्ञात है कि 'समाज' उत्सव केवल सभ्य नागरकों एवं मनुष्य वर्ग

---

१. अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याणः स्मयमानासो अग्निम्।
घृतस्य धाराः समिधोनसन्तता जुषाणो हर्यति जातवेदाः॥ ऋ० ४।५८।८

२. स्वाध्यो विदुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणेसमग्रुवो न समनेष्वञ्जन्॥ ऋग्वेद ७।२।५
तथा अथर्ववेद २।३६।१

३. वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति॥ ऋग्वेद १।४८।६

४. समनं चिददहश्चित्रमानोऽव व्राधन्तमभिनद्वृधश्चित्।ऋग्वेद १०।६९।११

५. आरामोद्यानसम्पन्नां समाजोत्सवशालिनीम्।
सुखिता विचरिष्यन्ति राजधानींपितुर्मम॥ अयो० सर्ग ५१ श्लोक २३

६. दान यज्ञ विवाहेषु समाजेषु महत्सु च।
न द्रक्ष्यामः पुनर्जातु धार्मिकं राममन्तरा॥ अयो० सर्ग ५७ श्लोक १३

७. नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः।
उत्सवाश्च समाजाश्च वर्द्धन्ते राष्ट्रवर्द्धनाः॥ अयो० सर्ग ६७ श्लोक १५

में ही नहीं मनाया जाता था बल्कि राक्षसगण भी इस उत्सव को बड़े हर्ष से मनाया करते थे।[१]

महाभारत से विदित है कि धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों ने जब शस्त्रास्त्र विद्या सीख ली तो उनकी खुली परीक्षा लेने के लिए जो जमाव हुआ उस जमघट का नाम 'समाज'[२] दिया गया। उस 'समाज' में राजा, सामन्तों, राजपुरुषों, नागरकों और स्त्रियों को बैठने के लिए अलग-अलग मंच बनाए गये थे। इसी तरह द्रौपदी के स्वयंवर के लिए जो आयोजन हुआ था उसका नाम 'समाजवाट'[३] रखा गया था। उसकी सज्जा का मोहक वर्णन महाभारत में वर्णित है। वह 'समाजवाट' पन्द्रह दिन से अधिक समय तक निरन्तर चलता रहा। राजा महाराजा विमानों में बैठे थे और नागरक मंचों पर बैठे थे।

बौद्ध जातकों से पता चलता है, कि 'समाज' उत्सव का संघटन राजा-महाराजा और श्रीमन्त लोग ही किया करते थे।[४] इस उत्सव में मद्य-मांस, रास-रंग की भरमार होने के साथ ही कभी-कभी अश्लील वातावरण उपस्थित हो जाता था इस लिए बुद्ध भगवान् ने 'समज्जदान' की निन्दा की थी।[५] जातक ग्रंथों का कथन है कि मन बहलाने के उद्देश्य से इस उत्सव का आयोजन किया जाता था। सभी वर्ग के लोग साग्रह भाग लेते थे। समाज में प्रदर्शित होने वाले प्रेक्षणक या नाटक इतने प्रभावकारी और रोचक होते थे कि मानवजाति के अतिरिक्त देव, नाग और गरुड़ भी उन्हें देखने के लिए उपस्थित होते थे।[६] प्रेक्षणागार बीचों-बीच बनाया जाता था उसके चारों ओर दीर्घाएँ होती थीं जिन पर दर्शक लोग बैठा करते थे।[७] कभी-कभी दर्शकगण अपने बैठने का मंच स्वयं बना लिया करते थे।[८]

रंगमंच पर नृत्य, नाट्य, अभिनय, गीत, वाद्य[९], मल्ल युद्ध[१०] और पशु-पक्षियों की लड़ाई[११] के दृश्य दिखाए जाते थे। नागरक लोग अपनी-अपनी कलाओं को भी प्रदर्शित किया करते थे।[१२]

---

१. क्रीडारति विधिज्ञानां समाजोत्सव शालिनाम्।
रक्षसां चैव सन्तापमनर्थं चाहरिष्यसि॥ अरण्य०, सर्ग ३८ श्लोक २४

२. १।१३४ ३. १।१८५

४. जातक, ३।३२८, ६।३८३

५. दीघ निकाय ३।१८३ तथा—मिलिन्द, पञ्ह २।१२१

६. जातक, २।१३ ७. जातक, ६।२७७

८. मनोरथ पूरणी, १।१५६ ९. जातक ३।६१

१०. जातक ६।२७७ ११. दीघ निकाय १।६

१२. जातक ३।३३८

पालि ग्रंथ 'मनोरथ पूरणी' से विदित होता है कि राजगृह में प्रति वर्ष 'समाज' उत्सव का आयोजन होता था।[1] वहाँ 'तालपुट' नाम का एक प्रसिद्ध अभिनेता पाँच सौ नर्तकी स्त्रियों के साथ नृत्य और नाट्यकला का प्रदर्शन कर नागरकों को सम्मोहित किया करता था।[2] अभिनेताओं को स्वीकृत पारिश्रमिक के अतिरिक्त दर्शकों द्वारा पुरस्कार भी दिए जाते थे।[3]

महाभारत में भी ऐसे वर्णन आए हैं जिनमें 'समाज' उत्सवों पर मल्ल युद्ध हुआ करते थे।[4] पाण्डवों के अज्ञात वनवास काल में मत्स्य देश में ब्रह्मोत्सव मनाने के उपलक्ष्य में 'समाज' उत्सव का आयोजन किया गया था, जिसमें भीम और जीमूत के मल्ल युद्ध का रोचक वर्णन मिलता है।[5]

विष्णुपुराण और भागवत के वर्णनों से प्रतीत होता है कि 'समाज' के लिए स्थायी रंगभूमि बनी रहती थी। कृष्ण और बलराम का वध कराने के लिए कंस ने मल्लयुद्ध का जो आयोजन किया था उसका नाम 'समाज' ही थी। रंगभूमि में प्रवेश करने के लिए द्वार बने हुए थे। रंगभूमि बीच में थी चारों ओर मंच बने हुए थे। शासक वर्ग, अन्तःपुरिकाओं, नागरकों, नागरिकाओं, वारवनिताओं तथा नन्द और गोपों के लिए अलग-अलग मंच बने हुए थे।[6]

जैन आगमों में 'समन' या 'समाज' नाम का कोई उत्सव नहीं मिलता है किन्तु 'सखण्ढि' और 'महुस्सव' नाम के जो उत्सव जैन ग्रंथों में उल्लिखित हैं उनके नियम, विधान और उनकी परंपरा ठीक 'समाज' से ही मिलती है। आचाराङ्ग सूत्र में 'सखण्डि' नाम के उत्सव का उल्लेख मिलता है जिसमें गणभोज के साथ-साथ नृत्य, गान का भी आयोजन हुआ करता था। गणभोज में सुरा और मत्स्य-मांस का उपयोग किया जाता था।[7] मनचली स्त्रियाँ इस उत्सव में सीधे-सादे व्यक्तियों और जैन साधुओं को बहका लिया करती थीं,[8] इस लिए जैन साधुओं के लिए नियम बना दिया गया कि वे ऐसे उत्सवों में सम्मिलित न हों।[9]

---

१. मनोरथ पूरणी १।१५६

२. अट्ठकथा पृष्ठ ३६ ३. धम्मपद १।८९

४. महाभारत ४।२।७ ५. महाभारत ४।१३।१४

६. विष्णु पुराण ५।२०।२३–२८, ब्रह्मपुराण, १९३।२४, हरिवंश २।२९।१–१६

७. आचाराङ्ग सूत्र २।१।४।१ ८. वही २।१।३।२

९. वही २।१।२।५–६

इसी प्राकृत ग्रंथ में महुस्सव नाम के एक और उत्सव का उल्लेख मिलता है, जिसमें हर आयु के स्त्री-पुरुष सजधज कर हँसते, खेलते मौज उड़ाते थे और अन्त में पान-भोजन द्वारा तृप्त होकर घर लौटते थे।[1]

कामसूत्र एवं उससे पूर्ववर्ती और परिवर्ती साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 'समाज उत्सव' पहले निर्दोष आमोद-प्रमोद का एक सामुदायिक आयोजन था बाद में इसका एक दूसरा रूप भी बन गया जिसमें मद्य पान, मांसभोजन केलि-क्रीड़ाएँ भी होने लगीं। विनय पिटक से भी ज्ञात होता है कि राजगृह के कुछ भिक्षुओं की इसी लिए बड़ी निन्दा हुई कि उन्होंने समाज में भाग लिया था।[2]

समाज का यह दूसरा विकृत रूप महाभारतकाल से ही चला आ रहा था। हरिवंश पुराण के अनुसार भगवान् कृष्ण ने निकुंभ नाम के एक दानव के वध के बाद बिल्वोदकेश्वर शिव के मंदिर में 'समाज' का आयोजन किया था। इस प्रसंग में गणभोज हुआ था, उसमें विविध प्रकार के व्यंजन अन्न, तरकारियाँ निर्मित हुई थीं, उनके साथ मांस भी परोसा गया था। मन-बहलाव के लिए मल्लयुद्ध का विराट् आयोजन किया गया था। भगवान् ने उन मल्लों को क़ीमती वस्त्र और मुद्राएँ प्रदान कर सम्मानित किया था।[3]

कदाचित् हिंसामूलक खाद्य पदार्थों और चरित्रहीनता बढ़ने के कारण प्रियदर्शी अशोक ने अपने शिलालेखों में ऐसे समाजोत्सवों की निन्दा की है।[4] उपर्युक्त दो प्रकार के समाजोत्सवों के अतिरिक्त विनयपिटक में 'गिरिअग्ग समज्ज' नाम के एक और उत्सव का उल्लेख है।[5] नामार्थ से ऐसा मालूम होता है कि इस प्रकार के उत्सव पहाड़ों में नृत्य-गान, भोजन आदि द्वारा मनाए जाते रहे होंगे।

'समाज' के उपर्युक्त विवरणों से ज्ञात होता है कि यह उत्सव सामुदायिक था और इसकी सबसे बड़ी विशेषता सार्वजनिकता थी। इसीलिए सभी लोग सक्रिय भाग लिया करते ते। इस उत्सव में जाति और धर्म का कोई अड़ंगा नहीं लगा हुआ था। सभी वर्गों के लोग सरस्वती, शिव, कामदेव का पूजन किया करते थे। यह एक विशुद्ध लोकोत्सव था जो ऋग्वेद काल से सातवीं शती तक भारत में प्रचलित रहा। इस प्रकार के उत्सवों के बन्द होने का कारण शायद जातीय उत्सवों का प्रचलन ही है, जिसकी वजह से सामुदायिक मेले ख़त्म होते जा रहे हैं।

---

१. वही २।११।१८
२. विनय पिटक २।५।२।६
३. हरिवंश २।८५।७१
४. गिरिगात्र अनुशासन १
५. चुल्लवग्ग ५।२।६,६।२।७, मनोरथपूरणी १।१५६

वात्स्यायन ने 'समाज' उत्सव के द्वारा गणधर्म—सामुदायिक कर्त्तव्य की व्याख्या की है। इससे परस्पर राग-द्वेष, ईर्ष्या-कलह उत्पन्न न होकर मैत्री, अनुराग और सहकारिता के भावों का उदय होता है, साथ ही मन-बहलाव भी होता है।

एतेन तं तं देवताविशेषमुद्दिश्य संभावितस्थितयो घटा व्याख्याताः॥ १८॥

एतेनेति—सरस्वतीघटादिनिबन्धनेन। तं तमिति यो यः सांनिध्याल्लोके दृष्टातिशयः। संभावितस्थितय इति देशकालापेक्षया कृतव्यवस्थाः॥ १८॥

इस तरह सरस्वती, शिव, यक्ष, कामदेव आदि देवताओं के आलयों में यथासंभव जुटने वाली सामुदायिक गोष्ठियों—मेलों का विवरण प्रस्तुत किया गया॥ १८॥

गोष्ठीसमवायमाह—

वेश्याभवने सभायामन्यतमस्योद्वसिते वा समानविद्याबुद्धिशीलवित्तवयसां सह वेश्याभिरनुरुपैरालापैरासनबन्धो गोष्ठी॥१९॥

वेश्याभवन इति। सभायां मण्डपे। अन्यतमस्य वा नागरकस्योद्वसिते गृहे। एषु नागरकाणामविरुद्धं मेलनं समानविद्यादीनाम्, सुखातिशयानामसमानविद्यादीनाम्। बुद्धिः प्रज्ञा, अभिप्रायो वा। सह वेश्याभिरिति—स्त्रीप्रतिबद्धकलाप्रतिपत्त्यर्थमासां गोष्ठ्यामन्तर्भावः। अनुरूपैः परस्परस्तुत्यनुरागपरिहासानुविद्धैः। आसनबन्धो यथायथमासनेऽवस्थानम्। पक्षस्य मासस्य वा तद्योग्यतया प्रज्ञातेऽहनि स्यात्॥ १९॥

अब गोष्ठी समवाय की व्याख्या करते हैं—

विद्या, बुद्धि, सम्पत्ति, आयु और शील में अपने समान मित्रों, सहचरों के साथ वेश्या के घर में, महफ़िल में अथवा किसी नागरक के निवास-स्थान पर गोष्ठी समवाय का आयोजन करना चाहिए॥ १९॥

तत्र चैषां काव्यसमस्या कलासमस्या वा॥ २०॥

तत्रैषां समवायमाह—काव्यसमस्या कलासमस्या वेति। संभूयदर्शनं निरूपणं तत्समस्या चर्चेत्यर्थः। पूर्ववद्भावे प्रत्ययः। 'अस गतिदीप्त्यादानेषु' इति गत्यर्थस्य ज्ञानार्थत्वात्। भारतादिकाव्यस्य नृत्यादिकलाया ना चर्चा स्यात्। यत्तु काव्यसमस्यापूरणमित्युक्तं तस्य भिन्नार्थत्वात्कलासमस्या चेत्यत्रान्तर्भावः॥२०॥

वहाँ सुयोग्य वेश्याओं के साथ बैठकर मधुर और मनोरंजक वार्त्तालाप करे। काव्य, ला, अन्य बौद्धिक, साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लेकर काव्य-

चर्चा, कला-चर्चा और साहित्य-चर्चा करे। साहित्य, संगीत और कला जैसे विषयों पर आलोचनात्मक, तुलनात्मक चिन्तन किया जाए ॥२०॥

तस्यामुज्ज्वला लोककान्ताः पूज्याः । प्रीतिसमानाश्चाहारिताः ॥ २१ ॥

तस्यामिति—गोष्ठ्याम् । चर्चावसाने प्रीतिनिबन्धनार्थं वस्त्रादिदानेन परस्परस्य कलापूजाः स्युः । उज्ज्वला अग्राम्याः । लोककान्ता लोकमनोहराः । प्रीतिसमानाः प्रीत्यनुरूपाः । आहारिताः परिचारिकैरानायिताः ॥ २१ ॥

और ऐसे गोष्ठी समवाय में सम्मिलित प्रतिभाशाली कलाकार का उचित सत्कार किया जाए तथा आमंत्रित अतिथियों और कलाकारों का सम्मान विशेष रूप से किया जाए ॥ २१ ॥

समापानकमाह—

परस्परभवनेषु चापानकानि ॥ २२ ॥

परस्परभवनेषु चेति—एकस्यैकदा भवनेऽन्यदान्यस्य वा । पक्षस्य मासस्य वा तद्योग्यतया प्रज्ञातेऽहनि । आपानकानि पानगोष्ठ्यः स्युः ॥ २२ ॥

एक दूसरे के घर जाकर मधु, मैरेय और सुरा का पान करना चाहिए ॥२२॥

आपानकेषु विधिमाह—

तत्र मधुमैरेयसुरासवान्विविधलवणफलहरितशाकतिक्तकटुकाम्लोपदंशान्वेश्याः पाययेयुरनुपिबेयुश्च ॥ २३ ॥

तत्रेति । मधु माध्वीकम् । मैरेयासवौ मद्यविशेषौ । तथा चोक्तम्—'मेषशृङ्गीत्वक्क्वाथाभियुतो गुडप्रतीवापः पिप्पलीमरिचसंभारस्त्रिफलायुक्तो मद्यो मैरेयः । कपित्थपत्रफाणितप्रस्थो मधुनश्चासवयोगः।' इति। सुरा वल्कलतण्डुलाभ्यां निष्पन्नो गुडस्तत्र निक्षिप्यते । मद्यमिति वक्तव्ये विशेषोपादानं त्रैविध्यख्यापनार्थम् । तथा चोक्तम्—'गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।' अत्र सुराशब्दः सामान्यवाची द्रष्टव्यः । एवं च विविधपानादापानकं भवति ।

विविधानि लवणतिक्तरसभूयिष्ठानि हरितकटुकानि च शिग्रुपर्णादीन्यवदंशो येषामिति तान्वेश्याः पाययेयुः, अभ्यर्थनापुरःसरमनुपिबेयुश्च । आदौ पिबद्भिर्गौरवानुरागौ न प्रकाशितौ स्याताम् । अत्र सह पृथग्वेति देशप्रवृत्तिरपेक्षणीया ॥२३॥

वहाँ पर मधु-मैरेय-सुरा और आसव आदि मद्यों को विविध प्रकार के लवण, फल, हरे शाक, चरपरे, कड़वे और खट्टे मसालों के साथ नागरकों को वेश्याएँ पिलाएँ तत्पश्चात् खुद पिएँ ॥ २३ ॥

एतेनोद्यानगमनं व्याख्यातम् ॥ २४ ॥

एतेनेति । आपानकविधिना । उद्यानगतैरप्ययमेवापानकविधिः कार्य इत्यर्थः ॥

इसी प्रकार उद्यान-यात्रा में भी समापानक होना चाहिए ॥ २४ ॥

दाख या अंगूर के रस से जो शराब बनायी जाती है उसे मधु कहते हैं। इसके कापिशायन और हारहूरक—ये दो नाम और हैं। भारत का रसिक रईस मधु मद्य को साफ़ कराकर पीता था। मरोर की फली, पलाश, छोह, मारक, मेढ़ासिंगी, करंजा, क्षीरवृक्ष (बरगद,गूलर) के काढ़े में भावना दिया गया गर्म रवादार शक्कर का चूरा तथा उसका आधा लोध, चीता, वायविडंग, परग, मोथा, कलिंग, जौ, दारुहल्दी, कमल, सौंफ, चिचिड़ा, सतपर्ण, आक का फूल इन सबका पिसा हुआ चूर्ण एकत्र करके एक मुट्ठी मसाला एक सारी परिमाण शराब में डालकर शराब को इस तरह स्वच्छ बनाया जाता था कि पीने वाले प्रसन्न हो जाते थे। कभी-कभी स्वाद बढ़ाने के लिए पाँच पल राब भी मिला दी जाती थी।

मैरेय मद्य तैयार करने के लिए मेढ़ासिंगी की छाल का काढ़ा बनाया जाता था फिर उसमें गुड़, पीपल और काली मिर्च मिलायी जाती थी। कभी-कभी पीपल की जगह त्रिफला छोड़ दिया जाता था।

उस ज़माने में 'सुरा' शराब चार प्रकार की होती थी—

सहकार सुरा, रसोत्तरा, बीजोत्तरा और सम्भारकी।

साधारण सुरा में आम का रस छोड़ देने से सहकार सुरा बनती थी। और गुड़ की चाशनी छोड़ देने से रसोत्तरा सुरा बनती थी।

बीजबन्ध बूटियाँ छोड़ देने से बीजोत्तरा या महासुरा शराब बनती थी तथा पाठा, लोध, गजपीपल, इलायची, इत्र फुलेल, मुलहठी, दूध, केशर, दारुहल्दी, हल्दी, मिर्च, पीपल आदि मसालों से सम्भारिकी सुरा बनती थी।

आसव तैयार करने में सौ पल कैथे का सार, पाँच सौ पल राब, एक प्रस्थ शहद पड़ती थी। इसमें पड़नेवाला मसाला दालचीनी, चीत, वायविडंग, गजपीपल एक-एक कर्ष और सुपारी मुलहठी, मोथा, लोध दो-दो कर्ष लेकर आसव में मिलाया जाता था।[1]

इन मद्यों को पीते समय कई प्रकार के लवण, शाक के अलावा खट्टे, मीठे, चरपरे पदार्थ खाए जाते थे। वात्स्यायन ने ऐसे पदार्थों को 'उपदंश' लिखा है। उपदंश शब्द का अर्थ लिखते हुए हलायुध कोष कहता है कि 'मद्यपान रोचक

१. कौटलीय अर्थशास्त्र अध्यक्ष प्रचार, अध्याय २५ प्रकरण ४२

भक्ष्य द्रव्यम्' अर्थात् मद्यपान के सहायक रोचक भोज्य पदार्थ। दशकुमार चरित में भी उपदंश इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[1]

आपानक गोष्ठियों में वेश्याओं की उपस्थिति अपेक्षित मानी जाती थी। वे रसिक नागरक को चषक भरकर मद्य पिलातीं और स्वयं पिया करती थीं। उद्यान यात्राओं में भी गणिकाएँ साथ जाया करती थीं और वहाँ मद्यपान किया जाता था।

भारत का प्राचीन नागरक का मद्यपान बल, वीर्य, ओज और तेज बढ़ानेवाला था, साथ ही उत्तेजक भी होता था। मद्य में डाले जानेवाले मसालों का निर्धारण यह दृष्टि रखकर किया जाता था कि शरीर, मन, बुद्धि पर घातक प्रभाव न पड़े। रस, अनुराग और भाव-विभाव की वृद्धि हो किन्तु विपरीत परिणाम कथमपि न हो। स्वास्थ्य और सौन्दर्य-वृद्धि की दृष्टि से भी उस समय का मद्य उपयोगी था।

तत्रोद्यानगमने विशेषमाह—

पूर्वाह्ण एव स्वलंकृतास्तुरगाधिरूढा वेश्याभिः सह परिचारकानुगता गच्छेयुः। दैवसिकीं च यात्रां तत्रानुभूय कुक्कुटयुद्धद्यूतैः प्रेक्षाभिरनुकूलैश्च चेष्टितैः कालं गमयित्वा अपराह्णे गृहीततदुद्यानोपभोगचिह्नास्तथैव प्रत्याव्रजेयुः ॥ २५ ॥

तदा हि गतानां दैवसिकी यात्रा संपद्यते। स्वलंकृता-गृहीतवैहारिकवेषाः। तुरगाधिरूढाः—तुरगाणां ललितयानत्वात्। वेश्याभिः सहेति—ता अपि पश्चादग्रतो वा तुरगमारोहयितव्याः। परिचारका यथास्वं कर्मभिः परिचरन्ति ये। तैरनुगताः। पक्षस्य मासस्य वा गमनयोग्यतया प्रज्ञातेऽहनि गच्छेयुः। दैवसिकीं यात्रां प्रत्यहं क्रियमाणां शरीरस्थितिम्। तत्रैवोद्यानेऽनुभूय कुक्कुटयुद्धद्यूतैः सजीवनिर्जीवैर्नटादिप्रेक्षाभिरनुकूलैश्च चेष्टितैर्यथास्वं वेश्याप्रतिबद्धैः कालं गमयित्वा अपराह्णे प्रशान्तवेलायां तथैवेति स्वलंकृतास्तुरगाधिरूढाः सह वेश्याभिः परिचारकानुगता इति। विशेषोऽत्र गृहीततदुद्यानोपभोगचिह्ना इति। तदुद्यानमुपभुक्तमिति यानि सूचयन्ति कुसुमस्तबककिसलयादीनि तानि गृहीतानि शिरःकर्णकण्ठेषु कृतानि (यैः)। प्रत्याव्रजेयुः प्रतीपमागच्छेयुः ॥ २५ ॥

अब समस्या क्रीड़ा के अन्तर्गत उत्सवों और क्रीड़ाओं का वर्णन करते हैं—

प्रातःकाल वस्त्रालंकार धारण कर और घोड़े पर सवार होकर सेवकों और गणिकाओं को साथ लेकर उद्यान-यात्रा के लिए जाना चाहिए। यह उद्यान-

१. द्वित्रान् उपदंशान् उपपाद्य ततस्तस्य शाल्योदनस्य दर्वीद्वयं दत्वा सर्पिर्मात्रां सूपम् उपदंशं च उपजहार।

यात्रा इतनी दूर की हो कि शाम तक घर वापस आ सके। उद्यान में पहुँच कर दैनिक कृत्यों से निपटकर मुर्ग, लावक और मेढ़ों की बाज़ी लगायी गई लड़ाइयाँ देखे, जुआ खेले, नृत्य-नाटक देखे, संगीत का आस्वादन करे, मनोरंजक इच्छानुकूल खेलों को खेले। सायंकाल से पूर्व उद्यान यात्रा के स्मृति-चिह्न, फल, पुष्प, पत्र, स्तबक आदि लेकर जिस प्रकार आए थे उसी प्रकार घर को वापस लौटना चाहिए ॥ २५ ॥

एतेन रचितोद्ग्राहोदकानां ग्रीष्मे जलक्रीडागमनं व्याख्यातम् ॥ २६ ॥

एतेनेति उद्यानगमनविधिना। तत्रापि गमनं दैवसिकयात्रानुभवनमागमनं च तुल्यम्। किंतु गृहीततदुद्यानोपभोगचिह्ना इति तेन तत्रैव प्रायशोऽन्तर्भूतमिति नैमित्तिकवर्गे पृथङ्नोक्तम्। योऽत्र विशेषस्तमाह—रचितोद्ग्राहोदकानामिति। उद्ग्राहमविद्यमानकुम्भीराद्युदकं यस्य तोयस्थानस्य तदुद्ग्राहोदकं वापीदीर्घिकादि। रचितमिति स्वार्थिकण्यन्ताद्धेतुमण्ण्यन्तात्क्तप्रत्यये रूपम्। "रच प्रतियत्ने' इत्यदन्तत्वान्न वृद्धिः। तीर्थविन्यासादिभिः कारितरचनमुद्ग्राहोदकं यैर्नागरकैरिति। ग्रीष्म इति। अन्यदा तु पुनः पुनर्निमज्जनोन्मज्जनोदकवाद्यविघातादिप्रकारायाः क्रीडाया असंभवात् ॥ २६ ॥

इसी प्रकार गर्मी में जल-क्रीड़ाओं में प्रवृत्त होना चाहिए ॥ २६ ॥

ग्रीष्म ऋतु का सर्वोत्तम मनोविनोद जल-क्रीड़ा रहा है। जिस समय धरती और आकाश प्रचंड लू से धधकने लगते थे, उस समय प्राचीन भारत का श्रीमन्त नागरक सर्पनिर्मोक के समान महीन वस्त्रों-सुगन्धितम कर्पूर-चूर्ण' चन्दन-लेप और पाटल-पुष्पों से सुसज्जित धारागृह का उपयोग दिल खोलकर किया करता था। गृह-वापिकाओं में जब विलासिनियाँ जलक्रीड़ा किया करती थीं तो कान में खोंसे हुए शिरीष-कुसुम पानी में छा जाते थे, चन्दन और कस्तूरिका के आमोद से तथा नाना रंग के अंगरागों से और श्रृङ्गार-साधनों से पानी रंगीन हो उठता था। जल-स्फालन से उठे हुए जल-बिन्दुओं से आकाश में मोतियों की लड़ी बिछ जाती थी। जलाशय के भीतर से गूँजते हुए मृदंगघोष को मेघ की आवाज़ समझ कर विचारे मयूर उत्सुक हो उठते थे। केशों से खिसके हुए अशोक-पल्लवों से कमल-दल चित्रित हो उठते थे और आनन्द-कल्लोल से दिङ्मण्डल मुखरित हो उठता था। प्राचीन चित्रों में भी यह जल-केलि मनोरम-भाव अंकित है।[1]

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत का कलाविलास पृष्ठ १४७

समस्याः क्रीडा आह—

यक्षरात्रिः । कौमुदीजागरः । सुवसन्तकः ॥ २७ ॥

यक्षरात्रिरिति—सुखरात्रिः, यक्षाणां तत्र संनिधानात् तत्र प्रायशो लोकस्य द्यूतक्रीडा । कौमुदीजागर इति—आश्वयुज्यां हि पौर्णमास्यां कौमुद्या ज्योत्स्नायाः प्रकर्षेण प्रवृत्तेः, तत्र दोलाद्यूतप्राया: क्रीडाः । सुवसन्तक इति—सुवसन्तो मदनोत्सवः, तत्र नृत्यगीतवाद्यप्रायाः क्रीडाः । एता माहिमान्यः क्रीडाः ॥ २७ ॥

अब समस्या क्रीड़ाओं का परिचय देते हैं—

यक्षरात्रि, कौमुदी जागर और सुवसन्तक उत्सवों में समस्या क्रीड़ाएँ रचायी जाती हैं ॥ २७ ॥

कार्तिक की अमावस्या को जब दीपावली पर्व मनाया जाता है, वात्स्यायन के समय में यक्ष-रात्रि उत्सव मनाया जाता था। दीपावली उत्सव का वर्णन पुराणों, धर्मसूत्रों, कल्पसूत्रों में विस्तृत रूप से मिलता है किन्तु आश्चर्य की बात है कि कामसूत्र में दीपावली का कोई ज़िक्र न होकर 'यक्षरात्रि' का उल्लेख हुआ है। यक्षरात्रि से यही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय उस दिन यक्ष की पूजा होती रही होगी और द्यूत-क्रीड़ा रचायी जाती रही होगी।

यदि व्याकरण का आधार लेकर अर्थ किया जाए तो यक्ष्यते पूज्यते इति-यक्ष् - घञ् = यक्षः और यक्ष की रात्रि यक्षरात्रि अर्थ निष्पन्न होता है। अथवा 'ई लक्ष्मीमक्षणोतीति यक्षः' इस दूसरी व्याख्या से लक्ष्मी-पूजन की रात्रि अर्थ निष्पन्न हो जाता है। संभव है इसी अर्थ को लेकर दीपावली का नाम उस समय यक्षरात्रि रखा गया हो। प्राचीन काल में शायद दीपावली उत्सव शास्त्रीय या धार्मिक रूप में नहीं मनाया जाता रहा है क्योंकि वेदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। पद्मपुराण[1] और स्कन्दपुराण[2] में इस पर्व का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। उसी के आधार पर दीपावली उत्सव का प्रचलन अब तक है। कार्तिक की अमावस्या (दीपावली) के साथ यक्ष-शब्द जोड़ने का तात्पर्य श्रीसूक्त से स्पष्ट होता है। श्रीसूक्त ऋग्वेद के परिशिष्ट भाग का एक सूक्त है, इस सूक्त के एक मंत्र में 'मणिना सह' कहा गया है इस वाक्य से प्रतीत होता है कि लक्ष्मी का संबंध मणिभद्र यक्ष से है। मणिभद्र यक्ष से लक्ष्मी का घनिष्ठ संबंध होने से कामसूत्र के काल तक दीपावली की रात यक्षरात्रि कहलाती रही।

इतना तो निःसन्देह कहा जा सकता है कि दीपावली का आधुनिक रूप में जो प्रचलन है वह ईसवी तीसरी शती के बाद से प्रारम्भ होता है और

१. उत्तरखण्ड १२२ २. कार्तिक मास माहात्म्यस्य ९–११

वात्स्यायन का समय इसी के पूर्व सुनिश्चित है। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वात्स्यायन के काल में कार्तिक की अमावस्या की रात में लक्ष्मी-पूजन और द्यूत-क्रीड़ा की प्रथा रही होगी।

कौमुदी जागरण :—उत्सव अनुमानतः प्रारम्भ में विशुद्ध लोकोत्सव रहा होगा क्योंकि संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में आश्विन पूर्णिमा को कुछ भी महत्त्व नहीं दिया गया है। आश्विन-पूर्णिमा की रात में होनेवाला यह उत्सव पालि ग्रंथों में 'कोमदीय-चातुमासनीय छन' बतलाया गया है। यह ऋतु परिवर्त्तनसंबंधी उत्सव रहा है। कामसूत्रकार ने इसी को 'कौमुदीजागरः' लिखा है। गृह्यसूत्रों में अश्वयुज् की पूर्णिमा को बहुत महत्त्व दिया गया है। गृह्यसूत्रों से पता चलता है कि इस उत्सव के अवसर पर उच्च वर्ण के लोग तड़क-भड़कदार वस्त्र धारण कर बड़े उल्लास से अश्वयुजी उत्सव मनाते थे। पशुपति, इन्द्र, अश्विन् आदि देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ, हवन भी किये जाते थे और खीर का भोग लगाया जाता था।[1]

उच्च वर्णों के अतिरिक्त सामान्य जनता इसे लोकोत्सव के रूप में ही स्वीकार किए हुए थी। बुद्धघोष की 'सुमंगल विलासिनी' से पता चलता है कि उस दिन राजधानी राजगृह इस ढंग से सजायी जाती थी कि वह रूपवती सुघर तरुणी बन जाती थी। सड़कों पर बालू छिटवा कर ऊपर से पानी का छिड़काव किया जाता था। पाँच प्रकार के रंगीन फूलों, धान की खीलों और मंगल-कलशों से गृह-द्वार सजाया जाता था। चारों दिशाओं में छोटी-बड़ी पताकाएँ लहरायी जाती थीं। सन्ध्या होते ही सारा नगर दीपज्योति से जगमगा उठता था। सड़कों, चौरस्तों पर उत्सवशालिनी स्त्रियों और रसिक नागरकों की भीड़ इतनी अधिक जुटती थी कि लोगों के कन्धे छिल जाते थे।[2] धम्मपद के अनुसार यह उत्सव रात भर मनाया जाता था।[3]

आर्यशूर लिखित जातकमाला में शिविराज्य की राजधानी में उस दिन नगर भर में चहल-पहल रहती थी। सड़कों, चौमुहानियों में पानी का छिड़काव किया जाता था, उन्हें सजाया जाता था। स्वच्छ धरातल पर फूल बिछा दिये जाते थे। चारों ओर ध्वज, पताका और वन्दनवार लहराए जाते थे। स्थान-स्थान पर नृत्य, नाटक, गीत-वाद्य के जमघट जुटते थे। निरन्तर वाद्य-घोष प्रतिध्वनित होते रहते थे। धूप, दीप, सुगन्धित चूर्ण अनुलेपन और सुरा की मादक सुगन्धि, खूशबूदार पानी और पुष्पस्तबकों की मोहक सुगन्धि

१. आश्वलायन गृह्यसूत्र २।२ तथा शाङ्खायन सूत्र ४।१६
२. ११।४७
३. धम्मपद अत्थकथा ३।४।६१

से समस्त वायुमण्डल सुगन्धिमय बन जाता था। सड़कों के दोनों फुटपाथों पर सुसज्जित दूकानें और अपार भीड़ लगी रहती थी।[1]

सुवसन्तक उत्सव वसन्तावतार के दिन मनाया जानेवाला ऋतुसंबंधी उत्सव था। कामसूत्र के टीकाकार यशोधर ने सुवसन्तक को 'मदनोत्सव' लिखा[2] है जिससे एक बहुत बड़े भ्रम का विस्तार हो गया है। मदनोत्सव होली के अवसर पर मनाया जानेवाला उत्सव है। वात्स्यायन ने सुवसन्तक के अतिरिक्त 'होलिका' का भी उल्लेख किया है।

मात्स्य सूक्त के अनुसार सुवसन्तक के दिन ही वसन्तऋतु का अवतरण होता है। इसी दिन मदन की पहली पूजा होती है। वसन्तावतार को आजकल वसंतपंचमी कहा जाता है। सरस्वती कण्ठाभरण से ज्ञात होता है कि सुवसन्तक के दिन विलासिनियाँ कण्ठ में कुवलय की माला और कानों में दुष्प्राप्य नवआम्रमञ्जरी खोंसकर गाँव को जगमग कर देती थीं।[3]

ऋतुसंहार से मालूम होता है कि वसन्तावतार होते ही विलासिनियाँ गर्म कपड़ों का बोझ उतार फेंकती थीं। लाक्षा रंग या कुंकुम से रंजित और सुगन्धित कालागुरु से सुवासित हल्की लाल साड़ियाँ पहनती थीं। कोई कुसुम्भी रंग से रँगे हुए दुकूल धारण करती थीं और कोई-कोई कानों में नवीन कर्णिकार के फूल, नील अलकों में लाल अशोक के फूल और वक्षःस्थल पर उत्फुल्ल नवमल्लिका की माला धारण करती थीं।[4]

सुवसन्तक के दिन सरस्वती आयतन में सामूहिक सरस्वती-पूजन होता था, इसके बाद नृत्य, नाट्य, गीत, वाद्य, अभिनय एवं काव्य, साहित्य-संबंधी विविध गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। नगर के नर-नारी सामूहिक रूप से बिना किसी भेद-भाव के सुवसन्तक उत्सव मनाया करते थे।

भासरचित चारुदत्त नाटक में इस पर्व का नाम 'कामदेवानुयान' लिखा है। कामदेव का चित्र लेकर बाजे-गाजे के साथ नागरकों का विशाल जुलूस निकलता था।[5] गरुड़ पुराण में लिखा है कि अगहन की त्रयोदशी (अनंग) को यह उत्सव आरंभ कर कार्तिक की मदन त्रयोदशी को समाप्त किया जाए। प्रतिमास शिवजी की भिन्न-भिन्न मूर्तियों का पूजन किया जाए। काम और

१. उन्मादयन्ती जातक १।८२
२. सुवसन्तक इति—सुवसन्तो मदनोत्सवः, तत्रनृत्यगीतवाद्य प्रायाः क्रीडाः।
३. सरस्वती कण्ठाभरण, पृष्ठ ५७५ ४. ऋतु संहार ६
५. चारुदत्त, अंक १

रति के पूजन और हवन से उत्सव का उद्यापन किया जाए। नृत्य, गान द्वारा रात्रि-जागरण किया जाए।[1]

गरुड़ पुराण के इन सुझावों से यह आशय निकलता है कि यह एक व्रत है जिसका संबंध समूह से न होकर व्यक्ति से है।

दशकुमार चरित में लिखा है कि राजा मानसार की पुत्री अवन्तिसुन्दरी ने इस दिन देहात की एक वाटिका में जाकर एक किशोर आम की छाया में बालू का ढेर बनाकर मदन-पूजा की थी।[2] दशकुमार चरित में इस उत्सव का दूसरा नाम 'कामोत्सव' भी लिखा है।[3]

भविष्यपुराण में लिखा है कि वसंतकाल की शुक्लात्रयोदशी को सेंदुर से काम और रति की मूर्तियाँ चित्रित कर समारोह के साथ उनका पूजन करना चाहिए। दोपहर को गण-भोज किया जाए तथा रात में कामदेव के आयतन में नृत्य, गीत, अभिनय आदि किया जाए। इस पुराण में इस उत्सव का नाम 'चैत्रोत्सव' है।[4]

वर्षक्रिया कौमुदी में शैवागम का एक वचन उद्धृत करते हुए लिखा गया है कि चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को मदन महोत्सव मनाने के लिए प्रातःकाल से दोपहर तक गाया-बजाया जाए तथा अश्लील वाक्य कहे जाएँ, रंग और कीचड़ फेंका जाए। इसके बाद वस्त्रालंकार से अपनी सजावट की जाए।[5]

रत्नावली नाटिका में इस उत्सव के वसन्तोत्सव तथा मदनोत्सव दोनों नाम लिखे हुए हैं।[6]

देश्या आह—

सहकारभञ्जिका, अभ्यूषखादिका, बिसखादिका, नवपत्रिका, उदकक्ष्वेडिका, पाञ्चालानुयानम्, एकशाल्मली, कदम्बयुद्धानि, तास्ताश्च माहिमान्यो देश्याश्च क्रीडा जनेभ्यो विशिष्टमाचरेयुः। इति संभूयक्रीडाः॥ २८॥

सहकारभञ्जिकेति—सहकारफलानां भञ्जनं यत्र क्रीडायाम्। अभ्यूषखादिका—फलानां विटपस्थानामग्नौ प्लोषितानां स्वादनं यत्र। बिसखादिका—बिसानां मृणालानां खादनं यत्र। सरःसमीपवासिनाम्, इत्येते द्वे क्वचित्क्वचिद् दृश्येते।

नवपत्रिका—प्रथमवर्षणेन प्ररूढनवपत्रासु वनस्थलीषु या क्रीडा सा प्रायेणा-

---

१. गरुड़पुराण १।११७।१–१५
२. दशकुमारचरित १।५।४४
३. वही २।२।८७–८८
४. भविष्य पुराण ४।१३५
५. वर्षक्रिया कौमुदी पृष्ठ ५३१
६. रत्नावली, अंक १

टवीसमीपवासिनामाटविकानां च। उदकक्ष्वेडिकेति—'वंशनाडी स्मृता क्ष्वेडा सिंहनादश्च कथ्यते' इति, उदकपूर्णा क्ष्वेडा यस्यां क्रीडायां सा मध्यदेश्यानाम्, यस्याः शृङ्गक्रीडेति प्रसिद्धिः।

पाञ्चालानुयानम्—भिन्नालापचेष्टितैः पाञ्चालक्रीडा, यथा मिथिलायाम्। एकशाल्मली—एकमेव महान्तं कुसुमनिर्भरं शाल्मलिवृक्षमाश्रित्य तत्रत्यकुसुमाभरणानां क्रीडा यथा वैदर्भाणाम्। कदम्बयुद्धानि—कदम्बकुसुमैः प्रहरणभूतैर्द्विधा बलं विभज्य युद्धानि। कदम्बग्रहणं कुसुमसुकुमारप्रहरणसूचनार्थम्। यष्टीष्टकादियुक्तानि तु न कार्याणि यथा पौण्ड्राणां युद्धं क्वचित्क्वचिद् दृश्यते।

तास्ताश्चेति—या या लोके प्रवृत्तिपूर्वाः। माहिमान्य इति—महिमा महत्त्वं तद्विद्यते यासामिति। 'संज्ञायां मन्माभ्याम्' इतीनिप्रत्ययः, सर्वदेशव्यापिन्य इत्यर्थः। देशे भवा देश्याः, प्रादेशिन्य इत्यर्थः। जनेभ्यो विशिष्टमिति—घटादयो नागरकाणामिति। समस्यास्तु साधारणाः। तत्र जना नागरकाश्च क्रीडन्ति। तस्मात्तेभ्यो विशिष्टमाचरेयुः, नागरत्वद्योतनार्थम्। संभूयक्रीडा इति—आसु नागरकाणां द्रव्यमुपहार्य संभूय क्रीडनात्॥ २८॥

अब अन्य क्षेत्रीय क्रीडाओं का वर्णन करते हैं—

सहकारभञ्जिका, अभ्यूषखादिका, विसखादिका, नवपत्रिका, उदकक्ष्वेडिका, पाञ्चालानुयान, एकशाल्मलि, कदम्बयुद्ध—इन स्थानीय और सार्वदेशिक क्रीडाओं में नागरक लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार खेलें। सामूहिक क्रीड़ाओं का वर्णन समाप्त हुआ॥ २८॥

वात्स्यायन ने वसन्तऋतु में खेली जानेवाली क्रीड़ाओं के नाम यहाँ प्रस्तुत किए हैं। कामसूत्र की जयमंगला टीका में इनके अतिरिक्त उद्यान यात्रा, सलिल क्रीड़ा, पुष्पावचयिका, नवाम्रखादनिका तथा आम और माधवीलता का विवाह—इन क्रीड़ाओं को वसंत ऋतु में तथा उसके बाद निदाघ में खेलने का समर्थन किया गया है।

जयमंगला टीकाकार ने 'सहकार भञ्जिका' क्रीड़ा को आम के फलों को तोड़ने का खेल लिखा है;[1] किन्तु सरस्वती कण्ठाभरण[2] से प्रतीत होता है कि यह क्रीड़ा आम्रमंजरी चुनने की रही है। रसिका नागरिकाएँ जब कामदेव की पूजा के लिए आम्रमंजरी चुनकर बाद में कानों में पहनने के लिए निकलती थीं उस समय उनके परस्पर हास-विलास से यह कार्य अत्यन्त सरस हो उठता था। पुरुष कभी अलग और कभी स्त्रियों के साथ इस चयन कार्य को करते थे, इसे 'चूतभंजिका' कहते थे।

१. सहकारफलानां भंजनं यत्र क्रीडायाम्।

२. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत का कलाविलास, पृष्ठ ११२

जयमंगला टीका में 'अभ्यूषखादिका' क्रीड़ा को आग में भूने हुए वृक्षों के फलों के खाने का खेल लिखा है।[1] किन्तु यह क्रीडोत्सव सामूहिक रूप से होला (चना-मटर का) भून कर खाने का है। प्राचीन नागरक सामूहिक रूप से इस उत्सव के लिए खेतों की यात्रा करते थे, वहाँ पर वे गेहूँ, जौ, चना, मटर आदि अनाजों की बालें आग में भूनकर 'अभ्यूष' और 'होला' नाम के खाद्य बनाते थे। आजकल भी वसंतपंचमी के दिन जौ, चना, गेहूँ का होला भून कर खाने का रिवाज है। बिसखादिका क्रीड़ा कमलनाल से संबंध रखती है। उस समय कमल दण्ड को किस प्रकार खाया जाता था यह तो पता नहीं चल रहा है किन्तु आजकल देहातों में लोग कच्चा कमलगट्टा तोड़ते हैं। पानी सूख जाने पर या कम हो जाने पर कमल की जड़ खोदकर खाया करते हैं, जिसे भसींड़ और कसेरू कहा जाता है। संभवतः 'बिस' से वात्स्यायन का आशय भसींड़ या कसेरू ही होगा। नवपत्रिका क्रीड़ा के लिए जयमंगला टीका में प्रथमवर्षा के पश्चात् नई-नई घास पर लोटना तथा नई कोंपलोंवाले वृक्षों के मध्य में खेलना लिखा है, किन्तु हमारा अनुमान है कि यह क्रीड़ा वसन्तकालीन ही है, उद्यान-यात्रा, वन-विहार अथवा जल-विहार के समय रसिक नागरिकाएँ लताओं विटपों की कोमल पत्तियाँ चुन-चुनकर अपना श्रृङ्गार करती रही होंगी। उन पत्तियों के आकार-प्रकार के अनुरूप अपने अंगों को अगुरु, चन्दन आदि विलेपनों से चित्रित करती रही होंगी।

उदकक्ष्वेडिका क्रीड़ा के लिए जयमंगला टीका में बाँसरी में पानी भर कर सिंहनाद करना लिखा है। किन्तु यह बहुत पुराना और प्रसिद्ध विनोद है। होली के अवसर पर यह विनोद अब भी प्रचलित है। प्राचीनकाल में बाँस की पिचकारियों में सुगन्धित जल भर कर युवक गण आपस में एक दूसरे को तथा युवतियों को लथपथ कर दिया करते थे। जयमंगला टीका के मत से इसका प्रचार मध्यदेश में अधिक था।

'पाञ्चालानुयान' क्रीड़ा का अर्थ जयमंगला टीका में विभिन्न प्रकार के संवादों और संकेतों से पाञ्चाल खेल खेलना लिखा है। इससे कुछ स्पष्ट नहीं होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे भासरचित चारुदत्त में मदनमहोत्सव को 'कामदेवानुयानं' कहा गया है, उसी प्रकार शालभंजिका क्रीड़ा को वात्स्यायन ने पाञ्चालानुयानं लिखा है। पाञ्चाली या पाञ्चालिका क्रीड़ा को शालभञ्जिका क्रीड़ा कोशकारों ने भी लिखा है। वस्तुतः यह एक प्रकार का पुतलियों का खेल था, जिसे सामूहिक रूप से खेला जाता रहा है।

१. फलानां विटपस्थानामग्नौ प्लोषितानां खादनं यत्र।

'एक शाल्मलि' क्रीड़ा की व्याख्या करते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि—'इसका नाम कामसूत्र, भावप्रकाश और सरस्वती कण्ठाभरण में दिया हुआ है। ठीक-ठीक यह किस तरह होता था समझ में नहीं आता। शायद उन दिनों वसंत में लाल कपड़े पहने जाते थे और यह कुसुमनिर्भर (लाल फूलों से लदा) पेड़ लुका-चोरी खेलने का सर्वोत्तम साधन रहा हो। आजकल यह किस प्रदेश में किस रूप में जी रहा है कि नहीं मालूम नहीं। यहाँ यह याद रखना उचित है कि कामसूत्र की जयमंगला टीका के अनुसार इस विनोद का प्रचलन विदर्भ या बरार प्रान्त में अधिक था'।[1] कदम्ब युद्धक्रीड़ा कदाचित् जल-क्रीड़ा के समय कदम्ब के फूलों से एक दूसरे पर प्रहार करते हुए खेली जाती रही होगी।

अब एकांकी और ऐश्वर्य हीन नागरकों के मनोरंजन का सुझाव प्रस्तुत करते हैं—

एकचारिणश्च विभवसामर्थ्याद् ॥ २९ ॥

नागरकाणामभावाद्दृष्टदोषाद्वा यः कश्चिदेक एव चरति तस्य स्वविभवानुरूपेण परिचारकैः सह यक्षरात्र्यादयः समस्या एव स्युः ॥ २९ ॥

दुर्भाग्यवश नागरिकों से रहित नागरक यदि अकेला विचरण करता हो तो वह अपने सामर्थ्य के अनुकूल ही क्रीड़ा करे ॥ २९ ॥

गणिकाया नायिकायाश्च सखीभिर्नागरकैश्च सह चरितमेतेन व्याख्यातम् ॥ ३० ॥

एतेनेति स्थानगृहन्यासनित्यनैमित्तिकविधिना यथासंभवं गणिकाया नायिकायाश्च चरितं व्याख्यातम्। तत्र नागरकाणां स्थाने सख्यः, वेश्यानां स्थाने नागरका इति ॥ ३० ॥

इसी तरह एकाकिनी होने पर गणिकाएँ और नायिकाएँ भी नागरिकों और सखियों के साथ ऋतुसंबंधी क्रीड़ाएँ करें ॥ ३० ॥

उपनागरकाणां लक्षणद्वारेण वृत्तमाह—

अविभवस्तु शरीरमात्रो मल्लिकाफेनककषायमात्रपरिच्छदः पूज्याद्देशादागतः कलासु विचक्षणस्तदुपदेशेन गोष्ठ्यां वेशोचिते च वृत्ते साधयेदात्मानमिति पीठमर्दः ॥ ३१ ॥

तुशब्दो विशेषणार्थः। यस्तु निष्किञ्चनो यथोक्तं नागरकवृत्तं वर्तितुमयोग्यः शरीरमात्रः पुत्रकलत्राद्यभावात्। परिचारकद्वितीयो यथोत्पादितवित्ताभावाद्देशहिण्डनकः। मल्लिका दण्डासनिका शरीरधारणात्पूर्वनागरकाचार्यैः संकेतिता।

१. प्राचीन भारत का कलाविलास, पृष्ठ ११२।

'मल मल्ल धारणे' इति धातुपाठात्। सा तस्य पृष्ठत एवासनार्थं भ्राम्यते। प्रवृत्तविषयेच्छत्वाच्च जङ्घाघर्षणार्थं फेनककषायाविति। तन्मात्रं परिच्छदो विभवो यस्येति। पीठिकाद्यासनं तु नार्हति। पूज्याद्देशाच्छास्त्रकलाविदध्युषितात्। तत्रत्य एव देशादिदृक्षयागतः। कलासु कुशलः—स्वदेश एव गीतादिचतुःषष्टि पाञ्चालिकीं चाधीतवान्। तदुपदेशेन कलोपदेशेन। गोष्ठ्यां नागरकाणाम्। वेशोचिते वेश्याजनोचिते वृत्ते साधयेदात्मानमिति आचार्यं निष्पादयेदित्यर्थः। स पीठमर्द उपदेशदानेऽधिकृतत्वान्मल्लिकाख्यं पीठं मृद्नातीति कृत्वा। एतेनाचार्यवृत्तमस्य वृत्तम्॥ ३१॥

अब उपनागरकों का परिचय देते हुए उनके आचरण बतलाते हैं—

किसी सांस्कृतिक स्थान से आया हुआ कलाविचक्षण नागरक यदि धनहीन हो। मल्लिका,[1] फेनक[2] और कषाय[3] मात्र ही उसके पास शेष रह गए हों तो वह नागरकों की सभाओं, उत्सवों में जाकर तथा वेश्याओं के यहाँ जाकर उनको हितकर उपदेश देकर अपनी जीविका कमाए। उनका आचार्य बनकर 'पीठमर्द'[4] पदवी प्राप्त करे॥ ३१॥

वात्स्यायन के मत से अमीर, ग़रीब, समुदाय सम्पन्न या एकाकी सभी व्यक्तियों को ऋतु संबंधी मनोरंजनों, उत्सवों में भाग लेना चाहिए। इससे भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मूल उद्देश्य और स्वरूप आसानी से समझा जा सकता है। कामसूत्र की गवाही से जान पड़ता है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य में असुन्दर और विद्रोह का भाव कहीं भी नहीं है। भारतीय नागरक पुनर्जन्म और कर्मफल के सिद्धान्तों को स्वीकार कर सांसारिक विधान के साथ सामञ्जस्य बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह दुःख में भी असन्तुष्ट या चिन्तित नहीं हुआ करता क्योंकि उसकी मान्यता है कि मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगने के लिए ही जन्म लेता है। यही कारण है कि हम मनोविनोदों, उत्सवों को महज़ दिमाग़ी ऐयाशी न समझ कर मंगल और कल्याण के हेतु समझते हैं। नृत्य, नाटक, संगीत आदि केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं बल्कि पुराकृत पापों के नाशक और मोक्ष के सहायक समझे जाते हैं।

मांगल्यं ललितैश्चैव ब्रह्मणो वदनोद्भवम्।
सुपुण्यं च पवित्रं च शुभं पापविनाशनम्॥[5]

---

१. लकड़ी की बनी हुई बैसाखी जिस पर टेक लगाकर बैठा जाता है।
२. साबुन। ३. एक प्रकार का उबटन।
४. विलासियों और वेश्याओं को कामकला की शिक्षा देनेवाला कलाविद्।
५. नाट्यशास्त्र ३६–७३।

नाट्यशास्त्र का कथन यहाँ तक है कि देवता पूजा, आराधना से उतना प्रसन्न नहीं होते हैं जितना नृत्य और नाट्य से।[1] जो नाट्य को भली भाँति सुनता है, उसका प्रयोग करता है या जो देखता है वह उस गति को प्राप्त होता है जो वेद के विद्वानों को मिलती है, जो यज्ञ करने वाले को मिलती है और जो गति दानशीलों को मिलती है।[2]

संसार के किसी भी देश की सभ्यता का इतना उदात्त विधान नहीं है, जितना कि भारत का। हमारी सभ्यता मनोविनोदों, उत्सवों, नृत्य-नाटकों को केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं मानती बल्कि अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति का मुख्य साधन समझती है। यही कारण है कि वात्स्यायन ने प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह जिस स्थिति का जिस वर्ग या वर्ण का हो उत्सवों, मनोविनोदों में भाग लेने का सुझाव दिया है।

भुक्तविभवस्तु गुणवान् सकलत्रो वेशे गोष्ठ्यां च बहुमतस्तदुपजीवी च विटः ॥ ३२ ॥

यस्तु यौवने नागरकवृत्त्या परिभुक्तसर्वस्वोऽप्यनुपरतो विषयेभ्यः, सविभवस्तु नागरक एव स्यात्। तत्रत्यो नान्यस्माद्देशादागतः। भुक्तविभवस्त्वागन्तुकः पीठमर्दश एव। गुणवान्नायकगुणयुक्तः, प्राक्तनस्य नागरकत्वात्। सकलत्रः सानुबन्धत्वान्न स्वदेशत्यागी। बहुमत इति बहुमतं यस्य। विशेषपरिज्ञानात्। तदुपजीवी विटगोष्ठ्युपजीवी। वृत्तिमन्यामनिच्छन्वेश्याजनं नारकजनं चोपजीवति। तदुपजीवितया तयोः संदेशं परस्परं विटतीति कथयतीति विटः। 'विट शब्दे' इति धातुपाठात्। वक्ष्यति च—'विटः पुरोगां प्रीतिं कुर्यात्' इति। तेन तदुपजीविवृत्तमेवास्य वृत्तम् ॥ ३२ ॥

जो सम्पन्न नागरक के समस्त सुखों का उपभोग कर चुका है किन्तु कारणवश विभवहीन हो गया है और समस्त नागरक गुणों से सम्पन्न है, कलावान है, गणिकाओं और नागरकों के समाज में लब्धप्रतिष्ठ है वह वेश्याओं और नागरकों के सम्पर्क से जीविका चलाए। ऐसा व्यक्ति विट कहलाता है ॥ ३२ ॥

एकदेशविद्यस्तु क्रीडनको विश्वास्यश्च विदूषकः। वैहासिको वा ॥ ३३ ॥

यस्तु गीतादीनां प्रदेशज्ञः सोऽविभवो मुक्तविभवो वा शरीरमात्रः सकलत्रस्तत्रत्य आगन्तुको वा पूर्ववृत्त्यसंभवात्। क्रीडनको विश्वास्यश्च भवति। वेशे गोष्ठ्यां च विश्वास्यतामुपगम्य परिहासशीलवृत्त्या वर्तत इत्यर्थः। स च वेश्यां

---

१. ना० शा० ३६–१७   २. ना० शा० ३६–७४–७५।

नागरकं वा क्वचित्प्रमाद्यन्तं लब्धप्रणयत्वादपवदते इति विदूषकः। क्रीडनकत्वाच्च वेशे गोष्ठयां च विविधेन हासेन चरतीति वैहासिक इत्युभयनामा ॥ ३३ ॥

किन्तु जो व्यक्ति किसी कला या विद्या में पूर्णता न प्राप्त किए हो वह अधूरा कलाकार लोगों के बीच खिलौना बना रहता है। कदाचित् वह विश्वस्त हुआ तो विदूषक कहा जाता है अथवा हँसाते रहने के कारण वैहासिक भी कहा जाता है ॥ ३३ ॥

एते वेश्यानां नागरकाणां च मन्त्रिणः सन्धिविग्रहनियुक्ताः ॥ ३४ ॥

एते नागरकाणां पार्श्ववर्तित्वादुपनागरका मन्त्रिणः संधिविग्रहनियुक्ता इति—सामान्यं वृत्तं संधिविग्रहयोर्ज्ञानं, मन्त्रिणः कर्मणि सांधिविग्रहिकाः। तथाहि—देशकालकार्यापेक्षया संधिविग्रहौ प्रधानगुणौ ज्ञानेनावधार्य तत्कर्मसु प्रवर्तन्त इति ज्ञानकर्मरूपौ संधिविग्रहौ ॥ ३४ ॥

ऐसे व्यक्ति वेश्याओं और नागरकों के बीच सन्धि-विग्रहिक बनते हैं ॥३४॥

तैर्भिक्षुक्यः कलाविदग्धा मुण्डा वृषल्यो वृद्धगणिकाश्च व्याख्याताः ॥ ३५ ॥

तैरित्युभयात्मकैः भिक्षुकस्य भार्या। मुण्डगुणयुक्ताः। वृषल्यो बन्धक्यः। कलाविदग्धा इति सर्वत्र योज्यम्। ता अपि संधिविग्रहयोर्ज्ञाने कर्मणि च नियोक्तव्याः। ताश्च संधिविग्रहार्थं कुट्टनाचालनाच्च कुट्टन्य इत्युच्यन्ते ॥ ३५ ॥

विट, विदूषक की भाँति कलानिपुण भिक्षुकी (संन्यासिनी, कुलटा और वृद्ध वेश्या भी) नायक और नायिका के मध्य सन्धि-विग्रहिक बनकर जीवन-यापन कर सकती हैं ॥ ३५ ॥

उपर्युक्त तीन सूत्रों द्वारा पीठमर्द, विट, विदूषक और इन्हीं की भाँति भिक्षुणी, विधवा, वन्ध्या एवं वृद्धवेश्या के जीवन यापन का विधान वात्स्यायन ने बतलाया है।

समृद्ध और असमृद्ध नागरकों के इस वर्गीकरण से वात्स्यायन-कालीन समाज-व्यवस्था का सचित्र परिचय प्राप्त होता है। यहाँ यह कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है कि उच्चवर्ण के लोग ही समृद्ध होते थे और नीच वर्ण के दरिद्र। ऐसा प्रतीत होता है कि समृद्ध होने के बाद श्रेष्ठि या सामन्त पदवी प्राप्त हो जाया करती थी, शूद्र पद विलीन हो जाता था। ब्राह्मण केवल वेदपाठी ही नहीं होते थे बल्कि देश-देशान्तर का व्यापार करके श्रेष्ठि (सेठ) भी बनते थे। यही बात क्षत्रियों की भी थी। वे केवल राजा या योद्धा ही नहीं होते थे बल्कि उच्चकोटि के व्यवसायी सेठ भी होते थे।

मृच्छकटिक नाटक की गवाही से जाना जाता है कि चारुदत्त ब्राह्मण होते हुए भी श्रेष्ठि-चत्वर में वास करता है और सभी कलाओं का समादरण करनेवाला श्रेष्ठ नागरक है। दरिद्र हो जाने पर भी वसन्तसेना जैसी अनिन्द्य सुन्दरी गणिका और समस्त नागरकों के प्रेम और श्रद्धा का भाजन बना रहता है।

वात्स्यायन द्वारा बतायी गई विट की परिभाषा का व्यक्ति मृच्छकटिक का एक दूसरा ब्राह्मण है जो विट कहलाता है। राजा के साले की चापलूसी करता है। गणिकाओं का सम्मान करता है, उन्हें प्रसन्न रखता है।

संस्कृत के प्रायः सभी नाटकों का विदूषक पात्र ब्राह्मण ही है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीनकाल में ब्राह्मण सेठ, पीठमर्द, विट और विदूषक भी होते थे। इसी तरह भगवती कौशिकी भिक्षुणी होते हुए भी नायक-नायिकाओं के बीच सन्धि-विग्रहिक बनी हुई थीं। उदयन-वासवदत्ता तथा उनकी सौतों के मध्य भगवती कौशिकी का कार्य बहुत ही दक्षतापूर्ण माना जाता है।

यात्रावशाद् ग्रामवासिनो वृत्तमाह—

ग्रामवासी च सजातान्विचक्षणान् कौतूहलिकान् प्रोत्साह्य नागरकजनस्य वृत्तं वर्णयञ्श्रद्धां च जनयंस्तदेवानुकुर्वीत। गोष्ठीश्च प्रवर्तयेत्। संगत्या जनमनुरञ्जयेत्। कर्मसु च साहाय्येन चानुगृह्णीयात्। उपकारयेच्च। इति नागरकवृत्तम्॥ ३६॥

ग्रामवासी चेति। सजातान्समानजातीयान्। तत्रापि विचक्षणान्प्राज्ञान्। कौतूहलिकान्कौतुकवतः। प्रोत्साह्य कथमित्याह—वृत्तं वर्णयन्नमुष्मिन्नगरे इत्थं गोत्रपुत्राणां नागरकाणां लोकमनोहारि चेष्टितं श्रूयते, भवतामपि युक्तं वैचक्षण्यानुरूपं जीवितफलं तदनुकर्तुमिति श्रद्धां च जनयन्यात्रामपि तद्दर्शनेन गोष्ठीश्च प्रवर्तयेत्। तैः सह संगत्या जनमनुरञ्जयेत्। संगतिमैत्रीभ्यामित्यर्थः। साहाय्येनानुगृह्णीयात्। यात्रोत्सवादिषु प्रवर्तमानमुपचारयंश्च परस्परमुपचरेत्॥ ३६॥

अब ग्रामवासी नागरक के वृत्त का वर्णन करते हैं—

यदि जीविका या और किसी प्रयोजनवश नागरक देहात में रहता हो तो सजातीय, बुद्धिमान् और जादू, खेल, तमाशा जाननेवाले व्यक्तियों को रोचक घटनाएँ सुनाकर अपना श्रद्धालु बना ले और नागरक जीवन व्यतीत करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करे। उनके मनोरंजन के लिए उत्सवों और यात्राओं का आयोजन करे, अपने सम्पर्क से उन्हें प्रमुदित बनाए रखे। उनके कार्यों में सहयोग प्रदान करे और उन पर अनुग्रह करता रहे। नागरकवृत्त प्रकरण समाप्त हुआ॥ ३६॥

S R

वात्स्यायन के इस नागरकवृत्त से तत्कालीन भारत का एक सामाजिक चित्र खिंच जाता है। उस समय की जनता कितनी सौभाग्य-शालिनी रही होगी; जिसका जीवन कलात्मक विलासों और विनोदों में गुज़रता रहा। नागरकवृत्त से यह ज़ाहिर है कि उस समय की भारतीय प्रजा ऐश्वर्य, समृद्धि और पौरुष-सम्पन्न थी। सौन्दर्य और सुकुमारता की रक्षा करने में सतत जागरूक रहती थी। योग और भोग, प्रवृत्ति और निवृत्ति का सामञ्जस्य और सन्तुलन बनाए रखने में पूर्ण दक्ष और सावधान थी। उसका अपना एक जीवन-दर्शन, जीवन का दृष्टिकोण था जिससे वह इन्द्रियों की वृत्ति को पाशविकता की ओर उन्मुख नहीं होने देती थी। बाह्यपदार्थों को ही सुख का कारण नहीं मानती थी। वह आभिजात्य होने का पूर्ण गर्व रखती थी। आत्मसम्मान को सर्वोपरि समझती थी। जीवन के किसी भी क्षेत्र में असुन्दर को बरदाश्त नहीं कर सकती थी। वह अपने आभिजात्य गुणों, कलात्मक प्रवृत्तियों और आत्मसम्मान के भावों के कारण बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित करने और उजाड़ने में पूर्ण क्षम थी, समस्त विश्व उसकी विदेश-नीति के नियंत्रण में था। अपनी सुसंस्कृत योग्यता से वह उस समय के जगत् को सभ्यता की शिक्षा देती थी। कलात्मक सौन्दर्य की रचना और उसकी रक्षा करने में वह बेजोड़ थी। नागरिक सभ्यता की जननी थी। अनेक कलाओं और विद्याओं का आविष्कार कर, जन-जन में समता और सद्भाव उत्पन्न कर उसने संसार को छन्द, अलंकार और रस-राग से सम्पन्न महाकाव्य का रूप दिया था। उस महाकाव्य की कहानी आज भी शेष है और उसके साथ ही यशःशरीर से अमर हैं उसके निर्माता और गायक।

तत्र चैषां काव्यसमस्याः कलासमस्याश्चेत्युक्तम्। तत्र विशेषमाह—भवन्ति चात्र श्लोकाः—

नात्यन्तं संस्कृतेनैव नात्यन्तं देशभाषया।
कथां गोष्ठीषु कथयंल्लोके बहुमतो भवेत् ॥ ३७ ॥

नात्यन्तमिति—कश्चिदेव संस्कृतं वेत्ति देशभाषां च। कथां काव्यकलाविषयां च चर्चाम् ॥ ३७ ॥

अब गोष्ठियों में भाषा और सम्भाषण संबंधी नियमों की व्याख्या करते हैं—

सभाओं और गोष्ठियों में न तो केवल संस्कृत में ही बोला जाए और न केवल देश भाषा में। ऐसा करने से वक्ता सर्वमान्य और सर्वसम्मानित नहीं हो सकता है ॥ ३७ ॥

या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी ।
परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद्बुधः ॥ ३८ ॥

या गोष्ठीति—यदा स्वयं गोष्ठीं न प्रवर्तयेत्तदान्यप्रवर्तितां यायात् । तत्रापि या लोकविद्विष्टा लोकस्यासंमता । स्वैरविसर्पिणी—स्वातन्त्र्येण प्रवृत्ता निरङ्कुशेत्यर्थः । परहिंसात्मिका परदूषणपरा न तत्रावतरेद् बुधः । तत्र ह्यवतरणमबुधस्य दृश्यते ॥ ३८ ॥

जिस गोष्ठी में ईर्ष्यालु लोग हों और जहाँ स्वच्छन्द कार्यवाही होती हो, तथा दूसरों पर आक्षेप किए जाते हों या दूसरे को हानि पहुँचाने की कुचेष्टाएँ की जाती हों उस गोष्ठी में बुद्धिमान् आदमी को नहीं जाना चाहिए ॥ ३८ ॥

लोकचित्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैककार्यया ।
गोष्ठ्या सहचरन्विद्वांल्लोके सिद्धिं नियच्छति ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे
नागरकवृत्तं चतुर्थोऽध्यायः ॥

जो व्यक्ति ऐसी गोष्ठियों से संबंध रखता है जो जनरुचि का प्रतिनिधित्व करती हैं और जहाँ पर केवल विनोदों, मनोरंजनों का ही वातावरण रहता है—वह व्यक्ति सफलता और ख्याति प्राप्त कर सकता है ॥ ३९ ॥

वात्स्यायन के भाषा संबंधी विचार उदार एवं बहुजनहिताय हैं। वह जन समाज के बीच न तो कठोर पाण्डित्य चाहता है और न निरा गवाँरपन। उसकी भाषा-नीति मध्यम-मार्ग का अवलंबन करती है। हज़ारों वर्ष पूर्व वात्स्यायन द्वारा निर्धारित भाषानीति आज के भाषा-विवाद के लिए एक हल है। वात्स्यायन के काल में संस्कृत शिष्ट, सुशिक्षित अथवा साहित्य की भाषा रही है और प्राकृत जनभाषा रही है। संस्कृत भाषा के साथ जनभाषा प्राकृत में भी साहित्य का प्रणयन उस समय होता रहा है।

वात्स्यायन मुनि नियम करते हैं कि सभाओं और गोष्ठियों में 'आमफ़हम' भाषा का प्रयोग किया जाए जो सरल, सुबोध होने के साथ ही साहित्यिक गुणों से सम्पन्न भी हो। गोष्ठियों में भाग लेने, भाषण देने का प्रयोजन ख्याति और लोकप्रियता प्राप्त करना है। वात्स्यायन का सुझाव है कि ख्याति और लोकप्रियता तभी प्राप्त हो सकती है जब जन-मानस का प्रतिनिधित्व किया जाए। उसकी अवहेलना करने से ख्याति और सफलता दूर चली जाती है।

उस समय के साहित्यिकों, साहित्यिक गोष्ठियों का स्पष्ट चित्र इस सूत्र द्वारा खींचा गया है। निःसंदेह उस समय भी लोग भाषासंबंधी दुराग्रह अपनाते रहे होंगे, कुछ अपने पाण्डित्य का प्रौढ़ प्रदर्शन करते रहे होंगे और कुछ साधारणीकरण के छिछले सिद्धान्त को लेकर भाषा और साहित्य का स्वरूप बिगाड़ते रहे होंगे। उक्त दोनों प्रकार के वर्ग वात्स्यायन के लिए अवाञ्छनीय थे। वात्स्यायन जनमानस का पारखी था, वह समाज का प्रतिनिधित्व करना जानता था, उसकी दृष्टि व्यापक थी और भावनाएँ उदार थीं। वह सबके उत्थान का समर्थक था, कोरी दिमाग़ी ऐयाशी या कोरे आदर्श को वह हेय समझता था। इसलिए उसे अपनी भाषा संबंधी नीति स्पष्ट करनी पड़ी।

ऐसा मालूम होता है कि आजकल की भाँति उस समय भी संस्थाओं, सभाओं में अवाञ्छनीय तत्त्वों का प्रवेश हो जाता रहा है। सभाओं और गोष्ठियों में ऐसे कार्य किए जाते थे, जिन्हें सम्भ्रान्त, बुद्धिमान् और निष्पक्ष वर्ग उचित नहीं समझता था। गोष्ठियों में सत्तारूढ़ दल दूसरों को नीचा दिखाने, दूसरों की निन्दा करने तथा हानि पहुँचाने तक का प्रयास करता था। वात्स्यायन ऐसी दलबन्दी के दलदल में फँसी हुई गोष्ठियों में जाने से बुद्धिमानों को रोकता है।

वह सुझाव रखता है कि गोष्ठियों में भाग लेने का मुख्य प्रयोजन लोकप्रियता और ख्याति प्राप्त करने के साथ ही मनोरंजन करना है। फिर ऐसी गोष्ठियों में जाने से फायदा क्या जहाँ कीचड़ उछाला जाए, पगड़ी उछाली जाए और प्रतिष्ठा को हानि पहुँचायी जाए। बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह ऐसी गोष्ठियों का सदस्य बने या उनके उत्सवों में भाग ले जो लोकचित्तानुवर्तिनी हों। जहाँ हृदय का बोझ उतार कर मन और मस्तिष्क के लिए बौद्धिक खूराक प्राप्त की जा सके। आनन्दमय, सौहार्दमय, और स्नेहमय वातावरण हो। ऐसे वातावरण में सम्पन्न हर क्रिया, हर विचार और भावना फलवती हो सकती है। साथ ही सफलता और ख्याति भी अनुगमन करती है।

कया सह चरेदित्याह—लोकचित्तेति—लोकचित्तानुरञ्जनं क्रीडा च फलं गोष्ठ्याः। सिद्धिं नियच्छति प्राप्नोति। लोकसिद्धो भवति किं पुनः स्त्रीष्वित्यर्थः। स्वयं गोष्ठीप्रवर्तनेऽप्ययमेव विधिः॥ ३९॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरह-कातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां साधारणे प्रथमेऽधिकरणे नागरकवृत्तं चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ नायकसहायदूतकर्मविमर्शनामकः पञ्चमोऽध्यायः

गार्हस्थ्यमधिगम्येति ससहायस्योपक्रमा इति दूतानां संप्रेषणमित्युक्तम् । तत्र को नायकः, कया नायिकया गार्हस्थ्यमधिगम्य नागरकवृत्तं वर्तेत, कैश्च सहायैः, किं च दूतस्य कर्मेति तेषां विमर्शो निरूपणमिति 'नायकसहायदूतकर्मविमर्श' उच्यते । 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषनिर्देशान्नायकयोरित्यर्थः । दूतकर्मेति दूती-दूतयोरित्यर्थः ।

तत्र बहुवक्तव्यत्वात्प्राङ्नायिका फलतोऽन्यकारणतश्च विमृश्यते—

कामश्चतुर्षु वर्णेषु सवर्णतः शास्त्रतश्चानन्यपूर्वायां प्रयुज्यमानः पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च भवति ॥ १ ॥

कामश्चतुर्ष्विति । सवर्णत इति यथा ब्राह्मणेन ब्राह्मण्याम्, यथा च शूद्रेण शूद्रायाम् । शास्त्रत इति—शास्त्रोक्तेन वरणादिना विधानेन । अनन्यपूर्वायां भार्यात्वेनाधिगतायाम् । प्रयुज्यमानः—प्रवर्त्यमानः । पुत्रीय औरसस्य पुत्रस्य निमित्तम् । 'पुत्राच्छ च' इति छप्रत्ययः । यथोक्तम्—'स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु सुतमुत्पादयेद् द्विजः । तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्राथमकल्पिकम् ॥' इति । तत्र स्वक्षेत्रं सवर्णः । यशस्यो यशोनिमित्तम् । 'गोद्वयचः—' इत्यादिना यत् । अत्र च यद्यपि कामो न संयोगस्तथापि स्त्रीपुंसयोर्योगे कामशब्द उपचरितः । तत्पूर्वकत्वात्कामस्य । इति भवति तत्पर्यायः । लौकिकश्च लोके विदितः । तदबाह्य इत्यर्थः ॥ १ ॥

अब नायक और नायिका के सहायक दूतों और दूतियों के कर्तव्य का निरूपण करते हैं । सर्वप्रथम सजातीय स्त्री से शास्त्रानुकूल विवाह की आवश्य-कता पर प्रकाश डाला जाता है—

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में से अपनी जाति की कुमारी कन्या से शास्त्र-विधि के अनुसार विवाह करे । उसमें काम की प्रवृत्ति करने से जो पुत्र पैदा होता है, उससे यश बढ़ता है और लोकधर्म का निर्वाह होता है ॥ १ ॥

वात्स्यायन के इस कथन से दो सिद्धान्त निकलते हैं—एक तो सजातीय कन्या से शास्त्रानुकूल विवाह करना और दूसरे सन्तान पैदाकर लोकधर्म निभाना । वात्स्यायन वर्णव्यवस्था का समर्थन क्यों करता है—यह एक प्रश्न किया जा सकता है । विवाह सजातीय ही होना चाहिए वात्स्यायन का यह आग्रह निराधार नहीं है इसलिए कि विवाहपद्धति के साथ जन्म का

अविच्छेद्य सम्बन्ध है। इसीलिए भारतीय वर्णव्यवस्था में विवाह पद्धति पर विशेष नियंत्रण है। जन्मना प्राप्त अधिकारों को विकसित और परिपक्व बनाने के लिए समुचित शिक्षा-दीक्षा एवं अनुकूल वातावरण की आवश्यकता तो रहती है किन्तु यदि हम जन्म से उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते हैं तो वंशगत परंपरा का प्रभाव एवं पारिवारिक वातावरण का प्रभाव हम पर अधिक नहीं पड़ सकता। वैज्ञानिकगण अभी तक इस विवाद का समाधान नहीं कर पाए हैं, कि हमारे जीवन पर पारिपार्श्विक वातावरण का प्रभाव अधिक पड़ता है या जन्मगत गुणों का। कुछ भी हो इससे तो इनकार नहीं किया जा सकता कि वंश-परंपरागत गुणों, अवगुणों का बहुत कुछ प्रभाव हम पर पड़ता है। पाश्चात्यदेशों में भी लोग वंशानुक्रम विज्ञान का समर्थन करते देखे जाते हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि की भूमिका में इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध कवि डब्ल्यू० पी० ईट्स ने लिखा है—

'प्राच्य देशों में आप लोग यथार्थ में ही वंश-मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखना जानते हैं। उस दिन मुझे एक म्यूज़ियम के क्यूरेटर ने एक कृष्णवर्ण व्यक्ति को दिखलाते हुए कहा कि वह व्यक्ति जो चीन देश की प्रदर्शनीय वस्तुओं को सजा रहा है मिकैडों के एक प्रिय कलाकार वंश का चौदहवाँ व्यक्ति है, उक्त परिवार वंशपरंपरा से उसी कार्य में नियुक्त है।' प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक जे० आर्थर टाम्सन ने भी वंशानुक्रम विज्ञान से संबंध रखने वाली समस्याओं को अन्य वैज्ञानिक समस्याओं से मनुष्य समाज के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया है। यदि सामाजिक प्रयोजन के अतिरिक्त विशुद्ध ज्ञान की दृष्टि से भी देखा जाए तो वंशानुक्रम विज्ञान से नेतृत्व की अनेक रहस्यमयी और चमत्कारी बातों का उद्घाटन हो जाए।

वात्स्यायन का दृष्टिकोण यहाँ सर्वथा न्याय-संगत प्रतीत होता है। अपनी विवाहिता पत्नी से ही कामाभिलाषा पूरी करना, उससे सन्तान पैदा करना लोक धर्म, लोकमर्यादा के अनुकूल है।

तद्विपरीत उत्तमवर्णासु परपरिगृहीतासु च। प्रतिषिद्धोऽवरवर्णास्वनिरवसितासु। वेश्यासु पुनर्भूषु च न शिष्टो न प्रतिषिद्धः। सुखार्थत्वात्॥ २॥

उत्तमवर्णास्विति—क्षत्रियेण ब्राह्मण्याम्, वैश्येन ब्राह्मणीक्षत्रिययोः, शूद्रेण ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्यास्वनन्यपूर्वास्वपि प्रयुज्यमानः। परपरिगृहीतासु चान्योढासु सवर्णास्वपि कामो विपरीतः, न पुत्रीयः, न यशस्यः, न लौकिकश्च। एवंविधः सुखार्थोऽपि न, परपरिगृहीतास्वेकान्तेन धर्मविरोधित्वात्।

अवरवर्णास्विति—ब्राह्मणस्यावरवर्णाः क्षत्रियावैश्याशूद्राः। क्षत्रियस्य वैश्याशूद्रे। वैश्यस्य शूद्रा। शूद्र एकजातिः। तस्य स्वजात्यपेक्षयावरवर्णाः। तत्रापि यद्यनिरवसिताः। पात्राद्बहिष्कृता इत्यर्थः। सन्त्येव हि काश्चित्क्षत्रियादयो याभिर्भुक्तं पात्रं न संस्कारमात्रेण शुद्धयति। ता एवंविधा बाह्याः। तथा चोक्तम्—'शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते। ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः॥' इति। तासु च बाह्यास्वपि।

पुनर्भूष्विति या अन्यपूर्वाः क्षतयोनयो विधवा इन्द्रियदौर्बल्यादन्यस्य पुनर्भवन्ति तासु स्वीकृतासु वेश्यासु च सामान्यस्त्रीषु प्रयुज्यमानो न शिष्टो न विहितः, तत्र सवर्णामपरिगृह्य तत्परिग्रहस्यानभिहितत्वात्, परिगृह्यापि शूद्रा न प्रतिषिद्धत्वात् परिगृह्याप्रतिषिद्धः। सुखाधिकृता तदानीं सुखार्थैव प्रवृत्तिः, न पुत्रार्था। तत्रावरवर्णास्तदा तासु ये पुत्रा न तेषामौरसत्वम् पुत्रकार्याकरणात्। पुनर्भूषु वेश्यासु च पुत्रार्थैव नास्तीति द्विविधं फलम् ॥ २ ॥

अब वर्णान्तर में विवाह-संबंधी विधि और निषेध का प्रतिपादन करते हैं—

अपने से उच्च वर्णवाली अथवा पराई स्त्रियों में प्रवृत्त कामेच्छा शास्त्रों के विपरीत है। इसी तरह अपने से निम्नवर्ण की स्त्रियों में भी काम वर्जित है। किन्तु वेश्याओं और पुनर्भू[1] स्त्रियों में काम-प्रवृत्ति निषिद्ध नहीं है। क्योंकि उनके साथ जो काम-संबंध स्थापित किया जाता है वह ऐन्द्रियिक सुख के लिए ही न कि धार्मिक दृष्टि से ॥ २ ॥

---

१. टीकाकार यशोधर ने पुनर्भूः का विधवा अर्थ करके भ्रम उत्पन्न कर दिया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में पुनर्भू स्त्री के संबंध में लिखा है—

अक्षता चाक्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः।
स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत् ॥

विवाह-प्रकरण श्लोक ६७

इस पर मिताक्षराकार लिखते हैं—

परपूर्वाः स्त्रियस्त्वन्याः सप्त प्रोक्ता यथाक्रमम्।
पुनर्भूस्त्रिविधा तासां स्वैरिणीच च तुर्विधा॥
कन्यैवाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहणदूषिता।
पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनः संस्कारकर्मणा॥

तात्पर्य यह है कि पुनर्भू स्त्रियाँ दो प्रकार होती हैं—पहली तो वह जो विवाह से पूर्व ही किसी से संबंध स्थापित कर लेती हैं और दूसरी वह जो विवाह हो जाने के बाद किसी अन्य पुरुष से संबंध जोड़ लेती हैं। वात्स्यायन ने यहाँ दोनों प्रकार की पुनर्भू स्त्रियों को स्वीकार किया है।

वात्स्यायन का मुख्य अभिप्राय समाज के अभ्युत्थान और सभ्यता के विकास से है। सभ्यताओं का विकास समाज के श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा ही हुआ करता है। जर्मनी के तीन महाप्राज्ञ पंडित—डा० अरवीन् बाबर, डा० अयेजिन् फिशर् और डा० फ्रिट्जलेंज ने मिलकर विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं प्रामाणिक ग्रंथ 'ह्युमन हेरेडिटी' लिखा है। इस ग्रंथ में उन्होंने यह स्वीकार किया है कि 'अनियंत्रित विवाह-प्रथा के कारण एवं समाज की उच्च श्रेणियों में निम्न श्रेणी की अपेक्षा वंशवृद्धि कम होने से आधुनिक सभ्य-समाजों का अधःपतन प्रारंभ हो गया है।' आधुनिक अधिकांश शिक्षित व्यक्तियों में यह धारणा बद्धमूल होती जा रही है कि 'विवाह एक व्यक्तिगत व्यापार है, मन का सौदा है।' रूस जैसे साम्यवादी और प्रगतिशील देश में राजनैतिक और आर्थिक विषयों में समाज का नियंत्रण तो स्वीकार किया जाता है किन्तु विवाह के विषय में कोई नियंत्रण मान्य नहीं है। आश्चर्य की बात है कि हम पालतू पशुओं की नस्ल सुधारने के लिए तो प्रयत्नशील हैं किन्तु मानव जाति को दोगली बनती हुई देखकर किसी सुधार की आवश्यकता नहीं समझ रहे हैं।

वात्स्यायन मुनि दोग़ली जाति पैदा करने का निषेध करते हैं, इसलिए यह समान जाति में ही विवाह करने का समर्थन करते हैं। आधुनिक विज्ञान अब यह स्वीकार करने लगा है कि दो विजातीय पौधों अथवा जीवों के सम्मिश्रण से एक तीसरे प्रकार का पौधा या जीव पैदा होता है। आम, गुलाब के पौधों की कलमें लगाकर यह सिद्ध किया जा चुका है कि आम के फल और गुलाब के फूलों के आकार और रंग एक तीसरे प्रकार के हो जाते हैं। इस तरह का उत्पन्न जीव दोग़ला कहा जाता है या इसे मध्यवर्ती कह सकते हैं। हमारे सामने संसार के अनेक देशों के प्रमाण हैं। नीग्रो जाति के काले मनुष्यों के साथ जब श्वेतांगों का मिश्रण हुआ है तो एक तीसरी जाति पैदा हुई जिसे 'मल्ले टोज़' कहते हैं। इसी तरह भारत की एंग्लो-इण्डियन जाति है।

वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा वंश-परिवर्तन के रहस्य का पता लगा लिया है। वंश परिवर्तन तीन कारणों से होता है—

१—एक ही वंश-लक्षण बीज होने पर भी पारिपार्श्विक वातावरण के कारण।

२—वंश-सूत्र के विभिन्न प्रकार से सम्मिश्रित होने के कारण।

३—कभी-कभी वंश लक्षण बीज में ही कुछ अज्ञात कारणों से।

उपर्युक्त इन्हीं तीन कारणों से एक नई जाति पैदा हो जाती है।

इस प्रकार की जाति को हमारे धर्मशास्त्रों में 'संकरवर्ण' कहा गया है। गीता में भी संकर वर्ण को नरक[1] का कारण बताया गया है। इसलिए वात्स्यायन ने समाज के उत्कर्ष, सभ्यता के विकास और जाति धर्म के क्षेपकों को ध्यान में रखते हुए सजातीय विवाह शास्त्रानुकूल करने का सुझाव दिया है। सजातीय से तात्पर्य समान वर्ण ही समझना चाहिए मानव जाति मात्र नहीं। समानवर्ण होते हुए भी विवाह भिन्न गोत्र में किए जाने की भारतीय परंपरा बहुत पुरानी है। ऋग्वेद काल में भी कुमारियाँ विवाह से पूर्व अपने समान वर्ण, गुण, स्वभाववाले तरुण से पहले प्रेम किया करती थीं फिर विवाह-सूत्र में बँधती थीं—

अन्यमूषु त्वं यम्यन्य उ त्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाऽधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्।[2]

हे ब्रह्मचारिणी, तू अपने से अन्य गोत्र के पति की कामना कर और वह भी तुझे हृदय से प्यार करे। जैसे लता विटप से लिपट जाती है उसी प्रकार तू भी उसका आलिंगन कर उसे आकृष्ट कर और वह भी तुझे प्रमुदित करे, तू उससे अपने हृदय के मंगलकारी मनोभावों को प्रकट कर।

तत्र नायिकास्तिस्रः कन्या पुनर्भूर्वेश्या च इति ॥ ३ ॥

तत्र तस्मिन्फलविभागे तिस्रो नायिकाः कन्या, पुनर्भूः, वेश्या चेति। तत्र कन्या द्विविधा—पुत्रफला, सुखफला चेति। पूर्वा सवर्णा श्रेष्ठा। द्वितीयाधमवर्णा न्यूना। तस्या अपि न्यूना पुनर्भूः। स्वीकारेऽप्यन्यपूर्वत्वात् अस्या वृत्तं भार्याधिकारिके वक्ष्यति। या त्वक्षतयोनिः पुनरुह्यते सान्यांश एव। यथोक्तम्—'पुनरक्षतयोनित्वादुह्यते या यथाविधि। सा पुनर्भूस्ततस्तस्यां पौनर्भव उदाहृतः॥' ततोऽपि वेश्या न्यूना। सामान्यत्वात् ॥ ३ ॥

तीन प्रकार की नायिकाएँ—

कन्या, पुनर्भू और वेश्या—तीन प्रकार की नायिकाएँ होती हैं ॥ ३ ॥

वात्स्यायन ने तीन प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख करके नायक को उनसे प्रेम-संबंध जोड़ने का निर्देश किया है। पहली नायिका कन्या सर्वश्रेष्ठ

---

१. स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः।
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः, कुलधर्माश्च शाश्वताः॥
गीता—प्रथम अध्याय ४१-४३

२. ऋग्वेद १०।१०।१४।

है। पुनर्भू उससे निकृष्ट और कन्या तथा पुनर्भू से निकृष्ट वेश्या नायिका है। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वात्स्यायन ने पुनर्भू और वेश्या की पाँत में कन्या को बैठाकर उसे नायिका क्यों कहा है? अविवाहित, कुमारी कन्या कही जाती है, विवाह से पूर्व ही किसी पुरुष से रति-संबंध जोड़ने वाली कुमारी को पुनर्भू और बाज़ारू स्त्री—वारवनिता को वेश्या कहते हैं।

महाभारत में कन्या के लक्षण बतलाते हुए लिखा गया है—

यस्मात् कामयते सर्वान् कमेर्धातोश्च भाविनि !
तस्मात् कन्येह सुश्रोणि ! स्वतन्त्रा वरवर्णिनि !

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वात्स्यायन के युग में भी कुमारी कन्याओं को अनुकूल वर चुनने की पूरी स्वतंत्रता थी। सभी तरुण उम्मीदवार बनकर कन्या को प्राप्त करने की कामना रखते थे। वात्स्यायन का अभिप्राय कदाचित् विवाह-संबंध स्थिर होने से पूर्व कन्या और वर को परस्पर प्रेम संबंध द्वारा एक दूसरे से परिचित कराना ही है। उदात्त गुणसम्पन्न नायक के लिए कन्या नायिका और उससे हीन नायक के लिए पुनर्भू और उससे भी हीन नायक के लिए वेश्या नायिका निर्धारित करने का प्रयोजन सार्थक है। पहले परस्पर प्रीति उत्पन्न करना, विश्वास पैदा करना और फिर विवाह बन्धन में बँधना वात्स्यायन को अभीष्ट रहा है। ऋग्वेद भी इसी का समर्थन करता है। ऋग्वेद की एक ब्रह्मचारिणी कुमारी अपने पतिविषयक भावों को बड़ी स्पष्टता से व्यक्त करती हुई कहती है—

यमस्य मा यम्यं काम आगन् त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥[1]

—मुझमें यह कामना उत्पन्न हुई है कि मैं अपने समान वर्ण गुण वाले पति का वरण करूँ और उसके साथ शयन करूँ। उसे पति मानकर उसकी पत्नी बनकर रहूँ। अपना तन, मन उसे अर्पित कर दूँ। हम दोनों गार्हस्थ्य जीवन की गाड़ी के दो चक्र बन कर उसे चलाएँ।

ऐसी स्थिति में कन्या को नायिका बनाना विवाह से पूर्व नायक से प्रीति जोड़ना परंपरागत उचित और न्यायसंगत ही है।

कन्या को अपनी इस स्वच्छन्दवृत्ति के कारण कभी-कभी धोखा भी खाना पड़ जाता रहा होगा अथवा स्वच्छन्दवृत्ति से प्रेरित उद्दाम वासनाएँ धर्मार्थ को भूलकर केवल काम-पिपासा-शान्ति के लिए ही विवाह से पूर्व किसी से सम्पर्क स्थापित करने को विवश बनाती रही होंगी जो शाश्वत सत्य है।

---

१. ऋग्वेद १०।१०।७।

ऐसी ही कन्याओं को पुनर्भू संज्ञा प्रदान की गई है। इस प्रकार की कन्याओं के लिए भ्रमरवृत्ति के छिछले नायक भी मिलते रहते हैं, इसलिए चटोरे नायक और मनचली कन्याओं के निमित्त वात्स्यायन को यह विधान बनाना पड़ा कि पुनर्भू भी नायिका है, उससे उसके सदृश नायक प्रेम जोड़कर विवाह कर सकते हैं।

अब रही वेश्या नायिका। कामसूत्रकार ने यहाँ पर 'गणिका' शब्द न रखकर 'वेश्या' शब्द रखा है। इससे एक सामाजिक उलझन दूर हो जाती है। वेश्या और गणिका में द्यावा-पृथिवी का अन्तर होता है। कामसूत्र के साक्ष्य से ही यह जाना जाता है कि गणिकाएँ यद्यपि वारांगनाएँ ही हुआ करती थीं किन्तु साधारण वेश्याओं से कहीं अधिक वे सम्मानित और गुण-शील सम्पन्न हुआ करती थीं। वेश्याओं में जो सर्वाधिक सुन्दरी, गुणवती, शीलवती हुआ करती थी उसी को गणिका पद प्रदान किया जाता था। राजा लोग भी उसका सम्मान करते थे, उठकर अभ्युत्थान करते थे—

> अभिरभ्युच्छ्रिता वेश्या शीलरूपगुणान्विता।
> लभते गणिकाशब्दं स्थानं च जनसंसदि॥
> पूजिता च सदा राज्ञा गुणवद्भिश्च संस्तुता।
> प्रार्थनीयाभिगम्या च लक्ष्यभूता च जायते॥

ललितविस्तर में 'शास्त्रविधिकुशला गणिका यथैव' कहकर राजकुमारी को गणिका के समान शास्त्रज्ञा बताया गया है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में लिखा है कि प्राचीनकाल में बहुत-सी गणिकाएँ और राजकुमारियाँ बहुत उत्तम कवि हो गई हैं। इन गणिकाओं की पुत्रियों को नागरकों के पुत्रों के साथ पढ़ने का अधिकार था। गणिका वस्तुतः समस्त गणराज्य की सम्पत्ति और शोभा मानी जाती थी। उस पर समस्त समाज गर्व करता था। लिच्छवी गणराज्य की गणिका अम्बपाली एवं मृच्छकटिक की गणिका वसन्तसेना अपने-अपने समय में राज्य और जनता के अभिमान की वस्तु समझी जाती रही हैं।

वात्स्यायन ने यहाँ पर नायक की पात्रता के अनुकूल वेश्या नायिका का विधान बनाया है। तात्पर्य यह कि अधम नायक के लिए अधम नायिका। संसार के इतिहास में वेश्याओं की स्थिति और उनकी प्राचीनता स्वीकार की गयी है। ऋग्वेद से लेकर समस्त परवर्ती साहित्य में वेश्याओं का उल्लेख मिलता है। यही नहीं, वेश्याओं से संबंधित पृथक् ग्रन्थों के निर्माण भी हुए हैं। बाण ने कादम्बरी में वेश्याओं के चौदह कुलों का उल्लेख किया है।

भरत ने नाट्यशास्त्र में नन्दिकेश्वर ने अभिनय-दर्पण में वेश्याओं को 'अभिनेत्री' लिखा है।

'वेश्या' नाम सुनकर यह कल्पना न कर लेनी चाहिए कि सामाजिक, व्यावहारिक और कर्मसंबंधी बन्धनों को कुचल कर फेंक देने वाली स्त्री। वेश्या एक असाधारण स्त्री है जिसका पालन-पोषण; शिक्षण, प्रशिक्षण असाधारण ढंग से होता है। वेश्याओं को ऐसी सामाजिक शिक्षा दी जाती है, जिसमें शारीरिक, मानसिक विकास की संभावनाएँ रहती हैं और अन्य स्त्रियाँ उस प्रकार की शिक्षा से वंचित रहती हैं। पुरातनकाल से ही वेश्याएँ शिक्षिता और दक्ष होती आयी हैं। उनकी योग्यता से अभिजात कुल की कुमारियाँ लाभ उठाती थीं। उन्हें समाज का एक विशिष्ट अंग माना जाता था। ऋग्वेद में वेश्या का एक नाम 'वेशस्करी' है, जिसका अर्थ विशेषरूप से श्रृंगार करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री होता है। तंत्र ग्रन्थों में वेश्याओं का अत्यधिक उल्लेख मिलता है। बौद्धसाहित्य भी वेश्याओं के गुणानुवाद से भरा हुआ है। पुराणों, काव्यों और जैन ग्रन्थों में वेश्याओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। वेश्याएँ तांत्रिकों की गुप्तसाधना की साधन थीं, गौतम बुद्ध जब तक परिव्राजक नहीं हुए थे, उनके महल में पीनपयोधरा, कमलनयनी वेश्याएँ चुहल करती डोलती थीं। जब गौतम पर वैराग्य चढ़ने लगा, वे उदास रहने लगे तो उनके पिता ने गौतम के मनबहलाव के लिए ऐसी वेश्याएँ नियुक्त की थीं जिनकी कमर पतली थी, नितम्ब बोझिल थे, खिले हुए कमल के समान नेत्र थे। सभी वेश्याएँ रूपगर्विता थीं। भास, कालिदास, विशाखदत्त, माघ, दण्डी, शूद्रक, बाण आदि कवियों ने अपने ग्रन्थों में वेश्याओं के रोचक वर्णन किए हैं।

स्कन्दपुराण में पिंगला और कमलावती नाम की वेश्याओं के वर्णन बड़े उदात्त हैं। राजतरंगिणी में कमला नाम की वेश्या का वर्णन है जिसका प्रेम कश्मीराधिप जयापीड़ से था। हंसी और नागलता नाम की दो ऐसी वेश्याएँ थीं जिन पर कश्मीर महाराज चन्द्रवर्मा इतने आसक्त थे कि अपनी रानियों, पटरानियों से अधिक सम्मान उन वेश्याओं को दिया करते थे। चित्तौड़ के महाराणा उदयसिंह की रखेल वेश्या 'वीरा' जितनी सुन्दरी, गुणवती थी उतनी ही वीरांगना भी थी, उसने महाराणा के पक्ष में युद्ध भी किए हैं। हमीररासो में चन्द्रकला पातर का रोचक वर्णन है, जिसके सामने अलाउद्दीन खिलजी को मुंह की खानी पड़ी थी। ओड़छा नरेश की वेश्या प्रवीणराय में इतना अलौकिक सौन्दर्य और शील था कि अकबर जैसे संयमी बादशाह का भी संयम टूट गया था।

इससे ज़ाहिर है कि वेश्या समाज का एक विशिष्ट अंग है, उसकी आवश्यकता और उपयोगिता दुनिया के हर मानव-समाज ने स्वीकार की है। साथ ही दुनिया के अनेक शासनों ने वेश्यावृत्ति के निरोध के लिए असफल चेष्टाएँ भी की हैं। कौटलीय अर्थशास्त्र में गणिकाध्यक्ष प्रकरण में वेश्याओं के लिए क़ानून बनाया गया है।

समाज को परिष्कृत और संयत बनाए रखने के लिए शास्त्रकारों ने वेश्यावृत्ति को मान्यता दी है, उनकी यह व्यवस्था एकदेशीय है, सार्वभौम नहीं। मनोविज्ञान एवं समाजविज्ञान पर आधारित यह नियम उन व्यक्तियों के लिए है, जिनकी चंचल मनोवृत्ति से समाज के शील और मर्यादा के भंग होने का खतरा हर समय बना रहता है। इसी दृष्टिकोण को सामने रख कर वात्स्यायन ने कामसूत्र में आगे चलकर वेश्याओं से संबंधित एक अलग अधिकरण की ही रचना की है।

कामसूत्र के अतिरिक्त साहित्य में विविध प्रकार की नायिकाओं के लक्षण साहित्य के आचार्यों ने बतलाए हैं—

१ स्वकीया २ परकीया ३ सामान्या ४ पद्मिनी ५ चित्रिणी ६ शंखिनी ७ हस्तिनी ८ ज्ञातयौवना ९ मध्यमा १० प्रौढ़ा ११ मुग्धा १२ नवलअनंग-मुग्धा १३ लज्जाप्रिया मुग्धा १४ आरूढ़यौवना मुग्धा १५ प्रगल्भवचना मध्या १६ प्रादुर्भूतमनोभवा मध्या १७ सुरतविचित्रा मध्या १८ समस्तरसकोविदा प्रौढ़ा १९ विचित्रविभ्रमा प्रौढ़ा २० आक्रमिता प्रौढ़ा २१ लुब्धापत्ति प्रौढ़ा २२ धीरा २३ धीराधीरा २४ स्वाधीनपतिका २५ उत्कण्ठिता २६ कलहांतरिता २७ खंडिता २८ प्रोषितपतिका २९ स्वयंदूतिका ३० समस्या बन्धु ३१ लक्षिता ३२ कुलटा ३३ मुदिता ३४ अनुशयना ३५ अनूढा ३६ लघुमानवती ३७ मध्य-मानवती ३८ गुरुमानवती ३९ अन्यसंभोगदुःखिनी ४० गर्विता ४१ रूपगर्विता ४२ प्रेमगर्विता ४३ कामगर्विता ४४ उत्तमा ४५ मध्यमा ४६ दिव्या ४७ दिव्यादिव्या ४८ अदिव्या ४९ क्रियाविदग्धा ५० वचनविदग्धा ५१ कनिष्ठा।

अन्यस्मात्कारणाद्विमर्शमाह—

अन्यकारणवशात्परपरिगृहीतापि पाक्षिकी चतुर्थीति गोणिकापुत्रः ॥ ४ ॥

अन्यकारणवशादिति—पुत्रात्सुखाच्च यदन्यत्कारणं तद्वशात्, पाक्षिकीति—यदा कारणान्तरं तदा तस्मिन्पक्षे भवतीति पाक्षिकी। अन्यदा तु नैवेति बाभ्रव्यमतमनुसृत्याह ॥ ४ ॥

अब विभिन्न आचार्यों द्वारा बताई गई नायिकाओं का उल्लेख करते हैं—

अनेक कारणों से पराई स्त्री भी चौथी नायिका बनाई जा सकती है ॥४॥

गोणिकापुत्रः पारदारिकं पृथक्प्रोवाचेत्युक्तम् । तत्र विषयस्तदर्थमाह—

स यदा मन्यते स्वैरिणीयम् ॥ ५ ॥

स इति नायकः । मन्यतेऽधिगच्छेत्स्वैरिणीयम् । स्वैरिणी—स्वतन्त्रा ॥ ५ ॥

जिन कारणों से पराई स्त्री नायिका बनाई जा सकती है, उनका निर्देश करते हैं—

नायक जब यह समझ ले कि वह पराई स्त्री पतिव्रता नहीं है ॥५॥

तदेव दर्शयति—

अन्यतोऽपि बहुशो व्यवसितचारित्रा तस्यां वेश्यायामिव गमनमुत्तमवर्णिन्यामपि न धर्मपीडां करिष्यति पुनर्भूरियम् ॥६॥

अन्यतोऽपीति—यथा मामभियुञ्जाना शीलं खण्डयति तथान्येष्वपि, बहून् वारान् व्यवसितचारित्रा खण्डितशीला ततश्च वेश्यातुल्या । तस्यां वेश्यायामिव । 'पुनर्भ्वामिव' इत्यनाम्नायः पाठः । यत एकस्माद् द्वितीयं प्राप्ता पुनर्भूः सा च न बहुशः खण्डितचारित्रेति न समानो दृष्टान्तः ।

उत्तमवर्णिन्यामिति—किमसवर्णाधमवर्णयोरेवं वर्ण्यते तत्रापि न दोषः । यथोक्तम्—'जालकार्मुकवस्त्रावीन्दद्यादात्मविशुद्धये । चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हित्वा व्यवस्थिताः ॥' इति । अस्यार्थः—जालं जयधर्मभुवं ब्राह्मणीं दद्यात् । क्षत्रियां कार्मुकम् । वैश्यां वस्त्रम् । शूद्रामविमिति । यत्र हि सापि परिफल्गुदोषा तत्राभिगमनं न कस्यापि धर्मोपघाते स्यादित्याह—गमनमपि कारणवशात् क्रियमाणं न धर्मपीडां करिष्यति अधर्मस्याभावात् ॥ ६ ॥

स्वैरिणी पराई स्त्री से नाजायज़ सम्बन्ध स्थापित करने के औचित्य बतलाते हैं—

क्योंकि उसका चरित्र पहले से ही अनेक लोगों द्वारा भ्रष्ट किया जा चुका है । इसलिए कदाचित् वह उत्तम वर्ण की भी हो तब भी उसके साथ अभिगमन करना वेश्या के अभिगमन के समान धर्म विरुद्ध न होगा ॥६॥

पुनर्भूरियं कथमित्याह—

अन्यपूर्वावरुद्धा नात्र शङ्कास्ति ॥ ७ ॥

अन्यः पूर्वो यस्याः सेयं क्षतयोनिरनेनावरुद्धा संगृहीता नात्र शङ्कास्ति । गमने नाधर्मः स्यादिति । अनुत्तमवर्णिनीत्वात् । तत्र यद्यपि धर्मस्य पीडा नास्ति आशङ्का च, तथापि सुखं निमित्तीकृत्य न प्रवर्तेत निषिद्धत्वात् । किंतु वक्ष्यमाणमेव कारणं तेन विषयविशुद्ध्यर्थमिदमादावुक्तम् । यथोक्तम्—'विशुद्धि

विषयस्यादौ कारणानि च तत्त्वतः । प्रसमीक्ष्य प्रवर्तेत परस्त्रीषु न भावतः ॥'
इति ॥ ७ ॥

वह स्त्री (पुनर्भूरियम्) पहले से ही दूसरों से सम्बन्ध जोड़े हुए है, इसलिए उससे संबंध स्थापित करने में किसी प्रकार की शङ्का न करनी चाहिये ॥७॥

कारणान्याह—

पतिं वा महान्तमीश्वरमस्मदमित्रसंसृष्टमियमवगृह्य प्रभुत्वेन चरति । सा मया संसृष्टा स्नेहादेनं व्यावर्तयिष्यति ॥ ८ ॥

पतिं वा महान्तमिति । अस्मदमित्रेण जातसख्यं पतिं तस्य शत्रोर्महत्त्वा-दैश्वर्यापकारसामर्थ्यं वेत्युभयमधिकृतं वेदितव्यम् (?) । अवगृह्य प्रभुत्वेन चरति—अवष्टम्य स्वामिनं व्यवहरति । सा मया संसृष्टा स्नेहात्संयोगात्प्रवृद्धस्नेहात्तस्मा-देनं व्यावर्तयिष्यति । अस्मदमित्रादपकर्तुकामात्पतिं प्रभवन्ती निवर्तयिष्यति ततश्च विशिष्टभावो मे भविष्यति । अन्यथा महान्तमीश्वरमाश्रितो मामेवाकृतपुरुषार्थं हनिष्यति ॥ ८ ॥

यदि उसका पति समृद्धि और प्रतिष्ठा-सम्पन्न है, तथा मेरे शत्रु से उसका सम्बन्ध है तो उस स्त्री से मेरा सम्बन्ध हो जाने पर वह मेरे मोहवश अपने पति का मेरे शत्रु से सम्बन्ध विच्छेद करा देगी ॥८॥

विरसं वा मयि शक्तमपकर्तुकामं च प्रकृतिमापादयिष्यति ॥

विरसं वेति—कार्यवशान्मयि विरक्तं पतिं शक्तमप्रतिविधेयमपकर्तुकामं कदाह-मस्यापकरिष्यामीति बद्धानुशयं प्रकृतिमापादयिष्यति । प्रभवन्तीति मया संसृष्टा पूर्वावस्थं स्वभावं नेष्यति ॥ ९ ॥

अथवा जो व्यक्ति पहले मेरा मित्र रहा हो और अब किसी कारण से शत्रु बनकर मुझे हानि पहुँचाना चाहता हो तो वह संबंधित स्त्री उसे मेरा पूर्ववत् मित्र बना देगी । यदि मित्र न बना सकेगी तो हानि तो पहुँचाने ही न देगी ॥९॥

तया वा मित्रीकृतेन मित्रकार्यममित्रप्रतीघातमन्यद्वा दुष्प्रतिपादकं कार्यं साधयिष्यामि ॥ १० ॥

तया वेति । प्रभवन्त्या मया संसृष्टया मित्रीकृतेन तस्याः पत्या मित्रकार्यं तत्साध्यम् । मित्रकार्ये हि प्राणानपि त्यजेन्नरकमपि विशेत् । अमित्रप्रतीघातं स्वशरीरत्राणार्थम् । अन्यद्वा स्वकीयं दुष्प्रतिपादकं दुःसाधकं साधयिष्यामि ॥१०॥

अथवा उससे सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर उसके द्वारा मित्रता या शत्रुता के कार्यों को या अन्य किसी कठिन काम को मैं साध लूंगा ॥१०॥

संसृष्टो वानया हत्वास्याः पतिमस्मद्भाव्यं तदैश्वर्यमेवम-धिगमिष्यामि ॥ ११ ॥

संसृष्टो वानयेति । संप्रयोगादाहितस्नेहया कृतसंधिको हत्वास्याः पतिं द्विषन्तं तूष्णीं दण्डेन अस्मद्भाव्यमैश्वर्यमपि तदा भाव्यम् । केवलमस्मत्कुलं हत्वापि मत्तोऽपि वा हठादाच्छिद्यानेन प्रसह्य भुज्यते तत्प्राप्स्यामि । ततोऽस्य आततायित्वाद्व्या-पादनमपि नाधर्माय ॥ ११ ॥

अथवा उससे सम्पर्क स्थापित हो जाने पर उसके पति की हत्या कर उसके द्वारा अपहृत अपनी सम्पत्ति को मैं प्राप्त कर लूंगा ॥११॥

निरत्ययं वास्या गमनमर्थानुबद्धम् । अहं च निःसार-त्वात्क्षीणवृत्त्युपायः । सोऽहमनेनोपायेन तद्धनमतिमहदकृच्छ्रा-दधिगमिष्यामि ॥ १२ ॥

निरत्ययं रक्षाद्यभावान्निर्दोषम् । अन्यत्राप्येतद् द्रष्टव्यम् । अर्थानुबद्धम्—आढ्य-त्वादस्याः । अहं च निःसारत्वान्निर्द्रव्यत्वात्क्षीणवृत्त्युपाय इति । वृत्तिर्जीविका तदुपायः कृष्यादिः स क्षीणो यस्येति । सोऽहं कुटुम्बभरणासमर्थोऽनेनोपायेना-भिगमनलक्षणेन तद्धनमतिमहद्धर्मादिसाधनमधिगमिष्यामि । स्वल्पाधिगमे तु नाधि-गच्छेदिति मन्यते । अकृच्छ्रादिति ॰तया स्नेहाद्दीयमानम् । अन्यथा दृष्टादृष्टसा-धनं न स्यात् , तस्मात्कुटुम्बकार्थमकार्यमपि कार्यं स्यात् । तथा चोक्तम्—'माता वृद्धा पिता चैव साध्वी भार्या सुतः शिशुः । अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनु-रब्रवीत् ॥' ॥ १२ ॥

अथवा धन के लोभ से भी पराई स्त्री से सम्बन्ध जोड़ना बुरा नहीं है । क्योंकि मैं धनहीन हूँ, जीविका का कोई साधन नहीं है । इसलिये मैं इस उपाय से उस स्त्री के धन को बड़ी आसानी से प्राप्त कर लूंगा ॥१२॥

मर्मज्ञा वा मयि दृढमभिकामा सा मामनिच्छन्तं दोषवि-ख्यापनेन दूषयिष्यति ॥ १३ ॥

मयि दृढमभिकामेति । आभिमुख्येन कामयत इत्यभिकामा । दृढं मयि जात-रागेत्यर्थः । मामनिच्छन्तं स्वतोऽन्यस्माद्वा दोषाद्दोषविषयख्यापनेन मर्मज्ञत्वा-ल्लोके दूषयिष्यति । राज्यकामुकोऽयमिति येन मे विनाशः स्यात् । राजापथ्य-कारीति ॥ १३ ॥

अथवा वह मेरे गुप्त रहस्यों को जानती है और मुझ पर आसक्त भी है, सम्भव है कभी मैं उसके प्रति यदि उदासीन बन जाऊँ तो वह मेरी बुराइयों का ढिंढोरा पीटकर मुझे बदनाम कर सकती है। इसलिए उससे सम्बन्ध स्थापित करना ही उचित है ॥१३॥

असद्भूतं वा दोषं श्रद्धेयं दुष्परिहारं मयि क्षेप्स्यति येन मे विनाशः स्यात् ॥ १४ ॥

असद्भूतं वेति। मया संप्रयुयुक्षुरिति मिथ्यैव दोषमुत्थाप्य श्रद्धेयं कृतकमदनलेखेन जातप्रत्ययम्। एवं च दुष्परिहारं मयि क्षेप्स्यति समारोपयिष्यति येन मे विनाशः स्यात्। पारदारिक इति ॥ १४ ॥

अथवा मुझसे निराश होकर वह मुझ पर कोई ऐसा गम्भीर दोषारोपण करे जिसका निवारण करना ही मुश्किल हो जाए तब तो मेरा विनाश ही कर देगी। इसलिए उससे सम्बन्ध स्थापित करना उचित ही होगा ॥१४॥

आयतिमन्तं वा वश्यं पतिं मत्तो विभिद्य द्विषतः संग्राहयिष्यति ॥ १५ ॥

आयतिमन्तं प्रभावयुक्तं पतिं वश्यं यथोक्तकारिणं मत्तो विभिद्य मत्तोऽनिच्छतोऽपि मित्रीभूतं विश्लेष्य द्विषतः संग्राहयिष्यत्यस्मच्छत्रून्मैत्रीपूर्वं स्वीकारयिष्यति। ततश्च संगृहीतप्रभावा मां हनिष्यति ॥ १५ ॥

अथवा अपने वशीभूत प्रभावशाली पति को मुझसे फोड़ कर मेरे शत्रुओं के पक्ष में कर देगी। इसलिए उससे सम्बन्ध स्थापित करना उचित ही है ॥१५॥

स्वयं वा तैः सह संसृज्येत। मदवरोधानां वा दूषयिता पतिरस्यास्तदस्याहमपि दारानेव दूषयन्प्रतिकरिष्यामि ॥ १६ ॥

स्वयं वा तैः सह संसृज्येत—समर्थैः अस्मदुपघातार्थम्। मदवरोधानां वेति—अस्मत्परिगृहीतानां दाराणामभिगमनेन दूषयिता। ततश्चानुरूपप्रत्यपकारेण शत्रोरानृण्यं गन्तव्यमिति। तदस्यापि दारानेवाभिगमनेन दूषयन्प्रतिकरिष्यामि १६ ॥

अथवा वह स्वयं मेरे शत्रुओं से सांठ-गांठ कर ले या उसका पति यह सोच कर कि इसने मेरी स्त्री को दूषित किया है मैं भी इसकी स्त्री को दूषित करके बदला चुकाऊं। इसलिए उससे सम्बन्ध करना ही उचित है ॥१६॥

राजनियोगाच्चान्तर्वर्तिनं शत्रुं वास्य निर्हनिष्यामि ॥ १७ ॥

राजनियोगादिति। राज्ञाहमभ्यन्तरं निरूपयितुं नियुक्तस्तमुपायान्तराभावादस्याविश्वासया संसृज्य निष्क्रामयिष्यामि। गुरुत्वात्स्वामिकार्यस्य ॥ १७ ॥

अथवा भूमिगत (लापता) शत्रु की खोज के लिये यदि सरकारी आदेश जारी हो तो उसके घर की स्त्रियों से सम्बन्ध स्थापित कर उसे बाहर निकाल सकूंगा ॥१७॥

यामन्यां कामयिष्ये सास्या वशगा। तामनेन संक्रमेणाधिगमिष्यामि ॥ १८ ॥

यामन्यामिति। प्रस्तुतनायिकया अन्यां यां प्रकृष्टकारणवशात्कामयिष्ये, सास्या इति–प्रस्तुतनायिकाया वशगा यथोक्तकारिणी। तामप्रस्तुतामुपायान्तराभावादनया संक्रमायमाणया प्राप्स्यामि ॥ १८ ॥

अथवा जिस दूसरी स्त्री को मैं चाहता हूँ वह इसके वश में है, उसे इससे संबंध जोड़कर प्राप्त कर सकूंगा ॥१८॥

कन्यामलभ्यां वात्माधीनामर्थरूपवतीं मयि संक्रामयिष्यति॥

अलभ्या मया निर्धनत्वादियोगात्। आत्माधीनां तदायत्ताम्। अर्थरूपवतीं त्रिवर्गहेतुं मयि संक्रामयिष्यति। कन्यामिति। सा वा संप्रयुज्यमाना उभयं संघटयतीति तामेव तावदधिगच्छामि। एवं च कांचित्संप्रयुज्य या स्त्री वस्तु संघटयतीति ॥ १९ ॥

अथवा जिस अलभ्य धनवता, रूपवती कन्या से मैं विवाह करना चाहता हूँ वह बिना इससे सम्बन्ध जोड़े नहीं मिल सकती ॥१९॥

ममामित्रो वास्याः पत्या सहैकीभावमुपगतस्तमनया रसेन योजयिष्यामीत्येवमादिभिः कारणैः परस्त्रियमपि प्रकुर्वीत ॥२०॥

ममामित्रो वा प्राणहरोऽस्याः पत्या सहैकीभावमुपगतः सहासनशयनपानभोजनादिभिः। प्राक् 'पतिममित्रसंसृष्टम्' इति संश्लेषमात्रमुक्तम्। तमनया संसृष्टया रसेन कालान्तरप्राणहारिणा विषेण योजयिष्यामि। एवमादिकारणं यदा मन्येतेति प्रवर्तते तदा प्रकुर्वीत। प्रपूर्वः करोतिरभिगमे वर्तते। आत्मनेपदम् ॥२०॥

अथवा मेरा शत्रु इस स्त्री के साथ पति का सम्बन्ध रखता है तो मैं इससे सम्बन्ध स्थापित कर अपने शत्रु को विष देने की योजना पूरी कर सकूंगा। इन कारणों से पराई स्त्री के साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहिए ॥२०॥

इति साहसिक्यं न केवलं रागादेव। इति परपरिग्रहगमनकारणानि ॥ २१ ॥

साहसिक्यं न रागेण विषयस्याशुद्धत्वात्प्रकुर्वीत, किंतु कारणैरित्यर्थः ॥२१॥

बिना कोई विशेष कारण उपस्थित हुए केवल विषय भोग के लिये इतना

भयंकर साहस न करना चाहिये। इस तरह परस्त्रीगमन के कारण समाप्त हुए ॥२१॥

गोणिकापुत्र ने पराई स्त्री को चौथे प्रकार की नायिका बनाने के जो कारण प्रस्तुत किए हैं, उन्हें नैतिक या धार्मिक दृष्टि से न देखकर लौकिक दृष्टि से देखना उचित होगा। धार्मिक दृष्टि से तो परस्त्रीगमन दूर रहा कुदृष्टि डालना ही महान् पाप है। किन्तु आचार्य गोणिकापुत्र यहाँ पर आचरण और धर्म की दृष्टि से अपना अभिमत प्रकट नहीं कर रहे हैं, उनका मत नीतिमूलक है। नीतिशास्त्र का कहना है कि 'स्वकार्यं साधयेद्धीमान्', 'सर्वः स्वार्थं समीहते'। बुद्धिमान् आदमी को येन केन प्रकारेण अपना काम साधना चाहिये। हर व्यक्ति स्वार्थ साधन की इच्छा रखता है—यह नीतिशास्त्र का अनुभवजन्य सिद्धान्त है।[1] गोणिका-पुत्र केवल कामशास्त्र के ही आचार्य नहीं थे बल्कि अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् भी थे। कौटल्य ने अपने कौटलीय अर्थशास्त्र में स्थान-स्थान पर गोणिकापुत्र के मत को उद्धृत किया है। गोणिकापुत्र समाजशास्त्र, व्यवहारशास्त्र पर असाधारण योग्यता और अधिकार रखते थे। कामशास्त्र पर उनका 'परदारगमन अधि-करण' तर्क, न्याय और बुद्धिवाद संगत होते हुए व्यावहारिक विज्ञान की बेजोड़ व्याख्या है।

उन्होंने परस्त्री-गमन संबंधी जो कारण दिए हैं उनका व्यावहारिक अध्ययन करने से पता चलता है कि मनुष्य अपने सामाजिक जीवन में जिस श्रेय और सफलता की निरन्तर चेष्टा करता है, उसकी सिद्धि के साधन ये कारण भी हैं। मनुष्य की समस्त आकांक्षाएँ दारैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा में समायी हुई हैं। इन तीनों प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति के साधन गोणिकापुत्र के बताए हुए परस्त्रीगमन संबंधी कारण हैं।

आदर्श और यथार्थ में बहुत बड़ा अन्तर रहता है। आदर्श का यदि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाए तो बिना हिचक के यह कहा जा सकता है कि 'गोमुखव्याघ्रता' का दूसरा नाम आदर्श है। हम अपने जीवन-व्यापार के प्रत्येक क्षेत्र में दोहरा व्यक्तित्व रखते हैं। मनोभावों को छिपाकर आदर्श और सभ्यता की आड़ में जो कार्य करते हैं, जो मत व्यक्त करते हैं उनमें हमारी छलना की चादर ढकी रहती है। इस मनोवृत्ति ने मानव-संस्था के सिद्धान्त और उसकी परिभाषा ही बदल डाली है। यही, नहीं सभ्यता की

१. अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।
स्वार्थमभ्युद्धरेत्प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ॥ पंचतंत्र

एक नई परिभाषा बन गयी है—मनोभावों को छिपा लेना सभ्यता है। पूछा जा सकता है कि गोणिकापुत्र ने परस्त्रीगमन के जितने कारण दिए हैं उन सबमें छलना है, मनोभावों को छिपा लेने की कला है। किन्तु हम इस स्थल पर आचार्य के विचारों का स्पष्टीकरण कर रहे हैं, हम यह कहना चाहते हैं कि आचार्य ने शिव और अशिव दोनों पक्षों के व्यक्त करने में समाज के साथ छलना नहीं की है। सामाजिक, सामूहिक श्रेय और कर्त्तव्य को सर्वोपरि मान कर उन्होंने ऐसी नीति की व्याख्या की है जिसे मानव युग-युग से ढूँढ़ता आ रहा है, अँधेरे में टटोलता हुआ पथभ्रष्ट होता है और असफलता लेकर लौट आता है।

परस्त्री-गमन निःसन्देह अशिव-पथ है, किन्तु प्रयोजनवशात् अवसर पड़ने पर इस शव को शिव कैसे बनाया जा सकता है इस तंत्र को गोणिका-पुत्र ने बतलाया है और हिदायत कर दी है कि—

इति साहसिक्यं न केवलं रागादेव।

बिना विशेष प्रयोजन के उपस्थित हुए केवल विषय भोग के लिए इतना भयंकर साहस न किया जाए।

आचार्य ने जो कारण बताए हैं वे समाजशास्त्र की विधाओं और भूमि-काओं के धरातल पर अपना सातत्य क़ायम रखते हैं। यह शास्त्र का निर्देश है व्यक्ति का नहीं। शास्त्र सार्वभौम, सर्वव्यापक और सर्वजनीन सत्ता और भावना रखता है, एकदेशीय नहीं। इसलिए शास्त्र अच्छा और बुरा सब कुछ कहता है, सबको समझाता है। वह यह स्वयं स्पष्ट कर देता है कि कौन-सी वस्तु ग्राह्य है, कौन-सी अग्राह्य। हमें क्या करना चाहिए क्या न करना चाहिए इसका विवेक हमें स्वयं रखना चाहिए। शास्त्र तो चक्षुवत् है। वह केवल प्रकाश देता है, अब यह हमारा कर्त्तव्य है कि हमें कौन सी वस्तु देखनी चाहिए और कौन सी वस्तु न देखनी चाहिए। वात्स्यायन ने भी कामसूत्र के अन्त में स्पष्ट हिदायत देते हुए कहा है—

न शास्त्रमस्तीत्येतेन प्रयोगो हि समीक्ष्यते।
शास्त्रार्थान् व्यापिनो विद्यात् प्रयोगांस्त्वेकदेशिकान्॥

कामसूत्र में जो कुछ लिखा गया है सभी प्रयोग करने योग्य नहीं है। शास्त्र का विषय तो व्यापक होता है किन्तु उसके प्रयोग एकदेशी होते हैं।

आचार्य गोणिकापुत्र के मत के बाद चारायण, सुवर्णनाभ, घोटकमुख और गोनर्दीय आचार्यों के मत क्रमशः प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

एतैरेव कारणैर्महामात्रसंबद्धा राजसंबद्धा वा तत्रैकदेश-

चारिणी काचिदन्या वा कार्यसंपादिनी विधवा पञ्चमीति चारायणः ॥ २२ ॥

एतैरिति यथोक्तैः। विधवा पञ्चमीति संबन्धः। प्राग्जीवद्भर्तृकेति विशेषः। तत्रापि पत्युरभावात्। महामात्रस्य राज्ञो वा संबन्धः। संबद्धा असंबद्धा वा। तत्रैकदेशचारिणी तदीयकुटुम्बैकदेशसंबद्धा। अन्या वा काचिदन्यजनसंबद्धा कार्यसंपादिनी यज्जनसंबद्धा तत्कार्येषु व्याप्रियमाणा। आसु तिसृषु विधवा स्वैरिणी पुनर्भूर्वेति विषयं विमृश्य पतिस्थाने राजानं महामात्रम् अन्यं वा नियोज्य तत्प्रतिबद्धानि (नायिकाप्रतिबद्धानि) कारणानि योजयेत् ॥ २२ ॥

चारायण का मत है कि कन्या, पुनर्भू, वेश्या और परस्त्री के अलावा विधवा पाँचवीं नायिका है जो राजा, महामंत्री और उनके परिवारवालों से सम्बद्ध हो अथवा दूसरी कोई ऐसी विधवा जो सफलतापूर्वक काम कर सके ॥ २२ ॥

सैव प्रव्रजिता षष्ठीति सुवर्णनाभः ॥ २३ ॥

सैवेति। विधवा प्रव्रजिता राजमहामात्रयोरन्यस्य वा संबद्धा तत्कुलान्युपगच्छन्तीति नायिकानुवृत्त्या गृहधर्मत्वात्तत्रापि पूर्ववत्कारणानि योजयेत् ॥ २३ ॥

आचार्य सुवर्णनाभ का मत है कि परिव्राजिका विधवा छठे प्रकार की नायिका है ॥ २३ ॥

गणिकाया दुहिता परिचारिका वानन्यपूर्वा सप्तमीति घोटकमुखः ॥ २४ ॥

गणिकाया दुहिता अनन्यपूर्वा पुरुषेणासंसृष्टा। परिचारिका वा चन्द्रापीडस्येव पत्रलेखा। तत्र पूर्वा वेश्या कन्याभासा वक्ष्यमाणपाणिग्रहणभेदाद्भिद्यते। द्वितीया कन्याप्यगृहीतपाणिर्नायिकं परिचरन्तीति विशिष्यते ॥ २४ ॥

आचार्य घोटकमुख गणिका की लड़की अथवा परिचारिका को सातवें प्रकार की नायिका मानते हैं ॥ २४

उत्क्रान्तबालभावा कुलयुवतिरुपचारान्यत्वादष्टमीति गोनर्दीयः ॥ २५ ॥

उत्क्रान्तबालभावा कुलयुवतिरिति—कुलकन्यैवोढा सती कालेनापक्रान्तबालभावा समुपारूढयौवना कुलयुवतिः। उपचारान्यत्वादिति—उपचारभेदात्सा हि न कन्यावदुपचर्यते। कन्यायामुपचारा अपरिस्फुटा विकल्पेन च प्रयुज्यन्ते। प्राप्तयौवनायास्तु परिस्फुटाः समुच्चयेन चेति ॥ २५ ॥

आचार्य गोनर्दीय का मत है कि बचपन को पार की हुई कुलीन युवती जिसे प्राप्त करने में विशेष उपाय करने पड़ते हैं—आठवें प्रकार की नायिका है ॥

कार्यान्तराभावादेतासामपि पूर्वास्वेवोपलक्षणम्, तस्माच्चतस्र एव नायिका इति वात्स्यायनः ॥ २६ ॥

कार्यान्तराभावादिति । कन्यादिषु चतसृषु यत्कार्यमुक्तं तद्व्यतिरिक्तानां विधवादीनां कार्याभावात्पूर्वास्वेवोपलक्षणमुपदर्शनम् । तत्रैव यथासंभवमुपलक्षयेदित्यर्थः । तत्र विधवा प्रव्रजितान्यकारणवशात्परपरिग्रहे द्रष्टव्या । गणिकादुहिता परिचारिका च सुखकार्यत्वाद्वेश्यायाम् । कुलयुवतिः पुत्रकलत्रफलत्वात्कन्यायाम् । उपचारभेदात्तद्भेदे नायिकातिसंप्रयोगात् । दृश्यते हि देशकालप्रकृतिसात्म्यभेदादेकस्यामुपचारबहुत्वम् ॥ २६ ॥

उपर्युक्त आचार्यों के नायिका संबंधी मत उद्धृत कर आचार्य वात्स्यायन पुनः अपनी व्यवस्था देते हैं—सभी आचार्यों के मतों का समाहार करके आचार्य वात्स्यायन अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि—चारायण से लेकर गोनर्दीय तक जिन आचार्यों ने चार प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख किया है वे सब कन्या, पुनर्भू, वेश्या और परस्त्री इन चारों के अन्तर्गत समाहित हैं, इनसे भिन्न नहीं हैं। इसलिए नायिकाएँ केवल चार प्रकार की ही हैं ॥ २६ ॥

वात्स्यायन ने गोणिका-पुत्र के मत को सर्वांशतः स्वीकार कर अन्य आचार्यों के मतों को बड़े कौशल से निरस्त किया है। किसी के मत को किस प्रकार अंगीकार करना चाहिये और किस प्रकार अस्वीकार करना चाहिये इसके लिए बहुत बड़ी व्यावहारिक कुशलता और संवेदनशील प्रकृति की अपेक्षा हुआ करती है। 'साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे' वाली नीति वात्स्यायन ने अपनायी है। कुमारी कन्या और विवाह से पूर्व ही बिगड़ी हुई कन्या, वेश्या तथा दूसरे की विवाहिता पत्नी में विधवा, परिव्राजिका विधवा, परिचारिका के लक्षणों का समावेश कैसे हो सकता है? हाँ घोटकमुख की बतलायी हुई गणिका-दुहिता और गोनर्दीय की बतायी हुई कुलीन युवती का समावेश स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु वात्स्यायन के बुद्धि कौशल और व्यवहार चातुर्य की प्रशंसा करनी पड़ती है। 'कार्यान्तराभावात्' (प्रयोजन की एकता) लिखकर मध्यम मार्ग का अवलंबन किया गया है। कार्यान्तराभावात् तो स्त्री मात्र को भी समाविष्ट कर सकता है। वस्तुतः वात्स्यायन और कौटल्य के व्यक्तित्व और विचारों में यही मौलिक अन्तर है। इस स्थल पर कौटल्य होता तो नेति कौटल्यः लिखकर अपना स्पष्ट मत व्यक्त करता।

गोणिका पुत्र द्वारा बतायी गई पर-स्त्री नायिका को स्वीकार करना समुचित रहा और उसे स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया गया है।

हिजड़ों के सम्बन्ध में किसी एक आचार्य का मत व्यक्त किया जाता है।

भिन्नत्वात्तृतीया प्रकृतिः पञ्चमीत्येके ॥ २७ ॥

तृतीया प्रकृतिर्नपुंसकः स्त्रीत्वपुंस्त्वाभावाद्भिद्यते। तत्र चोपरिष्टकर्मणा सुखलाभात्। न रूपव्यापारभेदात्पञ्चमीत्येके। अन्यथा सुखकार्यत्वाद्वेश्याविशेष एव २७

स्त्री और पुरुष से भिन्न तृतीया प्रकृति (हिजड़ा) पाँचवीं नायिका है—ऐसा कुछ आचार्यों का मत है ॥२७॥

तृतीया प्रकृति को षण्ढ, क्लीब, नपुंसक, वर्षधर, वर्षवर, उभयव्यञ्जन और पोटा भी कहते हैं। शम् धातु में ढ प्रत्यय करने से शाम्यति शिश्नाभावात् इति षण्ढः रूप बनता है। नपुंसकों और हिजड़ों में बड़ा अन्तर है। पुरुषेन्द्रिय होते हुए भी बीजकोष के अभाव से जो पुरुष स्त्री-संसर्ग करने में नितान्त असमर्थ रहता है उसे नपुंसक कहते हैं, कुछ पैदायशी नपुंसक होते हैं और कुछ कारण वश। नपुंसक को क्लीब भी कहा जाता है। 'उद्वाहतत्व' में क्लीब का लक्षण बतलाते हुए लिखा है—

न मूत्रं फेनिलं यस्य विष्ठा चाप्सु निमज्जति।
मेढ्रश्चोन्मादशुक्राभ्यां हीनः क्लीबः स उच्यते ॥

वर्षधर और वर्षवर भी नपुंसक के भेद हैं। 'वर्षस्य पूरकस्य धरः आश्रयकर्त्ता इति वर्षधरः' तथा 'वर्षस्य रेतोवर्षणस्य वरः आवरकः इति वर्षवरः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार नष्ट या हीनवीर्य पुरुष वर्षधर या वर्षवर कहलाता है, जिसे सामान्यतया नपुंसक कहा जाता है। ऐसे नपुंसक प्राचीनकाल में अन्तःपुरों के कञ्चुकी नियुक्त किये जाते थे। रत्नावली नाटिका में कन्चुकी के सम्बन्ध में कहा गया है कि—'नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणनाभावादपास्य त्रपामन्तःकन्चुकि कन्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः'

लेकिन षण्ढ और उभयव्यञ्जन उपर्युक्त नपुंसकों से भिन्न होते हैं। इनके लिए हिजड़ा शब्द ही उपयुक्त बैठता है। इनमें पुरुष और स्त्री दोनों के चिह्न रहते हैं। स्त्रीपुंसातिरिक्ता प्रकृति तृतीया प्रकृति कहलाती है, तृतीया प्रकृति से शुद्ध हिजड़ा का ही बोध होता है।

जिस आचार्य ने हिजड़े को पाँचवीं नायिका माना है उसके इस मत को वात्स्यायन ने अन्य आचार्यों के मतों पर अपनी व्यवस्था देने के बाद उपस्थित प्रकारान्तर से अपना विचार प्रकट किया कि हिजड़ा पाँचवीं नायिका नहीं बन सकता है। यद्यपि वात्स्यायन हिजड़ों की सत्ता, उनकी कामशास्त्रीय उपयोगिता से इनकार नहीं करता है। उसने अपने शास्त्र में 'औपरिष्टक' अधिकरण में हिजड़ों के संबंध में बहुत कुछ लिखा है किन्तु यहाँ पर हिजड़ों को नायिका मानने में उसे अवश्य संकोच हुआ है।

सूत्र के 'पञ्चमी इत्येके' शब्द से ही प्रकट है कि हिजड़े को पाँचवीं नायिका मानने के पक्ष में एक नहीं अनेक आचार्य हैं, किन्तु वात्स्यायन की व्यावहारिक बुद्धि ने उनका न तो खण्डन किया और न समर्थन। परिणाम यह हुआ कि हिजड़ा नायिका स्वतः निरस्त हो गयी।

नायकविमर्शमाह—

एक एव तु सार्वलौकिको नायकः। प्रच्छन्नस्तु द्वितीयः। विशेषालाभात्। उत्तमाधममध्यमतां तु गुणागुणतो विद्यात्। तांस्तूभयोरपि गुणागुणान्वैशिके वक्ष्यामः॥ २८॥

एक एवेति। नायिकावद्भेदाभावादेक एव सार्वलौकिको नायकः कन्यापुनर्भूवेश्यासु प्रवर्तमानः सर्वलोकविदितः। स एव परपरिगृहीतासु सुखव्यतिरेकेण कार्यविशेषलाभाद्गुप्त्या च प्रवर्तमानः प्रच्छन्नो द्वितीयः। गुणद्वारेण स त्रिविध इत्याह—गुणागुणत इति। गुणसमुदायादुत्तमः। गुणपादद्वयाभावान्मध्यमः। पादत्रयाभावादधमः। सर्वगुणाभावादनायक इति। उभयोरिति। नायकस्य नायिकायाश्च॥ २८॥

नायिकाओं के लक्षण बतलाने के बाद नायकों के लक्षण बतलाते हैं—एक तो पति के रूप में सर्वत्र प्रसिद्ध नायक है। दूसरा नायक वह है जो विशेष प्रयोजन के लिए गुप्त संबंध रखता है। इनमें से गुण और दोषों की अधिकता और कमी के अनुसार उत्तम, मध्यम और नीच नायक कहलाते हैं। दोनों प्रकार के नायकों के गुण-दोषों का विस्तृत वर्णन वैशिक अधिकरण में किया जाएगा॥ २८॥

कन्यादीनां विशेषानभिधानात्पुनरगम्यतया विमर्शमाह—

अगम्यास्त्वेवैताः—कुष्ठिन्युन्मत्ता पतिता भिन्नरहस्या प्रकाशप्रार्थिनी गतप्राययौवनातिश्वेतातिकृष्णा दुर्गन्धा संबन्धिनी सखी प्रव्रजिता संबन्धिसखिश्रोत्रियराजदाराश्च॥ २९॥

नायकस्य तु कन्यादिविधावगम्यत्वं सूचयति। तुशब्दो विशेषणार्थः। एवकारो नियमार्थः। सत्स्वपि कार्येष्वेता अगम्या इत्यर्थः। कुष्ठिनीति जुगुप्सितव्याध्युपलक्षणार्थम्। उन्मत्ता यत्किंचनकारिणी न सुखावहा। पतिता स्वजात्यपेक्षया महापातकाचरणात्। तत्संपर्कात्पतितः स्यात्। भिन्नरहस्या लोके रहस्यं प्रकाशयन्ती नायकं लज्जयति। प्रकाशप्रार्थिनी प्रकटं नायकमभिलषन्ती त्रपयत्यनर्थं च करोति। गतप्राययौवना तत्सेवायामायुस्तेजश्च हीयते।

अतिश्वेता अतिकृष्णा चाप्रशस्ता। कन्या पुनर्भूश्च ज्ञेया निन्द्यत्वादन्या अपि

यथासंभवं योज्या। दुर्गन्धा गुह्ये वक्त्रे च। दुष्टगन्धा संयोगे वैमुख्यं जनयति। संबन्धिनी भ्रातुरपत्यस्य भगिन्या वा परिणयसंबन्धेन बाह्येन संबद्धा। सखी भार्यावयस्या तदनुरोधात्। प्रव्रजिता क्वचिच्छासने गृहीतव्रता धर्मार्थयोर्वैलोम्यात्।

संबन्धिसखिश्रोत्रियराजदाराश्चेति—विद्यासंबन्धेन राजसंबन्धेन वा संबद्धाः संबन्धिनस्तेषां दाराः। आचार्याणां शिष्यभार्या भ्रातृभार्या इत्यादयोऽपि धर्मवैलोम्यात्। सखिदारा मित्रभार्या, अधर्मद्रोहादिभयात्। तथा चोक्तम्—'रेतःसेकः स्वयोगेषु कुमारीष्वन्त्यजासु च। सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः॥' श्रोत्रियदारा ज्वलदग्निप्रख्याः, धर्मवैलोम्यात्। राजदाराश्च चतुराश्रमगुरुभार्या, दृष्टादृष्टविरोधात्। इत्येतदाचार्याणां मतमनुक्तमपि ज्ञेयम्। अत्र च यथोक्तव्यतिरेकेण परपरिगृहीताः सर्वा एवागम्याः स्युरिति॥ २९॥

अब तेरह प्रकार की अगम्या स्त्रियों का उल्लेख करते हैं—सम्भोग न करने योग्य स्त्रियाँ ये हैं—कोढ़िन, पागल, जाति-समाज या धर्म से पतित, रहस्य को न छिपा सकने वाली, निर्लज्ज, ढली हुई उम्र की, अत्यधिक श्वेत रंग की, अत्यधिक काली, जिसके शरीर से दुर्गन्ध निकलती हो, रिश्तेदारिन, सखी (बचपन की या पत्नी की), संन्यासिनी और कुटुम्बियों, मित्रों, वेद-पाठी ब्राह्मणों तथा राजघराने की स्त्रियाँ॥ २९॥

बाभ्रव्यमतमाह—

दृष्टपञ्चपुरुषा नागम्या काचिदस्तीति बाभ्रवीयाः॥ ३०॥

स्वपतिव्यतिरेकेण दृष्टाः पञ्च पुरुषाः पतित्वेन यया सा स्वैरिणी कारणवशात्सर्वैरेव गम्या। तथा च पञ्चातीता बन्धकीति पराशरः। एकद्वयादिदर्शने तु सत्स्वपि कारणेषु नैवेत्यर्थोक्तम्। द्रौपदी तु युधिष्ठिरादीनां स्वपतित्वादन्येषामगम्या। कथमेका सत्यनेकपतिरिति चैतिहासिकाः प्रष्टव्याः। बाभ्रवीया इति बाभ्रव्यशिष्याः। बाभ्रव्यमतानुसारिण एवमाहुः॥ ३०॥

तत्रापि गोणिकापुत्रो विशिष्यवक्तव्यमित्याह—

बाभ्रवीयों का कहना है कि यदि कोई पाँच पुरुषों से सम्पर्क स्थापित कर चुकी हो तो फिर वह अगम्या नहीं है—यह बाभ्रवीय आचार्यों का मत है॥ ३०॥

संबन्धिसखिश्रोत्रियराजदारवर्जमिति गोणिकापुत्रः॥ ३१॥

दृष्टपञ्चपुरुषा नागम्येति वर्तते। अयमभिप्रायः—संबन्धिभार्या स्वैरिण्यपि विद्यायोनिसंबन्धेनान्तरेण संबन्धेन संबद्धत्वादगम्या संबन्धित्वाद्बाह्येन तु गम्यैव। सखिभार्याप्यन्यस्य गम्या न नायकस्य। सखी त्वस्य भार्यावयस्या। स्वतो मैत्रीव्यवहारस्याप्रस्तुतत्वात्, गम्यैव। श्रोत्रियस्य क्रियावत्त्वात्, राज्ञश्चतुराश्रमगुरुत्वात्, दाराः खण्डितशीला अपि दृष्टादृष्टविरोधादगम्याः॥ ३१॥

आचार्य गोणिकापुत्र बाभ्रवीय मत में अपना एक संशोधन जोड़कर उसका समर्थन करते हैं—पाँच पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित कर चुकने पर भी संबंधी, मित्र, वेदपाठी ब्राह्मण और राजा की स्त्री अगम्या हैं ॥ ३१ ॥

जिन तेरह प्रकार की अगम्या स्त्रियों के नाम वात्स्यायन ने गिनाये हैं वे धार्मिक, सामाजिक और शरीर-विज्ञान एवं मनोविज्ञान की दृष्टि से सर्वथा निषिद्ध हैं। शरीर-विज्ञान और वंशानुक्रम-विज्ञान से यदि देखा जाए तो कोढ़िन, पागल, दुर्गन्धयुक्त और अतिश्वेत अथवा अतिकृष्ण वर्ण वाली स्त्री से संभोग करना भयंकर और वंश-परंपरागत विकारों को जान-बूझ कर आमंत्रित करना है। पतित, रहस्यभेदिनी और प्रकाशप्रार्थिनी स्त्री सामाजिक और व्यावहारिक दृष्टि से बहुत ही खतरनाक समझी जाती है। ढली हुई जवानी जिसकी हो ऐसी स्त्री से संभोग करना मन, मस्तिष्क और शरीर को अधः-पतित बनाना है साथ ही बड़े यत्न से रक्षा करने योग्य वीर्य का विनाश करना है। धार्मिक दृष्टि से देखा जाए तो अपने कुल, गोत्र, संबंध की स्त्री तथा मित्र की स्त्री और वेदपाठी ब्राह्मण, राजा की स्त्री एवं संन्यासिनी के साथ संभोग करना पशुता है। जो ऐसा करता है निःसन्देह वह मनुष्य रूप में पशु है।

बाभ्रवीयों का यह मत कि वात्स्यायन द्वारा बताई गई अगम्या स्त्रियों में से यदि कोई स्त्री पाँच व्यक्तियों से सम्भोग करा चुकी हो तो फिर उसे अगम्या नहीं मानना चाहिए—कुछ जँचता नहीं है। साथ ही गोणिकापुत्र का संशोधनपूर्वक समर्थन भी व्यावहारिक नहीं प्रतीत हो रहा है। गोणिका-पुत्र का संशोधन के साथ किया जाने वाला समर्थन रेशम में टाट का पेबन्द लगाने के समान है। दोनों आचार्यों के सामने शायद भोग और संवेग वृत्ति प्रमुख रूप से रही है, उससे होने वाले परिणामों की ओर उन्होंने दृष्टिपात नहीं किया है। वात्स्यायन का परिगणन हर दृष्टि से उपयुक्त और श्रेयस्कर है।

सहायविमर्शस्त्रिधा—स्नेहतो गुणतो जातितश्च। तत्राद्यमधिकृत्याह—

सहपांसुक्रीडितमुपकारसम्बद्धं समानशीलव्यसनं सहाध्यायिनं यश्चास्य मर्माणि रहस्यानि च विद्यात्, यस्य चायं विद्याद्वा धात्रपत्यं सहसंवृद्धं मित्रम् ॥ ३२ ॥

मिद्यति स्निह्यतीति मित्रं नवप्रकारम्। तत्र सहपांसुक्रीडितमेकत्रानुभूतबाल्यत्वात्स्निह्यति। उपकारसंबद्धमर्थेन जीवितरक्षया चोपकृतत्वान्मैत्र्या वर्तते। यच्चास्य नायकस्य मर्माण्यकार्याणि यच्च रहसि भवानि विद्यात्तदुभयं मर्मज्ञं रहस्यधरं च नायकप्रतीतेरास्पदत्वात्प्रतिस्निह्यति। यस्य चेति—यस्य नायको

मर्माणि रहस्यानि च विद्यात्तदुभयं तस्मिन्समानितस्नेहत्वात्प्रीत्या वर्तते। सहसंवृद्धं धात्रीक्रोडे नायकेन सह स्तन्यपानादिना संवृद्धं धात्रपत्यं सहपांसुक्रीडितत्वेऽप्यत्यर्थं स्निह्यतीति प्रकर्षार्थं वचनम्। यदेकस्मिन्ग्रामे वा सह संवृद्धं तत्सहपांसुक्रीडितं द्रष्टव्यम्। इति नवधा मित्रम् ॥ ३२ ॥

अब नागरक जीवन के सहायक मित्रों का निर्देश करते हैं—बचपन में जिनके साथ धूल में खेलते रहे हों, जिस पर कुछ उपकार किया गया हो, गुण, शील और स्वभाव में जो अपने समान हो, सहपाठी जिससे कोई रहस्य छिपाया न गया हो, और जो एक ही धाय की गोद में पले हों—उन्हें स्नेहमित्र बनाया जा सकता है ॥ ३२ ॥

गुणतो विमर्शमाह—

पितृपैतामहमविसंवादकमदृष्टवैकृतं वश्यं ध्रुवमलोभशीलमपरिहार्यममन्त्रविस्रावीति मित्रसंपत् ॥ ३३ ॥

पितृपैतामहम्—पितामहादागतं पैतामहम्। पितुः पैतामहम् नायकस्य तु प्रपितामहम्। यथानयोर्मैत्री तथा पित्रोः पितामहयोश्चासीदिति। अविसंवादकं यथादृष्टश्रुताधिकारिणम्। अदृष्टवैकृतं तादात्म्यककार्यस्यादिमध्यावसानेष्वदृष्टव्यभिचारम्। वश्यम् यथोक्तकारिणम्। ध्रुवं न त्यजति। अलोभशीलं न तृष्णया प्रवर्तते। अपरिहार्यं न परेण ह्रियते, अनुरक्तत्वात्। अमन्त्रविस्रावि गूढमन्त्रम्। मित्रसंपत्, मित्रसम्बन्धात् ॥ ३३ ॥

तथा किस विशेष अवस्था में मित्र बनते हैं—जिनसे वंशपरम्परागत स्नेह-संबन्ध चला आ रहा हो, जिनसे विवाद, झगड़ा न होता हो, जिनके स्वभाव और चरित्र चंचल न हों, परस्पर एक दूसरे के वशीभूत हों, लोभी न हों, बहकाने में न आते हों और रहस्यों को गुप्त रखते हों—इन गुणों से युक्त व्यक्तियों को मित्र बनाना चाहिए ॥ ३३ ॥

मित्रगुणा धर्मिद्वारेणोक्ता जातितो विमृश्यन्ते—

रजकनापितमालाकारगान्धिकसौरिकभिक्षुकगोपालकताम्बूलिकसौवर्णिकपीठमर्दविटविदूषकादयो मित्राणि। तद्योषिन्मित्राश्च नागरकाः स्युरिति वात्स्यायनः ॥ ३४ ॥

रजकादयो नायकं स्वकर्मभिरुपकुर्वन्तः परभवनं च विशन्ति। तत्र गान्धिको गन्धद्रव्यस्य विक्रेता। गन्धः पण्यमस्येति। तथा सौरिकः शौण्डिकः। भिक्षुको भिक्षणशीलः। पश्चात्कुत्सायां कः। तद्योषिन्मित्राश्चेति। न तथा पुरुषा यथा योषितः परभवनं विशन्ति विश्वासयन्ति च स्त्रियः ॥ ३४ ॥

इनके अतिरिक्त कुछ व्यवसायी भी नायक के सहायक मित्र हो सकते हैं—धोबी, नाई, माली, गन्धी, सौरिक (सुरा विक्रेता), भिक्षुक, ग्वाला, तमोली, सुनार, पीठमर्द[1], विट[2] और विदूषक[3] नायक और नायिका के बीच प्रेम संबंध कराने में मित्र का काम दे सकते हैं। वात्स्यायन का कथन है कि धोबी, नाई, माली आदि की स्त्रियों को भी मित्र बनाना चाहिये, इसलिए कि पुरुषों की अपेक्षा ये नायक की अधिक सहायता कर सकती हैं ॥ ३४ ॥

बत्तीसवें, तैंतीसवें और चौतीसवें सूत्र में मित्र बनाने योग्य पुरुषों और मित्र के जिन गुणों को बताया गया है वे राजनीति और समाजनीति के प्राचीन आचार्यों द्वारा समर्थित हैं। कौटलीय अर्थशास्त्र में भी कौटल्य ने ऐसे ही मित्र बनाने का निर्देश किया है। प्राचीन आचार्यों के इस मत पर

---

१. पीठमर्द-लक्षण—

गुणैर्नायककल्पो यः प्रेम्णा तत्रानुवृत्तिमान्।
पीठमर्दः स कथितः श्रीदामा स्याद्यथा हरेः॥

यथा—

कालिन्दीपुलिने मुकुन्दचरितं विश्वस्य विस्मापनं
द्रष्टुं गच्छति गोष्ठमेव निखिलं नैकात्र चन्द्रावली।
ब्रूमस्तस्य सुहृत्तमाः स्वयममी पथ्यं च तथ्यं च ते
मागोवर्द्धनमल्ल घट्टय मुधा गोवर्द्धनोद्धारिणम्॥

२. विटलक्षण—

वेषोपचारकुशलो धूर्तो गोष्ठीविशारदः।
कामतन्त्रकलावेदी विट इत्यभिधीयते।
कडारो भारतीबन्धुरित्यादिर्विट ईरितः॥

यथा—

व्रजे सारङ्गाक्षी विततिभिरनुल्लङ्घ्यवचनः।
सखाहं त्वद्बन्धोश्चटुभिरभियाचे मुहुरिदम्॥
कालक्रीडद्वंशीस्थगितजगतीयौवतधृति-
स्त्वया युक्तः श्यामे न खलु परिहर्तुं सखि हरिः॥

३. विदूषक-लक्षण—

वसन्ताद्यभिदो लोलो भोजने कलहप्रियः।
विकृतांगवचोवेषैर्हास्यकारी विदूषकः॥

यथा—

विदग्धमाधवे ख्यातो यथाऽसौ मधुमंगलः।

—उज्ज्वलनीलमणिः, नायकसहायभेदाः, श्लोक-५, ७, १०

वात्स्यायन का यह सुझाव कि धोबी, नाई, माली आदि व्यवसायी वर्ग की स्त्रियों को भी नायक-नायिका के बीच प्रेम-संबंध कायम करने के लिए मित्र बनाना चाहिए—कामशास्त्रीय दृष्टि से अधिक संगत जान पड़ता है। क्योंकि स्त्रियों का सीधा सम्पर्क अन्तःपुरिकाओं से हुआ करता है, घर के अन्दर आते जाते रहने से हर अन्तःपुरिका के स्वभाव, रुचि और चरित्र से वे प्रायः परिचित रहती हैं। किन्तु धोबी, नाई, माली, सुगन्धी, सुरा विक्रेता और तमोली की स्त्रियों के अतिरिक्त भिक्षुक, गोपालक, सौवर्णिक, पीठमर्द, विट, विदूषक की स्त्रियों का अन्तःपुर में प्रवेश करने का प्रयोजन अस्वाभाविक सा जान पड़ता है। विदूषक, विट और पीठमर्द की स्त्रियों का घरों के अन्दर आना जाना कहीं पढ़ा या सुना नहीं गया है। हाँ धोबिन, नाइन, मालिन, तमोलिन और सुगंधिन तो बेरोकटोक नित्य घर के अन्दर आ जा सकती हैं किन्तु शेष गोपालक, सौवर्णिक, पीठमर्द आदि की स्त्रियों के घर के भीतर प्रवेश करने का प्रयोजन समाज में नहीं आता है। कदाचित् वात्स्यायन का अभिप्राय उन स्त्रियों से है जिनका प्रवेश अन्तःपुरों के लिए अपेक्षित और साध्य होता है। ऐसी स्त्रियाँ 'कुट्टनी' कहलाती हैं। नीतिकथाओं और नीतिग्रंथों[1] में कुट्टनियों की कहानियाँ और उनके कर्म का विशद वर्णन मिलता है।

दूतस्य यत्कर्म तत्कुर्यादित्याधारतो विमृश्यते—

यदुभयोः साधारणमुभयत्रोदारं विशेषतो नायिकायाः सुविस्रब्धं तत्र दूतकर्म ॥ ३५ ॥

यदिति । मित्रमुभयोरिति—नायकस्य नायिकायाश्च मैत्र्या वर्तमानत्वात्साधारणं यथोक्तमभिधत्ते । उभयत्रोदारम् आत्मभूतकार्यकारित्वात् (?) । विशेषत इति । नायिकायाः सुष्ठु विस्रब्धं विश्वस्तम् । तस्याः साध्यमानत्वात् । तत्र मित्रे दूतकर्म दूतक्रिया, सिद्धिहेतुत्वात्, नान्यत्रेति ॥ ३५ ॥

अब दूतकर्म में प्रयुक्त होने वाले पुरुषों और उनके गुणों का वर्णन करते हैं—जो व्यक्ति पुरुष और स्त्री दोनों के प्रति उदारभाव रखता हो ख़ासकर स्त्री का अधिक विश्वासपात्र हो वह दूतकर्म के लिए उपयुक्त होता है ॥ ३५ ॥

तत्रापि यदि दूतस्य गुणाः स्युरतो गुणतो विमृश्यते—

पटुता धाष्टर्यमिङ्गिताकारज्ञता प्रतारणकालज्ञता विषह्यबुद्धित्वं लघ्वी प्रतिपत्तिः सोपाया चेति दूतगुणाः ॥ ३६ ॥

---

१. तदालिङ्गनमवलोक्य समीपवर्तिनी कुट्टन्यचिन्तयत्—हितोपदेशः ।

पटुता प्रश्नानुबद्धया वाचा वक्तुं कुशलता। धाष्टर्यं प्रागल्भ्यमिति । इङ्गितमन्यथा वृत्तिः, आकारो वदननयनादिगतविकारः, तज्ज्ञतया तदनुरूपमनुतिष्ठति । प्रतारणकालज्ञता कालेऽस्मिन्प्रोत्साहयितुं शक्यत इति । विषह्यबुद्धित्वमिति—संशयेषु विषह्या विमर्शक्षमा बुद्धिर्यस्येति विगृह्य भावप्रत्ययेन योज्यः । लघ्वी प्रतिपत्तिः सोपाया चेति दूतगुणा इति । कार्यं विमृश्य तदेवोपायपूर्वकमनुष्ठानं न कार्यातिपातनम् ॥३६॥

बातचीत में चतुराई, ढिठाई, संकेतों को समझना, नायिका किस समय बहकायी जा सकती है इसका कालज्ञान, संकट या संशय उपस्थित होने पर शीघ्र निश्चय करने वाली बुद्धि, लघ्वी प्रतिपत्ति और कार्यसफलता के लिए तुरंत उपाय सोच लेना—ये दूत के गुण हैं ॥ ३६ ॥

इदानीमधिकरणार्थानुष्ठाने फलं प्रयोजनं चाह—

भवति चात्र श्लोकः—

आत्मवान्मित्रवान्युक्तो भावज्ञो देशकालवित् ।
अलभ्यामप्ययत्नेन स्त्रियं संसाधयेन्नरः ॥ ३७ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे
नायकसहायदूतीकर्मविमर्शः पञ्चमोऽध्यायः ॥

इस विषय का एक प्राचीन श्लोक है—

जो व्यक्ति आत्मबल, मित्रबल सम्पन्न होता है, जो नागरक वृत्त में प्रवृत्त होता है, स्त्रियों के मनोभावों का पारखी होता है तथा स्थान और समय की उपयोगिता को समझता है वह अलभ्य स्त्री को भी बड़ी सरलता से प्राप्त कर लेता है ॥ ३७ ॥

आत्मवानिति—तत्र त्रिवर्गप्रतिपत्त्या समुद्देशेन चात्मन्याहितगुणत्वादात्मवान् । सहायविमर्शेन मित्रवान्। युक्त इति—नागरकवृत्तानुष्ठानेन युक्तः स्वकर्मनिष्ठः। भावज्ञो नायकनायिकाविमर्शेन तत्स्वरूपज्ञ इत्यर्थः । दूतकर्मचित्तपरिमर्शनेनेति फलम् । अलभ्यामप्ययत्नेन स्त्रियं विपरिमर्शितां साधयत इति फलप्रयोजनम् । एवंभूतस्य हि स्त्रीसाधनयोग्यत्वादिति । नायकसहायदूतीविपरिमर्शः पञ्चमं प्रकरणं पञ्चमश्चाध्यायः ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां साधारणे प्रथमेऽधिकरणे नायकसहायदूतीकर्मविमर्शः पञ्चमोऽध्यायः ॥

इस अध्याय का नाम 'दूतीकर्म विशेष है, किन्तु 'दूती कर्म' की अपेक्षा 'दूतकर्म' का ही निरूपण अधिक किया गया है। नायक का नायिका से मिलन कराने में दूती जितनी सहायता कर सकती है उतनी दूत नहीं। वात्स्यायन ने यद्यपि अन्य आचार्यों के मतों में संशोधन करते हुए दूतकर्म के सहायक पुरुषों की स्त्रियों को भी दूती कर्म में प्रयुक्त करने की राय दी है, किन्तु वह सर्वांग समीचीन इसलिए नहीं जान पड़ती कि जितने प्रकार के दूत गिनाए गए हैं उन सबकी स्त्रियाँ दूतीकर्म के लिए उपयुक्त नहीं हो सकतीं। नायक-नायिकाओं के प्रेम का इतिहास बतलाता है और परंपरागत अनुभवसिद्ध बात यह है कि प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच प्रीति या कलह उत्पन्न करने वाली कुट्टनी स्त्रियाँ ही अधिक सफल हुई हैं पुरुष दूत नहीं। दूतकर्म राजनीति में अधिक सफल हुआ करता है। कामशास्त्रीय प्रयोजनों के लिए दूत की उतनी उपयोगिता नहीं है जितनी कि दूती की।

इस अध्याय का जो नामकरण है उसके अनुसार उस विषय का विवेचन नहीं के बराबर हुआ है, विषयान्तर का समावेश समीक्षक बुद्धि में खटक पैदा करता है। कौटलीय अर्थशास्त्र का 'दूतप्रणिधि' प्रकरण अपनी विषय-वस्तु की व्याख्या करने में जितना प्रशस्त बना है उतना ही कामसूत्र का यह अध्याय विश्रृंखल हो गया है। दूतीकर्म विमर्श को इस अध्याय में स्पर्श तक नहीं किया गया है जब कि अन्यान्य ग्रंथों में इस विषय की विस्तृत जानकारी हमें प्राप्त होती है।

पटुता, धृष्टता आदि दूत के जो गुण बताए गए हैं, उनमें 'लघ्वी प्रतिपत्तिः' शब्द विशेष विवेचनीय है। लघु शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप लघ्वी है। इसका अर्थ यहाँ पर हीन या लघु नहीं बल्कि शीघ्र[1] है। और 'प्रतिपत्ति' शब्द के प्रगल्भता, बुद्धि, प्रवृत्ति,[2] गौरव,[3] सम्प्राप्ति,[4] प्रबोध[5] और फलशून्य-कर्मांग[6] अर्थ होते हैं। लघ्वी प्रतिपत्ति का यहाँ पर 'क्षिप्रबुद्धि' अर्थ लगाना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। दूत या दूती में ऐसी क्षिप्रबुद्धि होनी चाहिए कि अवसर पड़ने पर रहस्योद्घाटन भी न हो और बात बन जाए। बिगड़ती

१. द्राक्चपलं लघु मङ्क्षु स्राक् तूर्णं त्वरितमाशु शीघ्रम्।
अह्नाय सत्वरं च क्षिप्रं द्रुतमञ्जसा झटिति॥ हलायुधः
२. मनस्विनां प्रतिपत्तिरीदृशी। कुमारसंभवम्
३. सुभक्तौ राजसु तथा कार्याणां प्रतिपत्तिमान्। युक्तकल्पतरुः
४. वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। रघुवंशमहाकाव्यम्
५. चक्षुर्योगेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यदा भवेत्। श्रीमद्भागवतम्
६. देवतोद्देशेन यागादौ त्यक्तहविरादेरग्नौ निक्षेपः। धर्मसिन्धुः

हुई बात को सँभाल लेना क्षिप्रबुद्धि का काम है। किस समय क्या जवाब देना चाहिए, क्या करना चाहिए यह सोचना और तदनुकूल सफलता प्राप्त करना क्षिप्रबुद्धि का काम है।

एक प्राचीन श्लोक का उदाहरण देते हुए वात्स्यायन ने बताया है कि जो नायक आत्मबल सम्पन्न एवं विश्वस्त मित्रों से संयुक्त होता है, तथा नागरक वृत्ति में प्रवृत्त, मनोभावों का पारखी और देशकाल को समझने वाला होता है वह अनायास अलभ्य स्त्रियों को प्राप्त कर सकता है।

यहाँ पर नायक के जो गुण और वैशिष्ट्य बताए गए हैं वे केवल अलभ्य स्त्रियों की प्राप्ति में ही सफलता नहीं दिलाते बल्कि जीवन के हर क्षेत्र और कार्यव्यापार में श्रेय और विजय प्रदान कराते हैं।

आत्मवान् वही है जो कायर नहीं, मित्रवान् वही है जो पवित्र हृदय हो, युक्त वही हो सकता है जो आभिजात्य गुण सम्पन्न हो, मनोभावों का पारखी वही हो सकता है जिसमें समीक्षात्मक बुद्धि और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण हो तथा व्यवहारकुशल व्यक्ति ही देशकालवित् हो सकता है।

इस श्लोक से निष्कर्ष यही निकलता है कि कामशास्त्रीय नायक लफंगा, छिछोरा और मनचला नहीं बल्कि कुलीन, बुद्धिमान, लोकप्रिय, कलाकुशल और स्वाभिमानी आत्मनिष्ठ है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे
नायकसहायदूतीकर्मविमर्शः पञ्चमोऽध्यायः
समाप्तं चेदं साधारणं प्रथमाधिकरणम्।
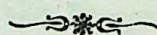
सांप्रयोगिकं द्वितीयमधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

रतावस्थापनप्रकरणम्

स्त्रियं साधयत इत्युक्तं स्त्रीसाधनं चावापः स चाविज्ञातशास्त्रस्य न युज्यत इत्यावापात्प्राक्तन्त्रं सांप्रयोगिकमुच्यते ।

तत्रापि संप्रयोगो रतं तस्मिन् प्रमाणादिभिर्ज्ञातस्वरूपे यथायथमालिङ्गनादयः प्रयुज्यमाना रत्यर्था इति प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनमुच्यते । हेतौ पञ्चमी । प्रमाणादिना तस्य व्यवस्थापनमित्यर्थः ।

पुरुष और स्त्री के गुप्तांगों के प्रमाण, सम्भोग काल तथा काम-संवेग की अधिकता और न्यूनता के अनुसार नायक-नायिकाओं के भेद का वर्णन इस अधिकरण में है ।

तत्र लिङ्गसंयोगाद्भावकालाविति । ताभ्यामपि प्राक्प्रमाणतस्तावद्रतावस्थापनमाह—

शशो वृषोऽश्व इति लिङ्गतो नायकविशेषाः। नायिका पुनर्मृगी वडवा हस्तिनी चेति ॥ १ ॥

लिङ्गत इति । लिङ्ग्यन्ते स्त्रीत्वादयोऽनेनेति लिङ्गम् । लोकप्रतीत्या लिङ्गं मेहनमुच्यते । तत्र पौंस्नमुन्नतं प्रमाणं स्त्रीणां निम्नं प्रमाणं च शास्त्रव्यवहारयोः । अल्पात्पौंस्नाच्छश इव शशः । तथा समाद्वृषः । महतोऽश्वः । इति नायकभेदाः । नायिका पुनरिति । पुनःशब्दो विशेषणार्थः । लिङ्गस्य भिन्नत्वात्संज्ञाभेदः प्रयुज्यत इति पूर्वाचार्यैर्मृग्यादिभिरुपमिताः, शशादिभिः । तथा चाहुर्लक्षणम्—

'षण्नवद्वादशेत्येवमायामेन यथाक्रमम् । शशादिभेदभिन्नानां त्रिधा साधनसंस्थितिः ॥ परिणाहेन तुल्यं स्यादायामस्य प्रमाणतः । नियतं नेति केचित्तु परिणाहं प्रचक्षते ॥ स्त्रीणां संसारमार्गोऽपि तद्वदेव प्रभिद्यते । आयामपरिणाहाभ्यां मृग्यादीनां शशादिवत् ॥' इति ॥ १ ॥

मूत्रेन्द्रिय के छोटे, मध्य और बड़े परिमाण के अनुसार नायक की शश (खरहा), वृष (बैल) और अश्व (घोड़ा) संज्ञा होती है और नायिका की मूत्रेन्द्रिय कम गहरी, साधारण गहरी और बहुत गहरी होने से उसकी मृगी, वडवा (घोड़ी) और हस्तिनी (हथिनी) संज्ञा होती है ॥ १ ॥

तत्र सदृशसंप्रयोगे समरतानि त्रीणि ॥ २ ॥

तत्रेति नायकनायिकयोर्भेदे। सदृशो विसदृशो वा संप्रयोगः स्यादित्याह— सदृशसंप्रयोग इति। शशस्य मृग्या, वृषस्य वडवया, अश्वस्य हस्तिन्या सह सदृशः संप्रयोगो रन्ध्रेन्द्रियसमाप्तिलक्षणः। अल्पादिभिर्लिङ्गसादृश्यात्। तस्मिन्सति त्रीणि समरतानि। रन्ध्रसाधनयोराश्रयाश्रयिभावेन यन्त्रसाम्यात् ॥ २ ॥

अपनी जोड़ी की नायिका और नायक के सम्भोग को 'समरत' कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है—१. शश नायक का मृगी नायिका के साथ, २. वृष नायक का बडवा नायिका के साथ और ३. अश्व नायक का हस्तिनी नायिका के साथ ॥ २ ॥

विपर्ययेण विषमाणि षट्। विषमेष्वपि पुरुषाधिक्यं चेदनन्तरसंप्रयोगे द्वे उच्चरते। व्यवहितमेकमुच्चतररतम्। विपर्यये पुनर्द्वे नीचरते। व्यवहितमेकं नीचतररतं च। तेषु समानि श्रेष्ठानि। तरशब्दाङ्किते द्वे कनिष्ठे। शेषाणि मध्यमानि ॥ ३ ॥

शशस्य वडवया हस्तिन्या च, वृषस्य मृग्या हस्तिन्या च, अश्वस्य मृग्या वडवया चेति विसदृशः संप्रयोगः, लिङ्गवैषम्यात्। तस्मिन्सति षड् विषमाणि रतानि। यन्त्रवैषम्यात्। विषमेष्वपि रतेषु व्यवहारार्थं विशेषसंज्ञामाह—पुरुषाधिक्यं चेति। यदा लिङ्गतः पुरुषाधिक्यं स्त्रिया न्यूनत्वं तदानन्तरो व्यवहितो वा संप्रयोगः स्यात्। तत्राश्वस्य वडवया वृषस्य मृग्येति वैलोम्येनान्तरसंप्रयोगः। तस्मिन्समरताद् द्वे उच्चरते साधनस्योच्चतया रन्ध्रमवपीड्य व्याप्रियमाणत्वात्। व्यवहितमिति—अश्वस्य मृग्या सह व्यवहितसंप्रयोगः, वडवया व्यवधानात्। तस्मिन्सति उच्चरतादुच्चतररतम्, साधनस्यात्युच्चतया निष्पीडितेन कथंचिद्व्यापारात्।

विपर्यये द्वे। पुनरिति—पुनःशब्दो विशेषणार्थः। स्त्रियाधिक्ये त्वनन्तरसंप्रयोगे शशस्य वडवया वृषस्य हस्तिन्येत्यानुलोम्येन समरताद् द्वे नीचरते। साधनस्य निकृष्टतया रन्ध्रे सम्यगनवपूर्य व्यवहारात्। व्यवहिते वडवयान्तरिते प्रयोगे शशस्य हस्तिन्या सहेति नीचरतान्नीचतररतम्, तत्रानवपूर्यैव व्यवहारात्। एषामुत्तमादीन्याह—तेष्विति। नवसु रतेषु षड्भ्यो विषमरतेभ्यः समानि श्रेष्ठानि प्रशस्तानि। तत्र यन्त्रसाम्यादुभयोः परस्परसुखातिशयात्। तरशब्दाङ्किते कनिष्ठे उच्चतरनीचतरशब्दाङ्किते अधमे, तत्र यन्त्रस्यातिपीडनादतिशैथिल्याच्च स्पर्शसुखस्याभावात्। शेषाणि चत्वारि—उच्चरते द्वे नीचरते द्वे मध्यमानि श्रेष्ठकनिष्ठाभावात्। तत्र ह्यनतिपीडनादनतिशैथिल्याच्च स्पर्शसुखस्य समत्वात् ॥३॥

अदल-बदल कर विषम—शश का बडवा या हस्तिनी से, वृष का मृगी या हस्तिनी से तथा अश्व का मृगी या बडवा से समागम छह प्रकार के

होते हैं। विषम रत में भी अधिक परिमाण वाले अश्व का कम परिमाण वाली बडवा से एवं वृष का मृगी से समागम उच्चरत कहलाता है। मृगी से अश्व का समागम उच्चतररत होता है। इसके विपरीत हस्तिनी से वृष का बडवा का शश से समागम नीच रत और हस्तिनी से शश का समागम नीचतररत कहलाता है। इन सब प्रकार के समागमों में सम (बराबरी के जोड़े का) समागम श्रेष्ठ है। उच्चतर और नीचतर रत सबसे निकृष्ट होते हैं तथा शेष सम्बन्ध न अधिक अच्छे और न अधिक बुरे होते हैं॥ ३॥

तत्रापि मध्यमानां विशेषमाह—

साम्येऽप्युच्चाङ्कं नीचाङ्काज्ज्यायः। इति प्रमाणतो नवरतानि॥

ज्येष्ठकनिष्ठाभावाद्रतस्य साम्येऽपि—मध्यस्थेऽपीत्यर्थः, उच्चाङ्कं नीचाङ्काज्ज्याय इति। उच्चरते हि योषित उत्फुल्लकादिना प्रसार्य जघनं संविष्टायाः साधनाधिक्यात्कण्डूतिप्रतीकाराधिकलाभः। नीचरते तु संपुटकादिनावह्रासितजघनाया अपि न तत्प्रतीकारोऽस्ति। यथोक्तम्—'न त्वल्पसाधनः कामी चिरकृत्योऽपि वा नरः। कण्डूतेरप्रतीकारान्नातिस्त्रीप्रिय उच्यते॥' इति उक्तमेवेति॥ ४॥

मध्यम रत में भी अश्व का बडवा के साथ, वृष का मृगी के साथ समागम होना किसी हद तक सही है किन्तु हस्तिनी से वृष का या बडवा का शश से समागम उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है। स्त्री और पुरुष की इन्द्रियों की माप के अनुसार नौ प्रकार के रतों का परिचय समाप्त हुआ॥४॥

सुरत या सम्भोग को सम्प्रयोग कहते हैं, दो विभिन्न लिङ्गों की अन्विति जहाँ पर होती है वही सम्प्रयोग[1] है। इस अधिकरण में स्त्री-पुरुष की प्रक्रिया और उसके विधान का वर्णन होने से इसका नाम 'साम्प्रयोगिक' अधिकरण रखा गया है। स्त्री-पुरुषों के गुप्तांग सम्प्रयोग की आधारशिला होने से वात्स्यायन सर्वप्रथम गुप्तांगों के प्रमाण का निर्देश करता है।

गुप्तांग के प्रमाण के अनुसार पुरुष की शश, वृष और अश्व संज्ञा होती है तथा स्त्री की मृगी, बडवा और हस्तिनी संज्ञा होती है। यद्यपि वात्स्यायन ने कामशास्त्रीय दृष्टिकोण रखकर गुप्तांगों के माध्यम से पुरुष और स्त्री का नामकरण किया है, किन्तु उसके इस वर्गीकरण में शरीरविज्ञान के साथ ही अध्यात्मविज्ञान भी निहित है। पूछा जा सकता है कि अन्य अंगों की

१. उष्णत्वमग्न्यातपसम्प्रयोगाच्छैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य—रघुवंश, ५।५४ तथा रहसि स्त्रीसम्भोगो हि द्विविधः सम्प्रयोगो मिथो लीला विलासश्च। —उज्ज्वलनीलमणि की टीका पृष्ठ १०५

बात न करके केवल गुह्यांगों के ही आकार-प्रकार का वर्णन क्यों किया गया है? पहली बात यह है कि यह कामशास्त्रीय विषय है, इन्हीं अंगों पर कामशास्त्र की नींव खड़ी हुई है। यही नहीं इन्हीं अंगों के सम्यक् परिज्ञान से ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ करता है। तैत्तिरीय उपनिषद्[1] में जो प्राचीन पाठ्यक्रम दिया गया है उसमें 'प्रजा' 'प्रजन' और 'प्रजाति' विषयों द्वारा कामशास्त्रादि तीन विषयों की परिगणना की गई है। शरीर के इस सांगोपांग ज्ञान को ही ब्रह्मज्ञान कहा गया है। इसे जानने वाले ही 'ब्रह्मविद्' कहे जाते हैं।

अथर्ववेद[2] का कहना है—

'जो मनुष्य अमरत्व से आवृत, ब्रह्म की नगरी (शरीर) को जानता है उसे ब्रह्म तथा ब्राह्म (सांसारिक पदार्थ) नेत्र, प्राण, प्रजा (संतान) देते हैं। जो मनुष्य इस ब्रह्मपुरी को जिसमें वास करने के कारण उसे 'पुरुष' कहा जाता है जानता रहता है उसे चक्षु तथा अन्य इन्द्रियाँ और प्राण वृद्धावस्था के पूर्व नहीं छोड़ते। यह आठ चक्रों, नवद्वारों वाली देवों की नगरी 'अयोध्या' है। इसमें ज्योति (ज्योति स्वरूप मन) से व्याप्त हिरण्यमय हितकर और रमणीय उपादान से निर्मित स्वर्ग रूप कोश है।

यह हिरण्यमय स्वर्गरूपकोश तीन अरों वाला तथा तीन स्थानों पर टिका हुआ है। इसमें आत्मा के साथ पूज्य ब्रह्मदेव (मन) विराजमान हैं। उन्हें ब्रह्मवेत्ता जानते हैं।'

इससे यह स्पष्ट है कि शरीर तथा उसके हिताहित आहार-विहार का सम्यक् ज्ञान और तदनुकूल आचरण होगा तभी यह देवपुरी सचमुच अयोध्यापुरी बन जाएगी और पुरुष अपने सम्पूर्ण अभीष्टों को सिद्ध कर लेगा।

शरीर विद्या के अनुशीलन से यह विदित है कि माता-पिता के शरीर के अंशभूत पुंबीज और स्त्रीबीज ही पहले गर्भाशय में और पश्चात् उनके शरीर से बाहर बढ़कर संतान का रूप धारण करते हैं। इन बीजों के द्वारा माता-पिता के अंग-प्रत्यंग स्वरूप, मानसिक प्रकृति एवं रोग-विशेष के प्रति प्रवृत्ति भी संतान के शरीर में उतरती है—

अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि सजीव शरदः शतम्[3] ॥

---

१. प्रपाठक ७ अनुवाक ९। २. १०—२। २९—३२।
३. निरुक्त नैघण्टुक काण्ड ३।१।४।

पुत्र तू मेरे अंग-प्रत्यंग से उत्पन्न हुआ है। तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है और मेरा ही पुत्र संज्ञक स्वरूप है। ऐसा तू सौ वर्ष तक जीवित रह।

इस दृष्टि से परम्परागत शरीर कभी नष्ट नहीं होता है। शरीर प्रवाह से वह नित्य या अमृत है इसलिए यही अमरावती है। अप्रमत्त होकर इसकी रक्षा करनी चाहिए।[1] लिंग और योनि की लम्बाई, मोटाई, गहराई आदि का स्पष्ट निरूपण करने का तात्पर्य केवल संभोग-सुख ही नहीं है बल्कि स्त्री-पुरुष के समागम का परिणाम संतानसुख भी है। क्योंकि शुक्र से गर्भ की उत्पत्ति होती है। विश्वरूप जीवात्मा का वह रूप द्रव्य है, अर्थात् उसके द्वारा उस अदृश्य, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय आत्मा की सत्ता और शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। जिस समय स्त्री और पुरुष में काम-संवेग उत्पन्न होता है तो उनके रोम-रोम में हर्ष का उद्रेक होता है। उस उद्रेक से वायु प्रेरित होता है और वीर्य पुरुषेन्द्रिय से स्खलित होकर योनिमार्ग से गर्भाशय में प्रवेश करता है तब वह स्त्री के रज के संपर्क में आता है। उसके साथ ही बीजस्थ जीव अपने लिंग शरीर के साथ सत्व, रज, तम तथा दैव और आसुर भावों को लिए हुए अन्तःप्रविष्ट होता है।[2]

यदि हम संभोग-सुखमात्र को समक्ष रखकर विचार करते हैं तो सीत्कार, विलास और उपसर्ग—ये तीन क्रियाएँ संभोग की मुख्य हुआ करती हैं। लेकिन संभोग का वास्तविक सुख स्त्री-पुरुष के स्वभाव, शरीर की बनावट और गुप्तेन्द्रियों की बनावट पर अधिक निर्भर हुआ करता है। वात्स्यायन ने गुप्तेन्द्रियों की नाप के अनुसार तीन प्रकार के पुरुष माने हैं—१. शश जिनको इन्द्रिय छह अंगुल की होती है। २. वृष—जिनकी इन्द्रिय आठ अंगुल की होती है। और ३. अश्व—जिनकी इन्द्रिय बारह अंगुल[3] की होती है। इसी परिमाण से स्त्रियाँ भी १. मृगी, २. बडवा और ३. हस्तिनी नाम से तीन जाति की होती हैं। पुरुष की इन्द्रिय की नाप लम्बाई और मोटाई से होती है तथा स्त्री की गुप्तेन्द्रिय की नाप गहराई और चौड़ाई से होती है। जिनकी गुप्तेन्द्रियों की नाप बराबर की अर्थात् शश पुरुष हुआ और मृगी स्त्री हुई—होती है उनके आपस के संभोग को 'सम' कहा जाता है। सम संभोग तीन प्रकार का मुख्य होता है और विषम संभोग अदल-बदल कर छह प्रकार का होता है। सम और विषम के इस वर्गीकरण से योग

---

१. यजुर्वेद अ० ३४।

२. चरक० चि० २ पा० ४।४७।४९ तथा १५।३४।३५।

३. परिणाहारोहाभ्यां षण्णवद्वादशाङ्गुलैर्गुणैः।
शशवृषभाश्वाः पुरुषा हरिणीवडवेभिका नार्यः॥ नागरसर्वस्व ४।१

यह निकलता है—शश-मृगी, वृष-बडवा, और अश्व-हस्तिनी इस तरह ये तीन प्रकार के संभोग हुए। शश का बडवा या हस्तिनी के साथ, वृष का मृगी या हस्तिनी के साथ और अश्व का मृगी या बडवा के साथ—ये छह प्रकार के विषम संभोग हुए। फिर विषम संभोग के दो भेद होते हैं—उच्चरत और नीच रत। अर्थात् अश्व का बडवा से और वृष का मृगी से संभोग उच्च संभोग कहा जाता है। हस्तिनी का शश से नीच संभोग कहा जाता है। इन संभोगों में सम संभोग ही आनन्ददायक होता है। विषम संभोग आनन्द-रहित एवं कष्टदायक होता है।

मध्यम रत में अश्व जाति के पुरुष से बडवा जाति की स्त्री का तथा मृगी जाति की स्त्री से वृष जाति के पुरुष का समागम वात्स्यायन ने हस्तिनी स्त्री का वृष पुरुष से अथवा बडवा स्त्री से शश पुरुष के समागम की अपेक्षा उत्तम इसलिए माना है कि यदि पुरुष का लिंग स्त्री की योनि की अपेक्षा कुछ अधिक मोटा और लंबा होगा तो स्त्री को कुछ कष्ट होने पर भी अत्यधिक संभोग-सुख प्राप्त होगा। किन्तु यदि पुरुष का लिंग पतला और छोटा हो और उसकी अपेक्षा स्त्री की योनि अधिक चौड़ी और गहरी हो तो लाख प्रयत्न करने पर भी स्त्री और पुरुष दोनों को संभोग का वास्तविक आनन्द नहीं मिल सकता है। इस प्रकार वात्स्यायन ने पुरुष और स्त्री की इन्द्रियों के प्रमाण के अनुसार नौ प्रकार के रत बतलाए हैं।

यही मत नागर सर्वस्व[1] के रचयिता आचार्य पद्म श्री का भी है। पद्म श्री ने शश, वृष, अश्व जाति के पुरुषों एवं मृगी, बडवा और हस्तिनी जाति की स्त्रियों के लक्षण भी बताए हैं—

चरण, कटि, पीछे का हिस्सा, हाथ और कान पतले हों, मधुर वाणी एवं सुन्दर समान दन्तपंक्ति, तेजोमय शरीर, सदा प्रसन्न, गोल मुँह, घनी अंगुलियाँ, स्वाभिमानी और सुगन्धित वीर्य हो जिसका वह पुरुष शश जाति का होता है।

जिसका गला मोटा हो, चाल सुन्दर हो, हथेली लाल हो, दृष्टि स्थिर हो, अंग गौर वर्ण हो, सुन्दर तोंद हो और जो भाग्यवान हो उस पुरुष की वृषभ जाति होती है।

कान, शिर, और ओंठ जिसके कुछ लंबे हों, शरीर पतला हो, बाल खूब घने हों, लंबी अँगुलियाँ हों, दृष्टि में बिजली-सी कौंधती हो, जाँघ मोटी हो, शीघ्रगामी तथा सुन्दर नख वाला हो तो वह पुरुष अश्व जाति का होता है।

१. नागर सर्वस्व ४।२–७।

पुरुषों के लक्षण के बाद पद्म श्री स्त्रियों के लक्षण बतलाते हैं—

जिसके बाल सुन्दर हों, देह पतली हो, रंग साँवला हो, चन्द्रकिरण की भाँति शीतल अंग हों, दाँत घने हों, धीमी आवाज हो, बाल अधिक घने हों, कफ प्रधान प्रकृति हो, आहार थोड़ा हो, शिर की हड्डियाँ उभरी हुई न हों। सुरत से निकला जल सुगन्धित हो और मुँह में चिकनाई रहती हो तो वह स्त्री मृगी जाति की होती है।

बडवा (घोड़ी) जाति की नायिका के दोनों स्तन कठोर और पुष्ट होते हैं। घुटने कुछ टेढ़े होते हैं। जंघाएँ विशाल होती हैं। अंग में सदा गर्माहट रहती है; बाहें कोमल और मोटी होती हैं तथा उन पर पसीने की बूँदें उठा करती हैं। शरीर गोरा होता है। सुरत काल में निकलते हुए रज में मांस की सी गन्ध होती है। सभी अंग समान होते हैं किन्तु पेट छोटा होता है और प्रकृति पित्त प्रधान होती है।

हस्तिनी नायिका का कद छोटा होता है, देह मोटी होती है, दाँत प्रायः बड़े होते हैं, रंग में ललाई रहती है, प्रकृति वात प्रधान होती है। शरीर सुन्दर और गठीला होता है, कभी ठंठा कभी गर्म रहता है बहुत बोलने वाली तथा चञ्चल होती है और उसके रज में हाथी के मद के समान गन्ध आती है।

कश्मीरी पण्डित कोक[1] ने रति रहस्य नाम की पुस्तक में पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी—चार प्रकार की नायिकाएँ लिखी हैं। इनमें से पद्मिनी सर्वश्रेष्ठ है इसके बाद उत्तरोत्तर निकृष्ट हैं।

पद्मिनी नायिका कमल के समान कोमलांगी होती है। उसके सुरत-जल में कमल-पुष्प की-सी गन्ध रहती है। चकित हिरनी के समान आँखें, आँखों के कोर सुर्ख और निर्दोष, स्तन श्रीफल की शोभा को भी विलज्जित करने वाले होते हैं। उसकी नासिका तिल के फूल के समान होती है, श्रद्धालु और आस्तिक विचारों की होती है। चम्पा के फूल के समान गोरा बदन, खिले हुए कमल पुष्प के समान जिसका मनोजमन्दिर, पतला छरहरा शरीर और जिसकी राजहंसिनी की-सी मन्द-मन्द चाल होती है। जिसकी वाणी में हंस की-सी कोमलता, पतले उदर में त्रिबली पड़ी होती है। जो अल्प भोजन करती हो, लज्जा, शील संपन्न होती है, स्वाभिमान रखती हो। सुन्दर वस्त्र और श्वेत पुष्पों से अधिक रुचि रखती हो—वह पद्मिनी नायिका है।

चित्रिणी नायिका की गति मनोहर होती है, मध्यम क़द, पतला शरीर स्तन और जंघाएँ विशाल होती हैं। जिसके ओंठ कुछ मोटे और रति जल में

१. रतिरहस्य, जात्यधिकार श्लोक १०–१९।

मधु की-सी गंध आती है। गले में तीन रेखाएँ और चकोर की-सी वाणी होती है। चित्रिणी का स्मरमन्दिर गोल, उभरा हुआ और भीतर से कोमल होता है। वह ललितकलाओं में प्रवीण होती है। शरीर में रोम कम रहते हैं। रतिजल अधिक निकलता है। दृष्टि में चपलता रहती है आलिंगन, चुम्बन आदि बाह्य भोग को अधिक पसंद करती है। चित्र-विचित्र के वस्त्राभरण पहनने की रुचि रखती है, मधुर और अल्प भोजन करती है।

शंखिनी का कद लम्बा होता है, शरीर भरा हुआ रहता है। उसकी अंगुलियाँ लम्बी होती हैं। लाल फूल और लाल रङ्ग के वस्त्रों की वह रुचि रखती है। उसके क्रोधी शरीर पर नीली नसें चमकती रहती हैं। स्मर मन्दिर पर रोमावली अधिक रहती है। नितम्ब लंबे होते हैं। रति जल में क्षार गन्ध रहती है। मैथुन काल में नखों को गड़ाना अधिक पसन्द करती है। प्रायः पित्त प्रधान प्रकृति रहती है और मलिन हृदय की तथा चुगलखोर होती है।

हस्तिनी नायिका की चाल भद्दी, देह भद्दी, कद ऊँचा, चेहरा, अंगुलियाँ और जाँघें तथा टाँगें मोटी होती हैं। उनमें भूरे भूरे बाल होते हैं। शरीर से मोटी ताजी किन्तु स्वभाव से क्रूर होती है। इसके रति जल में हाथी के मद की-सी गन्ध रहती है। कड़ुवे, खट्टे, कषैले पदार्थों और बासी भोजन में अधिक रुचि रखती है। ओंठ बहुत मोटे होते हैं। योनि बहुत गहरी। हकलाकर बोलने वाली और डटकर भोजन करने वाली होती है।

वात्स्यायन, पद्मश्री और कोक ने स्त्रियों और पुरुषों के जो लक्षण लिखे हैं उनका मुख्य प्रयोजन और उपयोग स्त्री-पुरुष के समागम से ही है। विवाह-प्रथा का धार्मिक, आध्यात्मिक या सामाजिक अथवा व्यक्तिगत प्रयोजन कुछ भी हो किन्तु विभिन्न प्रयोजनों की सफलता का केन्द्रविन्दु पति-पत्नी का समागम ही है। जब तक इनका परस्पर साम्प्रयोगिक सम्बन्ध नहीं होता है तब तक चाहे धार्मिक, आध्यात्मिक दृष्टि से विवाह हुआ हो, या सामाजिक अथवा व्यक्तिगत इच्छाओं पर, वह सफल नहीं हो सकता है। इसीलिए हमारे धर्मशास्त्री और ज्योतिषी भी विवाह से पूर्व वर और कन्या के गुणों का मिलान करते हैं। इस मिलान में मुख्य रूप से आठ बातों पर विचार किया जाता है—

१. वर्ण—वर और कन्या के अङ्गों की बनावट, गोराई, साँवराई तथा जाति, वर्ग सम्बन्धी जो विचार होता है वह वर्ण मैत्री कहलाता है।

२. वश्य—स्वभाव के मिलान को वश्य कहते हैं। जन्मकुण्डली एवं शरीर-विज्ञान की दृष्टि से वर और कन्या के स्वभावों का मिलान किया जाता है।

३. तारा—जन्मकाल के नक्षत्रों द्वारा वर और कन्या का शारीरिक ज्ञान प्राप्त करना, गणित के सहारे लड़की और लड़के के गुप्ताङ्गों की रूप-रेखा, आकार-प्रकार और विकार आदि समझे जाते हैं।

४. योनि—योनि का तात्पर्य शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के अनुसार जाति का निर्णय करना। जैसे शश जाति का यदि वर है और मृगी जाति की लड़की है तो योनि ठीक मिलती है, विपर्यय होने से मिलान नहीं बैठ सकता है।

५. ग्रह मैत्री—वर और कन्या के जन्मग्रहों का मिलान कर उनकी प्रकृति, प्रवृत्ति और चरित्र सम्बन्धी मिलान करना।

६. गणमैत्री—गण नाम समूह या समाज का है। इसके द्वारा सामाजिक समानता या असमानता देखी जाती है।

७. वय-वपु—आयुर्वेदिक दृष्टि से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का परीक्षण और मिलान।

८. भकूट—इसके द्वारा वर और कन्या के आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक गुणों, प्रवृत्तियों का मिलान करना।

उपर्युक्त विवाह से पूर्व जिन आठ गुणों का मिलान किया जाता है उनका सामञ्जस्य वात्स्यायन आदि आचार्यों द्वारा बताये गये स्त्री-पुरुष के जाति-भेद से पूर्णतया सिद्ध होता है। वात्स्यायन की दृष्टि यद्यपि प्रधानकामशास्त्रीय है तथापि उसमें समष्टि है।

भावतो रतावस्थापनमाह—

यस्य संप्रयोगकाले प्रीतिरुदासीना वीर्यमल्पं क्षतानि च न सहते स मन्दवेगः ॥ ५ ॥

भावतो हि कालस्य पश्चाद्भावित्वात्फलरूपत्वाभावात्तस्यापरिच्छेदात्। तथा हि हेतुफलभेदादत्र द्विविधो भावः। तत्र कामिताख्यो हेतुः। तस्मिन्सति संप्रयोगात्। रतान्ते च भावः फलम्। तस्मादुभयरूपाद्रतमवस्थाप्यते स च मृदुमध्यमातिमात्रभेदात्त्रिविधः। तत्र यस्य संप्रयोगकाले प्रीतिरुदासीना संप्रयोगेच्छा मनाग्भवति रतिर्वा वीर्यमल्पं संप्रयोगे मन्दो व्यापारः शुक्रधातुर्वा स्तोकः क्षतानि च नायिकया दन्तनखैः प्रयुज्यमानानि उपलक्षणत्वात्प्रहरणं च न सहते य इत्यर्थाद्विभक्ति [वि] परिणामः। मृदुभावत्वान्मन्दवेगः। मृदुराग इत्यर्थः ॥ ५ ॥

अब कामजन्य मानसिक आवेश के अनुसार स्त्री और पुरुष के समागम के भेद बतलाते हैं—

सम्भोगकाल में जिस व्यक्ति की रतिभावना अल्प हो, वीर्य अल्प हो

और जो स्त्री के नखक्षत, दन्तक्षत आदि प्रहारों को सहने में असमर्थ हो वह मन्दवेग कहलाता है ॥ ५ ॥

तद्विपर्ययौ मध्यमचण्डवेगौ भवतः। तथा नायिकापि ॥६॥

यथोक्तस्य विपर्ययौ–यस्य संप्रयोगे प्रीतिर्मध्या वीर्यं मध्यं क्षतानि च यः सहते स मध्यभावत्वान्मध्यवेग इत्येको विपर्ययः। संप्रयोगे प्रीतिरधिका वीर्यं महत्क्षतानि चात्यर्थं सहते सोऽधिकभावाच्चण्डवेग इति द्वितीयः। तथेति पुरुषवत्। यस्य संप्रयोग इत्यादिना मन्दमध्यचण्डवेगा इति नायिकास्तिस्त्र. ॥ ६ ॥

इसके विपरीत मध्यम और तीव्र भोगेच्छा रखने वाले पुरुषों को मध्यम वेग और चण्डवेग कहते हैं। इसी प्रकार भोगेच्छा के अनुसार स्त्रियाँ भी मन्दवेग, मध्यमवेग और चण्डवेग तीन प्रकार की होती हैं ॥ ६ ॥

तत्रापि प्रमाणवदेव नवरतानि ॥ ७ ॥

प्रमाणवदेवेति–सदृशसंप्रयोगे समरतानि त्रीणि। विपर्यये विषमाणि षट् ॥७॥

लिङ्ग प्रमाण के भेदों के अनुसार बताये गये नौ प्रकार के रतों के समान यहाँ भी नौ प्रकार के स्त्री-पुरुष के सम्भोग होते हैं ॥ ७ ॥

तद्वत्कालतोऽपि शीघ्रमध्यचिरकाला नायकाः ॥ ८ ॥

यथा भावप्रमाणाभ्यां तथा कालतो नव रतानि। भावोत्पत्तिनिमित्तस्य कालस्य शीघ्रादिभेदेन त्रैविध्यात्। यदाह – शीघ्रमध्यचिरकाला इति। शीघ्रेण कालेन रतिर्यस्य। तथा मध्यचिरकालाभ्याम्। नायका इति नायकश्च नायिका चेति 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषनिर्देशः ॥ ८ ॥

लिङ्ग प्रमाण और भोगेच्छा के समान काल से भी नायक और नायिका के शीघ्र, मध्य और चिरकाल—ये तीन भेद होते हैं ॥ ८ ॥

वात्स्यायन ने सम्भोग को यहाँ पर वेगभेद और कालभेद इन दो भागों में विभक्त किया है। जिसका वीर्य कम हो, उत्तेजना कम हो, स्त्री के नख-दन्त प्रहारों को पसन्द न करे वह नायक मन्दवेग है। बल, वीर्य की अधिकता और सम्भोगकालीन क्षत, आघात, प्रहरण की सहिष्णुता एवं रति में अधिक उत्सुकता चण्डवेग नायक के लक्षण हैं। मन्दवेग और चण्डवेग के मध्य जिस नायक की कामशक्ति रहती है वह मध्यमवेग नायक कहा जाता है।

मन्द, मध्य और चण्डवेग भेद से सम्भोग ९ प्रकार का होता है। अर्थात् मन्दवेग वाले नायक के साथ मन्दवेग वाली नायिका के समागम को समान रति कहते हैं। मध्यम वेग वाले नायक के साथ मध्य वेग वाली नायिका के सम्भोग को मध्यम रति कहते हैं। और चण्ड अर्थात् अधिकाधिक वेग वाले नायक के साथ अत्यधिक वेग वाली नायिका के मैथुन को उत्तम रति कहते हैं।

इसी प्रकार कालभेद से भी शीघ्र, मध्य और चिरकाल इन तीन भेदों से ९ प्रकार का मैथुन होता है। स्त्री-पुरुष के मैथुन में कालभेद मैथुन की तृप्ति का परिचायक है। जिसका जितने समय तक वीर्य स्तम्भित रहने के बाद स्खलित होता है उतने समय को प्रमाण कहते हैं जैसे शीघ्र जिसका वीर्य स्खलित हो जाए वह नायक शीघ्र है। उसकी शीघ्र स्खलित होने वाली स्त्री से ही समान रति हो सकती है। शीघ्र नायक की अपेक्षा जो कुछ देर तक मैथुन में ठहरता है उसे मध्य नायक कहते हैं। उसकी उतने ही समय में स्खलित होने वाली स्त्री के साथ समान रति हो सकती है। इसी प्रकार जिस पुरुष का वीर्य बहुत देर में स्खलित होता है, उसकी अधिक समय में स्खलित होने वाली स्त्री से समान रति हो सकती है।

इस विवरण से यह तात्पर्य निकलता है कि न तो मन्दवेग और न चण्ड वेग ही अच्छा है बल्कि मध्यम वेग में मध्यम नायक बनना अधिक अच्छा है। क्योंकि स्त्री और पुरुष की अपनी जो स्वाभाविक रति शक्ति है उसमें यदि विषमता आ जाती है तो सच्चा आनन्द नहीं मिल पाता। इसलिये पुरुष और स्त्री के गुप्ताङ्गों का प्रमाण, सम्भोग काल-प्रमाण, स्खलन काल-प्रमाण और वेगों के प्रमाण भेद से रति के सत्ताइस भेद हुए।

अब इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि उत्तम रति वही है जिसमें प्रमाण, काल और वेग इन तीनों की समता हो और यदि इस नियम के विपरीत मनुष्य मैथुन करता है तो उसे पशु मैथुन कहना चाहिये।

अब विभिन्न आचार्यों के इस मतभेद का उल्लेख किया जा रहा है कि समागम काल में पुरुष के समान ही स्त्री को भी सम्भोग-सुख प्राप्त होता है या नहीं।

तत्र स्त्रियां विवादः ॥ ९ ॥

नायकनायिकयोः स्त्रीपुंसयोः। स्त्रियां विवादः—स्त्रीविषये मतभेद इत्यर्थः ॥९॥

स्त्री के विषय में यहाँ पर आचार्यों में मतभेद है ॥ ९ ॥

तत्र औद्दालकेर्मतम्—

न स्त्री पुरुषवदेव भावमाधिगच्छति ॥ १० ॥

यादृशं सुखं विसृष्टिप्रभवं पुरुषोऽनुभवति तादृशमेव न स्त्री। शुक्राभावात् ॥१०॥

आचार्य औद्दालकि का मत है कि—

पुरुष की भाँति स्त्री को सम्भोग-सुख नहीं मिलता है ॥ १० ॥

किमर्थं तर्हि पुरुषेण संप्रयुज्यत इत्याह—

सातत्यात्त्वस्याः पुरुषेण कण्डूतिरपनुद्यते ॥ ११ ॥

संबाधकस्य स्वभावतः क्रमिजुष्टत्वात्तत्र निसर्गसिद्धा कण्डूतिः । तथा चोक्तम्—'रक्तजाः कृमयः सूक्ष्मा मृदुमध्योग्रशक्तयः । स्मरसद्मसु कण्डूतिं जनयन्ति यथाबलम् ॥' सा त्वस्याः पुरुषेणापनीयते । सातत्यादिति अनवरतसाधनव्यापारेणेत्यर्थः । अन्यथा तत्प्रतिबन्धे कण्ड्वा उत्कोप एव स्यात् ॥ ११ ॥

तब स्त्री किसलिये सम्भोग-रत होती है—

पुरुष के साथ संघर्षण होने से स्त्री की खुजली मिट जाती है ॥ ११ ॥

अपद्रव्येणापि सा स्वयमपनयतीति चेदाह—

सा पुनराभिमानिकेन सुखेन संसृष्टा रसान्तरं जनयति तस्मिन् सुखबुद्धिरस्याः ॥ १२ ॥

सा च कण्डूतिप्रतिरपनीयमाना शलाकिक्रया कर्णकण्डूतिरिव । आभिमानिकेनेति—आभिमानिकं चुम्बनादिसुखं वक्ष्यति । तेन संसृष्टानुगता । रसान्तरमिति—सुखान्तरं जनयति, यत्कण्डूत्यपनोदसुखं यच्च चुम्बनादिसुखं तयोः संसृष्टयो रसान्तरत्वात् । तस्मिन् रसान्तरे सुखबुद्धिरस्याः सुखितास्मीति । कण्डूतिप्रतीकारमात्रे तु न सुखबुद्धिः, तस्या अप्राधान्यात् । ततः 'स्पर्शविशेषविषया आभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थप्रतीतिः प्राधान्यात्' इत्येतद्विशेषलक्षणं तुल्यम् । विशेषो यदत्र न फलवती शुक्राभावात् । तच्च रसान्तरमारम्भात्प्रभृति संतानेन सर्वथा कण्डूत्यपनोदात्प्रवर्तते । पुरुषसुखं तु विसृष्टिभावित्वात् । अत एव तयोः स्वरूपतः कालतश्च न सादृश्यमिति न कालभावाभ्यां नवरतानि ॥१२॥

यदि स्त्री को मात्र अपनी खुजली ही मिटानी है तो वह अन्य उपयोगों से भी शान्त की जा सकती है । उसे तो चुम्बन, आलिङ्गन, क्षत, प्रहरण आदि रति पैदा करने वाली क्रियाओं के कारण पुरुष के साथ सम्भोग करने में वास्तविक आनन्द की अनुभूति होती है ॥ १२ ॥

ननु च पुरुषवद्प्रीतिं स्त्री नाधिगच्छतीति कथमेतदुपलभ्यते ।

पुरुषप्रीतेश्चानभिज्ञत्वात्कथं ते सुखमिति प्रष्टुमशक्यत्वात् ॥

यस्मात्पुरुषप्रीतेश्चेतोधर्मत्वेनातीन्द्रियायाः प्रत्यक्षेणानभिज्ञत्वात् । कस्य ज्ञातुः पुरुषस्येत्यर्थः । चशब्दात्स्त्रीप्रीतेश्च ।

यदा स्त्री पुरुषायमाणा स्वव्यापारेणात्मनः प्रीतिं जनयति ततश्च तदसंवेदनादेव स्वभावात्प्रीतिरस्या इति कथमुपलभ्यते । पृष्ट्वा ज्ञास्यतीत्यपि नास्तीत्याह—कथमिति । कथं केन प्रकारेण तव सुखं किं विसृष्टचा यथास्माकं किं वान्येनेति । तत्र स्त्रिया विसृष्टिसुखस्यासंवेदनात्प्रकारान्तरसुखस्य च पुरुषेणासंवेदनात् प्रष्टुमपि न शक्यते । किमुत तद्वचनात्परिज्ञानम् ॥ १३ ॥

पुरुष और स्त्री दोनों में से किसी को एक दूसरे की आनन्दानुभूति का ज्ञान नहीं हो सकता है। और न यह बात पूछकर ही निश्चित की जा सकती है क्योंकि मानसिक आनन्द शब्दों के द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥१३॥

तस्मात्पुरुषवद्भावं नाधिगच्छतीति कथमेतदुपलभ्यत इत्याशङ्क्यौद्दालकिरुप-लब्ध्युपायमाह—

कथमेतदुपलभ्यत इति चेत्पुरुषो हि रतिमधिगम्य स्वेच्छया विरमति, न स्त्रियमपेक्षते, न त्वेवं स्त्रीत्यौद्दालकिः ॥ १४ ॥

पुरुषो हीति—पुरुषो रतिमधिगम्य विसृष्टिसुखमनुभूय कृतकृत्यत्वात्स्वेच्छया व्यापाराद्विरमति न स्त्रियमपेक्षते व्याप्रियमाणामपि। न त्वेवं स्त्रीति। सापि यदि पुरुषवद्विसृष्टिसुखमधिगच्छेत्तदा तदधिगम्य पुरुषनिरपेक्षा स्वेच्छया यन्त्र-विश्लेषपूर्वकं विरमेत्। न चैवमन्यत्र पुरुषविरामात्। विरतेऽपि पुंसि पुरुषान्तर-सापेक्षत्वात्। तथा हि केनचित्पुंसा संप्रयुज्य तथावस्थितै [रे] वापरैः संप्र-युज्यमाना काचिद् दृश्यते। अत एवोक्तम्—'अग्निस्तृप्यति नो काष्ठैर्नापगाभिः पयोदधिः। नान्तकः सर्वभूतैश्च न पुंभिर्वामलोचना ॥' इति। तस्मात्स्वेच्छया विरामाभावान्न विसृष्टिसुखाधिगमो यथा प्राग्विसृष्टेः पुरुषस्येति ॥ १४ ॥

इसलिये यह कैसे मान लिया जाय कि स्त्री को पुरुष के समान सम्भोग-सुख नहीं प्राप्त होता है।

समाधान करते हुए आचार्य औद्दालकि कहते हैं कि स्खलित हो जाने के बाद पुरुष का संवेग समाप्त हो जाता है। उसे फिर स्त्री की आवश्यकता नहीं महसूस हुआ करती है। लेकिन स्त्री की प्रवृत्ति ऐसी नहीं होती है ॥१४॥

तत्रैतत्स्यात्। चिरवेगे, नायके स्त्रियोऽनुरज्यन्ते, शीघ्र-वेगस्य भावमनासाद्यावसानेऽभ्यसूयिन्यो भवन्ति। तत्सर्वं भाव-प्राप्तेरप्राप्तेश्च लक्षणम् ॥ १५ ॥

मा भूत्स्वेच्छया विरामोपलम्भात्स्त्रीषु विसृष्टिसुखानुभूतिः, अनुरागदर्शनात्तु स्यात्। तद्यथा चिरवेगे नायके—चिरमुपसृत्य विसृष्टिसुखाधिगमाद्विरते स्त्रियोऽनुर-ज्यन्ते। स्निह्यन्तीत्यर्थः। शीघ्रवेगस्य च नायकस्य क्षिप्रमुपसृत्य सुखाधिगमाद्विर-तस्य। रतान्तेऽभ्यसूयिन्यो द्वेषिण्यो भवन्ति। तत्सर्वमिति—अनुरागो विरागश्चोभयं लक्षणम्। ज्ञापकमित्यर्थः। कस्येत्याह भावस्य प्राप्तेरप्राप्तेश्चेति। तत्रानुरागो योषितां सुखप्राप्तिं ज्ञापयति। विरागश्च दुःखाधिगमात्सुखाप्राप्तिम्। विरागस्य विरुद्धकार्यत्वात्। अनुरागविरागौ च सुखदुःखहेतुकौ पुरुषेषु दृष्टान्तत्वेन सिद्धौ। तेऽपि हि पुरुषायिते चरं व्यापृत्य विरतायां योषित्यधिगतसुखाश्चिरवेगा अनु-

रज्यन्ते। तत्क्षणविरतायां च दुःखाधिगमादनवाप्यते [इति सुखं] रतिसुखमिति विरज्यन्ते। तस्मात्पुरुषस्येव योषितोऽप्यनुरागोपलम्भाद्विसृष्टिसुखाधिगमः प्रतीयते इति ॥ १५ ॥

इस सम्बन्ध में एक बात यह भी है कि बहुत देर तक वेग से सम्भोग करने वाले पुरुष से स्त्रियाँ अनुराग रखती हैं। इसके विपरीत शीघ्र स्खलित होने वालें पुरुष की निन्दा करती हैं। इसलिये स्त्रियाँ जब पुरुषों को प्यार करें तो समझ लेना चाहिये कि उन्हें पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं ॥१५॥

तच्च न। कण्डूतिप्रतीकारोऽपि हि दीर्घकालं प्रिय इति। एतदुपपद्यत एव। तस्मात्संदिग्धत्वादलक्षणमिति ॥ १६ ॥

तच्च नेति—अनुरागो भावप्राप्तेर्लिङ्गमित्येतन्नास्ति, साधारणत्वादस्य। तदाह—कण्डूतिप्रतीकारोऽपि हीति—तस्माच्चिरवेगेन कण्डूतेर्यः प्रतीकारः प्रतिक्रिया, दीर्घकाल इत्यतिचिरकालः सोऽपि स्त्रीणां प्रियः। न केवलं विसृष्टिसुखजननमेतदुपपद्यते [एव न तु नोपपद्यते] एवेत्यनेन योगव्यवच्छेदेन भवत्पक्षेऽप्येतदस्तीति दर्शयति। अन्यथा विसृष्टिसुखाधिगमेऽपि कण्डूतेरप्रतीकारान्न तत्रानुरागः। ततश्च किं विसृष्टिसुखाधिगमादनुरागोऽस्याः किं वा कण्डूतिप्रतीकारसमुत्थ इति संदिग्धः। तथानधिगमात्। विरागोऽपि शीघ्रवेगे योज्यते। तस्मादेतदुभयं संदिग्धत्वाद्विसृष्टिसुखस्य प्राप्तेरप्राप्तेश्च लक्षणमज्ञापकम्। उभयत्र वर्तमानत्वात्। तस्मात्स्वेच्छया विरामाविरामावेव ज्ञापकौ। तौ च स्त्रियां वर्तमानौ स्तः इति न पुरुषवद्रतिमधिगच्छतीति स्थितम् ॥ १६ ॥

यह ठीक नहीं, क्योंकि स्त्री के अनुराग करने से यह सिद्ध नहीं होता कि उसकी भोगेच्छा पूरी हो गई। यह स्वाभाविक बात है कि यदि काफी देर तक सम्भोग किया जाएगा तो काफी देर तक स्त्री की खुजलाहट शान्त रहने से वह पुरुष से अनुराग तो रखेगी ही। इसलिए अनुराग भोगेच्छा-पूर्ति का कोई चिह्न नहीं है ॥ १६ ॥

एतदेव मतमौद्दालकिगीतेन श्लोकेनाह—

संयोगे योषितः पुंसा कण्डूतिरपनुद्यते।
तच्चाभिमानसंसृष्टं सुखमित्यभिधीयते ॥ १७ ॥

कण्डूत्यपनोदसमुत्थं स्पर्शसुखमभिमानसंसृष्टमिति कारणे कार्योपचारादाभिमानिकसुखानुविद्धं सुखमित्यभिधीयते योषिद्भिः ॥ १७ ॥

प्रमाण के लिए आचार्य एक श्लोक का उदाहरण देते हैं—

पुरुषों के साथ संभोग करने से स्त्रियों की खुजली मिटती है और चुम्बन,

आलिंगन आदि मैथुन की सहायक क्रियाओं से मिलकर वही सम्भोग सुख कहलाती है ॥ १७ ॥

बाभ्रव्यमतमाह—

सातत्याद्युवतिरारम्भात्प्रभृति भावमधिगच्छति । पुरुषः पुनरन्त एव । एतदुपपन्नतरम् । नह्यसत्यां भावप्राप्तौ गर्भसम्भव इति बाभ्रवीयाः ॥ १८ ॥

द्वावपि विसृष्टिसुखमधिगच्छतः । स्त्री त्वारम्भाद्यन्त्रयोगात्प्रभृति सातत्यान्नैरन्तर्येण । सा हि पुरुषेणोपसृप्यमाणा प्रभिन्नजलभाण्डवच्छनैः क्लिन्नसम्बाधा भवतीति प्रत्यक्षसिद्धमेतत् । सुखं च पुरुषस्येव विसृष्ट्यनुविद्धमित्यारम्भात्प्रभृति स्त्री भावमधिगच्छति । पुरुषः पुनरन्ते भावमधिगच्छति । तदानीं शुक्रविसर्गात् । एतदिति यथोक्तमुपपन्नतरम् । प्रमाणसिद्धत्वात्, ततश्च तयोर्भिन्नकालत्वान्न सादृश्यमिति न कालतो नव रतानि । भावतस्तु सन्ति । विसृष्टिसुखसादृश्यात् ।

ननु सम्बाधो व्रणस्वभावत्वादपनुद्यमानः क्लिद्यतीत्याह—नहीति । रसप्राप्तौ विसृष्टिसुखाधिगमे तृप्ता हि स्त्री गर्भं धत्ते । यथाह चरककारः—'निष्ठीविका गौरवमङ्गसादस्तन्द्रा प्रहर्षो हृदयव्यथा च । तृप्तिश्च बीजग्रहणं स्वयोन्यां गर्भस्य सद्योऽनुगतस्य लिङ्गम् ॥' इति । तृप्तिश्च भावः । स च न शुक्रविसृष्टिं विनेत्यभिप्रायः । आर्तवं विसृजति न शुक्रमिति केचित् । यथाह—कामाग्नितप्तचित्तस्त्रीपुंसयोरन्योन्यदेहसंसर्गादरणीदण्डाभ्यामिव वह्निः शुक्रार्तवमथनादिति । अस्ति तावत्तृप्तिनिबन्धनं किं तदिति चिन्त्यते । यदि तन्न शुक्रं कथं योषितो गर्भसम्भव उत्पद्यते । यथा हि पुरुषसंसर्गात्स्त्री गर्भं धत्ते तथा योषित्संयोगादपि । यथोक्तं सुश्रुते—'यदा नारी च नारी च मैथुनायोपपद्यते । अन्योन्यं मुञ्चतः शुक्रमनस्थिस्तत्र जायते ॥' तस्माद्रसधातोरुत्पन्नोऽसृग्धातुरेव कस्यांचिदवस्थायामार्तवम् । शुक्रधातुस्तु मज्जधातोरुत्पद्यत इति ॥ १८ ॥

बभ्रु आचार्य के शिष्यों का कहना है कि पुरुष जिस समय स्खलित होने लगता है उस समय उसे आनन्द आता है और स्खलित होने पर समाप्त हो जाता है । किन्तु स्त्री को सम्भोग प्रारम्भ होते ही निरन्तर आनन्द की अनुभूति होती रहती है । यह मानी हुई बात है कि भोगेच्छा और भोगानन्द न हो तो कभी भी गर्भ स्थिर नहीं हो सकता है ॥ १८ ॥

अत्रापि तावेवाशङ्कापरिहारौ भूयः ॥ १९ ॥

अत्रापीति—बाभ्रव्यमतेऽपि । तावेवेति पूर्वोक्तावाशङ्कापरिहारौ वाच्यौ । तत्र यद्यारम्भात्प्रभृति भावाधिगमस्तदा चिरवेगेऽनुरज्यन्ते । शीघ्रवेगस्य चावसानेऽप्यसू-

यिन्य इत्ययं भेदो न युज्यते। तत्र यत्राप्यासां भावाधिगमाद् दृश्यते च भेदः। यस्मादनुरागस्तस्मादन्ते पुरुषवद्भावस्य प्राप्तिः। यतः सासूया तस्मान्नारम्भात्प्रभृतीत्याशङ्कापरिहारोऽपि। तन्न। कण्डूतिप्रतीकारोऽपि दीर्घकालः प्रिय इति कण्डूत्यपनोदाभावाच्च शीघ्रवेगे च प्रद्वेषः। सत्यपि भावाधिगमे कण्डूत्यपनोदस्याधिककालस्याभावात्। अथवा दीर्घकालं भावजननमपि प्रियमिति योज्यम्। भावस्याधिकृतत्वात्। शीघ्रवेगे च विरज्यन्ते। चिरकालं भावस्याजननात्। योषितो हि चिरानुबन्धनं भावमुत्पद्यमानमिच्छन्ति। तासामष्टगुणकामत्वात्। एवं सति न पुंभिर्वामलोचनास्तृप्यन्तीति युक्तम्। तेषामेकगुणकामत्वात्, न पुनर्विसृष्टिसुखाभावादिति। भूयश्चेति पुनराशङ्कापरिहारः॥ १९॥

बाभ्रव्य आचार्यों के उपर्युक्त मत में भी वही शंकाएँ उठती हैं जो आचार्य औद्दालकि के मत में उठायी जा चुकी हैं, उन शंकाओं का समाधान भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिए॥ १९॥

यदाह—

तत्रैतत्स्यात्—सातत्येन रसप्राप्तावारम्भकाले मध्यस्थचित्तता नातिसहिष्णुता च। ततः क्रमेणाधिको रागयोगः शरीरे निरपेक्षत्वम् अन्ते च विरामाभीप्सेत्येतदुपपन्नमिति॥२०॥

रतस्यारम्भकाले मध्यस्थचित्तता नखक्षतादीनामप्रयोगः। नातिसहिष्णुता च नखक्षतादीनां प्रयुज्यमानानां नातिक्षमता। ततश्च क्रमेणारम्भादुत्तरकालं तरतमभेदादधिकरागयोग इति मध्यस्थचित्ततायां विपर्ययः। शरीरेऽपि निरपेक्षत्वमेत्यतिसहिष्णुतया। अन्ते च विरामाभीप्सा प्रयोगनिवृत्तीच्छा। एतत्सर्वमवस्थान्तरं योषितः सातत्याद्रसप्राप्तौ सत्यामनुपपन्नम्। प्रारम्भात्प्रभृत्येकरूपतया सातत्येन विसृष्टिसुखस्य प्रवृत्तत्वात्। पुरुषस्य विसृष्टचवस्थायामेतदवस्थान्तरं दृश्यत इति॥ २०॥

इस पर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि यदि स्त्री को लगातार आनन्द की अनुभूति हुआ करती है तो क्या वजह है कि संभोग के प्रारंभ में जब पुरुष उत्तेजित होकर छटपटाता है तो स्त्री शान्त, निश्चेष्टा रहती है, नखक्षत, दन्तक्षत, कुचमर्दन का भी निषेध करती रहती है और अन्त में वह यही चाहती है कि पुरुष संभोगरत रहे।

इससे तो यही मालूम होता है कि यह कहना भूल है कि स्त्री को आदि से अन्त तक आनन्द की अनुभूति हुआ करती है॥ २०॥

तच्च न। सामान्येऽपि भ्रान्तिसंस्कारे कुलालचक्रस्य भ्रमर-

कस्य वा भ्रान्तावेव वर्तमानस्य प्रारम्भे मन्दवेगता ततश्च क्रमेण पूरणं वेगस्येत्युपपद्यते । धातुक्षयाच्च विरामाभीप्सेति । तस्माद्नाक्षेपः ॥ २१ ॥

नैवानुपपन्नम् । कुलालचक्रादिवदुपपद्यत एव । भ्रमरकं काष्ठमयं क्रीडनकद्रव्यम् । तद्दीर्घेण सूत्रेणावेष्ट्य लाडिका भ्रमयन्ति । यथा तयोर्दण्डे सूत्रप्रत्याक्षिप्ते भ्रान्तिसंस्कारे समानेऽप्यादिमध्यावसानेषु भ्रान्त्यामेव वर्तमानयोरन्यथा भ्रान्त्यभावात्तत्संस्कारोऽस्तीति कथं प्रतीयते । प्रारम्भे मन्दवेगता मन्दभ्रमणम् । ततः क्रमेण तरतमभेदेन पूरणं वेगस्य । यथा तत्कुलालचक्रं भ्रमरकं वा निश्चलतरमिव स्थितमिति एवं योषितोऽपि पुरुषेणोपसृप्तादिभिः प्रत्ययैरुत्पद्यमाने विसृष्टिसुखे समानेऽप्यादिमध्यावसानेषु प्रारम्भकाले मन्दवेगता मृद्वी रतिः । तत्र मध्यस्थचित्तता नातिसहिष्णुता च । ततः क्रमेण पूरणं वेगस्याधिक्यं रतेः । यत्राधिकचित्तवृत्त्या शरीरनिरपेक्षत्वमिति ।

सातत्येन भावस्य प्रवृत्तत्वात्कथं विरामाभीप्सेत्याह—धातुक्षयाच्चेति । समुत्पन्ने कामिताख्ये भावे यः शुक्रधातुः स्वस्थानाच्च्युतः स्वनाडीं प्रतिपद्यते तस्यारम्भात्प्रभृति शनैः शनैः स्यन्दनात्क्षये निवृत्तरागत्वाद्विरामाभीप्सा । तस्मादनाक्षेप इति—अचोद्यं विसृष्टिप्रभवस्य भावस्य सन्तानेन प्रवृत्तस्यावस्थान्तरमनुपपन्नमिति ॥ २१ ॥

ऐसा ही सामान्य उदाहरण है—कुम्हार के चाक या लट्टू में यद्यपि घूमने की क्रिया निरन्तर जारी रहती है लेकिन आरंभ में उसकी गति मंद रहती है, धीरे-धीरे बढ़कर बहुत तेज हो जाती है और अन्त में गति बंद हो जाती है। इसी प्रकार स्त्री की भोगेच्छा भी प्रारंभ में मन्द होकर धीरे-धीरे तीव्र होती जाती है और स्खलन होने के बाद वह शान्त हो जाती है। इसीलिए कहा गया है कि संभोग के प्रारंभ से लेकर वीर्य-स्खलन तक स्त्री की भोगेच्छा निरन्तर बनी रहती है ॥ २१ ॥

अमुमेवार्थं बाभ्रव्यगीतेन श्लोकेनाह—

सुरतान्ते सुखं पुंसां स्त्रीणां तु सततं सुखम् ।
धातुक्षयनिमित्ता च विरामेच्छोपजायते ॥ २२ ॥

इस मत के पक्ष में बाभ्रव्यों का एक श्लोक भी है—

संभोग के अन्त में वीर्य स्खलित होने पर ही पुरुष को संभोग-सुख प्राप्त होता है, किन्तु स्त्रियों को आरम्भ से ही सुखानुभूति होने लगती है और स्खलन हो जाने पर ठहरने की इच्छा होती है ॥ २२ ॥

एवं पक्षद्वयमुपन्यस्य सिद्धान्तमाह—

तस्मात्पुरुषवदेव योषितोऽपि रसव्यक्तिर्द्रष्टव्या ॥ २३ ॥

यत एवं विवादस्तस्माद्रसव्यक्ती रत्युत्पत्तिर्यथा पुरुषस्य विसृष्टिरन्ते च तद्वदेव योषितोऽपि द्रष्टव्या ॥ २३ ॥

अन्त में आचार्य वात्स्यायन अपना मत देते हैं—

इससे यही समझना चाहिए कि पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी सुरतान्त में सुख की अनुभूति हुआ करती है ॥ २३ ॥

पुरुषसुखेन हि स्त्रीसुखस्य वैसादृश्यं स्वरूपतः कालतो वा स्यादित्याक्षिपति—

कथं हि समानायामेवाकृतावेकार्थमभिप्रपन्नयोः कार्यवैलक्षण्यं स्यात् ॥ २४ ॥

तत्र विजातीययोः पुरुषवडवयोर्भवेत्सुखं वैसादृश्यमित्याह—समानायामेवाकृताविति । तुल्यायां मनुष्यजातौ । तुल्यजातीययोरपि स्नानभोजनार्थं प्रवर्तमानयोः स्यादित्याह—एकमिति । एकं रताख्यमर्थमाभिमुख्येन प्रवृत्तयोः । कथं कार्यवैलक्षण्यं स्यात् ॥ २४ ॥

समान जाति और समान प्रयोजन में संलग्न स्त्री-पुरुष का सुख एक दूसरे से भिन्न कैसे हो सकता है ॥ २४ ॥

उपायवैलक्षण्यादभिमानवैलक्षण्याच्च ॥ २५ ॥

उपायवैलक्षण्यादभिमानवैलक्षण्याच्च । कथमुपायवैलक्षण्यं च । निसर्गात् । तत्र विजातीययोः पुरुषबडवयोर्भावसुखस्य वैजातीयकार्यस्य सुखस्य स्वरूपतः कालतश्च भेदो नेत्यर्थः । ये च समानाकृतयः सन्त एककार्याभिपन्नास्तेषां सदृशं कार्यम् । 'नहि मेषयोः समानाकृत्योरेकस्मिन्युद्धलक्षणार्थे प्रवृत्तयोरभिघातः कार्यं कालस्वरूपाभ्यां भिद्यते' इति पुनः पुनः शास्त्रकार एव परपक्षमपोहयन्नाह—स्यादुपायवैलक्षण्यादिति । भवेत्तत्र कार्यभेद उपायभेदात् ॥ २५ ॥

अथवा स्थिति और अनुभूति का अन्तर पड़ने पर आनन्द में भेद हो सकता है ॥ २५ ॥

कथमुपायवैलक्षण्यं तु सर्गात् । कर्ता हि पुरुषोऽधिकरणं युवतिः । अन्यथा हि कर्ता क्रियां प्रतिपद्यतेऽन्यथा चाधारः । तस्माच्चोपायवैलक्षण्यात्सर्गादभिमानवैलक्षण्यमपि भवति । अभियोक्ताहमिति पुरुषोऽनुरज्यते । अभियुक्ताहमनेनेति युवतिरिति वात्स्यायनः ॥ २६ ॥

कथमिति—स चोपायभेदो निरूप्यमाणः स्त्रीपुंसव्यापारव्यतिरेकेण नास्तीत्याह—उपायवैलक्षण्यं तु सर्गादिति। उपायभेदः सृष्टेरित्यर्थः। एषैव हि सृष्टिः स्त्रीपुंसयोर्यदेकः कर्तान्यश्चाधार इति। तदेव योजयन्नाह—अन्यथेति। एकस्य निम्नं मेहनमपरस्योन्नतम्। ततश्च ग्रास्यग्रासकभावान्मेहनयोः क्रियाभेदः। तस्माच्चैवंभूतव्यापारात्मकत्वादुपायवैलक्षण्यान्न केवलं भवति तत्कार्यभेदोऽभिमानभेदोऽपि भवति तदेव दर्शयन्नाह—अभियोक्तेत्यादि। अहमेनां रन्तुमनुयुञ्जे इति कर्तृव्यापारापेक्षया पुरुषोऽभिमन्यमानोऽनुरज्यते। अहमनेनाभियुक्ता रन्तुमिति चाधारव्यापारापेक्षया युवतिरभिमन्यमानानुरज्यते। ततश्च तावुत्पन्नाभिमानानुरागौ सम्प्रयोगे व्याप्रियमाणावपि कालस्वरूपाभ्यां सदृशं भावमभिगच्छतः। न तु क्रियाभेदमात्राद्विसदृशम्। ततो ह्यभिमानमात्रं भिद्यते न कार्यमेतच्चेतसि कृत्वा शास्त्रकारो व्यक्ताभिप्रायं स्वपक्षं दर्शयति स्वनाम्ना ॥ २६ ॥

वात्स्यायन का कहना है कि सम्भोग-सुख में भेद कैसे हो सकता है। अवस्था भेद तो जन्मजात होता है। यह तो मानी हुई बात है कि पुरुष कर्त्ता (करने वाला) है और स्त्री अधिकरण (आधार-कराने वाली) है। पुरुष की क्रिया स्त्री की क्रिया से भिन्न हुआ करता है। क्रियाओं के भेद से अनुभूति में यह भेद होगा—स्वाभाविक है कि पुरुष आनन्द की अनुभूति करता हुआ यह सोचता है कि मैं सम्भोग कर रहा हूँ और स्त्री सोचती है कि मैं इस पुरुष से सम्भोग करा रही हूँ। इसलिए अवस्था और अनुभूति के भिन्न होने से मात्र इतना भेद होता है किन्तु रति में कोई भेद नहीं होता है ॥२६॥

परस्यापि शास्त्रकारेण भिन्नवैलक्षण्यमभ्युपगतोपायवैलक्षण्यमभ्युपगतं तस्मात्स्वयं कथं कार्यभेदः, परं नाभ्युपगच्छेदित्यभिप्रायो वर्तते तन्निराकर्तुं शास्त्रकारः प्रकटयति—

तत्रैतत्स्यादुपायवैलक्षण्यवदेव हि कार्यवैलक्षण्यमपि कस्मान्न स्यादिति। तच्च न। हेतुमदुपायवैलक्षण्यम्। तत्र कर्त्राधारयोर्भिन्नलक्षणत्वादहेतुमत्कार्यवैलक्षण्यमन्याय्यं स्यात्। आकृतेरभेदादिति ॥ २७ ॥

उपायवैलक्षण्यवदिति। यथाऽनयोर्व्यापारो भिन्नोऽभ्युपगतस्तद्वदेव सुखाख्यमपि कार्यं भिन्नं कस्मान्नाभ्युपगम्यते तज्जन्यत्वादित्याशङ्क्याह—तच्च नेति। तज्जन्यत्वे कार्यस्य न वैलक्षण्यमपि तूपायवैलक्षण्यमेव युक्तं तस्माद्धेतुमदुपायवैलक्षण्यं कुत इत्याह—कर्त्राधारयोर्भिन्नलक्षणत्वादिति। स्वतन्त्रः कर्ता। अधिकरणमाधारः। तयोर्हेत्वोर्भिन्नस्वभावत्वात्तद्व्यापारावपि तज्जन्यत्वाद्भिन्नाविरत्यर्थः।

यत्तु कार्यस्य तज्जन्यत्वेऽपि न वैलक्षण्यं तस्य निरूप्यमाणोऽन्यो हेतुर्नास्ती- त्याह—अहेतुमदिति । अहेतुत्वाच्च कार्यवैलक्षण्यमिति । अन्याय्यं युक्तिशून्यमभ्युपगतं स्यात् । तामेव युक्तिं स्मारयन्नाह—आकृतेरभेदादिति । समानायामेव मनुष्य- जातावेकाभिसन्धानयोः स्त्रीपुरुषयोर्व्यापारौ परस्परापेक्षौ कालस्वरूपाभ्यां सदृशं सुखं जनयतः ॥ २७ ॥

पुनः आक्षेप करते हैं—

पुनः यह आक्षेप प्रस्तुत करते हैं कि जब स्त्री-पुरुष की स्थिति में भेद है तो फिर उनके सम्भोग-सुख में भेद क्यों न होगा ? आक्षेप का उत्तर देते हैं—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । पुरुष और स्त्री के अंगों में भेद होने से स्थिति में भेद तो होगा ही किन्तु बिना कारण के स्त्री-पुरुष के समागम के फल—सम्भोग-सुख में भेद सम्भव नहीं हो सकता है, क्योंकि स्त्री और पुरुष समान जाति है ॥ २७ ॥

तत्रैतत्स्यात् । संहत्य कारकैरेकोऽर्थोऽभिनिर्वर्त्यते । पृथ- क्पृथक्स्वार्थसाधकौ पुनरिमौ तदयुक्तमिति ॥ २८ ॥

देवदत्तः काष्ठैः स्थाल्यामोदनं पचतीत्यादौ देवदत्तादिभिः कर्तृकरणाधारैः कारकैः सम्भूयौदनं दृश्यते। परस्परसाधकौ पुनरिमौ स्त्रीपुंसौ । यतो युवतिराधारः पुरुषव्यापारापेक्षः स्वसन्तानेषु सुखाख्यं स्वार्थं साधयति पुरुषश्च कर्ता स्त्रीव्यापा- रापेक्ष इति । एतच्च भिन्नार्थसाधकत्वं कारकाणामयुक्तम् । ओदनादावदृष्टत्वात् । दृश्यते च स्त्रीपुंसयोः कर्त्राधारयोः सुखरूपं पृथक्कार्यं तथा समानाकृतित्वमपि । तदेव कार्यं कालस्वरूपाभ्यां विसदृशं स्यादित्यभिप्रायः ॥ २८ ॥

पुनः प्रश्न उपस्थित करते हैं—

यहाँ प्रश्न यह है कि जब भिन्न कर्त्ता मिल-जुल कर काम करते हैं तब एक ही काम पूरा होता है । जब स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर एक ही काम— सम्भोग—करते हैं तब यह कहना कि उन्हें अलग-अलग सम्भोग-आनन्द प्राप्त होता है—ठीक नहीं है ॥ २८ ॥

तच्च न । युगपदनेकार्थसिद्धिरपि दृश्यते । यथा मेषयो- रभिघाते कपित्थयोर्भेदे मल्लयोर्युद्ध इति । न तत्र कारकभेद इति चेदिहापि न वस्तुभेद इति । उपायवैलक्षण्यं तु सर्गादिति तदभिहितं पुरस्तात् । तेनोभयोरपि सदृशी सुखप्रतिपत्तिरिति ॥

तच्च नेति । नैतदयुक्तं किं तु युक्तमेव । युगपदनेकार्थसिद्धिदर्शनात् । यथा

मेषयोरभिघात इति । अभिघातविषये युगपदनेकार्थसिद्धिर्दृश्यते । युगपद्द्विधा चाभिघातो भवतीत्यर्थः । एवं कपित्थयोर्भेदे मल्लयोर्युद्ध इति । तथा स्त्रीपुंसयोः कारकयोः पृथक्कार्यं सदृशं च स्यादिति ।

मेषकपित्थमल्लग्रहणं तिर्यगचेतनमनुष्येष्वप्यस्य न्यायस्य प्राप्तिख्यापनार्थम् । तत्र को भेद इति चेत्, तत्रैतत्स्यात् । मेषादियुद्धादावपि प्रतियोगिनौ कर्तारौ न तत्र कारकान्तरम् । इह तु कर्त्राधाराविति । कथं न विसदृशं कार्यमित्याशङ्कयाह—इहापीति । स्त्रीपुंसयोरपि न कश्चित्परमार्थतः कारकयोर्भेदः, अपि तु द्वावप्येतौ कर्तारौ क्रियां निर्वर्तयतः । केवलं करणाधिकरणादयो भेदा बुद्धिकल्पिता व्यवहारार्थं व्यवस्थाप्यन्ते ।

एवं च सति 'उपायवैलक्षण्यं तु सर्गात्' इति यदुक्तं तदभिहितं प्रतिविहितं पुरस्ताद् द्रष्टव्यम् । कर्त्राधारलक्षणस्यैव वास्तवत्वात् । तेन प्रतिविहितेनोभयोरपि स्त्रीपुंसयोः सदृशी सुखप्रसिद्धिः । कालस्वरूपाभ्यां सदृशं सुखमुत्पद्यत इत्यर्थः । अन्यथा कथं तयो रागज्वरोपशमः । तामेवात्यन्तिकीमानन्दावस्थामधिकृत्योपस्थेन्द्रियमानन्देन्द्रियमिति गीयते ॥ २९ ॥

समाधान करते हैं—

ऐसा नहीं, एक साथ अनेक प्रयोजन सिद्ध होते देखे जाते हैं । जैसे—दो मेढ़ों के युद्ध में, दो कपित्थ फलों को एक साथ तोड़ने में और दो पहलवानों की कुश्ती में । इन सब मेढ़ों, कपित्थों और मल्लों को समान ही फल मिलता है । यदि यह कहा जाए कि मेढ़ों, कपित्थों और मल्लों में स्त्री-पुरुष की भाँति लिंग भेद नहीं है तो स्त्री और पुरुष में भी वस्तु भेद नहीं है क्योंकि दोनों ही मनुष्य हैं और यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि लिंग-भेद तो स्वाभाविक है । इसलिए सिद्ध हुआ कि स्त्री और पुरुष दोनों को एक ही प्रकार के सुख का अनुभव होता है ॥ २९ ॥

अमुमेवार्थं शास्त्रकारः संग्रहश्लोकेनाह—

जातेरभेदाद्दम्पत्योः सदृशं सुखमिष्यते ।
तस्मात्तथोपचर्या स्त्री यथाग्रे प्राप्नुयाद्रतिम् ॥ ३० ॥

दम्पत्योः स्त्रीपुंसयोः । एकार्थाभिप्रपन्नयोरित्यर्थः । एतावत्तु स्यात्, अवान्तरस्त्रीजातिभेदाद्यदपरमस्याः कण्डूत्यपनोदसुखं यच्चोपमृद्यमाने सम्बाधे स्यन्दनं शुक्रस्य विसृष्टिसुखं तु पुरुषवदन्त एवेति । यथोक्तम्—'कण्डूत्यपगमात्स्त्रीणां क्षरणाच्च सुखं द्विधा । स्यन्दनं च विसृष्टिश्च शुक्रस्य क्षरणं द्विधा । क्लिन्नता केवलस्यन्दाद्विसृष्टेर्मथनात्सुखम् ॥ अन्ते त्वाक्षिप्तवेगाया विसृष्टिर्नरवत्स्मृता ॥' तत्र रसादंपत्योः समकाला चेद्रतिरुत्तमः पक्षः । समरतत्वात् । भिन्नकाला चेद्, पुरु-

षस्य प्रागधिगतभावत्वाद्ध्वजभङ्गे न स्त्रीभावमधिगच्छेत् । तस्मात्समरताद्विषमरते तथोपचर्या स्त्रीचुम्बनालिङ्गनादिभिरुपचरणीया यथाग्रे प्राप्नुयाद्रतिम् । स्त्रिया प्रागधिगते भावे पुरुषो युक्तयन्त्रो वेगं कुर्यादात्मनो भावं निर्वर्तयितुमिति ॥

अब सम्भोग-सुख प्राप्त करने की पद्धति बतलाते हैं—

सजातीय होने के कारण स्त्री और पुरुष को सम्भोग में समान सुख प्राप्त होता है । इसलिए सम्भोग काल में चुम्बन, आलिंगन, कुचमर्दन आदि बाह्य सम्भोग द्वारा स्त्री को इस तरह द्रवित करना चाहिए कि पुरुष से पहले स्त्री की कामेच्छा पूरी हो जाए । फिर अपनी भोगेच्छा को पूरी करने के लिए प्रचंड वेग से मैथुन करना चाहिए ॥ ३० ॥

सदृशत्वस्य सिद्धत्वात्, कालयोगीन्यपि भावतोऽपि कालतः प्रमाणवदेव नव रतानि ॥ ३१ ॥

कालयोगीन्यपीति । अपिशब्दाद्भावयोगीन्यपि । अन्यथा कण्डूत्यपनोदसुखस्य विसृष्टिसुखस्य वा वैसादृश्यात्कथं भावतो नव रतानि ॥ ३१ ॥

निष्कर्ष में रति के नौ भेद बतलाते हैं—

स्त्री और पुरुष की समानता सिद्ध होने पर काल, भाव और प्रमाण—प्रत्येक के अनुसार स्त्री-पुरुषों के नौ प्रकार के रत होते हैं ॥ ३१ ॥

रतिरतयोर्व्यवहारार्थं पर्यायान्तरमाह—

रसो रतिः प्रीतिर्भावो रागो वेगः समाप्तिरिति रतिपर्यायाः । संप्रयोगो रतं रहः शयनं मोहनं सुरतपर्यायाः ॥ ३२ ॥

फलावस्था रतिः । हेत्ववस्था च रतम् । तयोः पर्यायशब्दानामेकार्थविषयत्वेऽपि निमित्तं भिद्यते । यथा—ऐश्वर्ययोगादिन्द्रः शक्तियोगाच्छक्रः । तत उपस्थेन्द्रियेण रसनादनुभवनाद्रसः । फलावस्थायां सुखत्वेन चित्तपरिस्पन्देन रमणाद्रतिः । चित्तप्रणयात्प्रीतिः । कामिताख्येन भावेन भाव्यमानत्वाद्भावः । कामिताख्योऽपि भाव्यते फलरूपोऽनेनेति भावः । चित्तरञ्जनाद्रागः । शुक्रधातोः सुखानुविद्धस्य नाडीसुखात्पृथग्भवनाद्वेगः । रतस्य समापनात्समाप्तिरिति ।

असंगतयोः स्त्रीपुंसयोः सम्यक्प्रकृष्टो योगः संप्रयोगः । हेत्ववस्थायां वा क्वापि चित्तपरिस्पन्देन रमणाद्रतम् । दम्पतिव्यतिरिक्तमन्यं रहयतीति रहः । शयनीयप्रतिशय्यिकयोः शयनाच्छयनम् । अन्यव्यापारेषु मोहनाद्वैचित्यकरणान्मोहनमिति ॥

अब रति और सुरत शब्दों के पर्यायवाची शब्दों की परिगणना करते हैं—

रस, रति, प्रीति, भाव, राग, वेग और समाप्ति—ये शब्द रति अर्थात

आनन्द के अर्थों में प्रयुक्त होते हैं तथा सम्प्रयोग, रत, रहः (एकान्त में होना), शयन, मोहन—ये शब्द सुरत—सम्भोग अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ॥

प्रमाणकालभावजानां संप्रयोगाणामेकैकस्य नवविधत्वात्तेषां व्यतिकरे सुरतसंख्या न शक्यते कर्तुम् । अतिबहुत्वात् ॥ ३३ ॥

प्रमाणकालभावजानां त्रयाणां रतानामेकैकस्य नवविधत्वात्समुदायेन सप्तविंशतिः । द्विविधं रतम्—शुद्धं संकीर्णं च । तत्र शुद्धस्यासंभवात्संकीर्णमेव युक्तमभिधातुमिति मन्यमानः शास्त्रकार आह—तेषामिति । सप्तविंशतिसंख्यानां व्यतिकरे संयोगे । तत्रापि न द्वाभ्याम् । असंभवात् । त्रिभिरेव व्यतिकरः । सुरतसंख्या न शक्यते वक्तुम् । प्रत्येकनिर्देशेनातिबहुत्वात् । तेषु हि प्रत्येकं निर्दिश्यमानेषु ग्रन्थगौरवं स्यात् । संक्षेपेण च संख्यानस्य प्रयोजनं नास्ति । तस्मात्पूर्वसंख्ययैव योजनीयमित्यभिप्रायः ।

तत्र समं विषमं च संकीर्णकम् । तद्यथा—शशस्य मन्दशीघ्रवेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य मध्यमध्यवेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य चण्डचिरवेगस्य मृग्या तथाविधया । शशस्य मन्दमध्यवेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य मन्दचिरवेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य मध्यशीघ्रवेगस्य मृग्या तथाविधया । शशस्य मध्यचिरवेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य चण्डशीघ्रवेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य चण्डमध्यवेगस्य मृग्या तथाविधया । इति सदृशसंप्रयोगे समानि नव संकीर्णरतानि ॥

एषामेव नवानां शशानामेकैकस्य सदृशीं मृगीमेकां त्यक्त्वा शेषाभिरतथाविधाभिरष्टभिर्योगे द्वासप्ततिरिति विषमाणि संकीर्णरतानि । यथा शशस्य नवप्रकारतया तथाविधया बडवया विषमाणि नव संकीर्णरतानि । अतथाविधाभिरष्टभिर्योगे द्वासप्ततिरिति विषमाण्येव । एवं हस्तिन्या तावन्त्येव विषमाण्यतिविषमाणि चेति संक्षेपेण शशस्य त्रिचत्वारिंशशतद्वयम् (२४३) । तावदेव वृषस्याश्वस्य च । समुदायेन चैकोनत्रिंशानि सप्तशतानि (७२९) ॥ ३३ ॥

रत के प्रमुख भेद—

लिंग और योनि के प्रमाण, सम्भोग-काल और मानसिक भाव इनसे उत्पन्न होने वाले प्रत्येक प्रकार के रत हैं । यही परस्पर मिलकर अनेकों प्रकार के बनते हैं । बहुसंख्यक होने से इनकी गणना नहीं की जा रही है ॥ ३३ ॥

तेषु तर्कादुपचारान्प्रयोजयेदिति वात्स्यायनः ॥ ३४ ॥

संकीर्णरतेषु बुद्धया परिच्छिन्नेषु, तर्कादुपचारान्प्रयोजयेत्—यथाप्रमाणकालभावजेषु ये यथायथमालिङ्गनादय उपचारास्तान् रहयित्वा संकीर्णानिव योजयेत् ।

यथा तत्समरतमेव प्रायत्निकं स्यादित्यर्थः । अत्र बाभ्रवीयाः श्लोकाः—'पौरुषं मेहनं यत्र मेहने परिघृष्यते । भावकालौ समानौ च तद्रतं श्रेष्ठमुच्यते ॥ भिद्यते मेहनं यत्र घृष्यते च न सर्वशः । विषमौ कालभावौ च कनिष्ठं तदुदाहृतम् ॥ सुरतं सर्वसाम्ये स्याद्वैषम्ये दूरतं स्मृतम् । मध्यमानि तु सर्वाणि तेषु चाहुर्बलाबलम् ॥ बलीयान्सर्वतः कालः कालेऽपि हि शशोऽपि सन् । संस्पृशत्येव सर्वत्र हस्तिनीमेहनोदरम् ॥ एवं वाजी च कथ्येत मृगीकालप्रकर्षणः । तस्मात्प्रमाणमेवाहुर्बलीयः सर्वतः परे ॥ बलीयान्वेग इत्यन्ये यस्मादश्वोऽप्यवेगवान् । नैव साधयितुं शक्तो वेगः कालप्रकर्षणः ॥ एवं तु नैव खिद्येत मन्दवेगापि नायिका । यथाविषयमेतासां तस्माज्ज्ञेयं बलाबलम् ॥ हीनो भावप्रमाणाभ्यां वेगवान्कालवर्जितः । कालप्रमाणहीनश्च तत्र शेषेण साधयेत् ॥' इति ॥ ३४ ॥

वात्स्यायन का कहना है कि इन विविध प्रकार के रतों में तर्क बुद्धि द्वारा विचार करके सम्भोग-रत होना चाहिए ॥ ३४ ॥

तत्र स्वभावतो यो यस्य भावः कालश्च स भावान्तरं कालान्तरं च यदा प्रतिपद्यते तदा भावकालान्तरसंक्रान्तिः । तां दर्शयितुमाह—

प्रथमरते चण्डवेगता शीघ्रकालता च पुरुषस्य, तद्विपरीतमुत्तरेषु । योषितः पुनरेतदेव विपरीतम् । आ धातुक्षयात् ॥

शीघ्रमध्यचिरवेगाणां मन्दमध्यचण्डवेगानामन्यतमस्य प्रकृतिस्थस्य प्रथमरते स्वभेदापेक्षया शीघ्रवेगता चण्डवेगता च द्रष्टव्या। तदानीं प्रवृद्धत्वाद्रागश्चण्डायमानो द्रुतं प्रशाम्यति । तद्यथा—चिरचण्डवेगस्य प्रथमरते मध्यवेगता चण्डतरवेगता च कालभावाभ्याम् । मध्य [मध्य] वेगस्य शीघ्रवेगता चण्डवेगता च । शीघ्रमन्दवेगस्य शीघ्रतरवेगता मध्यवेगता च । शीघ्रमध्यवेगस्य शीघ्रतरवेगता चण्डवेगता च । शीघ्रचण्डवेगस्य शीघ्रतरवेगता चण्डतरवेगता च । मध्यमन्दवेगस्य शीघ्रवेगता मध्यवेगता च । मध्यचण्डवेगस्य शीघ्रवेगता चण्डतरवेगता च । चिरमन्दवेगस्य कालभावाभ्यां [मध्यवेगता] मध्यवेगता च । चिरमध्यवेगस्य मध्यवेगता चण्डवेगता च । इति नव प्रथमरते संक्रान्तिरतानि ।

तद्विपरीतमुत्तरेष्विति—प्रथमरते यदुक्तं तस्य विपरीतं द्वितीयादिषु रतेष्वित्यर्थः । तत्र कामस्यैकगुणत्वात्पुरुषस्य प्रशान्तरागत्वाद् द्वितीये रते प्रकृतिस्थैव भावकालान्तरसंक्रान्तिः । ततः शनैः शनैर्हीयमानरागत्वात्तृतीयादिषु स्वभेदापेक्षया चिरतरतमवेगतादयो मन्दतरतमवेगतादयश्च धर्माः । यावच्छुक्रधातुक्षयः । इति पुरुषस्य भावकालान्तरसंक्रान्तिः ।

योषितः पुनरेतदेव विपरीतमिति–अत्रापि प्रकृतिस्थायाः प्रथमरते स्वभेदापेक्षया चिरवेगता मन्दवेगता च द्रष्टव्या । तस्या अष्टगुणो हि रागो निसर्गादेव

प्रथमरतेन संधुक्षते। ततश्च तदानीं मन्दायमानश्चिरेण प्रशाम्यति। तद्यथा— चिरचण्डवेगायाः प्रकृतिस्थायाश्चिरतरवेगता मध्यवेगता च कालभावाभ्याम्। मध्य [मध्य] वेगायाश्चिरवेगता मन्दवेगता च। शीघ्रमन्दवेगाया मध्यवेगता मन्दतरवेगता च। इत्येवं शेषास्वपि षट्सु योज्यम्।

तद्विपरीतमुत्तरेषु द्वितीये रते प्रकृतिस्थतैव संक्रान्तिः। ततः शनैः शनैः संधुक्षणात्प्रवर्धमानरागवेगयोः स्वभेदापेक्षया तृतीयादिरतेषु शीघ्रतरतमवेगतादयश्चण्डतरतमवेगतादयश्च धर्माः। यावच्छुक्रधातुक्षयः। इति स्त्रीपुंसयोस्तुल्ये धातुक्षये विशेषः॥ ३५॥

प्रथम रत में वीर्य स्खलित होने तक पुरुष का वेग बहुत अधिक रहता है जिससे उसकी भोगेच्छा शीघ्र ही समाप्त हो जाती है किन्तु दुबारा सम्भोग-रत होने पर पुरुष देर तक ठहरता है। स्त्रियों की प्रवृत्ति इससे प्रतिकूल होती है। पहली बार स्त्रियों की कामाग्नि मंद गति से प्रज्वलित होती है और बहुत देर तक ठहरती है। दूसरी बार उतनी देर तक वह नहीं ठहरती। पुरुष और स्त्री के 'काम' में यह स्वाभाविक भेद है॥ ३५॥

प्राक् च स्त्रीधातुक्षयात्पुरुषधातुक्षय इति प्रायोवादः॥३६॥

यत्पुरुषस्य धातोरेकगुणत्वाद्योषितश्च पश्चादष्टगुणत्वात्तदाह—प्राक्चेति। प्रायोवाद इति न पुंभिर्वामलोचना तृप्यतीति। प्रमाणान्तरं संक्रान्ति च योषितो जघनप्रसारणाद्वाह्वंसाभ्यां पुरुषस्य च वृद्धिविधिना वक्ष्यति॥ ३६॥

अतः सर्वसम्मत मत उद्धृत करते हैं—

प्रायः ऐसा अनुभव किया गया है कि सम्भोग काल में पुरुष स्त्री से पहले स्खलित हो जाता है॥ ३६॥

शीघ्रमध्यचिरवेगा नायिका इत्युक्तम्। काः पुनस्ता इत्याह—

मृदुत्वादुपमृद्यत्वान्निसर्गाच्चैव योषितः।
प्राप्नुवन्त्याशु ताः प्रीतिमित्याचार्या व्यवस्थिताः॥ ३७॥

निसर्गात्स्वभावतो याः स्त्रियो मृद्वङ्गचः, अमृद्वङ्गचोऽपि याश्चुम्बनादिभिर्बाह्यैरान्तरैश्चांगुलिकर्मादिभिरुपमृद्यन्ते ताः शीघ्रतरं प्रीतिं प्राप्नुवन्ति। ताः शीघ्रवेगा इत्यर्थः। तद्विपर्यये ता मध्यचिरवेगा इत्यर्थ इत्युक्तम्। तथा पुरुषोऽपीति। तत्र मृदुत्वं स्वाभाविकं लक्षणम्, शेषं कृत्रिमम्। इत्याचार्या व्यवस्थिता इति सर्वेषामेतदेव मतम्। अव्यभिचारित्वात्॥ ३७॥

कामशास्त्र के सभी आचार्यों का मत यह है कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा शीघ्र रति प्राप्त करती हैं क्योंकि वह स्वभावतः कोमल हुआ करती हैं।

आलिंगन-चुम्बन से उनकी कामाग्नि शीघ्र प्रज्वलित हो उठती है। इससे पूर्वोक्त प्रायोवाद निरस्त हो जाता है ॥ ३७ ॥

एतावदेव युक्तानां व्याख्यातं सांप्रयोगिकम् ।
मन्दानामवबोधार्थं विस्तरोऽतः प्रवक्ष्यते ॥ ३८ ॥

रतावस्थापनमात्रेण सांप्रयोगिकं संक्षेपेण व्याख्यातम् । शास्त्रेण विदित्वालिङ्गनादीनुपचारानुत्प्रेक्ष्य योजयन्ति न मन्दबुद्धय इति तदेवावापोद्वापार्थं विस्तराभिधानम् । प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनं नाम षष्ठं प्रकरणम् ॥ ३८ ॥

स्त्री-पुरुष के सम्भोग के विषय में यहाँ तक जो वर्णन किया गया है वह बुद्धिमानों के लिए है। साधारण समझ के लोगों के लिए अब इसी को विस्तार से बतलाएँगे ॥ ३८ ॥

नवें सूत्र से लेकर अड़तीसवें सूत्र तक सुरत-सम्बन्धी अत्यावश्यक विषयों पर तर्कों और प्रमाणों द्वारा विचार किया गया है। सम्भोग के सम्बन्ध में पहले सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया गया है कि सम्भोग-काल में स्त्री-पुरुष को समान आनन्द प्राप्त होता है या कुछ भेद होता है। आचार्य औद्दालकि का मत है कि स्त्री की गुप्तेन्द्रिय में खुजलाहट रहती है। सम्भोग काल में खुजली कुछ शान्त हो जाती है किन्तु पुरुष के स्खलित हो जाने के बाद भी वह खुजली बनी रहती है और स्त्री की कामवासना तृप्त नहीं हुआ करती है।

बाभ्रवीय आचार्यों का कहना है कि स्त्री-पुरुष के सम्भोग-आनन्द में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि स्त्री को सम्भोग के प्रारम्भ में आनन्द की महती अनुभूति होती है परन्तु पुरुष को स्खलित होने के समय आनन्द आता है। स्त्री की कामवासना कुम्हार के चाक के समान है जिसकी गति प्रारम्भ में मन्द, मध्य में प्रचण्ड और और अन्त में फिर कम हो जाती है किन्तु घूमने की क्रिया जारी रहती है। स्खलित हो जाने पर अलग हो जाने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। तात्पर्य यह कि पुरुष को सम्भोग के अन्त में और स्त्री को प्रारम्भ से अन्त तक आनन्द मिलता है। इतना होने पर भी स्त्रियाँ मन्द वेग वाले पुरुषों को पसन्द नहीं करती हैं, इसलिए कि मन्दवेगी पुरुष उनकी गुप्तेन्द्रिय की खुजलाहट को शान्त नहीं कर पाता इसलिए जो प्रचण्डवेगी होते हैं स्त्रियाँ उन्हें अधिक पसन्द करती हैं।

वात्स्यायन कहता है कि पुरुषों के समान ही स्त्रियों को भी सम्भोग में आनन्द मिलता है क्योंकि दोनों की एक ही मनुष्य की जाति होने से और एक ही कार्य में लगे हुए दोनों को भिन्न प्रकार का सुख कैसे हो सकता

है। हाँ स्थिति और मनोभावों के भेद से सम्भव हो सकता है। लेकिन उपायों द्वारा विषम स्थिति और विषम भावों को भी सम्पूर्ण आनन्दमय बनाया जा सकता है। युक्तियों द्वारा सम्भोग में रस, रति, प्रीति, भाव, राग, वेग और समाप्ति ठीक ढंग से सम्पन्न की जा सकती है। वात्स्यायन कहता है कि प्रीति चार प्रकार से—अभ्यास, विचार, स्मरण और विषयों से—उत्पन्न हुआ करती है। वात्स्यायन का यह कहना बहुत ही युक्तिसंगत है कि पुरुष कर्त्ता है और स्त्री आधार है। सम्भोग में पुरुष का प्रमुख भाग रहता है अवश्य, किन्तु स्त्री को भी इसमें सहायता पहुँचानी चाहिए। यदि स्त्री इस मौके पर उदासीन या निश्चेष्ट बनती है तो दोनों को आनन्द नहीं मिल सकता है। पुरुषेन्द्रिय जब स्त्री-योनि में प्रवेश करती है, दोनों का संघर्षण होता है तो उत्तरोत्तर उद्दीपन बढ़ता है। वीर्य स्खलित होने पर पुरुष की कामवासना शान्त हो जाती है। उसी के साथ स्त्री की भी यदि तृप्ति हो जाती है तो उसे ही सम्भोग का फल कहना चाहिए। इस प्रकार के सम्भोग फल के लिए पहले से तैयारी करनी पड़ती है। वात्स्यायन ने पुरुष और स्त्री की जाति का जो विभाजन किया है और उस विभाजन के अनुसार पुरुषेन्द्रिय और स्त्री की इन्द्रिय की जो नाप-तौल बतलायी है, उसका आशय सम्भोग-परिणाम प्राप्त करना ही है। सम्भोग के पूर्व स्त्री और पुरुष दोनों को कामोत्तेजित होना बहुत आवश्यक है। स्त्री-पुरुष दोनों का जब तीव्र कामोद्दीपन होता है तभी योनि द्वारा और जंघाओं के स्नायु-तन्तुओं की ऐच्छिक या अनैच्छिक गति से रति-क्रिया होने पर अधिक आनन्द प्राप्त हो सकेगा।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि कामकलाओं से अनभिज्ञ होने के कारण स्त्री-पुरुष प्रायः प्रथम-मिलन में ही असफल हो जाया करते हैं। सम्भोग क्रिया में स्त्री की अपेक्षा पुरुष को सावधानी रखने की ज्यादा जरूरत होती है क्योंकि पुरुष सम्भोग-काल को बढ़ा नहीं सकता है किन्तु अनुभवी स्त्रियाँ घटा-बढ़ा सकती हैं। ऐसी स्थिति में सम्भोग-काल की घटा-बढ़ी स्त्री-पुरुष दोनों पर निर्भर रहती है।

आचार्य पद्मश्री ने नागरसर्वस्व में बतलाया है कि सम्भोग की तैयारी किस प्रकार करनी चाहिए। स्त्री को चाहिए कि वह पति के मनोऽनुकूल भाव-श्रृङ्गार कर अंगों को लुकाती-छिपाती और दिखाती रहे, कुछ शरमाती-सी कुछ मुस्कराती-सी पति के निकट जाए। जब पति उसका हाथ पकड़ कर खींचना चाहे तो बड़ी अदा, अदब और संकोच से पीछे हट जाए। उठकर पति जब उसे पकड़ ले तो भयभीत, चकित हरिणी-सी चितवन बनाकर अंगों को दुबकाए-छिपाए सिमट जाए। लेकिन थोड़ी देर में वह

अपने अंग अपने पति को समर्पित कर दे। पति जिन अंगों को छूना चाहे, देखना चाहे, नखक्षत या दन्तक्षत करना चाहे पहले उन अंगों को वह छिपाए, पति से दूर हटाए, इसके बाद पूरे संवेग के साथ समर्पण कर दे। कुचमर्दन करते समय, दन्तक्षत, नखक्षत करने पर सीत्कार (सी-सी) और हुंकार (आह········आह) शब्द करे। छीना-झपटी के बाद मन्द-मन्द कहराती हुई वह उसाँसें भरने लगे। पति के पुनः आलिंगन-चुम्बन करने पर 'बेदर्द, इतना न सता'—ऐसे प्रीति भरे शब्द कहे। अवसर की अनुकूलता के अनुसार कभी स्त्री स्वयं नखक्षत-दन्तक्षत का जवाब नखक्षत-दन्तक्षत से दे या बिल्कुल लाचार बन जाए अथवा मान प्रकट करे, यह कहकर कि 'जाओ हम नहीं बोलेंगे' दूसरी ओर करवट बदल ले और जब पुरुष मनाने लगे तो फिर सुरत कार्य में संलग्न हो जाए। सुरत समाप्त हो जाने के बाद स्त्री को मुग्ध और शिथिल होकर आँखें बन्द कर लेनी चाहिए—इससे पुरुष उस पर न्यौछावर हो जाता है।

समागम में पूर्ण सुख प्राप्त करने के लिए सम-रत बहुत आवश्यक है सम्भोग का सर्वोपरि उद्देश्य पति-पत्नी में आध्यात्मिक प्रीति और उदात्त भावनाओं का विकास है। जिस प्रकार संसार की अनन्त इच्छाएँ लोकैषणा, दारैषणा और वित्तैषणा तीन भागों में बँटी हैं उसी प्रकार सम्भोग सुख तीन प्रकार के भावों पर निर्भर रहता है—१. सन्तानोत्पत्ति, जननेन्द्रिय तथा काम-सम्बन्धी समस्याओं के प्रति आदर्शभाव, २. उत्तरदायित्व का निर्वाह, ३. एक दूसरे के प्रति श्रद्धा, उच्चभाव और हित-कामना।

यहाँ इस बात का खुलासा कर देना आवश्यक है कि पुरुष और स्त्री के पारस्परिक आकर्षण का आधार क्या है? आकर्षण और सम्भोग मानसिक क्रियाओं पर निर्भर है। पातञ्जल योगसूत्र में एक स्थान पर बतलाया गया है कि मानसिक क्रियाओं के परिणाम में जिस अवस्था को हम प्राप्त कर सकते हैं उसी अवस्था को हम औषधियों के प्रयोग से भी प्राप्त कर सकते हैं। तात्पर्य यह कि कुछ औषधियों के प्रयोग से भी हम समाधि प्राप्त कर सकते हैं। भारतीय अध्यात्मवाद की दृष्टि से मानसिक क्रिया भी जड़वाद के सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित है। आजकल जड़वाद और अध्यात्मवाद को लेकर बहुत बड़ा विवाद चल रहा है। एक पक्ष जड़विज्ञान के आधार पर ही समस्त समस्याओं की मीमांसा करने का पक्षपाती है और दूसरा पक्ष जड़वाद के अतिरिक्त मानसिक सत्ता के आधार पर भी समस्याओं की मीमांसा करने का पक्षपाती है। दूसरे पक्ष के वैज्ञानिक मानसिक सत्ता को जड़ सत्ता से पृथक् वस्तु मानते हैं। उन्होंने परीक्षण द्वारा सिद्ध करके दिखा दिया है कि

रासायनिक द्रव्यों के प्रभाव से मानसिक प्रकृति बनती-बिगड़ती है। इसलिए उनका कथन है कि मानसिक सत्ता भी जड़ पदार्थों का ही परिणाम है। स्त्री और पुरुष के पारस्परिक आचरण, एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होना आदि समस्त आकर्षण-व्यापार के मूल में देह में स्थित रहने वाली ग्रन्थियों का इस प्रकार का ही अमोघ प्रभाव है।

चरक के मत से मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ हैं। एक तो पुरुष के अण्डकोष और स्त्री के डिम्बाणु जैसी ग्रन्थियाँ होती हैं और दूसरे प्रकार की नलविहीन ग्रन्थियाँ होती हैं। स्त्री-पुरुषों की चारित्रिक तथा मानसिक प्रकृतियाँ इन ग्रन्थियों के विविध प्रकार के प्रवाह पर ही अधिकतर निर्भर रहा करती हैं। यदि स्त्री के शरीर से अण्डाणु निकाल दिए जाएँ तो फिर पुरुष के प्रति उसका आकर्षण एकदम समाप्त हो जाएगा। इसी तरह यदि पुरुष के मस्तिष्क के नीचे की रस-प्रवाहिका ग्रन्थि निकाल दी जाए तो उसके अण्डकोष सूख जाएँगे, उसके अन्तर्गत रहने वाले सभी यौन-लक्षण लुप्त हो जायेंगे। तब उसके मन में स्त्री के प्रति आकर्षण नहीं रह जाएगा क्योंकि यौन-ग्रन्थियों का कार्य नलविहीन ग्रन्थियों पर निर्भर रहता है। रस प्रवाह रुक जाने से ग्रन्थियाँ क्रियाशील नहीं हुआ करती हैं। जड़वादियों के मत से मैथुन के परिणाम में भी ग्रन्थियों की प्रकृति बनती-बिगड़ती रहती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और मैथुन आदि सभी मानसिक क्रियाएँ ग्रन्थियों के रस निर्माण पर ही निर्भर हैं।

परन्तु यदि यथार्थ में सोचा जाए तो व्यक्ति का आचरण, उसका व्यक्तित्व और उसकी मानसिक क्रियाएँ केवल एक ही तत्त्व पर अवलम्बित नहीं रहती हैं। व्यक्ति के संस्कार, उसकी काम-वासना, इच्छा, अभिरुचि आदि का निर्माण न तो केवल वंश-सूत्र पर निर्भर है और न केवल ग्रन्थियों के रस-प्रवाह पर। समस्त चराचर जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो केवल जड़ हो अथवा केवल चेतन। मनुष्य के आचरण उसके सहजात संस्कारों पर निर्भर रहते हैं। विशेष-विशेष वंशसूत्रों के कारण मनुष्य में विशेष-विशेष गुण विकसित हुआ करते हैं। उन्हीं के कारण शरीर में नाना प्रकार की ग्रन्थियाँ भी उत्पन्न होती हैं। मानसिक और शारीरिक क्रियाओं के परिणाम में ग्रन्थियों में भी परिवर्तन होते हैं।

अध्यात्मवाद का तो सार्वभौम सिद्धान्त है कि एक ही तत्त्व के दो विभिन्न रूप के विकास होते हैं। एक विकास में जड़ का प्राधान्य रहता है दूसरे प्रकार के विकास में चैतन्य का प्राधान्य रहता है। वात्स्यायन ने इसी को आधार मानकर अपना सिद्धान्त स्थिर किया है। स्त्री और पुरुष

दोनों सत्ता पृथक् और अपूर्ण है। दोनों पूर्णता को प्राप्त करने के लिए जब विकल होते हैं तो उनकी वह विकलता ही आकर्षण है। दोनों एक होकर पूर्ण बनने की अभिलाषा रखकर एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। स्त्री का जो स्त्रीत्व है, तारुण्य भाव है वही पुरुष रूप में पृथक् होकर फिर मिलता है। दोनों सम्भोग-रत होते हैं। वीर्य-बिन्दु के साथ एक क्षुद्र कीटाणु के रूप में पुरुष स्त्री के गर्भाशय में प्रवेश करता है।

वहाँ वह धीरे-धीरे परिवर्तित और परिवर्द्धित होकर और यथासमय पूर्ण होकर स्त्री-शरीर से पृथक् होता है किन्तु विकास जारी रहता है। शिशु से किशोर, फिर तरुण हुआ तो फिर वैसी ही स्त्री आकर उससे मिल जाती है। दोनों परस्पर आकृष्ट होते हैं, सम्भोग करते हैं और वही पुरुष उस स्त्री के गर्भाशय में वीर्य रूप से फिर प्रविष्ट होता है। स्त्री और पुरुष दोनों ने एकरूपता, अभिन्नता, पूर्णता प्राप्त कर फिर जन्म लिया।

कहने का तात्पर्य यह है कि यह रहस्य अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक यह रहस्यमय ही बना रहेगा। विज्ञान इसकी देहली तक पहुँचने में सदैव असमर्थ रहेगा। यह प्रकृति का अनन्त प्रवाह जैसे चला आ रहा है वैसे ही चलता रहेगा।

अभ्यासादभिमानाच्च तथा संप्रत्ययादपि।
विषयेभ्यश्च तन्त्रज्ञाः प्रीतिमाहुश्चतुर्विधाम् ॥ ३९ ॥

यथा त्रिधा रतमवस्थापितं तथा स्थूलसूक्ष्मरूपाभ्यां प्रीतिरपि व्यवस्थापिता। किंतु तद्व्यतिरेकेणान्या अपि प्रीतयोऽस्मिञ्शास्त्रे संभवन्तीति दर्शनार्थं प्रीतिविशेषा उच्यन्ते–'अभ्यासात्' इत्यादिना। तन्त्रज्ञाः कामसूत्रज्ञाः ॥ ३९ ॥

कामशास्त्र के आचार्यों का मत है कि प्रीति चार प्रकार से उत्पन्न होती है—१. अभ्यास से, २. विचारों से, ३. स्मरण से और ४. विषयों से ॥

शब्दादिभ्यो बहिर्भूता या कर्माभ्यासलक्षणा।
प्रीतिः साभ्यासिकी ज्ञेया मृगयादिषु कर्मसु ॥ ४० ॥

आसां लक्षणमाह–'शब्दादिभ्यः' इत्यादिना।

कर्मसु क्रियमाणेषु तत्रत्याञ्शब्दादिविषयानाश्रित्य या स्यात्सा विषयप्रीतिरेव। या तु कर्माभ्यासलक्षणा। कर्मणां पुनः पुनरनुष्ठानमभ्यासः। तेन लक्ष्यमाणत्वात्तल्लक्षणा प्रीतिः सक्तिः। साभ्यासेन निर्वृत्ताभ्यासिकी कर्माश्रयकलाव्यासक्तानां भवति। यदाह—मृगयादिष्विति। आखेटकं मृगया व्यायामिकी विद्या। आदिशब्दान्नृत्यगीतवाद्यचित्रपत्रच्छेद्याद्युपसंग्रहः ॥ ४० ॥

अभ्यास द्वारा बढ़नेवाली प्रीति को आभ्यासिकी कहते हैं। जैसे शिकार, संगीत, नृत्य, नाटक आदि। यह प्रीति विषयों से होनेवाली प्रीति से भिन्न होती है ॥ ४० ॥

अनभ्यस्तेष्वपि पुरा कर्मस्वविषयात्मिका।
संकल्पाज्जायते प्रीतिर्या सा स्यादाभिमानिकी ॥ ४१ ॥

पुरा पूर्वम्। कर्मस्वनभ्यस्तेष्वपीत्यपिशब्दादभ्यस्तेष्वपीति। येनापि मृगयाकर्म नाभ्यस्तमभ्यस्तं वा सोऽपि तत्कर्म कृत्वा मनसा सुखायते। आभ्यासिकी कर्माभ्यासादेवेति विशेषः। अविषयात्मिकेति। नापि विषयेभ्यः शब्दादिभ्य आत्मलाभोऽस्या इत्यर्थः। कुतस्तर्हीत्याह—संकल्पाज्जायत इति। मनसः संकल्पात्मकत्वान्मानसीत्यर्थः। सा चैवंविधाभिमानिकीत्युच्यते। अभिमानोऽहंकारः स प्रयोजनमस्या इति ॥ ४१ ॥

बिना किसी पूर्वाभ्यास के ही केवल संकल्पमात्र से जो प्रीति होती है, उसे आभिमानिकी कहते हैं। यह भी विषयों से होनेवाली प्रीति से भिन्न होती है ॥ ४१ ॥

सा कथमस्मिञ्शास्त्रे संभवतीत्याह-

प्रकृतेर्या तृतीयस्याः स्त्रियाश्चैवोपरिष्टके।
तेषु तेषु च विज्ञेया चुम्बनादिषु कर्मसु ॥ ४२ ॥

तृतीया प्रकृतिर्नपुंसकं तस्याः स्त्रियाश्च मुखचपलाया औपरिष्टके मुखे जघनकर्मण्यभ्यस्तेऽपि विज्ञेया। प्रयोजयितुः पुनः पुनः कायिकी विषयप्रीतिः। तेषु तेषु चेति—स्वभेदभिन्नेषु चुम्बनादिषु। आदिशब्दादालिङ्गननखरदनच्छेद्यप्रहणनेष्वनभ्यस्तेष्वपि रतिकाले प्रयोक्तुर्मानसी प्रीतिः यस्या अपि प्रयुज्यन्ते तस्या अपि तत्र तत्र स्थाने प्रयुज्यमानेषु रागसंकल्पवशान्मानसी प्रीतिर्न कायिकी। स्पर्शमात्रसंवेदनात्। दुःखाभिभूते तु काये तत्प्रीतिकारणाभावात्सा न कायिकी ॥ ४२ ॥

उदाहरण—

जैसे हिजड़ों और स्त्रियों को औपरिष्टक (गुप्तेन्द्रियों को चूसना आदि) विधि में जो आनन्द आता है वह मानसिक कहलाता है। इसी प्रकार चुम्बन आदि से होनेवाली प्रीति भी होती है ॥ ४२ ॥

नान्योऽयमिति यत्र स्यादन्यस्मिन्प्रीतिकारणे।
तन्त्रज्ञैः कथ्यते सापि प्रीतिः संप्रत्ययात्मिका ॥ ४३ ॥

स एवायमित्यर्थः। यत्र क्वचन अन्यस्मिन्नित्यपूर्वस्मिन्विषये पुंसि स्त्रियां वा स एवायमिति पूर्वप्रीत्यध्यारोपणायाः स्त्रियाः पुंसो वा चित्तवृत्तिः। प्रीतिकारणा इति—प्रीतिहेतावध्यारोपणनिबन्धनमेतत्। पूर्वप्रीतस्य ये गुणाः प्रीतिहेतवस्तेऽत्रापि सन्तीति दर्शयति। एवं च सा पूर्वप्रीतिः संप्रत्ययादुत्पन्नस्वभावत्वात्संप्रत्ययात्मिका कामसूत्रविद्भिः कथ्यते। तथा च 'प्रियसादृश्यं गमनकारणम्' इति वक्ष्यति ॥ ४३ ॥

जब किसी ऐसे अपरिचित पुरुष को जिसकी आकृति अपने प्रिय से मिलती है देखकर अपने प्रिय का स्मरण हो आता है तो उसे कामशास्त्री सम्प्रत्ययात्मक प्रीति कहते हैं ॥ ४३ ॥

प्रत्यक्षा लोकतः सिद्धा या प्रीतिर्विषयात्मिका।
प्रधानफलवत्त्वात्सा तदर्थाश्चेतरा अपि ॥ ४४ ॥

शब्दादिविषयाननुकूलानालम्ब्य श्रोत्रादिद्वारेण या प्रीतिरुत्पद्यते सा विषयव्यवसायानुगतत्वात्प्रत्यक्षा सती लोकत एव सिद्धत्वान्नात्र लक्षणाभिनिवेशः। सा चैवंविधा नैमित्तिकनागरवृत्ते द्रष्टव्या। प्रधानफलवत्त्वात्सेति—साक्षाद्विषयोपभोगफलेन युक्तत्वादित्यर्थः। इतरा अपि तिस्रस्तदर्थाश्चेति—विषयप्रीत्यर्था एव, तदङ्गत्वात्। चशब्द एवकारार्थः ॥ ४४ ॥

इन्द्रियों के विषयों से होनेवाली प्रीति का अनुभव तो सभी लोगों को होता है किन्तु इन्द्रिय विषयजन्य प्रीति प्रधान होने के कारण अन्य सभी प्रीतियाँ इसी के अन्तर्गत हैं ॥ ४४ ॥

प्रीतीरेताः परामृश्य शास्त्रतः शास्त्रलक्षणाः।
यो यथा वर्तते भावस्तं तथैव प्रयोजयेत् ॥ ४५ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनं प्रीतिविशेषा
इति प्रथमोऽध्यायः। आदितः षष्ठः।
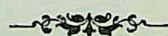
एतास्तः शास्त्रतः परामृश्य निरूप्य। शास्त्रलक्षणा इति तेषु तेषु स्थानेषु शास्त्रेणानेन लक्ष्यमाणत्वात्। यो यथा वर्तते भाव इति कर्माभ्यासादीनां चतुर्णां प्रकाराणां येन प्रकारेण योऽभिप्रायो वर्तते स तेनैव प्रकारेण वर्तयेत्। तज्जन्यप्रीत्यर्थमेव। तथा हि—अतथाप्रवर्तनादनीप्सिता प्रीतिरप्रीतिरेव स्यात्। इति

प्रीतिविशेषाः सप्तमं प्रकरणम्। आदितः षष्ठ इति प्रथमाध्यायात्प्रभृति षष्ठोऽयमित्यर्थः। एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरह-
कातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके
द्वितीयेऽधिकरणे प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनं
प्रीतिविशेषाः प्रथमोऽध्यायः ॥

कामशास्त्र के जाननेवाले स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि उक्त चारों प्रकार की प्रीतियों को शास्त्र के द्वारा बताए हुए ढंग से समझकर पुरुष स्त्री के और स्त्री पुरुष के भावों के अनुसार ऐसा व्यवहार करे कि परस्पर प्रीति बढ़ती रहे ॥ ४५ ॥

विमर्श—वात्स्यायन ने यह प्रकरण उन लोगों के लिए लिखा है जो साधारण समझ रखने वाले होते हैं। वह कहता है कि अभ्यास से, विचार से, स्मरण से और विषयों से स्त्री और पुरुष में परस्पर प्रीति और आकर्षण बढ़ाये जा सकते हैं। प्रीति का अर्थ यहाँ पर प्रणय लगाना अधिक उपयुक्त होगा। यौवन के आगम काल में भिन्नलिङ्गी प्राणियों में जो परस्पर आकर्षण उत्पन्न होता है वही बढ़कर प्रणय बन जाता है। प्रणय मनुष्येतर पशु-पक्षियों में भी पाया जाता है। यह केवल शरीर से ही नहीं बल्कि मन से भी सम्बन्ध रखता है। शारीरिक सुख देने के साथ ही प्रणय प्राणों को भी आन्दोलित किया करता है। प्रणय की वेदी पर कितने ही प्रणयी जोड़ों को प्राणोत्सर्ग करते हुए देखा जाता है। वात्स्यायन सम्भोग से पूर्व प्रणय की स्थापना करने की सलाह इसलिए देता है कि पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम केवल भौंरा-भौंरी की भाँति स्वार्थपरक न हो बल्कि परस्पर विश्वास, श्रद्धा और दो शरीर किन्तु एक प्राण की भावना सुदृढ़ हो। यह ध्येय उत्पन्न होने पर प्रेमोत्सर्ग-भावना दोनों प्रेमियों के हृदयों में बद्धमूल हो जाती है। प्रेमोत्सर्ग की भावना से इन्द्रिय वासना की तृप्ति पृथक् हुआ करती है। प्रारम्भ में तो प्रेमी-प्रेमिकाओं की प्रीति इन्द्रिय-सुख की प्रधान कामना रखती है किन्तु प्रणय उसमें उसी प्रकार अन्तर्निहित रहता है जैसे शमी के गर्भ में अग्नि। इन्द्रिय-सुख-प्रधान प्रीति धीरे-धीरे प्रौढ़ावस्था को प्राप्त कर प्रणय बनती है। उस समय इन्द्रियों का स्वार्थ समाप्त हो जाता है। लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता है कि स्त्री-पुरुषों के हृदयों में प्रणय-बीज का प्ररोहण भिन्न लैङ्गिक होने के कारण काम-चिन्ता के ही माध्यम से हुआ

करता है। तथापि यह मानना पड़ता है कि जिस प्रकार कामवासना मनोविकार नहीं है उसी प्रकार प्रणय भी विशुद्ध मानसिक भाव है। यही कारण है कि कामवासना और प्रणय का जब जीवन तत्त्व से एकीकरण होता है तो प्रेमी-प्रेमिकाओं के जीवन में कोमल कल्पनाओं-भावनाओं के छन्द, उत्सर्ग की वृत्तियाँ, आत्मिक सुख के अलंकार, और रस तथा ध्वनियाँ उत्पन्न होकर उसे एक महाकाव्य का रूप दे देती हैं। जीवन को सरस, सुबोध और सुगम महाकाव्य बनाने के लिए कामशास्त्र का अध्ययन आवश्यक होता है। बिना इसका बोध हुए जीवन ऊसर—बंजर भूमि की तरह नीरस और अनुपयोगी बन जाता है।

प्रणय का लक्षण बतलाते हुए लिखा है कि—'मानं दधानो विस्रम्भं प्रणयः प्रोच्यते बुधैः'[1] यहाँ पर 'मान' का अर्थ अभिमान नहीं। बल्कि अपने प्रियजन को अपना अभिन्न समझना मान है।[2] किसी प्रकार की भ्रम की गुंजाइश जहाँ पर नहीं होती वही विश्वास है। अपने प्राण, मन, बुद्धि और शरीर का अपने प्रिय के प्राण, मन, बुद्धि और शरीर के साथ एकीकरण कर देना ही वस्तुतः प्रणय है। यह कहा जा सकता है कि जब प्रेमी-प्रेमिका का एकात्मभाव हो जाता है तब फिर प्रणय-कलह कैसे होता है। इसका उत्तर देते हुए विश्वनाथ चक्रवर्ती ने लिखा है कि 'सत्यपि रोषादिकं तु रस-स्वाभाव्यादेव नानुपपन्नम् ज्ञेयम्'। ठीक भी है जब रसात्मकता उसका आधार बनती है तो फिर वह कलह और क्रोध रसवर्द्धन करनेवाला ही होता है। प्रणय-कलह उत्तरोत्तर प्रीतिवर्द्धक होता है।

किसी रूप-वयसम्पन्न तरुणी को देखकर या उसके गुण, शील, सौन्दर्य की कहानी सुनकर उस पर प्रेम करने लगना या उसकी प्राप्ति की चेष्टा करना प्रीति नहीं है, यह तो लोभ है। लोभ और प्रीति के लक्ष्य में सामान्य और विशेष का अन्तर समझना चाहिए। हाँ, इसे हम उस अवस्था में पूर्ण राग कह सकते हैं जब हृदय उसके लिए तड़पने लगता है। यही पूर्वराग आगे चलकर जब तक पूर्ण रति या प्रेम के रूप में परिणत नहीं होता तब तक उसे चित्त का उदात्त भाव नहीं कह सकते।

भारतीय साहित्य में मुख्य रूप से चार प्रकार की प्रीति का प्रचुर वर्णन मिलता है। कामसूत्रकार ने प्रीति के जो चार भेद बतलाए हैं वे भी उन्हीं के अन्तर्गत हैं। अभ्यास से प्रीति बढ़ाने का उदाहरण भगवती पार्वती की कठिन तपस्या है। उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि—

---

१. उज्ज्वलनीलमणि (पृ० ४३७) २. उज्ज्वलनीलमणि।

कोटि जनम लौं रगर हमारी। बरउँ सम्भु न तु रहउँ कुआँरी॥

भगवान् शिव को पति के रूप में प्राप्त करने की पार्वतीजी की यह प्रतिज्ञा और श्लिष्ट तपस्या आभ्यासिकी प्रीति है। भगवती सीता और राम का परस्पर आकर्षण आभ्यासिकी प्रीति से हुआ है। विश्वामित्र के साथ शिष्य-रूप में श्रीराम धनुषयज्ञ देखने जाते हैं। पूजन के लिए फूल तोड़ने वाटिका में जाते हैं। वहाँ सीता राम को और राम सीता को देखकर विमोहित हो जाते हैं। पुष्पवाटिका का यह पूर्वराग प्रणय बन गया। इसका उत्कृष्ट परीक्षण राम के वनगमन और सीताहरण के प्रसंगों में मिलता है। दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रीति भी आभ्यासिकी थी। शिकार के लिए गया हुआ दुष्यन्त कण्व के आश्रम में जाकर शकुन्तला को देखता है। दोनों में पूर्वराग उत्पन्न होता है और अन्त में वह प्रणय का रूप धारण करता है।

गार्गी, मैत्रेयी ने बिना किसी पूर्वाभ्यास के संकल्प मात्र से ऋषि याज्ञवल्क्य से प्रीति की थी। उनकी यह प्रीति आभिमानिकी है।

दमयन्ती ने हंस से नल की प्रशंसा सुनकर, उषा ने अनिरुद्ध को स्वप्न में देखकर नल और अनिरुद्ध से जो प्रीति की वह सम्प्रत्ययात्मक प्रीति है।

विषयों से होनेवाली प्रीति अप्रत्याशित नहीं बल्कि सामान्य होती है। कोई स्त्री किसी पुरुष को देखकर अथवा पुरुष स्त्री को देखकर उस पर आसक्त हो जाए, मदविह्वल होकर उसकी प्राप्ति की चेष्टा करे, यह एक स्वाभाविक बात है।

किन्तु यदि विचारपूर्वक सोचा जाए तो प्रीति का अंकुर स्त्रियों में प्रथम उगता[1] है। साथ ही संवेग भी स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। स्त्रियों और पुरुषों में इस प्रकार का आकर्षण, राग और आकांक्षा का होना एक प्राकृतिक कारण है। यह कारण अभाव है। स्त्री में जिस वस्तु का अभाव है उसे वह पुरुष से चाहने के लिए लालायित रहती है और पुरुष में जिस वस्तु का अभाव है उसे वह स्त्री से प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है। आम तौर से यह देखा और समझा जाता है कि पुरुष स्त्रियों को देखकर उन पर मोहित हो जाया करते हैं, किन्तु बात उलटी है, वस्तुतः स्त्रियाँ ही पुरुषों की अपेक्षा अत्यधिक मुग्ध भाव रखती हैं। स्त्री और पुरुष विद्युत् की दो धाराएँ हैं। एक ऋण है और दूसरी धन। दोनों धाराएँ परस्पर विरोधिनी हैं। एक आकर्षण करती है और दूसरी अपकर्षण। जब दोनों एक दूसरी से

१. आद्यो वाच्यः स्त्रिया रागः

मिलती हैं तो बिजली प्रकट हो जाती है। भारतीय विज्ञान स्त्री को सौरतत्त्व-युक्त और पुरुष को चन्द्रतत्त्वयुक्त मानता है। सूर्य अपनी शक्ति से पृथ्वी का रस ग्रहण करता है और चन्द्रमा पृथिवी पर सुधावर्षण करता है। सौरतत्त्व-युक्त स्त्री का रज चन्द्रतत्त्वयुक्त पुरुष के वीर्य को खींच कर अपने अन्दर धारण करता है। यही स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण और प्रेम का मुख्य कारण है।

इति प्रथमोऽध्यायः
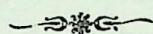
द्वितीयोऽध्यायः

आलिङ्गनविचारप्रकरणम्

एवं रतमवस्थाप्य तदङ्गभूतां चतुःषष्टिं निर्दिदिक्षुराह—

संप्रयोगाङ्गं चतुःषष्टिरित्याचक्षते। चतुःषष्टिप्रकरणत्वात् ॥

संप्रयोगस्य चतुःषष्ट्यात्मकत्वात्तस्याङ्गं चतुःषष्टिरित्याचक्षते पूर्वाचार्यास्तस्मात्तां वक्ष्यामः ॥ १ ॥

कामशास्त्र के आचार्यों ने सम्भोग के ६४ अंग बताए हैं। उनका यह कथन इसलिए संगत कहा जा सकता है कि उनके ग्रंथों में ६४ भिन्न-भिन्न प्रकरण हैं ॥ १ ॥

तत्र चतुःषष्टिशब्दः शास्त्रे तदेकदेशे वा वर्तते, उभयथापि व्यवहाराङ्गमिति दर्शयन्नाह—

शास्त्रमेवेदं चतुःषष्टिरित्याचार्यवादः ॥ २ ॥

शास्त्रमेवेदमितीति—शास्त्रमाह तच्च संप्रयोगस्याङ्गम्। तदुपायस्य तन्त्रावापाख्यस्य प्रकाशनात्। आचार्यवाद इति। शब्दविदो ह्याचार्या एवंविधा एव किंचिन्निमित्तमाश्रित्य चतुःषष्टिशब्दस्य प्रवृत्तिं वदन्ति ॥ २ ॥

विभिन्न आचार्यों के मत—

अथवा बहुत से आचार्यों के मत से इस सम्पूर्ण शास्त्र के ही ६४ अंग हैं ॥२॥

तच्चेहाप्यस्तीति शास्त्रैकदेशे वा विद्यासमुद्देशे वर्तत इत्याह—

कलानां चतुःषष्टित्वात्तासां च संप्रयोगाङ्गभूतत्वात्कलासमूहो वा चतुःषष्टिरिति। ऋचां दशतयीनां च संज्ञितत्वात्। इहापि तदर्थसम्बन्धात्। पञ्चालसंबन्धाच्च बह्वृचैरेषा पूजार्थं संज्ञा प्रवर्तिता इत्येके ॥ ३ ॥

अत्र हि गीतादयः कलाश्चतुःषष्टिरुक्ताः। ततस्तत्समूहो वा संप्रयोगाङ्गम्। चतुःषष्टिः सांप्रयोगिके वा शास्त्रैकदेशे वर्तते। तत्र हि पाञ्चालिकी चतुःषष्टिः कथ्यते। कथं ताश्चतुःषष्टिरित्याह—दशतयीनां चेति। दशावयवा मण्डलानि यासामृचाम्। इत्यवयवे तयप्। दशतय्यस्ताश्चतुःषष्टिरिति संज्ञिताः। इहापीति संप्रयोगाङ्गे। तदर्थसंबन्धादिति दशावयवमण्डलार्थसंबन्धात्। चतुःषष्टिरिति संज्ञा प्रवर्तत इति संबन्धः। संप्रयोगाङ्गं हि दशावयवाः। यथोक्तम्—'आलिङ्गनं

चुम्बनदन्तकर्म नखक्षतं सीत्कृतपाणिघातम् । संवेशनं चोपसृतौपरिष्टं नरायितं चेति दशाङ्गमाहुः ॥' इति ।

पञ्चालसंबन्धाच्च प्रवर्तिता । पञ्चालेन महर्षिणा ऋग्वेदे चतुःषष्टिर्निगदिता । बाभ्रव्येणापि पाञ्चालेन स्वकृते सांप्रयोगिकेऽधिकरण आलिङ्गनादय उक्ताः । ततश्च द्वयोरप्येकगोत्रनिमित्तसमाख्येन पाञ्चालेन निगदनात्संबन्धोऽस्ति । पूजार्थेति उभयोरपि पक्षयो ऋग्वेदैकदेशवर्तिन्यपि संज्ञा बह्वृचैरशिष्टाचारैरालिङ्गनादिषु पूजार्था प्रवर्तिता । केचिदाहुः—'तत्पूजां च वक्ष्यति—विद्वद्भिः पूजितामेतां खलैरपि सुपूजिताम् । पूजितां गणिकासंघैर्नन्दिनीं को न पूजयेत् ॥' इति ॥ ३ ॥

अथवा यह ६४ कलाओं की संख्या है, क्योंकि कलाएँ सम्भोग का अंग मानी जाती हैं । कलाओं की संख्या ६४ होने से कामशास्त्र को भी ६४ कलाओंवाला माना जाने लगा है । जैसे ऋग्वेद में दश मण्डल होने से उसे दशतयी कहा जाता है । उसी प्रकार कामशास्त्र के साम्प्रयोगिक अधिकरण में दश प्रकरण हैं । क्योंकि साम्प्रयोगिक अधिकरण के रचयिता पञ्चाल बाभ्रव्य ने ही ऋग्वेद को ६४ भागों में विभक्त किया था । इसलिए एक ही ग्रंथकार ने ग्रंथ की महत्ता प्रकट करने के लिए ऋग्वेद के समान ही साम्प्रयोगिक अधिकरण को भी ६४ अंगों वाला कहा है । ऐसा कई आचार्यों का मत है ॥३॥

आलिङ्गनचुम्बननखच्छेद्यदशनच्छेद्यसंवेशनसीत्कृतपुरुषायितौपरिष्टकानामष्टानामष्टधा विकल्पभेदादष्टावष्टकाश्चतुःषष्टिरिति बाभ्रवीयाः ॥ ४ ॥

आलिङ्गनेत्यादि । बाभ्रव्यस्य शिष्याः पुनरन्वर्थंतामाहुः—अष्टधा विकल्पभेदादिति । एकैकस्याष्टधा विकल्पभेदादित्यर्थः । ततश्चाष्टौ सन्तोऽष्टगुणा अष्टावष्टकाश्चतुःषष्टिः ॥ ४ ॥

बाभ्रवीय आचार्यों का मत है कि १ आलिंगन, २ चुम्बन, ३ नखक्षत, ४ दन्तक्षत, ५ संवेशन (साथ लेटना), ६ सीत्कृत (सी-सी करना), ७ पुरुषायित (स्त्री पुरुष के ऊपर लेट कर संभोग करे—विपरीत आसन) और ८ औपरिष्टक (मुख-मैथुन) इन आठ प्रकार के मैथुनों के पुनः आठ-आठ भेद होने से ६४ प्रकार के मैथुन हुए ॥ ४ ॥

विकल्पवर्गाणामष्टानां न्यूनाधिकत्वदर्शनात् प्रहणनविरुतपुरुषोपसृप्तचित्ररतादीनामन्येषामपि वर्गाणामिह प्रवेशनात्प्रायोवादोऽयम् । यथा सप्तपर्णो वृक्षः पञ्चवर्णो बलिरिति वात्स्यायनः ॥

विकल्पेति । न्यूनाधिकत्वदर्शनादिति—आलिङ्गनादीनां ये विकल्पवर्गा

वक्ष्यमाणास्तेषां कस्यचिदूनत्वं दृश्यते पुरुषायितस्य, केषांचिदाधिक्यमेवालिङ्गनादीनाम्, ततश्च नाष्टावष्टावेव, विकल्पवर्गाणामष्टानां न्यूनाधिकत्वदर्शनात्। अन्येषामपीति—प्रकृतत्वाच्चुम्बनादीनाम्। तेभ्योऽन्येषामपि प्रहणनविरुतपुरुषोपसृप्तचित्ररतादीनामिति सम्बन्धः। न तु प्रहणनादिभ्यश्चतुर्भ्योऽन्येषामपीति, तेषामसम्भवात्।

इहेति—अष्टवर्गे प्रवेशनात्—एतान्यपि हि संप्रयोगोऽपेक्षते। ततश्च नाष्टावेवाष्टधा। कथं तर्ह्युक्तमित्याह। प्रायोवादोऽयमिति—प्रायिकमेतद्वचनम्। कथमित्याह—यथेति, पर्णानां न्यूनत्वेऽपि पर्णानां च बहुत्वेऽपि बाहुल्येन क्वचिद्दर्शनात्तद्व्यपदेशो रूढिवशात्। तथाष्टानां बाहुल्येनाष्टधा भेदात्तद्व्यपदेशेनाष्टावेवाष्टधेति ॥ ५ ॥

वात्स्यायन का कहना है, कि बाभ्रवीय आचार्यों का उक्त कथन प्रायोवाद है। क्योंकि इनमें से प्रत्येक के आठ-आठ भेद होते ही नहीं, किसी के कम हो जाते हैं और किसी के अधिक। इसके अतिरिक्त इन आठों से भिन्न प्रहणन, विरुत, पुरुषोपसृत, चित्ररत आदि नाम के और भी मैथुन बाभ्रवीयों के साम्प्रयोगिक अधिकरण में सन्निविष्ट हैं। इसलिए साम्प्रयोगिक अधिकरण में ६४ अंग मानना उसी प्रकार उपयुक्त नहीं है जैसे सप्तपर्ण कह देने से सात पत्तोंवाला सप्तवर्ण वृक्ष और पंचवर्ण बलि कह देने से पांच रंगों की बलि नहीं मानी जा सकती है ॥ ५ ॥

तत्र शास्त्रस्य चतुःषष्ट्या प्रस्तुतत्वात्कलासमूहस्य च विद्यासमुद्देशे समुद्दिष्टत्वात्पाञ्चालिकी चतुःषष्टिमाह, तत्रालिङ्गनपूर्वकत्वाच्चुम्बनादीनामालिङ्गनविचारा उच्यन्ते। विचाराश्च कालस्वरूपाभ्याम्। तत्रालिङ्गनमसमागते समागते च। तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

अब वात्स्यायन मुनि अविवाहित या मनचले व्यक्तियों के तथा विवाहित व्यक्तियों के आलिंगनभेद बतलाते हैं—

तत्रासमागतयोः प्रीतिलिङ्गद्योतनार्थमालिङ्गनचतुष्टयम्।
स्पृष्टकम्, विद्धकम्, उद्घृष्टकम्, पीडितकम्, इति ॥ ६ ॥

असमागतयोरिति—असंघटितपूर्वयोः। संघटितयोः। प्रीतिलिङ्गद्योतनार्थमिति—अनुरागस्य लिङ्गिनः स्पृष्टकादि लिङ्गम्, तत्प्रकाशनात्। तदभियोगकाले द्रष्टव्यम्। स्पर्शगोचरे सति। तदभावे सति संक्रान्तकमाभियोगिकं वक्ष्यति ॥ ६ ॥

अविवाहित और मनचले स्त्री पुरुष परस्पर प्रेम प्रकट करने के लिए यथावसर चार प्रकार के आलिंगन करते हैं—१ स्पृष्टक, २ विद्धक, ३ उद्घृष्टक और ४ पीडितक ॥ ६ ॥

सर्वत्र संज्ञार्थेनैव कर्मातिदेशः ॥ ७ ॥

सर्वत्रेति—चुम्बनादिष्वपि । संज्ञार्थेन कर्मातिदेश इति—अन्वर्थतां दर्शयति । स्पृष्टकादिसंज्ञानां प्रवृत्तिनिमित्तार्थः स्पर्शनादिकः, तेनैव कर्मातिदेश इदमेव कार्यमिति ॥ ७ ॥

स्पृष्टक, विद्धक आदि चारों पारिभाषिक शब्द अपने नामार्थ से ही अपने कर्मातिदेश[1] (अभिधेय कर्म) को सूचित करते हैं ॥ ७ ॥

अब प्रत्येक आलिंगन का लक्षण बतलाते हैं—

संमुखागतायां प्रयोज्यायामन्यापदेशेन गच्छतो गात्रेण गात्रस्य स्पर्शनं स्पृष्टकम् ॥ ८ ॥

संमुखागतायामिति—नायिकायामभिमुखमागतायाम् । प्रयोज्यायामिति—आलिङ्गनादि प्रयोजयितुं तत्र वा प्रयोक्तुं न शक्यते । अन्यापदेशेनेति—अन्यदपदिश्यागच्छतः प्रयोक्तुः, यथान्यो न जानाति बुद्धिकारितमस्येति । गात्रेण स्वस्य गात्रस्य प्रयोज्यायाः स्पर्शनमिति संज्ञात्वेन कर्मातिदिशति । स्पृष्टकमिति 'नपुंसके भावे क्तः' पश्चात् 'संज्ञायां कन्' । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् । अस्याः संमुखागतेन नायकेनापि ॥ ८ ॥

स्पृष्टक—सामने आती हुई अपनी प्रेमिका के शरीर को किसी बहाने से छू देना स्पृष्टक आलिंगन है ॥ ८ ॥

प्रयोज्यं स्थितमुपविष्टं वा विजने किंचिद् गृह्णती पयोधरेण विद्ध्येत् । नायकोऽपि तामवपीड्य गृह्णीयादिति विद्धकम् ॥ ९ ॥

नायिका प्रयोक्त्री प्रयोज्यं नायकं स्थितमुपविष्टं वा न गच्छेत् । तत्प्रयोक्तुमप्रयोगात् । न संविष्टम् । असंगतत्वात् । विजने, अन्यत्र तु स्तनप्रदर्शनस्यापि दुर्लभत्वात् । अथ व्यधनोपायमाह—किंचिदिति । तद्धस्तात्तत्समीपे वा किंचिदर्थजातमाददाना । पयोधरेणेति । यथासंभवं प्राप्तेष्वङ्गेषु सा तमाक्षिपेदित्यर्थः ।

नायकोऽप्यणविध्यमानस्तां तथा बहुशो व्याप्रियमाणां पार्श्वयोस्तद्भावित्वा-त्स्तनग्रहणस्य । स्वेनांसकूटेनापविध्येदिति । वक्षसि पृष्ठे पार्श्वयोरेकेन बाहुपाशेन

---

[1] अतिदेशः—सोऽतिदेशस्तदुक्तानि मदुक्तानीति यद्वचः ।

यथा—

वृथा कृथास्त्वं विचिकित्सितानि मा गोकुलाधीश्वरनन्दनात्र ।
गान्धर्विकाया गिरिमन्तरस्थां वीणेव गीतिं ललिता व्यनक्ति ॥

—उज्ज्वलनीलमणिः, पृष्ठः ३२६

पुरस्ताद्बाभ्यां पृष्ठतश्च प्रतिनिवृत्ताभ्यामवपीड्य गृह्णीयात् यथाकथंचिदनुरागं मयि यदि प्रकाशेत मामपविध्यतीति एवं च द्वयोः स्तनस्यानल्पवदन्तःप्रविष्टत्वाद्विद्धकं भवतीति ।

क्षेपणं तु केवलमपविद्धकं नाम तदेकत्वादत्रैवागतम् । अस्य कर्मणीव प्रयोक्त्री । विद्धकस्योभयजन्यत्वाद्द्वावपि । तथा चोक्तम्—'विचेष्टितापविध्येत कामिनी स्तनमालिनी । विद्धकेनेतरस्तत्र कचाकर्षणकर्मणि ' इति ॥ ९ ॥

विद्धक—नायिका भी जब अपने नायक को एकान्त में खड़े या बैठे देखे तो किसी वस्तु को लेने के बहाने अपने स्तनों से उसको धक्का देकर उसके पास से निकले और नायक भी उसको कसकर दबावे । यह विद्धक आलिंगन है ॥ ९ ॥

तदुभयमनतिप्रवृत्तसंभाषणयोः ॥ १० ॥

तदुभयमिति—स्पृष्टकं विद्धकं च । अनतिप्रवृत्तसंभाषणयोरेवासमागतयोः । तत्रोभयस्य साधयितुं शक्यत्वात् । अतिप्रवृत्तसंभाषणयोस्तु न सिद्धमेव । अप्रवृत्तसंभाषणयोः पुनः साधयितुमशक्यत्वादशक्यमेव विज्ञेयम् ॥ १० ॥

ये दोनों प्रकार के आलिंगन उस समय प्रयोग में लाए जाते हैं जब स्त्री और पुरुष के बीच अधिक वार्त्तालाप न हुआ हो ॥ १० ॥

तमसि जनसंबाधे विजने वाथ शनकैर्गच्छतोर्नातिह्रस्वकालमुद्धर्षणं परस्परस्य गात्राणामुद्घृष्टकम् ॥ ११ ॥

जनसंबाध इति । जनसंकुले । अन्धकारादिषु संभवात्प्रयोगसांकर्यम् । अतथागतैर्गमनमपि युक्तम् । एवं च सति नातिह्रस्वकालं चिरकालमुद्धर्षणं सिद्धं भवति । परस्परस्येति नायकगात्रेण नायिकागात्रस्य तद्गात्रेण चेतरगात्रस्य घर्षणमुद्घृष्टकमुभयजन्यम् । एकनिष्पाद्यं तु घृष्टकं वा मतोऽत्रैवान्तर्गतम् ॥ ११ ॥

उद्घृष्टक—अँधेरे में, भीड़-भाड़ में या एकान्त में धीरे-धीरे चलते हुए दोनों के शरीर देर तक एक दूसरे से रगड़ खाते रहें उसे उद्घृष्टक आलिंगन कहते हैं ॥ ११ ॥

तदेव कुड्यसंदंशेन स्तम्भसंदंशेन वा स्फुटकमवपीडयेदिति पीडितकम् ॥ १२ ॥

तदेवेति । उद्घृष्टकं पीडितकं भवति । कथमित्याह—कुड्यसंदंशेनेति । संदंश उभयतो ग्रहणम् । अर्थान्नायकः परतः कुड्यं स्तम्भो वा । तेन स्फुटकं दृढमवपीडिते सति तत्पीडितकमेकजन्यमेव द्विविधम् ॥ १२ ॥

पीड़ितक—दीवार या खम्भे में नायक और नायिका एक दूसरे को जब अच्छी तरह दबाएँ तो पीड़ितक आलिंगन होता है ॥ १२ ॥

तदुभयमवगतपरस्पराकारयोः ॥ १३ ॥

उभयमुद्घृष्टकं पीडितकं च द्रष्टव्यम् । अवगतपरस्पराकारयोरिति गृहीतान्योन्यभावयोरसमागतयोः । पूर्वस्मादनयोरधिकोपक्रमत्वात् । अगृहीताकारयोस्तु नैवेत्यर्थोक्तम् ॥ १३ ॥

उद्घृष्टक और पीड़ितक आलिंगन उन नायक-नायिकाओं के लिए हैं जो परस्पर प्रेम तो करते हों किन्तु सम्बन्ध न हुआ हो ॥ १३ ॥

अब विवाहित स्त्री-पुरुषों के आलिंगन बतलाते हैं—

लतावेष्टितकं वृक्षाधिरूढकं तिलतण्डुलकं क्षीरनीरकमिति चत्वारि संप्रयोगकाले ॥ १४ ॥

संप्रयोगकाल इति । कृतार्द्रीकरणयोस्तु समागतयोः संप्रयोगः । तत्काले चत्वार्युपगूहनानि । तत्राद्ययोरेकजन्यत्वेऽपि नायिकैव प्रयोक्त्री । तदनुरूपत्वात् । शेषयोरुभयजन्यत्वादुभावपि ॥ १४ ॥

सम्भोग के समय लतावेष्टितक, वृक्षाधिरूढक, तिलतण्डुलक और क्षीरनीरक ये चार प्रकार के आलिंगन उपयुक्त होते हैं ॥ १४ ॥

अब प्रत्येक के लक्षण अलग-अलग बतलाते हैं—

लतेव शालमावेष्टयन्ती चुम्बनार्थं मुखमवनमयेत् । उद्धृत्य मन्दसीत्कृता तमाश्रिता वा किंचिद्रामणीयकं पश्येत्तल्लतावेष्टितकम् ॥ १५ ॥

लतेव शालमिति । यथा लता वृक्षमावेष्टयते तद्वन्नायिका नायकमूर्ध्वस्थितमभिमुखं कक्षयोः कण्ठे बाहुलताभ्यामावेष्ट्येति चतुर्विधं लतावेष्टितकम् । चुम्बनार्थिनी यत्तु मुखमवनमयेत्, नायकवृक्षस्योच्चत्वात् । तथा श्लिष्टाभ्यामेव बाहुपाशाभ्यां तच्छरीरावनमनान्मुखमवनमितं भवति । अनेन प्रयोगे फलं दर्शयति । अत्र प्रयोज्यं चुम्बनफलस्य विवक्षितत्वान्मौलम् । प्रयोगस्य, यद्रागस्य जननं वर्धनं च ।

मन्दसीत्कृतेति । सीत्कृतं वक्ष्यति । तन्मन्दं यस्या । उल्वणस्य रागकालवत्त्वात् । अनेन प्रयोगसंस्कारमाह । प्रयोगान्तरपरिष्कृतं सुतरां मनोहारि स्यात् । तमाश्रिता वेति द्वितीयं फलम् । यद्वा तथैव नायकमाश्रिता अन्यत्र वामलेख्यादेः स्तनमुखस्य दशनपदाङ्कितस्य वा रामणीयकमुन्मुखी पश्येत्तल्लतावेष्टितमिव लतावेष्टितकम् । प्रतिकृतो कम् ॥ १५ ॥

अब प्रत्येक के लक्षण अलग अलग बतलाते हैं—

लतावेष्टितक—जैसे लता शाल वृक्ष पर लिपटती है वैसे ही स्त्री अपने पति से लिपट कर उसके मुँह को तनिक झुका कर कुछ हटकर या लिपटी रहकर धीरे-धीरे सी-सी करती हुई उसके मुख-सौन्दर्य का अवलोकन करे—यह लतावेष्टितक आलिंगन है ॥ १५ ॥

चरणेन चरणमाक्रम्य द्वितीयेनोरुदेशमाक्रमन्ती वेष्टयन्ती वा तत्पृष्ठसक्तैकबाहुर्द्वितीयेनांसमवनमयन्ती ईषन्मन्दसीत्कृतकूजिता चुम्बनार्थमेवाधिरोढुमिच्छेदिति वृक्षाधिरूढकम् ॥ १६ ॥

चरणेनेति । स्वेन चरणेन नायकस्य चरणमाक्रम्य द्वितीयेन चरणेनोरुदेशपार्श्वभागेनाक्रमन्ती यथा जघनघटनस्थानं संश्लिष्टं स्यात् । तत्र वामदक्षिणभेदाद्द्विविधम् । वेष्टयन्ती वेति । बहिर्नीत्वा द्वितीयभागमानमयेच्चरणमित्यर्थः । तदपि वामदक्षिणभेदाद्द्विविधम् । द्वाभ्यां च यदाक्रमणमूर्वोर्वेष्टनं तदुभयमपि वृक्षाधिरूढकमत्रैवान्तर्गतम् । सामान्यविधिमाह–तत्पृष्ठसक्तैकबाहुरिति । नायकपृष्ठे लतावेष्टनवल्लभ एको बाहुर्वामो दक्षिणो वा यस्याः । द्वितीयेन बाहुना स्कन्धभागमवनमयन्ती । ईषदिति । अनुरागकालत्वात् । मन्दानि खिन्नानि श्वसितकादीनि यस्या इत्यर्थः । अनेन संप्रयोगसंस्कारमाह । अत्र सीत्कृतं सीत्करणमेव । कूजितस्य लक्षणं वक्ष्यति । चुम्बनार्थमेव न रामणीयकदर्शनार्थम् । मनागुरुव्यावृतस्यासंभवात् । अधरपल्लवचुम्बनेनोरुव्यत्यासेन प्रयोगफलम् । वृक्षाधिरूढकमिति पूर्ववत् ॥ १६ ॥

वृक्षाधिरूढक—वृक्ष पर चढ़ने के समान वृक्षाधिरूढकम् आलिंगन में स्त्री अपने एक पैर से पुरुष का एक पैर दबाती है तथा दूसरे पैर को पुरुष के दूसरे पैर पर लादती है अथवा अपनी टाँग से पुरुष की टाँग को चारों ओर से लपेटती है । साथ ही अपना एक हाथ पुरुष की पीठ पर रखकर दूसरे हाथ से उसके कन्धे और गर्दन को नीचे की ओर झुकाती है और धीमे-धीमे सिसियाती हुई पुरुष को चूमने के लिए उस पर चढ़ने की चेष्टा करती है—इस आलिंगन का नाम वृक्षाधिरूढकम् है ॥ १६ ॥

तदुभयं स्थितकर्म ॥ १७ ॥

तदुभयं स्थितकर्मेति । ऊर्ध्वस्थितयोर्यत्र योगः स्यात्, द्वाभ्यां रागजननार्थं तावदिदं कर्म ॥ १७ ॥

लतावेष्टितक और वृक्षाधिरूढक—ये दोनों आलिंगन सम्भोग से पूर्व खड़े-खड़े किए जाते हैं ॥ १७ ॥

शयनगतावेवोरुव्यत्यासं भुजव्यत्यासं च ससंघर्षमिव घनं संस्वजेते तत्तिलतण्डुलकम् ॥ १८ ॥

शयनगतावेवेति । अत्रोरुव्यत्यासं चेति क्रियाविशेषणम् । व्यत्यासो विपर्यासः । तत्र वामपार्श्वसुप्तायाः स्त्रिया ऊर्वन्तरे दक्षिणपार्श्वे सुप्तः पुमान्वामभूरुम्, दक्षिणकक्षान्तरे च वामभुजं प्रवेशयेत् । योषिदपि पुंसः । इत्येको व्यत्यासः । इतरपार्श्वसुप्ताया द्वितीयस्य संघर्षार्थमिव घनं निरन्तरं संस्वजेते स्त्रीपुंसावुपगूहेते इति । तिलतण्डुलकमिति ऊरुभुजानां तनुस्थानां तिलतण्डुलानामिवोर्ध्वस्थित्या संमिश्रणात् ॥ १८ ॥

तिलतण्डुलक—विस्तर पर लेटे हुए स्त्री और पुरुष दोनों अपनी भुजाओं और टाँगों से परस्पर गूढ़ आलिंगन करें । तात्पर्य यह कि यदि पुरुष स्त्री के दाहिनी तरफ लेटा हो तो वह अपनी बाईं टाँग स्त्री की जाँघों के बीच और बायें हाथ को उसकी दाहिनी काँख के बीच डाल दे और स्त्री भी पुरुष के समान आलिंगन करे । इस आलिंगन में भुजाएँ और टाँगें तिल और तण्डुल (चावल) की तरह घुली-मिली रहती हैं इसलिए इसे तिलतण्डुलकम् कहा जाता है ॥ १८ ॥

रागान्धावनपेक्षितात्ययौ परस्परमनुविशत इवोत्सङ्गगतायामभिमुखोपविष्टायां शयने वेति क्षीरजलकम् ॥ १९ ॥

अनपेक्षितात्ययाविति । रागान्धत्वादनपेक्षितास्थिभङ्गदोषौ परिष्वजमानौ परस्परमनुप्रविशत इव । बाहुयन्त्रेणातिपीडनान्मृत्पिण्डाविव क्षीरोदकवच्च तादात्म्यं प्रतिपद्येते इव । यथोक्तम्—'भावसक्ताः कामुकाः कामिनीनामिच्छन्त्यङ्गेष्वम्भसीव प्रवेष्टुम्' इति । कथमिदं निष्पद्यत इत्याह—उत्सङ्गगतायामिति । नायकोत्सङ्गे बहिरूरू विन्यस्याभिमुखमुपविष्टायां सत्याम् । अत्र कक्षयोर्वै कक्षयोर्यथायोगं संश्लिष्टयोः कुचयोर्बाहुयन्त्रं स्यात् । शयने वेति । पार्श्वसुप्तयोरित्यर्थः । तिलतण्डुलकं पुनरत्रैव ॥ १९ ॥

क्षीरजलक—अत्यधिक कामान्ध होने पर हानि की कोई परवाह न कर जब स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के अन्दर घुस जाने की लालसा से गाढ़ आलिंगन करते हैं तो उसे क्षीरजलक आलिंगन कहा जाता है । यह आलिंगन उसी स्थिति में सम्भव हो सकता है जब स्त्री पुरुष की गोदी में बैठकर अपनी दोनों टाँगें उसकी कमर में फँसा दे और दोनों हृदय मिलाकर एक दूसरे को खूब दबावें । अथवा जब दोनों चारपाई पर एक दूसरे की ओर मुँह किए हुए करवट लेटे हों ॥ १९ ॥

तदुभयं रागकाले ॥ २० ॥

तदुभयमिति। रागस्य वृद्धत्वात्तत्काल एव द्रष्टव्यम् । सम्प्रयोगकालविशेषश्च-रागकालः । यत्र पुंसः स्थिरलिङ्गता, स्त्रियाश्च क्लिन्नसम्बाधता, तत्र च यन्त्रयोगात्प्राग्यथोक्तमेवालिङ्गनम् । यन्त्रयोजनेन तु संवेशनप्रकारानुरोधाद्योज्यम् ॥२०॥

तिलतण्डुलक और क्षीरजलक—ये दोनों आलिंगन जब काम-वासना का संवेग प्रचण्ड हो जाए तब करना चाहिए ॥ २० ॥

इत्युपगूहनयोगा बाभ्रवीयाः ॥ २१ ॥

बाभ्रवीया इति बाभ्रव्येन प्रोक्ता उपगूहनप्रकाराः ॥ २१ ॥

बाभ्रवीय आचार्यों द्वारा बताए गए आलिंगन के ये भेद समाप्त हुए ॥२१॥

सुवर्णनाभस्य त्वधिकमेकाङ्गोपगूहनचतुष्टयम् ॥ २२ ॥

सुवर्णनाभस्य । बाभ्रवीयादुपगूहनाष्टकादनेन विकल्पवर्गस्याधिक्यमित्येकः प्रकारः । तेनोरोरूर्ध्वभागेन जघनेन यन्त्रस्यायोगे वा जघनमवपीड्येत्याधिक्यं दर्शयति । एकाङ्गोपगूहनचतुष्टयं संप्रयोगकाल इति वर्तते । एकेनाङ्गेन सजातीयस्याङ्गस्य प्राधान्येन संश्लेषणात्तथोक्तम् ॥ २२ ॥

अब आचार्य सुवर्णनाभ द्वारा बताए गए चार प्रकार के आलिंगन बतलाते हैं—

सुवर्णनाभ आचार्य के मत से आलिंगन के चार और भेद हैं । इनमें पुरुष के किसी एक अंग का स्त्री के उसी अंग के साथ आलिंगन होता है ॥ २२ ॥

तत्रोरुसन्दंशेनैकमूरुमूरुद्वयं वा सर्वप्राणं पीडयेदित्यूरूपगूहनम् ॥२३॥

एकमूरुमूरुद्वयं वेति । पार्श्वसुप्तस्य पुंसः स्त्रिया वा । अत्र विशेषाभावाद्द्वयोरपि प्रयोक्तृत्वम् । यस्योरुस्थलमतिविपुलं स प्रयोक्तेति केचित् । सर्वप्राणमिति । क्रियाविशेषणम् । अतिपीडनं हि मांसस्थानेऽत्यन्तसुखकारि स्यात् ॥ २३ ॥

ऊरूपगूहन—स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे की ओर मुँह करके करवट लेट जाएँ और एक जाँघ को या दोनों जाँघों को अपनी जाँघों से खूब ताकत लगाकर दबाएँ । इस आलिंगन का नाम ऊरूपगूहन है ॥ २३ ॥

जघनेन जघनमवपीड्य प्रकीर्यमाणकेशहस्ता नखदशनप्रहणनचुम्बनप्रयोजनाय तदुपरि लङ्घयेत्तज्जघनोपगूहनम् ॥ २४ ॥

जघनेन जघनमिति । पार्श्वशयनेन वराङ्गेण साधनं वाडवकेनापीड्येत्येकः प्रकारः । नाभेरधोभागेन जघनेन यन्त्रस्यायोगे वा जघनमवपीड्येति द्वितीयः । तत्र स्त्रीजघनस्यातिशृङ्गारत्वात्सैव शोभते । विशेषतो विपुलजघना । प्रकीर्यमा-

णकेशहस्तेति प्रयोगसंस्कारः। नखादीनि स्वेच्छया प्रयोज्येति। तत्प्रयोजनं तु फलम्। उपरि लङ्घयेन्नायकस्योपरि तिष्ठेदित्यर्थः ॥ २४ ॥

जघनोपगूहन—एक दूसरे की ओर मुँह किए लेटे हुए स्त्री-पुरुष में से स्त्री कामवासना को उत्तेजित करने के लिए पुरुष की जाँघ को अपनी जाँघ से दबाती हुई उसके ऊपर लेट जाए और उसके मुँह को चूमे, अंगों में नाखून गड़ाए तथा दाँतों से काटे ॥ २४ ॥

स्तनाभ्यामुरः प्रविश्य तत्रैव भारमारोपयेदिति स्तनालिङ्गनम् ॥ २५ ॥

स्तनाभ्यामुर इति। आसने पार्श्वशयने वा पृष्ठभागं निम्नीकृत्य स्तनाभ्यां नायकोरःस्थलं प्रविश्य तत्रैवेत्युरसि भारमारोपयेत्। स्तनस्येत्यर्थात्। एवं हि नायकः स्तनभाराक्रान्ते पिण्डीकृतमिवोरसि स्पर्शसुखमनुभवति ॥ २५ ॥

स्तनालिंगन—स्त्री अपनी छाती को पुरुष की छाती से सटाकर स्तनों का भार उसकी छाती पर लाद दे और फिर खूब कसकर दबाए—इस आलिंगन को स्तनालिंगन कहते हैं ॥ २५ ॥

मुखे मुखमासज्याक्षिणी अक्ष्णोर्ललाटेन ललाटमाहन्यात्सा ललाटिका ॥ २६ ॥

उत्तानसंपुटे पार्श्वसंपुटे वा वक्त्रे वक्त्रं संयोज्य अक्ष्णोरक्षिणी दृष्ट्या लक्षीकरणेनासज्य। नासिकाया मुखनयनमध्यानुवर्तिनीत्वात्तत्संयोजनमर्थोक्तम्। ललाटे ललाटं द्विस्त्रिराहत्य च तत्रैव भारमारोपयेदित्येवास्य नायिका प्रयोक्त्री। तेन ललाटिकेव ललाटिका। नायकललाटस्य संक्रान्तिविशेषेणालंक्रियमाणत्वात् ॥२६॥

ललाटिका—मुँह के सामने मुँह, और आँखों के सामने आँखें करके मस्तक से मस्तक को दबाए—इस आलिंगन का नाम ललाटिका है ॥ २६ ॥

संवाहनमप्युपगूहनप्रकारमित्येके मन्यन्ते। संस्पर्शत्वात् ॥

संवाहनमपीति। त्वङ्मांसास्थिसुखकरणेन त्रिविधं संवाहनमङ्गमर्दनम्। तदपि संस्पर्शयुक्तत्वादुपगूहनविकारमेव द्रष्टव्यमित्येके ॥ २७ ॥

कुछ आचार्य मुट्ठियों से देह दबाने को भी आलिंगन मानते हैं क्योंकि इससे भी स्पर्श-सुख प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

पृथक्कालत्वाद्भिन्नप्रयोजनत्वादसाधारणत्वान्नेति वात्स्यायनः ॥ २८ ॥

पृथक्कालत्वादाचार्याः सर्व एव। पृथक्कालोऽस्येति पृथक्कालम्। उपगूहनात्संस्पर्शित्वेनाभेदेऽपि संवाहनं कालतो भिन्नम्। असाधारणत्वात्। उपगूहनं ह्यनन्तरप्रयुक्तं

द्वयोरप्येकस्मिन्काले कार्यकारीति साधारणम् । संवाहनं तु पुंसा प्रयुक्तं स्त्रियाः कार्यकारि, स्त्रिया च नायकस्येत्यसाधारणम् । अतो गीतादिचतुःषष्ट्याम् 'उत्सादने केशमर्दने कौशलम्' इत्यत्र द्रष्टव्यम् । संस्पर्शत्वे च चुम्बनादीनामपि तद्विकारप्रदानप्रसङ्गात् ॥ २८ ॥

वात्स्यायन मुनि का कहना है कि मुट्ठी मारने का प्रयोजन सम्भोग नहीं थकावट, दूर कराना है। इससे संभोग का कोई प्रयोजन न होने से यह आलिंगन नहीं हो सकता है ॥ २८ ॥

आलिङ्गनविधावादरार्थमाह—

पृच्छतां शृण्वतां वापि तथा कथयतामपि ।
उपगूहविधिं कृत्स्नं रिरंसा जायते नृणाम् ॥ २९ ॥

पृच्छतामिति । पृच्छतां शृण्वतां पार्श्वस्थानाम् । कथयतां परेभ्यः । उपगूहविधिमिति । उपगूहनमुपगूहः । भावे घञ् वा । कृत्स्नं निरवशेषम् । क्वचित्कस्यचिदभिप्रायात् । रिरंसा रन्तुमिच्छा संजायते । किं पुनर्ये प्रयुञ्जते ॥ २९ ॥

इस आलिंगन विधि को जो पूछेंगे, सुनेंगे अथवा बतलाएँगे उनकी भि भोगेच्छा जागृत हो उठेगी और जो इस विधि को प्रयोग में लाएँगे उनको पूर्ण आनन्द की अनुभूति होगी ॥ २९ ॥

अनुक्तातिदेशमाह—

येऽपि ह्यशास्त्रिताः केचित्संयोगा रागवर्धनाः ।
आदरेणैव तेऽप्यत्र प्रयोज्याः सांप्रयोगिकाः ॥ ३० ॥

येऽपीति । अभिधायकत्वेन शास्त्रं संजातं येषां ते शास्त्रिताः । ये नैवंविधाः किं तु स्वेच्छयोत्प्रेक्षिताः संयोगाः संश्लेषाः । आदरेणैव । अवज्ञया न अशास्त्रिता इति । अत्र ते सुरते रागवर्धनत्वात्प्रयोज्याः । सांप्रयोगिकाः संप्रयोगप्रयोजनाः ॥

इनके अतिरिक्त अनेक अशास्त्रीय किन्तु कामोद्दीपक आलिंगन हैं किन्तु उनका परिचय नहीं दिया गया है। सम्भोग के सहायक सभी प्रकार के तथा

---

१. दुःखमप्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव व्यज्यते ।
यतस्तु प्रणयोत्कर्षात् स राग इति कीर्त्यते ॥

यथा—

तीव्रार्कद्युति दीपितैरसिलता धाराकराळाश्रिभि-
र्मार्तण्डोपलमण्डलैः स्थपुटितेऽप्यद्रेस्तटे तस्थुषी
पश्यन्ती पशुपेन्द्रनन्दनमसाविन्दीवरैरास्तृते
तल्पे न्यस्तपदाम्बुजेव मुदिता न स्पन्दते राधिका ॥

—उज्ज्वलनीलमणिः, पृष्ठ : ४४२

विभिन्न स्थानों में प्रचलित आलिंगन को यथास्थान, यथावसर प्रयोग में लाना चाहिए ॥ ३० ॥

शास्त्राणां विषयस्तावद्यावन्मन्दरसा नराः ।
रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं न च क्रमः ॥ ३१ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
आलिङ्गनविचारा द्वितीयोऽध्यायः ।
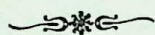
शास्त्राणामिति । अप्रवृद्धरागा हि शास्त्रोक्तक्रमसंयोगे क्रमं चापेक्षमाणाः शास्त्राणां विषयः । रतिचक्रे रागोत्पीडे प्रवृत्ते तद्वशादशास्त्रितानामप्युनुष्ठाना-त्तदानीं न शास्त्रं स्यान्नापि क्रमः । संयोगानां लोपे पौर्वापर्यमुच्चावचेन प्रवर्तनम् । तस्मान्मा भूच्छास्त्रस्य क्रमस्य चानर्थक्यमित्यनुक्तमतिदिश्यते । इत्युपगूहनविचा-रोऽष्टमं प्रकरणम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहका-तरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरण आलिङ्गनविचारा द्वितीयोऽध्यायः ।
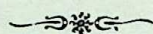
शास्त्र के विषय की आवश्यकता उसी समय तक है जब तक कि मनुष्य कामान्ध नहीं होता है। और कामान्ध हो जाने पर तो शास्त्र और शास्त्र की बताई हुई विधि किसी का भी उपयोग नहीं किया जाता है ॥ ३१ ॥

स्त्री को मैथुन के निमित्त तैयार करने की प्राक्क्रीड़ा आलिंगन है। हर बार मैथुन करने से पूर्व ऐसी प्राक्क्रीड़ा एक प्राकृतिक बल्कि अनिवार्य मङ्गलाचरण सा है। सामान्य रूप से यह अनुभव किया गया है कि पुरुष को ही इस संबंध में अगुवा बनकर क्रियाशील होना पड़ता है। शारीरिक दृष्टि से देखा जाए तो प्राक्क्रीड़ा से ही स्त्री की जननेन्द्रिय सुखानुभूति के कारण ग्रन्थिगत क्षरण से आर्द्र हो जाया करती है। ऐसे ही अवसर पर पुरुष और स्त्री को मैथुन का सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। सम्भोग का वास्तविक आनन्द तभी मिल सकता है जब सम्भोग से पूर्व पूर्णरूप से काम उत्तेजित हो और प्रेम का पूर्ण उद्रेक हो।

वात्स्यायन ने जिन चौसठ कलाओं की परिगणना की है वह उन्हें सम्भोग की

मुख्य भूमिका मानता है। आचार्य पद्मश्री अपने 'नागरसर्वस्व' में हेला, विच्छित्ति, विब्बोक, किलकिंचित, विभ्रम, लीला, विलास, हाव, विक्षेप, विकृत, मद, मोट्टायित, कुट्टमिति, मुग्धता, तपन और ललित इन सोलह भावों को सम्भोग की भूमिका मानते हैं।

उपर्युक्त सोलह भाव स्त्री में उस समय उत्पन्न होते हैं जब वह कामोद्दीपित होती है, स्त्री के इन भावों को समझकर पुरुष को आलिंगन, चुम्बन आदि मैथुन से पूर्व की भूमिकाएँ सम्पन्न करनी चाहिए। जो व्यक्ति स्त्री के हावों-भावों को न समझ कर उस समय निश्चेष्ट रहता है और स्वयं जब कामपीड़ित होता है विना भाव प्रकट किए आलिंगन के लिए तैयार हो जाता है—ऐसे पुरुषों का दाम्पत्य-सुख किरकिरा हो जाता है—उन्हें न तो स्त्री-सुख प्राप्त हो सकता है और न सम्भोग-सुख।

श्रृंगाररस में रति नाम के स्थायी भाव के उदय होने पर चित्त में कामदेव जो प्रथम विक्षोभ उत्पन्न करता है उसे भाव कहते हैं और चित्तस्थ भावों के अवबोधक को अनुभाव कहते हैं। तरुणाई अवस्था में सर्वप्रथम अनुभाव पैदा होता है, कामदेव भीतर ही भीतर चित्त को मथा करता है। वही कन्दर्पक्षोभ जब संकेतों, इंगित-चेष्टाओं, कटाक्षों द्वारा बहिर्मुख होता है तब उसे भाव कहते हैं। उज्ज्वलनीलमणि में 'भाव, हाव और हेला—ये तीनों तरुणी के अंगज-अलंकार माने गए हैं तथा औदार्य, धैर्य, शोभा, कान्ति, द्युति, माधुर्य और प्रगल्भता को उज्ज्वलनीलमणिकार ने अयत्नज—प्रयत्नरहित सौन्दर्यवर्द्धक अलंकार माना है। इनके अतिरिक्त उन्होंने लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक, ललित और विकृत इन दस को स्वभावज अलंकार माना है।'[1]

जब स्त्री हठात् पुरुष का चुम्बन करे, अपनी ओर से आलिंगन करने लगे और अपनी काँपती हुई जांघों को शय्यासीन पति की जांघों पर लादकर काम-क्रीड़ा संबंधी भाव प्रकट करे तो—उसे हेला कहते हैं।

पति या प्रेमी से नाराज होकर स्त्री जब अलंकार, श्रृंगार त्यागकर रूठ जाती है तो उसे विच्छित्ति कहते हैं।

पत्नी या प्रेमिका की मनचाही वस्तु जब पति या प्रेमी लाकर उसे दे और वह उस वस्तु का तिरस्कार कर दे तो उसे विब्बोक कहते हैं।

प्रवास से आए हुए पति या प्रेमी को देखकर जब स्त्री हर्षोन्मत्त हो जाती

१. उज्ज्वलनीलमणिः, पृष्ठ २९९ श्लोक ३–५।

है, बिना आँसू गिराए कभी रोती है और कभी हँसने लगती है तो उसे किलकिंचित कहते हैं।

जब स्त्री कभी मुस्कराती है, कभी क्रुद्ध होती है, फूल मांगकर पहले उसे फेंक देती है फिर उसीसे शृंगार करती है। पति के देखते-देखते सहेली के पास लेट जाती है या इधर-उधर घूमने लगती है तो उसे विभ्रम कहते हैं।

पति या प्रेमी की हर बात की नकल करना, मुँह चिढ़ाना आदि लीला है। पति के पास जाकर लौट आना, बुलाने पर नाराज होना और फिर मुस्कराने लगना—पति के बुलाने पर उसे मुँह बनाकर चिढ़ाना, अंगूठा दिखाना, चाल बिगाड़ कर चलना—विलास है।

भौंहें मटकाकर, आँखें नचाकर, हँसकर, रुक-रुक कर बातें करना, पति के प्रति हार्दिक प्रेम रखना, उसके मनोऽनुकूल आचरण करना हाव है।

पति की इच्छा न रहने पर भी आवेश में आकर रति-संबंधी अनेक विकार प्रकट करना—विक्षेप है।

जानबूझ कर पति को दुर्वचन कहना—विकार है।

बात करती हुई स्त्री जब बार-बार जमुहाई ले, अंगड़ाई ले तो उसे मोट्टायित भाव कहा जाता है।

रतिकाल में केशों और स्तनों के स्पर्श से आनन्द प्राप्त होने पर भी जब स्त्री मिथ्या दुःख प्रकट करती है तो उसे कुट्टमिति कहते हैं।

कामातुरावस्था में अज्ञानता की बातें करना मुग्धता है।

समय पर पति के न आने पर सखियों से शिकायत करना, रोना—तपन है।

भौंह, आँख, हाथ, पैर आदि को कलात्मक ढंग से चलाना, हिलाना—ललित भाव है।

ये भाव प्रायः कामोत्तेजन काल में स्त्रियों में पैदा हुआ करते हैं। पुरुषों को चाहिए कि अपनी ही कामातुर अवस्था पर ध्यान न दिया करें बल्कि स्त्रियों की अवस्था का ख्याल रखें। उपर्युक्त भावों को देखते ही स्त्री की मनोदशा आसानी से पहचानी और परखी जा सकती है।

इस प्रकार के भावों को समझने के लिए संकेतों का ज्ञान परमावश्यक होता है।

आचार्य पद्मश्री का कहना है कि समस्त गुणों तथा कामसंबन्धी चौसठ कलाओं में निपुण नागरिक तरुणी संकेतहीन और गुणहीन पति को मुरझाई हुई पुष्पमाला की भाँति त्याग देती है—

कलाकलापैश्च गुणैः समस्तैर्गुणैरसंकेतविदं हि कान्तम् ।
प्रम्लाननिर्माल्यमिवोत्सृजन्ति गुणाधिका नागरिकास्तरुण्यः ॥

पुरुष अन्यान्य कलाओं और विद्याओं में कितना ही निपुण हो, चाहे कितना ही यशस्वी और प्रभावशाली हो किन्तु यदि वह कामकला में स्त्री द्वारा धिक्कारा जाता है तो यह उसका मरण है—

ततोऽन्यचिन्तां परिहृत्य कामी,
यतेत संकेतकशास्त्रकेषु ।
सतां हि सम्मानसहस्रभाजां,
यूनां वधूधिक्कृतिरेव मृत्युः ॥

संकेत की व्याख्या करते हुए भिक्षु पद्मश्री कहते हैं[1]—वक्रभाषा, अंगभंगी, पोटली, वस्त्र, पुष्प और पान ये संकेत के भेद हैं। वक्रभाषा—पुरुष में फल का संकेत, स्त्री में फूल का संकेत, कुल में अंकुर का संकेत, ब्राह्मण में अनार का संकेत, क्षत्रिय में कटहल का, वैश्य में केला का, शूद्र में आम का, राजपुत्र में द्वितीया के चन्द्र का और राजा में मेघ का संकेत जानना चाहिए।

हीन कुल में काला फूल का; राजपुत्री में चमेली का, वेश्यापुत्री में जुही का और शूद्रपुत्री में कुमुदिनी-पुष्प का संकेत समझना चाहिए।

वणिक् पुत्री में कमल का, मंत्री की पुत्री में नील कमल का, कामी पुरुष में भौंरे का और कामिनी में आम्र-मंजरी का संकेत किया जाता है।

बुलाने में अंकुश का, मना करने में दीवार का, रात के लिए ढके हुए चाँद का और दिन के लिए सूर्य का संकेत किया जाता हैं।

पहले पहर के लिए शंख का, दूसरे पहर के लिए महाशंख का, तीसरे पहर के लिए पद्म का और चौथे पहर के लिए महापद्म का संकेत होता है।

पाँचवें पहीने के लिए राम का, छठे महीने के लिए विराम का, सातवें महीने के लिए प्रवर का और आठवें महीने के लिए प्रत्यूष का संकेत है। ये टेढ़ी-मेढ़ी भाषा के शब्द संकेत हैं। जैसे कोई कामी पुरुष अपनी प्रेयसी से मिलने के लिए इधर-उधर चक्कर काट रहा हो और नायिका या उसकी सखी, दूती की नजर उस पर पड़ जाए तो वह उसे वक्रभाषा द्वारा संकेत कर दे कि भौंरा (कामी नायक) दीवार पर गूंजने से क्या फायदा चन्द्रमा के ढके रहने पर भी आम्र-मंजरी पद्म की भाँति सुरभि फैलाती है। इस संकेत को नायक समझ जाता है कि रात के तीसरे पहर में कामिनी से मिलन हो सकता है अभी नहीं।

१. नागरसर्वस्व परिच्छेद ५१ श्लोक १—११।

अंगसंकेत[१]—कुशल-प्रश्न और कुछ कहने में कान का स्पर्श, कामार्त्त अवस्था में बालों का स्पर्श, प्रेम प्रकट करने में वक्षःस्थल का स्पर्श हाथों से करना चाहिए।

अवसर या समय पूछने के लिए मध्यमा अंगुली को तर्जनी पर चढ़ाना और अवसर आने का संकेत करने के लिए दोनों हाथ से अंजली बाँध लेनी चाहिए और फिर बुलाने के लिए उसी अंजली को उल्टी कर लेनी चाहिए।

पूर्व दिशा के संकेत के लिए अंगूठा, दक्षिण दिशा के लिए तर्जनी, पश्चिम दिशा के लिए मध्यमा और उत्तर दिशा के लिए अनामिका का संकेत करना चाहिए।

कनिष्ठा के मूल से प्रारंभ कर अंगूठे की ऊर्ध्व रेखा तक प्रत्येक अंगुलियों में तीन-तीन रेखा करके पन्द्रह रेखाएँ होती हैं और इन्हीं रेखाओं से प्रतिपदा से लेकर पन्द्रह तिथियों का संकेत किया जाता है। शुक्ल पक्ष की तिथियों का संकेत बायें हाथ की रेखाओं से और कृष्ण पक्ष की तिथियों का संकेत दाहिने हाथ की रेखाओं से किया जाता है।

पोटली संकेत[२]—प्रेम की सूचना में सुगन्धित वस्तु, सुपारी, कत्था और अतिशय प्रेम की सूचना में छोटी इलायची, जायफल और लौंग से संकेत किया जाता है।

प्रेम-भंग की सूचना में मूंगा, बहुत दिनों के संगम में दो मूंगे, कामज्वर में कड़वी वस्तु, सद्यः सहवास के संकेत के लिए मुनक्का होता है।

शरीर-समर्पण में कपास, प्राण-समर्पण में जीरा, भय-संकेत में भिलावा, अभय-संकेत में हरड़।

मोम की एक टिकिया रुपए की तरह बना ले फिर उसमें पाँचों अंगुलि के नाखूनों के चिह्न कर दे और लाल सूत से उसे बाँध दे तो वह पोटली संकेत कहलाता है। मदन-क्रीड़ा के संकेत में मोम, अनुराग के लिए लाल धागे का बन्धन और कामदेव द्वारा घायल होने की सूचना में पाँचों अंगुलियों का नख-चिह्न किया जाता है। इसलिए इसे पोटली संकेत कहते हैं।

वस्त्र संकेत[३]—कामदेव के बाण से जिसका शरीर क्षत-विक्षत हो रहा हो—ऐसी अवस्था का संकेत फटे हुए किन्तु अच्छे वस्त्र दिखा कर किया

१. नागरसर्वस्व परिच्छेद ६ श्लोक १—५।
२. नागरसर्वस्व परिच्छेद ७ श्लोक १—५।
३. नागरसर्वस्व परिच्छेद ८ श्लोक १—२।

जाता है। उत्कट प्रेम प्रदर्शित करने के लिए पीला या गेरुआ वस्त्र देना चाहिए।

वियोग में फटे वस्त्र से, मिलन में सूत के साथ बन्धन भेजकर संकेत करना चाहिए। एक के प्रेम में एक वस्त्र और दो के प्रेम में दो वस्त्र देकर संकेत किया जाता है।

ताम्बूल संकेत[1]—पान के बीड़ा पाँच प्रकार के होते हैं १. कौशल या शलाका (बीच की नस) और सूत्र (नसें) से रहित, २. अंकुश के आकार का ३. कन्दर्प (मध्य में बाण के आकार का) ४. पलंग के आकार का और ५. चौकोना।

स्नेह की अधिकता का संकेत करने के लिये कौशल पान (जिसे कलात्मक ढंग से लगाया जाय) का प्रयोग करना चाहिये। आहरण में अंकुश के आकार के बने हुये बीड़े का प्रयोग करना चाहिये। मदन-व्यथा में कन्दर्प (तिकोना) बीड़ा देना चाहिये और सम्भोग के संकेत के लिये पलङ्ग के आकार का बीड़ा देना चाहिये।

अनवसर का संकेत करने के लिये चौकोना पान का बीड़ा दिखाना चाहिये। प्रेम के अभाव में बिना सुपारी का पान और प्रेम के सद्भाव में इलायची के साथ पान देना चाहिये।

वियोगावस्था का संकेत पान को उल्टा लगाकर काले धागे से बाँध कर करना चाहिये। संयोगावस्था में एक पान के मुँह को दूसरे पान के मुँह से मिलाकर लाल धागे से बाँधकर दिखाना चाहिये। त्याग की सूचना में पान को बीचोबीच फाड़कर काले धागे से बाँधकर संकेत करना चाहिये और मृत्यु की घड़ी की सूचना में पान के बीड़े को लाल धागे से सीकर संकेत करना चाहिये।

अत्यन्त अनुराग होने पर पान के टुकड़े-टुकड़े कर जोड़ देना चाहिये, मध्य में केशर भर दी जाय और बाहर से चन्दन का लेप कर दिया जाये।

पुष्पमाला संकेत[2]—अनुराग में लाल, वियोग में गेरुआ और स्नेह के अभाव में काले धागे से गुँथी हुई माला का उपयोग करना चाहिये।

कामशास्त्र के आचार्यों ने स्त्री की चन्द्रकान्त मणि से उपमा दी है। जैसे चन्द्रकान्त मणि चन्द्रमा की शीतल किरणों का स्पर्श पाते ही पिघल जाती है वैसे ही स्त्री पुरुष का संस्पर्श करते ही द्रवित हो उठती है। इसलिये समझदार नागरक को स्त्री का उपभोग बहुत समझदारी से करना चाहिये।

---

१. नागरसर्वस्व परिच्छेद ९ श्लोक १–६।
२. नागरसर्वस्व परिच्छेद १० श्लोक १।

कामातुर होते हुये भी उसमें मानव-विवेक होना आवश्यक है। कामशास्त्रियों ने कामशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना इसी उद्देश्य से की है कि मनुष्य सम्भोग-काल में पशुवत् रमण न करे। संकेतों तथा आलिङ्गन-चुम्बन आदि संस्पर्शों तथा स्त्री के स्वभाव आदि का मनोवैज्ञानिक शारीरिक अध्ययन करके ही वह सम्भोग-रत हो। भिन्नु पद्मश्री[1] का कहना है कि नायक यदि किसी पर-स्त्री को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है तो आँख मूँदकर बिना बिचारे ही उसे चेष्टाएँ न करनी चाहिये। बाह्य लक्षणों द्वारा उसे यह समझ लेना जरूरी है कि जिस स्त्री की वह कामना रखता है वह साध्य है या असाध्य। पद्मश्री कहता है कि एक तो परस्त्री-गमन ही महापाप है दूसरी बात यह है कि जो स्त्री-पर पुरुष से सम्भोग कराने में अभ्यस्त है, कुलटा है उसे पहले से ही जान लेना चाहिये। इतने पर भी यह जानने की चेष्टा अवश्य करनी चाहिये कि वह स्त्री साध्य या यत्नसाध्य है या नहीं, यदि प्रयत्न करने पर उसकी प्राप्ति की सम्भावना न हो तो उसके पीछे लगना पागलपन होगा।

जो स्त्रियाँ पुरुष को देखकर अपनी भुजाएँ उघारने, मूँदने लगती हैं, पेट दिखाती हैं, किसी न किसी बहाने स्तनमण्डल को देखाने की चेष्टा करती हैं, यदि पास में बालक हो तो उसका चुम्बन, आलिङ्गन करती हैं। बार-बार बालों को खोलती और बाँधती हैं। मुड़कर, झुककर अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग को देखती हैं, वस्त्रों को सँभालती, समेटती हैं। आँखों को मलती हैं, अँगुलियों को मसलती हैं, बार-बार खाँसती, थूकती और जमुहाई लेती हैं। अपने चाहने वाले की बात सुनकर सावधान हो जाती हैं, अंगड़ाई लेती हैं, कानों में अंगुलियाँ डालती हैं, हँसकर बोलती और ताकती हैं—ऐसी स्त्रियाँ थोड़े ही प्रयास में वशीभूत की जा सकती हैं।

जिस स्त्री का पति किसी रोग से ग्रस्त हो या निर्धन, निर्दयी अथवा कुरूप हो। अथवा जिस स्त्री का पति परदेश में रहता हो और जो स्त्रियाँ मेले-ठेले में बहुत जाती हैं वह साध्य हुआ करती हैं, उनको वश में करने के लिये कोई विशेष यत्न नहीं करना पड़ता है।

जो स्त्रियाँ लज्जाशील, धर्म और लोकनिन्दा से डरने वाली, दुखिया, निर्लोभ होती हैं उन्हें असाध्य समझना चाहिये। उन्हें वश में नहीं किया जा सकता है। पद्मश्री[2] का मत है कि बाला और तरुणी स्त्री से सम्भोग करना पथ्य है। सोलह वर्ष की उम्र की स्त्री बाला कहलाती है, सोलह से तीस वर्ष

१. नागरसर्वस्व परिच्छेद १५ श्लोक १—७।
२. नागरसर्वस्व परिच्छेद १६ श्लोक १—५।

की आयु तक स्त्री तरुणी रहती है और तीस से पचास वर्ष की आयु तक प्रौढ़ा और इसके बाद वृद्धा कहलाती है।

ग्रीष्म और शरद् काल में बाला स्त्री से सम्भोग करना हितकर होता है। हेमन्त और शिशिर ऋतु में तरुणी तथा वर्षा और वसन्त में प्रौढ़ा पथ्य है। बाला का उपभोग करने से शक्ति बढ़ती है, तरुणी शक्ति का हरण करती है और प्रौढ़ा तो मनुष्य को वृद्ध बना देती है।

रतिरहस्यकार[1] का कहना है कि सम्भोग से पूर्व नायक को नायिका को द्रवित करने का विधान अवश्य जान लेना चाहिये। जिस प्रकार चन्द्रमा की सोलह कलाएँ घटा-बढ़ा करती हैं उसी प्रकार कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष में स्त्री के सोलह अङ्गों में कामदेव बढ़ता और घटता रहता है।

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि से लेकर पूर्णिमा तक कामदेव पहले स्त्री के अंगूठे पर फिर पाँव पर, जंघा पर, नाभि पर, छाती पर, स्तन पर, बाहुमूल पर, कण्ठ पर, कपोल पर, ओठ पर, आँखों पर, भौंहों पर और ललाट पर क्रमशः ऊपर चढ़ता है। और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से बाँयें भाग होकर क्रमशः मस्तक से उतर कर अंगूठे पर आ जाता है।

इसीलिए बुद्धिमान् नागरक स्त्री के केश पकड़ कर, मस्तक और आँखें चूमकर, अधरों में दन्तक्षत करके, स्तनों को दबाकर, छाती पर, नाभि पर हाथों से थपकी देकर कामदेव को जगाते हैं।

उपर्युक्त जिन पन्द्रह अंगों में चन्द्रकला का निवास बताया गया है, उन अंगों में अत्यन्त कामचेष्टा रहा करती है। इसीलिए संभोग से पूर्व इन अंगों का आलिंगन और चुम्बन किया जाता है। आलिंगन से स्त्री द्रवित हो उठती है और सम्भोग के लिए हर्षोत्फुल्ल होकर तैयार हो जाती है।

कामदेव के पाँच बाण[2] बहुत प्रसिद्ध हैं, वे हैं—अकार, इकार, उकार,

---

१. रतिरहस्य, चन्द्रकलाधिकार, द्वितीय परिच्छेद।

२. अथर्ववेद भी काम-बाणों का वर्णन करता है—

उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथाः शयने स्वे।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामित्वा हृदि॥ १॥
आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम्।
तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि॥ २॥
या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि॥ ३॥
शुचा विद्धा व्योषया शुष्कस्याभि सर्प मा।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता॥ ४॥

एकार और औकार। इन पाँचों बाणों का लक्ष्य स्त्री के निम्नांकित अंग हैं—अकार बाण का पहला निशाना स्त्री का हृदय है। इकार बाण का दूसरा निशाना स्तन है, उकार का तीसरा निशाना आँखें हैं, एकार का चौथा निशाना मस्तक है और औकार का पाँचवाँ निशाना स्त्री का संवाध (गुप्तेन्द्रिय) है। नागरक को चाहिए कि इन अंगों पर भलीभाँति दृष्टि डालकर आलिंगन करना चाहिए। इस प्रकार के आलिंगन से स्त्री कामविह्वल हो जाती है।

सुश्रुत का कथन है कि जिस प्रकार ईख में रस, दूध में घी तथा तिल में तेल अदृश्य रूप से विद्यमान रहता है और ईख पेरने से, दूध मथने से, तिल पेरने से रस, घी और तेल निकल आते हैं उसी प्रकार वीर्य मनुष्य के सर्वांग में व्याप्त रहता है। जब वह मन चाही स्त्री का स्मरण, दर्शन, शब्दश्रवण या आलिंगन करता है तो उसे प्रहर्ष (कामानन्द) का अनुभव होता है और शुक्र अंग-अंग से खिंचकर मूत्रमार्ग में प्रवृत्त होता है।[1] और मैथुनकाल में वह स्त्री के गर्भाशय में प्रविष्ट होकर गर्भ उत्पन्न करता है।

सुश्रुत का यह कथन कितना सत्य और वैज्ञानिक है कि—वीर्य जीवात्मा का रूप द्रव्य है। इसी के द्वारा अदृश्य, अचिन्त्य और अनिर्वचनीय आत्मा की सत्ता और शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। वीर्य के अन्तर्गत जो बीज होता है वही आत्मा का अधिष्ठान है।[2] आत्मा की सत्ता और शक्ति के उद्भावक, प्रेरक वीर्य का दुरुपयोग अशास्त्रीय, पाशविक संभोग द्वारा न किया जाए इसलिए आचार्यों ने सम्भोग से पूर्व की क्रियाओं और अन्त की क्रियाओं का विधान और निर्देश किया है।

यहाँ पर शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान द्वारा भी यह विचार करने की आवश्यकता है कि पुरुष और स्त्री एक दूसरे को देखकर आकृष्ट क्यों हुआ करते हैं, आलिंगन, चुम्बन आदि करने से कामवासना कैसे उद्दीप्त हो उठती है। यौन-मनोविज्ञान के मत से स्त्री और पुरुष का परस्पर आकर्षण भिन्न लिंगी होने के कारण हुआ करता है, अध्यात्मदर्शन का मत है कि

आजामि त्वाजन्या परिमातुरथो पितुः ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ ५ ॥
व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् ।
अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥ ६ ॥

—काण्ड ३ सूक्त २५

१. सु० नि० १०।१९।२१।
२. सु० शा० ३।४।

पुरुष स्त्री के बिना अपूर्ण होता है और स्त्री पुरुष के बिना। पूर्णता को प्राप्त करने के लिए ही स्त्री और पुरुष एक दूसरे से मिलने के लिए लालायित हुआ करते हैं। सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने भी इसीका अनुमोदन करते हुए कहा है कि प्रारंभ में स्त्री पुरुष एक थे, एक ही आत्मा के दो विभाग होने पर एक भाग स्त्री और एक भाग पुरुष कहलाया। तब से निरन्तर स्त्री-पुरुष एक हो जाने की जो चेष्टा करते हैं वही सम्प्रयोग या संभोग है।

कामवासना जन्म से ही मनुष्य के शरीर में समायी रहती है। बचपन में तो वह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है वैसे ही कामवासना जननेन्द्रियों में केन्द्रित होती जाती है और फिर किसी समवयस्क बालक या बालिका को देखकर आकृष्ट हो जाना स्वाभाविक धर्म हो जाता है। कामवासना को केवल जीवनी स्वाभाविक प्रवृत्ति या मानसिक संवेग ही मान लेना ठीक नहीं। शरीर विज्ञान के अनुसार शरीर में कुछ ऐसी ग्रंथियाँ रहती हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के द्रव रहते हैं जिन्हें मानव की जीवन-शक्ति सदैव गतिशील एवं संचरणशील बनाए रहती है। जीवनी शक्ति जब उन द्रवों को संचालित करती है तो वे संचरणशील बनकर सूचम नलिकाओं द्वारा प्रवाहित हो रक्त के साथ मिल जाते हैं। उक्त द्रव-पदार्थों का स्राव मनुष्य के स्वभाव पर बहुत असर डालता है।

आयुर्वेद का क्रिया शारीर भाग यह बतलाता है कि मनुष्य के शरीर में जो भिन्न-भिन्न ग्रन्थियाँ रहती हैं उनमें दो प्रकार का द्रव पैदा होता है। एक तो वह जो विशेष नलिकाओं से प्रवाहित होता हुआ रक्त में मिल जाता है और दूसरा वह जो दूसरी नलिकाओं से प्रवाहित होकर बाहर निकल जाता है। जो द्रव भीतर ही भीतर प्रवाहित होकर रक्त में मिलता है उसे अन्तःस्राव और जो बाहर निकल जाता है बसे बहिःस्राव कहते हैं। बहिःस्राव जब अन्तःस्राव में मिलता है तो वही कामवासना पैदा करता है। इस प्रकार के द्रव को स्रवित करने वाली ग्रंथियों में बीजकोष-ग्रंथि मुख्य मानी जाती है। बीजकोष का बहिःस्राव पुं बीज और स्त्री बीज कहलाता है। जो अन्तःस्राव रक्त के साथ मिलकर कामवासना पैदा करता है उसी के प्रभाव से मानव शरीर में पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिङ्ग के चिह्नों का उदय हुआ करता है। इसी के आधार पर पुरुष और स्त्री में शारीरिक और स्वभावगत अन्तर उत्पन्न होते हैं। पुरुष और स्त्री के स्वभाव और शरीर की बनावट में जो प्राकृतिक अन्तर है उसका आधार यही है। जिन पुरुषों या स्त्रियों के शरीर में ग्रंथियाँ उचित मात्रा में स्राव नहीं उत्पन्न करतीं वे नपुंसक हो जाते हैं।

'तरुणाई का उदय होने पर स्त्री में पाया जाने वाला विशिष्ट चिह्न आर्तव-

प्रवृत्ति है, जिसे रजोदर्शन या मासिक धर्म कहते हैं और जो महीने में एक बार हुआ करता है। पुरुषों में ऐसा ही लक्षण शुक्रस्राव है किन्तु उसका कोई नियत समय नहीं होता है। मनुष्यों में आर्त्तव-प्रवृत्ति के चक्र के समान निम्नवर्ग के स्तनधारी जीवों में एक चक्र होता है जिसे उत्कण्ठाचक्र या प्रमदचक्र कहते हैं। तरुणाई के बाद इन प्राणियों में स्त्री, जातिभेद से, प्रतिवर्ष ऋतुभेद से एक या दो ऋतुओं में पुरुष से सम्भोग करने की इच्छा व्यक्त करती है—उसे अपने पास आने देती है और अपने शरीर को निर्विरोध चूमने चाटने देती है। उसकी इस प्रकार की इच्छा को उत्कण्ठा या प्रमद कहा जाता है। उनके इस प्रकार के संभोग की अवधि कुछ सप्ताह या महीने रहती है। किन्तु मनुष्यों में इस प्रकार की उत्कण्ठा और उससे उत्पन्न संभोग की कोई नियत ऋतु नहीं हुआ करती है। फिर भी शारीर-शास्त्र के वेत्ताओं ने गणना करके यह साबित किया है कि सन्तान पैदा करने की क्षमता सर्वाधिक वसन्त ऋतु में रहती है।

विकासावस्था में प्रत्येक स्त्री बीज छोटे-छोटे अन्यकोषों में अभिव्याप्त होता है। इन कोषों के इस आवरण को 'बीजपुट' कहते हैं। रजोदर्शन के पूर्व या पश्चात् जीवन में होनेवाली प्रत्येक आर्तव-प्रवृत्ति के पूर्व कुछ बीजपुट विकसित होते हैं इनमें पूर्ण परिपक्व केवल एक ही होता है। शेष क्षीण हो जाते हैं। परिपक्व बीजपुट के मध्य में अवकाश हो जाता है। इस अवकाश (खाली जगह) में कुछ द्रव रहता है। इस अवस्था में यह अन्तःफल के बाहर उभर आता है। विकास प्रारंभ होने के दस दिन बाद बीजपुट का आवरण फटता है और स्त्री बीज इसमें से छूटकर बाहर निकल जाता है। इस प्रक्रिया को बीजोत्सर्ग कहते हैं। बीजोत्सर्ग के पश्चात् शेष कवच (बीजपुट) में कुछ परिवर्तन होकर एक घन पीतवर्ण कोषपुञ्ज बनता है इसे बीजपुट-वृद्धि-क्रिया कहते हैं।

स्त्रीबीज बीजवाहिनी नलिका में पहुँचता है इस समय इसका यदि पुरुष बीज से समागम और एकीभाव न हो तो बीजपुट किण्व लगभग १४ दिन और पुष्ट होता है। फिर क्षीण हो जाता है। परन्तु एकीभाव होकर गर्भस्थिति हुई तो बीजपुट किण्व यथास्थिति में रहता है।"[1]

इससे यह निष्कर्ष निकला कि कामोत्तेजना का मुख्य कारण बीजकोष का अन्तःस्राव है। उसीसे मस्तिष्क का स्नायुजाल केन्द्र आन्दोलित होता है। उसके आन्दोलित होने पर ज्ञान-इन्द्रियाँ और कर्म-इन्द्रियाँ हरकत करने लगती हैं। आँखें स्त्री का मुँह, उसके स्तन और नितम्बों को देखकर, जीभ

१. आयुर्वेदीय क्रिया शारीर पृष्ठ ४२९।

चुम्बन करके और कान प्रिया की सी-सी या उसके प्रीतिवाक्य अथवा मिथ्या निषेध सुनकर पुरुष को कामोत्तेजित करते हैं। यही बात स्त्रियों के कामोत्तेजित करने में होती है। वह भी धीर, वीर, स्वस्थ, सुन्दर पुरुष के अंग-प्रत्यंग देखकर, उसकी मनोहारी वाणी सुनकर अपनी कामवासना को उद्दीप्त करती है। इन सब से अधिक कामोत्तेजक शक्ति स्पर्शशक्ति होती है। यद्यपि समस्त चर्म में स्पर्श गुण रहता है किन्तु अंगुली, ओठ और जिह्वाग्र में सर्वाधिक परिमाण में स्पर्शशक्ति रहती है। ओठ, कान, गर्दन, बगल, स्तन, जाँघें और नितम्ब—इनमें अधिक उत्तेजक शक्ति रहती है। इनके स्पर्श मात्र से रोमांच और कामोत्तेजन हो जाता है। यद्यपि कामातुर पुरुप स्त्री के समस्त अंगों में काम का वास समझकर निर्दयता और मूढ़ता से उसके शरीर का मर्दन और आलिंगन करता है किन्तु स्त्री-शरीर में स्तनों की घुंडियाँ और भगनासा—ये दो उत्तेजना के मुख्य केन्द्र हैं। इन दोनों अंगों को एक साथ कोमलता और प्यार से मसलने से स्त्री बहुत शीघ्र द्रवित होती है। यदि पुरुष आलिंगन की इन भूमिकाओं की उपेक्षा कर केवल अपनी ही अतृप्त भूख मिटाने के लिए रति करता है तो स्त्री पूर्ण रूप से उत्तेजित नहीं हो पाती। परिणाम यह होता है कि संभोग का पूर्ण आनन्द नहीं मिल पाता, दोनों में परस्पर आकर्षण कम हो जाता है और कभी-कभी स्त्री मानसिक रोगों से ग्रस्त भी हो जाती है।

भिक्षु पद्मश्री का कहना है कि स्त्री की योनि में संभोग की इच्छा उत्पन्न करने वाली चौबीस नाड़ियाँ हैं। उन नाड़ियों के निर्गम स्थान को 'मदनच्छत्र' कहते हैं। उसे (मदनच्छत्र—भगनासा को) अंगुलियों से धीरे-धीरे मसलना चाहिए। यदि स्त्री बाला (१६ वर्ष की) है तो उसकी भगनासा को सिर्फ अंगुलियों से ही मसलना चाहिए और यदि स्त्री प्रौढ़ा (३० वर्ष से अधिक) है तो उसकी भगनासा अंगुली और गुप्तेन्द्रिय दोनों से रगड़ना चाहिए।

काम को उत्तेजित करने वाली नाड़ियाँ दो मुख में, दो आँखों में, एक हलक में, एक अंगुष्ठमूल में रहती हैं। इन नाड़ियों को आलिंगन कर दबाने से शीघ्र ही वासना प्रस्फुरित होती है। कान, जाँघ, पसली-पीठ के नीचे का भाग और मस्तक में नखाघात करने से कामोद्रेक होता है। सम्भोग की प्रबल इच्छा को जाग्रत् करने वाली सती, असती, सुभगा, पुत्री, दुहित्रिणी—ये छह महानाड़ियाँ स्त्री की गुप्तेन्द्रिय में रहती हैं। योनि के बहुत भीतर पुत्री और दक्षिण दुहित्रिणी नाड़ी है। बायें भाग में सती, दक्षिण भाग में असती, छिद्र के बीच बाएँ-दहिने पार्श्व में थोड़े अन्तर पर सुभगा और दुर्भगा नाड़ियाँ हैं। सती नाड़ी को दबाने से असती नाड़ी कुपित होती है तथा असती को दबाने से सती प्रसन्न होती है। सुभगा

नाड़ी के संचालन से स्त्री सुभगा और दुर्भगा नाड़ी के संचालन से स्त्री दुर्भगा होती है। वह रूक्ष वर्ण, दुर्बल और असमय में वृद्ध हो जाती है। पुत्री नाड़ी के संचालन से स्त्री में सदा जवानी की बहार बनी रहती है। यदि दुहित्री का संचालन किया जाए तो स्त्री के लड़कियाँ पैदा होती हैं और यदि पुत्री तथा दुहित्री दोनों नाड़ियों का संचालन एक साथ किया जाए तो नपुंसक सन्तान पैदा होती है।

कुचमर्दन करने से सती नाड़ी में प्रस्फुरण पैदा होता है, स्त्री की दोनों बगलें सहलाने से असती नाड़ी उत्तेजित होती है। अधर चुम्बन से सुभगा, कमर सहलाने से दुर्भगा, मुँह चूमने से पुत्री और नितम्ब सहलाने से दुहित्री नाड़ी में क्षोभ उत्पन्न होकर तत्काल कामोद्दीपन हो जाता है।

आलिंगन के इस वैज्ञानिक प्रयोजन और महत्त्व को आयुर्वेद ने भी स्वीकार किया है। चरक का कथन है कि स्त्री-पुरुष के समागमजन्य प्रहर्ष से सुषुम्ना तथा मस्तिष्क में स्थित जनन अवयवों के केन्द्र उत्तेजित होकर अपने-अपने अवयवों को प्रेरित करते हैं। इससे ग्रन्थियाँ शुक्र का स्राव करती हैं और अन्य सम्बद्ध इन्द्रियाँ अपना काम करती हैं। नाड़ी-संस्थान का यह कर्म वायु की प्रेरणा से हुआ करता है।[1]

आलिंगन-स्पर्शन के बिना भी कामुक सम्भाषण से जननेन्द्रियों से संबंध रखनेवाली ग्रन्थियों से स्राव होने लगता है। यही स्राव सहवास के लिए पूर्ण उत्तेजना बन जाता है। कदाचित् इसीलिए वात्स्यायन ने पहले से सावधान करते हुए लिखा है कि नागरक को चाहिए कि वह अपने मित्रों के साथ पुष्पमालाओं से अलंकृत, सुगंधित द्रव्यों से सुवासित रतिगृह में जाकर प्रिया से लुभावनी बातें करके उसकी चाटुकारिता करके पहले उसे प्रसन्न करे, फिर उसकी दाहिनी ओर बैठकर चिकनी-चुपड़ी बातें करते हुए उसके केशों और वस्त्रों को संभालने-सहलाने के बहाने स्पर्श करे। इधर-उधर के लतीफे सुनाकर परिहास और प्रेम की बातें करके उसे अनुकूल बना ले। दोहरा अर्थ रखने वाला मजाक करे, और जब वह संभोग के लिए तैयार-सी जान पड़े तो मित्रों को इत्र-पान देकर बिदा कर दे। एकान्त होने पर आलिंगन और चुम्बन करे। इस प्रकार सम्भोग-यज्ञ के पूर्व भगवान् कामदेव का आवाहन कर उन्हें अंग-अंग में प्रतिष्ठित कर सम्भोग-अनुष्ठान प्रारंभ करना चाहिए।[2]

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साम्प्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
आलिंगनविचाराः द्वितीयोऽध्यायः।

---

१. चरक वि० ५।८ तथा सुश्रुत शा० ९।१२।

२. इससे यह भी प्रतीत होता है कि वेश्याएँ पहले नागरक के घर भी जाया करती थीं।

तृतीयोऽध्यायः

एवं परिरभ्य चुम्बनादयः प्रयोक्तव्याः, तत्रापि किं प्राक्चुम्बनं नखच्छेद्यं दशनच्छेद्यं वा पश्चादिति नास्त्येषां प्रयोगक्रम इत्याह—

चुम्बननखदशनच्छेद्यानां न पौर्वापर्यमस्ति । रागयोगात् प्राक्संयोगादेषां प्राधान्येन प्रयोगः । प्रहणनसीत्कृतयोश्च संप्रयोगे ॥ १ ॥

न पौर्वापर्यमिति । रागवशादिति रागयोगात् । रागाविष्टो हि न क्रममपेक्षते । अयं तु विशेषः—यदेषां प्राक्संयोगात्प्राग्यन्त्रयोगात् । यन्त्रयोगे प्राधान्येन बाहुल्येन रागाभ्यासाद्वा प्रबोधनार्थं प्रयोगः । नायकनायिकाभ्यां यन्त्रयोगे तु प्राधान्येनेत्यर्थोक्तम् । प्रहणनसीत्कृतयोस्तु संप्रयोगे यन्त्रयोगे प्राधान्येन प्रयोग इत्येव । तदा हि प्रवृद्धरागयोः प्राधान्येन घातसहत्वम् । प्रहणनबाहुल्ये च तदुद्भवस्य सीत्कृतस्यापि बाहुल्ये प्रागप्राधान्येनेत्यर्थोक्तम् ॥ १ ॥

चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत—ये तीनों एक दूसरे से पहले या पीछे नहीं होते, क्योंकि काम के समय क्रम का ध्यान नहीं रहता है। प्रायः सम्भोग से पूर्व काम को उत्तेजित करने के लिए इनका प्रयोग हुआ करता है। सम्भोग काल में तो प्रहार और सीत्कार इन दो का ही प्रयोग होता है ॥ १ ॥

एकीयमतमेतत् । उत्तरपक्षदर्शनात् । यदाह—

सर्वं सर्वत्र । रागस्यानपेक्षितत्वात् । इति वात्स्यायनः ॥२॥

सर्वं सर्वत्रेति । चुम्बनादिपञ्चकं प्राक्प्रयोगे च प्राधान्येन प्रयोक्तव्यम् । रागस्यानपेक्षितत्वादिति । चण्डवेगो हि प्राधान्येनाप्राधान्येन वाश्रययोगमपेक्षते । मन्दवेगयोस्तु पूर्व एव पक्षः ॥ २ ॥

वात्स्यायन का मत है कि राग समय और नियमों के बन्धन की अपेक्षा नहीं रखता है, इसलिए चुम्बन, नखक्षत आदि हर कोई हर समय कर सकता है ॥ २ ॥

तानि प्रथमरते नातिव्यक्तानि विश्रब्धिकायां विकल्पेन च प्रयुञ्जीत । तथाभूतत्वाद्रागस्य । ततः परमतित्वरया विशेषवत्समुच्चयेन रागसंधुक्षणार्थम् ॥ ३ ॥

तानि चुम्बनादीनि पञ्च । प्रथमरत इति रतस्यारम्भे । नातिव्यक्तानि नातिस्फुटानि । यथालक्षणस्यासमापनात् । विश्रब्धिकया विकल्पेन चेति । इदं वेदं

वेत्येकमेव प्रयुञ्जीत। न समुच्चयेन। तद्यथा—चुम्बनं वा नखच्छेद्यं वा। [चुम्बनं वा] दशनच्छेद्यं वा। चुम्बनं वा प्रहणनं वा। चुम्बनं वा सीत्कृतं वेति। चतुर्धा। नखच्छेद्यं त्रिधा। दशनच्छेद्यं द्विधा। प्रहणनमेकं वेत्यनुलोमा दश। तावन्त एव प्रतिलोमाः, एकत्र विंशतिः प्रयोगाः।

तथाभूतत्वादिति—आरम्भकाले हि मन्दो रागः। ततश्च मध्यस्थचित्तता नातिसहिष्णुता चेति। तदनुरूप एव प्रयोगः। ततः परमिति। आरम्भादुत्तरे काले समधिको रागयोगः। शरीरेऽपि च निरपेक्षत्वमिति तदनुरूपमतित्वरया विशेषवद्विकल्पवर्गानुष्ठानात्समुच्चयेन चेदं वेत्यत्रापि विंशतिप्रयोगाः। किमर्थमेवं प्रयुञ्जीतेत्याह—रागसंधुक्षणार्थम्। अनेन क्रमेण रागो वर्धत इत्यर्थः। अन्यथा विच्छिन्नरसं रतं स्यादिति। एवं परस्परविश्रब्धयोर्न चुम्बनादीनां पौर्वापर्यम्। यदा तु विश्वासनार्थमुपक्रमस्तदास्त्येवेत्येषां पौर्वापर्यम्। उत्तरोत्तरस्याधिक्यात्। सहसा कर्तुमशक्यत्वादिति ॥ ३ ॥

प्रथम सम्भोग के दिन चुम्बन, नखक्षत और दन्तक्षत का प्रयोग एक साथ न करना चाहिए। जैसे-जैसे अनुराग और रति बढ़े वैसे-वैसे चुम्बन, नखक्षत आदि का क्रमशः प्रयोग करना चाहिए। कामसंवेग बढ़ जाने के बाद चुम्बन आदि का एक साथ और शीघ्रतापूर्वक प्रयोग करना चाहिए जिससे कामवासना प्रज्वलित हो और सम्भोग-सुख प्राप्त हो ॥ ३ ॥

आलिङ्गनानन्तरं चुम्बनविकल्पा उच्यन्ते—ते च चुम्बनभेदा न च स्थानभेदं विनेत्याह—

ललाटालककपोलनयनवक्षःस्तनोष्ठान्तर्मुखेषु चुम्बनम् ॥४॥

ललाटेति। तत्र वक्षः पुरुषस्य। स्तनौ योषितः। शेषा उभयोरपि। ओष्ठमुत्तरमधरं च। अन्तर्मुखो मुखान्तस्ताल्वादि। तत्रान्तर्मुखे जिह्वया चुम्बनं वक्ष्यति। एतेष्वष्टसु स्थानेषु चुम्बनमविरुद्धत्वात्पूर्वाचार्याणां मतम् ॥ ४ ॥

मस्तक, जुल्फें, गाल, आँखें, छाती, स्तन, नीचे का ओठ और मुख का आन्तरिक भाग (जीभ) चूमने के स्थल हैं। लाटदेश के निवासी जंघा, बाहुमूल तथा नाभि को भी चूमते हैं। कामवासना के न्यूनाधिक्य के कारण तथा देशाचार भेद से चुम्बन के स्थानों में भेद है। वात्स्यायन कहता है कि यहाँ पर सभी मनुष्यों के उपयोगी चुम्बन स्थानों की गणना की गई है ॥ ४ ॥

चुम्बन के भेदों का परिगणन करते हुए वात्स्यायन कहता है कि सम्भोग में कामोद्दीपन के लिए चुम्बन करना चाहिए किन्तु चुम्बन के साथ ही नखक्षत और दन्तक्षत करना स्वाभाविक हो जाता है। कामातुर होने पर यह परिज्ञान नहीं रह जाता है कि पहले चुम्बन किया जाए फिर नखक्षत

और इसके बाद दन्तक्षत। इस अज्ञानता का कारण बताते हुए वह कहता है कि 'राग' समय और नियम का पाबन्द नहीं होता है, उस समय जोश सवार रहता है, क्या पहले किया जाय और क्या बाद में इसका कुछ होश नहीं रह जाता है।

वात्स्यायन ने यहाँ राग शब्द देकर अपनी सार्वभौम कामशास्त्रीय परिचय-चारुता का परिचय दिया है। संभोग से पूर्व रति की पाँचवीं अवस्था का नाम 'राग' है। संभोग की प्रौढ इच्छा का नाम रति है। धीरे-धीरे रति जब दृढ़ हो जाती है तो वह प्रेम कहलाने लगती है। जैसे सूर्य अपनी तपन से नवनीत को पिघला देता है उसी प्रकार प्रेम जब चित्त को पिघला देता है तो वह स्नेह बन जाता है। बढ़ता हुआ स्नेह मान बनता है और मान बढ़कर प्रणय बन जाता है और प्रणय जब बद्धमूल हो जाता है तब वह राग बन जाता है। यही राग जब अपनी चरम अवस्था को प्राप्त होता है तब वह अनुराग कहा जाने लगता है। जैसे ईख के बीज से इक्षुदण्ड बनता है, इक्षुदण्ड जब पेरा जाता है तो वह रस बन जाता है, रस जब आग में पकाया जाता है तो वह गुड़ बन जाता है; वही गुड़ जब साफ करके चूर्ण किया जाता है तो खाँड़ बन जाता है, खाँड़ का जब पुनः संस्कार किया जाता है तो वह शर्करा बन जाती है, शर्करा को जब पुनः तपाया जाता है और नया संस्कार किया जाता है तो वह मिश्री बन जाती है और मिश्री को साफकर, तपाकर एकदम हल्की बना दिया जाता है तो वह ओला[1] कहलाने लगती है। उसी प्रकार स्त्री और पुरुष के बीच आकर्षण-बीज है, रति अँखुवा है, प्रेम इक्षुदण्ड है, स्नेह रस के समान है, मान गुड़ के समान है, प्रणय खाँड़ के समान है, राग शक्कर के समान है, अनुराग मिश्री के समान है और भाव ओला के समान है।

वात्स्यायन का कहना सर्वथा उचित है कि राग में चुम्बन आदि के क्रम का ज्ञान नहीं रह जाता है। रागावस्था में स्त्री-पुरुष एक दूसरे को शक्कर के समान मीठे जान पड़ते हैं। वे चाहे जहाँ चूमें, जहाँ नाखून गड़ाएँ और कहीं भी दाँतों से काटें उन्हें आनन्द मिलेगा ही। खाँड़ की रोटी चाहे जिधर से काटी जाय मीठी ही होती है।

सुहागरात के दिन जब पति-पत्नी का प्रथम मिलन होता है अथवा प्रेमी और प्रेमिका का जब प्रथम मिलन होता है, उस दिन पति या प्रेमी को

१. ओला कुलफी की शकल का होता है, इसका शरबत बनाया जाता है। मेरठ, मुरादाबाद, बरेली की तरफ बहुत बनता है। संस्कृत में इसे 'सितोत्पला' कहते हैं।

सावधानी बरतने की जरूरत अवश्य है। परस्पर आकर्षण से रति का बीजारोपण हो ही जाता है, उस बीज को अंकुरित, पल्लवित, सुपुष्पित और फलवान बनाने के लिए धैर्य और सावधानी की नितान्त आवश्यकता है। आलिंगन, चुम्बन आदि के अमृतवारि से उसे क्रमशः सींचना चाहिए। अंकुरित रति जब पलकर, पुष्ट होकर राग का रूप धारण कर ले उस समय चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत में क्रमभंग होना बुरा नहीं है। रागवृद्धि होने पर इस क्रम को निभाने की चेतना भी नहीं रह जाती है। यह राग केवल पुरुष ही में नहीं उत्पन्न होता है उसके साथ स्त्री भी रागमयी बन जाती है। रागावस्था में पुरुष द्वारा की गई हर हरकत का जवाब देने के लिए स्त्री तैयार हो जाती है। उसकी वासनाएँ उस समय इतनी उद्दीप्त हो जाती हैं कि वह शील, लज्जा और संकोच का परित्याग कर पुरुष का गाढ़ालिंगन करती है, चुम्बन का जवाब चुम्बन से, नखक्षत का जवाब नखक्षत से और दन्तक्षत का जवाब दन्तक्षत से दिया करती है।

किन्तु वात्स्यायन के कहने का आशय यह है कि प्रारंभ में ही जब रति की अवस्था रहती है उस समय पुरुष यदि उद्दाम वासनाओं से अभिभूत होकर दाँतों से, नाखूनों से स्त्री के कोमल अंगों पर प्रहार करने लगता है तो संभोग-सुख की वास्तविक उपलब्धि तो होती ही नहीं साथ ही ऐसे स्थायी परिणाम निकलते हैं जो मानसिक कुण्ठा बनकर जीवन भर साथ रहते हैं। कुछ ही क्षणों की असावधानी से सम्पूर्ण दाम्पत्य जीवन किरकिरा बन जाता है।

स्त्रियाँ अंगों से ही नहीं स्वभाव और चित्त से भी कोमल हुआ करती हैं। उन्हें फूल समझकर उनका उपयोग ऐसे ढंग से करना चाहिए कि मुरझाने न पाएँ और सुगन्धि बनी रहे। आलिंगन, चुम्बन आदि करने में बलात्कार किया जाता है तो स्त्रियों में भय, आशंका, ईर्ष्या, घृणा कोई न कोई मानसिक विकार उत्पन्न होकर आजीवन बना रहता है। तरुणी के स्वभाव और चित्तवृत्ति को भलीभाँति समझकर उससे उस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। वह किस स्थान के चुम्बन को अधिक पसन्द करती है। दन्तक्षत या नखक्षत उसे किस समय अधिक पसन्द है अथवा इन्हें अधिक महत्व नहीं देती है—यह सब समझ-बूझकर व्यवहार करना सर्वथा उचित है।

प्रारंभ के तीन दिन तो बड़ी ही सावधानी के होते हैं। यदि इस अवधि में स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति किसी प्रकार की विरक्ति का भाव पैदा हो जाता है तो सदैव के लिए वह उसके मन में घृणा बनकर निवास करेगी। इस समय पुरुष को चाहिए कि धैर्य धारण कर, निहायत कोमल बनकर योग्यतापूर्वक स्त्री की मानसिक बाधाएँ दूर करे। स्त्री के शील-संकोच और

लज्जा का भी ख़याल रखना चाहिए। स्त्रियाँ सम्भोग अँधेरे में ही पसन्द करती हैं। उनकी इस वृत्ति के विरुद्ध पुरुष यदि प्रकाश करके उनके अंगों को देखता है, उन पर नाखूनों और दाँतों का प्रहार करता है तो शीलवती कामिनी उस पुरुष में मानवीय चेष्टाओं के विपरीत दानवीय वृत्ति होने का अनुमान कर लेगी और जीवन भर उसका यह अनुमान धारणा बनकर रहेगा, वह पुरुष को अमानवीय वृत्तियों का ही समझती रहेगी।

आनन्द के दान और प्रतिदान का माध्यम सम्भोग है। परस्पर सुख और आनन्द की उपलब्धि के लिये स्त्री और पुरुष अपना सब कुछ एक दूसरे को सौंप दिया करते हैं। आत्मसमर्पण ही स्त्री और पुरुष के लिये अत्यधिक आनन्द और सौभाग्य की वस्तु है। सम्भोग केवल ऐन्द्रिक सुख को ही नहीं प्रदान करता बल्कि वह आत्मबलिदान, आत्मसमर्पण की शिक्षा देता है। सम्भोग के इस रहस्य को समझ लेने पर हम उसका उचित प्रयोग, सदुपयोग कर सकते हैं। पशु और मानव में केवल इसी समझ का अन्तर है।

अधिकतर सम्भोग प्रेम और भूख इन दो मानसिक वृत्तियों पर निर्भर रहता है। प्रेम उदार और भावुक बनाता है तथा वासना की भूख स्वार्थी बनाती है। अधिकांश लोग यही समझते हैं कि दाम्पत्य जीवन के विधानों को कामशास्त्र द्वारा समझने की कोई जरूरत ही नहीं है। प्रकृति सब कुछ स्वयं सिखा देती है। ऐसे विचार रखने वाले मध्य जीवन में पदार्पण करने पर दुःखी और निराश देखे जाते हैं। उनका दाम्पत्य जीवन नीरस हो जाता है। पति-पत्नी के स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। कभी-कभी तो एक दूसरे के प्रति अविश्वास की भावना भी जड़ जमा लेती है।

वात्स्यायन इस विकृत अवस्था से सुरक्षित रखने के लिये ही उपदेश देता है कि सम्भोग से पूर्व आलिङ्गन, चुम्बन आदि उसी क्रम से किये जायें जिस क्रम से रति का उद्वेग बढ़ता जाये। काम संवेग जब पूर्ण अवस्था में आ जाये तब चुम्बन, नखक्षत आदि शीघ्रतापूर्वक करने चाहिये।

वात्स्यायन ने ललाट, जुल्फ, कपोल, नयन, छाती, स्तन, नीचे का ओठ और जीभ को चुम्बन के स्थान बताये हैं किन्तु साथ ही वह यह भी उल्लेख करता है कि लाट देश के लोग जांघों के जोड़ों को, काँख और पेड़ू को भी चूमते हैं। देशाचार के अनुसार हर प्रदेश में चुम्बन की विधियाँ भिन्न-भिन्न सम्भव हैं। नैषधीय चरित से ज्ञात होता है कि चुम्बन रात में ही करना चाहिये, दिन में करना निषिद्ध है। राजा नल अपनी प्रिय दमयन्ती के रूठ जाने पर उसकी अन्तरङ्ग सखी कला से कहता है—'अपनी सखी से कहो कि बेचारे

दिन के अपराध को क्षमा कर दें, क्योंकि रात में 'निशि-चुम्बने' धातु का प्रयोग करती थीं किन्तु दिन में वह बिल्कुल बन्द है'—

क्षन्तुं मन्तुं दिनस्यास्य वयस्येयं व्यवस्यतात् ।
निशीव निशि-धात्वर्थं यदाचरति नात्र नः ॥[1]

वात्स्यायन ने लाट देश के लोगों के चुम्बन के जो स्थल बताये हैं, दमयन्ती के उन्हीं स्थानों को श्रीहर्ष ने नैषधीय चरित में व्यञ्जना द्वारा चूमने का वर्णन नल के मुख से कराया है—'प्रिये सूत के तन्तुओं से बना हुआ तुम्हारा यह परिधान एक परम गुणशाली पुरुष की भाँति जो तुम्हारे नितम्ब, जघनस्थलों का चुम्वन लेता है तथा तुम्हारे स्तनों का आलिङ्गन करता है वह उसके परम सौभाग्य के अनुकूल है'—

यच्चुम्बति नितम्बोरु यदालिङ्गति च स्तनौ ।
भुङ्क्ते गुणमयं तत्ते वासः शुभदशोचितम् ॥[2]

भिक्षु पद्मश्री भी यही स्वीकार करते हैं कि देशभेद से तथा स्वभावभेद से स्त्रियों को चुम्बन प्रिय हुआ करते हैं, इसलिये अपनी प्रकृति के अनुसार ही वे विलास करती हैं—

योषितां विषयसाम्यतः प्रियं चुम्बनं प्रकृतिकृत्यमिष्यते ।
तत्र चैकविषये प्रयुज्यतेऽभीप्सितप्रकृतिसाम्यतस्तदा ॥[3]

देशाचार और स्वभाव के विरुद्ध यदि चुम्बन के प्रयोग किये जाते हैं तो अनुभूति, आनन्द और सुख के ये साधन उसी प्रकार निरर्थक और कष्टकर हो जाते हैं जैसे शीत-ग्रस्त व्यक्ति के लिये पंखे की हवा ।

ऊरुसंधिबाहुनाभिमूलयोर्लाटानाम् ॥ ५ ॥

ऊरुसंधिबाहुनाभिमूलेष्विति । ऊरुसंधिर्वंक्षणम् । बाहुमूलं कक्षौ । तथापरं दशनकृतं वक्ष्यति । नाभिमूलं वराङ्गं पूर्वोक्तम् । लाटानामिति । तेषामेकादश स्थानानीति मतम् ॥ ५ ॥

लाटदेश के निवासी स्त्री के गोपनीय स्थान के ओठों को, जांघ के जोड़ों को, हाथ की काँख और पेडू को चूमते हैं ॥ ५ ॥

रागवशाद्देशप्रवृत्तेश्च सन्ति तानि तानि स्थानानि, न तु सर्वजनप्रयोज्यानीति वात्स्यायनः ॥ ६ ॥

---

१. नैषधीय चरित सर्ग २० श्लोक ५४ ।
२. नैषधीय चरित सर्ग २० श्लोक १४८ ।
३. नागरसर्वस्व, परिच्छेद २० श्लोक १२ ।

रागवशादिति। यानि रागार्थानि देशप्रवृत्तानि स्थानानि चुम्बन्ति। देशप्रवृत्तेश्चेति। यथा लाटविषये प्रवृत्तत्वादूरुसंध्यादीनि तत्रत्याश्चुम्बन्ति तानि सन्ति न तु सर्वजनप्रयोज्यानि सर्वेण जनेन प्रयोक्तुमशक्यानि। शिष्टैरशुचित्वादशक्यानि। तेषामष्टावेव स्थानानि ॥ ६ ॥

इस पर वात्स्यायन मुनि का मत है कि जो लोग ऐसे अङ्गों और स्थानों को चूमते हैं, उनका वह चुम्बन देशाचार के अनुकूल है। दूसरे लोगों को उनका अनुकरण न करना चाहिये ॥ ६ ॥

तत्र मुकुलीकृतेन वक्त्रेण संयोजनमिति लोकप्रतीतम्। तत्र स्थानविशेषेण यद्ग्रहणकर्म तस्य भेदेन चुम्बनभेदाः कथ्यन्ते। तत्र चुम्बनस्थान आस्यस्य मुख्यत्वात्तत्र चुम्बनमुच्यते।

तत्राप्युत्तराधरसंपुटकभेदात्त्रिविधम्। तत्र कर्मबहुत्वादधरमधिकृत्याह—

तद्यथा–निमित्तकं स्फुरितकं घट्टितकमिति त्रीणि कन्याचुम्बनानि ॥ ७ ॥

कन्याचुम्बनानीति। असंगताप्यजातविश्रम्भत्वात्कन्यैव। नायिका एषा प्रायोक्त्री ॥ ७ ॥

कन्या (नई नवेली तरुणी) का चुम्बन तीन प्रकार का होता है—

(१) निमित्तक (२) स्फुरितक (३) घट्टितक ॥ ७ ॥

बलात्कारेण नियुक्ता मुखे मुखमाधत्ते न तु विचेष्टत इति निमित्तकम् ॥ ८ ॥

बलात्कारेण हठाच्चुम्बने नियुक्ता मुखे नायकस्य मुखं स्वमाधत्ते न्यस्यति लज्जया न विचेष्टतेऽधरग्रहणेन। निमित्तकमिति संज्ञायां कन्। चुम्बनक्रियामात्रत्वात्परिमितमित्यर्थः ॥ ८ ॥

(१) निमित्तक

पहली बार जब पति लज्जाशील स्त्री को अपने अधर का चुम्बन जबर्दस्ती कराने के लिये मजबूर करता है तो स्त्री पति के मुख पर अपना मुख रख तो देती है किन्तु अपने ओठों को चूमने के लिये हिलाती नहीं—इस प्रकार के चुम्बन को निमित्तक कहते हैं ॥ ८ ॥

वदने प्रवेशितं चौष्ठं मनागपत्रपावग्रहीतुमिच्छन्ती स्पन्दयति स्वमोष्ठं नोत्तरमुत्सहत इति स्फुरितकम् ॥ ९ ॥

वदने नायिकायाः प्रवेशितं चौष्ठं स्वमधरं नायकेन। किंचिच्छ्लथीकृतलज्जा अनुग्रहीतुमिच्छन्ती। समग्रहणेन कथं तत्क्रियेवेति चेदाह—स्पन्दयतीति। स्वमोष्ठ-

मधरं चलयतीति [ते] नोत्तरमोष्ठमुत्सहते। स्पन्दयितुमर्थात् । तमपि यदि चलयति गृह्णात्येव समग्रहणेन। स्फुरितकमधरस्फुरणात् ॥ ९ ॥

(२) स्फुरितक

और जब एक बार सम्भोग हो जाता है उसके बाद पति जब अपने ओठ स्त्री के मुख में रख देता है तब लजाती हुई वह स्त्री पति के ओठों को दबाना चाहती है और अपने नीचे के ओठ को कुछ हिलाती भी है लेकिन लाजवश ऊपर के ओठ स्तब्ध रहते हैं। इस प्रकार के चुम्बन को स्फुरितक कहते हैं ॥९॥

ईषत्परिगृह्य विनिमीलितनयना करेण च तस्य नयने अवच्छादयन्ती जिह्वाग्रेण घट्टयति इति घट्टितकम् ॥ १० ॥

ईषत्परिगृह्येति सर्वथा त्रपानपगमात्। समं नायकाधरौष्ठाभ्यां समन्ततो गृहीत्वा। स्पष्टग्रहणात्समग्रहणं नाम चुम्बनं वक्ष्यति। निमीलितनयना लज्जया। जिह्वाग्रेण घट्टयन्ती सर्वतो भ्रमणेन स्पृशन्तीत्यर्थः। करेण नयने तस्यावच्छादयन्ती मैवमवस्थां मामयं द्रक्ष्यतीति। घट्टितकमधरघट्टनात्। सर्वत्र संज्ञार्थेनैव कर्मातिदेश इत्यधिकृतौ वेदितव्यम्। एषामानुपूर्व्येणैव प्रयोग इति ॥ १० ॥

(३) घट्टितक

सम्भोग का कुछ अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद मुख में रखे हुए पति के ओठ को पकड़ती तो है किन्तु लज्जा के कारण आँखें मूँद लेती है और अपने हाथों से पति की भी दोनों आँखें मूँदकर जीभ के अग्र भाग से पति के ओठ रगड़ती है—इस प्रकार के चुम्बन को घट्टितक कहते हैं ॥ १० ॥

इदानीं शेषाणां नायकनायिकानां कर्मभेदादधरचुम्बनविकल्पानाह—

समं तिर्यगुद्भ्रान्तमवपीडितकमिति चतुर्विधमपरे ॥११॥

सममिति। ओष्ठपुटेनाधरे पञ्चकग्रहणम्। तत्र यत्सर्वमभिमुखं गृह्यते तत्समग्रहणम्। यत्साचीकृतेनोष्ठपुटेन सर्वं वर्तुलीकृत्य गृह्यते तत्तिर्यग्ग्रहणम्। यच्चिबुके शिरसि च गृहीत्वा मुखं भ्रमयित्वा गृह्यते तदुद्भ्रान्तम्। परस्पराधरग्रहणमित्यर्थः। तदेव त्रितयमवपीडितम्। अवपीड्य ग्रहणात्। पूर्वत्रितयं पीडितमिति विशेषः। तत्रोभाभ्यामेव यत्पीडितं तच्छुद्धपीडितम्। यज्जिह्वाग्रेण सह तदवलीढपीडितम्। तच्चूषणमधरपानं चेति नामद्वयेनोच्यते ॥ ११ ॥

चार प्रकार के दूसरे ढङ्ग के चुम्बन

चार प्रकार के दूसरे चुम्बन इस प्रकार हैं—१ सम अर्थात् पति पत्नी आमने-सामने मुँह करके एक दूसरे के ओठों को चूसते हैं। २ तिर्यक् अर्थात् मुख को

थोड़ा सा मोड़कर और ओठों को गोल कर परस्पर पकड़ना। ३ उद्भ्रान्त अर्थात् पीठ की ओर बैठकर हाथों से सिर और ठुड्डी पकड़कर अपनी ओर घुमाकर ओठों को चूमना। ४ अवपीड़ितक अर्थात् उक्त तीनों प्रकार के चुम्बनों में ओठों को जब खूब जोर से दबाया जाय ॥ ११ ॥

पञ्चमग्रहणमाह—

अङ्गुलिसंपुटेन पिण्डीकृत्य निर्दशनमोष्ठपुटेनावपीडयेदित्यवपीडितकं पञ्चममपि करणम् ॥ १२ ॥

अंगुलिसंपुटेनेति तर्जन्यंगुष्ठसंपुटेन। पिण्डीकृत्य गृहीत्वा। ततो निर्दशनं दशनव्यापारं विना ओष्ठपुटेनावपीडयेत्। अत्र पीडनेऽपि बहिः पिण्डिताकर्षणं विशेषः। पञ्चके तदाकृष्टचुम्बनं नाम ग्रहणम् ॥ १२ ॥

पाँचवाँ भेद

दोनों हाथों की अँगुलियों से दोनों गालों को दबाकर पत्नी के ओठों को अपने मुँह से खूब जोर से इस प्रकार दबाया जाये कि दाँत न गड़ने पायें—इस प्रकार के चुम्बन को अवपीड़ितक कहते हैं—इसे पाँचवें प्रकार का चुम्बन समझना चाहिये ॥ १२ ॥

वात्स्यायन ने निमित्तक, स्फुरितक और घट्टितक—ये तीन प्रकार के चुम्बन कन्याविषयक बताये हैं। यहाँ कन्या शब्द का अर्थ धर्मशास्त्रीय दृष्टि से सात वर्ष की लड़की लगाना अव्यावहारिक होगा। कामसूत्रकार का प्रयोजन उस तरुणी से है जो यौवन की सीढ़ी पर पदार्पण कर चुकी है किन्तु पुरुष से उसका मिलन नहीं हुआ है। कन्या शब्द का यहाँ पर अविवाहिता तरुणी अर्थ करना उचित होगा क्योंकि महाभारतकार ने भी कन्या शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि जिससे लोग सम्भोग की इच्छा रखते हों और जो स्वतन्त्र (अविवाहित) हो उसे कन्या कहते हैं—

यस्मात् कामयते सर्वान् कमेर्धातोश्च भामिनि।
तस्मात् कन्येह सुश्रोणि स्वतन्त्रा वरवर्णिनि ॥

कन्या सम्बन्धी उक्त तीनों प्रकार के चुम्बनों की परिगणना एक क्रम से की गयी है जिसमें मनोविज्ञान का आधार लिया गया है। प्रथम सम्भोग-काल में यदि नायक कुमारी नायिका से अपने अधरोष्ठ का चुम्बन कराना चाहे और लज्जा, भयवश वह चुम्बन न करती हो लेकिन नायक जब उसके मुख पर अपना मुख रखकर जबर्दस्ती उसे चुम्बन के लिये मजबूर करता है तो नायिका नायक के मुँह से अपना मुँह सटाये तो रहेगी किन्तु लज्जावश वह

उसके मुँह को चूमती नहीं—वात्स्यायन इस प्रकार के चुम्बन को निमित्तक कहता है। यहाँ पर निमित्त का अर्थ कारण नहीं बल्कि चिह्न[1] या शकुन[2] समझना चाहिये। नायिका का अपने अधर नायक के अधर पर रख देना ही नायक के लिये प्रसन्नता का चिह्न या भविष्य का शकुन है। उसे यह बोध हो जाता है कि चुम्बन करने की इच्छा रखती हुई प्रिया लज्जावश ओठ नहीं हिला रही है, आगे चलकर लज्जा जब कम होगी तब यह स्वयमेव चुम्बन के लिये उन्मुख होगी—नायक के इस प्रकार सोचने में भी आह्लाद और आनन्द होता है वह इसे अपनी सफलता समझता है।

दूसरी बार सम्भोग क्रिया में नायिका की लज्जा कुछ कम होती है, वह नायक के अधरों को अपने मुख से दबाती है और नीचे का ओठ चूमने के लिये फड़कता है किन्तु लज्जा शेष होने के कारण ऊपर का ओठ स्पन्दनरहित हो जाता है। वात्स्यायन इस प्रकार के चुम्बन को स्फुरितक कहता है। एक ओठ स्फुरित (फड़कता) होता है। उसके स्फुरण से ही इस चुम्बन का नाम स्फुरितक रखा जाना यथार्थ जान पड़ता है। प्रथम समागम में भय, लज्जा और संकोच तीनों का समावेश कुमारी नायिका में रहता है। द्वितीय संभोग में भय और संकोच हट जाता है, इनके स्थान पर आनन्द और स्फूर्ति का समावेश होता है। उसकी भोगेच्छा और मैथुन की सुख-कामना बलवती हो जाती है। नायक को अपना अधर चुम्बन कराने के लिए इस अवस्था में बलात्कार नहीं करना पड़ता है, वह जरा-सा इशारा करता है और नायिका उसके अधरों को अपने मुख से पकड़ लेती है, किन्तु लज्जा का कुछ अंश रहने से वह भलीभाँति चुम्बन नहीं कर पाती।

वात्स्यायन ने तीसरे प्रकार के चुम्बन को घट्टितक कहकर उसका लक्षण बताया है कि सम्भोग क्रिया का कुछ अनुभव और सम्भोग सुख प्राप्त कर लेने पर नायिका नायक के ओठों को चुम्बन के लिए पकड़ती है किन्तु तत्काल पहली बार और दूसरी बार के सम्भोग काल की स्मृतियाँ मानस पटल पर चित्रित हो जाने से वह शरमा कर अपनी आँखें मूँद लेती है। एक ओर लज्जा का आवरण दूसरी ओर चुम्बन की उत्सुकता यह दुविधा उसके हृदय में एक साथ पैदा होती है, वह क्या करे क्या न करे, चुम्बन-सुख से वह कथमपि वंचित नहीं होना चाहती साथ ही लज्जा भी घेरे हुए है। किन्तु पहले की तरह उसे अब न तो भय है न संकोच और न वैसी

१. प्रसादचिह्नानि पुरः फलानि—कालिदास।
२. निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव—गीता।

लज्जा ही है । जो कुछ लज्जा है उसे वह आँखों के परदे से ढकना चाहती है किन्तु यह भी सोचती है कि मेरे चुम्बन को नायक अपनी खुली आँखों से देखेगा इसलिए वह अपने दोनों हाथों से उसके भी नेत्र मूँद लेती है । प्रथम अवसर है इससे पहले कभी उसे किसी को इस प्रकार चूमने का अवसर मिला नहीं है, चुम्बन में भूल हो सकती है, वह भूल परिहास का कारण न बन जाए इसलिए नायक की भी आँखें वह बंद करके अपनी जीभ की नोक को नायक के अधर पर रगड़ती है । ओठ पर जीभ रगड़ने के कारण इस चुम्बन का नाम घट्टितक पड़ा ।

तीसरी बार का नायिका का यह चुम्बन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जीभ द्वारा अधरामृत का पान करना इस चुम्बन क्रिया से सम्भव होता है । जब नायिका के अन्दर से भय, लज्जा और संकोच निकल जाते हैं, सम्भोग के वास्तविक आनन्द का उपभोग वह कई बार कर चुकी है, नायक से मिलने के लिए उसके आलिंगन, चुम्बन के लिए वह स्वयं आकुल-व्याकुल रहने लगती है, उस अवस्था के सम, तिर्यक् , उद्भ्रान्त और अवपीड़ितक—ये चार प्रकार के चुम्बन होते हैं । नायिका कामकला में बहुत कुछ प्रवीण हो जाती है, वह रति और सम्भोग की पूर्वपीठिका से पूर्ण परिचित हो जाती है इसलिए सम, तिर्यक् आदि कलात्मक ढंग के चुम्बन करने के लिए वह उन्मुख रहती है । इन चुम्बनों के बाधक भय, लज्जा, संकोच तो अब नायिका में रह नहीं जाते, वह नायक से काम-युद्ध करने के लिए उद्यत रहती है, तब उसके लिए ये चुम्बन अनिवार्य साधन बन जाते हैं । ये चुम्बन पूर्ण स्वतंत्र वातावरण के हैं । इनका प्रयोग विवाहित दम्पति अथवा मुक्त सहवास करने की जिन्हें छूट हो वही भलीभाँति कर सकते हैं । नायक और नायिका एक दूसरे के आमने-सामने होकर जब परस्पर ओठों को चूसते हैं तो उसे समचुम्बन कहते हैं । यह चुम्बन बैठकर तथा लेटकर दोनों अवस्था में किया जा सकता है और जब इसी अवस्था में मुँह को थोड़ा मोड़कर चूमते हैं तो वह तिर्यक् कहलाता है । जब नायिका नायक के पीछे बैठकर अथवा नायक नायिका के पीछे बैठकर मुँह और ठुड्डी को पकड़ कर पीछे की ओर तनिक घुमाकर एक दूसरे को चूमते हैं तब उसे उद्भ्रान्त कहते हैं । और जब सम, तिर्यक् या उद्भ्रान्त कोई भी चुम्बन करते समय ओठों को खूब कसकर दबाया जाता है तो उसे अवपीड़ितक कहते हैं ।

पहले के तीन प्रकार और दूसरे चार प्रकार के चुम्बनों का पर्यालोचन करने से प्रतीत होता है कि कुमारी नायिका में क्रमशः मानसिक प्रभाव बढ़ता है । उसकी मानसिक दशा जिसमें भय, लज्जा, संकोच का समावेश था

वह उत्तरोत्तर बढ़ती हुई इस स्तर पर आ गयी कि वही लज्जाशीला, संकोचशीला नायिका सम से लेकर अवपीड़ितक तक चुम्बन कर सकती है।

वात्स्यायन ने चुम्बनों का जो क्रम कुमारी नायिका के उद्देश्य से लिखा है वह मानसिक अवस्थाओं के स्तर का भलीभाँति अध्ययन करने के बाद ही। वात्स्यायन स्त्री-मनोविज्ञान का बहुत बड़ा पारखी रहा है। वह समझता था कि कुमारी और विवाहिता के मानसिक स्तर में बहुत बड़ा अन्तर हुआ करता है, किन-किन भूमिकाओं और स्तरों को किस विधि और नियम से नायिका पार करती है यह केवल चुम्बन के इन सात प्रकारों से जाना जा सकता है।

जब नायक के दोनों गाल पकड़ कर नायिका उसके ओठों को सम्पुटित कर खूब कसकर अपने मुँह से दबाती है किन्तु दाँत नहीं गड़ने देती तो वात्स्यायन इसे पाँचवें प्रकार का चुम्बन कहता है। वस्तुतः यह चुम्बन सम्भोग-काल के अति संवेग का है। संभोग से पूर्व इसकी स्थिति नहीं मानी जा सकती है। जिस समय कामसंवेग अपनी चरम अवस्था को पहुँचता है उस समय इस प्रकार का चुम्बन संभव हो सकता है। और जितने चुम्बन बताए गए हैं वे सब अधर (नीचे के ओठ) के चुम्बन थे किन्तु इस पाँचवें प्रकार के चुम्बन में ऊपर और नीचे दोनों ओंठ सम्पुटित करके मुँह में भरकर चूमे जाते हैं। यह पाँचवें प्रकार का चुम्बन सम्भोग से पूर्व कामसंवेग को तीव्रतर बनाने के लिए भी किया जा सकता है और इसे नायक और नायिका दोनों कर सकते हैं।

एवं कर्मभेदादष्टविधमधरचुम्बनमुक्तं त्रीणि कन्याचुम्बनानि पञ्च ग्रहणचुम्बनानीति। तत्र कर्मणा चुम्बनभेदमशेषं समाप्यैवमवसरप्राप्तत्वादधरचुम्बने द्यूतमाह—

द्यूतं चात्र प्रवर्तयेत् ॥ १३ ॥

द्यूतं चेति। अत्रेत्यस्मिन्नधरचुम्बने। नान्यस्थाने। चुम्बने विशोभत्वाद् द्यूतमनुरागवर्धनं स्यात् ॥ १३ ॥

चुम्बनद्यूत

चुम्बन में बाजी लगानी चाहिए।। १६ ॥

तत्र जयपराजयफलत्वाद् द्यूतस्य लक्षणमाह—

पूर्वमधरसंपादनेन जितमिदं स्यात् ॥ १४ ॥

पूर्वमिति। आवयोः परस्परं चुम्बतोर्येन पूर्वं प्रथमतोऽधरस्य ग्रहणविधिना संपादनं कृतं तस्मिन् सति तेन जितम्। किं तदित्याह—इदम्। इत्यनेन द्वयोरभिमतपणं सूचयति। द्यूतं च कपटेनाकपटेन वा स्यात्। तत्र यल्लौकिकेनैव

चुम्बनेन द्वावेव परस्परस्याधरं चुम्बतस्तदकपटं च वक्ष्यति। तत्र तस्मिन्नकपटे द्यूते प्रवृत्ते नायकेन पूर्वमन्यतमेन ग्रहणम्। चुम्बनेन गृहीताधरत्वाज्जिता। अकपटद्यूते नायिकाया अबलत्वात्सैव जिता शोभते। कपटद्यूते चास्यास्तदनुरूपत्वाज्जयं वक्ष्यति। नायकेन तु कपटद्यूते न जेतव्या। तस्या अननुरूपत्वात्॥

नायक और नायिका में से जो भी दूसरे के अधर ओष्ठ को पहले पकड़ ले उसी की ही जीत होगी॥ १४॥

तत्रान्यतरस्य जयेऽपरस्य कलहोऽवश्यं भावी। द्यूतस्य कलहास्पदत्वात्। इति कलहयोजनं रागोद्दीपनार्थमाह—

तत्र जिता सार्धरुदितं करं विधुनुयात्प्रणुदेद्दशेत्परिवर्तयेद्बलादाहृता विवदेत्पुनरप्यस्तु पण इति ब्रूयात्। तत्रापि जिता द्विगुणमायस्येत्॥ १५॥

सार्धरुदितमिति क्रियाविशेषणं चैतत्। अधरपीडोपख्यापनार्थं सहार्धरुदितेन कृतकेन करं विधुनुयात्कम्पयेत्। प्रणुदेत्तर्जयेत्। भङ्गवैलक्ष्यान्नायकं क्षिपेत्। दशेच्छ्लेषमधरग्रहणं बुद्ध्वा दन्तैः खण्डयेत्। परिवर्तेत मुखेनाशक्ता चेत्कायेनाधरमोक्षार्थम्। विवदेन्नैव जितास्मि मयैव जितमिति कलहयेत्। पुनरस्त्वपरः पण इति। पुनः क्रीडामः। पूर्वस्मात्पणादयमपरः पण इति ब्रूयात्। तत्रापीति द्वितीयेऽपि पणे। द्विगुणमायस्येदिति करधूननाद्याधिक्येन कुर्यादित्यर्थः॥ १५॥

चुम्बनकलह

चुम्बन की बाजी में यदि स्त्री हार जाए तो हाथ पटक-पटक कर सिसकियाँ लेने लगे, पति को ठेलकर दूसरी ओर कर दे, दाँतों से काटे और दूसरी ओर मुँह करके करवट बदल ले। यदि पति उसका मुँह अपनी ओर करना चाहे तो उससे वाग्युद्ध शुरू कर दे और कहे कि अच्छा फिर से बाजी लगायी जाए। यदि वह दुबारा भी हार जाए तो पहले की अपेक्षा दूना कलह और कोलाहल करे॥ १५॥

कपटद्यूतमाह—

विश्रब्धस्य प्रमत्तस्य वाधरमवगृह्य दशनान्तर्गतमनिर्गमं कृत्वा हसेदुत्क्रोशेत्तर्जयेद्वल्गेदाह्वयेन्नृत्येत्प्रनर्तितभ्रुणा च विचलनयनेन मुखेन विहसन्ती तानि तानि च ब्रूयात्। इति चुम्बनद्यूतकलहः॥ १६॥

विश्रब्धस्येति । तस्मिन्नेव सुखे मुखचुम्बनद्यूते अन्तरा विश्रब्धिकया नायिका विश्रम्भयेत् । ततो विश्रब्धस्य प्रमत्तस्य वाकस्मादन्यत्र गतचेतसोऽधरमवगृह्यौष्ठसंपुटेन ततो दशनान्तर्गतमनिर्गमं कृत्वा यथा तदन्तर्गतमपि प्रमादान्न निर्गच्छति । सापराधत्वात् । पश्चाद्गृहीताधरा मुक्ताधरा वा यथासंभवमुत्तरं व्यापारमनुतिष्ठेत् । इतरत्रापि कपटद्यूते स्खलितप्रमादापेक्षयैव जयो दृष्टः । इत्येवं कपटेन जित्वा हसेत् । सशब्दमितरं वा । अत्यन्तपरितोषणात् । उत्क्रोशेन्मया जितमिति पूत्कुर्यात् । यथास्य मित्राणि शृण्वन्ति स्वसख्यो वा । तर्जयेल्लब्धोऽसीदानीं खण्डयामि तेऽधरमिति । वल्गेत्सविलासं गात्राणि विक्षिपेत् । आह्वयेत्सख्यन्तमेव वापसृत्य गच्छ दर्शयतां स्वपौरुषमिति नृत्येत्तत्परितुष्ट्या भ्रूणा चेति एकोद्धारक्रमेण समुन्नमितभ्रुणा मुखेनेति विहितसंस्कारः । विहसन्ती कलहावसानत्वात् । तानि तानीति यानि यथार्थयुक्तानि रागदीपनानि मन्यते । चुम्बनद्यूतकलह इति । अकपटे कपटे च चुम्बनद्यूते कलह उक्तः ।

यदि नायकोऽपि जेता जितो वा तथा चेष्टेत । अन्यथा कथं कलहः स्यात् । तद्यथा—दृढमधरमवपीडयन्ससीत्कृतं च शिरो विधुनुयात् । नुदतीमुपसर्पेत् । दशन्तीं प्रतिदशेत् । परिवर्तमानां प्रतिनिवर्तयेत् । विवदमानां प्रतिविवदेत् । तेषु त्वयमपरः पण इति पूर्वकमेव तावत्प्रयच्छेति च ब्रूयात् । तत्रापि जेता द्विगुणमायस्येदिति पणद्वयसाधनार्थं साधयेत् । जितोऽपि वैलक्ष्याद्विहसेत् । जितं जितं मयेत्युत्क्रोशन्त्या मिथ्या मिथ्येत्युत्क्रोशेत् । तर्जयन्तीं प्रतितर्जयेत् । वल्गन्तीं तद्गात्रसंयमनेन प्रतिवल्गयेत् । आह्वयन्तीं प्रत्याह्वयेत् । नृत्यन्तीं करतालिकया प्रतिनर्तयेत् । विहसन्तीं तानि तानि ब्रुवन्तीं तद्वचननिषेधार्थं प्रतिब्रूयादिति । यथा चोक्तम्—जितो वा यदि वा जेता चुम्बनद्यूतकर्मणि । तस्या एव विचेष्टाभिः कलहं प्रतियोजयेत् ॥' इति ॥ १६ ॥

कपटद्यूत

दुबारा हार जाने पर नायिका नायक के असावधान रहने पर उसके अधर को दाँतों से पकड़ ले । अपनी इस अप्रत्याशित जीत पर वह हँसे और धमकाए कि यदि छुड़ाओगे तो दाँतों से काट लूँगी । अपनी जीत का प्रकाशन उच्च स्वर से करे । नायक को ताना मारे, जो मन में आवे सो कहे, उसको चैलेंज दे, आँखों को नचाकर भौंहों को घुमाकर हँसती हुई नायक के पुरुषार्थ को चुनौती दे । चुम्बन द्यूत संबंधी प्रेमकलह समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

एतेन नखदशनच्छेद्यप्रहणनद्यूतकलहा व्याख्याताः ॥१७॥

एतेनेति चुम्बनद्यूतकपटेनाकपटेन च । तत्राप्ययमेव विधिः । तद्यथा—पूर्वं नखच्छेद्यादिसंपादिते जितमिदं स्यादित्यादि । अत्र च द्यूतप्रवर्तनं नखदशन-

हस्तानां प्रहणनस्थानेष्वेव मोहनेन स्यात् । सीत्कृतद्यूतकलहस्तु प्रथमं न संभवति। प्रहणनकलहे द्रष्टव्यः । तदुद्भवत्वात् । तत्र जेता ससीत्कृतं प्रहण्यात् । जीयमानस्य प्रहणनं प्रतीच्छेत् ॥ १७ ॥

चुम्बन-कलह की भाँति ही नाखूनों से नोचने, दाँतों से काटने और प्रहार करने की बाजी लगानी चाहिए। और हारने पर उसी प्रकार से कलह करे ॥१७॥

चण्डवेगयोरेव त्वेषां प्रयोगः । तत्सात्म्यात् ॥ १८ ॥

एषामिति कलहानाम्। तत्सात्म्यादिति ईदृशैरेव चेष्टितैश्चण्डवेगयोः सात्म्यम् । न मन्दवेगयोः तद्विमर्दाक्षमत्वात् ॥ १८ ॥

इस प्रकार का प्रेमकलह उन्हीं नायक-नायिकाओं के लिए है जो चण्डवेग—अर्थात् तीव्रता के साथ संभोग करते हुए बहुत देरतक ठहरते हैं ॥१८॥

तत उत्तरोष्ठविधिमाह—

तस्यां चुम्बन्त्यामयमप्युत्तरं गृह्णीयात् । इत्युत्तरचुम्बितम् ॥

तस्यामिति । समग्रहणेन नायकाधरं चुम्बन्त्यां नायिकायामयमपि नायकः प्रसङ्गादस्य उत्तरोष्ठं समग्रहणेन गृह्णीयात् । उत्तरचुम्बितमुत्तरोष्ठग्रहणेन । प्रासङ्गिकमिदम् । केवलं तु सत्यधरे न प्रयोक्तव्यम् । ग्राम्यत्वान्नासिकापुटवत् । प्रासङ्गिके च तिर्यग्ग्रहणादीनामसंभवात् । एवमुत्तरचुम्बितमेकविधमेव । समग्रहणं नामास्या नायिकापि प्रयोक्त्री । यदि पुरुषो न जातव्यञ्जनस्तदा ॥ १९ ॥

जब नायिका नायक के अधर को चूम रही हो तब नायक भी नायिका के ऊपर के ओठ को अपने ओठों से पकड़ ले। इस प्रकार के चुम्बन को उत्तर-चुम्बन कहते हैं ॥ १९ ॥

द्वयोरपि युगपद्विधिमाह—

ओष्ठसंदंशेनावगृह्यौष्ठद्वयमपि चुम्बेत । इति संपुटकं स्त्रियाः, पुंसो वाऽजातव्यञ्जनस्य ॥ २० ॥

ओष्ठसंदंशेनेति । उभाभ्यां ग्रहणं संदंशः । तेनौष्ठद्वयमवगृह्य वक्त्रान्तः प्रवेश्याभिचुम्बेदिति । ससीत्कारं स्वमोष्ठपुटं संकोचयेदित्यर्थः । सर्वत्र चुम्बनविधावायाते शब्दोच्चारणं कार्यम् । संपुटकमोष्ठद्वयग्रहणात् । एतच्चतुर्विधम्—समं तिर्यग्भ्रान्तमवपीडितं च । आकृष्टं न योज्यमशोभितत्वात् । स्त्रिया इति । पुंसा प्रयोक्तव्यम् । तदोष्ठयोर्निर्लोमत्वात् । स्त्रियापि पुंसश्चाजातव्यञ्जनस्याप्ररूढश्मश्रोः । इतरथा लोमभिर्वक्त्रपूरणासुखावहं स्यात् ॥ २० ॥

अथवा नायिका के दोनों ओठों को पकड़ कर चुम्बन करे। स्त्री भी पुरुष के दोनों ओठों को उस अवस्था में पकड़ कर चूम सकती है, जब पुरुष के मूँछे न हों। इस प्रकार का चुम्बन सम्पुटिक कहलाता है ॥ २० ॥

एवमोष्ठचुम्बनं त्रिविधमुक्त्वा सम्पुटान्तर्गतत्वान्तर्मुखचुम्बनविकल्पानाह—

तस्मिन्नितरोऽपि जिह्वयास्या दशनान्घट्टयेत्तालु जिह्वां चेति जिह्वायुद्धम् ॥ २१ ॥

तस्मिन्निति संपुटचुम्बने। इतरो नायको नायिका वा यस्य संपुटकं प्रयोक्तुमस्येति (इच्छति)। प्रयोक्तुर्विवृतास्यत्वादुपर्यधश्च दशनाञ्जिह्वया घट्टयेत्। संमार्जयेदित्यर्थः। तालु जिह्वयोर्ध्वप्रसारितया, जिह्वां वा ऋजुप्रसारितया घट्टयेत्। जिह्वायुद्धं च। कुर्यादिति शेषः। परस्परप्रेरणेन। एतच्चतुर्विधम्—अन्तर्मुखचुम्बनं दशनचुम्बनं जिह्वाचुम्बनं तालुचुम्बनं चेति ॥ २१ ॥

जिह्वामुख-दन्तयुद्ध

उपर्युक्त सम्पुट चुम्बन करता हुआ नायक जब नायिका के दाँतों में और मुख-तालु में अपनी जीभ को अच्छी तरह रगड़ता है तो उसे जिह्वायुद्ध कहते हैं ॥ २१ ॥

एतेन बलाद्वदनरदनग्रहणं दानं च व्याख्यातम् ॥ २२ ॥

जिह्वायुद्धेन वदनरदनग्रहणमिति हठाद्वदनेन वदनस्य दशनैर्दशनानां ग्रहणे परस्परस्य युद्धमिति ग्रहणपूर्वकं वदनयुद्धं रदनयुद्धं च व्याख्यातम्। दानं चेति। एकश्चुम्बयितुं हठाद्वदनं ददाति ग्राहयितुं वा दशनानन्यो गृह्णातीत्युभयोर्ग्रहणदानपूर्वकं वदनयुद्धं रदनयुद्धं चेति ॥ २२ ॥

इसी प्रकार मुखयुद्ध और दन्तयुद्ध भी समझना चाहिए ॥ २२ ॥

समं पीडितमञ्चितं मृदु शेषाङ्गेषु चुम्बनं स्थानविशेषयोगात्। इति चुम्बनविशेषाः २३ ॥

शेषाङ्गेष्विति ओष्ठान्तर्मुखेभ्योऽन्येषु ललाटादिस्थानेषु कर्मभेदात्समचुम्बनं पीडितचुम्बनमञ्चितचुम्बनं मृदुचुम्बनं चेति चतुर्विधम्। स्थानविशेषयोगादिति। यद्यत्र प्रयुज्यते तत्तत्र स्यादित्यर्थः। तत्रोरुसंधिकक्षावक्षःसु समम्, न पीडितं नातिमृदु। तेन कपोलकक्षामूलनाभिमूलेषु पीडितम्। ललाटचिबुकयोः कक्षापर्यन्ते चुम्बनमञ्चितम्। ललाटनयनयोर्मृदुस्पर्शमात्रकरणमिति। एवमेते कर्मभेदाच्चुम्बनभेदा उक्ताः ॥ २३ ॥

विशेष-चुम्बन

इनके अतिरिक्त चार प्रकार के चुम्बन और हैं—१. सम—आमने-सामने बैठकर या लेटकर जांघों को, छाती को और काँख को चूमना, गुदगुदाना। २. पीडित—स्तन, कपोल, नाभि और नितम्बों को पकड़कर दबाना, चिकोटी काटना। ३. अञ्चित—स्तनों के नीचे और बाहुमूल में धीरे से गुदगुदा देना

या हल्के से चूम लेना। ४. मृदु—गालों में, स्तनों में, नितंब और पीठ पर हाथ फेरना—सहलाना। चुम्बन विशेष के भेद समाप्त हुए॥ २३॥

व्याख्या—वात्स्यायन मुनि चुम्बन में बाजी लगाने की विधि बतलाते हैं अर्थात् नायक-नायिका दोनों में से कौन किसका ओठ पहले चूम ले या पकड़ ले। कदाचित् नायिका हार जाती है तो आचार्य उसे रति-कलह करने की सलाह देते हैं, वह सिसकियाँ भरती हुई हाथ पटके, नायक को धक्का देकर उसे अलग कर दे, दूसरी ओर अपना मुँह घुमा ले। जब वह उसे जबर्दस्ती अपनी ओर मुखातिब करना चाहे तो नायिका उससे विवाद करती हुई कहे कि अच्छा फिर से बाजी लगायी जाये। अगर दुबारा वह हार जाये तो पहले से ज्यादा शोर मचाना शुरू कर दे फिर नायक को अचानक धोखा देकर उसके अधर दाँतों से दबाकर हँसती हुई अपनी जीत की घोषणा करे, नायक के पुरुषार्थ को चुनौती दे। उसे यह कहकर धमकाये कि छुड़ाओगे तो काट लूँगी। बार-बार व्यंग्य करे। आँखों और भौंहों के इशारे से अपनी जीत की प्रसन्नता प्रकट करे इसी प्रकार नाखूनों और दातों से भी चोट पहुँचाने की कला के भेद हैं।

वात्स्यायन ने नायिका को इस प्रकार का कलह करने की जो सीख दी है। उसका तात्पर्य 'राग' का बढ़ाना है। यह कलह वास्तविक झगड़ा नहीं बल्कि रति और राग को बढ़ाने वाला प्रेम-कलह है। इस प्रकार के रगड़-झगड़, वाद-विवाद से नायक-नायिका की उन ग्रन्थियों से स्राव टपकने लगता है जिनका सम्बन्ध मैथुन-क्रिया से रहता है। शरीर में रोमाञ्च, मन में स्फूर्ति और गुप्ताङ्गों में उत्तेजना का विकास होता है।

लेकिन इस प्रकार का प्रेम-कलह सबके लिये साध्य नहीं है। जो नायक-नायिका प्रचण्डवेगी होते हैं, जो समागम-काल में बहुत देर तक स्खलित नहीं होते उन्हीं के लिये यह चुम्बन-कलह उपयुक्त होता है। इस प्रकार के कलह से उनका संवेग बढ़ता है, मैथुन-शक्ति का विकास होता है और शारीरिक तथा मानसिक आनन्द की पूर्ण अनुभूति होती है।

पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका का यह सम्भोग-संग्राम दो मल्लों के युद्ध के समान है, आलिंगन, चुम्बन, नखच्छेद्य, दन्तच्छेद्य, कलह आदि इस युद्ध के दाँव-पेंच हैं। इस युद्ध को कांटे की कुश्ती तभी कह सकते हैं जब नायक-नायिका समलिङ्गी, समवयस्क, सम-स्वभाव के हों। जैसे नायक शश है तो नायिका भी मृगी होनी चाहिये। तभी वह नायक के हर दाँव-पेंच की काट कर सकती है, उसे उचित जबाब दे सकती है। तात्पर्य यह कि यदि नायिका नायक के अधर को चूम रही हो तो नायक को निश्चेष्ट न रहना चाहिये वह भी उसके ऊपर के ओंठ को चूसने लगे, चुम्बन का जवाब चुम्बन से, दन्तच्छेद्य

का जवाब दन्तक्षत से और नखक्षत का जवाब नखक्षत से दोनों को देना चाहिये। कदाचित् नायक नायिका का अधरोष्ठ पान कर रहा हो तो नायिका को उस अवस्था में नायक के ऊपर के ओंठ को अपने दाँतों से तब दबाना चाहिये जब नायक के मूँछे न हों। वात्स्यायन की इस कामशास्त्रीय व्यवस्था से स्पष्ट है कि उस समय का रसिक नागरक मूछें अवश्य मुँड़ाता रहा है। जो मूँछें नहीं मुड़ाते रहे हों वे अभागे अपनी नायिका के इस प्रकार के चुम्बन से सर्वथा वञ्चित रहते रहे होंगे।

अधरों के युद्ध के समान जिह्वायुद्ध भी प्रेमी-प्रेमिकायें किया करते थे। यह युद्ध उस समय छिड़ता था जब नायक या नायिका कोई एक किसी एक के दोनों गालों को हथेलियों से दबाकर ओठों को सम्पुटित कर अपने मुँह में दबा लिया करते थे और जीभ को सूई की तरह पतली बनाकर उसे दाँतों में और मुँह के भीतर तालु में रगड़ते थे। ऐसे ही व्यक्तियों को सूक्तिकारों ने भाग्यवान कहकर लिखा है कि—'अधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति।' इस प्रकार के जिह्वायुद्ध से रति बढ़कर राग बन जाया करती है और राग जब भाव की स्थिति में पहुँच जाता है तब सम्भोग का सच्चा सुख, वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है।

जिह्वायुद्ध की भांति मुखयुद्ध और दन्तयुद्ध भी हुआ करते हैं। नायक और नायिका एक दूसरे के मुँह को सम्मुख करने की चेष्टा करते हैं। कपोल से कपोल को सटाते हैं, दाँत किटकिटाकर संवेग को पूर्ण अवस्था में लाने की चेष्टा करते हैं। संवेग बढ़ जाने पर दाँतों से एक दूसरे को काटते हैं। दन्ताघात से उस समय जो व्यथा पैदा होती है वह शरीर में रोमाञ्च और मन में उत्तेजना भरने वाली होती है।

वात्स्यायन ने सम्भोग-संवेग बढ़ाने वाली उन क्रीड़ाओं को भी चुम्बन-विशेष माना है जो सुरत-काल से पूर्व अथवा सुरत-काल में ही नायक नायिका के गालों, स्तनों, जांघों, नितम्बों और वराङ्ग में चिकोटी काटकर, थपकी देकर अथवा गुदगुदा कर नायिका को उत्तेजित और रागमयी बनाता है। ऐसे चुम्बन-विशेष सम, पीडित, अञ्चित और मृदु चार प्रकार के होते हैं।

चुम्बन सम्भोग-सुख की पूर्वपीठिका है, आनन्द की उपलब्धि और राग की वृद्धि के लिए चुम्बन किया जाता है। किन्तु वात्स्यायन ने यही चुम्बन-कलह का जो विधान बनाया है उसे स्थूल दृष्टि से देखने से वह कुछ अटपटा-सा प्रतीत होता है। क्योंकि जहाँ प्रेमी-प्रेमिका, हँसते हुए आमोद-प्रमोद में निरत हैं वहीं रोना, हाथ पटकना, धक्का देकर दूर हटा देना, दाँतों से काटना, विवाद करना, कोलाहल करना आदि सम्प्रयोग में कलह और

विप्रलम्भ का होना विरुद्ध भावों का उत्पादक है। साथ ही यदि हारी हुई नायिका धोखे से नायक के अधर पकड़ लेती है तो वह हँसती है, धमकी देती है, ताने मारती है, बकवाद आदि अनेक विक्षिप्त और विरोधी भावों का प्रदर्शन करती है।

यह सब राग-वृद्धि और आनन्द की उपलब्धि के सहायक हैं। इस कलह और ईर्ष्या से कैसे राग बढ़ता है, कैसे सम्भोग का वास्तविक आनन्द प्राप्त हो सकता है—यह एक सामान्य प्रश्न हर व्यक्ति की बुद्धि में उत्पन्न हो सकता है। किन्तु कामशास्त्रीय दृष्टि से इस प्रकार का कलह, ऐसी ईर्ष्या और ऐसे बकवाद इसी मौके पर होने चाहिए और अवश्य होने चाहिए। हारी हुई नायिका का रोना, नायक को धक्का देकर दूर हटा देना, चूमने की बाजी में जीतने की लालसा और इच्छा तथा धोखे से जीत लेने में उन्मादी हर्ष का होना आदि जो भी अवस्थाएँ हैं उन्हें यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो इनसे उत्तोत्तर राग की वृद्धि ही होती है।

रूपगोस्वामी का मत है कि विना विप्रलम्भ के सम्भोग कभी पुष्ट होता ही नहीं है—'न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।' उनके इस कथन का समर्थन करते हुए जीवगोस्वामी लिखते हैं कि 'विप्रलंभ केवल सम्भोग का पोषक ही नहीं बल्कि रति, प्रेम, स्नेह आदि स्थायी भावों से युक्त नायक-नायिका के आलिंगन, चुम्बनमय सम्प्रयोग को निरवधिक बना कर चमत्कारी ढंग से समर्पण कराने वाले संभोगपुंज है।'

'न केवलं विप्रलम्भः सम्भोगपोषक एव किन्तु रतिप्रेमस्नेहादिस्थायिभाववतोर्नायकयोर्मिथः स्मरणस्फूर्त्याविर्भावैर्मानसचाक्षुषकायिकालिङ्गनचुम्बनसम्प्रयोगादीनां प्रत्युत निरवधिचमत्कारसमर्पकत्वेन सम्भोगपुञ्जमय एव'।[1]

इस दृष्टि से नायिका नायक को धक्का देकर दूर हटा देने का भाव संभोगोन्नतिकारक है। यह एक प्रकार का विप्रलंभ है। शास्त्रकारों ने इसकी गणना मधुर रस में की है। नायक और नायिका सम्भोग के लिए जब एक दूसरे पर दीर्घ और परम अनुरक्त होते हैं और रतिभाव जब प्रकृष्टावस्था को प्राप्त हो जाता है किन्तु अभीष्ट का अतिक्रमण नहीं करता तब उस भाव को विप्रलम्भ कहा जाता है। वह विप्रलम्भ पूर्वराग, मान, प्रेम-वैचित्य और प्रवास भेद से चार प्रकार का होता है—

> पूर्वरागस्तथा मानः प्रेम-वैचित्यमित्यपि।
> प्रवासश्चेति कथितो विप्रलम्भश्चतुर्विधः॥

---

१. उज्ज्वलनीलमणि पृष्ठ ५०७–८

समागम से पूर्व नायक-नायिका की जो परस्पर देखा-देखी, इशारेबाजी और गुण-श्रवण; कथन होता है उसे 'पूर्वराग' कहते हैं।

जहाँ पर नायिका की अभीष्ट-सिद्धि का निरोध होता है वहीं उसको मान-भाव उत्पन्न होता है किन्तु अनुरक्ति में कोई कमी नहीं आती है। नायिका में मान तभी उत्पन्न होता है जब उसमें प्रणय की तीव्र भावना रहती है—'यत्र प्रणयः स्यात्तत्रैव मानः स्यात्।' स्नेहाधिक्य के कारण ही प्रणय मान का रूप धारण कर लेता है।

ऐसा क्यों होता है ? इसका क्या कारण है ? उत्तर स्पष्ट है कि जब नायक किसी दूसरी नायिका या नायिका की सखी की प्रशंसा करता है अथवा आलिङ्गन-चुम्बन में नायिका से बाजी मार ले ज़ाता है तो नायक के इस उत्कर्ष पर नायिका में ईर्ष्या का भाव उदय होता है। वह ईर्ष्याभाव जलन नहीं बल्कि प्रणय-प्रधान होता है इसीलिए ईर्ष्या मान बन जाती है। जब नायक से कोई अपराध हो जाता है तो वह नायिका से डरता है और नायिका से अपराध हो जाने पर नायक ईर्ष्या करता है। इन दोनों कारणों से नायक और नायिका का जो मान है वह कामशास्त्रियों के मत से एक रस है।

सम्भोग-तृष्णा या अतृप्त आकांक्षा का नाम प्रेमवैचित्य है। जैसे किसी भुक्खड़ आदमी को विविध व्यंजन भरपेट खिलाने के बाद पूछा जाए कि अच्छी तरह से भोजन होगया तो वह जवाब देता है—अरे क्या खाया कुछ विशेष मज़ा नहीं आया। ऐसा ही चित्त का अन्यथाभाव जब नायक या नायिका में उत्पन्न होता है तो उसे प्रेमवैचित्य कहते हैं। तात्पर्य यह कि जब प्रिय के सम्पर्क में रहती हुई प्रिया के स्वाभाविक प्रेमोत्कर्ष के कारण उसकी भोगेच्छा अतृप्त रहती है तो वही 'प्रेमवैचित्यभाव' कहलाता है।

प्रेमी और प्रेमिका के बीच जब स्थान या देश का व्यवधान हो जाता है तो वह 'प्रवास' कहलाता है। नायक और नायिका के बीच थोड़ी दूर का भी फासला प्रवास-भाव पैदा करता है। इस तरह पूर्वराग, मान, प्रेमवैचित्य और प्रवास इन चार भेदों से युक्त विप्रलंभ को समझ लेने से वात्स्यायन का चुम्बन कलह-सम्बन्धी सुझाव अनुपयुक्त नहीं बल्कि यथार्थ सिद्ध होता है।

धोखे से नायक को चुम्बन में हरा देने वाली नायिका में हर्षोन्माद होना स्वाभाविक है और यह भी स्वाभाविक है कि वह नायक को धमकी दे, उसे चुनौती दे और ऊटपटाँग की बातें करे इस प्रकार के बकवाद को कामशास्त्र की परिभाषा में 'प्रलाप' और 'अनुलाप' कहा जाता है। व्यर्थ आलाप 'प्रलाप' कहलाता है—'व्यर्थालापः प्रलापः स्यात्।' और अपनी ही कही हुई बात या वाणी को अन्यथा करना 'अनुलाप' है—'अनुलापो मुहुर्वचः।' धोखे से

जीती हुई नायिका के मुख से इस प्रकार के प्रलाप और अनुलाप के वचन निकलना कोई आश्चर्य नहीं। ऐसे ही अवसर पर राधा द्वारा किया गया प्रलाप बहुत ही सुन्दर है—

करोति नादं मुरली रली रली, व्रजाङ्गनाहृन्मथनं थनं थनम् ।
ततो विदूना भजते जते जते, हरे भवन्तं ललित लिता लिता ॥

यहाँ पर रली-रली, थनं-थनं, जते-जते और लिता-लिता शब्द बिलकुल निरर्थक और व्यर्थ हैं, किन्तु जिस अवस्था में इन शब्दों द्वारा प्रलाप किया गया है उस अवस्था के लिए ये शब्द मधुररस की सृष्टि करने वाले हैं।

इसी तरह राधा का अनुलाप भी बहुत सुन्दर है। स्थल कमल से मिले हुए तमाल वृक्ष को देखकर बड़ी उत्सुकता से राधा अपनी सखी ललिता से कहती है, 'अरी सखि देख देख कृष्ण, कृष्ण और फिर खुद निषेध करती हुई कहती है नहीं नहीं कृष्ण नहीं है यह तो तमालवृक्ष है।' इसी तरह से प्रत्येक वस्तु में उसे निश्चयान्त संदेह बना रहा—

कृष्णः कृष्णो नहि नहि तापिच्छोऽयं
वेणुर्वेणुर्नहि नहि भृगोद्घोषः ॥
गुञ्जा गुञ्जा नहि नहि बन्धूकाली
नेत्रे नेत्रे नहि नहि पद्मद्वन्द्वम् ॥

एक बात है वात्स्यायन ने चुम्बन की बाजी लगाने की सीख तो दी है किन्तु नायिका और नायक के बीच सुरत से पूर्व या अन्त में जो उक्ति-प्रत्युक्ति की होड़ लगती है, उसका उल्लेख कहीं नहीं किया है। वस्तुतः आलिंगन, चुम्बन से पूर्व नायक-नायिका में रतिभाव पैदा करने वाला संलाप ही प्रधान होता है और यह सदा सर्वत्र दोनों के बीच चला करता है। प्रिय और प्रिया के बीच जितने प्रकार की बातचीत हुआ करती है उन सब को बारह भागों में मनीषियों ने वर्गीकृत किया है—१ आलाप २ विलाप ३ संलाप ४ प्रलाप ५ अनुलाप ६ अपलाप ७ सन्देश ८ अतिदेश ९ अपदेश १० उपदेश ११ निर्देश और १२ व्यपदेश। कामशास्त्रियों ने इन्हें वाचिक अनुभव माना है।

ये वाचिक अनुभाव प्रेमी-प्रेमिकाओं की वाणी से झरते हुये अमृत से सिक्त होकर और राग से रँग कर जब बाहर निकलते हैं तो वातावरण में रसिकता और स्निग्धता छा जाती है। राधा और कृष्ण का एक ऐसा ही संलाप है जिसमें उक्ति और प्रत्युक्ति का मनोहारी सामञ्जस्य है। चुम्बन द्यूत से भी अधिक आकर्षक और उद्रेक उत्पन्न करने वाला यह वाणी-विलास है—

उत्तिष्ठारात्तरौ मे तरुणि मम तरोः शक्तिरारोहणे का
साक्षादाख्यामि मुग्धे तरणिमिह रवेराख्यया का रतिर्मे।

वार्तेयं नौ-प्रसङ्गे कथमपि भविता नावयोः संगमार्था
वार्तापीति स्मितास्यं जितगिरिमजितं राधयाराधयामि ॥[१]

मानस-गङ्गा में नौका-विहार करने के लिये श्रीकृष्ण राधा से कहते हैं— 'मम तरौ नौकायामुत्तिष्ठ आरोहणं कुरु' मेरी नौका में आकर सवार हो जाओ राधा अपनी वक्रोक्ति से 'तरौ' शब्द का 'नाव' अर्थ न लगाकर 'वृक्ष' अर्थ मानकर जवाब देती है—

तरोरारोहणे मम का शक्तिः—वृक्ष में चढ़ने की मुझ में शक्ति कहाँ? श्री कृष्ण इस जवाब से खीझ उठते हैं और राधा की बुद्धिहीनता प्रदर्शित करते हुये कहते हैं—

मुग्धे ! अहं साक्षात् तरणिम् आह्वयामि—अरी ना समझ, मैं तो साक्षात् तरणि (नौका) कह रहा हूँ और तुम तरु समझ रही हो।

मुस्कराती हुई राधा तरणि का अर्थान्तर रवि करके फिर जवाब देती है—

रवि से मेरा क्या प्रेम ?—रवेराख्यया का रतिर्मे। कृष्ण फिर खीझते हैं और अपने कथन के अभिप्राय का स्पष्टीकरण करते हैं कि—'मेरा कथन तो नौ (नाव) के प्रसङ्ग में है और इस संज्ञा शब्द के अनेकार्थ भी नहीं हैं फिर तुमने इस शब्द के दूसरे-दूसरे अर्थों की कल्पना कैसे कर ली—

इयं वार्ता नौ प्रसङ्गे······।

राधा चट से बोल उठती है—

नावयोः प्रसङ्गे वार्ता—नौ आवयोः हम दोनों के सम्बन्ध की बात है क्या इसके बाद उत्तर देने में असमर्थ भगवान् श्री कृष्ण मुस्कुराहट से अपनी पराजय व्यक्त करते हैं।

कहने का आशय यह कि सम्भोग-काल और रति-काल में प्रेमी-प्रेमिकाओं के वार्त्तालाप में भी जय-पराजय की कोमल भावनाएँ रहती हैं जो रस को, राग को और काम-संवेग को बढ़ाने वाली होती हैं।

त एवावस्थाभेदान्नामान्तरं प्रतिपद्यन्त इत्याह—

सुप्तस्य मुखमवलोकयन्त्या स्वाभिप्रायेण चुम्बनं रागदीपनम् ॥ २४ ॥

सुप्तस्येति। मुखमालोकयन्तीत्याहितभावत्वं दर्शयति। स्वाभिप्रायेणेति यथा स्वयं धृतिं लभते तथा चुम्बतीत्यर्थः। एवं च सति तस्या एव रागसंधुक्षणाद्रागदीपनम्। नायकस्य चुम्ब्यमानस्य प्रतिबोधात्। जाग्रतोऽप्येतत्संभवति। तत्र तदवस्थिकं सांप्रयोगिकमेव स्यात् ॥ २४ ॥

१. पद्यावली।

गुप्त चुम्बन-विधि

राग बढ़ाने के लिये सोये हुये पति के मुख को देखती हुई नायिका यदि चूमती है तो चुम्बन से जागा हुआ पति उसके अभिप्राय को तुरन्त समझलेगा। इस प्रकार के चुम्बन को रागदीपन कहते हैं ॥ २४ ॥

प्रमत्तस्य विवदमानस्य वाऽन्यतोऽभिमुखस्य सुप्ताभिमुखस्य वा निद्राव्याघातार्थं चलितकम् ॥ २५ ॥

निद्राव्याघातार्थमित्युपलक्षणमेतत्। प्रमत्तस्य गीतालेख्यादिषु प्रसक्तस्य। प्रमादव्याघातार्थं विवदमानस्य। तया सह कलहव्याघातार्थमन्यतोऽभिमुखस्य। अन्यतो दृष्टिव्याघातार्थं सुप्ताभिमुखस्य। सुषुप्सतो निद्राव्याघातार्थम्। 'सुषुप्सितो निद्रादिव्याघातार्थम्' इति पाठान्तरम्। चलितकमिति प्रमादादिना नायकस्य चलनं चलितकम्। 'तत्करोति–' इति णिच्। तदन्ताच्चलयतीत्यच्। ततः संज्ञायां कन्। चलितकम्। अत्र नायिकैव प्रयोक्त्री शोभते॥ २५॥

यदि पति स्त्री की ओर से लापरवाह हो या उससे विवाद कर रहा हो, अथवा उसकी ओर ध्यान न देकर दूसरी ओर ध्यान लगाये हुये हो या सोने लग गया हो तो स्त्री को चाहिये कि उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये, विवाद शान्त करने के लिये, नींद से जगाने के लिये साधारण ढङ्ग से उसका चुम्बन करे। इस प्रकार के चुम्बन को 'चलितकम्' कहते हैं ॥ २५ ॥

चिररात्रावागतस्य शयनसुप्तायाः स्वाभिप्रायचुम्बनं प्रातिबोधिकम् ॥ २६ ॥

चिररात्राविति। असंचारवेलायामागतस्य प्रयोक्तुः। संबन्धलक्षणा षष्ठी। शयनसुप्तायाः प्रयोज्यायाः। रागतश्चपल इति (?)। प्रातिबोधिकं प्रतिबोधप्रयोजनम्। मुखावलोकनस्वाभिप्रायाभावाद्रागदीपनान्न विद्यते। तत्र विस्रब्धिकायां रागदीपनम्॥ २६॥

यदि पति रात में देर से घर आये और सोती हुई स्त्री को चूमे तो इससे उसका अभिप्राय भी प्रकट हो जायेगा और स्त्री भी जाग जायेगी। इस प्रकार के चुम्बन को 'प्रातिबोधिक' कहते हैं ॥ २६ ॥

सापि तु भावजिज्ञासार्थिनी नायकस्यागमनकालं संलक्ष्य व्याजेन सुप्ता स्यात् २७ ॥

सापि त्विति प्रातिबोधिकम्। भावजिज्ञासार्थिनी किंचित्पश्यामि मय्यनुरागोऽस्ति नेति संमानार्थिनी नायकादेव वैलक्ष्यसुप्ता स्यादिति। व्याजेन कृतक-

निद्रया शयितेत्यर्थः। यदि मयि भावितस्तदा प्रातिबोधिकं दद्यान्मानयिता वा। कुपितेति मानेन पादपतनादिना संमानात्स्वापयेत्। एतत्त्रिविधमावश्यकं समागतयोराह ॥ २७ ॥

इस प्रकार नायक द्वारा जगायी जाने वाली नायिका को चाहिये कि वह नायक के प्रेम की परीक्षा करने के लिये नायक के आगमन-काल में बहाना बनाकर सो जाये ॥ २७ ॥

आदर्शे कुड्ये सलिले वा प्रयोज्यायाश्छायाचुम्बनमाकारप्रदर्शनार्थमेव कार्यम् ॥ २८ ॥

आदर्श इति। कुड्ये दीपाद्यालोकयुक्ते। प्रयोज्याया इत्युपलक्षणार्थत्वान्नायकस्यापि प्रयोज्यस्य। विशेषाभावात्। छायाचुम्बनमिति दर्पणादिषु प्रयोज्यप्रतिबिम्बस्य समीपालौकिकमेव चुम्बनं वैहासिकं कार्यम्। आकारप्रदर्शनार्थमिति। भावसूचकमाकारं प्रदर्शयितुमित्यर्थः। यतस्तदवस्थां दृष्टो नरो मन्यते मय्यनुरक्तो यदेवमाकारयतीति। कुड्ये तु न वैहासिकम्। किं तु छायावदने वदनं विदध्यादेवमित्याकारप्रदर्शनार्थम् ॥ २८ ॥

दर्पण में, दीवार में, जल में, यदि नायक या नायिका की छाया पड़ रही हो तो प्रेम प्रदर्शित करने के लिये उस छाया का चुम्बन उन्हें करना चाहिये।

बालस्य चित्रकर्मणः प्रतिमायाश्च चुम्बनं संक्रान्तकमालिङ्गनं च ॥ २९ ॥

बालस्येति। स्वाङ्कगतस्य लाडीकस्य चित्रकर्मण आलेख्यस्य प्रतिमाया मृच्छिलाकाष्ठादिमय्याः प्रयोज्यासमक्षं चुम्बनं संक्रान्तकम्। तदध्यारोपादालिङ्गनं च संक्रान्तकम्। यथासंभवं चुम्बनाधिकारेऽपि प्रसङ्गादुक्तम्। छायाचुम्बनं संक्रान्तकं चोभयमावस्थिकं स्पर्शगोचरातीतयोरनतिप्रवृत्तसंभाषणयोरसमागतयोर्द्रष्टव्यम् ॥ २९ ॥

बालक को, चित्र को और प्रतिमा को चूमने, उठाने तथा आलिंगन करने के बहाने अपने मनोभाव प्रकट किये जा सकते हैं ॥ २९ ॥

तथा निशि प्रेक्षणके स्वजनसमाजे वा समीपे गतस्य प्रयोज्याया हस्ताङ्गुलिचुम्बनं संविष्टस्य वा पादाङ्गुलिचुम्बनम् ॥

तथेत्याकारप्रदर्शनार्थम्। निशि रात्रौ प्रेक्षणके नटादिदर्शने वा स्वजनसमाजे वा ज्ञातिसंबन्धिषु संभूय स्थितेषु प्रयोज्यायाः समीपोपविष्टस्य प्रयोक्तुः उपलक्षणार्थ-

त्वात्प्रयोज्यस्य वा समीपोपविष्टायाः प्रयोक्त्र्याः। हस्तांगुलिचुम्बनमिति। तदा हस्तस्य सुलभत्वात्। तमन्यापदेशेनाकृष्य तदंगुलिचुम्बनम्। संविष्टस्येति नायिकासमीपे शायतस्य च तद्धस्तांगुलिचुम्बनं च तदानीमुभयोरपि सुलभत्वात्। तत्र हस्तांगुलिचुम्बनस्य द्वावपि प्रयोक्तारौ। पादांगुलिचुम्बनस्य नायिकैव। न नरः। गर्हितत्वात् ॥ ३० ॥

तथा रात में जहाँ खेल-तमाशा हो रहा हो अथवा जहाँ स्वजन-सम्बन्धी इकट्ठा हुये हों और वहाँ यदि अपनी प्रेमिका पास ही में बैठी हो तो चुपके से उसके हाथ अथवा पाँवों की अंगुलियों को चूमना प्रेम-भाव प्रकट करना है ॥३०॥

संवाहिकायास्तु नायकमाकारयन्त्या निद्रावशादकामाया इव तस्योर्वोर्वदनस्य निधानमूरुचुम्बनं चेत्याभियोगिकानि ॥३१॥

संवाहिकायास्त्विति। नायकं संवाहयति या काचित्संवाहनद्वारेण नायकमभियुङ्क्ते। आकारयन्त्या भावसूचकमाकारं ग्राहयन्त्याः। अकामाया इवेति चुम्बितुमनिच्छन्त्या इव। नायकाकारस्यागृहीतत्वात्। अतः कृतकनिद्रया सा नायकस्योर्वोश्चुम्बितुं वदनं निधत्ते। पादांगुष्ठचुम्बनं तु पादावाकृष्य संवाहयन्त्या बुद्धिकारितमपि न दोषाय। मुखांगुष्ठयोस्तदानीं परस्पराश्लेषसम्भवात्। एतांगुलिचुम्बनादीति स्पृष्टकादिना असोढगात्रस्पर्शयोरनतिप्रवृत्तसंभाषणयोरसमागतयोः। आभियोगिकानीति अभियोगे प्रयोजनानि छायाचुम्बनादीनि। तदानीं प्रयोगान्तराणि च लौकिकचुम्बनवत्प्रयोक्तव्यानि। कर्मभेदासंभवात् ॥ ३१ ॥

यदि पैर दबाने वाली संवाहिका स्त्री नायक से प्रेम करती हो तो अपना प्रेम व्यक्त करने के लिये वह नायक के जाँघ पर अपना मुख रख दे अथवा पैर के अंगूठे को चूसे। परन्तु देखने वाले यही समझें कि निद्रा के वशीभूत होने से मुँह जाँघ पर पड़ा है ॥ ३१ ॥

संप्रयोगाभिकालयोः सामान्यविधिमाह—

भवति चात्र श्लोकः—

कृते प्रतिकृतं कुर्यात्ताडिते प्रतिताडितम्।
करणेन च तेनैव चुम्बिते प्रतिचुम्बितम् ॥ ३२ ॥

भवति चात्रेति। कृत इति। सांप्रयोगिके आभियोगिके वा प्रयोक्तृकृते प्रयोज्यः प्रतिकृतं कुर्यात्। एकोदाहरणार्थमाह—ताडिते चुम्बिते चेति। अन्यतरः संप्रयोगे स्तम्भमिवैनं मन्यमानो निर्विद्यते। ततश्च निकृष्टः संप्रयोगः स्यात्।

अभियोगे वा कारिते नावचुम्ब्यत इति पशुमिव परिभवेत् । ततश्च न समागमोऽर्थः सिध्येत् । तत्रापि करणेन च तेनैवेति येनैव कर्मभेदेन संप्रयुक्ते तेनैव प्रयोजयेत् । एवं रतमाकारग्रहणेन स्फुटरसं स्यात् । तच्चित्तानुविधानादिति । इति चुम्बन-विकल्पा नवमं प्रकरणम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरह-कातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्र-योगिके द्वितीयेऽधिकरणे चुम्बनविकल्पास्तृतीयोऽध्यायः ।

इस विषय का यह श्लोक है—

सम्भोग से पूर्व कामेच्छा प्रबल करने के लिये जैसा पुरुष करे वैसा ही स्त्री भी करे । जिस वस्तु से पुरुष स्त्री पर आघात करे उसीसे स्त्री भी पुरुष पर आघात करे । जिस प्रकार पुरुष चुम्बन करे उसी प्रकार स्त्री भी चूमे ।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साम्प्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
चुम्बनविकल्पास्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

व्याख्या—प्रकट या गुप्त चुम्बन जिस किसी अवस्था में किया जाता है । उस समय स्त्री और पुरुष को एक चमत्कारिक स्पर्श-सुख की अनुभूति होती है । प्रेमी और प्रेमिका, पति और पत्नी जब एक दूसरे को चूमते हैं तो उनके इस चुम्बन-व्यापार में एक बहुत बड़ा उद्देश्य निहित रहता है—परस्पर एक दूसरे के निकट आना, एक दूसरे का प्रेम और विश्वास प्राप्त करना । चुम्बन में कलह, प्रहरण, दन्ताघात, नखाघात आदि दम्पती के प्रेम, विश्वास और काम-संवेग को प्रभावशाली और सुखान्त बनाया करते हैं ।

चुम्बन में ओठ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अङ्ग इसलिये माना जाता है कि शरीर में सबसे अधिक कोमल अङ्ग यही होता है । ओठ में एक ऐसी विद्युद् धारा प्रवाहित होती रहती है जो बाह्य-संस्पर्श पाते ही उन नाड़ियों और ग्रन्थियों को उत्तेजित कर उनका मुँह खोल देती है जिनमें अन्तःस्राव हुआ करता है । साथ ही स्पर्श के प्रथम सुख का अनुभव भी इसी विद्युद् धारा से हुआ करता है । अक्सर देखा गया है कि यौवनावस्था में इस विद्युद् धारा की लहरें इतनी सशक्त और गतिशील रहती है कि युवक और युवती इसके प्रभाव से उन्मद रहते हैं वे भविष्यत् के परिणाम को न सोचकर एकान्त सुख-सम्भोग के लिये आकुल-व्याकुल रहते हैं ।

ओठ कोमल अंग है इसलिये कोमल भावों को ग्रहण करने और कोमल

प्रभाव डालने में इस अङ्ग की विद्युद् धारा अधिक शक्तिशाली हुआ करती है। जिस समय प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे को चूमते हैं उस समय उनके श्वास-प्रश्वास, उनके नेत्रों की ज्योति, शरीर की ऊष्मा सब कुछ कोमल भावों और प्रभावों से व्याप्त रहती है और इन भावों-प्रभावों का आदान-प्रदान प्रेमी-प्रेमिका में होता है इन्हीं से परस्पर प्रेम-एकता, विश्वास और राग की वृद्धि होती है। यहाँ तक कि प्रेमी-प्रेमिका इस प्रभाव के इतने वशीभूत हो जाते हैं कि दोनों में से किसी एक के असुन्दर होने पर भी दोनों एक दूसरे को सुन्दर प्रतीत होने लगते हैं और एक दूसरे के प्रति आकर्षण का अनुभव करने लगते हैं।

युवक-युवतियों के जीवन में एक नवीन क्रान्ति उत्पन्न करने में चुम्बन सर्वोपरि माध्यम बन जाते हैं। आनन्द की अनुभूति की खोज का मुख्य द्वार चुम्बन है। प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी को एक दूसरे के प्रति ईमानदार रखने की भावना के उद्गम और विकास का केन्द्र केवल चुम्बन है। प्रेमी-प्रेमिका के हृदय में उठे हुये विचारों का वाहक चुम्बन है। चुम्बन से कामोद्वेग बढ़ता है, हृदय की धड़कने बढ़ती हैं, परस्पर शक्ति और उष्णता का आदान-प्रदान और अनुभव किया जाता है। दो प्रेमियों के प्रेम को सहेज कर, सम्भालकर रखने में तथा प्रेम में किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न होने देने में चुम्बन बहुत बड़ा सहायक होता है।

चुम्बन एक ऐसी शाश्वत परम्परा है कि हर स्थान, देश-प्रदेश में इसकी विधियाँ समान देखी जाती हैं। चुम्बन में जीभ, दाँत ये दो उपयोगी साधन हैं। दाँतों के चुम्बन से स्त्रियाँ अधिक प्रसन्न इसलिये रहती हैं कि इससे उद्दीपन शीघ्र होता है। दाँतों के चुम्बन की एक कला है, जिसमें कोमलता का अधिक खयाल रखना पड़ता है। दाँतों से चूमते समय या स्तनाग्र और नितम्बों को दबाते समय कोमल भावों को सहकारी रखना अनिवार्य है।

वात्स्यायन तथा अन्य कामशास्त्र के आचार्यों ने चुम्बन के अनेक भेद बतलाए हैं। भिक्षु पद्मश्री का कहना है कि भगांकुर को हाथ से सहलाते हुए स्तनों को पीड़ित करते हुए जो चुम्बन होता है वह 'विपीडित' कहा कहा जाता है। दाँत और सिर घुमाकर स्त्री के ललाट और अधर में जो चुम्बन किया जाता है वह 'भ्रमित' कहलाता है। यदि सिर उठा कर नेत्रों और कपोलों को चूमा जाता है तो उसे 'उल्लसितक' चुम्बन कहते हैं। नाभि, कपोल और स्तनों का चुम्बन यदि फड़कते हुए अधर से किया जाता है तो वह

'स्फुरित' चुम्बन कहलाता है। नीचे-ऊपर के दोनों ओठ मिला कर यदि हृदय, जंघा और ऊरु का चुम्बन किया जाता है तो उसे 'संहतोष्ठ' कहते हैं। मुँह को तिरछा करके गले में, कपोल में और कुच में चुम्बन करने से 'वैकृतक' चुम्बन होता है। अच्छी तरह मुँह झुका कर कपोल तथा सर्वांग का चुम्बन करने से वह चुम्बन 'नत अंड' कहलाता है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
चुम्बनविकल्पास्तृतीयोऽध्याय:।
आदितोऽष्टम:।
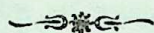
चतुर्थोऽध्यायः

एवं चुम्बनेनोपक्रम्य ततोऽधिकेन नखच्छेद्येनोपक्रमयितुं नखरदनजातय उच्यन्ते । नखविलेखनप्रकारा इत्यर्थः ।

तदेव स्वरूपेण दर्शयन्नाह—

रागवृद्धौ संघर्षात्मकं नखविलेखनम् ॥ १ ॥

संघर्षात्मकमिति प्रदेशस्य नखैर्यत्समन्ततो घर्षणमवयवपृथक्करणं तन्नखविलेखनम् । तत्स्वभावत्वात् । तच्च रागवृद्धौ सत्याम् । यत्तु नखाग्रेण तुदनं तद्रागमान्द्ये सति । तत्र च्छेद्यस्याभावात् । नखविलेखनस्यैव प्रकाराः कथ्यन्ते ॥ १ ॥

नखच्छेद्य

राग अधिक बढ़ने पर नायक-नायिका एक दूसरे को नाखूनों से सहलाते और नोचते हैं ॥ १ ॥

तस्य क्व प्रयोगः कदा चेत्याह—

तस्य प्रथमसमागमे प्रवासप्रत्यागमने प्रवासगमने क्रुद्धप्रसन्नायां मत्तायां च प्रयोगः । न नित्यमचण्डवेगयोः ॥ २ ॥

तस्येति नखविलेखनस्य । अचण्डवेगयोरिति मन्दमध्यवेगयोः । न नित्यप्रयोगः । कदा तर्हीत्याह—प्रथमसमागमे तथा प्रवासप्रत्यागमने तयोरुत्कण्ठितयोः प्रवृद्धरागत्वात् । प्रवासगमने स्मरणार्थम् । क्रुद्धप्रसन्नायामिति नायकेन प्रसादिता सती हर्षाद्विवृद्धरागा भवति । मत्तायां च मद्यमदेन रागस्योच्छ्रितत्वात् । एवं क्रुद्धप्रसन्ने मत्ते च नायके द्रष्टव्यम् । चण्डवेगयोस्तदा च प्रयोगो नित्यमर्थोक्तम् ॥ २ ॥

मन्दवेगी नायक भी अपनी प्रचण्ड-वेगता प्रकट करने के लिये सुहाग रात के दिन, प्रवास से वापस आने पर, प्रवास जाते समय, स्त्री के क्रुद्ध होने के बाद प्रसन्न होने पर और काम से उन्मत्त होने पर नाखूनों से सहलाते और खुजलाते हैं ॥ २ ॥

तथा दशनच्छेद्यस्य सात्म्यवशाद्वा ॥ ३ ॥

तथा दशनच्छेद्यस्य प्रयोग इत्येव । तस्यैतावता तुल्यत्वादित्यतिदेशः । तेन स्वरूपमपि योज्यम् । रागविवृद्धौ संघर्षात्मकं दशनच्छेद्यम् । रागमान्द्ये तु दशनग्रहणमिति । सात्म्यवशाद्वा तयोः प्रयोगो यदि तदा अचण्डवेगौ प्रकृतिसात्म्यान्न सहेतां तदा नैवेत्यर्थः ॥ ३ ॥

नखच्छेद्य के भेद

नाखूनों से आघात करने के समान ही दाँतों से भी आघात किया जाता है।

तदाच्छुरितकमर्धचन्द्रो मण्डलं रेखा व्याघ्रनखं मयूरपदकं शशप्लुतकमुत्पलपत्रकमिति रूपतोऽष्टविकल्पम् ॥ ४ ॥

तदिति नखविलेखनम्। रूपत इति संस्थानतः। द्विविधं हि तत्— रूपवदरूपवच्च। तत्र यत्कस्यचिदनुकारि तद्रूपवद् दृष्टप्रकारकमाच्छुरितकादि। तस्य लक्षणं वक्ष्यति। यदननुकारि तदरूपवत्त्रिविधम्। मृदुमध्यातिमात्रयोगात् ॥

चिह्नों के अनुसार नखच्छेद्य आठ प्रकार के होते हैं—

१. आच्छुरितक, २. अर्धचन्द्र, ३. मण्डल, ४. रेखा, ५. व्याघ्रनख, ६. मयूरपदक, ७. शशप्लुतक और ८. उत्पलपत्रक ॥ ४ ॥

कक्षौ स्तनौ गलः पृष्ठं जघनमूरू च स्थानानि ॥ ५ ॥

स्थानानि कक्षास्तनगलपृष्ठजघनोरुष्वेतेष्वेव षट्सु नखक्षतैः स्त्रीपुंसयोरत्यर्थनिर्वृतेः। इत्याचार्याणां मतम्। उत्तरपक्षदर्शनात्। तत्र गल इति सामीप्यात्तत्पार्श्वम्। जघनशब्दः समुदायेन कटिभागे तदेकदेशे च पुरोभागे वर्तते। तादह समुदायवृत्तिः। तेन नितम्बलेखनमपि सिद्धम्। तथा चोक्तम्—'ग्रीवापार्श्वोरुकक्षेषु कटिपृष्ठस्तनेषु च। संप्रयोगे प्रयुञ्जीत नखच्छेद्यानि योषिताम् ॥' इति ॥ ५ ॥

नखच्छेद्य-स्थान

नखों से काटने के स्थान ये हैं—दोनों काँखें, दोनों स्तन, गला, पीठ, जंघाएं और जंघाओं के जोड़ स्थान ॥ ५ ॥

प्रवृत्तरतिचक्राणां न स्थानमस्थानं वा विद्यत इति सुवर्णनाभः ॥ ६ ॥

प्रवृत्तरतिचक्राणामिति प्रवृत्तरागोत्पीडानाम्। नास्थानमिति अङ्गप्रत्यङ्गं वा सिद्धं सर्वमेव नखक्षतस्य स्थानम्। यद्येवं तथापि शास्त्रकारो रूपवतां नियतस्थानं वक्ष्यति। तत्र हि परभागं लभन्ते इति ॥ ६ ॥

सुवर्णनाभ का मत

सम्भोग में प्रवृत्त होने पर लोगों को यह ज्ञान नहीं रह जाता है कि कहाँ नाखून गड़ाना चाहिये और कहाँ न गड़ाना चाहिये—यह कथन आचार्य सुवर्णनाभ का है ॥ ६ ॥

छेद्यस्य नखाधीनत्वात्तेषामाश्रयतः कल्पनातो गुणतः प्रमाणतश्च विधिमाह—

तत्र सव्यहस्तानि प्रत्यग्रशिखराणि द्वित्रिशिखराणि चण्डवेगयोर्नखानि स्युः ॥ ७ ॥

तत्रेति नखकर्मणि। सव्यहस्तानीति आश्रयभावेन वामो हस्तो येषामिति। दक्षिणस्य प्रायशोऽत्यन्तव्यापारादेषां भङ्गोऽपि स्यात्। प्रत्यग्रशिखराणीत्यभिनवघटिताग्राणि। द्विशिखरकाणि त्रिशिखरकाणि वा क्रकचमुखवत्कल्पितानि। तत्रिशिखरकाणि अनतिविस्तीर्णस्थलत्वाद् द्रुतं भिद्यन्ते। तद्विपर्ययाणि मध्यमन्दवेगयोरित्यर्थोक्तम्। तत्रेषत्प्रमृष्टाग्राणि शूकाकृतीनि मध्यवेगयोः। प्रमृष्टाग्राण्यर्धचन्द्राकृतीनि मन्दवेगयोः। इति तिस्रो नखकल्पनाः॥ ७॥

बहुतेरे कामुक अपने बायें हाथ के नाखूनों को लम्बे और नुकीले रखते हैं। कोई-कोई हर नाखून में दो-दो, तीन-तीन नोकें रखते हैं॥ ७॥

अनुगतराजि सममुज्ज्वलममलिनमविपाटितं विवर्धिष्णु मृदुस्निग्धदर्शनमिति नखगुणाः॥ ८॥

अनुगतराजीत्यनुगता विवर्णा मध्ये लेखा यस्य। सममनिम्नोन्नतपृष्ठम्। उज्ज्वलमागन्तुकमलाभावादमलिनम्। नीतितः (?) अविपाटितमविस्फुटितम्। विवर्धिष्णु वर्धनशीलम्। मृदु, न काष्ठप्ररूयम्। स्निग्धदर्शनमिति दृश्यत इति दर्शनं रूपम्। 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति ल्युट्। तदरूक्षमस्येति॥ ८॥

नखों के आठ गुण

१. नाखून के मध्य की रेखायें नाखून के रङ्ग की ही हों, २. सभी नाखून सम हों, ऊँचे-नीचे टेढ़े-मेढ़े न हों, ३. चमकदार, ४. स्वच्छ, ५. फटे हुये न हों, ६. बढ़ने वाले हों, ७. कोमल और ८. देखने में चिकने हों॥ ८॥

दीर्घाणि हस्तशोभीन्यालोके च योषितां चित्तग्राहीणि गौडानां नखानि स्युः॥ ९॥

प्रमाणतस्त्रिधा तत्र दीर्घाणि हस्तशोभीनि हस्तं शोभयितुं शीलं येषाम्। नखच्छेद्यं कर्तुमक्षमत्वात्। आलोके दर्शने। चित्तग्राहीणि योषिद्भिर्दृश्यमानानि तासां चित्तं हरन्तीति गुणद्वययुतानि। स्पर्शकरत्वात्प्रायशो गौडानाम्॥ ९॥

गौड (उत्तर वंग) देशवासियों के लम्बे नाखून हाथ की शोभा माने जाते हैं। ऐसे नाखूनों को देखकर गौड-युवतियों का मन उनकी ओर खिंच आया करता है॥ ९॥

ह्रस्वानि कर्मसहिष्णूनि विकल्पयोजनासु च स्वेच्छापातीनि दाक्षिणात्यानाम्॥ १०॥

ह्रस्वानि कर्मसहिष्णूनि लेखनादि कर्म सहन्ते। दीर्घाणि तु भज्यन्ते। विकल्पयोजनासु अर्धचन्द्रादयो ये विकल्पास्तत्संपादनासु स्वेच्छावपातीनि प्रयोक्तुरिच्छया स्थाने योऽवपातः स विद्यते येषाम्। न तु दीर्घाणाम्। इति गुणद्वयम्। तानि खररागत्वाद्दाक्षिणात्यानाम्॥ १०॥

दक्षिण देशवासियों के नाखून छोटे होते हैं, उनके ऐसे नाखून हर प्रकार के नखछेद्य कर सकते हैं। ये नाखून न तो टूटते हैं और न मुड़ते हैं ॥ १० ॥

मध्यमान्युभयभाञ्जि महाराष्ट्रकाणामिति ॥ ११ ॥

मध्यमानि न दीर्घाणि नातिह्रस्वानि । उभयभाञ्जि दीर्घह्रस्वगुणभाञ्जि। तानि वैचक्षण्यात्प्रायशो महाराष्ट्रकाणाम् ॥ ११ ॥

महाराष्ट्र-वासियों के नाखून मध्यम आकार के होते हैं ॥ ११ ॥

आच्छुरितकादेर्लक्षणं परभागार्थं च प्रयोगस्थानमाह—

तैः सुनियमितैर्हनुदेशे स्तनयोरधरे वा लघुकरणमनुद्गतलेखं स्पर्शमात्रजननाद्रोमाञ्चकरमन्ते संनिपातवर्धमानशब्दमाच्छुरितकम् ॥ १२ ॥

तैरिति मध्यमैर्नखैः पञ्चभिरपि। सुनियमितैरिति सुसंश्लिष्टैः मध्यमावस्थापेक्षया इदं वचनम्। प्रागसंश्लिष्टान्येव स्थाने निवेश्यन्ते ततश्च शनैराकृष्यमाणानि सुसंयमितानि भवन्ति। न प्रागेव सुसंयमितानि। लोके तथा प्रयोगदर्शनात्। लघुकरणमिति लघ्वी क्रिया यस्मिन्निति। यथा क्षतं न भवति तदाह—अनुद्गतलेखमिति। किमर्थं तर्हीत्याह— स्पर्शमात्रजननाद्रोमाञ्चकरमन्त इति। स्पर्शनक्रियाया नखघातादिभिरंगुष्ठनखेन प्रतिनखस्फालनाद्वर्धमानचटचटाशब्दं यदेवंविधं कर्म तदाच्छुरितकम्। नखैराच्छुरणात्। एवं च नखच्छेद्याभावे तत्र हनुदेशेऽधरे च सर्वासामेव नायिकानामाच्छुरितकमेव नान्यन्नखकर्मेति दर्शनार्थमुभयोर्ग्रहणम्। स्तनयोराधिक्येन प्रयोक्तव्यमिति ख्यापनार्थं वचनम्। तत्रापि स्पर्शकरत्वात् ॥ १२ ॥

नखच्छेद्य के लक्षण

हाथ की अङ्गुलियों को एक साथ मिलाकर कपोल, स्तन और अधरोष्ठ पर ऐसा हलका स्पर्श किया जाये कि शरीर में रोमाञ्च हो उठे, इसके बाद अँगूठे से दूसरे नखों का टङ्कारा (खुटका) मारकर स्पर्श करना 'आच्छुरितक' नखच्छेद्य कहलाता है ॥ १२ ॥

अन्येषु तु स्थानेष्ववस्थापेक्षया प्रयोगमाह—

प्रयोज्यायां च तस्याङ्गसंवाहने शिरसः कण्डूयने पिटकभेदने व्याकुलीकरणे भीषणेन प्रयोगः ॥ १३ ॥

प्रयोज्यायां च कन्यायां तस्य प्रयोग इति विस्रम्भणार्थं नान्यस्येतरस्य कर्मणः। संवाहने यत्र यत्र स्थाने मर्दनं तत्र तत्र शिरःकण्डूयने शिरस्येव।

पिटकभेदने स्वल्पपिटकानां शरीरस्थानां भेदने। तद्वश एव (?) व्याकुलीकरणे किंचित्कर्तुमप्रयच्छन्त्यां भीषणेन भयं दर्शयितुमित्यर्थः। एते संवाहनादिष्वावस्थिकाः सर्वास्वेव नायिकासु। अस्यावस्थिककार्यवशान्नायिकापि प्रयोक्त्री ॥ १३ ॥

आच्छुरितक का प्रयोग

जब स्त्री पुरुष की देह दबा रही हो, शिर खुजला रही हो, मुहासे फोड़ रही हो, अथवा जब स्त्री को काम-संवेग से व्याकुल करना हो उस समय 'आच्छुरितक' नखच्छेद्य का प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥

ग्रीवायां स्तनपृष्ठे च वक्रो नखपदनिवेशोऽर्धचन्द्रकः ॥१४॥

ग्रीवायामिति ग्रीवापार्श्वे बहिर्मुखाः स्तनपृष्ठे चोर्ध्वमुखाः। अर्धचन्द्रवद्वक्रोऽर्धचन्द्रः। सूच्यग्रेण कनिष्ठामुखेन निष्पाद्यो मध्यमामुखेनार्धचन्द्रेण ॥ १४ ॥

अर्धचन्द्र

जब गर्दन और स्तनों पर अर्धचन्द्र के समान नाखून से काटकर निशान बनाया जाता है तो उसे 'अर्धचन्द्र' नखच्छेद्य कहते हैं ॥ १४ ॥

तावेव द्वौ परस्पराभिमुखौ मण्डलम् ॥ १५ ॥

तावेव द्वाविति अर्धचन्द्रौ क्रोडभावेन परस्पराभिमुखौ मण्डलम्। तदाकारत्वात् ॥ १५ ॥

मण्डल

जब दो अर्धचन्द्र आमने-सामने पास ही पास किये जाते हैं तो उसे 'मण्डल' नखच्छेद्य कहते हैं ॥ १५ ॥

नाभिमूलककुन्दरवंक्षणेषु तस्य प्रयोगः ॥ १६ ॥

नाभिमूले रशनानायकवदेव स्थितम्। ककुन्दरयोर्नितम्बस्योपरिकूपकयोरन्तर्निहितप्रतिकूपकं मनोहारि। वंक्षणयोरूरुसंध्योः कर्णिकालंकारवज्जघनस्य ॥१६॥

प्रयोग

नाभिमूल (पेड़ू) में, ककुन्दर (नितम्बगर्त) में तथा जांघों के जोड़ों में 'मण्डल' नाम का गोल नखक्षत करना चाहिये ॥ १६ ॥

सर्वस्थानेषु नातिदीर्घा लेखा ॥ १७ ॥

सर्वस्थानेति लेखायाः स्थानविशेषाभावान्न स्थानविशेषाः। तेन ग्रीवात्रिकपृष्ठपार्श्वोरुमूलबाहुषु नातिदीर्घस्थानविशेषाद्द्व्यङ्गुला त्र्यंगुला वा प्रत्यग्रशिखरा निष्पाद्या ॥ १७ ॥

रेखा

किसी भी अङ्ग में नाखून से रेखा खींची जा सकती है लेकिन बहुत बड़ी न होनी चाहिये ॥ १७ ॥

सैव वक्रा व्याघ्रनखकमास्तनमुखम् ॥ १८ ॥

सैवेति । लेखा स्तनमुखादुत्थाप्याग्रतो वक्रीकृता व्याघ्रनखखण्डवत्स्तन-कण्ठमलङ्करोति ॥ १८ ॥

यदि वही रेखा कुछ टेढ़ी हो और स्तन या मुख के समीप खींची गई हो तो उसे व्याघ्रनख रेखा कहते हैं ॥ १८ ॥

पञ्चभिरभिमुखैर्लेखा चूचुकाभिमुखी मयूरपदकम् ॥ १९ ॥

पञ्चभिरपि नखैः सूच्यग्रशिखरकैश्चूचुकाभिमुखा इति स्तनमुखस्याधस्ता-दंगुष्ठकनखं विन्यस्योपरि च संश्लिष्टांगुलिनखानि चूचुकस्याभिमुखमाकर्षयेत् । मयूरपदकं तदाकारत्वात् ॥ १९ ॥

मयूरपदक

पाँचों नाखूनों से स्तन की घुंडी को पकड़कर अपनी ओर खींचने से स्तन के चारों ओर जो रेखाएँ बन जाती हैं, वे मयूरपदक कहलाती हैं ॥ १९ ॥

तत्संप्रयोगश्लाघायाः स्तनचूचुके संनिकृष्टानि पञ्चनख-पदानि शशप्लुतकम् ॥ २० ॥

तदिति मयूरपदकम् । संप्रयोगश्लाघाया इति नायकसंप्रयोगश्लाघा यस्या-स्तस्या विधेयम् । सर्वा एव हि स्त्रियः स्तनमुखं सर्वनखविलुप्तं बहु मन्यन्ते । यथोक्तम्—'स ते मनसि तन्वङ्गि सखि प्रागिव वर्तते । स्तनवक्त्रं विशालाक्षि यत्ते शिखिपदाङ्कितम् ॥' स्तनचूचुक इति सामीप्ये सप्तमी । संनिकृष्टानीति नखाग्रपञ्चकमेकीकृत्यावष्टभ्य निदध्यात्ततः पञ्च पदानि संनिकृष्टानि शशप्लुत-कम् । तदाकारत्वात् ॥ २० ॥

शशप्लुतक

जब स्त्री मयूरपदक नखक्षत की कामना करे तो स्तनों की घुंडी को पाँचों नखों से दबाकर जो निशान कर दिया जाता है वह शशप्लुतक है ॥ २० ॥

स्तनपृष्ठे मेखलापथे चोत्पलपत्राकृतीत्युत्पलपत्रकम् ॥२१॥

उत्पलपत्राकृतीत्युत्पलपत्रसंस्थानम् । तदेकमेव स्तनपृष्ठे मेखलापथे चेति ! यथा मेखला निबध्यते । तत्र पथग्रहणान्नैकम् । अपि तु तिर्यगुत्पलपत्रमालामिव शोभार्थं निदध्यात् । नाभिमूलस्तनमण्डलेऽस्या नायकरत्नवदाभाति ॥ २१ ॥

उत्पलपत्रक

स्तन और कमर पर कमल की पंखुड़ियों के समान जो चिह्न नाखूनों से बनाया जाता है उसे उत्पलपत्रक कहते हैं ॥ २१ ॥

ऊर्वोः स्तनपृष्ठे च प्रवासं गच्छतः स्मारणीयकं संहताश्चतस्रस्तिस्रो वा लेखाः। इति नखकर्माणि ॥ २२ ॥

स्मारणीयकमिति प्रोषितं स्मारयति यन्नखच्छेद्यं लेखाख्यम्। 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति कर्तर्यनीयर्। ततः संज्ञायां कन्। ततः प्रयोज्याया ऊर्वोः प्रवासं गच्छतः प्रच्छन्नस्य नायकस्य प्रयोक्तुः, स्तनपृष्ठे सार्वलौकिकस्य। संहता इति निरन्तरा मेखलार्थम्। मा भूच्चिरविप्रयोग इति चतस्रो दीर्घप्रवासे तिस्रो ह्रस्वप्रवासे संख्याङ्कवल्लेखाः। एषामर्धचन्द्रादीनां देशकालकार्यवशान्नायिकापि प्रयोक्त्री। नखकर्माणीत्येतानि नखच्छेद्यानि रूपवन्तीत्यर्थः। अरूपिणां त्वनिबद्धरूपत्वात्तत्स्थानानियमः। सर्वत्रैवोक्तस्थाने प्रयोगः ॥ २२ ॥

प्रवास जाते समय पुरुष अपनी स्त्रियों के स्तनों और जांघों के जोड़ों पर स्मृति के लिए तीन या चार रेखाएँ नाखून से खींच देते हैं। नखक्षत के भेद समाप्त हुए ॥ २२ ॥

अन्येषामतिदेशमाह—

आकृतिविकारयुक्तानि चान्यान्यपि कुर्वीत ॥ २३ ॥

आकृतिविकारयुक्तानीति संस्थानविशेषयुक्तानि। अन्यान्यपि पक्षिकुसुमकलशपत्त्रवल्ल्यादीनि नखकर्माणि प्रयोक्तव्यानि। अनेन विकल्पस्याधिक्यं दर्शयति ॥ २३ ॥

इनके अतिरिक्त और दूसरे विभिन्न आकार के भी चिह्न बनाने चाहिए ॥

विकल्पानामनन्तत्वादानन्त्याच्च कौशलविधेरभ्यासस्य च सर्वगामित्वाद्रागात्मकत्वाच्छेद्यस्य प्रकारान् कोऽभिसमीक्षितुमर्हतीत्याचार्याः ॥ २४ ॥

आचार्याणां मतं विकल्पानामिति। अष्टविकल्पमेवास्तु नान्यानि। तेषां छेद्यप्रकाराणां निरूप्यमाणानामानन्त्यात्। अतस्तान्कोऽभिसमीक्षितुमर्हतीति संबन्धः। तदभिसमीक्षिणा कौशलमप्यपेक्षणीयम्। तस्य च प्रतिविकल्पं भिन्नत्वादानन्त्यमित्याह—आनन्त्याच्चेति। कौशलविधिः कौशलकरणम्, स च नाभ्यासं विनेत्ययमपरस्तृतीयोऽपेक्षणीयः। सोऽप्येकत्र कृतोऽन्यत्र न कौशलं निष्पादयतीति सर्वगामिना भवितव्यमित्याह—अभ्यासस्य च सर्वगामित्वादिति। तदियं महती परम्परेति कः प्रकारानभिसमीक्षते। किं च रागात्मकत्वाच्छेद्यस्येति रागजन्यत्वात्तदात्मकं नखच्छेद्यम्। रागवृद्धौ हि नखविलेखनम्। तच्च तदानीं

रागान्धत्वादरूपवदेव प्रयुंक्ते। कोऽत्र च्छेद्यवस्तुनि प्रकारं प्रयोक्तुमर्हति तदानीमष्टविकल्पमपि न वक्तव्यम् ॥ २४ ॥

कामशास्त्र के आचार्यों का कहना है कि कौशल और अभ्यास की व्यापकता के कारण नखक्षत के विभिन्न भेदों की कोई गणना नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कामातुर होने पर ही मनुष्य नखक्षत करने में प्रवृत्त होता है इसलिए उस अवस्था में उसे नखक्षत करने की कला का तथा नखक्षत के भेदों का ध्यान नहीं रहता है ॥ २४ ॥

भवति हि रागेऽपि चित्रापेक्षा। वैचित्र्याच्च परस्परं रागो जनयितव्यः। वैचक्षण्ययुक्ताश्च गणिकास्तत्कामिनश्च परस्परं प्रार्थनीया भवन्ति। धनुर्वेदादिष्वपि हि शस्त्रकर्मशास्त्रेषु वैचित्र्यमेवापेक्ष्यते किं पुनरिहेति वात्स्यायनः ॥ २५ ॥

भवति हि रागेऽपीति। हिशब्दोऽवधारणे। रागकालेऽपि केषांचित्सत्यप्यानन्त्ये वैचित्र्यापेक्षा भवत्येव। अपिशब्दादरागकालेऽपि। यदाह—वैचित्र्याच्चेति। आहार्यरागे कृत्रिमरागे च रते परस्परस्य राग उत्पद्यमानः सन्विना (?) वैचित्र्यमिति तज्जननार्थं च वैचित्र्यापेक्षा। के पुनस्ते रागे सत्यरागे च वैचित्र्यमपेक्षन्त इत्याह—वैचक्षण्ययुक्ताश्चेति। तज्ज्ञतया युक्ता देवदत्तासदृश्यो गणिकास्तत्कामिनश्च मूलदेवसदृशाः। ते च विशिष्टरतार्थिनः परस्परस्य प्रार्थनीयास्तज्ज्ञा भवन्ति। मा भूदन्यत्र खलरतमिति। ततश्च तेषां वैचित्र्यमेव रागं जनयति। धनुर्वेदादिष्वपीति शास्त्रान्तरेणास्य साधर्म्यं दर्शयति। आदिशब्दात्कुन्तखड्गादिशास्त्रपरिग्रहः। शस्त्रकर्मशास्त्रेष्विति ज्ञानविद्या कर्मविद्या चेति द्विविधा विद्या। धनुर्वेदे हि परशराणामागच्छतां शरैश्छेदनमेकसंधानेनानेकशरमोक्षणमित्यादिकं कर्मवैचित्र्यम्। किं पुनरिह कामसूत्रे यत्र वैचित्र्यमेव मुख्यमभिप्रेतम्। अन्यथा नागरकानागरकयोः को भेदः ॥ २५ ॥

आचार्यों के उपर्युक्त कथन पर वात्स्यायन कहता है कि रागावस्था में भी विभिन्न प्रकार की चित्र-विचित्र क्रियायें करने की आकांक्षा बनी रहती है और विचित्र संभोग क्रियाओं से स्त्री-पुरुष में राग पैदा होता है। विविध क्रियाकलापों से युक्त संभोग करने में निपुण लोगों की कामना क्रियादक्षा गणिकायें भी किया करती हैं और सम्भोगकला-कुशला गणिकाओं की कामना कलावन्त पुरुष किया करते हैं। जब धनुर्वेद जैसे युद्धशास्त्र में भी शस्त्र-संचालन का वैचित्र्य अपेक्षित रहता है तब फिर कामशास्त्र में कलाचातुर्य और वैचित्र्य की अपेक्षा क्यों न हो ॥ २५ ॥

सर्वत्र च वैचक्षण्ययुक्तेषु वैचित्र्यप्रधिषेधमाह—

न तु परपरिगृहीतास्वेवं कुर्यात् । प्रच्छन्नेषु प्रदेशेषु तासामनुस्मरणार्थं रागवर्धनाच्च विशेषान्दर्शयेत् ॥ २६ ॥

न त्विति । परपरिगृहीतासु वैचक्षण्ययुक्तास्वपि । एवमिति वैचित्र्यं युक्तम् । तासां प्रच्छन्ननायकोपभोग्यत्वात् । प्रच्छन्नेष्विति ऊरुजघनवंक्षणादिषु । अनुस्मरणार्थमिति ये नखच्छेद्यविशेषास्तान्दृष्ट्वा स्मरन्ति । नित्यसमागमस्य दुर्लभत्वात् । रागवर्धनाच्चेति । प्रमोदमात्रस्वरूपत्वाद्विसृष्टिलक्षणां प्रीतिं महतीं जनयन्ति ॥ २६ ॥

पराई स्त्रियों में नखक्षत, दन्तक्षत आदि न करना चाहिए। हाँ उनके गुप्त स्थानों में स्मृति के लिए और राग बढ़ाने के लिए नखचिह्न बना देने चाहिए ॥ २६ ॥

स्मरणमधिकृत्यान्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रशंसामाह—

नखक्षतानि पश्यन्त्या गूढस्थानेषु योषितः ।
चिरोत्सृष्टाप्यभिनवा प्रीतिर्भवति पेशला ॥ २७ ॥

नखक्षतानीति गूढस्थानादिषु । अभिनवा प्रथमसमागम इव प्रीतिः स्नेहः । पेशला अकृत्रिमा ॥ २७ ॥

गुप्ताङ्गों में नखचिह्न देखकर युवती की भूली हुई या त्यागी हुई प्रीति नवीन बन जाती है ॥ २७ ॥

चिरोत्सृष्टेषु रागेषु प्रीतिर्गच्छेत्पराभवम् ।
रागायतनसंस्मारि यदि न स्यान्नखक्षतम् ॥ २८ ॥

चिरोत्सृष्टेष्वनुभूय चिरपरित्यक्तेषु । पराभवं विनाशम् । रागायतनसंस्मारीति रूपं यौवनं गुणाश्चेति रागायतनम्, तत्स्मारयितुं शीलं यस्येति । नखक्षतदर्शनात्तद्रूपादिषु स्मरणम् । ततः प्रीतिवासनात्प्रबोधः ॥ २८ ॥

रूप, गुण, यौवन को स्मरण करानेवाले नखचिह्न यदि नायिका के शरीर पर न हों तो बहुत दिनों की छूटी हुई प्रीति बिल्कुल नष्ट हो जाती है ॥

सामान्येन प्रशंसामाह—

पश्यतो युवतिं दूरान्नखोच्छिष्टपयोधराम् ।
बहुमानः परस्यापि रागयोगश्च जायते ॥ २९ ॥

दूरादिति तत्प्रकारमनुपलभ्यापि । उच्छिष्टं परिभुक्तम् । बहुमानोऽतिगौरवम् । परस्यापि येनापि न संगता । रागयोग इति रागेण युज्यत इत्यर्थः ॥२९॥

नाखूनों से चिह्नित युवती-स्तनों को दूर से ही देखकर अपरिचित पुरुष में भी उस युवती के प्रति सम्मान और कामवासना उत्पन्न हो जाती है ॥२९॥

पुरुषश्च प्रदेशेषु नखचिह्नैर्विचिह्नितः ।
चित्तं स्थिरमपि प्रायश्चलयत्येव योषितः ॥ ३० ॥

पुरुषश्चेति यथा पुरुषस्य तथा योषितोऽपि पुरुषं दृष्ट्वा रागः । प्रदेशेषु सदृशेषु । विचिह्नितो विलिखितः । तपश्चरणादिभिर्नियतमपि प्रायश्चलयतीति प्रकृतेरित्यर्थः ॥ ३० ॥

इसी तरह पुरुष के विभिन्न अङ्गों में लगे हुए नखचिह्नों को देखकर प्रायः स्त्रियों का मन चलायमान हो उठता है ॥ ३० ॥

नान्यत्पटुतरं किंचिदस्ति रागविवर्धनम् ।
नखदन्तसमुत्थानां कर्मणां गतयो यथा ॥ ३१ ॥

नान्यदिति रागयोगेभ्यः । पटुतरं रागवृद्धौ योग्यतरम् । दन्तग्रहणं तुल्यफलत्वदर्शनार्थं प्रासङ्गिकम् । कर्मणां गतय इति छेद्यानां प्रवृत्तयो यथा देहान्तरस्थिता न तथा लोकेऽन्यदस्ति संप्रयोगेऽपि रागवर्धनम् । पूर्वंपूर्वमिति वक्ष्यन्ति । इति नखरदनजातयो दशमं प्रकरणम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गना-
विरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां
सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे नखरदनजातयश्चतुर्थोऽध्यायः ।

पुरुष और स्त्री की कामवासना को जितना नखक्षत, दन्तक्षत क्रिया बढ़ाती है उतना अन्य कोई क्रिया नहीं बढ़ाती ॥ ३१ ॥

वात्स्यायन ने मुख्यतया आठ प्रकार के नखक्षत बताए हैं, साथ ही यह भी निर्देश किया है कि किस समय किस स्थान में किस प्रकार का नखक्षत करना चाहिए । नखक्षत करना एक कला है, कला की दृष्टि से इस का अध्ययन और अनुभव करना चाहिए, यही इस अध्याय का प्रयोजन प्रतीत होता है । वात्स्यायन का यह कथन सर्वथा उपयुक्त जान पड़ता है कि 'संभोगकाल में पुरुष को प्रत्येक क्रिया विचित्र ढङ्ग से करने की इच्छा हुआ करती है । इससे काम की वृद्धि होती है । विचित्र क्रिया करने में निपुण व्यक्ति को कामिनियाँ अधिक चाहती हैं, उससे संयोग के लिए लालायित रहती हैं ।'

वात्स्यायन के मत से नखक्षत का प्रयोजन सम्भोग-स्मृति को बनाए रखना है । गुप्त स्थानों में किए गए नखक्षत को देखकर किसी कारणवश प्रीति

छोड़ देनेवाली स्त्री में भी नखक्षत करनेवाले नायक के प्रति पुनः अनुराग पैदा हो जाता है। नखक्षत और दन्तक्षत यौवनकाल के स्मरण कराने वाले चिह्न होते हैं। यदि ऐसे चिह्न न हों तो दीर्घकाल से छूटी हुई प्रीति बिल्कुल नष्ट हो जाय। नखक्षत पुरानी स्मृतियों को ही नहीं जगाते बल्कि यौवन, रूप, गुण और सम्भोग क्रियाओं का चित्रपट सामने उपस्थित कर देते हैं। वात्स्यायन के मत से नखक्षत और दन्तक्षत से बढ़कर काम-संवेग बढ़ानेवाली कोई दूसरी क्रिया नहीं है।

यौनविज्ञान और मनोविज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो नखक्षत, दन्तक्षत आदि प्रेम-क्रीड़ाएँ जीव-विज्ञान से सम्बन्धित प्रक्रियाएँ हैं। केवल मनुष्य जाति ही में नहीं बल्कि समस्त प्राणिजगत् में जहाँ भी स्त्री-पुरुष के जोड़े हैं उन सब में इस प्रकार की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है। इस प्रक्रिया का आधार यौन-उत्तेजना है। यौन-मिलन के लिए यौन-उत्तेजना बढ़ते-बढ़ते जब पराकाष्ठा को पहुँच जाती है तभी नखक्षत-दन्तक्षत की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

.वात्स्यायन ने जिन स्थानों पर नखक्षत, दन्तक्षत करने का सुझाव दिया है उन स्थानों को यौन-विज्ञान कामोत्तेजना का केन्द्र मानता है। कामोत्तेजना के केन्द्र शरीर के उन भागों में होते हैं जो सम्भोग से पूर्व की जानेवाली आलिंगन-चुम्बन-नखक्षत क्रीड़ा की प्रक्रिया में यौन रूप से अति अनुभूतिशील होते हैं। वात्स्यायन ने जिन अङ्गों में नखक्षत करने का विधान बताया है वे सभी कामोत्तेजना के केन्द्र हैं। सामान्यतया सभी लोगों के ये अङ्ग अन्य अङ्गों की अपेक्षा यौन दृष्टि से अधिक संवेदनशील होते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी अङ्ग होते हैं जो परिस्थिति विशेष पर संवेदनशील हो जाया करते हैं। कामोत्तेजना के केन्द्र यौन जीवन में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। राग की अभिवृद्धि और पूर्ण अनुभूति तथा तृप्ति कैसे मिले इसकी शिक्षा में नखक्षत आदि का ज्ञान अनिवार्य रूप से प्राप्त किया जाना चाहिये। प्रेमी का यह विहित धर्म है कि वह प्राक्क्रीडाओं द्वारा उन अंगांगों की खोज कर उनको विकसित करे जिससे प्रेमिका में चरम-कामोत्तेजना उत्पन्न हो सके। वात्स्यायन ने यही दृष्टिकोण रखकर नख-दन्तक्षत अध्याय का निरूपण किया है। किन्तु यहाँ एक बात कहनी है। वात्स्यायन ने जिस प्रकार सम्भोग-सुख के लिए पुरुष और स्त्री का शश, मृगी आदि नामकरण कर वर्गीकरण किया है उसी प्रकार शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से नखक्षत प्रयोग के लिए भी उसे वर्गीकरण करना चाहिए था क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का साँचा समान होते हुए भी आवयविक गठन पृथक्-पृथक् हुआ करती है। इस सूक्ष्म प्रभेद

के कारण हर व्यक्ति में निर्वाचन के घटक और ही हुआ करते हैं। इन घटकों की खोज स्पर्श सुख के द्वारा आसानी से की जा सकती है।

चिकित्सा-विज्ञान का मत है कि स्त्रियों की त्वचा के ऊपरी भाग में कुछ ऐसे क्षेत्र होते हैं जिनका सम्बन्ध डिम्बाशय से रहा करता है। उन्हें कुछ दशाओं में हल्की और द्रुत उत्तेजना देने से केवल कामोद्रेक ही नहीं होता बल्कि सम्भोग की पूर्णावस्था उत्पन्न हो जाती है। इन अवयवों का संकुचन-प्रसारण अवरुद्ध हो जाने से अक्सर स्त्रियों को मिरगी रोग पकड़ लिया करता है। इसलिए शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सशक्त बनाये रखने के लिए स्त्रियों के उन अङ्गों पर जो कामोत्तेजना के केन्द्र माने गए हैं, नखक्षत, दन्तक्षत करना आवश्यक है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके
द्वितीयेऽधिकरणे चतुर्थोऽध्यायः।
आदितो नवमः।

पञ्चमोऽध्यायः

एवं नखच्छेद्यानुपक्रम्य तदधिकेन दशनच्छेद्येनोपक्रमितुं दशनच्छेद्यविषयस्तथालिङ्गनादयो देशप्रवृत्तिमननुरूप्य प्रयुज्यमाणा न रागहेतव इति देशेषु भवा देश्या उपचारा इति प्रकरणद्वयमत्राध्याये ।

तत्र च्छेद्यस्य स्वरूपविषयकालानां पूर्वत्रनिर्दिष्टत्वात्स्थानानीत्याह—

उत्तरौष्ठमन्तर्मुखं नयनमिति मुक्त्वा चुम्बनवद्दशनरदनस्थानानि ॥ १ ॥

उत्तरौष्ठमिति चुम्बनस्येव न । तत्राप्युत्तरौष्ठं छिद्यमानमसुखावहम् । अन्तर्मुखं जिह्वां शेषमपि । दशनगोचरत्वात् । नयनयोश्छेद्यासंभवात्पर्यन्तपीडाकरत्वाद्वैरूप्यकरणाच्च मुक्त्वा शेषा ललाटाधरोष्ठगलकपोलवक्षःस्तनाः, तथा लाटानामूरुसंधिबाहुमूलनाभिमूलानि सन्ति तानि स्थानानि न तु सर्वजनप्रयोज्यानीति । एतत्सर्वं योज्यम् । चुम्बनेन सहैकविषयत्वात् । दशनरदनस्थानानि दन्तविलेखनस्थानानि । उत्तरोत्तरवैचित्र्यदर्शनार्थं चुम्बनविकल्पानन्तरमिदं नोक्तम् ॥ १ ॥

दाँतों से काटे जाने वाले स्थान

ऊपर का ओठ, जीभ और आँखें इन स्थानों को छोड़ कर शेष सभी स्थान जो चुम्बन के लिए बताये गये हैं दाँत से भी काटे जाते हैं ॥ १ ॥

गुणानाह—

समाः स्निग्धच्छाया रागग्राहिणो युक्तप्रमाणा निश्छिद्रास्तीक्ष्णाग्रा इति दशनगुणाः ॥ २ ॥

समा अकरालास्तुल्यच्छेद्यं निष्पादयन्तीति । स्निग्धच्छाया अपरुषाः । रागग्राहिणस्ताम्बूलभक्षणादौ पुष्पदन्ताः । इति गुणद्वयं शोभार्थम् । युक्तप्रमाणा न श्लक्ष्णा न पृथवः । निश्छिद्रा घनाः । तीक्ष्णाग्राः । इति गुणत्रयं छेद्यार्थं शोभार्थं च ॥ २ ॥

दाँतों के गुण

दन्तपंक्तियाँ ऊँची-नीची न होकर समान हों, उनकी स्निग्ध चमक हो, पान आदि खाने से लाली चढ़े, न तो बहुत बड़े हों और न बहुत छोटे हों । बीच में छेद न हों, एक दूसरे से सटे हुए हों और तेज हों—ये दाँतों के गुण हैं ॥ २ ॥

कुण्ठा राज्युद्गताः परुषाः विषमाः श्लक्ष्णाः पृथवो विरला इति च दोषाः ॥ ३ ॥

राज्युद्गता इति मध्ये स्फुटिता लेखा उद्गता येषामित्याहिताग्न्यादिषु द्रष्टव्यम्। गुणविपर्यये दोषाः सिद्धा अपि प्रधानदोषख्यापनार्थं पुनरुक्तम्। तेन रागाग्राहित्वं न दोषः। शुद्धा एव दशना प्रायशो वर्ण्यन्ते। अत्रापि राज्युद्गतपरुषविषमाणामाननकान्तिपरिपन्थित्वम्। कुण्ठादीनां तु शेषाणां कार्यकरणे असामर्थ्यं दोषश्च ॥ ३ ॥

दाँतों के दोष

कुण्ठित (गोठिल) दाँतों की पाँत से उभरे हुए, खुरदरे, छोटे-बड़े, घिसे हुए, मोटे-मोटे, एक दूसरे से फासले पर हों—दाँतों के ये दोष हैं ॥ ३ ॥

गूढकमुच्छूनकं बिन्दुर्बिन्दुमाला प्रवालमणिर्मणिमाला खण्डाभ्रकं वराहचर्वितकमिति दशनच्छेदनविकल्पाः ॥ ४ ॥

छेदनविकल्पा इति संक्षेपत उक्ताः ॥ ४ ॥

दाँतों से काटने के आठ भेद

गूढ़क, उच्छूनक, बिन्दु, बिन्दुमाला, प्रवालमणि, मणिमाला, खण्डाभ्रक और वराहचर्वित—दाँतों से काटने के ये आठ भेद हैं ॥ ४ ॥

तेषां लक्षणं प्रयोगस्थानं चाह—

नातिलोहितेन रागमात्रेण विभावनीयं गूढकम् ॥ ५ ॥

रागमात्रेणेति। राग एव रागमात्रम्। क्षताभावात्। अतिलोहितेनेति तस्याधिक्यमाह। तेन विभावनीयं विज्ञेयम्। एवं च गूढमिव गूढकम्। अस्फुटितत्वात्। तदेकेनैव राजदन्ताग्रेणावष्टभ्य निष्पाद्यम् ॥ ५ ॥

गूढक

अधरोष्ठ को जब कोमलतापूर्वक दाँतों से इस प्रकार दबाया जाता है कि ओठ में हल्की लाली दौड़ जाये किन्तु निशान न बने तो उसे गूढ़क कहते हैं ॥

तदेव पीडनादुच्छूनकम् ॥ ६ ॥

तदोच्यते गूढकं यदापीड्य निष्पाद्यते। तदा जातश्वयथुत्वादुच्छूनकम् ॥ ६ ॥

उच्छूनक

और जब अधर को जोर से काटा जाता है तो वह दन्तक्षत उच्छूनक कहलाता है ॥ ६ ॥

तदुभयं बिन्दुरधरमध्य इति ॥ ७ ॥

तदुभयं गूढकमुच्छूनकं च। बिन्दुरिति। अयमितिशब्दश्चार्थे। बिन्दुश्च वक्ष्यमाणलक्षणः। त्रितयमधरमध्ये। तेषां स्वल्पाभोगत्वात् ॥ ७ ॥

गूढ़क, उच्छूनक और बिन्दु ये तीनों दन्तक्षत अधर के बीच में किये जाते हैं ॥ ७ ॥

उच्छूनकस्य वैशेषिकं स्थानमाह—

उच्छूनकं प्रवालमणिश्च कपोले ॥ ८ ॥

उच्छूनकं प्रवालमणिश्च वक्ष्यमाणलक्षणः। कपोले तस्य शक्यक्रियत्वात् ॥८॥
उच्छूनक और प्रवालमणि कपोलों पर किये जाते हैं ॥ ८ ॥

कस्मिन्कपोल इत्याह—

कर्णपूरचुम्बनं नखदशनच्छेद्यमिति सव्यकपोलमण्डनानि ॥

सव्यकपोलमण्डनानीति यथा कर्णपूरश्चारुत्वाद्वामे कर्णे विन्यस्तो वामकपोलस्य मण्डनं तथा। यथोक्तम्—'दन्तच्छेद्यं चुम्बनं सताम्बूलं रागमण्डनम्' ॥

कर्णपूर (कर्णाभरण) चुम्बन और नख तथा दाँतों से काटना ये बाँयें कपोल के श्रृङ्गार माने गये हैं ॥ ९ ॥

दन्तौष्ठसंयोगाभ्यासनिष्पादनात्प्रवालमणिसिद्धिः ॥ १० ॥

दन्तौष्ठसंयोगाभ्यासनिष्पादनादिति। उत्तरदन्ताधरोष्ठाभ्यां वा स्थानस्य संयोगाय गृहीत्वा पीडनं तस्याभ्यासः पुनः पुनः करणं स एव निष्पादनं यस्याः सिद्धेः। निष्पाद्यतेऽनेनेति कृत्वा। तथा हि तदभ्यासात्प्रवालमणिरिव लोहितः क्षतविवर्जितो दन्तौष्ठपदविन्यासो निष्पाद्यते ॥ १० ॥

दाँत और ओठों से बार-बार एक ही स्थान पर दबाते रहना प्रवालमणि कहलाता है ॥ १० ॥

सर्वस्येयं मणिमालायाश्च ॥ ११ ॥

मणिमालायाश्च दन्तौष्ठसंयोगाभ्यासनिष्पादनात्सिद्धिरित्येव। अत्राप्ययमेव प्रकारः। किं त्वेकं निष्पाद्यं तदनन्तरमपरं यावन्माला भूतेति ॥ ११ ॥

कई स्थानों पर प्रवालमणि दन्तक्षत करने से जो पंक्ति बन जाती है उसे मणिमाला कहते हैं ॥ ११ ॥

अल्पदेशायाश्च त्वचो दशनद्वयसंदंशजा बिन्दुसिद्धिः ॥१२॥

अल्पदेशाया इति स्थानापेक्षया। तत्र गले मुद्गमात्राया अधरे तिलमात्रायास्त्वचः। दशनद्वयसंदंशजेति। उत्तरेणाधरेण च दशनाग्रेण त्वचमाकृष्य संदंशः खण्डनं तस्माज्जायत इत्यर्थः। बिन्दुसिद्धिरिति। बिन्दुरिव बिन्दुः। स्वल्पदेशखण्डनात्। सिद्धिरित्युत्तरैश्चतुर्भिर्दशनैरल्पदेशायास्त्वचो युगपत्संदंशजेत्यर्थः ॥१२॥

गरदन आदि की खाल को खींच कर दो दाँतों से तिल के बराबर निशान बना देना बिन्दु है ॥ १२ ॥

सर्वैर्बिन्दुमालायाश्च ॥ १३ ॥

बिन्दुमाला तदाकारत्वात् ॥ १३ ॥

एक ही स्थान पर इस तरह के बहुत से विन्दुओं को विन्दुमाला कहते हैं ॥ १३ ॥

तस्मान्मालाद्वयमपि गलकक्षवंक्षणप्रदेशेषु ॥ १४ ॥

तस्मान्मालाद्वयमपीति मणिमाला बिन्दुमाला च। गलकक्षवंक्षणप्रदेशेषु। श्लथत्वक्त्वादेषाम् ॥ १४ ॥

इसलिए विन्दुमाला और मणिमाला ये दोनों दन्तक्षत गर्दन, काँख और गुप्तेन्द्रिय के समीप का स्थान इन तीनों जगहों पर त्वचा ढीली होने के कारण किया जाता है ॥ १४ ॥

ललाटे चोर्वोर्बिन्दुमाला ॥ १५ ॥

ललाटे चोर्वोरिति। तत्राप्यूर्वोस्तिलपंक्तिरिव स्थिता स्यान्न तिर्यक्परिमण्डलमिवेति। सूक्ष्मभागयोर्विच्छेदेऽपि परिमण्डलमिव लक्ष्यते ॥ १५ ॥

विन्दुमाला मस्तक और जंघाओं पर होती है ॥ १५ ॥

मण्डलमिव विषमकूटकयुक्तं खण्डाभ्रकं स्तनपृष्ठ एव ॥१६॥

विषमकूटकयुक्तमिति। विषमैः पृथुमध्यसूक्ष्मैर्दशनपदैः समन्ततो युक्तं खण्डाभ्रकम्। तत्सादृश्यात्। स्तनपृष्ठे सौकर्याच्छोभितत्वाच्च। पुरुषस्य वक्षसीत्यर्थादवगन्तव्यम्। तच्च कण्ठोपग्रहेण निष्पाद्यम् ॥ १६ ॥

स्तनों के ऊपर बादलों के टुकड़ों के समान दाँत से निशान बनाने को खण्डाभ्रक कहते हैं ॥ १६ ॥

संहताः प्रदीर्घा बह्वयो दशनपदराजयस्ताम्रान्तराला वराहचर्वितकम्। स्तनपृष्ठ एव ॥ १७ ॥

संहता इति। स्तनपृष्ठस्यैकतो भागात्स्वल्पदेशां त्वचं दशनसंदंशेन चर्वयेत्, यावदपरभागम्। इत्यनेन क्रमेणोपर्युपरिचर्वणान्निरन्तराः प्रदीर्घा बह्वयश्चतस्रः षड् वा दशनपदपंक्तयो निष्पाद्याः। तासां चान्तरालानि संमूर्च्छितरक्तत्वात्ताम्राणि भवन्ति। अतो वराहस्येव चर्वणाद्वराहचर्वितकम्। स्तनपृष्ठ एव बहुलमांसत्वात् ॥ १७ ॥

एक दूसरे के नजदीक लम्बे-लम्बे दन्तक्षत के निशानों की पंक्तियाँ जिनके मध्यभाग दाँत से चबाने के कारण लाल हो गये हों वह वराहचर्वितक दन्तक्षत है। यह भी स्तन पर ही किया जाता है ॥ १७ ॥

तदुभयमपि च चण्डवेगयोः। इति दशनच्छेद्यानि ॥१८॥

तदुभयपि खण्डाभ्रकं वराहचर्वितकं च छेद्यं चण्डवेगयोः। तत्सात्म्यात्। एषां नायिकापि प्रयोक्त्री द्रष्टव्या। उभयोरपि शास्त्राधिकारात्। देशकालकार्यवशात्किंचिदेव कस्यचिदसाधारणम्। एतावन्ति दशनच्छेद्यानि सांप्रयोगिकान्युक्तानि। प्रयोज्याशरीरे प्रयोक्ष्यमाणत्वात्। अभियोगे त्वसम्भवात् ॥ १८ ॥

खण्डाभ्रक और वराहचर्वितक इन दोनों दन्तक्षतों को वही प्रेमी-प्रेमिकाएँ प्रयोग में लाती हैं जो संभोगकाल में चण्डवेग हुआ करती हैं। दाँतों से काटने के भेद समाप्त हुए ॥ १८ ॥

आकारप्रदर्शनार्थं सांक्रान्तिकमाभियोगिकमाह—

विशेषके कर्णपूरे पुष्पापीडे ताम्बूलपलाशे तमालपत्रे चेति प्रयोज्यागामिषु नखदशनच्छेद्यादीन्याभियोगिकानि ॥१९॥

विशेषक इति भूर्जपत्रादिकल्पिते तिलके। कर्णपूरे नीलोत्पलादौ। पुष्पापीड इत्युपलक्षणम्। शेखरे संसज्जितताम्बूलीपत्रे। तमालपत्रे सुरभिण्यनङ्गलेखीकृते। एषां छेद्यविषयत्वात्। इतिशब्दः प्रकारे। प्रयोज्यागामिष्विति गमिष्यन्तीति गामिनः। 'भविष्यति गम्यादयः' इति निपातनात्। प्रयोज्यागामिनो विशेषकादयः। 'गमि गम्यादीनाम्' इति समासः। तेषु हि छेद्यानि संक्रान्तकान्याभियोगिकानि भवन्ति। नखदशनच्छेद्यादीनीति। नखच्छेद्यमाभियोगिकं प्राङ् नोक्तम्। इहैकविषयत्वादेकीकृत्योक्तम्। दशनच्छेद्यविषय एकादशं प्रकरणम् ॥ १९ ॥

मस्तक पर श्रृङ्गार के लिए धारण किये जानेवाले भोजपत्र पर, कानों में पहने जानेवाले नीलकमल पर और पान के बीड़ा तथा तमालपत्र पर जो प्रेयसी के निमित्त लिए जा रहे हों प्रेमी अपने नखों और दाँतों से उन पर निशान करके अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं ॥ १९ ॥

देशप्रवृत्तयो देश्या उपचारास्तानाह—

देशसात्म्याच्च योषित उपचरेत् ॥ २० ॥

देशसात्म्यादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी। सात्म्यं द्विविधम्—देशतः, प्रकृतितश्च। तत्र चुम्बनादीनां येन यस्मिन्देशे सात्म्यमवस्थितं तदपेक्ष्यते। न तत्र योषित उपचरेत। स्वयं तच्छीलवद्भवेत्। उपलक्षणमेतत्। पुरुषानपि योषित् ॥ २० ॥

देशोपचार-प्रकरण

अब विभिन्न देशों की स्त्रियों के नख-दन्तक्षत के प्रयोग और रिवाज बताते हैं।

अपने देश या प्रदेश की रीति के अनुसार आलिंगन, चुम्बन, नखक्षत और दन्तक्षत करने चाहिए ॥ २० ॥

तत्र मध्यदेशस्य प्रधानत्वात्तत्सात्म्यमाह—

मध्यदेश्या आर्यप्रायाः शुच्युपचाराश्चुम्बननखदन्तपदद्वेषिण्यः ॥ २१ ॥

मध्यदेश्या इति। 'हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रया-

गाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥' इति भृगुः । 'गङ्गायमुनयोरित्येके' इति वसिष्ठः । अयमेव शास्त्रकृतां प्राधान्येनाभिप्रेतः । तत्रभवा मध्यदेश्याः । शुच्युपचाराः सुरते शुचिसमुदाचाराः । आर्यप्रायत्वात् । चुम्बनादित्रयं द्वेष्टुं शीलमासाम् । आलिङ्गनमिच्छन्ति ॥ २१ ॥

विन्ध्य और हिमालय के बीच मध्यदेश में प्रायः आर्य जाति रहती है। इस जाति की स्त्रियाँ पवित्र प्रेम व्यवहार करती हैं। वे चुम्बन-नख-दन्तक्षत को पसन्द नहीं करती हैं ॥ २१ ॥

बाह्लीकदेश्या आवन्तिकाश्च ॥ २२ ॥

बाह्लीकदेश्या उत्तरापथिकाः । आवन्तिका उज्जयिनीदेशभवाः । ता एवापरमालव्यः । चुम्बनादिद्वेषिण्यः ॥ २२ ॥

बाह्लीक (बलख) तथा अवन्ती की स्त्रियाँ भी चुम्बन आदि को पसन्द नहीं करती हैं ॥ २२ ॥

पूर्वाभ्यो विशेषमाह—

चित्ररतेषु त्वासामभिनिवेशः ॥ २३ ॥

चित्ररतेष्विति । चित्ररतानि वक्ष्यन्ते । तेष्वभिनिवेशोऽतिप्रीतिकरत्वात् ॥ २३ ॥

किन्तु बाह्लीक और अवन्ती की स्त्रियाँ चित्ररत में विशेष रुचि रखती हैं ॥

परिष्वङ्गचुम्बननखदन्तचूषणप्रधानाः क्षतवर्जिताः प्रहणनसाध्या मालव्य आभीर्यश्च ॥ २४ ॥

मालव्य इति पूर्वमालवभवाः । परिष्वङ्गचुम्बनानि प्राधान्येनेच्छन्ति । क्षतविवर्जिताः स्तोकदन्तनखदन्ताभ्यामिच्छन्ति (?) । प्रहणनसाध्याः प्रहणनेन जातरतयः । आभीर्य इति । आभीरदेशः श्रीकण्ठकुरुक्षेत्रादिभूमिः । तत्र भवाः ॥ २४ ॥

मालवा और आभीर देश की स्त्रियाँ अधिकतर आलिंगन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत तथा इन्द्रिय को चूसना अधिक पसन्द करती हैं। किन्तु उनके नोचने और काटने से घाव नहीं होता है। प्रहार और आघात करने पर ही इन्हें सम्भोग-तृप्ति होती है ॥ २४ ॥

सिन्धुषष्ठानां च नदीनामन्तरालीया औपरिष्टकसात्म्याः ॥

सिन्धुषष्ठानां चेति । सिन्धुनदः षष्ठो यासां नदीनाम् । तद्यथा—विपाट् शतद्रुरिरावती चन्द्रभागा वितस्ता चेति पञ्चनद्यः । तासामन्तरालेषु भवाः । औपरिष्टकसात्म्या इति । सत्यपि परिष्वङ्गचुम्बनादौ मुखे जघनकर्माणः । खरवेगाः प्रीयन्त इत्यर्थः ॥ २५ ॥

सिन्धु और सतलुज नदियों के अन्तराल में रहनेवाली स्त्रियाँ औपरिष्टक विधि (मुख में सम्भोग कराना) में अधिक रुचि रखती हैं ॥ २५ ॥

चण्डवेगा मन्दसीत्कृता आपरान्तिका लाट्यश्च ॥ २६ ॥

आपरान्तिका इति, पश्चिमसमुद्रसमीपेऽपरान्तदेशः। तत्र भवाः। अत्रत्यैः किलार्जुनसकाशाद्विष्णोरन्तःपुरमाच्छिन्नमिति। लाट्यश्चेति। अपरमालवात् पश्चिमेन लाटविषयः। तत्र भवाश्चण्डवेगाः। मन्दसीत्कृता इति सीत्कृतानि मन्दं च प्रहारं सहन्त इत्यर्थः। तदुद्भवत्वात्सीत्कृतस्य ॥ २६ ॥

अपरान्तक (सह्याद्रि के आस पास) और लाटदेश (सूरत, भरौंच) की रहनेवाली स्त्रियाँ अत्यधिक कामातुरा होती हैं और सम्भोगकाल में धीरे-धीरे सी-सी शब्द किया करती हैं ॥ २६ ॥

दृढप्रहणनयोगिन्यः खरवेगा एव, अपद्रव्यप्रधानाः स्त्रीराज्ये कोशलायां च ॥ २७ ॥

स्त्रीराज्य इति। वज्रवन्तदेशात्पश्चिमेन स्त्रीराज्यं तत्र, कोशलायां च योषितः सत्यप्यालिङ्गनादौ दृढप्रहारैः प्रीयमाणाः संप्रयुज्यन्ते। खरवेगा एवेत्यवधारणात्सर्वदैवेत्यर्थः। कण्डूतेराधिक्याद्रागः खर इत्युच्यते। तद्भावे तु चण्ड इति विशेषः। एवं च सति अपद्रव्यप्रधानाः। कण्डूतिप्रतीकारार्थं प्राधान्येन कृत्रिमसाधनमिच्छन्तीत्यर्थः ॥ २७ ॥

कोशल देश तथा स्त्रीराज्य की स्त्रियों को भोगेच्छा शान्त करने के लिए प्रचण्डवेग की आवश्यकता पड़ती है। उन्हें शान्त करने के लिए उनके गुह्यस्थान में प्रहार किए जाते हैं। फिर भी वे स्त्रियाँ जब शांत नहीं होतीं तो अपद्रव्य—'बनावटी लिङ्ग' का प्रयोग करती हैं ॥ २७ ॥

प्रकृत्या मृद्व्यो रतिप्रिया अशुचिरुचयो निराचाराश्चान्ध्र्यः ॥

आन्ध्र्य इति। नर्मदाया दक्षिणेन देशो दक्षिणापथः। तत्र कर्णाटविषयात् पूर्वेणान्ध्रविषयः। तत्र भवाः। प्रकृत्या स्वभावेन मृद्वयङ्ग्यो न प्रहणनादि सहन्ते। किं तु रतिप्रियाः। पुरुषोपसृप्तमिच्छन्तीत्यर्थः। अशुचिरुचयोऽविविक्तसमुदाचाराः निराचाराश्च। भिन्नमर्यादा इत्यर्थः ॥ २८ ॥

आन्ध्रदेश की स्त्रियाँ प्रकृति से कोमल, संभोगप्रिय, गन्दी रुचिवाली और व्यभिचारिणी हुआ करती हैं ॥ २८ ॥

सकलचतुःषष्टिप्रयोगरागिण्योऽश्लीलपरुषवाक्यप्रियाः शयने च सरभसोपक्रमा महाराष्ट्रिकाः ॥ २९ ॥

महाराष्ट्रिका इति। नर्मदाकर्णाटविषययोर्मध्ये महाराष्ट्रविषयः तत्र भवाः। सकलायाश्चतुःषष्टेः पाञ्चालिक्या गीताद्यायाश्च प्रयोगेण रागस्तासां भवतीति तत्प्रयोगरागिण्यः। अश्लीलं ग्राम्यं परुषं च निष्ठुरं वाक्यं वदन्ति सहन्ते चेति

तत्प्रियाः । शयने चेति संप्रयोगे । रभसोपक्रमा इति घृष्टत्वोद्भटत्वरभसेन पुरुषमभियुञ्जत इत्यर्थः ॥ २९ ॥

महाराष्ट्र देश की स्त्रियाँ चौंसठ कलाओं के प्रयोग में अनुराग रखती हैं, अश्लील, गन्दे और कड़वे वचन बोलती हैं तथा संभोग का प्रारम्भ बड़े जोश-खरोश के साथ करती हैं ॥ २९ ॥

तथाविधा एव रहसि प्रकाशन्ते नागरिकाः ॥ ३० ॥

नागरिका इति पाटलिपुत्रिकाः । तथाविधा एवेति—तेनैव प्रकारेण सकलचतुःषष्टिप्रयोगतयाश्लीलपरुषवाक्यप्रियतया च रहसि विजने प्रकाशन्ते । तत्रपत्वात् । महाराष्ट्रिकास्तु प्रसह्य रहसि चेति विशेषः । शयने च रभसोपक्रमत्वं तुल्यम् ॥ ३० ॥

महाराष्ट्र की स्त्रियों की भाँति पाटलिपुत्र की भी स्त्रियाँ होती हैं किन्तु वे ६४ कलाओं का अभ्यास एकान्त में किया करती हैं ॥ ३० ॥

मृद्यमानाश्चाभियोगान्मन्दं मन्दं प्रसिञ्चन्ते द्रविड्यः ॥३१॥

द्रविड्य इति । कर्णाटविषयाद्दक्षिणेन द्रविडविषयः । तत्र भवाः । अभियोगादिति । यन्त्रयोगात्प्रागालिङ्गनाद्यभियोगात्प्रभृति पुरुषेण मृद्यमाना बहिरन्तश्च शिथिलीक्रियमाणावयवा मन्दं मन्दं प्रसिञ्चन्त इति स्तोकं स्तोकं मूर्छनासुखवर्जितं क्षरणं कार्यत इति । अमदत्वात् । ततोऽन्ते समाक्षिप्तवेगा विसृष्टिः । तेनैकस्मिन्नेव रते निवृत्तरागा भवन्तीति दर्शयति ॥ ३१ ॥

द्रविड़ देश की स्त्रियाँ सम्भोग प्रारम्भ होते ही मन्द-मन्द रजःस्राव करने लगती हैं ॥ ३१ ॥

मध्यमवेगाः सर्वंसहाः स्वाङ्गप्रच्छादिन्यः पराङ्गहासिन्यः कुत्सिताश्लीलपरुषपरिहारिण्यो वानवासिकाः ॥ ३२ ॥

वानवासिका इति । कोङ्कणविषयात्पूर्वेण वनवासविषयः । तत्र भवाः । मध्यवेगा भावतः कालतश्च समालिङ्गनादिकं सहन्ते । व्यक्तमात्मनः शरीरे दोषं प्रच्छादयन्ति । परस्योपहसन्ति । कुत्सितं रूपेण व्यवहारेण च अश्लीलं ग्राम्यं परुषं परिहरन्ति । न तेन संप्रयुज्यन्ते ॥ ३२ ॥

कोंकण के पूर्व वनवासी देश की स्त्रियाँ मध्यम वेगवाली होती हैं, आलिंगन, चुम्बन, प्रहरण, नखक्षत, दन्तक्षत आदि सब कुछ बर्दाश्त करनेवाली होती हैं किन्तु अपने अङ्गों को ढके रहती हैं और दूसरे के अङ्गों की हँसी उड़ाया करती हैं। ये बुरे, असभ्य और कठोर स्वभाव के पुरुषों से घृणा करती हैं ॥ ३२ ॥

मृदुभाषिण्योऽनुरागवत्यो मृद्वङ्ग्यश्च गौड्यः ॥ ३३ ॥

गौड्य इति । गौडदेशोद्भवाः । प्रदर्शनं चैतत् । अन्यदपि लक्षयेत् ॥ ३३ ॥

गौड (पश्चिमी बंगाल) देश की स्त्रियाँ मृदुभाषिणी, अपने पति से प्रेम रखनेवाली तथा कोमलांगी हुआ करती हैं ॥ ३३ ॥

देशसात्म्यात् प्रकृतिसात्म्यं बलीय इति सुवर्णनाभः । न तत्र देश्या उपचाराः ॥ ३४ ॥

प्रकृतिसात्म्यमिति । प्रकृतिः स्वभावः तत्सात्म्यमेव मन्यते । देशप्रकृतिसात्म्येनैवोपचाराः कर्तव्याः । उभयसंनिपाते विरोधे सति देशसात्म्यात्प्रकृतिसात्म्यं बलीय इति । अन्तरङ्गत्वात् । न तत्र देश्या उपचाराः सुवर्णनाभस्य । आचार्याणां तु प्रकृतिसात्म्यपरिहारेणैव देशसात्म्येनोपचरेदिति मतम् । शास्त्रकृतोऽपि सुवर्णनाभमतमेवाभिमतम् । अप्रतिषिद्धत्वात् ॥ ३४ ॥

आचार्य सुवर्णनाभ का कहना है कि देश रीति से अपनी प्रकृति और रुचि श्रेष्ठ होती है इसलिए अपनी रुचि के अनुसार चुम्बन, आलिंगन, नखक्षत, दन्तक्षत आदि करना चाहिए । देशाचार के बन्धन में बँधे रहना बुद्धिमानी नहीं ॥ ३४ ॥

कालयोगाच्च देशाद्देशान्तरमुपचारवेषलीलाश्चानुच्छन्ति । तच्च विद्यात् ॥ ३५ ॥

कालयोगाच्चेति । कालान्तरेण देशात्तथा तत्रत्यानुपचारान्वेषं नेपथ्यं लीलां चेष्टाविशेषमनुगच्छन्ति । तच्चेति—देशान्तराद्यनुगमनं तत्त्वतो विद्यात् । अन्यथा उपचारादिदर्शनेन तद्देशजेयमित्युपचर्यमाणा विगुणा स्यात् । तस्मात्संचारिगुणत्यागेन स्थायिदेशप्रचारैरेवावधार्य प्रकृतिसात्म्येनोपचरेत् ॥ ३५ ॥

समय बीतने पर किसी एक देश के आचार-व्यवहार, पहनावा और प्रेम-क्रीड़ाएँ दूसरे देश में चली जाती हैं । इसलिए यह न समझना चाहिए कि इस ग्रन्थ में जिस देश के आचार-व्यवहार का वर्णन है वह अब भी विद्यमान है ॥

उपगूहनादिषु च रागवर्धनं पूर्वं पूर्वं विचित्रमुत्तरमुत्तरं च ॥

उपगूहनादिष्विति । आलिङ्गनचुम्बननखदशनच्छेद्यप्रहणनसीत्कृतेषु षट्सु बहिःकर्मसु पूर्वं पूर्वं रागवर्धनम् । तत्र सीत्कृताच्छ्रुतिरमणीयात्प्रहणनं स्पर्शकरं रागवर्धनम् । ततो दशनच्छेद्यमतिस्पर्शकरम् । ततोऽपि परिहारेण नखच्छेद्यम् । तस्मादपि चुम्बनं मृदुस्पर्शकरम् । ततोऽपि सर्वाङ्गिकमालिङ्गनमतिस्पर्शकारीति । विचित्रमुत्तरोत्तरमिति । तत्रोपगूहनात्स्थूलकर्मणश्चुम्बनं कुटिलकर्म विचित्रम् । ततो नखविलेखनम् । तस्मादपि दशनच्छेद्यमतिकुटिलम् । ततोऽपि प्रहणनम् ।

यतस्तद्धस्तलाघवान्मन्दकर्मपरिहारेण रागं दीपयति। ततोऽपि सीत्कृतम्। यदुपदेशेऽपि दुर्ग्रहमिति ॥ ३६ ॥

आलिंगन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत, प्रहणन और सीत्कार इनमें से प्रत्येक एक के बाद दूसरा कामोत्तेजक और रागवर्द्धक होता है। तथा प्रत्येक अपने से पहले वाले की अपेक्षा अधिक विचित्र होता है ॥ ३६ ॥

एवं देशसात्म्यात्परस्परमुपचितौ छेद्यकलहोऽपि स्यात्। तत्र प्रीतिस्थिरीकरणार्थं चेष्टितमुच्यते। तद्द्विविधम्—रहसि प्रकाशे च सेवने।

तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

वार्यमाणश्च पुरुषो यत्कुर्यात्तदनु क्षतम्।
अमृष्यमाणा द्विगुणं तदेव प्रतियोजयेत् ॥ ३७ ॥

वार्यमाण इति। आङ्गिकेन वाचिकेन वाभिनयेन निषेध्यमानः प्रकृतिसात्म्यात्। यदा त्वनिषेध्यमानस्तदा 'कृते प्रतिकृतं कुर्यात्' इत्ययमेव पक्षः। न द्विगुणयोजनम्। कलहाभावात्। द्यूतकलहेऽपि द्यूतमधिकृत्योक्तम्। इह सात्म्यविशेषः। अमृष्यमाणेत्यक्षममाणा द्विगुणं प्रयुक्तादधिकच्छेद्यं यत्तदेव। न विजातीयम्। प्रयोजयेत्प्रतीपं योजयेत् ॥ ३७ ॥

यदि स्त्री के मना करने पर भी पुरुष उसे नाखूनों से नोचे और दाँतों से काटे तो स्त्री को चाहिए कि वह उससे दुगुना नोचे और काटे ॥ ३७ ॥

कस्य किं द्विगुणमित्याह—

बिन्दोः प्रतिक्रिया माला मालायाश्चाभ्रखण्डकम्।
इति क्रोधादिवाविष्टा कलहान्प्रतियोजयेत् ॥ ३८ ॥

बिन्दोरिति। मालेति बिन्दुमाला, तस्या अप्यभ्रखण्डकं प्रतीकारः। इत्येवं द्विगुणं प्रतीकारं बुद्ध्वा योजयेत्कलहं प्रति। तथाभ्रखण्डस्य वराहचर्वितकम्। गूढस्योच्छूनकम्। तस्य प्रवालमणिः। तस्यापि मणिमाला। तस्यापि बिन्दुरिति। तत्र पूर्वाणि चत्वारि त्वचि स्थितानि। शेषाणि त्वचमतिक्रम्य। क्रोधादिवाविष्टेति। कृतककोपेन दर्शितावस्थान्तरा। कलहान्तरं कृतककलहदर्शनार्थम् ॥ ३८ ॥

विन्दु के बदले में माला, माला के बदले में अभ्रखण्डक का चिह्न दाँतों से इस प्रकार करे मानो क्रोध से भरा हुआ है। इसके साथ ही अन्य प्रकार के भी प्रेम-युद्ध करने चाहिए ॥ ३८ ॥

सकचग्रहमुन्नम्य मुखं तस्य ततः पिबेत्।
निलीयेत दशेच्चैव तत्र तत्र मदेरिता ॥ ३९ ॥

मुखं पिबेदधरपानाख्येन चुम्बनेन। तत्र चायं विदग्धक्रमः। सकचग्रहमुन्नम्येति। पाणिनैकेन कचेषु द्वितीयेन चिबुके परिगृह्योत्तानीकृत्येत्यर्थः। निलीयेत दृढं संश्लिष्येत दशेच्च। तत्र तत्र च्छेद्यस्थाने। यत्र यत्र वा तेन दष्टा। मदेरिता पानमदप्रेरिता। तदेव सुचेष्टं सुखयति ॥ ३९ ॥

स्त्री को चाहिये कि वह एक हाथ से पुरुष के बाल पकड़ कर दूसरे हाथ से उसकी ठोढ़ी पकड़ कर उसका अधर पान करे तथा इतने जोर से आलिंगन करे कि पुरुष के शरीर में प्रविष्ट सी हो जाए और मदनोन्मत्त होकर भिन्न स्थानों में दाँतों से काटे भी ॥ ३९ ॥

विधानान्तरमाह—

उन्नम्य कण्ठे कान्तस्य संश्रिता वक्षसः स्थलीम् ।
मणिमालां प्रयुञ्जीत यच्चान्यदपि लक्षितम् ॥ ४० ॥

उन्नम्येति। संश्रिता वक्षसः स्थलीमेकेन बाहुपाशेनावेष्ट्य कचमुन्नम्य द्वितीयेन हस्तेन चिबुकं गृहीत्वा मणिमालां प्रयुञ्जीत। फले स्वस्थाने कण्ठकामिवाह। यच्चान्यदपि लक्षितं दशनच्छेद्यं मनोहारि। अत्रापि वैचित्र्यापेक्षेति सूचयति ॥ ४० ॥

और प्रिय की छाती पर बैठकर एक हाथ से उसके मुँह को ऊपर उठा कर दूसरे से गलबाँह डालकर गर्दन अथवा उसके आस पास दाँतों से मणिमाला चिह्न बनाए ॥ ४० ॥

प्रकाशे चेष्टितमाह—

दिवापि जनसंबाधे नायकेन प्रदर्शितम् ।
उद्दिश्य स्वकृतं चिह्नं हसेदन्यैरलक्षिता ॥ ४१ ॥

दिवापीति रात्रौ नायिकया यत्कृतं चिह्नं तद्दिवापि नायकेन कथमस्मिञ्जनसमूहे प्रच्छाद्यमिति भावमाकारं ग्राहयेत्प्रदर्शयेत्। उद्दिश्य स्वयं कृतं चिह्नमिति दुष्टस्यायमेव निग्रहो युक्त इति भावं ग्राहयन्ती हसेत्। अन्यैरलक्षितेति। नायकेनाप्यलक्षितेति योज्यम्। अन्यथा द्वावप्यनागरकौ। जनसंबाधे स्यातामिति ॥ ४१ ॥

दिन में अनेक व्यक्तियों के जमाव में पुरुष जब अपनी स्त्री द्वारा बनाए गए दाँतों के चिह्नों को दिखाए तो स्त्री बिना किसी की ओर देखते हुए हँसने लगे ॥ ४१ ॥

सापि तत्कृतानि चिह्नानि प्रदर्शयेदित्याह—

विकूणयन्तीव मुखं कुत्सयन्तीव नायकम् ।
स्वगात्रस्थानि चिह्नानि सासूयेव प्रदर्शयेत् ॥ ४२ ॥

विकूणयन्तीव व्यर्थचुम्बनार्थं संकोचयन्तीव। संकोचस्येष्टत्वात्। कुत्सयन्तीव भ्रूनयनविकारैश्चिह्नं विदग्धमिति। 'तर्जयन्तीव' इति पाठान्तरम्। फलमस्य प्राप्स्यसीति तर्जनम्। सासूयेवाक्षममाणेव ॥ ४२ ॥

अथवा मुँह बनाती हुई तथा पुरुष को झिड़कती हुई स्त्री अपने शरीर में पतिद्वारा किए गए घावों को दिखाये ॥ ४२ ॥

परस्परानुकूल्येन तदेवं लज्जमानयोः।
संवत्सरशतेनापि प्रीतिर्न परिहीयते ॥ ४३ ॥

तदिति तस्मात्। संवत्सरशतेन पुरुषायुःप्रमाणेनेत्यर्थः। प्रीतिर्न परिहीयते स्थिरीभवतीत्यर्थः। भोजनमपि ह्येकरसमुपसेव्यमानं विरागं जनयति। देश्या उपचारा द्वादशं प्रकरणम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे दशनच्छेद्यविधयो देश्या उपचाराश्च पञ्चमोऽध्यायः।

परस्पर प्रेम रखते हुए और एक दूसरे के प्रति लज्जा का भाव रखते हुए स्त्री-पुरुष की प्रीति सौ वर्ष में भी कम नहीं होती है ॥ ४३ ॥

वात्स्यायन ने नखक्षत और दन्तक्षत सम्बन्धी देशाचार का वर्णन करते हुए मध्यदेश, वाह्लीक, अवन्ती, मालव, सिन्धु-सतलुज का अन्तराल, अपरान्तक, स्त्री-राज्य, कोशल, महाराष्ट्र नगर, आन्ध्र, द्रविड़, वन, गौड़, लाट, आभीर और कोङ्कण देशों का उल्लेख किया है। भौगोलिक दृष्टि से यह वर्णन बड़े महत्त्व का है। भारतीय इतिहास और भारतीय जनता को समझने के लिए यह शैली बड़े काम की है।

भारत के प्राचीन भौगोलिक अध्ययन के अनुसार दृषद्वती (घाघरा) और सरस्वती नदी के उस काँठे से जो वर्तमान अम्बाला से उत्तर थानेश्वर, सिरसा और मरुभूमि से लेकर प्रयाग तक प्राचीन भारत का मध्यदेश था। बौद्धग्रन्थ विनयपिटक के अनुसार वर्तमान बिहार भी मध्यदेश के अन्तर्गत माना गया है। मध्यदेश की दक्खिनी सीमा पारियात्र या विन्ध्य पर्वत माना जाता है। मध्यदेश से पूर्व का स्थल प्राची, दक्खिन का दक्षिणापथ, पश्चिम का अपरान्त और उत्तर का उत्तरापथ कहलाता था।

वराहमिहिर ने बृहत्संहिता[1] में मध्यदेश के चारों ओर आठों दिशाओं में

१. अध्याय १४।

एक-एक विभाग रखकर कुल नौ विभाग किये हैं—आग्नेय कोण में विदर्भ[1] (बरार), ईशान कोण[2] में कीर (कांगड़ा), कश्मीर, अभिसार और दरद। वामनपुराण[3] के नव भेद और बृहत्संहिता के नौ भाग जिनके सिर्फ नामों का उल्लेख कवि राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा[4] में किया है वे उनसे भिन्न हैं। राजशेखर जिन्हें पञ्चस्थलम् कहता है वे पूर्व देश, पश्चाद्देश, दक्षिणापथ, उत्तरापथ और मध्यदेश हैं[5]। वायुपुराण[6] में मध्य देश, उदीच्य, प्राच्य, दक्षिणापथ और अपर जनपद का उल्लेख है। उक्त पांच विभागों की गणना करने के बाद वायुपुराण विन्ध्यवासिनः[7] या विन्ध्यपृष्ठ[8]निवासिनः और पर्वताश्रयिणः[9] लिख कर दो और पर्वतीय जनपदों का उल्लेख करता है जिससे कुल सात विभाग हो जाते हैं। दीघनिकाय[10] में भी भारतवर्ष के सात विभागों का उल्लेख मिलता है। कदाचित् पुराणों के सात विभाग दीघनिकाय भी मानता है।

बृहत्संहिता[11] में मध्यदेश की पूरबी सीमा काशी है, काव्यमीमांसा में भी मध्यदेश की पूरबी सीमा वाराणसी मानी गयी है।

परन्तु विनयपिटक[12] में विदेह और मगध को मध्यदेश के अन्तर्गत माना गया है और पतंजलि के महाभाष्य[13] तथा वसिष्ठ[14], बौधायन[15] धर्मसूत्रों में कालकवन को आर्यावर्त की पूरबी सीमा कहा है। प्राचीन भौगोलिक विद्वानों के मत से कालकवन आजकल का संथाल परगना है। पतञ्जलि ने आर्यावर्त की पच्छिमी सीमा 'अदर्श' को माना है। वसिष्ठ और बौधायन धर्मसूत्र में उसे अदर्शन (जहाँ पर सरस्वती लुप्त हुई है) लिखा गया है।

इस प्रकार मध्य देश की स्थिति और उसकी सीमाओं में नई पुरानी भौगोलिक परिभाषाओं का अन्तर है। हमारी समझ में वात्स्यायन के समय में मध्य देश की सीमा पूर्व में प्रयाग तक, पश्चिम में कुरुक्षेत्र तक तथा उत्तर में कूर्माचल, शर्याणवत पर्वत (शिवालिक की पहाड़ियाँ) और दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक रही होगी। यही आर्यावर्त भी कहा जाता रहा होगा। 'मध्यदेश्याः आर्यप्रियाः' लिखकर वात्स्यायन ने इसका स्पष्टीकरण स्वयं

१. श्लोक ८। २. श्लोक २९। ३. ४५, ७८। ४. पृष्ठ ९२। ५. पृष्ठ ९३–९४। ६. श्लोक १०९–१३१। ७. श्लोक १३१। ८. श्लोक १३४। ९. श्लोक १३५–३६। १०. इमं महापठितम् उत्तरेण आयतं दक्खिनेन सकटमुखं सत्तधासमं सुविभत्तं—महागोविन्दसुत्त १९। ११. अध्याय १४, ७। १२. महावग्ग। १३. महाभाष्य २, ४, १०। १४. वसिष्ठ १, ८। १५. बौधायन० १, १, २५।

किया है। आर्य आचार-विचार को धारण करनेवाली मध्यदेशीय स्त्रियों को पवित्र विचारोंवाली लिखा है। इसलिए यहाँ की स्त्रियाँ पवित्र दाम्पत्य प्रेम को अधिक महत्त्व दिया करती थीं, नखक्षत, दन्तक्षत को नहीं।

वाह्लीक-अवन्तिका—वाह्लीक और अवन्तिका देश की स्त्रियाँ मध्यदेश की स्त्रियों की भाँति नखक्षत और दन्तक्षत को तो नहीं पसन्द करतीं किन्तु चित्ररत करने में बड़ी निपुण होती हैं। वाह्लीक देश आजकल बलख़ कहलाता है, यह भारत के उत्तर-पश्चिम में है। प्राचीन पारसी इसे बख्तर और यूनानी बैक्ट्रिया कहते हैं। इसकी पहचान करते हुए जयचन्द्र विद्यालङ्कार ने लिखा है—'तागदुम्बाशा पामीर के पच्छिम बख़ीरजोत उससे आबेप्रख़ाँ हिन्दूकुश के ठीक उत्तर सटा हुआ है। आमूदरिया का संस्कृत नाम वंक्षु था और उसकी यह धारा तथा उसके उद्गम का प्रदेश अब तक बख़ाँ कहलाता है। वह अब अफ़ग़ान राज्य में है। उसके उत्तर छोटा पामीर भी है जो अफ़ग़ान सीमा में है। छोटे पामीर के उत्तर बड़ा पामीर है जिसमें आमू की दूसरी धारा आबेपञ्जा के रास्ते में ज़ोरकुल–विक्टोरिया–झील बन गयी है। उसके उत्तर अलीचूर, घुन्द, सरेज़, रङ्गकुल और कारकुल या खरगोश पामीर रूस की सत्ता में हैं। सरेज़ पामीर आमू की एक और बड़ी शाखा मुर्ग़ाब या अक्तू की दून है। रङ्गकुल की झील जिसके नाम से रङ्गकुल पामीर का नाम पड़ा है पुराने बौद्ध यात्रियों का नागह्रद है। पामीरों के पठार के पच्छिम बदख़्शाँ और उसके पश्चिम बलख़ है।'[1]

महाभारत में कई स्थलों पर 'काम्भोजबाह्लीकाः'[2] का उल्लेख हुआ है। इससे यह प्रतीत होता है कि महाभारत काल में कम्बोज और बाह्लीक एक रहे होंगे अथवा सोलह महाजनपदों-काशी-कोशल-की तरह इनकी भी जोड़ी रही होगी। राजतरङ्गिणी में कम्बुज को बदख़्शाँ से अलग माना गया है। जब कि लिंग्वेस्टिक सर्वे के अनुसार बदख़्शाँ कम्बोज में शामिल किया जाता है। बदख़्शाँ के निवासी ताजिक जाति के हैं और वह तुखार देश के नाम से प्रसिद्ध हैं। तुखार जाति ईस्वी पूर्व दो सौ वर्ष बलख, बदख़्शाँ और पामीर में आई थी। तभी से उस देश को तुखारा कहा जाने लगा है। उससे पहले बलख का नाम बाह्लीक था और बदख़्शाँ कम्बोज से अन्तर्गत था क्योंकि पामीर और बदख़्शाँ की भाषा उस समय एक ही थी। कम्बोज एक जाति का नाम था जिसके आधार पर उसकी निवासभूमि भी कम्बोज कही जाने लगी। इसीलिए महाभारत में 'काम्भोजबाह्लीकाः' नाम एक साथ आया

१. भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृष्ठ ७०

२. महाभारत ६. ७५, १७ और २८, २१-२३

है। भारतीय साहित्य में वाह्लीक (बलख़) का उल्लेख बहुत प्राचीनकाल से हुआ है। महाभारत से ज्ञात होता है कि बाह्लीक में खच्चरों की उच्च श्रेणी की नस्ल होती थी तथा यहाँ के लोग चीन से रेशमी वस्त्रों, पश्मीनों और रत्नों का व्यापार करते थे।

बलख़ की ख्याति का एक दूसरा कारण यह भी रहा है कि यहाँ पर संसार की प्रसिद्ध चार महाजातियों—भारतीय, शक, ईरानी और चीनी—का सम्मिलन होता था। इन देशों के व्यापारी यहीं पर आपस में व्यापारिक वस्तुओं का आदान-प्रदान करते थे और दूसरे देशों में जाते हुए यहाँ रुकते थे। बलख़ से एक महाजनपथ पूर्व की ओर बदख़्शाँ, बख़्ाँ तथा पामीर की घाटियों को पार करता हुआ काशगर तक पहुँचता था। इस महाजनपथ से अधिक उपयोगी रास्ता उत्तर की ओर जाने वाला रास्ता था जो वंक्षु नदी को पार कर शक द्वीप होता हुआ यूरेशिया के रास्तों से मिलता था। बलख़ से दक्षिण की ओर जानेवाला महापथ हिन्दूकुश और सिन्धुनदी को पार कर तक्षशिला पहुँचता था और वहाँ से वह पाटलिपुत्र वाले महापथ से मिल जाता था। बलख़ से तक्षशिला तक जानेवाले पथ को कौटल्य ने 'हैमवतपथ' कहा है।

अवन्ती

अवन्ती महाजनपद युग में सोलह महाजनपदों में एक महाजनपद था, इससे पूर्व अवन्ती की गणना जनपदों में थी। अवन्ती जनों (कबीलों) की निवासभूमि को अवन्ती कहा जाता था। जानराज्य शासनसंस्था अवन्ति जनपद में काम करती थी। अवन्ती के अतिरिक्त उस समय कुरु, पाञ्चाल, उशीनर, वत्स, अङ्ग, शूरसेन, यौधेय, मद्र, मालव, केकय, गान्धार, अम्बष्ठ आदि अनेक जनपद थे।

महाजनपदों के उदय होने पर सोलह महाजनपदों में से प्रत्येक के पड़ोसी महाजनपद की जोड़ी मिलाकर गणना की जाती थी जैसे—१ अंग–मगध २ काशी–कोशल ३ वृजि–मल्ल ४ चेदि–वत्स ५ कुरु–पाञ्चाल ६ मत्स्य–शूरसेन। ७ गान्धार–काम्बोज और ८ अश्मक–अवन्ति।

शूरसेन और चेदि के दक्खिन-पच्छिम अवन्ति महाजनपद उस समय सबसे अधिक शक्तिशाली माना जाता था। पच्छिमी समुद्र और मध्यदेश के बीच तथा अश्मक-मूलक और मध्यदेश के बीच जो व्यापारपथ थे उनका यह महान् केन्द्र था। महाजनपद युग में माहिष्मती का राज्य भी इसी में शामिल था। अश्मकमूलक राज्य उत्तरमूलक और पूर्वमूलक दो भागों में विभक्त था। इस तरह अवन्ति महाजनपद की पूर्वी सीमा कलिंग राष्ट्र से लगती थी।

एक ओर इसकी सीमा मगध से लगती थी दूसरी ओर वत्स-चेदि से। अवन्ती की राजधानी उज्जयिनी थी।

मालव-आभीर

अति प्राचीन काल में मालवा में राजा रन्तिदेव राज्य करते थे। दशपुर (मन्दसौर) उनकी राजधानी थी। महाजनपद युग में अवन्ती ने मालवा को आत्मसात् कर लिया। बौद्धकाल में मालवराष्ट्र या जनपद नाममात्र को रह गया। अवन्ती की विशाल छाया में ही यह फलता-फूलता रहा। सिकन्दर के आक्रमण के समय पंजाब का दक्खिनी हिस्सा भी मालव जाति के अधिकार में था। उस समय शूरसेन तक मालव जाति का शासन चल रहा था। पूर्वी मालवा की राजधानी आकर (आगर) थी, केन्द्रीय राजधानी उज्जयिनी थी।

सन् ६४० ई० में चीनी यात्री युवान्च्वांग मालवा में आया था। वह लिखता है कि मालवा राज्य का क्षेत्रफल छह हजार ली (१००० मील) और इसकी राजधानी पाँच मील लम्बी है। राजधानी के दक्षिण-पूर्व मही नदी बहती है। अवन्ती और माहिष्मती स्वतंत्र राज्य होते हुए भी मालवाधिप के अधीन थे।

इससे ज्ञात होता है कि महाजनपद युग के बाद अवन्ती कमजोर हुई। गुप्तकाल तक उसका शासन वैभव मगध पर अवलंबित रहा करता। इसके बाद, मालवा ने फिर करवट ली। धारानगरी मालवा की राजधानी बन गयी। अवन्ती एक स्वतंत्र किन्तु पालित राज्य मात्र रह गयी।

कनिंगहम के मत से मालव पश्चिम में कच्छ से लेकर पूर्व में उज्जयिनी तक, उत्तर में गुजरात और बिहार से लेकर दक्षिण में बलभी और महाराष्ट्र तक फैला था। धारा उसकी केन्द्रीय राजधानी थी। वात्स्यायन का मालव से तात्पर्य पंजाब की मालव जाति से हो सकता है अवन्ति (मालव) से नहीं। क्योंकि अवन्ती का उल्लेख पृथक् किये जाने से सूचित होता है कि वात्स्यायन के जमाने में अवन्तिका राष्ट्र पृथक् था और मालव जाति तब तक अवन्तिका में जाकर बसी नहीं थी। इतिहासकारों का अनुमान है कि 'मालवा जाति पंजाब से उखड़ने के बाद जयपुर (राजस्थान) के निकट कर्कोट नगर में बसी थी। वहाँ से आगे बढ़ते हुए वे मालव गुप्तकाल में चौथी शती के लगभग मालवा (मध्यभारत) में आकर बसे होंगे। राजनैतिक घटनाएँ इङ्गित करती है कि जैसे ही चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अवन्ति से शकराजाओं का उन्मूलन किया वैसे ही मालव लोग अवन्ति में आकर अधिकृत हो गए। मन्दसोर के लेखों (ईसवी ४०४ और ई० ४३३) में मालव संवत् का उल्लेख होने से

भी यही विदित होता है कि मालव लोग ईसवी पांचवीं शती से पहले मालव में आ बसे थे।"[1]

आभीर

उत्तर-पश्चिमांचल में सिन्धुप्रदेश में आभीरों का राज्य था इसलिए इस प्रदेश को आभीर कहा जाता था। भगवान् कृष्ण के महाप्रस्थान के बाद जब अर्जुन गोपिकाओं को लेकर द्वारका से हस्तिनापुर आ रहे थे, रास्ते में आभीर, देश के आभीरों ने उन्हें लूटा था।

टाल्मी के आधार पर टार्न[2] ने लिखा है कि सिन्धप्रदेश में पाताल नाम का एक इलाका था। पाताल के उत्तर में अबीरिया (आभीर) और उसके दक्षिण में सुराष्ट्र था। पाताल और सुराष्ट्र के बीच में कच्छ पड़ता था। टाल्मी ने आभीरप्रदेश को मध्यसिन्ध में माना है। प्लिनी के अनुसार उत्तरी सिन्ध का नाम प्रसियेन था।

सिन्धु-सतलुज

सिन्ध नदी और सतलुज नदी के अन्तराल की भूमि के स्पष्ट दो टुकड़े हैं। जहाँ सिन्धुनद की पाँचों भुजाएँ फैली हुई हैं, वह भूभाग पंजाब है, जहाँ उन पाँचों जल भुजाओं का पानी बटुर कर सिन्धुनद में मिलता है, वह भूभाग सिन्ध है। सिन्ध मैदान के उत्तर पच्छिम छोर से उसकी एक नोक पहाड़ों के अन्दर बढ़ी हुई है। वह कच्छा गदावऽ कहलाती है। सिन्ध और सतलुज के बीच का काँटा खुला हुआ समतल मैदान है। संसार की उर्वर भूमियों में प्रथम श्रेणी की यह भूमि है।[3]

अपरान्तक

अपरान्त से पश्चाद्देश तथा पच्छिमी घाट दोनों का बोध होता है। किन्तु वात्स्यायन का तात्पर्य सह्याद्रि के पास उत्तर कोङ्कण और केरल की भूमि ही प्रतीत होता है। कालिदास ने भी रघु की दिग्विजययात्रा के प्रसंग में अपरान्त का उल्लेख करते हुए उसकी स्थिति सह्य पर्वत के समीप स्वीकार की है।

तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतैः।
रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत् सह्यलग्न इवार्णवः॥

१. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ ११८।

२. दि ग्रीक्स इन बैक्ट्रिया एण्ड इण्डिया पृष्ठ २३२

३. भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृष्ठ ४५

लाट

नर्मदा नदी के मुहाने से लेकर मही नदी के तीरस्थ गुजरात तथा खान्देश का भूभाग था। यह प्राचीन जनपद लाट कहलाता था। मुसलमान इतिहासकार मसूदी, अलबरूनी तथा टाल्मी ने इस देश को लाड, लारिस और लारियक कहा है। अलबरूनी, अकुलफ़दा और इब्नसैयद के मत से थाना और सोमनाथ पत्तन मिलकर लाटदेश बना था। मुसलमान व्यापारी सुलेमान कम्बे की खाड़ी से लेकर मालावार-उपकूल तक लाट देश कहता है। मसूदी ने मैसूर, सोपारा, थाना और सामान्य नगरों को लेकर लाट देश की सीमा निर्दिष्ट की है। वर्तमान पुरातत्त्वविदों का मत है कि सूरत, भड़ौंच और कुछ अंश बड़ौदा का लेकर प्राचीन लाट देश बना था।

टाल्मी ने समुद्र तट से भीतर तक फैली हुई सिन्ध से भड़ौंच तक फैली हुई जमीन को जिसकी राजधानी उज्जयनी थी—लारिके—लाट कहा है।

स्त्रीराज्य—कोशल

स्त्रीराज्य की पहचान वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में दी है—

दिशि पश्चिमोत्तरस्यां माण्डव्यतुखारतालहलमद्राः।
अश्मककुलतूलहडस्त्रीराज्यनृसिंहवनखस्थाः॥ (अ० १४, श्लो० २२)

महाभारत के अनुसार प्राचीन काल में एक ऐसा प्रदेश था जहाँ स्त्रियों का राज्य था। ऐसा अनुमान है कि वर्तमान कुल्लू घाटी से लेकर रुवालसर या मंडी तक स्त्रीराज्य रहा होगा।

हर्षचरित में उल्लिखित 'अलसचण्डकोश' शब्द की व्याख्या करते हुए डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं कि—'सिलवाँ लैवी ने इसकी ठीक पहचान अलसन्द या सिकन्दर से की थी। सिकन्दर-सम्बन्धी आख्यानों का पूरा कथा-सागर ही यूनान से अबीसिनिया (अफ्रिका) और ईरान तक फैल गया था, उसके मतानुसार सिकंदर ने समस्त पृथिवी जीतकर अन्त में 'एमेजन' नामक स्त्रियों के राज्य को पत्र भेजकर विजित किया पर स्वयं उसमें प्रवेश नहीं किया। यह स्त्रीराज्य एशियामाइनर में ब्लैकसी और एजियनसी के किनारे था। यूनानी इतिहास लेखक कर्तिअस के अनुसार जब सिकन्दर विजय करता हुआ एशिया में आया तो एमेजन देश की रानी थ्यलेस्त्रिस् उससे मिलने आयी। सिकन्दर-नामे की यह एक प्रसिद्ध कथा हो गई थी कि सिकन्दर ने स्त्रीराज्य को दूर से ही अपने आधिपत्य में लाकर उसे अछूता छोड़ दिया था[1]।'

१. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० १९५–९६

इस विवरण से स्त्रीराज्य भारत की सीमा से बाहर एशिया माइनर में था।

कोशल की स्थिति बहुत पुरानी है। इक्ष्वाकु इस भूखण्ड का महान् सम्राट् था, साकेत (अयोध्या) कोशल की राजधानी थी। महाजनपद युग में कोशल और काशी की जोड़ी थी। बौद्धकाल में श्रावस्ती (सहेत-महेत) इसकी राजधानी थी किन्तु साकेत का महत्त्व कम नहीं था। कोशल दो भागों में विभक्त था, उत्तर कोशल और दक्षिण कोशल। उत्तर कोशल की राजधानी अयोध्या या श्रावस्ती थी और वर्तमान छत्तीसगढ़ का इलाका दक्षिण कोशल कहलाता था। वात्स्यायन उत्तर कोशल से ही तात्पर्य रखता है। वात्स्यायन के समय में कोशल में सरयू और इरावती (सदानीरा) नदियाँ थीं।

आन्ध्र

महाराष्ट्र के दक्खिन-पच्छिम तेलुगु भाषा का समूचा क्षेत्र तेलंगण या आन्ध्र देश है। गुण्टूर जिले के पालनाड तालुका में कृष्णा नदी के दाहिने किनारे पर नागार्जुनी कुण्ड की पहाड़ियों पर बहुत से प्राचीन अवशेष पाए गए हैं, जिनसे पूर्वी समुद्रतट पर इक्ष्वाकुकुल के दूसरी-तीसरी शती के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। एपि० इंडिया[1] से ज्ञात होता है कि इक्ष्वाकु राजाओं के विवाह संबंध वनवासी, अपरान्तक और उज्जैन के क्षत्रप कुल में हुए थे। इक्ष्वाकुवंशी राजा ब्राह्मणधर्म के अनुयायी थे किन्तु उनकी स्त्रियाँ बौद्धधर्म को मानती थीं। अपरान्त वनवासी दमिल (द्रविड़) तीसरी बौद्ध संगीति के बाद बौद्ध हुए थे ऐसा मिलिन्द[2] प्रश्न से प्रतीत होता है।

महाराष्ट्र

भारत का दक्षिण पश्चिमान्तवर्ती जनपद महाराष्ट्र है। उत्तर में सतपुड़ा पर्वत श्रेणी, दक्षिण में कर्नाटक, पूर्व में गोंडवाना और तैलंगण तथा पश्चिम में अरब सागर इसकी सीमा है। सह्याद्रि महाराष्ट्र को पूर्व और पश्चिम दो भागों में बाँटता है। पूर्वांचल का नाम देश और पश्चिमांचल का नाम कोङ्कण है। कोङ्कण का जो भाग पश्चिमी घाट गिरिमाला के समीप है उसे कोङ्कण घाट-माथा कहते हैं।

प्राचीनकाल में महाराष्ट्र का अधिकांश भाग दण्डकारण्य कहलाता था। रामायणकालीन दण्डकारण्य को महाभारत में दण्डदेश कहा गया है। कोङ्कण प्रदेश महाभारत में अपरान्त (उत्तर कोङ्कण) और गोकर्ण

१. २० पृष्ठ ६। २. पृष्ठ ३२० और ३२७।

(दक्षिण कोङ्कण) नाम से प्रसिद्ध था। मार्कण्डेय पुराण, शक्तिसंगमतन्त्र, रत्नकोश और बृहत्संहिता में महाराष्ट्र और उसके अन्तर्गत कोङ्कण, नासिक, कोल्हापुर, वनवास प्रदेशों का नाम मिलता है। अशोक के पाँचवें अनुशासन में तथा दीपवंश, महावंश में महोरट्ठ, अपरान्त (उत्तर कोङ्कण) और वनवास (दक्षिण महाराष्ट्र) प्रदेश में भोज तथा राष्ट्रिक जाति के बौद्ध याजकों को भेजा जाना लिखा है। उस समय का महाराष्ट्र नगर, आभीर, प्रतिष्ठान, विदर्भ, अपरान्त और वनवास आदि छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था।

नगर

नगर का अर्थ जयमंगला टीकाकार ने पाटलिपुत्र नगर किया है। वात्स्यायन महाराष्ट्र की स्त्रियों की भोगेच्छा की तुलना नगर की स्त्रियों से करता है। भौगोलिक दृष्टि से सोचने पर यह निश्चित है कि देश, काल और जलवायु का प्रभाव मनोवृत्तियों पर पड़ता है। ऐसी स्थिति में पाटलिपुत्र की स्त्रियों की मनोवृत्ति महाराष्ट्र की स्त्रियों के समान होना संभव नहीं जान पड़ता है। वात्स्यायन ने 'नागरिकः' शब्द का प्रयोग किया है इसका नागर जाति की स्त्रियाँ और नगर अथवा नागर देश की स्त्रियाँ भी अर्थ किया जा सकता है। नागर देश की सीमा किसी समय महाराष्ट्र का स्पर्श करती थी। नागर जाति की स्त्रियों का स्वभाव, शील और उनकी प्रवृत्ति महाराष्ट्र की स्त्रियों से अधिकांश मिलती-जुलती है।

इसके अतिरिक्त राजस्थान में कर्कोट गिरिमाला से चार-पाँच वर्गमील पूर्व प्राचीनकाल में कर्कोट नगरी होने का पता मिलता है जिसे नागर राज्य की राजधानी कहा जाता है। पौराणिक अनुश्रुति है कि नागर राज्य की स्थापना मान्धाता के पुत्र मुचकुन्द ने की थी। पुरातत्त्वविद् कार्लाइल को यहाँ ६ हजार प्राचीन मुद्राएँ मिली थीं। उन अधिकांश मुद्राओं में बोधिसत्त्व, बोधिवृक्ष के चिह्न अंकित हैं। कुछ में 'मालवान्तं जयः' अंकित है। डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल का यह अनुमान सही नहीं जान पड़ता है कि ईसा की पाँचवीं शती से पूर्व मालव लोग पंजाब से निकल कर कर्कोट (राजस्थान) में जा बसे इसके बाद अवन्ती पहुँचे।[1] अनुश्रुति है कि कर्कोट नाम का नागवंश यहाँ पर बहुत दिनों तक राज्य करता रहा है। नगर या नागर का तात्पर्य पाटलिपुत्र करना हमारी समझ में प्रमाणरहित है।

---

१. केटलाग आफ् साइन्स, आई० एम० सी० खण्ड १ पृष्ठ १६१ में विन्सेन्टस्मिथ ने ईसापूर्व १५० या १०० तक पंजाब से कर्कोट पहुँचने का जो अनुमान लगाया है वह सही जान पड़ता है।

द्रविड़

उड़ीसा के दक्षिण-पूर्वी सागर के किनारे रामेश्वरम् तक फैला हुआ द्रविड़ देश है। प्राचीन काल में द्रविड़ देश को 'तामिलगम्' कहा जाता था। इसकी सीमा उत्तर में समुद्रतट पर पुलीकट से तिरुपति तक, पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक, दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पच्छिम में माही के कुछ दक्खिन बडगर के पास तक थी। उस समय मालाबार भी तामिलगम् के अन्तर्गत था। इस प्रदेश में पाण्डयों, चोलों और चेरों के राज्य थे।

वनवासी

बौद्ध इतिहास ग्रन्थ महावंस और दीपवंस से जाना जाता है कि महाराष्ट्र से दक्षिण और कोङ्कण से पूर्व वनवासी राज्य था। अति प्राचीन रामायणकाल के इतिहास से ज्ञात होता है कि वनवासी राज्य में कादम्ब राजाओं का राज्य था। स्कन्दपुराण के ताप्ती खण्ड में कादम्ब राज्य को असुर राज्य बताया गया है। पौराणिकों ने यद्यपि कादम्ब जाति को असुर बताया है किन्तु अपनी उच्च सभ्यता के बल पर यह जाति आर्यों से किसी भी दशा में कम नहीं थी। इसका दूसरा नाम पराक्रान्ति जाति भी था। इस जाति का राज्य एक समय ताप्ती से गोआ तक फैला हुआ था। यह जाति परम शिवभक्त थी। मयूरवर्मचरितम् में कादम्ब जाति का विस्तृत इतिहास लिखा है। कादम्ब जाति का प्रथम राजा त्रिनेत्र कदम्ब ईसवी १६८ में विद्यमान था। इसकी राजधानी जयन्तीपुरम् थी।

जयन्तीपुरम् रामायण काल का वैजयन्तपुरम् था। मन्थरा ने कैकेयी को राजा दशरथ द्वारा दिए जानेवाले वरों का स्मरण कराते हुए देवासुर-संग्राम का उल्लेख किया था। वह कहती है कि वैजयन्तपुरम् में देवासुर-संग्राम हो रहा था, उस समय देवताओं की ओर से राजा दशरथ युद्ध के लिए गए थे। संग्राम में घायल दशरथ को जब असुर घसीट कर वध करने के लिए उद्यत हुए तो तुमने उनकी रक्षा की थी। इस उपकार के बदले में उन्होंने तुम्हें मनचाहा वर माँगने का वचन दिया था—

दिशामास्थाय कैकेयि दक्षिणान् दण्डकान् प्रति।
वैजयन्तमिति ख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः॥

वा० रा०, अयोध्या काण्ड, श्लोक १२

इससे प्रतीत होता है कि रामायण काल में वनवासी राज्य दण्डकारण्य में था और उस समय वहाँ का राजा तिमिध्वज था।

वात्स्यायन का अभिप्राय वनवासी से दण्डकारण्य ही हो सकता है।

गौड

शक्तिसंगमतंत्र में लिखा है कि गौड देश से लगाकर भुवनेश्वर की सीमा तक गौड़ देश है। ११ वीं शती के कृष्ण मित्र ने अपने प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में अनुपमा राढ़ापुरी को भी गौडदेश के अन्तर्गत माना है। वर्तमान बर्दवान जिला और उसका दक्षिणी हिस्सा राढ़ क्षेत्र है। कृष्ण मित्र के अनुसार यह भी गौड देश के अन्तर्गत है।

वराहमिहिर (सातवीं शती) ने गौड, पौण्ड्र, वंग और वर्द्धमान को पृथक्-पृथक् जनपद कहा है। कूर्मपुराण और लिङ्गपुराण में लिखा है कि सूर्यवंशी श्रावस्तिपुत्र ने गौडदेश में श्रावस्ती नगरी बसायी थी। श्रावस्ती—साकेत—अयोध्या एक दूसरे के सन्निकट हैं। लिंग और कूर्मपुराण के अनुसार आजकल का गोंडा (उत्तर प्रदेश) गौड़ प्रदेश था।

विष्णुशर्मा ने हितोपदेश में लिखा है—'अस्ति गौडविषये कौशाम्बी नाम नगरी।' उससे ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन वत्सदेश विष्णुशर्मा के समय गौड़ देश था। ईसवी नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं शती के शिलालेखों से जाना जाता है कि चेदि, मालव और वराड राज्य के सीमान्त में एक गौड़ देश था।

राजतरंगिणी में लिखा है—'पञ्च गौडाधिपान् जित्वा श्वशुर तदधीश्वरम्।'[1] जयादित्य ने पंचगौड के राजाओं को जीतकर अपने ससुरं को उसका राजा बनाया।

स्कन्दपुराण के सह्याद्रि खण्ड में लिखा है—

> सारस्वताः कान्यकुब्जाः उत्कला मैथिलाश्च ये।
> गौडाश्च पञ्चधा चैव पञ्चगौडाः प्रकीर्तिताः॥[2]

इससे यह ज्ञात होता है कि गौड नामके पाँच प्रदेश थे, जिनमें सरस्वती नदी प्रवाहित कुरुक्षेत्र एक, इलाहाबाद कन्नौज के बीच दूसरा, अयोध्या में तीसरा, मिथिला और वंगदेश में चौथा, उड़ीसा और मध्यप्रदेश के बीच में पाँचवां था।

मध्यकालीन इतिहास में मिथिला और बंग देश के बीच का गौड़ देश अधिक प्रसिद्ध था। चीनी यात्री युवानच्वांग ने बौद्ध धर्म के भी कर्णसुवर्ण के राजा शशांक का उल्लेख किया है। वह गौड और पौण्ड्रवर्द्धक प्रदेशों को भिन्न बतलाता है।

---

१. ४।४६३। २. उत्तरार्द्ध अध्याय १।

हर्षचरित में बाण ने लिखा है कि राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन के समय में गौड नरेन्द्र गुप्त नाम का राजा था, जिसने राज्यवर्द्धन को मार डाला था। राजतरंगिणी के अनुसार कश्मीरनरेश ललितादित्य ने सातवीं शती के अन्त में गौड राज्य को जीत लिया था। कश्मीरनरेश जयादित्य के अधीन गौड राज्य था। उस समय गौड राज्य के राजा जयन्त थे और उनकी राजधानी पौण्ड्रवर्द्धन में थी। इससे सिद्ध होता है कि सातवीं शती में गौड राज्य कई भागों में विभक्त था। आठवीं शती में पौण्ड्रवर्द्धन के राजा जयन्त ने समस्त गौड को अपने अधीन कर लिया और आदिशूर की उपाधि प्राप्त की।

प्राचीन कुलाचार्य हरिमिश्र ने राढ़ीय कारिका में लिखा है कि आदिशूर के वंशजों ने बहुत दिनों तक गौड में राज्य किया था। वे ब्राह्मण धर्मावलम्बी थे। उनके बाद पालवंशी देशपाल राजा हुए। पालवंशी राजाओं की राजधानी पौण्ड्रवर्द्धन ही रही है। आदिशूर के समय में वंग और राढ़ भी गौड राज्य में थे। किन्तु पालवंश के समय में बंग और राढ़ गौड राज्य में नहीं थे।

तिरुमलयगिरि के शिलालेख से ज्ञात होता है कि दसवीं शती में राजेन्द्र-चोल के समय में उत्तरराढ़, दक्षिणराढ़, बंग और पुण्ड्रभुक्त ये सब पृथक् राज्य थे। महाराजराजेन्द्र चोल ने इन सबको परास्त किया था। कुछ दिनों बाद सेनवंशी प्रथम राजा विजयसेन राढ़ में आकर गौडाधिप हुए। उससे पूर्ववर्ती राजा पौण्ड्रवर्द्धन और कर्णसुवर्ण नगरों में रहते थे। विजयसेन के पुत्र बल्लाल-सेन ने गंगा के किनारे गौड नाम के नगर को अपनी राजधानी बनाया जिसका नाम अपने पुत्र लक्ष्मणसेन के नाम पर लक्ष्मणावती रखा।

इस विवरण से निष्कर्ष यह निकलता है कि वात्स्यायन के समय में पश्चिमी बंगाल गौड देश था।

वात्स्यायन के इस देश्योपचार वर्णन से उसके समय के भारत का मान-चित्र ही नहीं प्रस्तुत होता बल्कि प्रत्येक प्रदेश के निवासियों की प्रवृत्तियों का भी परिचय मिलता है जिसके आधार पर उस समय के भारत के सामाजिक अध्ययन के लिए सहायता प्राप्त होती है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साम्प्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
दशनच्छेद्यविधयो देश्याश्चोपचाराः पञ्चमोऽध्यायः ॥
आदितो दशमः।
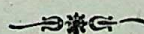
षष्ठोऽध्यायः

एवं देशप्रकृतिसात्म्यापेक्षया आलिङ्गनाद्युपचाराज्जातरागयोः संवेशनयोग्यत्वात्संवेशनप्रकाराः, तथा संवेशनविशेषत्वाच्चित्ररतानीति प्रकरणद्वयमत्राध्याये।

यदाह—

रागकाले विशालयन्त्येव जघनं मृगी संविशेदुच्चरते ॥ १ ॥

रागकाल इति रागकालो यत्र स्तब्धलिङ्गता। साधनसंबाधयोः संयोगार्थं संवेशनम्। तच्च तदानीमेव युज्यते। तेन प्रमाणतो रतमधिकृत्य संवेशनप्रकाराः। उपलक्षणं चैतत्। उच्चतररते चाश्वेन संप्रयोक्ष्यमाणेति (जघनं) विशालयन्तीव संविशेत्। अत्रातिदेशं वक्ष्यति ॥ १ ॥

अब सम्भोग की भिन्न-भिन्न विधियाँ बताई जाती हैं—

सम्भोग के समय मृगी स्त्री यदि वृष पुरुष से संयोग कराए अर्थात् असमान संभोग में मृगी स्त्री अपनी जंघाओं को फैला दे ॥ १ ॥

अवह्रासयन्तीव हस्तिनी नीचरते ॥ २ ॥

अवह्रासयन्तीवेति ऊर्वोः संश्लेषणात्संकोचयन्तीव। यथा संवृतमुखं भवति। हस्तिनी नीचरते वृषेण संप्रयोक्ष्यमाणा संविशेदित्येव। तस्या बहलरन्ध्रत्वात्। शशेन नीचतररतेऽवह्रासयन्तीति। अत्राप्यतिदेशं वक्ष्यति ॥ २ ॥

बड़े गुह्यस्थान वाली हस्तिनी स्त्री यदि छोटे गुह्य स्थान वाले शश पुरुष से संभोग करे तो उसे अपनी जंघाओं को समेट लेना चाहिए ॥ २ ॥

न्याय्यो यत्र योगस्तत्र समपृष्ठम् ॥ ३ ॥

यत्र—यस्मिन् रते, न्यायादनपेतो योगः, स्वभावसिद्धत्वात्, समरत इत्यर्थः। तत्र समपृष्ठं संविशेदित्येव क्रियाविशेषणमेतत्। संकोचनप्रसारणाभावात्समं जघनपृष्ठं यस्यां क्रियायामिति ॥ ३ ॥

यदि स्त्री और पुरुष के गुह्य स्थान समान हों तो स्त्री को अपनी जंघाओं को फैलाने या सिकोड़ने की आवश्यकता नहीं है ॥ ३ ॥

आभ्यां वडवा व्याख्याता ॥ ४ ॥

साप्युच्चरतेनाश्वेन प्रयोक्ष्यमाणा विशालयन्तीव शशेनावह्रासयन्तीव। न्याय्यो यत्र वृषेण तत्र समपृष्ठं संविशेदिति। मृगीहस्तिनीभ्यां व्याख्याता। यथा चोक्तम्—'विवृतोरुकमुच्चैस्तु नीचैः स्यात्संवृतोरुकम्। यथास्थितोरुकं चापि समपृष्ठं समे रते' ॥ ४ ॥

उपर्युक्त दोनों प्रकार की जातियों के समान बडवा जाति की स्त्री के विषय में भी समझ लेना चाहिए। तात्पर्य यह कि यदि पति अश्वजाति का है तो बडवा जाति की स्त्री को अपनी जंघाओं को चौड़ी कर लेना चाहिए। और यदि पुरुष शश हो तो जंघाओं को सिकोड़ लेना चाहिए। और यदि पुरुष वृष जाति का हो तो स्त्री को अपनी जंघाएँ समान रखनी चाहिए ॥ ४ ॥

संवेशनस्य प्रतिग्रहफलत्वात्प्रतिग्रहमाह—

तत्र जघनेन नायकं प्रतिगृह्णीयात् ॥ ५ ॥

तत्रेति संकोचनप्रसारणभेदात्समपृष्ठाच्च त्रिविधे संवेशने जघनेन स्वेन प्रतिगृह्णीयात्। श्लथलिङ्गं प्रतीच्छेदित्यर्थः ॥ ५ ॥

संभोग काल में स्त्री लेटकर अपनी दोनों जंघाओं से पुरुष को ग्रहण करे।

अपद्रव्याणि च सविशेषं नीचरते ॥ ६ ॥

अपद्रव्याणि चेति। वृषेण शशेन वा प्रयुज्यमानानि कृत्रिमसाधनानि चडवा हस्तिनी वा प्रतिगृह्णीयादित्येव। तत्रापि विशेषः—यदि समरतं साधनसदृशं कृत्रिमं तदा नावह्लासयन्ती विशालयन्तीव। ततोऽप्यधिकं चेद्विशालयन्तीव प्रतिगृह्णीयादित्यर्थः। नीचरते इति। उच्चरतेऽपद्रव्यप्रयोगासंभवात् ॥ ६ ॥

यदि पुरुष की गुप्तेन्द्रिय छोटी होती है और उससे स्त्री की भोगेच्छा शांत नहीं होती तो वह अपनी वासना की तृप्ति के लिए कृत्रिम लिङ्ग का प्रयोग करती है ॥ ६ ॥

यथा युक्त्या विवृतं संवृतं वा जघनं स्यात्तद्यथाक्रममाह—

उत्फुल्लकं विजृम्भितकमिन्द्राणिकं चेति त्रितयं मृग्याः प्रायेण ॥ ७ ॥

उत्फुल्लकमिति। समरते लौकिकी युक्तिरुक्ता न शास्त्रीया। लोके हि ग्राम्यनागरभेदादुत्तानायाः संवेशनद्वयं प्रतीतं पार्श्वे च संपुटकम्। तत्त्रितयमपि समपृष्ठं घटयतीति। यथा चोक्तम्—'ग्राम्यमासीनकान्तोरुविन्यस्तप्रमदोरुकम्। नागरं च नरोरुस्थं स्त्रीपादाम्भोरुहद्वयम् ॥' त्रितयमिति त्र्यवयवं संवेशनम्। प्रायेणेत्यैकान्तेन ॥ ७ ॥

१ उत्फुल्लक २ विजृम्भितक ३ इन्द्राणिक इन तीन प्रकारों से मृगी स्त्री को अपनी गुप्तेन्द्रिय चौड़ी करनी चाहिए ॥ ७ ॥

शिरो विनिपात्योर्ध्वं जघनमुत्फुल्लकम् ॥ ८ ॥

शिर इति। जघनशिरोभागमधस्ताच्छय्यायां विनिपात्योत्तानमूर्ध्वं जघनं कुर्यादिति भेदमेवं रूपं पश्चाद्भागेनेत्यर्थः। यद्यपि तत्स्वतो भवति तथाप्यतिवि-

स्तारणार्थमुपर्युपरि स्थितहस्तपृष्ठे त्रिकभागं विनिवेशयेत् । पादपार्श्वं च स्फिजौ बाह्यतः । एवं जघनस्योर्ध्वं विवृतत्वादुत्फुल्लमिवोत्फुल्लकम् ॥ ८ ॥

उत्फुल्लक

शिरोभाग को नीचा कर देने से और कटि प्रदेश को ऊँचा कर देने से मृगी स्त्री की गुप्तेन्द्रिय का द्वार फैल जाता है इसे उत्फुल्लक कहते हैं । इसके लिए स्त्री को कमर के नीचे तकिया रख लेनी चाहिए ॥ ८ ॥

तत्रापसारं दद्यात् ॥ ९ ॥

तत्रेत्युत्फुल्लके । अपसारं दद्यादिति । नायकेन यन्त्रेण संयोज्यमाना कटिभागेनापसरेत् । नायको वा शनैः शनैः संयोज्यापसरेत् । यावत्सार्धं संबाधता न भवति । सहसोपसृप्ताया हि पीडा । नायकस्य च लिङ्गचर्मोद्वर्तनम् । यदवपाटिकेति वैद्यैरुच्यते ॥ ९ ॥

जब स्त्री का नितम्ब भाग ऊपर उठ जाता है और शिरोभाग नीचे हो जाता है उस समय पुरुष और स्त्री जब सम्भोगरत हों तब पुरुष अथवा स्त्री को कुछ पीछे हटते रहना चाहिए ॥ ९ ॥

अनीचे सक्थिनी तिर्यगवसज्य प्रतीच्छेदिति विजृम्भितकम्॥

अनीचे इति । सक्थिनी ऊरू तिर्यगवसज्येति तिरश्चीने कृत्वा । तत्रापि शय्यायां पादयोरुत्तानविन्यासादपि तिरश्चीने भवतः । किं तु नीचैरित्याह— अनीचेति । प्रतीच्छेन्नायकः । जृम्भितमिव सममनुकार्यम् ॥ १० ॥

विजृम्भितक

स्त्री की जंघाओं को फैलाकर खूब ऊँचे उठा लेने से उसकी गुप्तेन्द्रिय चौड़ी हो जाती है । उस समय पुरुष अपनी गुप्तेन्द्रिय को तिरछी करके स्त्री की गुप्तेन्द्रिय में प्रवेश कराए । इसे विजृम्भितक कहते हैं ॥ १० ॥

पार्श्वयोः सममूरू विन्यस्य पार्श्वयोर्जानुनी निदध्यादित्यभ्यासयोगादिन्द्राणी ॥ ११ ॥

विन्यस्य पार्श्वयोरिति । जंघासंश्लिष्टावूरू पार्श्वयोर्जानुनी निदध्यात् । कक्षाबहिर्भागयोरित्यर्थः । एवं च बाहुमूलाभ्यामवष्टभ्य गृहीतत्वात्पूर्वस्माद्विवृततरं भवति । अभ्यासयोगादिति—सहसा निष्पादयितुमशक्यत्वादस्याः । इन्द्राणीति–शचीप्रोक्तत्वादन्वर्थसंज्ञया व्यपदेशः । तत्राप्यपसारं दद्यादिति ॥ ११ ॥

इन्द्राणी

इस संभोग विधि को सर्वप्रथम इन्द्राणी ने किया था इसलिए इसका नाम इन्द्राणी पड़ा । कुछ दिनों के अभ्यास के बाद यह विधि अभ्यस्त होती

है। पुरुष को चाहिए कि वह दोनों हाथों से स्त्री की फैली हुई जंघाओं को पकड़ ले और उसके पैरों को अपनी दोनों काखों से सटा ले ॥ ११ ॥

तयोच्चतररतस्यापि परिग्रहः ॥ १२ ॥

तयेतीन्द्राण्या। उच्चतररतस्यापीति। न केवलमिन्द्राण्यामुं वृषं प्रतिगृह्णीयात्, अश्वमपि। तस्या घृतरागत्वाद्विवृतरागहेतुत्वात्। तत उच्चतररतेऽति विशालयन्तीवेति सिद्धं भवति। तदुत्फुल्लकविजृम्भितकाभ्यां तु वृषमेव वडवापि ताभ्यामेवाश्वमित्यर्थोक्तम्। पूर्वमतिदिष्टत्वात् ॥ १२ ॥

यदि स्त्री और पुरुष की जातीय जोड़ी विषम हो अर्थात् स्त्री मृगी हो और पुरुष अश्व हो तब भी इन्द्राणी आसन से दोनों का सम्भोग सुखदायक होता है ॥ १२ ॥

संपुटेन प्रतिग्रहो नीचरते ॥ १३ ॥

संपुटेनेति–हस्तिनी संपुटेन वक्ष्यमाणलक्षणेन वृषं प्रतिगृह्णीयादित्यर्थः ॥१३॥

नीच रत में स्त्री को अपनी योनि सिकोड़ लेनी चाहिए ॥ १३ ॥

एतेन नीचतररतेऽपि हस्तिन्याः ॥ १४ ॥

नीचतररतेऽपीति—शशमपि गृह्णीयादित्यर्थः। तस्य संवृतहेतुत्वाभावेन च प्रतिगृहीते पीडितकादि प्रयोक्तव्यम्। तेनाप्यपह्रासयन्तीवेति सिद्धम्। वडवापि संपुटकेन शशं प्रतिगृह्णीयादित्यर्थोक्तम्। पूर्वमतिदिष्टत्वात् ॥ १४ ॥

इस प्रकार यदि हस्तिनी स्त्री का पति शश जाति का हो, तो वह स्त्री सम्पुटक आसन से संभोग कराए ॥ १४ ॥

संपुटकं पीडितकं वेष्टितकं वाडवकमिति ॥ १५ ॥

नीच और नीचतर रत में संपुटक, पीडितक, वेष्टितक और वाडवक चार प्रकार के उपवेशन होते हैं ॥ १५ ॥

संपुटकयुक्तिमाह—

ऋजुप्रसारितावुभावप्युभयोश्चरणाविति संपुटः ॥ १६ ॥

ऋज्विति प्रगुणं प्रसारितौ यथा यन्त्रयोगः स्यात्। उभयोरिति स्त्रीपुंसयोः। संपुट इति। संपुट इवोभयोरेकत्र संश्लेषात् ॥ १६ ॥

जब पति और पत्नी दोनों अपनी-अपनी टाँगों को सामान्यतया सीधे पसार कर परस्पर मिला लें तो उसे सम्पुटक कहते हैं ॥ १६ ॥

स द्विविधः—पार्श्वसंपुट उत्तानसंपुटश्च। तथा कर्मयोगात् ॥

तथा कर्मयोगादिति—तेन प्रकारेण रतानुष्ठानयोगादित्यर्थः। तत्र पार्श्वसंविष्टयोः पार्श्वसंपुटः। उत्तानसंपुटयोरुपर्युपरिसंविष्टस्यैकोऽपि विपर्ययेण द्वितीय

(इति द्वितीयः) उत्तानसंपुटकोऽन्यतरेण व्यपदिश्यते । कथमत्र यन्त्रयोग इति नाशङ्कनीयम् । सुकरत्वात् ।

पार्श्वसंपुटके तु नायकस्य कटिरुपधानिकायां तिष्ठेत् , नायिकायाश्च शयनीये । अन्यथा शयनीयस्थयोर्द्वयोः कटिभागयोर्विश्लेषाद्यन्त्रं कदाचिद्विघटेत ।

कात्यायनस्तु संपुटकमन्यथा प्राह—'आकुञ्चितस्तनौ नार्यः (?) संक्रान्तनृकटिः पुनः । व्यस्तस्थनरयोगात्तु संमुखः संपुटः स्मृतः ॥' अत्राह—संहतोरुत्वाज्जघनावह्रासो न संभवति । अतो न नीचरते हस्तिन्याः । समरते तु स्यात् । यथास्थितोरुकतयास्य लौकिकत्वात् ॥ १७ ॥

पार्श्वसम्पुट—उत्तानसम्पुट

सम्पुटक दो प्रकार का होता है—पार्श्वसम्पुट और उत्तानसम्पुट । जब पुरुष और स्त्री, एक दूसरे के सामने मुख करके करवट लेटे हुए सम्भोग करते हैं तो उसे पार्श्वसम्पुट कहते हैं । और जब स्त्री उत्तान लेटी हो और पुरुष उसके ऊपर लेटकर सम्भोग करता है तो उसे उत्तानसम्पुट कहते हैं । यदि दोनों लेटकर संभोग करना चाहें तो पुरुष को स्त्री की दाहिनी ओर लेटना चाहिए । सम्भोग की यह विधि सभी प्रकार के स्त्री-पुरुषों के लिए समान है ॥१७॥

पार्श्वेण तु शयानो दक्षिणेन नारीमधिशयीतेति सार्वत्रिकमेतत् ॥ १८ ॥

पार्श्वेण तु शयान इति-निद्रां गन्तुम् । दक्षिणेन नारीमिति एनपायोगे द्वितीया । नार्या दक्षिणे भागे आत्मनो वामेन पार्श्वेणासनपरिणता शयनीयमधिशयीतेत्यर्थः । सार्वत्रिकमिति । सर्वास्वेव मृग्यादिनायिकास्वयं निद्राकाले भवति । अविरोधात् । रतकाले तु तद्विपरीतो हस्तिन्याः येन संकोचहेतुत्वात् । वामहस्तेन तत्र गुह्यस्पर्शनादौ शिष्टानुज्ञातत्वात् ॥ १८ ॥

सोते समय पुरुष स्त्री को अपनी बायीं ओर सुलाये । यही आम तौर से रिवाज है ॥ १८ ॥

संपुटकप्रयुक्तयन्त्रेणैव दृढमूरू पीडयेदिति पीडितकम् ॥

संपुटकप्रयुक्तयन्त्रेणेति । उत्तानसंपुटे पार्श्वसंपुटे वा । तत्प्रयुक्तयन्त्रं तदेव विश्लिष्येत । नायिकाया दृढस्वरूपत्वात् । पीडयेदिति पीडनात्संपुटकमेव पीडितमिति संवृताकारं भवतीति ॥ १९ ॥

पीडितक

सम्पुटक आसन से सम्भोग करते हुए स्त्री-पुरुष एक दूसरे की जाँघों को जब खूब जोर से दबाते हैं तो उसे पीडितक कहते हैं ॥ १९ ॥

ऊरू व्यत्यस्येदिति वेष्टितकम् ॥ २० ॥

संपुटकयन्त्रेणेत्यर्थः। य उत्तानसंपुटके वामदक्षिणतो वा यद्दक्षिणवाम इति तदेव परस्परोरुवेष्टनाज्जघनं पूर्वस्मात्संवृततरं भवति। तत्र भावेन सिद्धत्वात् ॥२०॥

वेष्टितक

जब स्त्री अपनी गुप्तेन्द्रिय को अधिक सिकोड़ने के लिए एक जाँघ को दूसरी जाँघ पर रख लेती है तो उसे वेष्टितक कहते हैं ॥ २० ॥

वडवेव निष्ठुरमवगृह्णीयादिति वाडवकमाभ्यासिकम् ॥२१॥

निष्ठुरं निश्चलम्। अवगृह्णीयात् संबाधौष्ठपुटेन साधनमित्यर्थः। वाडवकं वडवाया इव। एतेन नीचतररतस्यापि परिग्रहः। इदं कर्माभ्यासिकम्। सहसा प्रयोगे प्रयोक्तुमशक्यत्वात् ॥ २१ ॥

वाडवक

जैसे घोड़ी अपनी गुप्तेन्द्रिय से घोड़े की गुप्तेन्द्रिय को खूब कसकर जकड़ लेती है उसी तरह जब स्त्री अपनी गुप्तेन्द्रिय से पुरुष की गुप्तेन्द्रिय को कसकर फँसा लेती है और आलिंगन चुम्बन आदि बन्द कर देती है तो इस आसन को वाडवक कहते हैं। इसके लिए विशेष अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। इस आसन से अधिकतर वेश्याएँ परिचित हुआ करती हैं ॥ २१ ॥

तदान्ध्रीषु प्रायेण। इति संवेशनप्रकारा बाभ्रवीयाः ॥२२॥

आन्ध्रीषु प्रायेण दृश्यते। तासां यत्नपरत्वात्। तस्याभ्यासोपायश्च संप्रदायनिरूप्यः। ततोऽभ्यासात्तन्निरपेक्षग्रहणमिति। बाभ्रवीया बाभ्रव्येण प्रोक्ताः सप्तैव संवेशनप्रकाराः ॥ २२ ॥

इस आसन को प्रायः आन्ध्र प्रदेश की स्त्रियाँ अधिक करती हैं। बाभ्रवीय आचार्यों द्वारा बताए गये ये संभोग आसन समाप्त हुए ॥ २२ ॥

अनेन विकल्पवर्गस्य न्यूनतामाह—

सौवर्णनाभास्तु ॥ २३ ॥

सौवर्णनाभास्तु हस्तिन्या इति वर्तते। सुवर्णनाभेन प्रोक्ताः। अनेन द्वैविध्यमाह ॥ २३ ॥

अब आचार्य सुवर्णनाभ का मत उद्धृत करते हैं ॥ २३ ॥

उभावप्यूरू ऊर्ध्वाविति तद्भुग्नकम् ॥ २४ ॥

उत्ताना नायिका द्वावप्यूरू संश्लिष्टावूर्ध्वविवावस्थापयेत्। नायकोऽपि जानूत्तरेण द्वाभ्यामाश्लिष्योपसर्पेत्। तद्भुग्नकमिति। ऊर्वोरूर्ध्वमनिःसृतत्वात् ॥ २४ ॥

भुग्नक

सुवर्णनाभ का कहना है कि भुग्नक नाम का एक और आसन है जिससे स्त्री अपनी दोनों जंघाओं को ऊपर तान देती है ॥ २४ ॥

चरणावूर्ध्वं नायकोऽस्या धारयेदिति जृम्भितकम् ॥ २५ ॥

चरणावूर्ध्वमिति । नायिकाजानुसंधी स्कन्धयोर्विन्यस्य चरणावूर्ध्वं नायकेन धारितौ भवतः । इति जृम्भितकम् ॥ २५ ॥

जृम्भितक

पति स्त्री की दोनों टाँगें जब अपने कन्धों पर रख लेता है तो उसे जृम्भितक कहते हैं ॥ २५ ॥

तत्कुञ्चितावुत्पीडितकम् ॥ २६ ॥

तत्कुञ्चितौ धारयेदित्येव । नायकोरसि चरणौ विदध्यात् । नायकोऽपि बाहुपाशेन नायिकाया ग्रीवामावेष्टचोपसर्पेत् । एवं चरणावूर्ध्वं संकुचितौ नाधस्तादुरसा धारितौ स्याताम् । द्वयोश्चोरसि पीडनात्पीडितकम् ॥ २६ ॥

पीडितक

जब उत्तान लेटी हुई स्त्री अपनी पसारी हुई टाँगों को मोड़कर अपने ऊपर लेटे हुए पति की छाती के नीचे मोड़कर अड़ा देती है और पुरुष छाती से उन्हें दबाकर सम्भोग करता है तो उसे उत्पीडितक कहते हैं ॥ २६ ॥

तदेकस्मिन्प्रसारितेऽर्धपीडितकम् ॥ २७ ॥

तदिति—पीडितकम् । एकस्मिश्चरणे प्रसारिते व्यत्यासेनेति द्वितीयमप्यर्धपीडितकम् , अर्धपीडनात् ॥ २७ ॥

अर्धपीडितक

टाँगों को पसार कर लेटी हुई स्त्री जब एक टाँग को मोड़कर पुरुष की छाती से अड़ा कर सम्भोग कराती है और फिर धीरे से उसे पसार कर दूसरी टाँग को मोड़कर बारी-बारी से संभोग कराती है तो उसे अर्धपीडित कहते हैं ॥

नायकस्यांस एको द्वितीयकः प्रसारित इति पुनः पुनर्व्यत्यासेन वेणुदारितकम् ॥ २८ ॥

नायकस्यांसे स्कन्धे वामश्चरणः स्थितः । क्षणादनु तदधस्तात्प्रसारित इत्येकम् । पुनर्व्यत्यासेन दक्षिणस्कन्धे वामः प्रसारित इति द्वितीयम् । वेणुदारितकमिति वंशस्येव दारणं पाटनम् ॥ २८ ॥

वेणुदारितक

जब लेटी हुई स्त्री अपने ऊपर लेटे हुए पुरुष के कन्धे पर एक टाँग रखे

और फिर पहली टाँगको पसार कर दूसरी टाँग दूसरे कन्धे पर रखकर सम्भोग-रत होती है तो उसे वेणुदारितक कहते हैं ॥ २८ ॥

एकः शिरस उपरि गच्छेद्द्वितीयः प्रसारित इति शूलाचितकमाभ्यासिकम् ॥ २९ ॥

एक इति वामो दक्षिणो वा चरणः। शिरस इति नायिकायाः। द्वितीय इति दक्षिणो वामो वाधः एवं द्विविधं शूलाचितकम्। शूल इवारोपणाच्छूल-भिन्नवच्छरीरस्य लक्ष्यमाणत्वात्। आभ्यासिकम्। अन्यथा कथमुपरितनजङ्घा-काण्डः स्थगितकः स्यात् ॥ २९ ॥

शूलाचितक

जब स्त्री एक टाँग को पुरुष के सिर पर रखकर दूसरी को पसारकर संभोग कराती है और फिर दूसरी टाँग को सिरपर रखकर पहली को पसार कर क्रमशः सम्भोग कराती है तो उसे शूलाचितक कहते हैं। यह आसन भी अभ्यास से सिद्ध होता है ॥ २९ ॥

संकुचितौ स्वस्तिदेशे निदध्यादिति कार्कटकम् ॥ ३० ॥

संकुचितौ नायिकाचरणौ जानुसंकोचात्स्ववस्तिदेशे स्वनाभिमूले निदध्यान्नायकः। कार्कटकमिति कर्कटस्येव कर्म। यदग्रचरणौ तथा तिष्ठतः ॥ ३० ॥

कार्कटक

जैसे केकड़ा अपने पाँवों को सिकोड़ता है उसी प्रकार लेटी हुई स्त्री अपनी टाँगों को सिकोड़ कर पुरुष की नाभि में सटाकर जब सम्भोग कराती है तो उस आसन को कार्कटक कहते हैं ॥ ३० ॥

ऊर्ध्वावूरू व्यत्यस्येदिति पीडितकम् ॥ ३१ ॥

ऊर्ध्वावूरू व्यत्यस्येदिति उत्तानं वामं दक्षिणतो नयेत्, दक्षिणं वामतः। पीडितकं जघनपीडनात् ॥ ३१ ॥

पीडितक

लेटी हुई स्त्री जब अपनी एक जाँघ से दूसरी जाँघ को खूब जोर से दबाकर सम्भोग कराती है तो उस आसन को पीडितक कहते हैं ॥ ३१ ॥

जङ्घाव्यत्यासेन पद्मासनवत् ॥ ३२ ॥

जङ्घाव्यत्यासेनेति। उत्ताना नायिका दक्षिणपादं वामे स्वोरुमूले निदध्यात्। वामं च दक्षिणे। पद्मासनमिति प्रतीतम् ॥ ३२ ॥

पद्मासन

चारपाई पर लेटी हुई स्त्री जब अपने बायें पैर को दाहिने पैर के जोड़ में

तथा दाहिने पैर को बायें पैर के जोड़ में रखकर सम्भोग कराती है तो उसे पद्मासन कहते हैं ॥ ३२ ॥

पृष्ठं परिष्वजमानायाः पराङ्मुखेण परावृत्तकमाभ्यासिकम् ॥ ३३ ॥

पृष्ठमिति । यन्त्रमविश्लिष्य पूर्वकायेण परावृत्तस्य नायकस्य पृष्ठमेव गूहमानायाः परावृत्तकम् । पराङ्मुखेण नायकेन संप्रयोगात् । उपलक्षणं चैतत् । पृष्ठमुपगूहमानस्य पराङ्मुख्या परावृत्तकम् । आभ्यासिकम् । सहसा कर्तुमशक्यत्वात् । उभयकायं परिवृत्य संविष्टायाः पृष्ठमुपगूहमानस्य पराङ्मुख्या परावृत्तकमाभ्यासिकमर्थोक्तम् ॥ ३३ ॥

परावृत्तक

गूढ़ आलिंगन में आबद्ध स्त्री-पुरुष आमने-सामने बैठ कर जब सम्भोग करें तो सम्भोग काल में ही थोड़ी देर बाद सम्बद्ध अवस्था में ही स्त्री-पुरुष के पीछे घूम जाय और सम्भोगरत रहे तो उसे परावृत्तक आसन कहते हैं। यह बहुत कठिन और चिर अभ्यास साध्य आसन है ॥ ३३ ॥

एते संवेशनप्रकारा न चित्राः । लोके हि स्थले पृष्ठतः पार्श्वतो वा शयनं प्रतीतम् । ततोऽन्यच्चित्रम् । तदेतैरुपलक्षयेदिति दर्शयन्नाह—

जले च संविष्टोपविष्टस्थितात्मकांश्चित्रान्योगानुपलक्षयेत् । तथा सुकरत्वादिति सुवर्णनाभः ॥ ३४ ॥

जले चेति । चकारात्स्थले च । तत्राप्सु क्रीडायां कूले शिरो निधाय संविष्टयोः संवेशनात्मकोऽपि यः स्थलाभावाच्चित्रयोगस्तं संपुटेन चोपलक्षयेत् । उपविष्टस्य नायकस्योपवेशनात्मकस्तं सर्वैरेव प्रकारैः । ऊर्ध्वस्थितायाः स्थितात्मकः । स्थलशयनाभावात् । चित्रो योगस्तं शूलाचितके । तथा सुकरत्वादिति तैः प्रकारैः संयोगस्याप्सु सौकर्यात् ॥ ३४ ॥

जलसंयोग

सुवर्णनाभ आचार्य का कहना है कि जल में भी खड़े होकर, बैठ कर, लेट कर कई प्रकार के आसनों से संभोग किया जा सकता है। स्थल की अपेक्षा जल-संभोग अधिक आसान होता है ॥ ३४ ॥

वार्तं तु तत् । शिष्टैरपस्मृतत्वादिति वात्स्यायनः ॥ ३५ ॥

वार्तं त्विति । तथा सुकरत्वादिति सत्यम् । वार्तं तु तत् । असारमित्यर्थः । शिष्टैरपस्मृतत्वादिति । स्मृतिकारैर्निषिद्धत्वादित्यर्थः । तथा च गौतमीयं वचनम्—'अप्सु मिथुनसंयोगे नरकः' इति । प्रायश्चित्तविधाने मार्कण्डेयवचनम्—

रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत्' इति। तस्मात्स्थलप्रयोज्यमेव चरेत् ॥ संवेशनप्रकारास्त्रयोदशं प्रकरणम् ॥ ३५ ॥

जल-संभोग का वात्स्यायन निषेध करता है—

सुवर्णनाभ के मत का खण्डन करते हुए वात्स्यायन कहते हैं—यह तो बिल्कुल असार[1] बात है। शिष्टों, आचार्यों द्वारा जल-संभोग करना निषिद्ध माना गया है ॥ ३५ ॥

प्रकरणसंबन्धमाह—

अथ चित्ररतानि ॥ ३६ ॥

अथेति। संवेशनप्रस्तावे तद्विशेषत्वात्स्थलप्रयोज्यानीत्युच्यन्ते ॥ ३६ ॥

चित्ररत प्रकरण

अब सम्भोग की अद्भुत विधियाँ बतलाते हैं ॥ ३६ ॥

तत्रोर्ध्वमधिकृत्याह—

ऊर्ध्वस्थितयोर्यूनोः परस्परापाश्रययोः कुड्यस्तम्भापाश्रितयोर्वा स्थितरतम् ॥ ३७ ॥

परस्परापाश्रययोरिति—आश्रयान्तराभावाद्बाहुपाशेनान्योन्योपलग्नयोः। कुड्यस्तम्भापाश्रितयोरिति—नायिकायां कुड्ये स्तम्भे वापाश्रितायां द्वितीयोऽपि तदाश्रयादाश्रित इत्युक्तम्। स्थितरतं तयोरूर्ध्वस्थित्या करणत्रयमवोचन्त। यथोक्तम्—'उत्क्षिप्तप्रमदापादमेकेन नरपाणिना। प्रसारणविशेषेण व्यायतं संमुखं स्मृतम् ॥ नारीपादतलन्यासान्नरहस्ततले तु यत्। कुञ्चितप्रमदाजानुद्वयं द्वितलसंज्ञितम् ॥ नरकूर्परविन्यस्तस्त्रीनिकुञ्चितजानुकम्। जानुकूर्परमुद्दिष्टमिति शुद्धो विधिः स्मृतः' ॥ ३७ ॥

जब स्त्री पुरुष एक दूसरे के सहारे खड़े होकर अथवा दीवार या खम्भे के सहारे खड़े होकर सम्भोग करते हैं तो उसे स्थिररत कहते हैं ॥ ३७ ॥

कुड्यापाश्रितस्य कण्ठावसक्तबाहुपाशायास्तद्धस्तपञ्जरोपविष्टाया ऊरुपाशेन जघनमभिवेष्टयन्त्या कुड्ये चरणक्रमेण वलन्त्या अवलम्बितकं रतम् ॥ ३८ ॥

कुड्यापाश्रितस्येत्युपलक्षणार्थत्वात्स्तम्भापाश्रितस्य वा नायकस्य कण्ठेऽवसक्तोऽवलग्नो बाहुपाशो यस्या इति विग्रहः। तद्धस्तपञ्जर इति—नायकस्य

---

१. मूल सूत्र के 'वार्तं' शब्द का यहाँ अर्थ असार है। यथा अमरकोश में लिखा है—'वार्तम् असारमारोग्यम्'।

हस्ताभ्यां वेणीबन्धेन घटितपञ्जरे समुपविष्टाया ऊरुपाशेन जघनं नायकस्य वेष्टयन्त्याः। चरणक्रमेण वलन्त्या इति–कुड्ये स्तम्भे वा पुनःपुनश्चरणविक्षेपेण कटिं प्रेङ्खयन्त्याः। अवलम्बितकम्। नायककण्ठान्नायिकाया अवलम्बनात्। एतदुभयं वैहासिकत्वाच्चित्रम् ॥ ३८ ॥

अवलम्बितक

पुरुष दीवार की आड़ लेकर खड़ा हो और अपने दोनों हाथों की अंगुलियों को गोफा जोड़ कर स्त्री को बैठा ले और स्त्री अपने दोनों हाथों से पुरुष की गरदन पकड़ कर दीवार पर दोनों टाँगों को टिका दे और झूला झूलती हुई सी जब संभोग कराती है तो उस आसन को अवलम्बितक कहते हैं ॥ ३८ ॥

भूमौ वा चतुष्पदवदास्थिताया वृषलीलयावस्कन्दनं धेनुकम् ॥

चतुष्पदवदिति सामान्यनिर्देशो वक्ष्यमाणापेक्षः। तत्र धेनुकावच्चतुर्भिर्गात्रैरधोमुखमवस्थितायाः। वृषलीलयेति–वृषचेष्टया। नायकस्यावस्कन्दनम्—कटिभागेऽभिपतनम्। धेनुकमिति–धेनुकाया इदम्! एतच्चामनुष्यधर्माचरणाच्चित्रम् ॥ ३९ ॥

धेनुक

अथवा स्त्री जमीन पर दोनों हाथों और पैरों को टिका कर गाय-गोरू की तरह खड़ी हो जाय और पीछे से पुरुष बैल की तरह उससे सम्भोग करे तो उस आसन को धेनुक कहते हैं ॥ ३९ ॥

तत्र पृष्ठमुरःकर्माणि लभते ॥ ४० ॥

तत्रेति—धेनुके। पृष्ठमुरःकर्माणि लभत इति—यानि नायिकोरसि प्रहणनच्छेद्योपगूहनादीनि तानि पृष्ठे प्रयुञ्जीतेत्यर्थः ॥ ४० ॥

धेनुक आसन में छातियों को दबाने के बजाय पीठ को दबाया जाता है ॥ ४० ॥

एतेनैव योगेन शौनमैणेयं छागलं गर्दभाक्रान्तं मार्जारललितकं व्याघ्रावस्कन्दनं गजोपमर्दितं वराहघृष्टकं तुरगाधिरूढकमिति यत्र यत्र विशेषो योगोऽपूर्वस्तत्तदुपलक्षयेत् ॥ ४१ ॥

एतेनेति धेनुकयोगेन शौनादिकमुपलक्षयेदित्यर्थः। श्वादीनां चतुष्पदत्वात्तद्व्रतमनेन व्याख्यातमित्यवगच्छेदित्यर्थः। विशेषप्रतिपत्तौ तु कारणमाह—यत्र यत्रेति। यस्मिन्यस्मिन्येन येन विशेषेण स्वरगतेन कायगतेन च योगोऽपूर्वो दृश्यते तत्तदुपलक्षयेत्।

तत्र शुनीवदवस्थिता श्वलीलया नायकस्यावस्कन्दनम्।

एणीवदेणलीलया ऐणेयम्। 'एण्या ढञ्' व्यापारस्यापि विकारत्वात्।

एवं छगलीवच्छगललीलया छागलम्।

गर्दभीवद्गर्दभलीलया क्रमणं गर्दभाक्रान्तकम्।

मार्जारीवन्मार्जारलीलया च ललितकं मार्जारललितकम्।

व्याघ्रीवद्व्याघ्रलीलयावस्कन्दितं व्याघ्रावस्कन्दनम्।

गजवद्गजलीलयोपमर्दनं गजोपमर्दितम्।

तुरगवत्तुरगलीलयाधिरोहणं तुरगाधिरूढकम्।

अत्र श्वादीनां स्वरकायगतं चेष्टितं प्रत्यक्षतोऽवगन्तव्यम्। अप्रत्यक्षीकृतस्य प्रयोक्तुमशक्यत्वात्॥ ४१॥

गाय-बैल के संभोग की भाँति हिरन, बकरे आदि पशुओं की मैथुन क्रिया का अनुकरण करना चाहिए। मैथुन के समय जो पशु जिस प्रकार चेष्टाएँ करते हैं उसी प्रकार की चेष्टाएँ स्त्री-पुरुष को भी करनी चाहिए। गधा, बिलार, बाघ के समान स्त्री के ऊपर चढ़ना, हाथी के समान रौंदना, सुअर की तरह ठोकर मारना तथा घोड़े के समान स्त्री के ऊपर चढ़ना आदि पशु की विभिन्न मैथुन क्रिआओं के अनुकरण से सम्भोग की नई-नई क्रियाओं का ज्ञान होता है॥ ४१॥

मिश्रीकृतसद्भावाभ्यां द्वाभ्यां सह संघाटकं रतम्॥ ४२॥

मिश्रीकृतसद्भावाभ्यामिति। दंपत्योर्हि रतम्। द्वाभ्यां तु परस्परोपजनितविश्वासाभ्यां नायिकाभ्यां सहैकनायकस्य रतं चित्रसंघाटकाख्यम्। एकशयने स्त्रीयुग्मस्य युगपत्संप्रयुज्यमानत्वात्। यदैव हि पुरुषोपसृप्ते यदेकस्या रागापनयनं तदैवापरस्याश्चुम्बनादिना रागजननम्। ततोऽस्या रागापनयनं प्रशान्तरागायाश्च रागजननमिति॥ ४२॥

संघाटक

जब परस्पर आत्मीयता और सद्भाव रखने वाली दो स्त्रियों के साथ पुरुष संभोग करता है तो इस प्रकार के आसन को संघाटक कहते हैं॥ ४२॥

बह्वीभिश्च सह गोयूथिकम्॥ ४३॥

बह्वीभिश्च मिश्रीकृतसद्भावाभिः सहैकस्य चित्ररतं गोयूथिकम्। वृषस्येव गोयूथे स्त्रीसमूहे वर्तनात्॥ ४३॥

गोयूथिक

यदि बहुत-सी स्त्रियों के साथ इस प्रकार का मैथुन किया जाता है तो उसे गोयूथिक कहते हैं॥ ४३॥

वारिक्रीडितकं छागलमैणेयमिति तत्कर्मानुकृतियोगात्॥

वारिक्रीड़ितकमिति—वार्यां गजस्येव करिणीभिः स्त्रीभिः सह रमणात्। तथा छगलवदेणवच्च स्त्रीभिः सहच्छागलमैणेयमिति। तत्कर्मानुकृतियोगादिति—वृषादीनां गवादिषु यत्स्वरगतं कायगतं च कर्म तदनुकृतियोगात्तथा व्यपदिश्यत इत्यर्थः।

यथैकस्य द्वाभ्यां बह्वीभिश्च तथा द्वाभ्यां नायकाभ्यां बहुभिश्च एकस्या रतं संभवति। तत्र नायकसंघाटकेनैकस्या वक्ष्यमाणयोगेन काम्यमानत्वात्संघाटकं रतम्। द्वयोर्वा संविष्टयोः पुरुषायितेन काम्यमानत्वात्। यथोक्तम्—'ऊरूव्यत्यासंसंविष्टपरिवर्तितदेहयोः। वृषयोरुन्नतं चिह्नं हस्तिन्यां पुरुषायिते॥' बहुभिश्च गोयूथिकम्। वृषगोयूथस्येवैकस्यां गवि नायकयूथस्य वर्तनात्। तथा वारिक्रीडितकमित्यादि तत्कर्मानुकृतियोगात्तदेव गोयूथिकादिवत्॥ ४४.॥

हाथी-हथिनी की जलक्रीड़ा के समान तथा बकरा-बकरी, हिरन-हिरनी की मैथुन-क्रीड़ाओं की भाँति गोयूथिक आसन कई तरह से प्रयुक्त होता है॥ ४४॥

देशप्रवृत्तिं दर्शयन्नाह—

ग्रामनारीविषये स्त्रीराज्ये च बाह्लीके बहवो युवानोऽन्तःपुरसधर्माण एकैकस्याः परिग्रहभूताः॥ ४५॥

ग्रामनारीविषय इति—स्त्रीराज्यसमीप एव परतो ग्रामनारीविषयः। युवानो व्यवायक्षमाः। अन्तःपुरसधर्माणो—रक्षणयोगादस्वतन्त्राः। एकस्या योषितः परिग्रहं गताः। खरवेगत्वान्नैकेन तुष्टिरिति॥ ४५॥

ग्रामनारी नागा पहाड़ी देश में तथा स्त्री राज्य में और वाह्लीक (बलख) में अन्तःपुरवासिनी स्त्रियाँ अपने जनानखाने में अनेक युवकों को छिपा कर रखती हैं॥ ४५॥

ते तां कथं रञ्जयेयुरित्याह—

तेषामेकैकशो युगपच्च यथासात्म्यं यथायोगं च रञ्जयेयुः॥

एकैकशो युगपच्चेति—एकैकेन कर्मणा यौगपद्येन चेत्यर्थः। यथासात्म्यं यथायोगं चेति—येन यस्या उपचारेण सात्म्यं यत्र यस्य च युज्यते प्रयोगस्तेन तामनुरञ्जयेयुः। तस्यास्तृप्तिं जनयेयुरित्यर्थः॥ ४६॥

उनके द्वारा छिपाये गये वे पुरुष अकेले अथवा कई मिल कर उन स्त्रियों की रतिकामना पूरी करते हैं॥ ४६॥

तदेवैकैकं कर्म यौगपद्यं च दर्शयन्नाह—

एको धारयेदेनामन्यो निषेवेत। अन्यो जघनं मुखमन्यो मध्यमन्य इति वारं वारेण व्यतिकरेण चानुतिष्ठेयुः॥ ४७॥

एको धारयेदिति—यस्याङ्कमपाश्रित्य संविष्टा। मुखमन्यो निषेवेत चुम्बन-दशननखक्षतैः। जघनमन्य उपसृप्तकैः। मध्यं मुखजघनयोश्चुम्बननखच्छेद्यप्रहणनैरन्य इत्येकैकेन कर्मणा। युगपच्चेति। तत्रापि पुनर्विधानान्तरमाह—वारं वारेणानुतिष्ठेयुरिति—वारं नियोगं, वारेण—परिपाट्या। तत्र यो जघनं निषेवितवान् स निवृत्तरागत्वाद्वारेण वारमनुतिष्ठेत्। वारेण वारिको मुखवारं तद्वारिको मध्यवारं तद्वारिकश्च जघनवारमिति। व्यतिकरेण चेति—द्वितीयकर्मसंयोजनेन च, तद्यथा—जघनसेवको जघनं मध्यं च निषेवेत। मध्यसेवको मध्यं मुखं च। तत्सेवकश्च मुखं मध्यं च। वारको धारयेन्मुखं च निषेवेतेति। अनेन विधिना तावदनुतिष्ठेयुर्यावत्सर्व एव जघनवारमनुप्राप्ताः॥ ४७॥

उस अन्तःपुरवासिनी रमणी को एक तरुण गोदी में बैठाता है, दूसरा नाखूनों और दाँतों से उस पर प्रहार करता है। तीसरा उससे सम्भोग करता है, चौथा मुँह चूमता है, पाँचवाँ स्तनों में दाँत गड़ाता है। इस प्रकार बारी-बारी से अनेक युवक राग बढ़ाते तथा रतिक्रिया तब तक करते रहते हैं जब तक वह स्त्री पूर्ण तृप्त नहीं हो जाती॥ ४७॥

अन्यत्रापि देशे संभवत्येतदतिदेशेन दर्शयति—

एतया गोष्ठीपरिग्रहा वेश्या राजयोषापरिग्राहश्च व्याख्यातः॥

एतयेति—यथोक्तया स्त्रिया। गोष्ठीपरिग्रहा इति—विटैः संभूय परिगृह्यते या वेश्या, गोष्ठी येषां परिग्रह इति। योषिच्छब्दसमानार्थो योषाशब्दः। संहत्यान्तःपुरिकाभिर्योषिद्भिर्ये परिगृह्यन्ते परपुरुषाः। वक्ष्यति च—'संहत्या नव दशेत्येकैकं युवानं प्रच्छादयन्ति प्राच्यानाम्' इति। वेश्यां विटा युवानं च स्त्रियः पूर्ववदनुरञ्जयेयुरित्यर्थः। बह्वीभिश्च गोयूथिकमित्येतत्स्वदारेषु नायकव्यापारमधिकृत्योक्तम्॥ ४८॥

इस प्रकार के सामूहिक संभोग का आनन्द अधिकतर वेश्याएँ ही लिया करती हैं। कभी-कभी राजदाराएँ भी इस प्रकार का संभोग सुख प्राप्त करने के लिए किसी युवक को रख लिया करती हैं॥ ४८॥

अधोरतं पायावपि दाक्षिणात्यानाम्। इति चित्ररतानि॥

अधोरतमिति। अपानस्य जघनाधः स्थितत्वात्। तच्च स्त्रीपुंसविषयभेदेन द्विविधम्। तदपि विमार्गमेहनाच्चित्रम्। औपरिष्टकं तु तृतीयाप्रकृतिविषयत्वान्न चित्रम्। स्त्रीपुंसयोश्च चित्रमेव। विमार्गमेहनात्। दाक्षिणात्यानामिति देशप्रवृत्तिं दर्शयति॥ ४९॥

सबसे अधम मैथुन अधोरत मैथुन (गुदामैथुन) होता है। दाक्षिणात्यों में अधिक प्रचलित है। सम्भोग की अद्भुत विधियाँ समाप्त हुई॥ ४९॥

पुरुषोपसृप्तकानि पुरुषायिते वक्ष्यामः ॥ ५० ॥

पुरुषोपसृप्तानि तु संवेशनानन्तरत्वादवसरप्राप्तान्यपि पुरुषायिते वक्ष्यामः ॥

पुरुष स्त्री के समीप कैसे पहुँचे, उसे कैसे अपनी ओर आकृष्ट करे इस विषय को पुरुषायित प्रकरण में आगे लिखा जायगा ॥ ५० ॥

तत्राप्युपयोगित्वाच्चित्रस्य वर्धनमाह—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

पशूनां मृगजातीनां पतङ्गानां च विभ्रमैः ।
तैस्तैरुपायैश्चित्तज्ञो रतियोगान्विवर्धयेत् ॥ ५१ ॥

पशूनामिति । तत्राधोदशनाः पशवः । ऊर्ध्वाधोदशना मृगाः । पतङ्गाः पक्षिणः । तैस्तैरिति—ये ये प्रत्यक्षत उपलब्धाः । विभ्रमैरिति विचेष्टितैः स्वरकायगतैः । चित्तज्ञ इति—स्त्र्यभिप्रायं बुद्ध्वेत्यर्थः । रतियोगानिति—रत्यर्थान्योगान् । विवर्धयेत्—अपरानपरान्प्रयोजयेदित्यर्थः ॥ ५१ ॥

इस प्रसंग में दो श्लोक प्रसिद्ध हैं—

पुरुष को चाहिए कि वह जानवरों, पक्षियों, पशुओं की चित्र विचित्र मैथुन क्रियाओं को सीख कर उनका प्रयोग स्त्री में करके उसके आकर्षण और प्रीति को बढ़ाए ॥ ५१ ॥

तद्विवर्धने किं फलमित्याह—

तत्सात्म्याद्देशसात्म्याच्च तैस्तैर्भावैः प्रयोजितैः ।
स्त्रीणां स्नेहश्च रागश्च बहुमानश्च जायते ॥ ५२ ॥

तत्सात्म्यादिति—नायिकायाः प्रकृतिसात्म्यात् । देशसात्म्यं प्रागुक्तम् । तैस्तैरिति—पश्वादिविभ्रमैः । भावैरिति—भावहेतुत्वात्प्रयोजितैः, नायिकया प्रयोजिकया तदभिप्रायेण हि नायकेन प्रयुज्यमानत्वात् । भावैर्वा प्रयोजकैरिति योज्यम् । स्नेहः सक्तिः । रागस्तृप्तिः । बहुमानो गौरवमिति ॥ चित्ररतानि चतुर्दशं प्रकरणम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे संवेशनप्रकाराश्चित्ररतानि च षष्ठोऽध्यायः ।
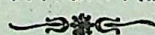
जो पुरुष स्त्री की इच्छाओं के अनुकूल, देशा चार के अनुकूल तथा समयोचित भावनाओं के अनुकूल मैथुन क्रिया में प्रयुक्त होता है, स्त्रियाँ उस पर अतिशय राग और स्नेह रखती हैं तथा वह पुरुष स्त्रियों द्वारा अत्यन्त सम्मानित होता है ॥ ५२ ॥

इस अध्याय में वात्स्यायन ने संभोग-क्रिया—संवेशन-प्रकार और चित्ररत की व्याख्या की है। विषय की दृष्टि से अध्याय एक होते हुए भी क्रिया की दृष्टि से संवेशन-प्रकार और चित्ररत—इन दो भागों में विभक्त है। संवेशन प्रकार विभाग में उन संभोग क्रियाओं का उल्लेख है जो सामान्यतया शिष्ट समाज के लिए विहित कही जा सकती हैं। किन्तु चित्ररत विभाग में जिन निकृष्टतम क्रियाओं का विवरण दिया गया है उन्हें निकृष्ट से भी निकृष्ट स्वभाव और चरित्र के ही व्यक्ति प्रयोग और अनुभव में ला सकते हैं।

अप्राकृतिक, अमानुषिक क्रियाओं का परिचय और उल्लेख करने का तात्पर्य कामसूत्रकार का क्या रहा—यह एक जिज्ञासा हर पाठक और अनुशीलनकर्त्ता के दिमाग में पैदा हो सकती है। वात्स्यायन आचार्य था और ऐसा इन्द्रियजित आचार्य कि कामसूत्र जैसे ग्रन्थ को लिखते समय उसने पूर्ण ब्रह्मचर्य और योग का पालन किया था। शास्त्र एकदेशीय नहीं हुआ करता है, वह समष्टि का बोधक, प्रतिपादक और समर्थक होता है। उसमें अपने विषय का अखण्ड, परिपूर्ण चित्रण और वितरण रहता है। वह अपने विषय के वाङ्मय में उसी प्रकार का सार्वभौम शासन का प्रतीक होता है जैसे राजनीति में किसी देश का संविधान। वह विषय के हर पहलू की यथार्थ व्याख्या करता है, उससे यह कोई प्रयोजन नहीं कि यह अच्छा है और यह बुरा। अच्छाई और बुराई का विश्लेषण, निराकरण करना तो उन लोगों की इच्छा और बुद्धि पर निर्भर है जो शास्त्र को पढ़कर, सुनकर उसके बताये हुए सिद्धान्त या पथ पर चलना चाहते हैं या प्रयोग करना चाहते हैं। हाँ शास्त्रकार आगाह अवश्य कर दिया करता है कि यह सिद्धान्त, यह पथ उत्कृष्ट है, शिष्टजन-सम्मत है और यह सिद्धान्त, यह पथ निकृष्टतम, प्रयोग करने योग्य नहीं है, केवल परिचय चारुता बढ़ाने के लिए अध्ययनमात्र के लिए उपयोगी है। वात्स्यायन अपने कामसूत्र शास्त्र को लिखते हुए शास्त्र और शास्त्रकार के महत्त्व, स्वरूप और सिद्धान्तों का पालन करने में सर्वत्र जाग्रत रहा है। उसने इस अध्याय में भी स्पष्ट कर दिया है कि चित्ररत मैथुन निकृष्टतम होता है। शास्त्रकार जब स्वयं निकृष्ट समझता है तो भी वह उसे अपने शास्त्र में स्थान इसलिए देता है कि हर प्रवृत्ति और स्वभाव के व्यक्ति हुआ करते हैं। कुछ मनुष्य पशु-प्रकृति के भी होते हैं, उन्हें चित्ररत में ही आनन्द की अनुभूति होती है।

श्रीमद्भागवत का कथन है कि इन प्रवृत्तियों से निवृत्त होना आवश्यक

है। विवाह, यज्ञ आदि अवसरों पर हमें इनमें प्रवृत्त होना पड़ता है। किन्तु हमारा इष्ट इनसे निवृत्त होने का ही होना चाहिए। मैथुन, मद्यपान और मांसभक्षण में प्रेरणा की आवश्यकता नहीं पड़ती है। क्योंकि इनकी ओर व्यक्तियों का झुकाव स्वाभाविक रूप से हो जाता है। सहज झुकाव होने के कारण इनका नाश नहीं हो सकता। इसलिए इनका नियमन किया गया है और विशेष समय पर खास अवसर पर इनमें प्रवृत्त होने का नियम बनाया गया है किन्तु इनसे निवृत्त होना इष्ट है।

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्ति जन्तोर्न हि तत्र चोदना।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥[1]

ऋग्वेद[2] में भी इसी आशय का प्रतिपादन बहुत खुलकर किया गया है। इस सूक्त में २३ मंत्र हैं। प्रत्येक मंत्र का अन्तरा 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः' है। इन्द्र को लानत मलामत सुनाती हुई इन्द्राणी इन्द्र से जो कुछ कहती है उसका तात्पर्य यही है कि जो पुरुष संभोग द्वारा स्त्री को प्रसन्न और तृप्त नहीं कर सकता वह कथमपि ऐश्वर्यवान् नहीं हो सकता है। उक्त सूक्त के केवल दो मंत्र यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्याकपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते।
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १६॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद्।
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १७॥

इन मंत्रों का अनुवाद उपस्थित करने में संकोच होता है। ग्रीफिथ ने भी इसी कारण इनका इंग्लिश अनुवाद नहीं किया है। उन्होंने फुटनोट में लिखा है।

I pass over stanzas 16 and 17 which I can not translate into decent English.

मनु ने भी मनुस्मृति में मांसभक्षण, मद्यपान और मैथुन के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है कि इनके सेवन से कोई पाप-दोष नहीं लगता है क्योंकि

१. श्रीमद्भागवत ११, ५–११ २. मण्डल १० सूक्त ८६

ये तो देहधारियों की प्रवृत्तियों के अन्तर्गत हैं। हाँ यदि इन विषयों के सेवन से निवृत्त–दूर रहा जाए तो मनुष्य कल्याण प्राप्त कर सकता है—

न मांसभक्षणे दोषः न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥[1]

यहाँ पर एक दूसरी शंका उपस्थित की जा सकती है कि शास्त्र में अच्छी बुरी सभी प्रकार की बातों का चिन्तन, मनन, विवरण और उल्लेख हो सकता है और यथार्थबोध उसका उद्देश्य भी स्वीकार्य हो सकता है किन्तु अधिकांश प्राचीन देवमन्दिरों में जो मिथुन मूर्तियाँ, मान्मथभाव संभोग क्रियाएँ उत्कीर्ण रहती हैं उनका क्या तात्पर्य, क्या उद्देश्य हो सकता है? इस शिल्प को तो धर्मशाला में सनहकी का उपयोग करना, अमृत में विष घोलना, दिव्य प्रवृत्ति और भावों में आसुरभावों को उत्पन्न कराना है।

इस प्रकार की शंका निर्मूल या निराधार नहीं कही जा सकती है—यौन भावों, मिथुन भावों की कलात्मक अभिव्यक्तियों का इतिहास भी हमारे देश में बहुत पुराना है। इतिहास के धरातल पर समस्त विकासोन्मुख धार्मिक परम्पराओं में मान्मथ भाव निहित देखे जाते हैं। कला, संस्कृति और साहित्य सभी क्षेत्रों में मान्मथ भावों का प्राचुर्य और प्राधान्य है। कला के क्षेत्र में मान्मथ भावों के निदर्शन हमें ईसापूर्व पचास वर्ष की मथुरा की यक्षिणियों की मूर्तियों में मिलता है। कौशाम्बी में प्राप्त कुषाण कालीन शिल्प-कला खण्डों में भी मान्मथ भाव उत्कीर्ण हैं। यही नहीं सिन्धुघाटी में प्राप्त प्रागैतिहासिक कालीन मूर्तियों में भी मान्मथ भावों के प्रदर्शन हैं।

मूर्तिकला में मान्मथ भावों का अंकन खजुराहो, कोणार्क, भुवनेश्वर और पुरी के मंदिरों में पाया जाता है। इनमें कामसूत्रीय भावनायें बड़ी संजीदगी से आँकी गई हैं। वैदिक यज्ञों की यज्ञवेदियों में भी मान्मथ भावों का अंकन वैदिक युग से चला आ रहा है। सांस्कृतिक क्षेत्र में लिंग-पूजा इसका बहुत बड़ा और प्राचीन निदर्शन है, शिव-पार्वती, लक्ष्मी-नारायण, राधाकृष्ण, सीता-राम की उपासना के मूल में भी मान्मथ भाव सन्निविष्ट हैं।

साहित्य के क्षेत्र में वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, कल्पसूत्रों, पुराणों और महाकाव्यों में मान्मथ भावों का उद्रेक और शृङ्गारिक भावों के चित्रण सर्वोपरि अस्तित्व रखते हैं। नौ रसों में शृङ्गार-रस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। दार्शनिक साहित्य में रस को साक्षात् ब्रह्म कहा गया है। उपनिषदों में वामदेव्य गान की तुलना स्त्री-पुरुष के संभोग से की गई है। वेदों, उपनिषदों,

1. मनुस्मृति ५।५६

दर्शनग्रन्थों और वेदान्त में प्रकृति और पुरुष की व्याख्या में मान्मथ भाव ही प्रधान है। प्रकृति और पुरुष के रहस्यमय मिलन में मान्मथ मिलन ही की भावना है। यह मिलन भावना उपनिषद् की भाषा में द्वैत में अद्वैत का आभास देती है। और यह भी स्पष्ट घोषित किया गया है कि पुरुष और प्रकृति का मिलन सृष्टिरचना के लिए आवश्यक एवं अवश्यम्भावी है। वस्तुतः यही मिलन-भावना अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच कर कला और साहित्य के माध्यम से मुखरित और व्यक्त हुई है।

खजुराहो, कोणार्क के मिथुन चित्रों की कटु आलोचनाएँ देशी, विदेशी अधिकांश आलोचकों ने की हैं। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल जैसे सुसंस्कृत मनीषी की दृष्टि से भी 'इस प्रकार का प्रदर्शन सामाजिक उर्वरशक्ति के पतन का प्रतीक है।'

डाक्टर कुमारस्वामी, डाक्टर गांगुली मान्मथ भावों के अंकन को प्राचीनतम अवस्था की उर्वर शक्ति के दृश्यप्रतीक मानते हैं। डा० बेंजामिन जैसे पाश्चात्य विद्वान् आत्मा और परमात्मा के मिलन का प्रतीक मानते हैं। डाक्टर राधा कमल मुखर्जी का विचार है कि देवालयों में मान्मथ चित्रों के अंकन किसी दुर्भावना या कुरुचि के प्रतीक नहीं किन्तु आध्यात्मिक भावनाओं के निदर्शन हैं। कुछ लोग ऐसे शिल्प को शाक्त मत, तंत्रयान, मंत्रयान और वज्रयान से प्रभावित मानते हैं। कुछ आलोचक काम को मोक्ष के दरवाजे तक पहुँचने का साधन मानकर देवालयों की मिथुन मूर्त्तियों को आध्यात्मिक चेतना की प्रेरणा स्वीकार करते हैं। कोई आलोचक कला को जीवन की व्याख्या मानकर 'काम' को जीवन का सबसे महान् सत्य स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में भारतीय कलाकार ने मिथुन मूर्तियों द्वारा जीवन के सत्य को अभिव्यक्त किया है।

किन्तु यदि मानव-प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो सर्वत्र और सभी में एक ही बात समान रूप से प्राप्त होती है वह यह कि मनुष्य के जीवन में सम्पूर्ण तृप्ति के बाद ही मोक्ष की कामना उत्पन्न होती है। सम्पूर्ण तुष्टि और उसके बाद मोक्ष यही दो हमारे जीवन के लक्ष्य के सोपान हैं। कोणार्क, पुरी, खजुराहो आदि स्थानों के देवालयों में मिथुन-मूर्तियों का अंकन मानव जीवन के लक्ष्य का प्रथम सोपान है। इसीलिए इसे मन्दिर के बहिर्द्वार पर ही प्रतिष्ठित किया जाता है। और दिव्य मोक्ष द्वितीय सोपान है जिसकी प्रतिष्ठा देव प्रतिमा के रूप में मंदिर के अन्तरभाग में की जाती है। प्रवेश द्वार और देवप्रतिमा के बीच मंदिरों में जगमोहन बना रहता है। यह मोक्ष की छाया का प्रतीक है। मंदिर के बाहरी द्वार या दीवारों पर उत्कीर्ण इन्द्रिय-

रसयुक्त मिथुन-मूर्तियाँ देव-दर्शनार्थी को आनन्द की अनुभूतियों को आत्मसात् कर जीवन की प्रथम सीढ़ी—कामतृप्ति—को पार करने का संकेत कराती हैं—स्मरण कराती हैं। जो व्यक्ति जीवन के इस प्रथम सोपान को पार नहीं कर चुका है वह देवदर्शन—मोक्ष—के द्वितीय सोपान पर पैर रखने का अधिकारी नहीं है।

मन्दिरों की दीवारों पर उत्कीर्ण अश्लील भावों की मूर्तियाँ भौतिक सुख में, भौतिक कुण्ठाओं और घृणास्पद, बीभत्स, अश्लील वातावरण में भी आशा-युक्त, आनन्दमय लक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। भारतीय कला का यह उद्देश्य समस्त विश्व के कला-आदर्शों, उद्देश्यों एवं कला की व्याख्या और मानदण्ड से भिन्न और मौलिक है।

प्रश्न किया जा सकता है कि मिथुन चित्र जैसे अशिव तत्त्वों के स्थान पर अन्य प्रतीक प्रस्तुत किए जा सकते थे। लेकिन यह समझना नितान्त भ्रम है कि मिथुन-मूर्तियाँ, मान्मथ भाव अशिव परक हैं। वस्तुतः शिवम् और सत्यम् की साधना के ये सर्वोत्तम माध्यम हैं। हमारी संस्कृति और हमारा वाङ्मय इसे परमतत्त्व मानकर इसकी साधना के लिए युग-युगान्तर से हमें प्रेरित करता आ रहा है। यह परमतत्त्व सृष्टि की स्थिति का अत्यन्त कारण है—

मैथुनं परमं तत्त्वं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।

इससे दुर्लभ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है—

मैथुनात् जायते सिद्धिर्ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्।

देवमंदिरों के कमनीय कलाप्रस्तरों में हम एक ओर जीवन की सच्ची व्याख्या और उच्चकोटि की कला का निदर्शन पाते हैं तो दूसरी ओर पुरुष-प्रकृति के मिलन की आध्यात्मिक व्यञ्जना भी पाते हैं। इन कलाकृतियों में हमारे जीवन की व्याख्या शिवम् है, कला की कमनीय अभिव्यक्ति सुन्दरम् है और रहस्यमय मान्मथ भाव सत्यम् है।

इन्हीं भावों को दृष्टिगत रखते हुए वात्स्यायन मैथुन क्रिया, मान्मथ क्रिया या आसन न कह कर उसे 'योग' कहता है। दार्शनिक सिद्धान्त है कि जीवन-वासनाएँ और मिथुन वासनाएँ ही भिन्न अणुओं और कोशों को मिलाती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि वे सभी भिन्नताओं को मिटाकर अद्वैत लाने की चेष्टा करती हैं। अद्वैत अवस्था तो प्रारम्भिक अवस्था ही थी, किसी विशेष शक्तिपात से वह पदार्थ अनेक अणुओं में विभिन्न हो गया होगा, मिथुन शक्ति

का काम ही उनको पुनः मिलाना है यही आशय रख कर वात्स्यायन ने मिथुन क्रिया को 'योग' कहा है।

मृत्यु वासनायें निवृत्ति पाने के लिए प्रवृत्ति का आश्रय ग्रहण करती हैं, मिथुन-वासनाओं से मिलती हैं और इस प्रकार दोनों एक दूसरे की सहायता करती हुई अद्वय शान्तावस्था को लाने का प्रयत्न करती हैं। मृत्यु वासनायें जड़-चेतन रहित अवस्था को और मिथुन वासनायें अद्वैतता को प्राप्त करती हैं। अफ़लातून ने भी अद्वैत-प्राप्ति के लिए द्वैत का ग्रहण स्वीकार किया है। उसका कहना था कि 'ड्यूस की इच्छा से सभी प्रकृति द्विधा की गई ताकि दोनों फिर मिल सकें। अद्वैत को पाने के लिए द्वैत का आश्रय लिया गया।'

ठीक ऐसा ही बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलता है—

आत्मैवेदमग्र आसीत् स वै नैव रेमे तस्मात् एकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् स द्वैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधा पातयन्तः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।

पहले अकेला आत्मा ही था, उसे आनन्द की उपलब्धि नहीं हुई। वह एकाकी रमण नहीं कर सकता था अतः उसने दूसरे की इच्छा की। स्त्री-पुरुष आलिंगन करने से जितने परिमाण से स्त्री और पुरुष हो जाते हैं। वह इतना बड़ा था। उसने अपने इसी स्वरूप को दो भागों में विभक्त किया जो पति और पत्नी के रूप में प्रकट हुआ।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
संवेशनप्रकाराश्चित्ररतानि च षष्ठोऽध्यायः।
आदित एकादशः।

सप्तमोऽध्यायः

प्रहणनसीत्कारप्रकरणम्

एवं संविष्टायां यन्त्रयोगे प्राधान्येन प्रहणनमिति प्रहणनप्रयोगात्प्रहणनोद्भवत्वाच्च सीत्कृतस्य तद्युक्ता एव सीत्कृतक्रमा इति प्रकरणद्वयमत्राध्याये। यथा प्रहणनस्य प्रयोग इति सूचनार्थं क्रमग्रहणम्।

प्रहणनं द्वेषजननं कथं सुरतोपयोगीत्याह—

कलहरूपं सुरतमाचक्षते। विवादात्मकत्वाद्वामशीलत्वाच्च कामस्य ॥ १ ॥

कलहरूपमिति—कलहसदृशमित्यर्थः। कथमित्याह—विवादात्मकत्वादिति। स्त्रीपुंसयोः स्वार्थसिद्धये परस्पराभिभवेन संप्रयुज्यमानत्वाद्विवादात्मकम्। वामशीलत्वाच्चेति—प्रतिकूलस्वभावत्वात्कामस्य। यत्सुकुमारक्रमलब्धजन्मनोऽपि मनोभवस्य सुरते निर्दयोपक्रमेणातिवाह्यमानत्वात्। तथा चोक्तम् [किरातार्जुनीये ९। ४९]—'आहृता नखपदैः परिरम्भाश्चुम्बितानि घनदन्तनिपातैः। सौकुमार्यगुणसंभृतकीर्तिर्वाम एव सुरतेष्वपि कामः ॥' अत्रापिशब्दो भिन्नक्रमः। सौकुमार्यगुणसंभृतकीर्तिरपि सुरतेषु वाम एवेति। तेन हेतुफलभेदेनावस्थानात्कामस्य स्वभावद्वयम्। एकः संप्रयोगेच्छालक्षणः। अन्यो विसृष्टिलक्षण इति ॥१॥

अब कलहरूप सुरत का विवरण प्रस्तुत करते हैं—

अब संभोग काल में प्रीति बढ़ानेवाले सुरत-कलह का वर्णन किया जाएगा। इसलिए कि काम स्वभाव से ही विवादास्पद और कुटिल है ॥ १ ॥

तस्मात्प्रहणनस्थानमङ्गम्। स्कन्धौ शिरः स्तनान्तरं पृष्ठं जघनं पार्श्व इति स्थानानि ॥ २ ॥

तस्य सुरतस्य। प्रहणनस्थानमङ्गमुपकरणम्। स्थानानीति प्रहणनस्य ॥२॥

इसलिए सम्भोग में परस्पर प्रहार करना भी काम—मैथुन का एक अंग माना जाता है। दोनों कन्धे, दोनों स्तनों के बीच का स्थान, पीठ, जांघें, सिर तथा दोनों बगलें प्रहार के स्थान हैं ॥ २ ॥

तच्चतुर्विधम्—अपहस्तकं प्रसृतकं मुष्टिः समतलकमिति ॥३॥

तदिति—प्रहणनं यतः चतुर्विधम्—अपहस्तकादि प्रहणनस्य चतुर्विधत्वात्।

प्रहण्यते वा स्थानमनेनेति प्रहणनमपहस्तकादीति करणे ल्युट्। तत्रापहस्तको हस्तपृष्ठं प्रसृतांगुलि। प्रसृतकं वक्ष्यति। मुष्टिः प्रसिद्धः। समतलकं सुस्थिर-हस्ततलम्। यस्य मुस्तकेति प्रसिद्धिः ॥ ३ ॥

चार प्रकार के प्रहार

प्रहणन चार प्रकार का होता है—अपहस्तक—उल्टो हथेली से थाप मारना, प्रसृतक—हाथ फैलाकर मारना, मुष्टि—मुक्का मारना और समतल—हथेली से मारना ॥ ३ ॥

द्वितीयं प्रकरणं प्रहणनान्तर्गतमिति दर्शयन्नाह—

तदुद्भवं च सीत्कृतम्। तस्यार्तिरूपत्वात्। तदनेक-विधम् ॥ ४ ॥

तदुद्भवं चेति—तदुद्भवं प्रहणनाद्भवतीति। कुत एतदित्याह—तस्यार्ति-रूपत्वादिति, सीत्कृतं हि पीडया जन्यमानत्वात्तद्रूपमित्युक्तम्। यथा फलहेतु-प्रहणनात्पीडया सीत्कृतं क्रियते तथेहापि पीडाद्योतनार्थं यच्छब्दितं तत्सीत्कृतमिव सीत्कृतं पूर्वाचार्यैः संज्ञितम्। नतु सीत्करणमेव सीत्कृतम्। यदाह—तदिति। सीत्कृतमनेकविधम्। हिंकारादिभेदात् ॥ ४ ॥

सीत्कार

प्रहार करने से स्त्री को कष्ट होना स्वाभाविक है, उस कष्ट से स्त्री के मुँह से जो आह निकलती, सिसियाती है उसे सीत्कृत कहते हैं। सीत्कृत अनेक प्रकार के होते हैं ॥ ४ ॥

विरुतानि चाष्टौ ॥ ५ ॥

विरुतानि तानि मूलवर्गेण संगृहीतानि सीत्कृतप्रकरण एव ध्वनिस्वभावत्वा-दुक्तानि। तेषां च रतिजन्यत्वात्प्रहणने चाप्रहणने च मनोज्ञत्वात्प्रयोगः सीत्कृतस्य तु प्रहणन एवेति विशेषः ॥ ५ ॥

सीत्कृत से विभिन्न आठ प्रकार की चिल्लाहट पैदा होती है ॥ ५ ॥

हिंकारस्तनितकूजितरुदितसूत्कृतदूत्कृतफूत्कृतानि ॥ ६ ॥

तत्र हिंकारो यः सानुनासिकेन हिशब्देन क्रियते। कण्ठनासिकाभ्यामूर्ध्वं गच्छन्मधुरो ध्वनिर्निष्पाद्यते। स्तनितम्—मेघस्येव यद्गम्भीरं ध्वनितम् तच्च कण्ठाद्धंशब्देन निष्पाद्यते। रुदितं प्रतीतम्, तच्च मनोहारि स्यात्। सूत्कृतं सूत्करणं च श्वसितापरनाम। कूजितदूत्कृतफूत्कृतानां लक्षणं वक्ष्यति। सर्वै-सान्यव्यक्ताक्षराणि ॥ ६ ॥

आठ प्रकार के विरुत—

१ हिंकार—हिं हिं शब्द करना २ स्तनित—हं ऐसा गम्भीर शब्द करना ३ कूजित—धीरे-धीरे कुकुवाना ४ रुदित—रोना ५ सूत्कृत—सू-सू शब्द करना ॥ ६ ॥

अम्बार्थाः शब्दा वारणार्था मोक्षणार्थाश्चालमर्थास्ते ते चार्थयोगात् ॥ ७ ॥

तत्र अम्बार्था इति—अम्ब मातरित्यादयः। वारणार्था—मा तिष्ठेत्यादयः। अलमर्था—भवतु पर्याप्तमित्येवमादयः। मोक्षणार्थास्त्यज मुञ्चेत्यादयः। ते ते चार्थयोगादिति—अन्येऽपि पीडार्थयुक्ता मृतास्मि परित्रायस्वेत्येवमादयः ॥ ७ ॥

अरी माँ, ऐसा मत करो, अब रहने दो, बहुत हो चुका, मर गई, दया करो इत्यादि भी दर्द के शब्द होते हैं ॥ ७ ॥

पारावतपरभृतहारीतशुकमधुकरदात्यूहहंसकारण्डवलावकविरुतानि सीत्कृतभूयिष्ठानि विकल्पशः प्रयुञ्जीत ॥ ८ ॥

पारावतादीनामिव विरुतानि पारावतविरुतानि। दात्यूहो यस्य 'डाउक' इति प्रसिद्धिः। सीत्कृतभूयिष्ठानीति—सीत्कृतबहुलानि। प्रहणनकालेऽपि सीत्कृतस्य प्राधान्यादन्तरा प्रयुञ्जीतेत्यर्थः। सीत्कृतं हि स्वरान्तरसंश्लिष्टं मनोहारि स्यात्। विभागश्लिष्टगीतवत्। तत्रापि विकल्पशो विकल्पं विकल्पम्। एकैकमित्यर्थः ॥८॥

नायक द्वारा प्रहरण किए जाने पर सीत्कार करती हुई नायिका कबूतर, कोयल, हारिल, सुग्गा, मधुकर, डौकी, हंस, कारण्डव, और लवा पक्षी की-सी ध्वनि अदल-बदल कर करे। कभी कबूतर की तरह गुटुरगू, गुटुरगू बोले तो कभी कोयल की तरह कू···ऊ, कू···ऊ ॥ ८ ॥

प्रहणनसीत्कृतयोर्यत्र देशेऽवस्थायां च प्रयोगस्तदुभयमाह—

उत्सङ्गोपविष्टायाः पृष्ठे मुष्टिना प्रहारः ॥ ९ ॥

उत्सङ्गोपविष्टाया इति नायकस्योत्सङ्गे। पृष्ठे मुष्टिना प्रहारः। नान्यैः। अननुरूपत्वात् ॥ ९ ॥

नायिका यदि नायक की गोदी में बैठी हुई हो तो नायक उसकी पीठ पर मुक्कों से प्रहार करे ॥ ९ ॥

तत्र सासूयाया इव स्तनितरुदितकूजितानि प्रतीघातश्च स्यात् ॥ १० ॥

तत्रेति—मुष्टिना प्रहारे। सासूयाया इव—प्रहारमक्षममाणाया इव। प्रयोक्त्र्या-

स्तदर्तिद्योतकानि स्तनितकूजितरुदितानि स्युः, तत्प्रहारानुरूपत्वात् । प्रतोघातश्चेति–मुष्टिनैव तत्पृष्ठे प्रतीघातः स्यात् ॥ १० ॥

मुक्का लगते ही नायिका असहनशील-सी बनकर 'हं' कह कर 'उसाँसें' भर कर और हाँफ कर नायक पर प्रतिघात करे ॥ १० ॥

युक्तयन्त्रायाः स्तनान्तरेऽपहस्तकेन प्रहरेत् ॥ ११ ॥

युक्तयन्त्राया उत्तानायाः स्तनान्तरे स्तनयोर्मध्ये अपहस्तकेन प्रहरेत् । नान्यैः । अननुरूपत्वात् ॥ ११ ॥

चित लेट कर संभोग कराती हुई स्त्री के दोनों स्तनों के बीचों-बीच उलटी हथेली से प्रहार करना चाहिए ॥ ११ ॥

मन्दोपक्रमं वर्धमानरागमा परिसमाप्तेः ॥ १२ ॥

मन्दोपक्रमं वर्धमानरागमिति क्रियाविशेषणम् । आरम्भे मन्दया वृत्त्या प्रहारः । ततो यथा रागो वर्धते तथाधिक एवेत्यर्थः । आ परिसमाप्तेस्तृप्ति यावत् । स्तनान्तरे हि रागास्पदस्य हृदयस्यावस्थानात् । योषितो हि त्रीणि रागस्थानानि—शिरो जघनं हृदयं चेति । तेषु हन्यमानेषु चिरचण्डवेगापि रागं मुञ्चति ॥ १२ ॥

पहले धीरे धीरे मुक्का मारना शुरू करे और फिर ज्यों ज्यों राग बढ़ता जाए तदनुसार प्रहार में भी तेजी लानी चाहिए ॥ १२ ॥

तत्र हिंकारादीनामनियमेनाभ्यासेन विकल्पेन च तत्कालमेव प्रयोगः ॥ १३ ॥

तत्रेति—अपहस्तप्रहणने । हिंकारादीनां सप्तानाम् । अनियमेनेति—मृदुना हृदयस्य हन्यमानत्वात्सर्वेषामेवार्तिसूचकानां संभवः । विकल्पेन–मृदुमध्यातिमात्रभेदेन । अभ्यासेन च—पौनःपुन्येन । तत्कालमेवेति—अपहस्तप्रहणनकालमेव । तस्य समाप्त्यवधिकः कालः ॥ १३ ॥

हिं···हीं, हँ, फुसकारना, हाँफना आदि कष्टसूचक ध्वनियाँ करने का न तो कोई नियम होता है और न क्रम । मुक्का लगना शुरू होने से लेकर अन्त तक कष्टसूचक ध्वनि करते रहना जरूरी है ॥ १३ ॥

शिरसि किंचिदाकुञ्चिताङ्गुलिना करेण विवदन्त्याः फूत्कृत्य प्रहणनं तत्प्रसृतकम् ॥ १४ ॥

किंचिदाकुञ्चितांगुलिना–फणाकारेणेत्यर्थः । विवदन्त्या इति । अपहस्तेनासुखायमाना यदि प्रहारान्तराकांक्षया प्रत्यवतिष्ठेत्तदास्याः प्रथमे रागास्पदे शिरसि तदनुरूपेण प्रसृतकेन प्रहणनमपरं मन्दोपक्रमं वर्धमानरागमा परिसमाप्तेर्विधेयम् । फूत्कृत्येति रागदीपनार्थम् ॥ १४ ॥

यदि उलटी हथेली के प्रहार से स्त्री को आनन्द न मिलता हो और वह कोई और प्रहार चाहती हो तो पुरुष को चाहिए कि वह राग के अनुसार धीरे या ज़ोर से साँप के फन की भाँति अँगुलियों को बना कर स्त्री के सिर पर मारे। इस प्रहार को प्रसृतक (खोटका) कहते हैं ॥ १४ ॥

तत्रान्तर्मुखेन कूजितं फूत्कृतं च ॥ १५ ॥

तत्रेति—प्रसृतकाघाते। कूजितं फूत्कृतं च नायिकायाः स्यात्। कथमित्याह—अन्तर्मुखेनेति। मुखस्यान्तः स्थानमन्तर्मुखम्, तत्र कूजितम्, तत्संवृतेन कण्ठेन। कूजत्यनेनाव्यक्तं शब्दितम्। यदि विवृतेन जिह्वामूलेन च तत्फूत्कृतम्। तस्यानुकार्यं वक्ष्यति—बदरस्येवेति ॥ १५ ॥

जिस समय पुरुष स्त्री को मुक्का मारे उस समय स्त्री हाय राम, हाय हाय जैसे स्पष्ट कष्टसूचक शब्दों को न कह कर कूं, कूं, सूं, सूं, फू, फू आदि संवृत, विवृत, जिह्वामूलीय शब्दों की ध्वनि करे ॥ १५ ॥

रतान्ते च श्वसितरुदिते ॥ १६ ॥

रतान्ते च श्वसितरुदिते। तदानीं धातुक्षयाच्छ्रमोत्पत्तेः। श्वसितं रुदितं च मधुरकोक्त्या प्रयोक्तव्यम् ॥ १६ ॥

संभोग समाप्त हो जाने के बाद हाँफने को रुदन कहा जाता है ॥ १६ ॥

वेणोरिव स्फुटतः शब्दानुकरणं दूत्कृतम् ॥ १७ ॥

वेणोरिव पुरुषव्यापारेण ग्रन्थिस्थाने स्फुटतस्तच्च दूत्कृतम् ॥ १७ ॥

संभोग के समय बांस की गाँठ फूटने जैसी 'चट-चट' की आवाज होती है। इसे दूत्कृत कहा जाता है ॥ १७ ॥

अप्सु बदरस्येव निपततः (शब्दानुकरणं) फूत्कृतम् ॥१८॥

ताल्वग्रादुपरिभागे जिह्वाग्रे संश्लेषादुत्पद्यते। बदरस्येवेति वृत्तगुटिकोपलक्षणार्थम्। निपततः। शब्दानुकरणमिति वर्तते। यस्येदं लक्षणं सलिले शर्करापातकालनिःस्वनितध्वनीति ॥ १८ ॥

बेर के फल के पानी में गिरने से 'डुब्ब्' की जो आवाज होती है वैसी आवाज जब रतिकाल में होती है तो उसे फूत्कृत कहा जाता है ॥ १८ ॥

सर्वत्र चुम्बनादिष्वपक्रान्तायाः ससीत्कृतं तेनैव प्रत्युत्तरम् ॥

चुम्बनादिष्वपक्रान्ताया इति—चुम्बननखदशनच्छेद्येषु पुरुषेणाभियुक्तायाः। ससीत्कृतं तेनैव प्रत्युत्तरं येनैव चुम्बनादीनामन्यतमेनोपक्रान्ता। तेनैव हिंकारादिसहायेन प्रत्युत्तरेदित्यर्थः। अनेन 'कृते प्रतिकृतं कुर्यात्' इति स्मारयति ॥१९॥

चूमने पर, नाखून, दाँत गड़ाने पर स्त्री जैसी आवाज करे ठीक उसी के जवाब में उसी तरह की आवाज पुरुष को भी करनी चाहिए ॥ १९ ॥

रागवशात्प्रहणनाभ्यासे वारणमोक्षणालमर्थानां शब्दानामम्बार्थानां च सतान्तश्वसितरुदितस्तनितमिश्रीकृतप्रयोगा विरुतानां च। रागावसानकाले जघनपार्श्वयोस्ताडनमित्यतित्वरया चापरिसमाप्तेः ॥ २० ॥

रागवशात्प्रहणनाभ्यास इति। यदा रागस्योद्रेकान्नायकः पौनःपुन्येन प्रहरेत्तदा वारणार्थानां प्रयोगो युक्तः। किंरूप इत्याह—सतान्तेति। सह खिन्नाभ्यां श्वसितरुदिताभ्यां वर्तते यत्र स्तनितं तेन योजित इत्यर्थः। पारावतादिविरुतानां च प्रयोग एवंविध एव। रागावसानकाल इति—लिङ्गादासन्नवर्तिनी रतिरिति ज्ञात्वा जघने तृतीये रागास्पदे पार्श्वयोः कक्षाधस्ताडनम्। समतलेनेति पारिशेष्यात्। अन्ये 'समतलकेन' इति पठन्त्येव। अतित्वरयेति—विश्रब्धिकया हि ताडने मार्गापन्ना हि रतिर्निवर्तते ॥ २० ॥

तीव्र रागवृद्धि होने पर जब पुरुष लगातार जोर जोर से स्त्री पर प्रहार करने लगे तो स्त्री 'अरीरी' 'अरी-मरी' 'ओ माँ' 'रहने दो', 'बस करो', 'छोड़ दो' आदि शब्दों का भी उच्चारण हाँफने, सिसियाने के साथ करती रहे ॥२०॥

तत्र लावकहंसविकूजितं त्वरयैव। इति स्तननप्रहणनयोगाः॥

तत्रेति—समतलकरताडने। लावकहंसयोरिव शब्दितं कूजितं स्यात् मृदुमधुरत्वात्। तच्च त्वरयैव। प्रहणनस्य त्वरितत्वात्। स्तननप्रहणनयोगा इति—सीत्कृतविरुतात्मनः शब्दितस्य प्रहणनस्य च प्रयोगा उक्ताः ॥ २१ ॥

इस अवसर पर हंस और लवा आदि पक्षियों की बोली की नक़ल भी शीघ्रता से करनी चाहिए। इस तरह स्तनन, प्रहणन संबंधी प्रकरण पूरा हुआ॥

स्त्रीपुंसयोः प्रहणनसीत्कृतेषु कस्य किं सहजं तेज इत्याह—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

पारुष्यं रभसत्वं च पौरुषं तेज उच्यते।
अशक्तिरार्तिर्व्यावृत्तिरबलत्वं च योषितः ॥ २२ ॥

पारुष्यमिति चेतसः शरीरस्य च कठोरता। रभसत्वमित्यविमृश्यकारिता धाष्ट्यं च। एतदुभयं पुरुषस्येदं तेजो धर्म इत्यर्थः। तद्योगात्पुरुषः प्रहरति। अशक्तिर्हन्तुमसामर्थ्यम्। हस्तसौकुमार्यादार्तिः पीडा। तया व्यावृत्तिः। पुरुषेण हन्तुं नियुक्तायाः स्त्रिया अबलत्वं निष्प्राणता। स्वयमीषदाहरणात्। एते स्त्रैणा धर्माः। तद्युक्तत्वात्। न प्रहणनम्। सीत्कृतमेव तदुद्भवम्। अतः सीत्कृतप्रहणने विषयप्रतिनियते ॥ २२ ॥

इस विषय के दो श्लोक हैं—

कठोरता, धृष्टता, साहस पुरुष के स्वाभाविक गुण हैं तथा असमर्थता, पीड़ित होना, निवारण करना और निर्बलता, कोमलता स्त्रियों के स्वाभाविक गुण होते हैं। इसीलिए पुरुष स्त्री पर प्रहार करता है और स्त्री सी-सी करती रहती है ॥ २२ ॥

रागात्प्रयोगसात्म्याच्च व्यत्ययोऽपि क्वचिद्भवेत्।
न चिरं तस्य चैवान्ते प्रकृतेरेव योजनम् ॥ २३ ॥

क्वचिदिति न सर्वत्र रते व्यत्ययोऽपि स्यात्। कारणमाह—रागप्रयोगसात्म्यादिति। रागस्य प्रकर्षेण योगाद्देशसात्म्याच्च स्त्री स्वधर्मांस्त्यक्त्वा पौरुषं तेजो बिभ्रती प्रहन्ति तदा पुरुषः स्त्रीप्रहणनार्थं स्वधर्मं त्यक्त्वा तद्धर्मानालम्ब्य सीत्कृतविरुतानि कुर्यात्। तानपि न चिरम्। कियतीमपि कालकलां व्यत्ययः स्यात्। ततः किं स्यादित्याह—तस्य चैवेति। तस्यैव व्यत्ययस्यान्ते प्रकृतेरेव योजनं स्यात्, यथा स्वतेजसा स्त्रीपुंसयोर्वर्तनमित्यर्थः। तदेवं व्यत्ययप्रकृतियोजनाभ्यां प्रवृत्तेयाता(?)मा समाप्तेः। रागप्रयोगसात्म्याभावे तु प्राक्तन एव विधिः। तत्र व्यत्ययाभावात् ॥ २३ ॥

लेकिन स्त्री-पुरुष के ये गुण सार्वत्रिक नहीं हैं। देश, काल और परिस्थिति के कारण अथवा चरम सीमा तक राग के पहुँच जाने पर स्त्री पुरुष की भाँति कठोर और ढीठ बनकर उस पर प्रहार करने लगती है और पुरुष स्त्री की भाँति सिसियाता रहता है। इस प्रकार का विपर्यय बहुत कम और अल्पकाल के लिए ही होता है ॥ २३ ॥

प्रहणनं चतुर्विधमुक्तं यथा तदष्टधा दर्शयन्नाह—

कीलामुरसि कर्तरीं शिरसि विद्धां कपोलयोः संदंशिकां स्तनयोः पार्श्वयोश्चेति पूर्वैः सह प्रहणनमष्टविधमिति दाक्षिणात्यानाम्। तद्युवतीनामुरसि कीलानि च तत्कृतानि दृश्यन्ते। देशसात्म्यमेतत् ॥ २४ ॥

कीलामुरसीति। तत्र मुष्टिरेव तर्जनीमध्यमयोर्बहिः पृष्ठभागेन निष्क्रान्तयोरुपर्यंगुष्ठयोजनात्कीला। तयाधोमुख्या ताडनम्। कर्तरी द्विविधा, प्रसृतकुञ्चितांगुलिभेदात्। तत्र प्रसृतांगुलिर्द्विविधा। हस्तेनैकेन भद्रकर्तरी। द्वाभ्यां संश्लिष्टाभ्यां यमलकर्तरी। या कुञ्चितांगुल्यंगुष्ठाग्रोपरिन्यस्तकुञ्चिततर्जनीका सा शब्दकर्तरी प्रयुज्यमाना श्लथांगुलित्वादमितशब्दवती भवति। कैश्चिदुत्पलपत्रिकेत्युच्यते। उभाभ्यामपि कनिष्ठिकाग्रभागेण शिरसि ताडनम्। तर्जनीमध्यम-

योर्मध्यमानामिकयोर्वा मध्येनांगुष्ठं निष्काश्य बद्धा मुष्टिर्विद्धा। तयांगुष्ठकवदनया कपोलयोर्व्यधनमेव ताडनम्।

मुष्टिरेव तर्जन्यंगुष्ठकाभ्यां तर्जनीमध्यमाभ्यां वा संदंशनात्संदंशिका। तया स्तनयोः पार्श्वयोश्च मलनपूर्वकं मांसस्याकर्षणमेव ताडनम्। पूर्वैरित्यपहस्तादिभिः। अष्टविधमिति दाक्षिणात्यानाम्। आचार्याणां तु चतुर्विधमस्ति। एतत्प्रत्यक्षेण दर्शयन्नाह—कीलानि चेति। तद्युवतीनां दाक्षिणात्यतरुणीनाम्। उरसीत्युपलक्षणम्। उरसि कीलाकृतम्। शिरसि सीमन्तमुखे कर्तरीकृतम्। कपोलयोर्विद्धाकृतम्। देशसात्म्यमेतत्। यद्रागवशात्तत्कृतं चिह्नं वैरूप्यकारणमपि श्लाघ्यते॥

छाती में कीला[1] शिर में कर्त्तरी[2] गालों में विद्धा[3] और स्तन तथा बगलों में संदंशिका—ये चार और चार पहले के—आठ प्रकार के प्रहणन दक्षिण देश के निवासियों में प्रचलित हैं। दाक्षिणात्य युवकों की युवतियों की छाती पर कीला और उसके कार्य देखे जाते हैं। यह सब देशाचार हैं। जो आचार जहाँ का होता है वहीं के रहने वालों के लिए वह अनुकूल पड़ता है, सबके लिए नहीं॥

तन्नान्यत्र प्रयोक्तव्यमित्याह—

कष्टमनार्यवृत्तमनादृतमिति वात्स्यायनः॥ २५॥

कष्टमिति—दुःखावहम्, निर्दयकर्मत्वात्। अनार्यवृत्तम्—असाधुचरितम्। अनादृतमिति—अनादरणीयम्, दोषावहत्वात्॥ २५॥

---

१. तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों के ऊपर अंगूठा चढ़ा देने से कीला बनती है। लोहे की कील ठोकने की भाँति स्त्री की छाती पर इसका प्रहार किया जाता है।

२. नृत्य की एक मुद्रा को भी कर्त्तरी कहा जाता है। कामशास्त्रीय कर्त्तरी और नृत्य की कर्त्तरी में कोई विशेष अन्तर नहीं है। प्रसृतांगुलि (फैली हुई) और कुंचितांगुलि (सिकुड़ी हुई) भेद से कर्त्तरी दो प्रकार की होती है। प्रसृतांगुलि दो प्रकार से बनायी जाती है। एक हाथ से जो बनती है उसे भद्रकर्त्तरी कहते हैं और दोनों हाथों से जो बनती है उसे यमल कर्त्तरी कहते हैं। कुंचितागुंली को शब्दकर्त्तरी इसलिए कहा जाता है कि अंगुलियाँ सिकोड़ कर हथेली को गहरी बना कर जब मारा जाता है तो 'फो' की जोर से आवाज होती है किन्तु जिसे मारा जाए उसे लगता नहीं। कर्त्तरी का प्रहार शिर में किया जाता है।

३. तर्जनी और मध्यमा अथवा मध्यमा और अनामिका के बीच अंगूठा निकाल कर जो मुट्ठी मारी जाती है उसे विद्धा कहते हैं। स्तनों और बगलों में इसे मारा जाता है।

वात्स्यायन मुनि इस प्रकार के प्रहारों को ऐसे आचरण को अनार्यवृत्त कहते हैं। उनके मत से यह व्यवहार भले आदमियों के लिए नहीं हैं। वे लोग इसे तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं ॥ २५ ॥

तथान्यदपि देशसात्म्यात्प्रयुक्तमन्यत्र न प्रयुञ्जीत ॥२६॥

तथान्यदपि प्रस्तराद्याहननं देशसात्म्यात्प्रयुक्तं दाक्षिणात्यैरन्यत्र नेति ॥२६॥

किसी एक देश की रीति उसी के अन्तर्गत अनुकूल हुआ करती है अन्यत्र नहीं। इसलिए एक जगह की प्रथा का प्रयोग दूसरी जगह न करना चाहिए॥२६॥

आत्ययिकं तु तत्रापि परिहरेत् ॥ २७ ॥

आत्ययिकम्–विनाशाङ्गवैकल्यकरणं तत्रापि परिहरेत् यत्रापि प्रयुक्तम् ॥२७॥

ऐसे प्रहार जिनसे अंग भंग होने या मृत्यु हो जाने की आशंका हो उनके प्रयोग वहां भी न होने चाहिए जहाँ उनका प्रचलन है ॥ २७ ॥

तमेवात्ययं दर्शयन्नाह—

रतियोगे हि कीलया गणिकां चित्रसेनां चोलराजो जघान ॥

रतियोगे इति—रत्यर्थे योगे यन्त्रसंप्रयोगे। चोलराजश्चोलविषये राजा। तेन हि चित्रसेना गणिका रतारम्भे दृढमालिङ्गिता सौकुमार्याच्छरीरपीडामभजत्। तथाप्रदर्शितावस्थामपि तां सुकुमारोपक्रमां रागान्ध्यादगणिततद्बलः कीलयोरसि प्रयुक्तया व्यापादितवान् ॥ २८ ॥

ऐसे अनार्य व्यवहारों के दुष्परिणाम—

चोलराज—चोलदेश के राजा ने चित्रसेना नाम की वेश्या की छाती पर कामान्ध होकर ऐसा प्रहार किया कि वह मर गई ॥ २८ ॥

कर्तर्या कुन्तलः शातकर्णिः शातवाहनो महादेवीं मलयवतीम् ॥ २९ ॥

कुन्तल इति। कुन्तलविषये जातत्वात्तत्समाख्यः। शातकर्णिः शतकर्णस्यापत्यम्। शातवाहन इति संज्ञा। स हि महादेवीं मलयवतीमचिरप्रतिविहितमान्द्यामजातबलामपि मदनोत्सवे गृहीतवेषां दृष्ट्वा जातरागस्तामभिगच्छन् रागाक्षिप्तचेताः शिरसि कर्तर्यातिबलया जघान ॥ २९ ॥

कुन्तल देश के कामान्ध राजा शातकर्णि सातवाहन (शालिवाहन) ने महादेवी मलयवती पर प्रहार कर उन्हें मार डाला ॥ २९ ॥

नरदेवः कुपाणिर्विद्धया दुष्प्रयुक्तया नटीं काणां चकार ॥३०॥

नरदेवः पाण्ड्यराजस्य सेनापतिः। कुपाणिः शस्त्रप्रहारात्कुणिहस्तः। स हि राजकुले नटीं चित्रलेखां नृत्यन्तीं दृष्ट्वा जातरागः संप्रयोगे रागान्धो विद्धया कुपाणित्वाद्दुष्प्रयुक्तया कपोलतलमप्राप्याक्षिप्राप्तया काणां चकार। संदंशिका नोदाहृता। स्वभावतो नात्ययिकत्वात् ॥ ३० ॥

पाण्ड्य देश के राजा के सेनाध्यक्ष नरदेव ने नाचती हुई नर्तकी पर आसक्त होकर अपने मनहूस हाथ से उसके गालों पर हाथ मारना चाहा किन्तु प्रहार गाल पर न पड़कर आँख पर लगा और वह नर्तकी कानी हो गई ॥

यद्वशादयुक्तं परिहरति [तत्] दर्शयन्नाह—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

नास्त्यत्र गणना काचिन्न च शास्त्रपरिग्रहः ।
प्रवृत्ते रतिसंयोगे राग एवात्र कारणम् ॥ ३१ ॥

नास्तीति । द्विविधो हि कामी शास्त्रतत्त्वज्ञस्तद्विपरीतश्च । तत्र शास्त्रतत्त्वज्ञस्यात्र प्रहणनविधौ न स्वभावतो गणनास्ति । काचित्—इदमात्ययिकमिदम् । इदमित्यपेक्षयेत्यर्थः । न च शास्त्रपरिग्रहः । शास्त्रविहिताननुष्ठानात् । तस्मादस्य प्रवृत्ते रतिसंयोगे राग एवात्र प्रहणनविधौ प्रयोक्तव्ये कारणम् । नापरज्ञानम् । शास्त्रतत्त्वज्ञस्य तु सत्यपि रागे प्रवृत्तिकारणे ज्ञानमपरं कारणम् । ततश्च विमृश्यकारिणो गणना शास्त्रपरिग्रहश्चोभयमेव भवति । तस्मादुभयोरपि प्रवृत्तौ रागः कारणम् । तत्रैकस्य ज्ञानपरिष्कृतोऽन्यस्य तद्विकल इति विशेषः ॥ ३१ ॥

इस विषय के प्राचीन श्लोक प्रसिद्ध हैं—

जब मनुष्य कामान्ध होकर संभोग-प्रवृत्त होता है तो वह न तो शास्त्र के वचनों पर विचार करता है और न बाद के परिणामों की ही चिन्ता करता है। इस प्रकार के दुष्परिणामों का एकमात्र कारण केवल राग ही है ॥ ३१ ॥

यदा चानयोरतिप्रवृद्धो रागस्तदा तद्वशाददृष्टश्रुता अपि प्रयोगा भवन्तीति दर्शयन्नाह—

स्वप्नेष्वपि न दृश्यन्ते ते भावास्ते च विभ्रमाः ।
सुरतव्यवहारेषु ये स्युस्तत्क्षणकल्पिताः ॥ ३२ ॥

स्वप्नेष्वपीति—असंभाव्यवस्तुप्रकाशनयोग्येष्वपि । भावा अपि प्रियाविभ्रमचेष्टितानि । सुरतव्यवहारेषु—परस्परचुम्बनाभिगमनादिव्यापारेषु । तत्क्षणनिर्मिताः तत्कालकल्पिताः । न शास्त्रिता इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

सम्भोग काल में मनुष्य का मस्तिष्क और मन विभ्रान्त हो जाता है उस समय उसके हृदय में जो भाव पैदा होते हैं वे स्वप्न में भी नहीं सूझते हैं ॥३२॥

तत्रैकस्य ज्ञानपरिष्कृतत्वादप्रतिजनन एवोत्पद्यन्ते, अन्यस्य ज्ञानवैकल्यादत्ययावहा अपीति । तस्मादयं ज्ञानविकलोऽतिप्रवृद्धाद्रागात्प्रवर्तमानोऽत्ययं न पश्यतीति दृष्टान्तेन दर्शयन्नाह—

यथा हि पञ्चमीं धारामास्थाय तुरगः पथि ।

स्थाणुं श्वभ्रं दरीं वापि वेगान्धो न समीक्षते ॥
एवं सुरतसंमर्दे रागान्धौ कामिनावपि ।
चण्डवेगौ प्रवर्तेते समीक्षेते न चात्ययम् ॥ ३३ ॥

यथा हीति । अश्वस्य विक्रमो वल्गितमुपकण्ठमुपजवो जवश्चेति पञ्च धारागतयस्तुरगशिक्षायामुक्ताः । तत्र पञ्चमीं जवाख्यां प्रकृष्टामास्थाय । स्थित्वेत्यर्थः । तत्रस्थो हि वायुगतिर्भवत्यश्वः । श्वभ्रं पौरुषं गर्तम् । दरीं देवनिर्मिताम् । एवमिति दार्ष्टान्तिकयोजनम् । सुरतसंमर्दे सुसंकुले । कामिनौ स्त्रीपुंसौ । 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः ॥ ३३ ॥

जैसे घोड़ा जब वेगान्ध होकर सरपट भागता है तो रास्ते के खाईं, खन्दक, खम्भे आदि कुछ नहीं देखता है । इसी प्रकार कामान्ध स्त्री-पुरुष प्रचण्ड वेग से संभोग करते हुए नखक्षत, दन्तक्षत और प्रहार के दुष्परिणामों को नहीं सोचते हैं ॥ ३३ ॥

यस्माज्ज्ञानवैकल्यादयुक्तं दृश्यते तस्माज्ज्ञानप्रधानेन भवितव्यमिति दर्शयन्नाह—

तस्मान्मृदुत्वं चण्डत्वं युवत्या बलमेव च ।
आत्मनश्च बलं ज्ञात्वा तथा युञ्जीत शास्त्रवित् ॥ ३४ ॥

तस्मादिति । मृदुत्वं चण्डत्वमिति—मन्दवेगतां चण्डवेगतां चेत्यर्थः । बलं प्राणः । आत्मनश्च मृदुत्वचण्डत्वे इति योज्यम् । तथेति मृद्वादिप्रकारेण । प्रयुञ्जीत प्रयोगान् । शास्त्रवित् । अन्यथा शास्त्रज्ञेतरयोः को भेदः स्यात् । वक्ष्यति च—'अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो न स रागात्प्रवर्तते' इति ॥ ३४ ॥

इसलिए स्त्री की कोमलता, काम की प्रचण्डता और उसकी सहनशक्ति को समझते हुए तथा अपनी शक्ति का अनुमान करके ही पुरुष को सम्भोग में प्रवृत्त होना चाहिए ॥ ३४ ॥

मृद्वादिभेदेन प्रयोगयोजने सर्वे सर्वदा सर्वासु स्त्रीषु स्युरिति चेदाह—

न सर्वदा न सर्वासु प्रयोगाः सांप्रयोगिकाः ।
स्थाने देशे च काले च योग एषां विधीयते ॥ ३५ ॥

न सर्वदेति । तत्र स्थाने प्रयोगो यथा—अपहस्तस्य स्तनान्तरे प्रसृतस्य शिरसीत्यादि । देश इति । प्रयोगविषय इत्यर्थः । यथा मालव्यां प्रहणनस्य आमीर्यामौपरिष्टकस्येत्यादि । युक्तयन्त्रायामपहस्तस्य उत्सङ्गोपविष्टायां मुष्टिरि-

स्यादि कालप्रयोगः। प्रहणनप्रयोगाः पञ्चदशं प्रकरणम्। तद्युक्ताश्च तदन्तर्गताः सीत्कृतक्रमाः षोडशं प्रकरणम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे प्रहणनयोगाः सीत्कृतक्रमाश्च सप्तमोऽध्यायः।

सम्भोग काल की सभी प्रकार की क्रियाएँ हर समय और हर स्त्री में नहीं की जा सकतीं। स्त्रियों के अनुकूल जिसे वे पसन्द करती हों और देशाचार के अनुसार ही योग—सम्भोग-क्रियाएँ करनी चाहिए ॥ ३५ ॥

संभोग काल में पुरुष कामान्ध होकर स्त्री के शिर, कन्धों, स्तनों के बीच में, पीठ में, जाँघों में और पार्श्व में प्रहार करता है। स्त्री इन अंगों में चोट लगने से सीत्कार करती है। वह आनन्द से विह्वल हो जाती है। पुरुष को चाहिए कि ऐसे प्रहार चुटकी काटकर, चपत लगाकर और हथेलियों से थपथपा कर करे।

यह कथन कामशास्त्र के अन्य आचार्यों का है, वात्स्यायन इसमें संशोधन करते हुए कहते हैं कि पुरुष को चाहिए कि वह स्त्री की कोमलता, उसकी सहन-शक्ति का अनुमान लगाकर प्रहार करे, साथ ही स्त्री के काम-संवेग को भी समझे। उत्कृष्ट काम संवेग होने पर ये प्रहार दुःखदायी न बनकर स्त्री के लिए आनन्दप्रद बनते हैं।

वात्स्यायन अपनी अन्वीक्षण शक्ति से विचार करते हुए कहते हैं कि प्रहार करना शिष्ट समाज के अन्तर्गत नहीं है। यह गंवारों और असभ्यों का काम है। साथ ही संभोग काल में पुरुष इतना मदान्ध हो जाता है कि उसमें विवेक और चेतना नहीं रह जाती, वह यह भी भूल जाता है कि कहाँ प्रहार करना चाहिए और कहाँ न करना चाहिए। इस अवस्था में घातक दुष्परिणाम भी घटित होते हैं। प्रमाण और उदाहरण प्रस्तुत करते हुए आचार्य कहते हैं कि इस नासमझी और असभ्यता के कारण प्राचीन काल में कुछ स्त्रियों की मृत्यु हो गयी और एक तो बेचारी कानी होकर सदा के लिए अपना सौन्दर्य खो बैठी।

इसलिए सूत्रकार चेतावनी देते हैं कि सब समय और सभी स्त्रियों में सब प्रकार की क्रियाएँ नहीं करनी चाहिए। देश के रिवाज के अनुसार समय और स्त्री के स्वभाव को समझते हुए प्रहरण आदि क्रियाएं करनी चाहिए।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे प्रहणनप्रयोगास्तद्युक्ताश्च सीत्कृतक्रमाः सप्तमोऽध्यायः।

आदितो द्वादशः।

अष्टमोऽध्यायः

पुरुषायितप्रकरणम्

एवं प्रहणनादिव्यापारेण परिश्रान्ते नायके नायिका पुरुषवदाचरेदिति पुरुषायितम् , तदुपयोगित्वाच्च तदन्तर्गतानि पुरुषोपसृप्तानीति प्रकरणद्वयमत्राध्याये ।

तत्र कारणान्याह—

नायकस्य संतताभ्यासात्परिश्रममुपलभ्य रागस्य चानुपशमम् , अनुमता तेन तमधोऽवपात्य पुरुषायितेन साहाय्यं दद्यात् ॥ १ ॥

नायकस्येति संतताभ्यासादिति—रतस्य पौनःपुन्येनानुष्ठानात् । परिश्रमं सर्वाङ्गिकं समम् । रागस्य चानुपशममशान्तिमुपलभ्य । तत्राप्यनुमता । तेनेति—नायकेन । अननुज्ञाता हि योषिद्विसदृशमाचरन्ती निस्त्रपैव स्यात् । तमधोऽवपात्य—नायकमधस्तात्कृत्वा । एवं हि पुरुषवदाचरितम् । तेन साहाय्यम्–सहायकर्म प्रतिपद्यते । कार्यस्यानिष्पन्नत्वात् ॥ १ ॥

स्त्री पुरुष के समान जब आचरण करती है तो उसे पुरुषायित (विपरीतरति) कहते हैं । निरन्तर संभोग करते हुए पुरुष जब शिथिल हो जाता है और स्त्री की भोगेच्छा शान्त नहीं हुई रहती तो पुरुष की अनुमति से स्त्री पुरुष के ऊपर लेट कर सम्भोग में उसे सहायता पहुँचाती है ॥ १ ॥

स्वाभिप्रायाद्वा विकल्पयोजनार्थिनी ॥ २ ॥

स्वाभिप्रायाद्वेति–अननुमतापि तेन जातविस्रम्भा । विकल्पम्–पुरुषायितभेदम् योजयितुमर्थिनी, तच्छीलत्वात् ॥ २ ॥

अथवा स्वयं स्त्री अपनी इच्छा से भी ऐसा कर सकती है ॥ २ ॥

नायककुतूहलाद्वा ॥ ३ ॥

नायककुतूहलाद्वेति—नायकस्यात्र कौतुकमस्तीति ज्ञात्वा वा तेनाननुमताऽपरिश्रान्तस्यापि दद्यादित्येव ॥ ३ ॥

पुरुष थका हुआ न भी हो तो मनोरंजन और कुतूहल के लिए भी पुरुष स्त्री के समान लेट जाता है और स्त्री उसके ऊपर लेट कर संभोग-रत होती है ॥ ३ ॥

तत्र युक्तयन्त्रेणैवेतरेणोत्थाप्यमाना तमधः पातयेत्। एवं च रतमविच्छिन्नरसं तथा प्रवृत्तमेव स्यात्। इत्येकोऽयं मार्गः॥

तत्रेति—पुरुषायिते। द्विविधः क्रमः। तत्रायं प्रथमो युक्तयन्त्रेणैवापरित्यक्तशल्यसंयोगेनैव इतरेण नायकेन त्र्यस्रस्थितेनासीनेन चोत्थाप्यमाना बाहुपाशसंदानिता सत्युपरि क्रियमाणा तं नायकमवपातयेदिति। एवं सति रतमविच्छिन्नरसं तथा प्रवृत्तमेव स्यात्। यन्त्रं हि विश्लेष्य पुनः संधाने रतमपूर्वमेव स्यात्। न पूर्वप्रकारप्रवृत्तम्। यथाप्रवृत्तश्चात्र रागो विच्छिद्यते। तस्य चाकस्माद्विच्छेदे न सौमनस्यमित्यत्र कामिनः प्रमाणम्। अयं मार्गः श्रमवृद्धो रागस्यानुपशमे द्रष्टव्यः॥ ४॥

यदि संभोगरत स्त्री विपरीतरति की कामना रख कर पुरुष के ऊपर आना चाहे तो वह उस हालत में इस प्रकार पुरुष के ऊपर आए कि पुरुष का साधन उसके मदनमंदिर से अलग न होने पाए। ऐसा करने से राग में कोई विच्छेद नहीं पड़ता है। पूर्ववत् आनन्द बना रहता है॥ ४॥

पुनरारम्भेणादित एवोपक्रमेत्। इति द्वितीयः॥ ५॥

स्वाभिप्रायादिषु पुनरारम्भेणेति। यदा रतस्य पुनरारम्भस्तदा तेनारम्भेण पुरुषवदादावेवोपक्रमेत्। प्रवृत्ते द्वितीयो मार्गः। नापरस्तृतीयः। यदन्तरा यन्त्रं विश्लेष्य प्रयोक्तव्यम्॥ ५॥

एक बार संभोग हो चुकने के बाद यदि दुबारा प्रारंभ किया जाए तो प्रारंभ से ही स्त्री पुरुष के ऊपर चढ़कर विपरीत रति करे॥ ५॥

पुरुषायितं द्विविधम्, बाह्यमाभ्यन्तरं च। तत्र प्रथममधिकृत्याह—

सा प्रकीर्यमाणकेशकुसुमा श्वासविच्छिन्नहासिनी वक्त्रसंसर्गार्थं स्तनाभ्यामुरः पीडयन्ती पुनः पुनः शिरो नामयन्ती याश्चेष्टाः पूर्वमसौ दर्शितवांस्ता एव प्रतिकुर्वीत। पातिता प्रतिपातयामीति हसन्ती तर्जयन्ती प्रतिघ्नती च ब्रूयात्। पुनश्च व्रीडां दर्शयेत्। श्रमं विरामाभीप्सां च। पुरुषोपसृप्तैरेवोपसर्पेत्॥

सेति। स्वशिरसः प्रकीर्यमाणानि केशकुसुमानि चेष्टमानया ययेति विग्रहः। श्वासेन विच्छिन्नो यो हासः सोऽस्ति यस्याः। असहशय्याव्यापारेण। जातश्रमत्वात्। वक्त्रसंसर्गार्थं लज्जया, न तु चुम्बनदशनच्छेद्यार्थम्। स्तनाभ्यामुरो नायकस्य पीडयन्तीति। स्तनोपगूहनमेतत्। पुनः पुनः शिरो नामयन्ती लज्जया। सर्वमेतरस्त्रैणेन तेजसा चेष्टितमुक्तम्।

पौंस्नेनाह—या इति। चेष्टा यांश्चुम्बनादिव्यापारान्पूर्वमसौ दर्शितवान् पारुष्यरभसाभ्यां ता एव प्रतीपं कुर्वीत। तदेव स्फुटयन्नाह—पातितेति। यथाहं त्वया निर्दयरतेन क्लेशिता तथाहं त्वामपि प्रतीपं पातयामीति ब्रूयादिति संबन्धः। तत्रापि हसन्ती, राभसिकतया तर्जयन्ती तर्जन्या, प्रतिघ्नती चात्यर्थमपहस्तादिना। तदुभयं पारुष्यं दर्शयति। ततश्चासौ स्त्रैणतेजःप्रख्यापनार्थमव्रीडितापि व्रीडाम्, अश्रान्तापि श्रमम्, रन्तुमिच्छन्त्यपि विरामाभीप्सामुपेत्य दर्शयेत्।

पुरुषवदाचरितं हि योषितः पुरुषायितम्। ततश्च पुरुषस्य योषिति यदुपसर्पणमुपसृप्तं तदप्याचरन्त्याः पुरुषायितम्। प्रायशश्च पुरुषोपसृप्तान्नान्यत्पुरुषायितमिति नियमयन्नाह—पुरुषोपसृप्तैरेवोपसर्पेदिति ॥ ६ ॥

जब स्त्री पुरुष के ऊपर लेट कर संभोगरत होती है तो उसकी वेणी में गुथे हुए पुष्प बिखर जाते हैं। हँसने पर भी उसकी साँस फूलती है। पति के मुख को चूमने के लिए जब वह अपना मुख उसके समीप ले जाना चाहती है तो अपने दोनों स्तनों से वह पुरुष की छाती को दबाती है। सम्भोग करते हुए वह जब हिलती है तो उसका सिर तेज़ी से हिलने लगता है। इस काल स्त्री पुरुष का पूरा अनुकरण करती है। नख-क्षत, दन्तक्षत, प्रहरण, चुम्बन आदि पुरुष की भाँति करती है। और विजेता की भाँति हँसती हुई कहती है कि पहले तुमने मुझे गिराया था अब मैं तुम्हें नीचे गिरा कर बदला चुका रही हूँ। लेकिन जब उसकी कामेच्छा पूरी हो जाती है तो वह सकुचा कर, शरमा कर, आँखें बन्द कर लेती है। थक जाने के कारण चारपाई पर लेट जाती है। और फिर पुरुष के समान पति पर प्रेम प्रकट करने लगती है ॥ ६ ॥

तानि च वक्ष्यामः ॥ ७ ॥

इतः प्रभृति पुरुषोपसृप्ताख्यं प्रकरणमिति दर्शयति ॥ ७ ॥

अब पुरुषोपसृप्त (पुरुष किस प्रकार स्त्री के धक्का लगाए) का वर्णन किया जाएगा ॥ ७ ॥

तानि द्विविधानि, बाह्यान्याभ्यन्तराणि च। तत्र बाह्यान्याह—

पुरुषः शयनस्थाया योषितस्तद्वचनव्याक्षिप्तचित्ताया इव नीवीं विश्लेषयेत्। तत्र विवदमानां कपोलचुम्बनेन पर्याकुलयेत् ॥

यदा पुरुषः प्रयोक्ता तदा पुरुषोपसृप्तकम्, स्त्री चेत्पुरुषायितमिति दर्शनार्थं पुरुषग्रहणम्। एवं च पुरुषायितेन सहास्य वचनम्। शयनस्थाया इति। शयनास्थारतारम्भं प्रकरणं वक्ष्यति। तद्वचनव्याक्षिप्तचित्ताया इवेति—नायकोक्तिभिरन्यचित्ताया नायिकायाः। लज्जाख्यापनार्थं दर्शनामेतीवार्थः। नीवी—निवसनबन्धः।

तत्रेति–विश्लेषणे, विवदमानाम् कर्तुमददतीं कपोलचुम्बनेन समन्तादाकुलयेत्। यथा नीवी सुखेन स्रंस्यते ॥ ८ ॥

पुरुषोपसृप्त के भेदों को बताया जा रहा है—
बाह्य पुरुषोपसृप्त (बाहरी अंगों में धक्के)—चारपाई पर लेटी हुई स्त्री जब पुरुष की बातें सुनने में मशगूल हो तब पुरुष धीरे से उसकी नीवी (कोंछी) की गांठ ढीली कर दे। यदि स्त्री रोके तो उसकी मिन्नतें करता हुआ उसका मुँह चूम कर उसे आकुल-व्याकुल बना दे ॥ ८ ॥

स्थिरलिङ्गश्च तत्र तत्रैनां परिस्पृशेत् ॥ ९ ॥

स्थिरलिङ्गश्चेति—जातरागत्वात्सिद्धलिङ्गः। तस्यां च जातरागायां सिद्धं कार्यं, न चेदत्राह—तत्र तत्रेति। कक्षोरुस्तनादिष्वेनां नायिकां रागजननार्थं हस्तेन परिस्पृशेदिति। एतदसकृन्नायकेन संगतायामतिविस्रब्धायामुक्तम् ॥ ९ ॥

अब पुरुष का लिंग दृढ़ होकर स्थिर हो जाए तो स्त्री के कामांगों को वह धीरे धीरे सहलाए ॥ ९ ॥

प्रथमसंगता चेत्संहतोर्वोरन्तरे घट्टनम् ॥ १० ॥

यदि प्रथमसंगता तदास्या नीवीस्रंसनस्पर्शनं नास्त्येव। लज्जया संहतयोश्चोर्वोरन्तरे च संधौ हस्तेन संघट्टनं चलनम्। यथा विवृतौ स्याताम् ॥ १० ॥

यदि सुहागरात का मिलन हो तो स्त्री लाज के मारे अपनी कोंछी में हाथ भी नहीं लगाने देती और अपनी दोनों जांघों को समेट कर जोड़ लेती है। ऐसी हालत में पुरुष को चाहिए कि वह उसकी जंघाओं को सहलाते हुए उन्हें अलग-अलग करे ॥ १० ॥

कन्यायाश्च ॥ ११ ॥

कन्यायाश्चेति। कन्याविस्रम्भणे विस्रब्धाया अप्यस्या लज्जया संहतयोरन्तरे घट्टनं नीवीस्रंसनं स्पर्शनं च ॥ ११ ॥

यदि अक्षत योनि कुमारी कन्या से संभोग करना हो तो दसवें सूत्र में बतायी गयी प्रथम समागम विधि से करना चाहिए ॥ ११ ॥

तथा स्तनयोः संहतयोर्हस्तयोः कक्षयोरंसयोर्ग्रीवाया-मिति च ॥ १२ ॥

स्तनयोः संहतयोर्भुजमध्या सूच्या। हस्तयोः परस्पराश्लिष्टयोः प्रत्येकं वा बद्धमुष्ट्योः। कक्षयोः प्रत्येकं कृतसंकोचयोः। अंसयोर्हस्तयोजनात् ग्रीवायाहुविवर-

योजनाद्वा संहतयोः । ग्रीवायां हस्तपाशसंश्लेषात्संहतायाम् । संघट्टनमित्येव ॥१२॥

उसी प्रकार स्त्री के स्तनों में, काँख में, पार्श्व में, गर्दन में और जांघों में हाथ फेरना चाहिए ॥ १२ ॥

स्वैरिण्यां यथासात्म्यं यथायोगं च । अलके चुम्बनार्थमेनां निर्दयमवलम्बेत् हनुदेशे चाङ्गुलिसंपुटेन ॥ १३ ॥

स्वैरिण्यामिति । या नायिका रूढविस्रम्भत्वात्सुरते निस्त्रपं यथेष्टचारिणी सा स्वैरिणी । अभियोक्त्रीत्यर्थः । तस्या यथासात्म्यं यथायोगं चेति । यद्येन सात्म्यं यच्च यत्र युज्यते तत्तस्य स्पर्शनमित्यर्थः । चुम्बनार्थमेनामिति । कृतक्षान्ति पूर्वोक्तां स्वैरिणीं चालके निर्दयमवलम्बेत् ॥ १३ ॥

मनचली स्त्रियों में तो जैसा उसके अनुकूल पड़े वैसा करे । मुँह चूमने के लिए पुरुष उसके जूड़े में हाथ लगाकर उसका मुँह अपनी ओर घुमा कर चूमे या गालों में नरम-गरम चुटकियाँ काटने लगे ॥ १३ ॥

तत्रेतरस्या व्रीडा निमीलनं च । प्रथमसमागमे कन्यायाश्च ॥

इतरस्या इति नायिकायाः । विधिमाह—या प्रथमसङ्गता कन्या च तस्या व्रीडा लज्जा निमीलनं चाक्ष्णोः स्यात् । न त्वतिविस्रब्धायाः स्वैरिण्याश्चेति । एवं नीवीविस्रंसनस्पर्शनघट्टनावलम्बनैश्चतुर्भिर्बाह्यैरुपसृतैः शयनस्थां विश्वास्य सांप्रयोगिकांश्चुम्बनादीन् प्रयुञ्जीत ॥ १४ ॥

जो स्त्री किसी पुरुष से पहले मिलती है वह लाज के मारे आँखें मूंद लेती है । अक्षतयोनि कुमारी भी ऐसा ही करती है ॥ १४ ॥

आभ्यन्तराण्यभिधातुमाह—

रतिसंयोगे चैनां कथमनुरज्यत इति प्रवृत्त्या परीक्षेत ॥१५॥

रतिसंयोगे चेति—रत्यर्थे यन्त्रसंयोगे सति । एनामिति—बाह्यैरुपसृतां प्रवृत्त्या चेष्टया परीक्ष्य यथाकथंचिदाभ्यन्तरैरुपसर्पेदित्यर्थः ॥ १५ ॥

सुहागरात के दिन नववधू को संभोग के लिए कैसे प्रवृत्त किया जाए यह उपाय उसकी प्रवृत्ति को देखकर समझ कर ही काम में लाया जाए ॥१५॥

तत्र प्रवृत्तिमाह—

युक्तयन्त्रेणोपसृप्यमाणा यतो दृष्टिमावर्तयेत्तत एवैनां पीडयेत् । एतद्रहस्यं युवतीनामिति सुवर्णनाभः ॥ १६ ॥

युक्तयन्त्रेणेति । यत इति यत्र संबाधस्यान्तरं भागं लक्षीकृत्य साधनेनोपसृप्यमाणा तत्स्पर्शसुखाद् दृष्टिमावर्तयेद् दृष्टिमण्डलं भ्रमयेत् तत एवेति तमाश्रित्य

पीडयेत् । साधनेनात्यर्थमुपसर्पेत् । तत्र हि पीडनाद् द्रुतं रतिमधिगच्छति । एतद्रहस्यम् । स्त्रीभिरप्रकाश्यत्वात् । तथा हि रतिप्राप्त्यर्थमन्यैः प्रकारान्तरमुक्तम् । शास्त्रकृतः सुवर्णनाभमतमभिमतम् । अप्रतिषिद्धत्वात् ।

अत्र च रतिबन्धनमेको बहव इति केषांचित्प्रदेशविवादः । यत्रोपसृप्यमाणा यस्मिन्नेकस्मिन्नियतेऽनियते वा देशे स्पृष्टा दृष्टिमावर्तयेत्तस्मिन्नेव पीडयेदित्येकः प्रकारः । बहुषु वा यस्मिन्नुपसृप्यमाणा दृष्टिमावर्तयेत्तस्मिंस्तस्मिन्नेव पीडयेदिति द्वितीयः । तत्रापि यस्मिन्नत्यर्थं दृष्टिमावर्तयेत्तस्मिन्नत्यर्थमेव पीडयेदिति बोद्धव्यम् । एतेन नाडीप्रदेशा अप्यन्यतन्त्रोक्ता व्याख्याताः । तेषामनेनैव प्रकारेण ज्ञायमानत्वात् ॥ १६ ॥

आचार्य सुवर्णनाभ का कहना है कि संभोग काल में स्त्री जिस अंग के दबने पर आनन्द से विह्वल होकर आँखों की पुतलियाँ घुमाने लगे उसी अङ्ग को बार-बार दबाना चाहिए । इससे स्त्री शीघ्र कामोत्तेजित हो जाती है । युवतियों के सम्बन्ध में यह बहुत बड़ा रहस्य है ॥ १६ ॥

उपसृप्यमाणाया भावस्य तिस्रोऽवस्थाः—प्राप्तः, प्रत्यासन्नः, संधुक्ष्यमाणश्चेति । त्रयाणां लक्षणमाह—

गात्राणां स्रंसनं नेत्रनिमीलनं व्रीडानाशः समधिका च रतियोजनेति स्त्रीणां भावलक्षणम् ॥ १७ ॥

तत्र गात्रावसादो नेत्रनिमीलनं च प्राप्तस्य लिङ्गम् । व्रीडानाशो लज्जानिवृत्तिः । रतियोजनेति रत्यर्थं योजना । यन्त्रयोजनेत्यर्थः । सा स्वजघनस्य नायकजघनेनात्यन्तलग्नात्समधिकेति प्रत्यासन्नस्य । भावलक्षणमिति प्राप्तप्रत्यासन्नस्येत्यर्थः ॥ १७ ॥

संभोग के समय में अङ्गों का शिथिल पड़ जाना, आँखें बन्द कर लेना, लज्जा का नाश होना, और गुह्येन्द्रिय को पुरुष की गुप्तेन्द्रिय से सटाए रखना—स्त्रियों के भाव के ये लक्षण हैं । उस समय स्त्री अधिक भावविभोर हो उठती है ॥ १७ ॥

संधुक्ष्यमाणस्येत्याह—

हस्तौ विधुनोति स्विद्यति दशत्युत्थातुं न ददाति पादेनाहन्ति रतावमाने च पुरुषातिवर्तिनी ॥ १८ ॥

हस्ताविति । विधुनोति कम्पयति । उत्थातुं न ददाति यन्त्रयोगात् । पुरुषातिवर्तिनीति । पुरुषस्य रतिप्राप्तौ तमतिक्रम्य स्वजघनव्यापारेण वर्तत इत्यर्थः ॥

सम्भोग के आख़िरी समय में स्त्री हाथों को झटकती, पटकती है, पसीना-पसीना हो जाती है। पुरुष को दाँतों से काटती, नाखूनों से नोचती है, पैरों को पटकती है। कदाचित् इसी अवसर पर पुरुष स्खलित हो जाता है और स्त्री की तृप्ति नहीं हुई होती तो वह पुरुष को दबा लेती है, उसे उठने नहीं देती और लाज लिहाज छोड़कर पूरे वेग के साथ धक्के लगाती है ॥ १८ ॥

तस्याः प्राग्यन्त्रयोगात्करेण संबाधं गज इव क्षोभयेत् । आ मृदुभावात् । ततो यन्त्रयोजनम् ॥ १९ ॥

तस्याश्चेष्टितमीदृशं बुद्ध्वा यन्त्रयोगात्प्राग्वत्स्वयं रतमधिगम्य पश्चात्तदानीमस्या रतं विच्छिन्नरसं स्यात् । तच्चतुर्विधम् । यथोक्तम्—'अन्तःपद्मदलस्पर्शं गुटिकावच्च योषितः । वलिभं च वराङ्गं स्याद्गोजिह्वाकर्कशं तथा ॥' इति । तत्राद्यं त्यक्त्वा शेषं कण्डूतिबहुलत्वात्करेण क्षोभयेत् । आ मृदुभावादिति । यावन्मृदुतां गतम् । ततो यन्त्रयोजनम् । मृदुभूते हि तस्मिन्नुपसृप्यमाणा द्रुतं रतिमधिगच्छति । गज इवेति करौपम्यार्थम् । गजाकारेणेत्यर्थः ।

तथा चोक्तम्—'अनामिकाप्रदेशिन्यौ श्लिष्टाग्रे ज्येष्ठया सह । गजहस्ताग्रसादृश्यात्तत्संज्ञं कृत्रिमं स्मृतम् ॥' एवं च करग्रहणं कृत्रिमसाधनोपलक्षणार्थम् । तेन कृत्रिमेणाभ्यन्तराण्युपसृप्तानि द्रष्टव्यानि ॥ १९ ॥

स्त्री को शीघ्र स्खलित करने के लिए सम्भोग से पूर्व स्त्री की गुप्तेन्द्रिय के अन्दर हाथी की सूँड़ की भाँति अँगुली फिरानी चाहिए। जब उसकी गुप्तेन्द्रिय पानी से गीली हो जाए तब संभोग शुरू करना चाहिए ॥ १९ ॥

तान्याह—

उपसृप्तकं मन्थनं हुलोऽवमर्दनं पीडितकं निर्घातो वराहघातो वृषाघातश्चटकविलसितं संपुट इति पुरुषोपसृप्तानि ॥ २० ॥

लिङ्गेन संबाधस्य मिश्रणात्सर्वमेवोपसृप्तकम् ॥ २० ॥

दस प्रकार के उपसृप्त (धक्का)—उपसृप्तक, मन्थन, हुल, अवमर्दन, पीडितक, निर्घात, वराहघात, वृषाघात, चटकविलसित और सम्पुट—ये पुरुषोपसृप्त हैं ॥ २० ॥

न्याय्यमृजुसंमिश्रणमुपसृप्तकम् ॥ २१ ॥

तत्र यदृजु—प्रगुणं न्याय्यमागोपालाङ्गनाप्रसिद्धं मिश्रणं तदुपसृप्तकमिति कन्प्रत्ययेन विशेषसंज्ञां दर्शयति ॥ २१ ॥

उपसृप्तक (सामान्य धक्का)—वात्स्यायन केवल उपसृप्तक (सामान्य धक्के) को ही न्याययुक्त मानता है शेष को हेय। क्योंकि इसमें शिष्टता,

कोमलता और वैज्ञानिकता है। इसमें सिर्फ सामान्य रीति से इन्द्रियों को मिलाया जाता है ॥ २१ ॥

हस्तेन लिङ्गं सर्वतो भ्रामयेदिति मन्थनम् ॥ २२ ॥

हस्तेन लिङ्गं गृहीत्वा संबाधाभ्यन्तरे सर्वतो मथ्नन्निव भ्रामयेत् ॥ २२ ॥

मन्थन—पुरुष अपने लिंग को हाथ से पकड़ कर स्त्री की योनि के चारों ओर घुमावे—इसको मन्थन कहते हैं ॥ २२ ॥

नीचीकृत्य जघनमुपरिष्टाद्घट्टयेदिति हुलः ॥ २३ ॥

नीचीकृत्य जघनमिति—स्त्रीकटिमधः कृत्वा । उपरिष्टादिति—अभ्यन्तरस्योर्ध्वभागे भगं हुलेनैव लिङ्गेनावघट्टयेत् ॥ २३ ॥

हुल—पुरुष स्त्री की जाँघों को नीची करके उनके ऊपर चोट मारे—इसे हुल कहते हैं ॥ २३ ॥

तदेव विपरीतं सरभसमवमर्दनम् ॥ २४ ॥

तदेवेति घट्टनम् । विपरीतमुच्चीकृत्य जघनमधस्तादिति विशेषश्चापरो यः । सरभसमिति । रभसेन गृह्णीयादित्यर्थः । अधोभागस्य कण्डूतिबहुलत्वात् ॥ २४ ॥

समवमर्दन—चूतड़ के नीचे तकिया रखकर जोर से धक्का मारना—अवमर्दन है ॥ २४ ॥

लिङ्गेन समाहत्य पीडयंश्चिरमवतिष्ठेतेति पीडितकम् ॥२५॥

लिङ्गेनेति । वेगादा मूलं प्रवेशमानेन समाहत्य पीडयेन्भगमवतिष्ठेत । तिष्ठेत चिरमिति यावन्तं कालं लिङ्गोन्नमनावनमनानि कर्तुं समर्थः ॥ २५ ॥

पीडितक—पुरुष लिंग को प्रविष्ट कर देर तक जोर से दबाए रखे उसे पीडितक कहते हैं ॥ २५ ॥

सुदूरमुत्कृष्य वेगेन स्वजघनमवपातयेदिति निर्घातः ॥२६॥

सुदूरमिति । प्रवेशितं लिङ्गमा निबन्धमाकृष्य वेगेन जघन एव निर्घातवत्क्षिपेत् ॥ २६ ॥

निर्घात—पीछे हटकर जोर से अपनी जाँघों को गिराना—निर्घात है ॥२६॥

एकत एव भूयिष्ठमवलिखेदिति वराहघातः ॥ २७ ॥

एकत एवेति—एकस्मिन्नेव पार्श्वे । भूयिष्ठम्—बहून्वारान्वराहवद्दंष्ट्रयावलिखेत् । स एवेति वराहस्य घातः ॥ २७ ॥

वराहघात—योनि में एक ही ओर धक्का लगाना—वराहघात है ॥ २७ ॥

स एवोभयतः पर्यायेण वृषाघातः ॥ २८ ॥

उभय इति । उभयपार्श्वयोः परिपाट्या वृषभवच्छृङ्गाभ्यामवलिखेत् ॥ २८ ॥

वृषाघात—योनि में कभी इधर कभी उधर चोटें मारना—वृषाघात है ॥ २८ ॥

सकृन्मिश्रितमनिष्क्रमय्य द्विस्त्रिश्चतुरिति घट्टयेदिति चटकविलसितम् ॥ २९ ॥

सकृन्मिश्रितमिति । एकवारं प्रवेशितं लिङ्गमनिष्क्रमय्यानिष्कास्य बहिरभ्यन्तरमेव किंचिदाकृष्य चटकवत्तत्रैव लिङ्गं संघट्टयेत् । द्विस्त्रिर्वा । प्रकर्षेण चतुरिति ॥ २९ ॥

चटकविलसित—प्रविष्ट लिंग को बाहर न निकाल गौरेया चिड़िया की तरह भीतर ही भीतर दो तीन धक्के लगाना चटकविलसित है । कामेच्छा की समाप्ति पर यह किया जाता है ॥ २९ ॥

रागावसानिकं व्याख्यातं करणं संपुटमिति ॥ ३० ॥

रागावसानिकमेतत् । विसृष्टयवस्थायामेव स्वभावत्वात् । व्याख्यातमिति करणं संपुटम् । तच्च व्याख्यातम्—'ऋजुप्रसारितावुभयोश्चरणौ' इति । तत्र लिङ्गमनिष्क्रमय्य जघनेन जघनमवगूह्य यत्संमिश्रणं तदपि संपुटमित्युक्तम् ॥३०॥

सम्पुट—स्खलन के समय सम्पुट होता है, इसकी व्याख्या पहले ही की जा चुकी है ॥ ३० ॥

तेषां स्त्रीसात्म्याद्विकल्पेन प्रयोगः ॥ ३१ ॥

तेषामिति उपसृप्तकादीनाम् । स्त्रीसात्म्यादिति येन यस्याः सात्म्यं तेन तस्यां प्रयोगः । विकल्पेन मृदुमध्यातिमात्रभेदेन । तत्र पुरुषोपसृप्तेषु यद्बाह्यं नीवीविश्लेषणादिकं तद् द्वितीये मार्गे नायककक्षाबन्धविश्लेषणादि बाह्यं पुरुषायितम्, यच्चाभ्यन्तरमुपसृप्तं तन्मार्गद्वयेऽप्याभ्यन्तरं पुरुषायितं द्रष्टव्यम् ॥ ३१ ॥

स्त्री की अनुकूलता और प्रसन्नता का ख़याल रखकर ही इनमें से किसी एक का प्रयोग करना चाहिए ॥ ३१ ॥

पुरुषोपसृप्तं प्रकरणमुक्त्वा विशेषाभिधित्सया पुनः पुरुषायितमाह—

पुरुषायिते तु संदंशो भ्रमरकः प्रेङ्खोलितमित्यधिकानि ॥३२॥

पुरुषायिते त्विति । अभ्यन्तरे पुरुषायिते प्रवर्तमानायास्त्रीण्यधिकानि ॥३२॥

विपरीत रति के भेद—सन्दंश, भ्रमरक और प्रेङ्खोलित विपरीत रति के ये तीन प्रकार अधिक हैं ॥ ३२ ॥

वाडवेन लिङ्गमवगृह्य निष्कर्षन्त्याः पीडयन्त्या वा चिरावस्थानं संदंशः ॥ ३३ ॥

वाडवेनेति वराङ्गौष्ठसंदंशेन लिङ्गमवगृह्य-निष्कर्षन्त्या अन्तः समाकर्षन्त्याः स्थानमवस्थितिः ॥ ३३ ॥

सन्दंश—घोड़ी की भाँति स्त्री अपनी योनि में पुरुष के लिंग को देर तक फँसाये रहे, वह सन्दंश है ॥ ३३ ॥

युक्तयन्त्रा चक्रवद्भ्रमेदिति भ्रमरक आभ्यासिकः ॥ ३४ ॥

युक्तयन्त्रेति। भगप्रवेशितलिङ्गा कुलालचक्रवत्कुञ्चितचरणा नायकाङ्गे हस्ताभ्यां शरीरावष्टम्भं कृत्वा भ्रमयेत्। अयमभ्यासाद्भवति ॥ ३४ ॥

भ्रमरक—भ्रमर के समान घूमना—भ्रमरक है ॥ ३४ ॥

तत्रेतरः स्वजघनमुत्क्षिपेत् ॥ ३५ ॥

तत्रेति भ्रमरके। इतरो नायको यन्त्राविश्लेषार्थं भ्रमरकसौकर्यार्थं च स्वजघनमूर्ध्वं क्षिपेत् ॥ ३५ ॥

भ्रमरक विपरीत रति के समय पुरुष को अपनी जांघें ऊँची उठा लेनी चाहिए ॥ ३५ ॥

जघनमेव दोलायमानं सर्वतो भ्रामयेदिति प्रेङ्खोलितकम् ॥

दोलायमानमिति पृष्ठतो नीत्वाग्रतो नयेत्। एकं पार्श्वं नीत्वा द्वितीयमित्येवम्। तत्प्रेङ्खणात्प्रेङ्खोलितकम्। मण्डलेन तु भ्रमितं मन्थनान्तर्भूतम्। तेषां पुरुषसात्म्याद्विकल्पेन च प्रयोग इत्यत्रापि योज्यम् ॥ ३६ ॥

प्रेङ्खोलितक—झूले के समान जाँघों को चारों ओर घुमाना—प्रेङ्खोंलितक है ॥ ३६ ॥

युक्तयन्त्रैव ललाटे ललाटं निधाय विश्राम्येत ॥ ३७ ॥

युक्तयन्त्रैव विश्राम्येत न विश्लिष्टयन्त्रा। रागस्यानुपशान्तत्वात्। ललाटे ललाटं निधायेति श्रमापनयनकारणम् ॥ ३७ ॥

थक जाने पर इन्द्रियों को संलग्न किए हुए स्त्री अपना माथा पुरुष के माथे पर रखकर आराम करे ॥ ३७ ॥

विश्रान्तायां च पुरुषस्य पुनरावर्तनम्। इति पुरुषायितानि ॥

पुनरागमनं पुनरुपरि गमनमित्यर्थः। रत्यधिगमात्तु परिश्रान्तायां पुनरावर्तनमित्यर्थोक्तम्। यथा रतपरिश्रान्तेन सहायकार्थं पुरुषायितेऽनुमन्यते तथा तत्स्वभावप्रतिपत्त्यर्थमिति ॥ ३८ ॥

आराम कर चुकने के बाद और यदि स्त्री की तृप्ति न हुई हो तो वह फिर नीचे आजाए और पुरुष ऊपर जाकर भोग रत हो। विपरीत रति का प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

तत्र नियोज्यादि दर्शयन्नाह—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

प्रच्छादितस्वभावापि गूढाकारापि कामिनी।
विवृणोत्येव भावं स्वं रागादुपरिवर्तिनी ॥ ३९ ॥

प्रच्छादितस्वभावापीति लज्जया प्रच्छादितोऽभिप्रायो यया। कथमित्याह—गूढाकारेति। अभिप्रायसूचकस्याकारस्य गोपितत्वात्। साप्युपरिवर्तिनी कामयमाना स्वभावमात्मीयमभिप्रायं रागात्प्रकाशयति न गूहितुं शक्नोति। अतो नियोज्यम् ॥ ३९ ॥

इस विषय के प्राचीन प्रामाणिक श्लोक हैं—

जो कामिनी स्त्रियाँ लज्जा और शील के कारण अपने भावों को छिपाए रहती हैं वे भी विपरीत रति में कामातुर होकर अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया करती हैं ॥ ३९ ॥

तदेव स्फुटयन्नाह—

यथाशीला भवेन्नारी यथा च रतिलालसा।
तस्या एव विचेष्टाभिस्तत्सर्वमुपलक्षयेत् ॥ ४० ॥

यथाशीलेति। यादृशः स्वभावो यस्याः। यथा च रतिलालसा येन प्रकारेण रतौ जाततृष्णा। तस्या उपरिवर्तिन्या विचेष्टाभिस्तत्प्रकाराभिः। तत्सर्वमिति शीलं रतिप्रकारं च सर्वमुपलक्षयेत्। येनोत्तरकाले तथैव सुरते समुपक्रमेत ॥ ४० ॥

स्त्री का जैसा शील स्वभाव होता है, जैसी उसकी काम वासना होती है, वह विपरीत रति से प्रकट हो जाता है ॥ ४० ॥

तत्रापवादमाह—

न त्वेवर्तौ न प्रसूतां न मृगीं न च गर्भिणीम्।
न चातिव्यायतां नारीं योजयेत्पुरुषायिते ॥ ४१ ॥

न त्वेवेति। ऋतौ न योजयेत्। गर्भाग्रहणभयात्। पुनरावर्तने च गर्भग्रहणाद्दारकदारिके व्यस्तशीले स्याताम्। न प्रसूतामचिरप्रसूताम्। प्रदरकटिनिर्गमभयात्। न मृगीम्। वृषाश्वयोरवपाटिकाभयात्। न गर्भिणीम्। गर्भस्राव-

भयात् । नातिव्यायतामतिस्थूलाम् । व्यापारयितुमशक्यत्वात् । पुरुषायितं सप्तदशं प्रकरणम् । तदन्तर्गतानि पुरुषोपसृप्तान्यष्टादशं प्रकरणम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्ग-
नाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्र-
भाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे पुरुषायितं
पुरुषोपसृप्तानि चाष्टमोऽध्यायः ।

रजस्वला, प्रसूता, गर्भवती, मृगी (संकुचित योनि वाली) और अत्यन्त मोटी स्त्री को विपरीत रति में प्रवृत्त न करना चाहिए ॥ ४१ ॥

शास्त्र का निर्माता होने के कारण वात्स्यायन जिस विषय या प्रसंग का विवेचन करता है उसके शिव और अशिव दोनों पक्षों को प्रस्तुत तो करता है किन्तु सर्वत्र शिव पक्ष का ही समर्थन करता है । अशिष्ट, असामाजिक, अनैतिक विषयों और प्रयोगों को वह स्पष्ट अविधेय और हेय कहता है । इस प्रकरण में वात्स्यायन ने उपसृप्त और विपरीतरति इन दो विषयों का प्रतिपादन मुख्य रूप से किया है । दोनों विषयों का सांगोपांग वर्णन करते हुए शुद्ध समीक्षक बनकर वह नीर-क्षीर विवेक भी करता है । कौन-सा प्रयोग विधेय है और कौन-सा हेय—इसका भी निराकरण करता है । वात्स्यायन की व्याख्या उसके प्रतिपादित सिद्धान्त देश, काल के अनुकूल एवं समाजविज्ञान, शरीरविज्ञान और मनोविज्ञान से सम्मत हैं ।

वह कहता है कि सुहागरात या प्रथम मिलन के दिन पति को सावधानी से काम लेने की आवश्यकता होती है । उसे चाहिए कि वह पत्नी की मानसिक कुंठाओं और बाधाओं को दूर करने का योग्यतापूर्ण प्रयत्न करे, इसके बाद शारीरिक बाधाओं की ओर उसकी दृष्टि होनी चाहिए । यदि वह कोई ऐसा असभ्य, अनैतिक या निर्दय व्यवहार करता है जो पत्नी के हृदय में क्लेश या घृणा का उत्पादक बन सकता है तो इसका दुष्परिणाम दाम्पत्य-जीवन को पंगु, नीरस और दुःखमय बना देता है ।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि 'जब वात्स्यायन स्वयं न्याय्य, नैतिक और सुखकर क्रियाओं का समर्थन करता है और अन्य असभ्य अनैतिक प्रयोगों को हेय और हीन समझता है तब फिर वह अपने शास्त्र में यह व्लिंग क्यों देता है कि अविवाहित कन्याओं को एकान्त में अपनी सखी या कलाचतुर वेश्या आदि से कामकलाओं का अध्ययन करना चाहिए ।' ठीक है किन्तु

परिचय चारुता और कलाज्ञान के लिए सीखना अनिवार्य है। साथ ही आवश्यकता पड़ने पर यथाअवसर उन कलाओं के प्रयोग और उपयोग भी करने चाहिए। वात्स्यायन सम्भोग को दाम्पत्य जीवन की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रिया समझता है। उसकी दृष्टि से संभोग और उसके आलम्बनों में कला और विज्ञान दोनों की सूक्ष्म उपयोगिता निहित रहती है।

सम्भोग एक प्रकार का योग है, दो आत्माओं का परस्पर मिलन है, दो हृदयों की एकता का भाव है, द्वैत से अद्वैत होने की अभीप्सा है, यह मनोरंजन, मज़ाक़ या वासना-पूर्ति का साधन मात्र नहीं है। वात्स्यायन इस विषय का विवेचन डूबकर इसलिए करता है कि वह इस विषय को व्यावहारिक जीवन की अत्यन्त गंभीर प्रक्रिया और आध्यात्मिक जीवन में समाधि की अवस्था तक पहुँचने का साधन समझता है। योग और भोग ये दोनों परस्पर पूरक प्रक्रियाएँ हैं। बिना भोग के योगसिद्धि नहीं मिल सकती और बिना योग से भोग-सुख नहीं मिल सकता है। सच्चा योगी वही कहा जा सकता है जिसने परिपूर्ण समाधि का अभ्यास कर लिया है और सच्चा भोगी वही है जो सम्पूर्ण सम्प्रयोग का अधिपति हो। हास्य, क्रीड़ा, विनोद, आलिंगन, चुम्बन, क्षत, प्रहणन आदि बाह्य मैथुन क्रियाएँ और उनका स्मरण तभी तक रहता है जब तक सम्भोग का प्रचण्ड विकास नहीं हो जाता है। सम्भोग की चरम अवस्था प्राप्त होने पर बाह्य-आलम्बन अपने आप तिरोहित हो जाते हैं और स्त्री-पुरुष दोनों ही विदेह बनकर आत्मानन्द में डूब जाते हैं। उनकी समस्त चेतनशक्ति एक विन्दु पर केन्द्रित हो जाती है। उस समय संसार की कोई भी शक्ति, विश्व का कोई भी प्रलोभन उन्हें उस आनन्दानुभव से वियुक्त या विरक्त नहीं कर सकता।

वात्स्यायन ने इस अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति को सर्वसुलभ बनाने के लिए संभोग और उसके योगों, प्रयोगों तथा उसकी प्रक्रियाओं को विशदरूप से वर्णित किया है। वह इन क्रियाओं को केवल मनोरंजन का साधन या सर्कस का खेल नहीं समझता है, भोगासनों का उद्देश्य जीवन की सिद्धि और जीवन-कला का अभिज्ञान प्राप्त करना है।

वात्स्यायन जिस मैथुन-योग (संभोग आसन) को विधेय मानता है, जिस प्रहणन, संघर्षण और उपसृप्त को उपयोगी समझता है उसी का अनुमोदन वेद भी करता है—अथर्ववेद कहता है कि—

"हे वधू, तू प्रसन्नचित्त होकर सुहागरात की इस सुहागशय्या पर चढ़ और अपने इस पति के लिए सन्तान को उत्पन्न कर तथा इन्द्राणी की

भाँति हे सौभाग्यवती, बुद्धिमत्तापूर्वक सूर्य निकलने से पहले उषःकाल में ही जागना।

विद्वान् लोग पहले भी अपनी पत्नियों से इसी प्रकार मिलन कर चुके हैं। उन्होंने भी अपने शरीरों को अपनी स्त्रियों के शरीरों से इसी प्रकार मिलाया है। इसलिए हे ऐश्वर्य-शालिनी, प्रजावती स्त्री, तू भी अपने इस पति से अपने शरीर को मिला दे।

हे पालक परमात्मा, जिस स्त्री में आज बीजवपन करना है उसे आप प्रेरित करें कि वह हमारी कामना को पूरी करने के लिए अपनी जंघाओं को फैला दे और हम कामातुर होकर अपनी गुप्तेन्द्रिय का प्रहार उसकी गुप्तेन्द्रिय में करें।

हे वधू, मैं तेरे पति के द्वारा तेरे जंघा प्रदेश के गुप्तमार्ग को सुगम बना रहा हूँ। और तुझे उस वरुण के बन्धन से छुड़ा रहा हूँ जिसको सविता ने बाँध रखा है।

हे पुरुष, तू पत्नी की जाँघों के ऊपर आ जा, हाथ का सहारा दे, खूब प्रसन्न चित्त होकर पत्नी को चिपका ले और हर्षोत्फुल्ल होकर तुम दोनों संभोग करो जिससे सविता देव तुम दोनों को आयु प्रदान करें।

इस वैवाहिक कार्य से हम दोनों में जो मलिनता आ गयी है, उस कम्बल के दाग को हम धो डालें"।[1]

इन मंत्रों से यही निष्कर्ष निकलता है कि संभोग रात के समय में करना चाहिए दिन में नहीं और पत्नी को उषाकाल में ही जागकर शय्यासन को त्याग देना चाहिए। दिन के समय लज्जा और संकोच होता ही है साथ ही सामाजिक नियमों का उल्लंघन होता है और शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान की दृष्टि से दिन की अपेक्षा रात में सम्भोग करने से रति, राग बढ़ता है। स्वास्थ्य और मन पर उत्तम प्रभाव पड़ता है।

दूसरे मंत्र में आलिंगन का निर्देश किया गया है। आलिंगन से विद्युत्परिवर्तन होता है; भय, लज्जा और संकोच दूर होकर कामोद्रेक बढ़ता है। इसीलिए तीसरे मन्त्र में कहा गया है कि स्त्री उन्मुक्त भाव से प्रसन्नता पूर्वक संभोगरत हो। चौथा मंत्र यह स्पष्ट उल्लेख करता है कि स्त्री के गर्भ मार्ग को

१ अथर्ववेद १४।२।३१, १४।२।३२, १४।२।३८, १४।१।५८, १४।२।३९, १४।२।६६।

एक बारीक झिल्ली ढके रहती है। प्रथम समागम में झिल्ली फटती है तो स्त्री को कष्ट होता है इसलिए मन्त्रकार कहता है कि पुरुष को इस अवसर पर विशेष सावधानी रखनी चाहिये। ऐसा अवसर न आने देना चाहिए कि स्त्री को कष्ट हो।

पाँचवें मन्त्र में उस स्वाभाविक आसन का उल्लेख किया गया है जिसे वात्स्यायन ने स्वीकार किया है। मन्त्रकार कहता है कि उलटे, टेढ़े, खड़े हुए, और विपरीत रति के आसनों का उपयोग न करना चाहिए क्योंकि इन अस्वाभाविक विपरीत आसनों से विकलांग सन्तान उत्पन्न हुआ करती है।

पाँचवें मन्त्र में संभोग के बाद सचैल स्नान करने का निर्देश किया गया है जिसका तात्पर्य स्वच्छता, पवित्रता और आरोग्य-रक्षा है।

वात्स्यायन ने शिव और अशिव, शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों और प्रयोगों का उल्लेख किया है किन्तु वह स्त्री और पुरुष दोनों की शुभ नियुक्ति का इच्छुक है। वह स्वयं स्वीकार करता है कि शास्त्र, नियम-विधान से कुछ होता-हवाता नहीं। यदि व्यक्ति या समाज को सुरक्षित रखना है तो उसके लिए पुनीत वातावरण और शुभ नियुक्ति ही उपयुक्त है। योगवासिष्ठ का भी यही कहना है कि—

'वासना-प्रवाह शुभ और अशुभ में बहता रहता है। वासना-व्यूह दो प्रकार का होता है—शुभ और अशुभ। यदि अशुभ भाव सङ्कट में डालता है तो उस प्राक्तन (पुरानी) वासना को प्रयत्नपूर्वक जीतना चाहिए। पुरुष को चाहिए कि प्रयत्नपूर्वक वासना-प्रवाह को शुभ मार्ग में नियुक्ति करे'।[1]

योगभाष्यकार ने इस विषय की बड़ी सुन्दर तुलना प्रस्तुत की है—

यथा क्षेत्रिकः केदारादपाम्पूरणात् केदारान्तरं पिप्लावयिषुः समं निम्नतरं वा नाऽपः पाणिना अपकर्षति, आवरणं त्वासां भिनत्ति ॥[2]

'हम ऐसी पुष्पवाटिका तैयार करें जिसमें प्रत्येक पुष्प स्वेच्छा से विकसित हो। जब प्रत्येक वासना की तृप्ति भोग से हो जाए तभी विवेक दृढ़मूल हो सकता है। निःश्रेयस मार्ग में वासना-तृप्ति आवश्यक है। भोग-

१. द्विविधो वासनाव्यूहः शुभश्चैवाशुभश्च ते।
अथ चेदशुभो भावः त्वां योजयति सङ्कटे ॥
प्राक्तनस्तदसौ यत्नाज्जेतव्यो भवता बलात् ॥
शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित्।
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि ॥

२. योगभाष्य ४।३

जल से सिंचित विवेकवृक्ष अन्तराय-वायु के झोंकों को सहन करने में समर्थ होता है। जैसे किसान एक खेत से दूसरे खेत में जल ले जाने के लिए जल को हाथों से उलीचता नहीं, ऊपर-नीचे नहीं करता बल्कि खेतों के बीच की क्यारियों को तोड़ने से ही ऊपर का जल नीचे बहने लगता है उसी तरह विवेकरूपी हाथ से भोगमार्ग में रहने वाले बाँधों को तोड़ देने से शक्ति स्वयं तृप्त होकर विषयों से लौट पड़ती है।

योगभाष्य का यह दृष्टान्त मोक्षमार्ग के लिए जितना उपयोगी है उतना ही भौतिक अभ्युदय, कामशास्त्रीय विज्ञान के लिए भी है। वात्स्यायन ने आध्यात्मिक और भौतिक श्रेय का सुन्दर समन्वय इस प्रकरण में किया है।

इस आठवें अध्याय के मुख्य प्रतिपाद्य विषय दो हैं—पुरुषायित और पुरुषोपसृप्त। दोनों विषय अपने नाम के आधार पर दो प्रकरणों में विभक्त किये गये हैं। इन दोनों प्रकरणों के विषय का प्रयोजन जितना हमारे आध्यात्मिक जीवन से है उससे कहीं अधिक व्यावहारिक जीवन से भी है। व्यावहारिक पक्ष में काम को कला के रूप में व्यवहृत किया गया है। संभोग करते हुए पुरुष जब थक जाए और स्त्री का राग उत्तरोत्तर बढ़ रहा हो उस समय स्त्री अपनी तृप्ति के लिए और पुरुष को आराम देने के लिए पुरुषायित–पुरुष के समान आचरण—विपरीत रति करे। विपरीत रति उसी हालत में करनी चाहिए जब पुरुष रति करते-करते श्रान्त हो गया हो किन्तु उसका राग कम न हुआ हो और स्त्री की उत्तेजना काफी बढ़ रही हो। उस समय पुरुष के अनुमोदन करने पर स्त्री पुरुष के ऊपर चढ़ जाए और पुरुष स्त्री की भाँति नीचे लेट जाए और फिर दोनों संभोगरत हों।

विपरीत रति प्रेमी-प्रेमिका के बीच राग और अनुराग बढ़ाने की एक कड़ी है। इस प्रकार के संभोग से स्त्री-पुरुष में परस्पर विश्वास और आनन्द का सृजन हुआ करता है।

कभी-कभी बढ़ते हुए राग से अभिभूत होकर स्त्री जब अपना साहस दिखाने की मुहब्बत-भरी चुनौती पुरुष को दिया करती है तब विपरीत रति द्वारा ही वह अपनी कला और शक्ति का प्रदर्शन करती है। परस्पर प्रेम और राग को बढ़ाने वाला यह एक प्रकार का रति युद्ध है। गीतगोविन्दकार जयदेव ने राधा और कृष्ण के इस प्रकार के रति–युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

मारा‍ङ्के रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे तया साहस–
प्रायं कान्तजयाय किंचिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात्।

निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलता दोर्वल्लिरुत्कम्पितम्,
वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिद्धयति ॥[1]

—राधा ने कृष्ण को पराजित करने के लिए जब साहसिक विपरीत रति-युद्ध छेड़ा तो उन्हें इतना श्रम करना पड़ा कि उनकी जंघाओं का स्पन्दन बन्द हो गया। भुजापाश शिथिल पड़ गए। हृदय धड़कने लगा, आँखें मुँद गईं।

इस युद्धजन्य परिणाम से रति-रस की सिद्धि द्योतित होती है। इस प्रकार के रति युद्ध से स्त्री थक जरूर जाती है किन्तु उसका राग और उद्रेक चरम सीमा तक पहुँच जाता है। साहस भरे हुए इस प्रकार के युद्ध को जब रमणी छेड़ती है तो उसकी शक्ति मादकता बनकर आँखों से फूट पड़ती है। उसकी रति लालसा हृदय से उठकर उरोजों पर टिक जाती है और वह थक कर पुरुष के वक्ष पर गिर पड़ती है। कुछ लजाती हुई मन्दहास करती है और पुरुष पर ऐसा साभिप्राय दृष्टिपात करती है, जिसे चित्र द्वारा तो प्रकट किया जा सकता है किन्तु शब्दों द्वारा नहीं।

इस विपरीत रति में स्त्री वही आचरण करती है जो पुरुष किया करता है। स्त्री जब पुरुष रूप में रति क्रिया में प्रवृत्त होती है तब उसे पुरुषायित कहा जाता है। पुरुषों के जिन उपसर्पणों को स्त्रियाँ पुरुषायित में प्रयोग में लाती हैं, उन्हें पुरुषोपसृप्त कहा जाता है। यह क्रिया दो प्रकार की होती है—१. संभोग से पूर्व पुरुष स्त्री की नीवी (कोंछी) की गाँठ खोलता है, आलिंगन-चुम्बन करता है। आपस की रगड़-झगड़ होती है जिससे स्त्री कामोन्मत्त हो जाती है। २. संभोग काल में नागरक यह निरीक्षण करता हुआ कि स्त्री के गुप्ताङ्ग के अन्दर किस स्थान या कोने में लिंग के स्पर्श से, रगड़ से अपना राग आँखों से प्रकट करती है, उसी स्थान पर विशेष रूप से जब वह उपसर्पण करता है तो अन्तः उपसर्पण किया जाता है। उपसर्पण करते हुए पुरुष को इतना ध्यान रखना चाहिए कि संभोग की जाने वाली स्त्री अक्षत योनि कुमारी है या स्वैरिणी अथवा अन्य प्रकार की। पुरुषायित और उपसृप्तक ये दोनों प्रयोग पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका के बीच राग और अनुराग बढ़ाने में सहज सहायक सिद्ध होते हैं।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साम्प्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
पुरुषोपसृप्तानि पुरुषायितं चाष्टमोऽध्यायः।

आदितस्त्रयोदशः।

---

१. गीतगोविन्द १२।६३

नवमोऽध्यायः

औपरिष्टकप्रकरणम्

आलिङ्गनादिपुरुषायितान्तं चतसृषु नायिकासूक्तम्, 'तृतीयाप्रकृतिः पञ्चमी-त्येके' इत्युक्तम्, तद्विषयमौपरिष्टकमुच्यते द्विविधेत्यादिना ।

द्विविधा तृतीयाप्रकृतिः स्त्रीरूपिणी पुरुषरूपिणी च ॥ १ ॥

तृतीयाप्रकृतिर्नपुंसकम् । स्त्रीरूपिणी स्त्रीसंस्थाना । स्तनादियोगात् । पुरुष-रूपिणी पुरुषसंस्थाना । श्मश्रुलोमादियोगात् । यद्वृत्तिमाश्रित्यौपरिष्टकमनयोस्त-दुच्यते ॥ १ ॥

कामसूत्रकार ने चारों प्रकार की नायिकाओं के विषय में आलिङ्गन से लेकर पुरुषायित तक के प्रयोगों का वर्णन किया है। अब तृतीय प्रकृति (हिजड़ों) के लिए औपरिष्टक योग बतलाया जा रहा है।

तृतीया प्रकृति के भेद

तृतीया प्रकृति दो प्रकार की होती है—एक स्त्री के रूप में और दूसरी पुरुष के रूप में ॥ १ ॥

तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

तत्र स्त्रीरूपिणी स्त्रिया वेषमालापं लीलां भावं मृदुत्वं भीरुत्वं मुग्धतामसहिष्णुतां व्रीडां चानुकुर्वीत ॥ २ ॥

तत्रेति । तयोः सम्यक्स्त्रीत्वख्यापनार्थं तावत्स्त्रीधर्मानुकरणम् । तत्र वेषं केशपरिधानादिविन्यासेन, आलापं काकल्यनुगतम्, लीलां मन्थरादिगमनम्, भावं हावादिकम्, मृदुत्वमकार्कश्यम्, भीरुत्वं भयशीलताम्, मुग्धतामृजुताम्, असहिष्णुतां प्रहणनवातातपाद्यक्षमताम्, व्रीडां लज्जामनुकुर्वीत ॥ २ ॥

स्त्री-रूपिणी तृतीया प्रकृति के कर्त्तव्य

रङ्ग, रूप, चाल-ढाल, बनावट, स्त्री की भाँति होते हुए भी जिसका मदन-मन्दिर पुरुष से संभोग कराने योग्य न हो उस हिजड़ी स्त्री को चाहिए कि वह स्त्रियों की भाँति ही वेष-भूषा रखे तथा हाव, भाव, लीला, विलास, लज्जा, भय, कोमलता, मुग्धता, असहिष्णुता आदि भावों का प्रदर्शन करे ॥ २ ॥

तस्या वदने जघनकर्म । तदौपरिष्टकमाचक्षते ॥ ३ ॥

तस्या इति स्त्रीधर्माननुकुर्वन्त्याः । मुखे जघनकर्मेति स्वरूपाख्यानम् । भगे लिङ्गेन यत्कर्म तन्मुखे क्रियमाणमौपरिष्टकम् । आचक्षत इति पूर्वाचार्यकृतेयं

संज्ञा । उपरिष्टान्मुखे भवतीत्यण् । 'अव्ययानां भमात्रे टिलोपः' । पश्चात् 'संज्ञायां कन्' । 'अमेहक्वतसित्रेभ्य एव' इति परिगणनात्त्यब्न भवति ॥ ३ ॥

औपरिष्टक

हिजड़ी स्त्री के मुख में जो जघन कर्म किया जाता है, उसे औपरिष्टक कहते हैं ॥ ३ ॥

फलमाह—

सा ततो रतिमाभिमानिकीं वृत्तिं च लिप्सेत् ॥ ४ ॥

सा तत इति—औपरिष्टकाद्रतिं प्रीतिमाभिमानिकीं प्रागुक्तलक्षणाम् । वृत्तिं जीविकाम्, भाटीलाभात् ॥ ४ ॥

ऐसी स्त्री कुचमर्दन, चुम्बन आदि क्रियाओं द्वारा अभिमानिनी का रति-सुख प्राप्त करने के साथ ही औपरिष्टककर्म (मुख-मैथुन) द्वारा अपनी जीविका भी चलाये ॥ ४ ॥

वेश्यावच्चरितं प्रकाशयेत् । इति स्त्रीरूपिणी ॥ ५ ॥

चरितमिति—वेश्याया वृत्तं वैशिके वक्ष्यति । तद्वेश्येव प्रकाशयन्ती गम्यैरभिगम्यमाना रतिं धृतिं वा प्राप्नोति ॥ ५ ॥

वेश्याओं का-सा आचरण हिजड़ी स्त्री को भी करना चाहिए। स्त्रीरूपिणी तृतीया प्रकृति (नपुंसक) का विषय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

द्वितीयामधिकृत्याह—

पुरुषरूपिणी तु प्रच्छन्नकामा पुरुषं लिप्समाना संवाहकभावमुपजीवेत् ॥ ६ ॥

तुशब्दो विशेषणार्थः । रतिरौपरिष्टकं च तुल्यम् । वृत्तं तु पृथगिति यदाह—प्रच्छन्नकामेति । आभिमानिकी प्रीतिः कामः स प्रच्छन्नो यस्याः । सा पुरुषरूपिणीत्वात्पुरुषेण सहसा न संप्रयुज्यत इति लब्धुमिच्छन्ती । संवाहकभावमुपजीवेदिति । लोकेऽङ्गमर्दनकर्मणा जीवेदित्यर्थः ॥ ६ ॥

पुरुष रूपिणी तृतीया प्रकृति के कर्त्तव्य

पुरुषों की जैसी आकृति वाली तृतीया प्रकृति पुरुषाकृति होने के कारण अपनी कामनाओं को छिपाये रखती है किन्तु पुरुष से संसर्ग की कामना रखती है। इस हालत में उसे पुरुषों के चरण दबाने आदि का काम करना चाहिए ॥ ६ ॥

एवमपि विश्वासाभावात्कथं रतिरिति विश्वासनार्थमाह—

संवाहने परिष्वजमानेव गात्रैरूरू नायकस्य मृद्नीयात् ॥७॥

संवाहन इति । तत्र संविष्टस्य नायकास्योरू स्वगात्रैरप्रवृत्तपरिचयत्वादुपगूहमानेव मृद्नीयात् ॥ ७ ॥

पैर दबाते समय वह अपने शरीर का स्पर्श नायक के शरीर से कराए तथा उसकी जाँघों को दबाये ॥ ७ ॥

प्रसृतपरिचया चोरुमूलं सजघनमिति संस्पृशेत् ॥ ८ ॥

एवं मृद्नती प्रसृतपरिचया चेदूरुमूलमपि संस्पृशेत् । सजघनमिति । लिङ्गस्थानं त्यक्त्वा सह जघनस्य स्तोकेन भागेनोरुमूलमित्यर्थः ॥ ८ ॥

इस तरह धीरे-धीरे जब परिचय बढ़ जाए तो वह नायक की जाँघों के जोड़ों और जाँघों को धीरे-धीरे मसले और सहलाये ॥ ८ ॥

तत्र स्थिरलिङ्गतामुपलभ्य चास्य पाणिमन्थेन परिघट्टयेत् । चापलमस्य कुत्सयन्तीव हसेत् ॥ ९ ॥

स्थिरलिङ्गतामिति सजघनभागोरुमूलसंस्पर्शात्स्तब्धलिङ्गताम् । पाणिमन्थेनेत्यागोपालादिप्रतीतेन लिङ्गं घट्टयेत् । न यथाकथंचित् । चापलं कुत्सयन्तीवेति । ईदृशस्तु चपलो यदूरुस्पर्शमात्रेण स्तब्धलिङ्गोऽसीति निन्दयन्ती स्वाभिप्रायख्यापनार्थं हसेत् । न तु रुष्यात् ॥ ९ ॥

इस प्रकार की क्रिया से यदि नायक का लिंग उत्तेजित हो उठे तो वह उसकी चपलता को उलाहना देते हुए हँसे और उस पुरुष के लिंग को हाथ की मुट्ठी से हिलाये, दबाये ॥ ९ ॥

कृतलक्षणेनाप्युपलब्धवैकृतेनापि न चोद्यत इति चेत्स्वयमुपक्रमेत् ॥ १० ॥

कृतलक्षणेनापीति । स्तब्धलिङ्गत्वं रागस्य लक्षणम् । तत्कृतं यस्य नायकस्य । उपलब्धवैकृतेनेति ज्ञातमुखचापलेन यदि न चोद्यते कुरु मुखचापलमिति तदा तस्मिन्स्वयमेव विना चोदनयोपक्रमेत् ॥ १० ॥

नायक का लिंग तभी उत्तेजित होता है जब राग उत्पन्न होता है। इस प्रकार उस हिजड़े द्वारा राग पैदा कर देने तथा यह ज्ञात होते हुए भी कि वह मुखमैथुन कराना चाहता है फिर भी पुरुष उस हिजड़े से मुखमैथुन के लिए न कहे। लेकिन हिजड़े को चाहिये कि वह स्वयं मुखमैथुन करने के लिए अग्रसर हो ॥ १० ॥

पुरुषेण च चोद्यमाना विवदेत् । कृच्छ्रेण चाभ्युपगच्छेत् ॥ ११ ॥

पुरुषेण तूपलब्धवैकृतेनानुपलब्धवैकृतेन वा चोद्यमाना नाहमेवंविधं कर्मेति

सहसाङ्गीकारप्रतिषेधार्थं विवदेत् । तदेव स्फुटयति—कृच्छ्रेण चेति । स्त्रीरूपिणी तु प्रकटकामत्वादचोदिताप्यादित एवोपक्रमेत् ॥ ११ ॥

कदाचित् पुरुष पहले से ही उससे, मुखमैथुन कराने के लिये कहे तो वह हिजड़ा आनाकानी करता हुआ बड़ी मुश्किल से मुखमैथुन कराये ॥ ११ ॥

तस्य क्रियाभेदाद्भेदमाह—

तत्र कर्माष्टविधं समुच्चयप्रयोज्यम् ॥ १२ ॥

तत्रेत्यौपरिष्टके। समुच्चयप्रयोज्यमिति। क्रमेण सर्वं समुच्चयेन योज्यमित्यर्थः॥

औपरिष्टक कर्म आठ प्रकार के होते हैं। उनका क्रमशः प्रयोग करना चाहिये ॥ १२ ॥

निमितं पार्श्वतोदष्टं बहिःसंदंशोऽन्तःसंदंशश्चुम्बितकं परिमृष्टकमाम्रचूषितकं संगर इति ॥ १३ ॥

१. निमित २. पार्श्वतोदष्ट ३. बहिःसंदंश, ४. अन्तःसंदंश, ५. चुम्बितक ६. परिमृष्टक ७. आम्रचूषितक और ८. सङ्गर—ये आठ औपरिष्टक कर्म हैं॥१३॥

तत्रापि नात्माभिप्रायेणेत्याह—

तेष्वेकैकमभ्युपगम्य विरामाभीप्सां दर्शयेत् ॥ १४ ॥

तेष्विति निमितादिषु एकैकं प्रथमात्प्रभृत्युपगम्य कृत्वा परित्यागेच्छां दर्शयेत्, कौतुकजननार्थमभ्यर्थनयापरं प्रयोक्ष्यामीति ॥ १४ ॥

हिजड़ा इन आठों में से क्रमशः एक-एक क्रिया को करता हुआ विराम करे जिससे नायक अधिक चकित और उत्सुक हो ॥ १४ ॥

नायकोऽप्येकस्मिन्नभ्युपगते किं प्रतिपद्यत इत्याह—

इतरश्च पूर्वस्मिन्नभ्युपगते तदुत्तरमेवापरं निर्दिशेत् । तस्मिन्नपि सिद्धे तदुत्तरमिति ॥ १५ ॥

इतरश्चेति नायकः। पूर्वस्मिन्निति निमिते। तदुत्तरमिति तस्मान्निमितादनन्तरं पार्श्वतो दष्टम्। निर्दिशेदिदं च कुर्विति। तस्मिन्नपि पार्श्वतो दष्टे क्रियया सिद्धे तदुत्तरं बहिःसंदंशमिति। अनेन क्रमेण सर्वं समुच्चयेन निर्दिशेत्। स्वरागपरिसमाप्त्यर्थं तस्माच्चाभिमानिकसुखजननार्थं नायिकापि तथैव प्रयुञ्जीतेत्ययं चोदनायां विधिः। स्वयमुपक्रमे च स्वाभिप्रायेणैव समुच्चये प्रयोज्यम् ॥ १५ ॥

नायक को चाहिये कि एक प्रकार की क्रिया पूरी हो जाने के बाद दूसरी क्रिया करने के लिए उस हिजड़े से कहे। इसी तरह दूसरी, तीसरी आदि के लिए कहे ॥ १५ ॥

तत्कर्म द्विविधम्—बाह्यम्, आभ्यन्तरं च । तत्र बाह्यमाह—

करावलम्बितमोष्ठयोरुपरि विन्यस्तमपविध्य मुखं विधुनुयात् । तन्निमितम् ॥ १६ ॥

करावलम्बितमिति अवनमनवारणार्थं करेण गृहीतमोष्ठयोरुपरि विन्यस्तमग्रभागेनापविध्येत्योष्ठेन वर्तुलीकृतेनावष्टभ्य मुखं स्वं विधुनुयात्कम्पयेत् । ओष्ठयोरुपरि विन्यस्तत्वान्निमितम् ॥ १६ ॥

निमित

पुरुष-लिंग को हाथ में लेकर वह हिजड़ा ओठों को गोल-गोल बना कर उन पर उसे रख ले, फिर थाम कर अपने मुँह को हिलाये । इसे निमित मुखमैथुन कहते हैं ॥ १६ ॥

हस्तेनाग्रमवच्छाद्य पार्श्वतो निर्दशनमोष्ठाभ्यामवपीड्य भवत्वेतावदिति सान्त्वयेत् । तत्पार्श्वतोदष्टम् ॥ १७ ॥

हस्तेनावच्छाद्य मुष्टिग्रहणेन ततः पार्श्वतो लिङ्गमोष्ठाभ्यामवपीड्य । निर्दशनमिति क्रियाविशेषणम् । दन्तवर्जमित्यर्थः । दन्तैस्तु ग्रहणमस्ति यदाह—भवत्वेतावदिति । एतावदेवास्तु । तद्ग्रहणेन परं खण्डनमिति सान्त्वयेत् ॥ १७ ॥

पार्श्वतोदष्ट

लिंग के अग्रभाग को हाथ से मूँदकर और उसके दोनों भागों में दाँत न लगाकर सिर्फ ओठों से दबा कर छोड़ दे—यह कह कर कि अब इतना ही करना है । इसे पार्श्वतोदष्ट कहते हैं ॥ १७ ॥

भूयश्चोदिता संमीलितौष्ठी तस्याग्रं निष्पीड्य कर्षयन्तीव चुम्बेत् । इति बहिःसंदंशः ॥ १८ ॥

भूयश्चोदितेति । पार्श्वतो दष्टे संचोदिता पुनरन्यत्र चोदिता । स्वयमुपक्रमे त्वचोदितैव संमीलितौष्ठी लिङ्गस्याग्रमन्तः प्रवेश्य मीलितावोष्ठौ यया सा । ताभ्यामेव निष्पीड्य कर्षयन्तीव चुम्बेदिति । ओष्ठाभ्यामेवास्य कर्षणं कुर्वाणेव त्यजेदित्यर्थः । बहिःसंदंशश्चर्मणो बहिःसंदंशनात् ॥ १८ ॥

बहिःसंदंश

यदि नायक दुबारा करने के लिए आग्रह करे तो नायक के लिङ्ग के अग्रभाग को मुँह के भीतर लेकर दोनों ओठों से दबाकर खींचता हुआ सा उसे चूमे । इसे बहिःसंदंश कहते हैं ॥ १८ ॥

आभ्यन्तरमाह—

तस्मिन्नेवाभ्यर्थनया किञ्चिदधिकं प्रवेशयेत् । सापि चाग्रमोष्ठाभ्यां निष्पीड्य निष्ठीवेत् । इत्यन्तःसंदंशः ॥ १९ ॥

तस्मिन्निति बहिःसंदंशे क्रियमाणे । अभ्यर्थनया याचनया । किञ्चिदधिकमिति निष्काष्य ग्रन्थिं यावन्नायकः प्रवेशयेदित्ययं चोदनापक्षः । स्वयमुपक्रमे तु किञ्चिदधिकं प्रवेश्याग्रं मणिबन्धमोष्ठाभ्यां निष्पीड्य निष्ठीवेन्निरस्येत् । अन्तःसंदंशो निष्कोशितस्य संदंशनात् ॥ १९ ॥

अन्तःसंदंश

नायक के फिर अनुरोध करने पर वह इस बार उसके लिङ्ग के अग्रभाग को कुछ अधिक मुँह के अन्दर रखकर ओठों से दबाकर उगल दे । इसे अन्तःसंदंश कहते हैं ।

करावलम्बितस्यौष्ठवद्ग्रहणं चुम्बितकम् ॥ २० ॥

ओष्ठवदिति यथाधरौष्ठस्यौष्ठाभ्यां ग्रहणं तथा निष्कोशितस्येति चुम्बितकं समग्रहणाख्यम् ॥ २० ॥

चुम्बितक

हाथ में लिंग को पकड़ कर दोनों ओठों को गोल-गोल बनाकर ओठों से दबाकर चूमना चुम्बितक है ॥ २० ॥

तत्कृत्वा जिह्वाग्रेण सर्वतो घट्टनमग्रे च व्यधनमिति परिमृष्टकम् ॥ २१ ॥

तदिति चुम्बितकं कृत्वा । अन्यथा ह्ययोगात् । जिह्वाग्रेणान्तः परिभ्रमता सर्वतो घट्टयेत्स्पृशेत् । अग्रे च व्यधनं स्रोतःस्थाने ताडनं जिह्वाग्रेणैव । परिमृष्टकं समन्तात् [परिमर्षणात्] ॥ २१ ॥

परिमृष्टक

चुम्बितक क्रिया करते समय लिङ्ग पर जीभ रगड़ना या लिङ्ग के छिद्र पर जीभ से ठोकर लगाना, दबाना—परिमृष्टक है ॥ २१ ॥

तथाभूतमेव रागवशादर्धप्रविष्टं निर्दयमवपीड्यावपीड्य मुञ्चेत् । इत्याम्रचूषितकम् ॥ २२ ॥

तथाभूतमेवेति निष्कोशितमेव । रागवशादिति । नायकस्य रागाधिक्यात् । तदर्धप्रविष्टकं निर्दयमत्यन्तम् । अवपीड्यावपीड्येति जिह्वौष्ठपुटेन द्विस्त्रिरवपीड्यावपीड्य मुञ्चेदभ्यन्तर एव । तदाम्रस्येव चूषितकम् ॥ २२ ॥

आम्रचूषितक

राग बढ़ जाने पर मुख में थोड़ा, आधा या पूरा लिङ्ग डालकर उसे आम की गुठली की तरह चूसना—आम्रचूषितक है ॥ २२ ॥

पुरुषाभिप्रायादेव गिरेत्पीडयेच्चापरिसमाप्तेः । इति संगरः ॥

पुरुषाभिप्रायादेवेति–पुरुषाभिप्रायमेव बुद्ध्वा प्रत्यासन्नास्य रतिरिति गिरेत् । पीडयेच्चेति । जिह्वाव्यापारेण पीडयित्वा गिरेत् । ओष्ठव्यापारेण पीडयेत् । आ समाप्तेरिति शुक्रविसृष्टिं यावत् । संगरः समन्ताद्गिरणात् ॥ २३ ॥

संगर

जितनी पुरुष की इच्छा हो उतना ही लिङ्ग मुख में डालकर जब तक स्खलित न हो तबतक उसे दबाते रहना—संगर है ॥ २३ ॥

यथार्थं चात्र स्तननप्रहणनयोः प्रयोगः । इत्यौपरिष्टकम् ॥

यथार्थमिति । यथा रागो निमितादिषु मृदुमध्याधिमात्रेण स्थितस्तथा स्तननप्रहणनयोः प्रयोगः । आलिङ्गनादीनामत्रासंभवात् । इत्यौपरिष्टकमिति । एवं विषयस्वरूपफलप्रवृत्तिप्रकारैरौपरिष्टकमुक्तम् ॥ २४ ॥

राग की मात्रा के अनुसार कम या अधिक वेग से मुखमैथुन कराते समय हिंजड़े को सीत्कार और प्रहणन क्रिया करनी चाहिए । औपरिष्टक विधान पूरा हुआ ॥ २४ ॥

देशसात्म्यवशादविषयेऽप्यस्य वृत्तिरिति दर्शयन्नाह—

कुलटाः स्वैरिण्यः परिचारिकाः संवाहिकाश्चाप्येतत् प्रयोजयन्ति ॥ २५ ॥

कुलटा इति । याः स्वं कुलमन्यद्वा सदृशमटन्त्यो भ्रष्टशीलास्ताः कुलटाः । याः सदृशमसदृशं वा कुलमविचार्य स्वच्छन्दचारिण्यस्ताः स्वैरिण्यः । या अन्यपूर्वा वा मुक्तप्रग्रहा नायकमुपचरन्ति ताः परिचारिकाः । याः संवाहनकर्मणा जीवन्ति ताः संवाहिकाः । एतत्प्रयोजयन्तीति । औपरिष्टकं कारयन्ति । न केवलं तृतीया प्रकृतिरित्यपिशब्दार्थः ॥ २५ ॥

हिजड़ों के अतिरिक्त कुलटा आदि स्त्रियों के औपरिष्टक कर्म

कुलटा, स्वैरिणी, परिचारिका और संवाहिका स्त्रियां भी मुखमैथुन कराती हैं ॥ २५ ॥

तदेतत्तु न कार्यम् । समयविरोधादसभ्यत्वाच्च । पुनरपि ह्यासां वदनसंसर्गे स्वयमेवार्तिं प्रपद्येत । इत्याचार्याः ॥ २६ ॥

तदेतत्तु न कार्यमिति प्रयोज्यमानमपि समयविरोधादिति। धर्मशास्त्र प्रतिषिद्धमेतत्। 'न मुखे मेहेत' इति। असभ्यत्वाच्चेति। सद्भिर्गर्हितत्वादसभ्यम्। तस्मादसभ्यत्वात्। प्रयोक्तुरप्यसभ्यत्वं दृष्ट एव दोषः। अयं चापर इत्याह—पुनरपि हीति। यदि हि कुलटादीनां मुखे जघनकर्म कुर्यात्तदा पुनरपि जघनकर्मकाले रागवशाद्वदनस्य संसर्गे संस्पर्शे सति अर्ति प्रतिपद्येत दुःखमधिगच्छेत्। विटालितोऽस्मीति स्वयमेवेति। न तत्र नायिकापि॥ २६॥

आचार्यों का मत

इस औपरिष्टक कर्म को तो न करना चाहिए। शास्त्र भी इसका निषेध करता है और है भी यह जंगलीपन का काम। मुखमैथुन करानेवाली स्त्रियों और हिजड़ों के साथ मुखमैथुन करने के बाद उनका मुँह चूमने से बड़ा दुःख होता है। ऐसा आचार्यों का मत है॥ २६॥

वेश्याकामिनोऽयमदोषः। अन्यतोऽपि परिहार्यः स्यात्। इति वात्स्यायनः॥ २७॥

वेश्याकामिन इति। कुलटादयो वेश्याविशेषाः। तत्कामिनो नायकस्यादोषोऽयमिति। समयविरोधादित्ययं दोषो न भवतीत्यर्थः। पत्न्याश्चौपरिष्टकादौ दोषः। 'न मुखे मेहेत' इति। यदाह वसिष्ठः—'यस्तु पाणिगृहीतायां मुखे मैथुनमाचरेत्। पितरस्तस्य नाश्नन्ति दशवर्षाणि पञ्च च॥' इति। अन्यतोऽपि परिहार्यं इति। असभ्यत्वाद्वदनसंसर्गाच्च। असभ्यत्वमर्तिश्चेत्ययं दोषः परिहार्यः। गुप्त्या वक्त्रभक्षणाच्च। कस्यचिद्देशप्रवृत्तेरदोषत्वादपरिहार्यं इत्यपिशब्दात्॥ २७॥

वात्स्यायन का मत

आचार्य वात्स्यायन का कहना है कि वेश्यागामियों के लिए शास्त्र का निषेध दोष नहीं माना जाता है। इसके अतिरिक्त जो यह कहा जाता है कि यह काम जंगलीपन का है और ऐसी स्त्रियों के मुख चूमने से दुःख होता है इन दोनों दोषों का भी परिहार है। जिस देश के लोगों की यह प्रवृत्ति है उनके लिए यह दोष नहीं माना जा सकता है

उभयमपि देशप्रवृत्त्या दर्शयन्नाह—

तस्माद्यास्त्वौपरिष्टकमाचरन्ति न ताभिः सह संसृज्यन्ते प्राच्याः॥ २८॥

तस्मादिति। यतश्चैवं तस्मान्न संसृज्यन्त इति संबन्धः। यास्त्विति। याः वेश्यास्तु औपरिष्टकमाचरन्ति मुखे जघनकर्म कुर्वन्ति न ताभिः सह संसृज्यन्ते संप्रयुज्यन्ते। मा भूत्तद्वदनसंसर्ग इति। अन्याभिरदृष्टदोषत्वात्संसृज्यन्त एवेत्यर्थोक्तम्। प्राच्या अङ्गात्पूर्वेण॥ २८॥

उदाहरण देते हैं—

प्राच्यों की प्रवृत्ति

प्राच्यदेशवासी उन स्त्रियों के साथ सम्भोग नहीं करते हैं जो मुखमैथुन नहीं कराती हैं ॥ २८ ॥

वेश्याभिरेव न संसृज्यन्ते आहिच्छत्रिकाः संसृष्टा अपि मुखकर्म तासां परिहरन्ति ॥ २९ ॥

आहिच्छत्रिका अहिच्छत्रभवा न संसृज्यन्ते । अदृष्टमश्रुतमप्यौपरिष्टकं तासु संभाव्यत इति । संसृष्टा अपि त एव कथंचिद्रागवशात् । मुखे कर्म चुम्बनम् ॥२९॥

अहिच्छत्रवासियों की प्रवृत्ति

अहिच्छत्र के निवासी वेश्यागमन करते ही नहीं और कदाचित् कोई करता भी है तो वह वेश्या का मुँह नहीं चूमता है ॥ २९ ॥

निरपेक्षाः साकेताः संसृज्यन्ते ॥ ३० ॥

साकेता आयोध्यकाः । ते निरपेक्षाः । वेश्यानां संप्रयोगे मुखकर्मणि च शौचाशौचविकल्पाभावात् ॥ ३० ॥

साकेतवासियों की प्रवृत्ति

साकेत (अवध) वासी पवित्रता-अपवित्रता से परे रहकर मनमाना वेश्यागमन करते हैं ॥ ३० ॥

न तु स्वयमौपरिष्टकमाचरन्ति नागरकाः ॥ ३१ ॥

नागरकाः पाटलिपुत्रकाः संप्रयुज्यन्ते वेश्याभिः, न तु स्वयं तासां मुखे जघनकर्म कुर्वन्ति । मा भूद्वदनसंसर्ग इति । प्रयोजितास्त्वाचरन्ति वदनसंसर्गवर्जम् ॥ ३१ ॥

नागरकवासियों की प्रवृत्ति

नागरक[1] के निवासी स्वयमेव कोई बुरा काम नहीं करते हैं ॥ ३१ ॥

सर्वमविशङ्कया प्रयोजयन्ति सौरसेनाः ॥ ३२ ॥

सर्वमिति । संप्रयोगमौपरिष्टकं मुखकर्म च । अविशङ्कयेति सर्वं शुचीत्यभिप्रायेणेत्यर्थः । सौरसेनाः कौशाम्ब्या दक्षिणतः कूले ये निवसन्ति ॥ ३२ ॥

सूरसेनवासियों की प्रवृत्ति

सूरसेन के निवासी सब काम निःशंक होकर करते हैं ॥ ३२ ॥

१. टीकाकार यशोधर ने नागर का अर्थ पाटलिपुत्र किया है । किन्तु नागरक एक स्वतंत्र स्थान था, ऐसा भी निर्णय पाया जाता है ।

शङ्कायां हि स्वभार्यास्वप्यनाश्वस्त [ता] मेव दर्शयन्नाह—

एवं ह्याहुः—को हि योषितां शीलं शौचमाचारं चरित्रं प्रत्ययं वचनं वा श्रद्धातुमर्हति। निसर्गादेव हि मलिनदृष्टयो भवन्त्येता न परित्याज्याः। तस्मादासां स्मृतित एव शौचमन्वेष्टव्यम्। एवं ह्याहुः—

'वत्सः प्रस्रवणे मेध्यः श्वा मृगग्रहणे शुचिः।
शकुनिः फलपाते तु स्त्रीमुखं रतिसंगमे ॥' इति ॥ ३३ ॥

एवं हीति। शीलं स्वभावं शौचमशुचिद्रव्यविश्लेषणं आचारं त्रयीकर्मानुष्ठानं चरितं कुलक्रमागतां स्थितिं प्रत्ययं विश्वासं वचनं वलिगतकं कः श्रद्धातुमर्हति। परमार्थतः प्रत्येतुं नैवेत्यर्थः। कुत इत्याह—निसर्गादेवेति। आत्मलाभादेव नान्यस्मात्। मलिनदृष्टयो मलिनबुद्धयः। यल्लोकशास्त्रविरुद्धमप्याचरन्ति। न च परित्याज्याः। एवंभूता अपि पुरुषार्थहेतुत्वात्। तस्माद्व्रतविधौ स्मृतित एव शौचमन्वेष्टव्यम्। लोके स्मृतेः प्रामाण्यात्। तां स्मृतिमाह—एवं हीति। आह स्मृतिकारः। मुखवर्जं गौः सर्वतो मेध्येत्युक्तम्। प्रस्रवणकाले तु मुखं शुचि। उच्छिष्टं क्षीरमपि। श्वपक्ष्युच्छिष्टं त्यजेदित्युक्तम्। मृगग्रहणफलपानकाले तु मुखस्य शुचित्वान्मांसं फलं च शुचि। तथा रतिसंगमे रत्यर्थसंगमे स्त्रीमुखं कृतौपरिष्टकमन्यद्वा मेध्यम्। अन्यदा सर्वाशुचिनिधानत्वादिति। अस्मिन्स्मृत्यर्थे सर्वत्र चुम्बनप्रसङ्ग इति ॥ ३३ ॥

इसीलिए कहा गया है कि ऐसा कौन है जो स्त्रियों के शील, शौच, आचार, चरित्र, विश्वास और वचन पर श्रद्धा करेगा। क्योंकि ये स्वभाव से ही मलिन दृष्टि वाली होती हैं फिर भी छोड़ने योग्य नहीं। इसलिए इनकी पवित्रता लोकाचार के अलावा धर्मशास्त्रों में ढूँढ़नी चाहिए। धर्मशास्त्रका कथन है कि—

दूध दुहते समय बछड़ा पवित्र होता है, हिरनों के पकड़ते समय कुत्ता पवित्र होता है, फलों को गिराते समय पची पवित्र होता है और रतिकाल में स्त्रियाँ पवित्र होती हैं। इसलिये मैथुन के समय स्त्रियों का मुख पवित्र समझना चाहिये॥

स्वमतं दर्शयन्नाह—

शिष्टविप्रतिपत्तेः स्मृतिवाक्यस्य च सावकाशत्वादेशस्थितेरात्मनश्च वृत्तिप्रत्ययानुरूपं प्रवर्तेत। इति वात्स्यायनः ॥ ३४ ॥

शिष्टविप्रतिपत्तेरिति। शिष्टानां प्राच्याहिच्छत्रिकनागरकाणां विप्रतिपत्तिर्दृश्यते। यथोक्तम्—'विरुद्धा च विगीता च दृष्टार्था दृष्टकारणा। स्मृतिर्न श्रुति-

मूला स्याद्या चैषा संवनस्मृतिः ॥' इति। अत्रोत्तरमाह—सावकाशत्वादिति। पत्नीमेवाधिकृत्येत्युक्तम्—'स्त्रीमुखं रतिसंगमे' इति। यद्येवं वेश्यासु चुम्बनविकल्पानर्थंक्यमित्यत्र पाक्षिकमभ्यनुज्ञानमाह—देशस्थितेरिति। यो यस्मिन्देशे आचारस्तदनुरूपं प्रवर्तेत। देशाचारस्य तत्रत्यानां प्रामाण्यात्। वृत्तिप्रत्ययानुरूपमिति। यथा सौमनस्यं यथा च विश्वासस्तथा प्रवर्तेत। न शास्त्रेणैव केवलेनेति ॥ ३४ ॥

निष्कर्ष बतलाते हुए वात्स्यायन फिर कहते हैं—

शिष्टजन स्त्रियों के मुखचुम्बन के विरुद्ध हैं और धर्मशास्त्र रति-काल में मुखचुम्बन को विहित बतलाते हैं। ऐसी स्थिति में जहाँ जैसा देशाचार हो उसके अनुसार तथा अपनी इच्छा के अनुसार एवं विश्वासों के अनुकूल व्यवहार करना चाहिए। यह वात्स्यायन का मत है ॥ ३४ ॥

इदं स्त्रीविषयमसाधारणमौपरिष्टकमुक्तम्। स्त्रिया एव कर्तृत्वात्। पुरुषविषयमाह—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

प्रमृष्टकुण्डलाश्चापि युवानः परिचारकाः।
केषांचिदेव कुर्वन्ति नराणामौपरिष्टकम् ॥ ३५ ॥

प्रमृष्टकुण्डला इति। उज्ज्वले कुण्डले येषामिति नेपथ्योपलक्षणम्। गृहीतनेपथ्या इत्यर्थः। युवानः प्राप्तरागत्वात्कर्तुं कुशलाश्चेटस्वरूपाः परिचारकाः। नान्ये। दोषात्। यथोक्तम्—'अजातश्मश्रवश्चेटा विश्वास्या मुखकर्मणि। योज्या गृहीतनेपथ्या नेतरे श्मश्रुदोषतः' इति। केषांचिदिति। ये मन्दरागा गतवयसोऽतिव्यायता ये च स्त्रीष्वलब्धवृत्तयः ॥ ३५ ॥

इस विषय के श्लोक हैं—

कानों में कुण्डल आदि धारण कर साज-सज्जा से रहने वाले कोई-कोई युवक और परिचारक भी औपरिष्टक कर्म करते हैं ॥ ३५ ॥

इदमप्यसाधारणम्। एकस्यैव कर्तृत्वात्। द्वयोः कर्तृत्वे साधारणम्। यदाह—

तथा नागरकाः केचिदन्योन्यस्य हितैषिणः।
कुर्वन्ति रूढविश्वासाः परस्परपरिग्रहम् ॥ ३६ ॥

तथेति। नागरका ये नागरवृत्तावधिकृताः। केचिदिति योषाप्रायाः। हितैषिणः। विसृष्टिसुखकारित्वात्। रूढविश्वासा मैत्र्या। परस्परपरिग्रहमिति। मम

तावत्कुरु पश्चात्तवापि करिष्यामीति। युगपद्वा देहव्यत्यासेन रागात्कालमनपेक्षमाणाविति द्विविधम्। साधारणमित्युपलक्षणम्। स्त्रियोऽपि कुर्वन्ति। यथोक्तम्—'अन्तःपुरगताः काश्चिदप्राप्तभाण्डकाः (?) स्त्रियः। भगे ह्यन्योन्यविश्वासात्कुर्वन्ति मुखचापलम्॥ इति॥ ३६॥

इसी तरह कुछ विलासी नागरक भी एक दूसरे के हितैषी और विश्वस्त मित्र बनकर परस्पर औपरिष्टक कर्म करते हैं॥ ३६॥

पुरुषाश्च तथा स्त्रीषु कर्मैतत्किल कुर्वते।
व्यासस्तस्य च विज्ञेयो मुखचुम्बनवद्विधिः॥ ३७॥

तथा स्त्रीष्विति। तथा स्त्रियः पुरुषेषु तथा स्त्रीषु पुरुषाः परिचारका नायका वा केचिद्भगे मुखेन कर्म कुर्वन्ति। किलेति सम्भावनायाम्। तस्य चेति पुरुषकर्तृकस्य। व्यासः प्रकारः। मुखचुम्बनवदिति। कन्याचुम्बने निमितादिना अन्यत्र समादिग्रहणेन यो विधिः सोऽस्यापि यथासम्भवं विज्ञेयः॥ ३७॥

कोई-कोई पुरुष स्त्री के साथ औपरिष्टक कर्म करते हैं। स्त्री के साथ औपरिष्टक की विधि यही हो सकती है कि पुरुष स्त्री की योनि का चुम्बन करे॥ ३७॥

तत्र परिचारके कर्तव्यंसाधारणं नायकेऽपि तु साधारणमपि सम्भवति। तच्च युगपत्परिपाट्या वा। तत्र युगपत्कथमित्याह—

परिवर्तितदेहौ तु स्त्रीपुंसौ यत्परस्परम्।
युगपत्संप्रयुज्येते स कामः काकिलः स्मृतः॥ ३८॥

परिवर्तितदेहाविति। पार्श्वसम्पुटे पुमान्स्त्रियामूर्वोः शिरो निधत्ते स्त्री च पुंस इति युगपत्संप्रयुज्येते। एकस्मिन् काले मुखेन परस्परोपस्थेन्द्रियग्रहणात्। काकिलः स्मृत इति। स्त्री पुमांश्च काक इव काकः। मुखेनामेध्यग्रहणात्। तौ विद्येते यस्मिन्काम इति। पिच्छादिषु द्रष्टव्यम्। ककनं वा काको लौल्यम्। 'कक लौल्ये' इति धातुपाठात्। तद्विद्यते ययोः स्त्रीपुंसयोरितीनिप्रत्ययः। तौ लात्यादत्त इति॥ ३८॥

स्त्री और पुरुष विपरीत दिशाओं में मुँह करके लेट जाएँ और पुरुष स्त्री की योनि का चुम्बन करे तथा स्त्री उसके लिङ्ग का, तब उस औपरिष्टक को 'काकिल' कहा जाता है॥ ३८॥

नरयोषितोश्च परिवर्तितदेहयोर्व्याख्यातः। तत्र साधारणासाधारणयोरसाधारणं श्रेयः ततोऽपि परिचारकविषयं हि खलसंसर्गादि परिशुद्धमिति दर्शयन्नाह—

तस्माद् गुणवतस्त्यक्त्वा चतुरांस्त्यागिनो नरान्।

वेश्याः खलेषु रज्यन्ते दासहस्तिपकादिषु ॥ ३९ ॥

तस्मादिति। गुणवतो नायकगुणयुक्तान्। चतुरान् लोकयात्राकुशलान्। त्यागिनो दानशूरान्। वरानभिजनाद्युपेतान्। खलेषु नीचेषु। तानेव दर्शयति—दासहस्तिपकादिष्विति। रज्यन्त इति स्वभावाख्यानम्। अशिष्टधर्माचरणाद्वा। तेषु च रक्ता अपरचरितमपि प्रकाशयन्ति ॥ ३९ ॥

इसीलिए अधिकतर वेश्याएँ शिष्ट, सम्भ्रान्त, कलाकुशल, गुणी व्यक्तियों को छोड़ कर नौकरों, साईसों, पीलवानों आदि खल व्यक्तियों में अधिक अनुरक्त हुआ करती हैं ॥ ३९ ॥

न त्वेतद्ब्राह्मणो विद्वान्मन्त्री वा राजधूर्धरः।
गृहीतप्रत्ययो वापि कारयेदौपरिष्टकम् ॥ ४० ॥

न त्वेतदिति। नैवं वेश्याभिः कारयेत्। ब्राह्मणो विद्वान् श्रुतिस्मृत्यर्थतत्त्वज्ञः। मन्त्री राजधूर्धरः प्राधान्येन यो राज्यं संवाहयति। समासान्तः 'अ' अत्रानित्यत्वान्न भवति। अन्यो वा कश्चिद्गृहीतप्रत्ययो लोके विश्वास्यः। तासु क्रियमाणं लोके लब्धसमाख्यानं गौरवं व्यावर्तयति। अतो मा भूद्वदनसंस्पर्शदोषः। असभ्यत्वदोषस्तु दुर्निवारो नेतरेषाम्। अविवक्षितत्वात् ॥ ४० ॥

इस प्रकार के औपरिष्टक कर्म विद्वान् को, ब्राह्मण को, राजमंत्री को, राजा तथा लोकनायक और जनप्रिय व्यक्ति को न कराना चाहिए ॥ ४० ॥

ननु च व्यासस्तन्मुखचुम्बनवद्विधिरिति शास्त्रेऽभिहितत्वात्साधारणस्यापि प्रयोगप्रसङ्ग इत्याह—

न शास्त्रमस्तीत्येतावत्प्रयोगे कारणं भवेत्।
शास्त्रार्थान्व्यापिनो विद्यात्प्रयोगांस्त्वेकदेशिकान् ॥ ४१ ॥

न शास्त्रमिति। अभिधायकं शास्त्रमस्तीति नैतावत्प्रयोगे कारणम्। शास्त्रार्थान्व्यापिन इति। आलिङ्गनादेरर्थस्य रत्यौपयिकत्वात् सर्वानेव कामिनोऽधिकृत्य प्रवृत्तत्वात्। प्रयोगानेकदेशिकान्। कस्यचिदेवार्थस्य शिष्टैः प्रवर्तनात् ॥४१॥

इस विषय का शास्त्र बना हुआ है—केवल इतना ही इन विषयों के प्रयोग का कारण नहीं हुआ करता। क्योंकि शास्त्र तो व्यापक हुआ करते हैं, उनमें अच्छा बुरा सब कुछ रहता है किन्तु प्रयोग सीमित और एकदेशीय हुआ करते हैं ॥ ४१ ॥

अयं च न्यायोऽन्यत्रापीत्याह—

रसवीर्यविपाका हि श्वमांसस्यापि वैद्यके।
कीर्तिता इति तत्किं स्याद्भक्षणीयं विचक्षणैः ॥ ४२ ॥

रसवीर्यविपाका इति। रसो मधुरादिः। वीर्यं सामर्थ्यम्। विपाक उपयुक्तस्य परिणतौ मधुरादिः। श्वमांसस्यापि कीर्तिता इति व्यापित्वं रसादीनाम्। भक्षणीयं विचक्षणैरित्येकदेशित्वम् ॥ ४२ ॥

आयुर्वेद शास्त्र में तो कुत्ते के मांस को भी रस, वीर्यवर्द्धक बताया गया है। क्योंकि जब मांस के गुणदोष बताने का प्रकरण चल रहा हो तो कुत्ते के मांस के भी गुणदोष बताने ही चाहिए किन्तु क्या इतना लिख देने से लोगों को कुत्ते का मांस खाना चाहिए ? ॥ ४२ ॥

यद्येवं शिष्टपरिहृतत्वादिहोपदेशानर्थक्यमित्याह—

सन्त्येव पुरुषाः केचित्सन्ति देशास्तथाविधाः।
सन्ति कालाश्च येष्वेते योगा न स्युर्निरर्थकाः ॥ ४३ ॥

तादृशा इति सन्ति ये शुच्यशुचिषु निर्विकल्पाः। देशास्तथाविधा लाटसिन्धुविषयादयः। काला औपरिष्टकसात्म्याः स्त्र्यायत्ता यदाजीवितादयः (?) योगा इति। मुखचुम्बनवद्विधेयम् ॥ ४३ ॥

कुछ ऐसे लोग होते हैं, कुछ ऐसे देश होते हैं और कोई ऐसा समय होता है जिनके लिए ऐसे विधान बुरे नहीं बल्कि उपयोगी होते हैं ॥ ४३ ॥

तस्माद्देशं च कालं च प्रयोगं शास्त्रमेव च।
आत्मानं चापि संप्रेक्ष्य योगान्युञ्जीत वा न वा ॥४४॥

तस्मादिति। यतश्चैवं। तस्मात्साधारणस्यासाधारणस्य वा यथास्वं देशकालौ संवीक्ष्य, प्रयोगमुपायं च प्रयुज्यते नेति, शास्त्रमभिधायकमात्मानं च, कतरन्मे युक्तमिति न वा प्रयुञ्जीतोभयमपि विद्वान्। स्वमात्मानं संवीक्ष्य ॥ ४४ ॥

इसलिए देश, काल, शास्त्र और व्यवहार तथा अपने को भी देखकर जो उपयोगी हों उन्हीं विधियों, योगों को अपनाना चाहिए जो अनुपयुक्त हों उन्हें त्याग देना चाहिए ॥ ४४ ॥

अथवा नायं पुरुषादिनियम इत्याह—

अर्थस्यास्य रहस्यत्वाच्चलत्वान्मनसस्तथा।
कः कदा किं कुतः कुर्यादिति को ज्ञातुमर्हति ॥ ४५ ॥

अर्थस्येति। औपरिष्टकस्य रहसि भवत्वात् चित्तस्यास्थिरत्वात् विशेषतो रागसंयुक्तस्य। कः कुर्यात् विद्वानितरो वेति। कदा किं मत्तावस्थायामितरस्यां वेति। किं कुर्यात् साधारणमसाधारणं लौकिकं वा संप्रयोगमिति। कुतो हेतोः

किं रागाद्देशप्रवृत्तेर्वेति को ज्ञातुमर्हति। नैवेत्यर्थः॥ औपरिष्टकमेकोनविंशं प्रकरणम्॥ ४५॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे औपरिष्टकं नवमोऽध्यायः।

यह औपरिष्टक कर्म बहुत छिपा कर किया जाता है और इसे छिपाकर ही रखा जाता है। मन बहुत चंचल होता है। कौन आदमी किस समय क्या कर डाले यह कोई नहीं जान सकता है॥ ४५॥

मुख मैथुन को औपरिष्टक कहते हैं। औपरिष्टक के सम्बन्ध में पिछले प्रकरण में बतलाया जा चुका है। यह निन्दनीय क्रिया अक्सर हिजड़ों में ही प्रचलित है। आचार्यों का कहना है कि यह बहुत ही गर्हित, अशिष्ट, असामाजिक और असभ्य क्रिया है। यही नहीं इसका विरोध धर्मशास्त्रों[1] और शिष्ट समाज ने भी किया है इसलिए इस क्रिया को न करना चाहिए। फिर भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अपनी कुप्रवृत्तियों के कारण अथवा बुरी सोहबत में फँसकर अनिष्टकारी वासनाओं से अभिभूत होकर इस दुष्कर्म में प्रवृत्त होते हैं।

इस कथन से एक बात साफ़ ज़ाहिर है कि यह कर्म नितान्त गर्हित और हेय है और कोई नया नहीं बल्कि पुराना दुष्कर्म है जो परम्परागत चला आ रहा है क्योंकि स्मृति आदि धर्मशास्त्रों ने इसकी निन्दा की है, इसका निषेध किया है। यदि यह ऐसा दुष्कर्म है तब फिर वात्स्यायन अपने शास्त्र में इसको प्रश्रय क्यों देता है—यह पूछा जा सकता है। इस आक्षेप का निराकरण करते हुए वात्स्यायन कहते हैं कि—

वैद्यक में कुत्ते का मांस खाने का भी विधान लिखा हुआ है। इसलिए इसका मतलब यह नहीं कि बल, वीर्य की वृद्धि के लिए लोग कुत्ते का मांस खाना शुरू कर दें। शास्त्र तो एक निर्देश या सन्दर्भ ग्रन्थ है, उसमें अच्छी, बुरी सभी बातों का उल्लेख होने के साथ उनकी व्याख्या और उपयोग की व्यवस्था भी रहती है। औपरिष्टक एक मैथुनिक क्रिया है, वासनाओं से उसका ताल्लुक है, उसकी एक परम्परा है, फिर शास्त्र उसकी उपेक्षा कैसे

१. अयोनौ गच्छतो योषां पुरुषं वापि मेहतः।
चतुर्विंशतिको दण्डस्तथा प्रव्रजितागमे॥
—याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहार अध्याय; स्त्रीसंग्रहण प्रकरण, श्लोक २९३

कर सकता है। हाँ शास्त्र का काम जहाँ उसका उल्लेख करने का है वहाँ उसकी यह जिम्मेदारी भी है कि वह उससे होने वाली हानियों का भी उल्लेख कर, उसको निन्दनीय बताकर उसका बहिष्कार करे क्योंकि शास्त्र सबका हितचिन्तक होता है, समाज और व्यक्ति का नियामक होता है वह समाज और व्यक्ति को हीन और हेय नहीं बनाना चाहता। असभ्य, असांस्कृतिक वातावरण पैदा करना उसका काम नहीं है। इसलिए जहाँ वह यह बतलाता है कि औपरिष्टक एक मैथुनिक क्रिया है वहाँ वह उसके दोषों को बताकर उसका निषेध भी करता है।

इस विषय पर वात्स्यायन मानव-वृत्तियों और देशाचार को प्राथमिकता देते हुए कहते हैं कि शास्त्र व्यभिचारियों और अनाचारियों के लिए कोई महत्व नहीं रखता है। दुष्कर्मियों को शास्त्र-विरुद्ध आचरण करने का पाप भी नहीं लगता है। मुख-मैथुन एक क्रिया है, जिस देश का यह आचार हो, जिस व्यक्ति की यह प्रवृत्ति हो उसे इसका प्रयोग करना जायज है। वात्स्यायन ने ३६वें सूत्र द्वारा यह बतला कर कि—कुछ रूढ़विश्वासी नागरक भी इस प्रकार के असामान्य मैथुन को करते-कराते हैं—लौंडेबाजी की ओर इशारा किया है। टीकाकार यशोधर ने केचित् (कुछ) की व्याख्या जनख़ा करके वात्स्यायन के मत को अधिक सुस्पष्ट किया है। 'परस्पर-परिग्रहम्' की व्याख्या करते हुए यशोधर ने पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियों में भी परस्पर योनि-संघर्षण करने की प्रवृत्ति का उल्लेख किया है। आजकल स्त्रियों की इस क्रिया को 'चपती' कहा जाता है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साम्प्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
औपरिष्टकं नवमोऽध्यायः।

आदितश्चतुर्दशः।

दशमोऽध्यायः

रतारम्भावसानिकप्रकरणम्

एवमौपरिष्टकान्तं रतमुक्तम् । तस्यारम्भेऽवसाने च किं प्रतिपत्तव्यमिति तदुद्भवं रता[रम्भा]वसानिकमुच्यते । यद्यपि प्रीतिविशेषानन्तरं रतारम्भिकं युक्तम् । रतावसानिकं चेहैव । तथाभूतत्वादनुष्ठानक्रमस्येति । तथापि प्रीतिसंबन्धत्वादालिङ्गनादीनां तदभिधानम् । तदनन्तरं च प्रकीर्णकन्यायेन सर्वशेषतया रतारम्भः । तत्प्रतिबद्धत्वाच्चावसानिकम् ।

तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

नागरकः सहमित्रजनेन परिचारकैश्च कृतपुष्पोपहारे संचारितसुरभिधूपे रत्यावासे प्रसाधिते वासगृहे कृतस्नानप्रसाधनां युक्त्यापीतां स्त्रियं सान्त्वनैः पुनः पानेन चोपक्रमेत् ॥ १ ॥

नागरक इति—नागरकवृत्तावधिकृतो मित्रजनेत पीठमर्दादिना परिचारकैस्ताम्बूलदायकसरककर्मान्तिकादिभिः (?) सहोपक्रमेतेति सम्बन्धः । पुष्पोपहारः पुष्पप्रकारः । रत्यावास इति रत्यर्थो य आवासो बाह्यं वासगृहं तत्र हि शयनीयं प्रकल्पेतेति । अयं वासगृहसंस्कारः । स्त्रियाः द्विविधः—स्नानं नेपथ्यग्रहणं चेति शरीरसंस्कारः । असंस्कृताया दर्शनमपि प्रतिषिद्धम् । युक्त्या पीतामिति मनःसंस्कारः । नातिपीताम् । विभ्रमकरत्वात् । पीतमस्या विद्यत इति । प्रथमं सान्त्वनैः प्रियवाक्यैः कुशलप्रश्नादिभिरुपक्रमेत् । पुनः पानेन सरकः पीयतामिति ॥ १ ॥

नागरक को चाहिए कि वह अपने मित्रों और निजी सेवकों द्वारा पुष्पहारों से सजाये गए, सुगन्धित धूप से सुवासित रति-गृह में अपनी स्नात, समलंकृत, सुवस्त्रा, किंचित् मद्यपान की हुई स्त्री के समीप बैठे और फिर उससे मद्यपान करने के लिए कहे ॥ १ ॥

दक्षिणतश्चास्या उपवेशनम् । केशहस्ते वस्त्रान्ते नीव्यामित्यवलम्बनम् । रत्यर्थं सव्येन बाहुनानुद्धतः परिष्वङ्गः ॥ २ ॥

तत्र दक्षिणे पार्श्वेऽस्या उपविशेत् । येन दक्षिणहस्तेन चषको वामेन च बाहुना परिष्वङ्गः । तत्र प्रथमं केशहस्तादिष्ववलम्बनं संस्पर्शनम् । ततः सव्येन वामेन परिष्वङ्गः । अनुद्धत इति यथा नोद्विजते ॥ २ ॥

उसकी दाहिनी ओर बैठे। उसके केशों को हाथ से सहलाए, वस्त्रों पर हाथ फेरे तदनन्तर नीवी (नाभि के नीचे लगी हुई साड़ी की गांठ—कौंछी) पर हाथ लगाए। रति—अनुराग बढ़ाने के लिए बाईं भुजा से उसको आलिंगन-बद्ध करे ॥ २ ॥

पूर्वप्रकरणसंबद्धैः परिहासानुरागैर्वचोभिरनुवृत्तिः।
गूढाश्लीलानां च वस्तूनां समस्यया परिभाषणम् ॥ ३ ॥

पूर्वप्रकरणसंबद्धैरिति—अतिक्रान्तेन प्रस्तावेन युक्तैः 'स्मरसि सुभगे यदावयोस्तत्र तत्र परिहासोऽनुरागश्चासीत्' इत्येवं वचोभिरनुवर्तनम्। गूढाश्लीलानां चेति। यद्गूढं दुर्बोधमश्लीलं ग्राम्यं लोकप्रतीतं वस्तु गाथास्कन्धकादिषु बद्धं तस्योभयस्यापि बुभुत्सायां समस्यया संक्षेपेण परिभाषणम्। परिकथनमित्यर्थः ॥

गूढ़ और अश्लील बातों को अनुराग बढ़ाने के बहाने समस्या के रूप में उपस्थित कर वार्तालाप करे। साथ ही हँसी मजाक भी करता रहे ॥ ३ ॥

सनृत्तमनृत्तं वा गीतं वादित्रम्। कलासु संकथाः। पुनः पानेनोपच्छन्दनम् ॥ ४ ॥

सनृत्तमनृत्तं वा गीतमिति। या नृत्ताभिज्ञा तत्समक्षं गीतार्थमाङ्गिकाद्यभिनयेन प्रकाशयीत। आसीननृत्तं स्यात्। इतरस्या गीतमेव केवलम्। वादित्रमिति नागदन्तावसक्तां वीणामादाय। तत्रान्यस्यासंभवात्। कलासु संकथा शेषास्वालेख्यादिषु कौशलख्यापनार्थम्। एवमावर्ज्य पुनः पानेनोपच्छन्दनं प्रोत्साहनम् ॥ ४ ॥

नृत्य के साथ अथवा नृत्य रहित गाना बजाना हो, सुकुमार कलाओं पर परिसंवाद हो, फिर मद्यपान कराकर उसे उत्साहित करे ॥ ४ ॥

जातानुरागायां कुसुमानुलेपनताम्बूलदानेन च शेषजनविसृष्टिः। विजने च यथोक्तैरालिङ्गनादिभिरेनामुद्धर्षयेत्। ततो नीवीविश्लेषणादि यथोक्तमुपक्रमेत। इत्ययं रतारम्भः ॥ ५ ॥

जातरागायां च यथोक्तानुष्ठानेन ताम्बूलदानसंप्रेषणोपायः। शेषजना मित्रपरिचारकादयः। यथोक्तैरिति रतात्प्रागुक्तानि यानि। उद्धर्षयेदुत्कृष्टेन हर्षेण योजयेत्। यथा शयनीयं प्रतिपद्यते। तत इति। उत्तरकाले शयनीयगतायाः नीवीविश्लेषणायोपक्रमेत्। इतःप्रभृति बाह्यं पुरुषोपसृप्तमिति ॥ ५ ॥

पुष्पानुलेपन, (इत्र) ताम्बूल आदि से सत्कार कर उसके उत्पन्न राग को बढ़ाए। अतिरिक्त बैठे हुए लोगों को विदा करे। इसके बाद एकान्त

कक्ष में पूर्ववत् राग बढ़ाने के लिए आलिंगन, चुम्बन करता हुआ उसे कामोत्तेजित करे। साड़ी की बँधी हुई गांठ को खोलना आदि संभोग से पूर्व की क्रियाएँ करे ॥ ५ ॥

रतावसानिकं रागमतिवाह्यासंस्तुतयोरिव सव्रीडयोः परस्परमपश्यतोः पृथक्पृथगाचारभूमिगमनम्। प्रतिनिवृत्य चाव्रीडायमानयोरुचितदेशोपविष्टयोस्ताम्बूलग्रहणमच्छीकृतं चन्दनमन्यद्वानुलेपनं तस्या गात्रे स्वयमेव निवेशयेत् ॥ ६ ॥

रतावसानिकमिति। वक्ष्यत इति शेषः। रागमतिवाह्य रतिमनुभूय। असंस्तुतयोरिवेति। अपरिचितयोर्यथा व्रीडा तद्वत्सव्रीडयोः। अविनयाचरणात्। एवं परस्परमपश्यतोः। तदवस्थदर्शनाद्वैराग्यमपि स्यादतः पृथक्पृथगाचारभूमिगमनम्। नैकत्र शौचभूमौ शौचं कार्यमित्यर्थः। प्रतिनिवृत्याचारभूमेरव्रीडायमानयोः। एकान्तेनापरित्यक्तलज्जत्वात्। उचितदेशस्तदानीं शयनीयमपास्यान्यदेशः। ताम्बूलस्य ग्रहणं भक्षणम्। तदानीं मुखस्याश्रीकत्वाद्वैरस्याच्च। तत्र क्षीणप्रधानधातुत्वाच्छरीरस्य बृंहणं बाह्यमाभ्यन्तरं च। तत्र बाह्यं ग्रीष्मकाले अच्छीकृतं चन्दनमन्यद्वानुलेपनं कालौपयिकम्। स्वयमित्यनुरागख्यापनार्थम्। निवेशयेत्। पश्चादात्मन इत्यर्थः ॥ ६ ॥

संभोग हो चुकने के बाद कामोत्तेजन करने वाले राग को छोड़कर दोनों एक दूसरे के प्रति अप्रार्थी बने हुए-से, परस्पर लज्जा करते हुए तथा एक दूसरे की ओर न देखते हुए अलग-अलग पेशाबघरों में जाकर पेशाब करें और अपने-अपने गुप्तांगों की सफाई करें। वहाँ से निवृत्त होकर लौटने पर लज्जाभाव को त्यागकर रतिस्थान से अतिरिक्त किसी दूसरे स्थान पर बैठकर दोनों ताम्बूल सेवन करें। चन्दन का अथवा ऋतु के अनुसार अन्य द्रव्य का अनुलेपन पुरुष स्त्री के शरीर में खुद लगाए ॥ ६ ॥

सव्येन बाहुना चैनां परिरभ्य चषकहस्तः सान्त्वयन् पाययेत्। जलानुपानं वा खण्डखाद्यकमन्यद्वा प्रकृतिसात्म्ययुक्तमुभावप्युपयुञ्जीयाताम् ॥ ७ ॥

आभ्यन्तरं पानादि। तत्रापि परिरभ्यालिङ्ग्य। चषके मद्यभाजने। सान्त्वयन्प्रियाणि ब्रुवन् पाययेत्। जलानुपानं वा खण्डखाद्यकं बृंहणीयत्वात्। अन्यद्वा तिलगर्भोत्करादिप्रकृतिसात्म्ययुक्तमुभावप्युपयुञ्जीयाताम् ॥ ७ ॥

और फिर बाएँ हाथ से उसका आलिंगन कर उसे सान्त्वना प्रदान करे। फिर अपनी प्रकृति, रुचि और ऋतु के अनुसार मीठा, फल आदि का जलपान करे ॥ ७ ॥

अच्छरसकयूषमम्लयवागूं भृष्टमांसोपदंशानि पानकानि चूतफलानि शुष्कमांसं मातुलुङ्गचुक्रकाणि सशर्कराणि च यथा-देशसात्म्यं च। तत्र मधुरमिदं मृदु विशदमिति च विदश्य विदश्य तत्तदुपाहरेत् ॥ ८ ॥

अच्छरसकयूषमिति। यूषं द्विविधं मांसनिर्यूहं व्रीहिनिर्यूहं च। बृंहणीयत्वान्मांसनिर्यूहं रसकयूषमच्छमुपयुञ्जीयाताम्। अम्लयवागूं मांससिद्धाम्। बृंहणीयत्वात्। भृष्टं भर्जितं मांसं तदेवोपदंशो येषां पानकानाम्। चूतफलानि पक्वानि। शुष्कमांसं बलबृंहणत्वात्। मातुलुङ्गचुक्रकाणीति बीजपूरमीषदपनीतचुक्रं खण्डशः कृत्तं शर्करायुक्तम्। हृद्यत्वात्। यथादेशसात्म्यमिति। यस्मिन्देशे येन सात्म्यम्। तत्रेति भक्ष्याद्युपयोगेऽनुरागख्यापनार्थो विधिः। विदश्य विदश्येति। उपलक्षणं चैतत्। इदं वृष्यमिदं वृष्यमित्यास्वाद्यास्वाद्य पानमपि तत्तदुपाहरेत् ॥ ८ ॥

अथवा अच्छ, रसक, यूष, अम्लयवागू, स्थान और ऋतु की अनुकूलता के अनुसार आम चूसे। यह बहुत मीठा है, यह देखो कितना सुन्दर और बड़ा है—इसे चखो—ऐसा कह-कहकर स्त्री को खाद्य पदार्थ देता जाये ॥ ८ ॥

हर्म्यतलस्थितयोर्वा चन्द्रिकासेवनार्थमासनम्। तत्रानुकूलाभिः कथाभिरनुवर्तेत। तदङ्कसंलीनायाश्चन्द्रमसं पश्यन्त्या नक्षत्रपंक्तिव्यक्तीकरणम्। अरुन्धतीध्रुवसप्तर्षिमालादर्शनं च। इति रतावसानिकम् ॥ ९ ॥

हर्म्यतलस्थितयोर्वेति। यदि वासगृहस्थितयोरासने तापश्चन्द्रिका चोदिता तदा तदुपरि सौधस्थितयोरूर्ध्वयोश्चन्द्रिकासेवनार्थमासनम्। तत्सेवनं च तापापनयनार्थम् यदि च तापेन न तत्र ताम्बूलग्रहणाद्यनुष्ठितं तदानीमिहानुष्ठेयम्। तत्रेति—हर्म्यतले। भुक्तविरसत्वात्कामस्य बृंहणानन्तरं कामजननार्थं तदनुकूलाभिः कथाभिरनुवर्तेत। तदङ्कसंलीनायाश्चेति। आसीनस्य नायकस्याङ्के न्यस्तदेहाया नियतं गगनतले दृष्टिः। तत्र चन्द्रमसं नयनानन्दजननम्। यस्याङ्कसङ्गान्नक्षत्रपंक्तिव्यक्तीकरणम्। प्रायशः स्त्रीणां नक्षत्रपंक्तिष्वपरिचयात्। इयमरुन्धती भगवती सूक्ष्मा य एनां न पश्यति स षण्मासान्म्रियते। अयं ध्रुवा-

दिविस्तारः यद्दर्शनाद्दिवसगतं पापमपैति । एते च सप्तर्षयः पंक्त्या स्थिताः । इति संदर्शयेत् ॥ ९ ॥

ऋतु अनुकूल हो तो रात की चाँदनी का आनन्द लेने के लिये घर की छत पर दोनों बैठें और प्रेमभरी मीठी-मीठी बातें आपस में करें। पति की गोद में स्त्री लेट जाय और चन्द्रमा की छटा देखने में निमग्न हो जाए। तथा पति नक्षत्रमालाओं के नाम बतलाते हुए कहे—देखो वह अरुन्धती है और वह ध्रुव है, इधर सप्तर्षि हैं—और यह रही आकाशगंगा। इस तरह शरीर और मन को शान्त सुस्थिर बनाकर अलग-अलग बिस्तरे पर दोनों को सो जाना चाहिए ॥ ९ ॥

द्वयमप्यधिकृत्याह—

तत्रैतद्भवति—

अवसानेऽपि च प्रीतिरुपचारैरुपस्कृता ।
सविस्रम्भकथायोगै रतिं जनयते पराम् ॥१०॥

तत्रेत्यारम्भेऽवसाने चोभयत्राप्येतद्वक्ष्यमाणकं भवति । अवसानेऽपीति । अपिशब्दादारम्भेऽपीति । प्रीतिः स्त्रियाः पुंसश्च स्नेहः । उपचारैः स्रग्गन्धादिभिः पानादिभिश्च । उपस्कृतेत्यभिवर्धिता । सविस्रम्भकथायोगैरिति । सविश्वासाभिः कथाभिः सविश्वासैश्च योगैः । रतिं विसृष्टिलक्षणां परामुत्कृष्टां जनयते । कारणस्य तथाविधत्वात् ॥ १० ॥

इस विषय में ऐसी कहावत प्रसिद्ध है—

आलिंगन, चुम्बन, मीठी-मीठी प्यार भरी बातों से तथा प्रसंगात् अन्तर कथाओं से दुबारा भोगेच्छा उत्पन्न हो जाया करती है ॥ १० ॥

परस्परप्रीतिकरैरात्मभावानुवर्तनैः ।
क्षणात्क्रोधपरावृत्तैः क्षणात्प्रीतिविलोकितैः ॥ ११ ॥

तत्र विस्रम्भयोगमधिकृत्याह—परस्परप्रीतिकरैरिति । स्त्रीपुंसयोस्तदन्ते सुखकरैः । कैरित्याह—आत्मभावानुवर्तनैरिति । आत्माभिप्रायेण यान्यनुवर्तनान्यालिङ्गनादीनि । अनुवर्त्यन्ते एभिरिति कृत्वा । क्षणक्रोधपरावृत्तैः क्षणप्रीतिविलोकनैरिति । अन्तरा प्रणयकलहात्क्षणक्रोधेन यानि परावर्तनानि पुनः प्रसादात्क्षणं प्रीत्या यानि विलोकनानि तैः । स्नेहो विवर्धत इति प्रतिपदं योज्यम् ॥ ११ ॥

प्रीति उत्पन्न करने वाले भावों को दिखाने से, क्षणभर में नाराज होकर मुँह घुमाने तथा दूसरे ही क्षण हँसकर प्यार भरी निगाहों से देखने से परस्पर रति बढ़ती है ॥ ११ ॥

हल्लीसकक्रीडनकैर्गायनैर्लाटरासकैः ।
रागलोलार्द्रनयनैश्चन्द्रमण्डलवीक्षणै ॥ १२ ॥

हल्लीसकक्रीडनकैरिति । हल्लीसकक्रीडनं येषु गीतेषु । यथोक्तम्—'मण्डलेन च यत्स्त्रीणां नृत्तं हल्लीसकं तु तत् । नेता तत्र भवेदेको गोपस्त्रीणां यथा हरिः ॥' लाटरासकैरन्योन्यदेशीयैः । तेषां श्रव्यत्वाद्गीतविशेषणमेतत् । रागलोलार्द्रनयनैरिति । रागेण चंचलानि सबाष्पाणि च नयनानि येषु गीतकेषु । अनेन रक्तकण्ठत्वं दर्शयति । चन्द्रमंडलवीक्षणैरिति मनोहारीति मनोहारिवस्तूपलक्षणम् । एतेऽनुवर्तनादयो विस्रम्भयोगाः । विश्वासेन प्रयुज्यमानत्वात् ॥ १२ ॥

पहली बार देखने पर मनोभावनाएँ कैसी थीं और फिर प्रथमबार वियोग होने पर कितना दुःख हुआ—इस प्रकार की चर्चा करने से रति-राग बढ़ता है ॥ १२ ॥

आद्ये संदर्शने जाते पूर्वं ये स्युर्मनोरथाः ।
पुनर्वियोगे दुःखं च तस्य सर्वस्य कीर्तनैः ॥
कीर्तनान्ते च रागेण परिष्वङ्गैः सचुम्बनैः ।
तैस्तैश्च भावैः संयुक्तो यूनो रागो विवर्धते ॥ १३ ॥

विस्रम्भकथामधिकृत्याह—आद्य इति । प्रथमे मनोरथाः कदानयानेन वा संगमोऽस्त्वित्यादयः । पुनर्वियोगे संतप्तयोर्दुःखमस्वास्थ्यम् । कीर्तनान्ते चेति पुनर्वियोगस्यावर्तनमिति दर्शयति । तैस्तैरिति अन्यैरपि विस्रम्भयोगैर्भावसंयुक्तैः । यून इत्येकशेषनिर्देशात् यूनो युवत्याश्च ॥ रतारम्भावसानिकं विंशतितमं प्रकरणम् ॥ १३ ॥

इस प्रकार परस्पर राग और अनुराग की बातें करते हुए साथ ही आलिंगन-चुम्बन करने से प्रसन्नता और राग बढ़ते हैं ॥ १३ ॥

आरम्भावसानयो रतावयवत्वात्तद्ग्रहणे यथा रतं त्र्यवस्थं तथा स्वाभाविकादिरागभेदादपि विशिष्यत इत्यतो रतविशेषा उच्यन्ते—

रागवदाहार्यरागं कृत्रिमरागं व्यवहितरागं पोटारतं खलरतमयन्त्रितरतमिति रतविशेषाः ॥ १४ ॥

रागवदित्यादिना स्वाभाविक आहार्यः कृत्रिमो दर्पजो विस्रम्भजश्चेति रागविशेषाः । तद्भेदाद्रागवदादयोऽपि रतविशेषाः ॥ १४ ॥

रागवत्—प्रथम दर्शन में ही प्रेम उत्पन्न हो जाना ।

आहार्यराग—किसी स्त्री से धीरे-धीरे प्रेम बढ़ाकर सम्बन्ध जोडना ।

कृत्रिमराग—बिना प्रेम के ही किसी खास प्रयोजन से सम्बन्ध जोड़ना ।

व्यवहितराग—किसी कारणवश अपनी स्त्री से सम्बन्ध न रहने पर भी किसी दूसरी स्त्री से अपनी पत्नी के समान सम्बन्ध रखना।

पोटारत—कामान्ध होकर किसी अधम स्त्री से सम्बन्ध जोड़ना।

खलरत—अपनी उद्दाम वासनाओं की तृप्ति के लिए किसी अभिजात कुल की स्त्री का या किसी हीन व्यक्ति से सम्बन्ध जुड़ जाना।

अयन्त्रितरतम्—जिन स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध जुड़ने में कोई रुकावट न हो। ये सब विभिन्न प्रकार के अच्छे-बुरे रतिविशेष हैं ॥ १४ ॥

एषां लक्षणमुपचारमाह—

संदर्शनात्प्रभृत्युभयोरपि प्रवृद्धरागयोः प्रयत्नकृते समागमे प्रवासप्रत्यागमने वा कलहवियोगयोगे तद्रागवत् ॥ १५ ॥

संदर्शनादिति। प्रथमदर्शनात्प्रभृति चक्षुःप्रीत्याद्यवस्थावशात्प्रवृद्धरागयोर्दूतसंप्रेषणादिप्रयत्नात्कृते समागमे यद्रतम्, यच्च प्रवासात्प्रत्यागमने विरहिणोरुत्कण्ठितयोः, यच्च प्रणयकलहे प्रशान्ते प्रसन्नयो रतं तद्रागवत्। स्वाभाविकस्य रागस्यातिशयेन योगात् ॥ १५ ॥

प्रेमी-प्रेमिकाओं के प्रथम साक्षात्कार, देखादेखी के बाद दोनों की आँखों में एक दूसरे की छवि समा जाना, मिलन के लिए हृदय में तड़पन का पैदा होना, दोनों के राग बढ़ जाने से अनेक प्रयत्नों द्वारा प्राप्त किए गए समागम अथवा परदेश से लौटने पर प्रणय-कलह को भूलकर फिर से राग भरा हुआ संयोग होना—रागवत् रत कहलाता है ॥ १५ ॥

तत्रात्माभिप्रायाद्यावदर्थं च प्रवृत्तिः ॥ १६ ॥

यावदर्थमिति प्रवृद्धरागत्वान्न किंचित्क्षमते। केवलं स्वाभिप्रायवशात्तयोर्यावद्रति प्रवृत्तिः ॥ १६ ॥

यह 'रागवत् रत' स्वतः बढ़ता है, इसलिए जबतक प्रेमी-प्रेमिका अपने-आप स्खलित नहीं होते तबतक सम्भोग-रत रहते हैं ॥ १६ ॥

मध्यस्थरागयोरारब्धं यदनुरज्यते तदाहार्यरागम् ॥१७॥

मध्यस्थरागयोरिति। इच्छामात्रस्योत्पन्नत्वाच्चक्षुःप्रीतिरेव। न मनःसंयोगादयोऽवस्थाः। इत्यतो मध्यस्थो रागः। तयोर्यदारब्धमारम्भकेण विधिना। अनुरज्यत इति पश्चाद्रागेण संश्लिष्यते। कारणेन कार्योपचारान्मिथुनमेव रतमित्युक्तम्। आहार्यरागम्। तत्र रागस्योत्पाद्यमानत्वात् ॥ १७ ॥

प्रेमी या प्रेमिका में से किसी एक को देखने पर जब उसके प्रति चाहमात्र उत्पन्न होती है कामासक्ति नहीं तो उसे 'मध्यस्थराग' कहा जाता है। इस

प्रकार के मध्यस्थराग से किए गए उपायों द्वारा राग उत्पन्न होने से जब दोनों का मिलन हो जाता है तो उसे 'आहार्यराग' कहते हैं ॥ १७ ॥

तत्र चातुःषष्टिकैर्योगैः सात्म्यानुविद्धैः संधुक्ष्य संधुक्ष्य रागं प्रवर्तेत ॥ १८ ॥

चातुःषष्टिकैरिति आलिङ्गनादिभिर्योगैः। सात्म्यानुविद्धैर्यस्य यैः सात्म्यं तदुक्तैः। रागमिच्छामात्रमात्मनः स्त्रियाश्च संदीप्य प्रवर्तेत ॥ १८ ॥

ऐसे अवसरों पर पूर्वोक्त पाञ्चालिकी चतुःषष्टि के आलिंगन आदि यथानुकूल उपायों से अपनी और नायिका की वासना को जगाकर संभोग-रत होना चाहिए ॥ १८ ॥

तत्कार्यहेतोरन्यत्र सक्तयोर्वा कृत्रिमरागम् ॥ १९ ॥

कार्यहेतोरिति। अर्थादनर्थप्रतीकाराद्वा। न रागात्। अन्यत्र सक्तयोर्वेति। अन्यस्मिन्पुंसि स्त्रीसक्ता पुमानप्यन्यस्यां स्त्रियाम्। तयोर्यदनुरोधाद्रतं कृत्रिमरागम्। उभयत्रापि स्वाभाविकरागस्यानुत्पत्तेः ॥ १९ ॥

स्त्री किसी और पर आसक्त हो और पुरुष किसी और पर आसक्त हो। ऐसे नायक-नायिका किसी प्रयोजनवश जब परस्पर संभोग-रत होते हैं तो उसे 'कृत्रिमराग' कहते हैं ॥ १९ ॥

तत्र समुच्चयेन योगाञ्शास्त्रतः पश्येत् ॥ २० ॥

समुच्चयेनेति न विकल्पेन। द्वयोर्योगयोरन्यतरयोगे स्वाभाविकरागस्यानुत्पत्तेः। तस्मात्समुच्चयेन सर्वानिवालिङ्गनादिप्रयोगान्प्रयोगकाले पश्येत्। तत्रापि शास्त्रतः। तदुक्तस्थानकालस्वभावानपेक्षयेत्यर्थः ॥ २० ॥

कृत्रिम आदि रागजन्य सम्भोग-क्रिया में कामशास्त्रीय योगों—उपायों का प्रयोग करना चाहिए ॥ २० ॥

अन्यत्र सक्तयोरित्यस्य विशेषमाह—

पुरुषस्तु हृदयप्रियामन्यां मनसि निधाय व्यवहरेत्। संप्रयोगात्प्रभृति रतिं यावत्। अतस्तद्व्यवहितरागम् ॥ २१ ॥

पुरुष इति। योऽन्यप्रसक्तोऽप्यभावितसंतानस्तस्यापरस्यामपि राग उत्पद्यत एव अस्वाभाविकत्वात्कृत्रिममुच्यते। यस्तु संभावितसंतानः सोऽन्यस्यां न रमते। रागाभावात्। यदा तु तामेव हृदयप्रियामिष्टां मनसाभिध्याय चेतसि रागमुत्पाद्य संप्रयोगात्प्रभृति रतिं यावद्व्यवहरेत्प्रवर्तेत तदा तद्व्यवहितरागमित्युच्यते। हृदयप्रियया रागस्य व्यवहितत्वात्। एवं योषिदपि हृदयप्रियं निधायेति योज्यम्। अत्र समुच्चयेन योगानित्ययमेवोपचारः ॥ २१ ॥

पुरुष अपनी वास्तविक प्रेमिका का मन में ध्यान रखकर प्रारम्भ से लेकर स्खलित होने तक संभोग के सभी व्यवहार काम में लाए तथा स्त्री भी अपने असली प्रेमी का स्मरण कर कृत्रिम-प्रेमी के साथ यथोचित रति-व्यवहार करे तब वह रत 'व्यवहितराग' कहलाता है ॥ २१ ॥

स्वाभाविकाहार्यकृत्रिमरागभेदात्त्रयो नायका नायिकाश्च । तत्र सदृशसंयोगे त्रीणि शुद्धानि । विपर्यये षट् संकीर्णानि । तत्र संकीर्णानिवोपचारान्योजयेत् । एतत्सर्वं समानप्रतिपत्त्योः स्त्रीपुंसयोः ।

हीनाधिकयोर्दर्पजाद्विशेषमाह—

न्यूनायां कुम्भदास्यां परिचारिकायां वा यावदर्थं संप्रयोग-स्तत्पोटारतम् ॥ २२ ॥

न्यूनायां तु कुम्भदास्यामिति । अधमायां कुम्भदास्यां परिचारिकायां वा न्यूनायां न समायां चन्द्रापीडस्येव पत्रलेखायाम् । यावदर्थं यावद्रति । पोटारतमिति । उभयव्यञ्जना पोटा नपुंसकम् ॥ २२ ॥

निम्नकोटि की कुम्भदासी या परिचारिका के साथ स्खलित होने तक जो संभोग होता है उसे 'पोटारत' कहते हैं ॥ २२ ॥

तत्रोपचारान्नाद्रियेत ॥ २३ ॥

तस्यामुपचारानालिङ्गनादीन्नाद्रियेत । अरञ्जनीयत्वात् । केवलं दर्पादुत्पन्नो रागोऽपनेयः ॥ २३ ॥

ऐसी स्त्रियों के साथ संभोग करते समय आलिंगन, चुम्बन आदि बाह्य-उपचार न करना चाहिए । क्योंकि ऐसे संभोग प्रयोजनपरक ही होते हैं ॥२३॥

तथा वेश्याया ग्रामीणेन सह यावदर्थं खलरतम् ॥ २४ ॥

तथेति यथा नायकस्यासादृश्यसंप्रयोगः । वेश्याया इति गणिकाया रूपाजीवायाः । न कुम्भदास्याः । अभिप्रेतमलभमानाया दर्पाद्ग्रामीणेन कर्षकादिना संप्रयोगः खलरतम् । खलत्वेन विगोपनकरत्वात् ॥ २४ ॥

इस तरह वेश्या का किसी गँवार के साथ जबतक स्वार्थ रहता है तबतक रमण करना 'खलरत' कहलाता है ॥ २४ ॥

ग्रामव्रजप्रत्यन्तयोषिद्भिश्च नागरकस्य ॥ २५ ॥

तथा ग्रामादियोषिद्भिर्नागरकस्य पत्तनवासिनो दर्पाद्यावदर्थं संप्रयोगः खलरतम् । न पोटारतम् । विगोपनस्यापि तत्र संभवात् । तत्र ग्रामयोषितः कर्षकादिस्त्रियः । व्रजयोषितो गोप्यः । प्रत्यन्तयोषितः शबर्यादयः ॥ २५ ॥

किसी गँवार स्त्री, ग्वालिन, भीलनी आदि के साथ काम-कला कुशल व्यक्ति का संभोग भी 'खलरत' कहा जाता है ॥ २५ ॥

विस्रम्भरागाद्विशेषमाह—

उत्पन्नविस्रम्भयोश्च परस्परानुकूल्यादयन्त्रितरतम्। इति रतानि ॥ २६ ॥

उत्पन्नविस्रम्भयोश्चेति। चिरकालसंप्रयोगाज्जातविश्वासयोः। परस्परानुकूल्यादिति। आनुकूल्येन पुमानारभेत तदानुकूल्येन च स्त्री। अयन्त्रितरतं यन्त्रणाभावात्। तच्च चित्ररतं पुरुषायितादिभेदादनेकविधमिति बहुवचनेन दर्शयति—रतानीति ॥ इति रतविशेषा एकविंशं प्रकरणम् ॥ २६ ॥

काफी समय से मिलते रहने के कारण जब दोनों एक दूसरे पर विश्वस्त हो जाएँ और एक दूसरे के अनुकूल रहें तो उन दोनों स्त्री-पुरुषों का संभोग 'अयन्त्रितरत' कहलाता है ॥ २६ ॥

प्रणयकलहं वक्ष्यामः—यथा जातविस्रम्भयोरयन्त्रितरतं तथा प्रणयात्कलहोऽपीति प्रणयकलह उच्यते।

तत्र कलहकारणमाह—

वर्धमानप्रणया तु नायिका सपत्नीनामग्रहणं तदाश्रयमालापं वा गोत्रस्खलितं वा न मर्षयेत्। नायकव्यलीकं च ॥ २७ ॥

वर्धमानप्रणया त्विति। यथा यथा विश्वासो वर्धते तथा तथा मृदुमध्याधिमात्रेण न मर्षयेदित्यर्थः। प्रायशश्च नायको विप्रियकारी। तन्मूलश्च कलह इति दर्शयन्नाह—नायिकेति। नायकस्य विप्रियकरणं वाचा क्रियया वा। तत्र वाचा सपत्नीनामग्रहणम्। तदाश्रयमिति। अगृहीत्वैव नाम सपत्नीसंबद्धं गुणसूचकमालापम्। गोत्रस्खलितं तन्नाम्ना नायिकाह्वानम्। नायकव्यलीकमिति। सपत्न्या गृहगमनं ताम्बूलादिप्रेषणं संयोगादिकं नायकस्यापराधं न मर्षयेत्। क्रियया विप्रियकरणमेतत् ॥ २७ ॥

प्रेमी पर जिस प्रेयसी का प्रणय वर्द्धमान हो चुका हो ऐसी वह प्रेयसी अपनी सौतों का नाम लेना, उनकी चर्चा करना अथवा उनके नाम से अपने को बुलाया जाना आदि विरुद्ध आचरणों को बरदास्त न करे ॥ २७ ॥

अमर्षेण वानुष्ठानादित्याह—

तत्र सुभृशः कलहो रुदितमायासः शिरोरुहाणामवक्षोदनं

प्रहणनमासनाच्छयनाद्वा मह्यां पतनं माल्यभूषणावमोक्षो भूमौ शय्या च ॥ २८ ॥

तत्रेति सपत्नीनामग्रहणादिषु । अनुष्ठानं वाचा क्रियया च । तत्र वाचा कलहः सुभृशोऽतीव महान् पुनर्मैवं कार्षीरिति । क्रियया रुदितादि । आयासः शरीर-वेदनाकम्पादिकः । अवक्षोदनं विधूननम् । प्रहणनमात्मनः । अन्ये नायकस्य शिरोरुहावलम्बनं प्रहणनं चेत्याहुः । मह्यामिति । यतः पतिताया न दुःखो-त्पत्तिः । माल्यभूषणयोरपिनद्धयोर्मोक्षणं त्यागः । भूमौ शय्या । न तेन सह शयनम् ॥ २८ ॥

ऐसी स्थिति आ जाने पर स्त्रियाँ वाणी द्वारा और कार्यों द्वारा दो तरह से अपना क्रोध प्रकट करती हैं। ख़बरदार अब फिर ऐसी बात न करना—यह 'वाणी का कलह' है। और रोना, खीझना, हाथ-पैर पटकना, यह 'क्रिया (कर्म) कलह' है। शरीर का काँपना, शिर दर्द आदि 'आयास' है। बालों को खोलकर बिखेर देना, नायक की झोंटी पकड़कर हिलाना—'अवक्षोदन' है। छाती, मूँड़ पीटना—'प्रहणन' है। इस प्रकार के कलह में स्त्री जब चारपाई आदि से उतरकर जमीन पर लेट जाती है तो उसे कष्ट नहीं होता है। ज़मीन में लेटना, माला उतारकर फेंक देना, जेवर नोच-नोचकर उतारना आदि कलह के कार्य हैं ॥ २८ ॥

स नायकोऽपि सापराधत्वात्किं प्रतिपद्येतेत्याह—

तत्र युक्तरूपेण साम्ना पादपतनेन वा प्रसन्नमनास्तामनु-नयन्नुपक्रम्य शयनमारोहयेत् ॥ २९ ॥

तत्रेति तस्मिन्ननुष्ठाने । साम्नेति प्रियवचनेन । तस्य युक्तरूपता अपराधवि-शेषात् । पादपतनं नायकविशेषात् । प्रसन्नमना इति अप्रदर्शितविकारः । मा भूत्क्षते क्षार इति । तामिति भूमौ सुप्ताम् । अनुनयन् प्रसादयन् । उपक्रम्यो-त्थापयितुम् । शयनमारोहयेत् प्रसीदोत्तिष्ठ शयनमध्यास्यतामिति ॥ २९ ॥

प्रेयसी के इस प्रकार कलह रत होने पर प्रेमी को चाहिए कि वह मीठी-मीठी बातों द्वारा तथा जरूरत पड़ने पर उसके पैरों में पड़कर, उसे फुसलाकर पलंग पर सुला ले ॥ २९ ॥

तस्य च वचनमुत्तरेण योजयन्ती विवृद्धक्रोधा सकचग्रह-मस्यास्यमुन्नमय्य पादेन बाहौ शिरसि वक्षसि पृष्ठे वा सकृद्द्वि-स्त्रिरवहन्यात् । द्वारदेशं गच्छेत् । तत्रोपविश्याश्रुकरणमिति ॥३०॥

तस्य चेत्यनुनयतः। वचनमुत्तरेण योजयन्ती तत्कालोचितेन। विवृद्धक्रोधा पुनः पुनरपराधस्मरणात्। सकचग्रहमस्यास्यं मुखमुन्नमय्य। किमुद्भ्राव्यं नेति ज्ञातुं सकृदवहत्य। द्विस्त्रिरिति क्रोधवशात्। तदानीं शिरसि पादताडनमपि न दोषाय। सौभाग्यचिह्नं तदिति नागरकवृद्धाः। तत्र चेति द्वारदेशे। अश्रुकरणमश्रुविमोचनम्॥ ३०॥

प्रेमी की हर बात पर बात लड़ाती हुई वह कलह-रत प्रेयसी प्रेमी के बालों को पकड़कर उसका मुँह ऊपर उठाकर पैर से—हाथों में, शिर में, छाती या पीठ में एक बार या दो-तीन बार ठोकर मार कर के दरवाजे तक चली जाए और वहाँ बैठकर आँखों से आँसुओं की अविरलधारा बहाये॥३०॥

अतिक्रुद्धापि तु न द्वारदेशाद्भूयो गच्छेत्। दोषवत्त्वात्। इति दत्तकः। तत्र युक्तितोऽनुनीयमाना प्रसादमाकांक्षेत्। प्रसन्नापि तु सकषायैरेव वाक्यैरेनं तुदतीव प्रसन्नरतिकांक्षिणी नायकेन परिरभ्येत॥ ३१॥

न भूयो न बहिः। दोषवत्त्वाद्भूयोगमनस्य। कोपव्याजेनान्यत्र गमनाशङ्कोत्पत्तेः। दत्तकग्रहणं पूजार्थम्। तन्मतस्याप्रतिषिद्धत्वात्। तत्रेत्यश्रुकरणे। पादताडनं क्रोधस्यावधिरिति मन्यमानो नायकः पुनस्तां युक्त्यानुनयेत्। सा तेन युक्तितोऽनुनीयमाना पादपतनं प्रसादनोपायस्यावधिरिति मन्यमाना प्रसादमाकांक्षेत्। ततः प्रसन्ना नायकेनालिङ्ग्यते। तथापि सकलुषः सासूयैर्वाक्यैरेनं नायकं तुदती व्यथयन्ती। प्रसन्नरतिकांक्षिणी प्रसन्नाद्रतिमाकांक्षमाणा। अन्यथा न यदि परिरभ्येत तदातिभूमिं गतात्कोपान्नायकोऽप्यप्रसन्न इति। मतोऽयं कुलयुवत्याः पुनर्भुवश्च विधिः॥ ३१॥

आचार्य दत्तक का मत है कि अत्यन्त क्रुद्ध वह प्रेमिका दरवाजे से न बाहर पैर रखे और न भीतर जाए। क्योंकि घर के अन्दर फिर घुसना ठीक नहीं। वहीं दरवाजे पर मनाई जाने पर उसे प्रसन्न हो जाना चाहिए। प्रसन्न होने पर भी व्यंग्य बाणों से प्रेमी का हृदय छेदती हुई वह प्रसन्न-रति की लालसा में नायक से परिरम्भण आरम्भ करे॥ ३१॥

वेश्यायाः परपरिगृहीतायाश्च विशेषमाह—

स्वभवनस्था तु निमित्तात्कलहिता तथाविधचेष्टैव नायकमभिगच्छेत्॥ ३२॥

स्वभवनस्था त्विति। निमित्तात्पूर्वोक्तात्। कलहितेति कलहः संजातो यस्याः। प्राकृतकलहेत्यर्थः। वाचिकममर्षणमेतत्। कायिकमाह—तथाविधचेष्टैवेति।

असूयासूचकैर्दुर्निरीक्षणभ्रूभङ्गादिभिः । नायकमभिगच्छेदिति । तस्य समीपे ढौकेतेत्यर्थः ॥ ३२ ॥

अपने निज के घर में रहनेवाली प्रेमिका प्रणय-कलह की चेष्टाओं के साथ ही प्रेमी के पास तक पहुंच जाए ॥ ३२ ॥

तत्र पीठमर्दविटविदूषकैर्नायकप्रयुक्तैरुपशमितरोषा तैरेवानुनीता तैः सहैव तद्भवनमधिगच्छेत् । तत्र च वसेत् । इति प्रणयकलहः ॥ ३३ ॥

तत्र तस्मिन्कोपानुष्ठाने । नायकप्रयुक्तैस्तस्याः प्रत्यानयने । उपशमितरोषा साम्ना तैरेवानुनीता । अपादपतनेन नायकेन । बहिःस्त्रीषु पादपतनस्य प्रतिषिद्धत्वात् । सहैव गच्छेत् स्वगौरवोत्पादनार्थम् । तत्र च वसेत् नायकभवने तां रात्रिं रागसंधुक्षणार्थम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार के प्रणय-कलह के अवसर पर यदि प्रेमी अपने सहायकों—पीठमर्द, विट, विदूषक—आदि को उसे मना लाने के लिए भेजे तो प्रेमिका क्रोध त्यागकर उनके कहने पर प्रेमी के पास चली जाए और रात भर प्रेमी के साथ ही निवास करे। प्रणय-कलह समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

अधिकरणार्थमुपसंहरति—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

एवमेतां चतुःषष्टिं बाभ्रव्येण प्रकीर्तिताम् ।
प्रयुञ्जानो वरस्त्रीषु सिद्धिं गच्छति नायकः ॥ ३४ ॥

एवमिति । चतुःषष्टिमालिङ्गनादिकाम् । बाभ्रव्येण पाञ्चालेन । वरस्त्रीषु तद्विज्ञासु । सिद्धिं गच्छति सौभाग्यमाप्नोति । तस्माच्चतुःषष्टिरालिङ्गनादीनां ज्ञातव्या । अन्यथा ह्यपरिज्ञाने अन्यशास्त्रपरिज्ञानेऽपि न केवलं सिद्धिं नाधिगच्छति अन्यत्रापि नात्यर्थं पूज्यते ॥ ३४ ॥

बाभ्रव्य आचार्यों द्वारा बतायी गई पाञ्चालिकी चतुःषष्टि का प्रयोग स्त्रियों में करके नायक सफलता प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥

अस्यास्तु परिज्ञाने अन्यशास्त्रापरिज्ञानेऽपि केवलं सिद्धः पूज्यश्चाग्रणीः स्यादिति दर्शयन्नाह—

ब्रुवन्नप्यन्यशास्त्राणि चतुःषष्टिविवर्जितः ।
विद्वत्संसदि नात्यर्थं कथासु परिपूज्यते ॥ ३५ ॥

ब्रुवन्नपीति अर्थतः प्रयोगतश्च कथयन् । विद्वत्संसदीति । त्रिवर्गप्रतिपत्तौ येऽधिकृतास्ते विद्वांसः । तत्सभायाम् कथासु त्रिवर्गस्य ॥ ३५ ॥

जो नायक अनेक शास्त्रों का विशेषज्ञ होते हुए भी आलिंगन, चुम्बन आदि की चौंसठ कलाओं को नहीं जानता है तो वह विद्वानों की अर्थ, धर्म, काम की गोष्ठियों में सम्मान नहीं प्राप्त कर पाता ॥ ३५ ॥

वर्जितोऽप्यन्यविज्ञानैरेतया यस्त्वलंकृतः ।
स गोष्ठ्यां नरनारीणां कथास्वग्रं विगाहते ॥ ३६ ॥

अन्यविज्ञानैर्व्याकरणदिशास्त्रपरिज्ञानैः । एतयेति चतुःषष्ट्या । अलंकृतः प्रयोगतोऽर्थतश्च ज्ञातत्वात् । गोष्ठ्यामासनबन्धे अन्यशास्त्रं नाधिक्रियते । कथासु कामसूत्रस्य । अग्रं विगाहते अग्रणीर्भवतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

अन्य शास्त्रों के ज्ञान से रहित होते हुए भी जो नायक कामशास्त्र का ज्ञान रखता है वह नर-नारियों की कामविषयक गोष्ठियों में अगुवा बन कर सम्मानित होता है ॥ ३६ ॥

ननु चतुःषष्टेरपूज्यत्वात्कथं [तद्] ज्ञाता विद्वत्संसदि पूज्यत इति चेदाह—

विद्वद्भिः पूजितामेनां खलैरपि सुपूजिताम् ।
पूजितां गणिकासङ्घैर्नन्दिनीं को न पूजयेत् ॥ ३७ ॥

विद्वद्भिरिति त्रिवर्गविदिभिः स्त्रीसंरक्षणोपायत्वात्पूजिताम् । खलैरपि सुपूजिताम् । वस्तुतस्तथाविधत्वात् । पूजितां गणिकासंघैः । जीविकोपायत्वात् । एवं च कृत्वा नन्दिनीत्युच्यत इत्याह—नन्दिनीमिति । नन्दनं नन्दः पूजा । सा विद्यते यस्या इति ॥ ३७ ॥

त्रिवर्ग के ज्ञाता विद्वान् इन चौंसठ कलाओं को स्त्री की रक्षा का उपाय समझ कर सम्मान देते हैं । गणिकाएँ इन्हें जीविका का साधन समझ कर पूजती हैं । जब दुष्ट लोग भी इनकी उपयोगिता समझकर इनका आदर करते हैं तब फिर भला ऐसी पूजनीय कलाओं को कौन नहीं पूजेगा ॥ ३७ ॥

यथेयमनुगतार्थसंज्ञा तथान्यापीत्याह—

नन्दिनी सुभगा सिद्धा सुभगंकरणीति च ।
नारीप्रियेति चाचार्यैः शास्त्रेष्वेषा निरुच्यते ॥ ३८ ॥

नन्दिनीति । सुभगा सर्वैर्गृहिभिरनुष्ठीयमानत्वात् । सिद्धा विद्येव वशंकरणी । सुभगंकरणी स्त्रीपुंसयोः सौभाग्यकरणात् । नारीप्रिया विशेषतस्तत्सुखकरणात् । एवमनेकार्थसाधिका । कस्तां न पूजयेत् ॥ ३८ ॥

इन अभिनन्दनीय चौंसठ कलाओं का अनुष्ठान प्रत्येक गृहस्थ को करना चाहिए । इसलिए कि ये कलाएँ सुभगा हैं, सिद्धा हैं, सुभगंकरणी हैं, स्त्रियों की प्यारी हैं और आचार्यों ने शास्त्रों में भी इनकी ऐसी ही व्याख्या की है ॥ ३८ ॥

अतो ज्ञातापि तद्योगात्पूज्यः विशेषतो नायिकानामित्याह—

कन्याभिः परयोषिद्भिर्गणिकाभिश्च भावतः ।
वीक्ष्यते बहुमानेन चतुःषष्टिविचक्षणः ॥ ३९ ॥

कन्याभिरिति । पुनर्भूः परयोषित्येवान्तर्भूता । सैव हि विधवा पुनर्भवतीति । वेश्येति वक्तव्ये गणिकाग्रहणं योषिदपि चतुःषष्टिविचक्षणेति दर्शनार्थम् । भावत इति भावेन हेतुना । बहुमानेन गौरवेण । प्रणयकलहो द्वाविंशं प्रकरणम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे रतारम्भावसानिकं रतविशेषाः प्रणयकलहश्च दशमोऽध्यायः ।

जो नायक चौसठ कलाओं के ज्ञाता होते हैं, उसे पुनर्भू कन्याएँ, परस्त्रियाँ, और गणिकाएँ बहुत सम्मान की दृष्टि से देखती हैं ॥ ३९ ॥

इस अध्याय में प्राक् क्रीड़ा, रतावसान के आचरण, रागवृद्धि के कारण और प्रणय कलह का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है । यह अनुभवसिद्ध बात है कि यौन-जीवन के दौरान में प्राक्-क्रीड़ा की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है । यौन-मिलन तब तक प्रभावशाली या सुखकर नहीं हो सकता जब तक वह नित्य नई प्राक्-क्रीड़ा के सर्वोच्च बिन्दु पर न हो । प्राक्-क्रीड़ा यौन-जीवन की बुनियाद है । इसका प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष सम्बन्ध योनि-स्फीति, स्खलन तथा पूर्ण मैथुन से रहता है ।

कामशास्त्रियों ने अनेक अनुभवों, प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि प्राक्-क्रीड़ा में स्पर्श, गन्ध, श्रवण और दृष्टि का सम्बन्ध रहता है । मैथुन के लिए प्रेम-क्रीड़ा एक अनिवार्य कार्य है जिसमें आदि से अन्त तक स्पर्श की ही प्रधानता रहती है । आलिंगन, चुम्बन यौन अनुभूति की मुख्य अभिव्यक्तियाँ हैं । प्रेम-क्रीड़ा और संभोग में स्पर्श की प्रधानता केवल मनुष्यों में ही नहीं बल्कि कीट-पतंग और जानवरों में भी समान रूप से देखी जाती है । मकड़ियों में तो केवल स्पर्श संभोग से ही प्रधान यौन अनुभूति होती है । केकड़ों में स्पर्श से ही संभोग संचालित होता है । हाथियों की प्रेम-क्रीड़ा में इतना घनिष्ठ स्पर्श-सुख होता है कि उससे उन्हें पूर्ण यौन-आनन्द मिल जाता है । गाय, बैल, हिरन, कुत्ते एक दूसरे को जीभ से चाटकर स्पर्श-सुख की अनुभूति और आनन्द प्राप्त करते हैं ।

स्पर्शभाव जीवन का एक प्रमुख उपादान है। प्राक्-क्रीड़ा-काल में यद्यपि स्त्रियाँ बहुत झिझकती हैं, द्वन्द्व करती हैं, बाहुपाश से छूटने के लिए छटपटाया करती हैं; किन्तु इस प्रकार के विरोध में, उनकी हर 'नाहीं' में स्पर्श-बिन्दुओं को बढ़ाने का ही उद्देश्य निहित रहता है। इस तथ्य और अनुभव से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्पर्श ही वास्तविक रूप से प्राथमिक कामानुभूति है।

वात्स्यायन प्राक्-क्रीड़ा और संभोगोत्तर काल में चुम्बन को विशेष महत्त्व देता है। इसका कारण यही है कि यौन-क्षेत्र में स्नायविक शक्ति को परिचालित करने के लिए चुम्बन से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। इसीलिए काम-सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्यों तथा सभी प्राणियों में चुम्बन सर्वाधिक प्रचलित रहा है।

ओठों में चर्म और श्लैष्मिक झिल्ली के बीच एक अत्यन्त अनुभूतिपूर्ण क्षेत्र होता है जो कई दृष्टियों से योनि और योनिगह्वर के बीच के हिस्से के समान होता है। जिह्वा का संस्पर्श पाकर ओंठों और गालों से स्नायविक उत्तेजना की एक तगड़ी धारा प्रवाहित होने लगती है जो यौन उद्दीपन का लक्ष्य पूरा करती है।

सभी पुरुषों और स्त्रियों में अपनी अपनी विशेष गन्ध हुआ करती है। शारीरिक गन्ध के साथ यौन-आवेग सम्बद्ध रहते हैं। यौवनागम होते ही पुरुष या स्त्री में वयस्कता-प्राप्ति की एक विशेष गन्ध उत्पन्न हो जाती है। यही गन्ध स्त्री-पुरुषों के स्नायुओं को शक्तिशाली और उत्तेजक बनाकर उनकी मैथुनिक कर्मशक्ति को उद्दीप्त करती है। अक्सर प्रेमी-प्रेमिकाओं के आत्म-समर्पण और बलिदान के समाचार पढ़ने और सुनने में आते हैं। यह भी देखा और सुना गया है कि किसी कुलीन सुन्दरी स्त्री ने अपने से हीन, असुन्दर व्यक्ति पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया—इस प्रकार की आश्चर्यजनक घटनाओं में गन्ध का ही प्रभाव सर्वाधिक समझा जा सकता है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि रासायनिक द्रव्यों और मनुष्य की गन्ध में बहुत कुछ समानता रहती है। ऐसा समझा जाता है कि प्राचीनकाल की सुन्दरियाँ अपने अंगों की स्वाभाविक गन्ध को बढ़ाने के लिए अंगराग, इत्र, पुष्प आदि धारण किया करती थीं। यह भी संभव है कि अपनी आंगिक गन्ध को छिपाने या तीव्र करने के लिए रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग किया जाता रहा हो। कुंकुम, कस्तूरी, अम्बर, चन्दन ऐसे पदार्थ हैं जिनकी गन्ध स्त्रियों की गन्ध से साम्य रखती है और उच्चकोटि का यौन महत्त्व रखती है। इसीलिए कदाचित् स्त्रियाँ इन पदार्थों का उपयोग परम्परा से करती

आ रही हैं। यह तो निश्चित है कि आंगिक गन्ध अपने आसपास एक ऐसा वातावरण बनाती है जिससे लोग आकर्षित या विकर्षित होते हैं।

संगीत के स्वर, हास्यरस के चुटकुले, रोचक कथाएँ शारीरिक उत्तेजना उत्पन्न किया करती हैं। इसमें संदेह नहीं की हमारे शरीर की रचना में छन्द अन्तर्निहित है। इसीलिए जिन कारणों से हमारे आनन्द की छन्दःप्रवृत्ति विकसित और ऊँची होती है उनका हम पर निश्चित रूप से एक उत्तेजक और उत्साहवर्द्धक प्रभाव पड़ता है। संगीत और स्वर यौन आवेदन के साधन हैं—इसमें दो राय नहीं कायम हो सकी हैं। ऐसा अनुभव किया जा चुका है कि संगीत में स्त्रियों का प्रेम-भण्डार निहित रहता है। नायक के स्वर का नायिका पर भावुक असर पड़ता है। वास्तविक जीवन में स्त्रियाँ कई बार पुरुष के स्वर पर मुग्ध होकर उस पर आसक्त देखी गई हैं। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियों पर श्रवण का असर अत्यधिक पड़ता है। इसीलिए वात्स्यायन ने रति बढ़ाने के लिए श्रवण पर विशेष जोर दिया है।

दृष्टिगत यौन-आवेदन में सौंदर्य ही मुख्य उपादान माना गया है। प्रेम-निवेदन या उद्दीपन के भाव बढ़ाने के लिए दृष्टि—दर्शन द्वारा ही प्रेमी-प्रेमिकाएँ एक दूसरे पर आक्रमण करते हैं—दृष्टि यौन-जीवन के संघर्ष का एक बहुत बड़ा और अमोघ अस्त्र है। कवि बिहारी ने श्वेत-श्याम-रतनारे नयनों की महत्ता का वर्णन अनुभव और वास्तविकता की पृष्ठभूमि में किया है—

> अमिय हलाहल बिष भरे श्वेत श्याम रतनार।
> जियत मरत झुकि-झुकि परत जेहि चितवत एक बार॥

यौन दृश्यों को देखने के लिए युवा वृद्ध सभी लालायित और प्रयत्नशील रहते हैं। सौन्दर्य की पिपासा हर आँख को रहती है, और उसकी जिज्ञासा यौन-जीवन से संबंध रखती है।

रतावसानिक, रागवृद्धि और प्रणयकलह—इन क्रियाओं का यदि मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाए तो जान पड़ता है कि पति और पत्नी दोनों अहंकार को केन्द्र बनाकर इन क्रियाओं का संचालन करते हैं। सांख्यदर्शन का मत है कि अभिमान ही अहंकार है। अभिमान सदा नहीं होता, विषय के साथ व्यक्ति का सन्निकर्ष होने पर विषय और अहंता का बोध होता है। व्यक्ति के सभी कार्य अहंकार की तुष्टि के लिए, अहंकार के स्वार्थ के लिए अथवा काम के लिए होते हैं—

> आत्मनः कामाय सर्वं प्रियं भवति

अहंकार का स्थान अन्तःकरण है। चित्त-यन्त्र के चेतन और अवचेतन इन दो भागों को देखने वाला अहंकार ही है। यही कर्त्ता, भर्त्ता है। योगवाशिष्ठ का कहना है—

जानुस्तम्भेन महता धार्यते स तरुर्यथा।
अहंकारेण देहोऽयं तथैव किल धार्यते॥
अहंकारक्षये देहः किलावश्यं विनश्यति।
मूले क्रकचसंलूने सुमहानिव पादपः॥

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार सुमहान् वृक्ष अपने तने के कारण खड़ा होता है, उसी प्रकार अहंकार ही देह को धारण करता है। आरे से तने का मूल काटने से जैसे महान् वृक्ष धराशायी हो जाता है उसी प्रकार अहंकार के नाश से शरीर विनष्ट हो जाता है।

व्यक्ति के ज्ञान, भाव और क्रियाओं का नियमन अहंकार करता है। शरीर रूपी रथ के घोड़े इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रिय रूपी घोड़ों का नियन्त्रक मन है और मन अथवा चेतन अहंकार के अधीन रहता है।

मन में वासना-भूमि ही प्राकृत है तथा अन्य सभी बातें उसी से क्रमशः विकसित हुई हैं। चित्त एक जीवित्कोशिका है और चारों ओर से उद्दीपकों से उद्भूत संविश्प्रवाह उस पर आघात करता है, जिससे वह चंचल हो उठती है। संवित्प्रवाह को पैदा करने वाले उद्दीपक हमारी ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित करते हैं—ये उत्तेजनाएँ संज्ञावाही स्नायुओं से बहती हुई मस्तिष्क केन्द्रों में पहुँचती हैं। मस्तिष्क के विभिन्न भागों में ज्ञानेन्द्रियों के विशिष्ट क्षेत्र—चक्षु, श्रवण, घ्राण आदि पर संवेदनाएँ अपने प्रतिरूप खड़ा करती हैं। क्रमशः संवेदनाओं के पुनरावर्तन से प्रतिरूप अर्थमय हो जाते हैं और हमें प्रत्यक्षी-करण होता है।

सम्भोग के पश्चात् आलिंगन, चुम्बन एवं प्रेमवार्ता करने का निर्देश वात्स्या-यन करता है। इसे वह रतावसानिक क्रिया कहता है। वस्तुतः यदि विवेक-दृष्टि से देखा जाय तो वासनाएँ तृप्ति चाहती हैं। तृप्ति पाने के लिए वह मचलती और ललचती रहती हैं। वासनाओं की तृप्ति करने में पुरुष की काम-शक्ति कमजोर हो जाया करती है। संभोग काल में स्त्री और पुरुष में एक तीव्र संक्षोभ पैदा होता है, उस संक्षोभ से ही उन दोनों की कामशक्ति का ह्रास हुआ करता है। संभोग के बाद स्त्री और पुरुष दोनों उत्साहहीन, शिथिल हो जाते हैं। उत्साह और प्रसन्नता को फिर से हरी-भरी बनाने के लिए, स्फूर्ति और खोई हुई शक्ति को पाने के लिए रतावसानिक क्रियाएँ आवश्यक होती हैं।

यदि हम रतावसानिक क्रिया के मूल का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि उसमें भी प्रच्छन्न रूप से वासना अवश्य विद्यमान रहती है और प्रत्येक वासना के साथ भावात्मक अनुभूति रहती है। वासना का जो तीव्र वेग होता

है उसे संवेग कहते हैं। यही संवेग स्त्री या पुरुष के चित्त में अनुकूल या प्रतिकूल वेदनायें उत्पन्न करता है। इस प्रकार की वेदना का कामशास्त्रीय नाम भाव है। वही भाव जब बढ़कर चरम स्थिति पर पहुँचता है तो यह संवेग कहा जाने लगता है। अथवा यों कहा जा सकता है कि जब भावातिरेक होता है तो संवेग उत्पन्न हो जाता है। एक बात और है, वह यह कि स्मरण से भी भाव उत्पन्न होता है। वह प्रिय भी होता है और अप्रिय भी होता है। प्रिय भाव राग कहलाता है और अप्रिय भाव प्रणय-कलह कहलाता है। तात्पर्य यह कि विषय के सन्निकर्ष से ही रतावसानिक क्रियाएँ, राग और प्रणय-कलह हुआ करती है।

प्रणय-कलह श्रेष्ठ दाम्पत्य जीवन का लक्षण माना गया है। कदाचित् इसीलिए काव्यों, नाटकों, आख्यानों आदि सभी प्रकार के उस साहित्य में जो रस, राग का वर्णन करता है, प्रणय-कलह समाविष्ट रहता है। प्रणय-कलह को दाम्पत्य जीवन की पवित्र प्रक्रिया और भावना मानकर वैष्णव साहित्य, सन्त साहित्य और सूफी साहित्य में राम-सीता, लक्ष्मी-नारायण, राधा-कृष्ण और प्रकृति-परमात्मा के प्रणय-कलह के रोचक प्रसंग भक्तिभाव पूर्ण शब्दों में प्रस्तुत किए गए हैं। भगवती लक्ष्मी विष्णु भगवान् से जवाब तलब करती हुई प्रणय-कलह का उपक्रम करती हैं—रात में शयनागार में मुझे धोखा देकर सबेरे तक आप कहाँ रहे हैं श्रीमान्! जरा यह तो बतलाइए देवाधिदेव, कि आपके चरणों में सदा आसक्त रहने वाली मुझे छोड़कर आपने क्या उचित किया है?

शय्यागृहे मां निशि वञ्चयित्वा स्थितो भवान् कुत्रचिदाप्रभातम्।
त्यक्त्वा सदा त्वत्पदसक्तचित्तां युक्तं तवैतद् वद देवदेव॥

महाकवि जयदेव ने गीतगोविन्द के आठवें और दसवें सर्ग में राधा-कृष्ण के प्रणय-कलह का बड़ा सजीव और रोचक वर्णन किया है। रूप गोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि में प्रणय-कलह के बड़े सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। महाकवि भास, कालिदास, श्रीहर्ष आदि सभी संस्कृत के नाटककारों, कवियों ने प्रणय-कलह के विशद वर्णन किए हैं। संस्कृत साहित्य पर कामसूत्र का प्रभाव पदे-पदे लक्षित होता है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साम्प्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे रतारम्भावसानिकं रतविशेषाः प्रणयकलहश्च दशमोऽध्यायः।
आदितः पञ्चदशः।

कन्यासंप्रयुक्तकं तृतीयमधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

वरणसंविधानप्रकरणम्

चतुःषष्टिविचक्षणः कन्याभिर्भावितो वीक्ष्यमाणोऽपि न समागमं विना संप्रयुज्यत इति तत्समागमोपाय आवाप उच्यते। समन्तादावाप्यन्ते स्त्रियोऽनेनेति। तत्र कन्यायाः प्रधानत्वात्कन्यासंप्रयुक्तकमुच्यते। तत्रोद्वापा अष्टौ विवाहाः—ब्राह्मः प्राजापत्य आर्षो दैवो गान्धर्व आसुरः पैशाचो राक्षस इति। तत्र पूर्वे चत्वारो धर्म्या इति तदर्थं वरणसंविधानं प्रकरणमुच्यते।

किमर्थमेवमनुष्ठीयत इति चेदाह—

सवर्णायामनन्यपूर्वायां शास्त्रतोऽधिगतायां धर्मोऽर्थः पुत्राः संबन्धः पक्षवृद्धिरनुपस्कृता रतिश्च ॥ १ ॥

सवर्णायामिति—ब्राह्मणादीनां यथास्वं सवर्णायाम्। अनन्यपूर्वायामिति—मनसा कर्मणा वचसा वान्यस्मै या न दत्ता, तत्र हि यत्प्रथममपत्यं तदस्यैवेति स्मृत्यर्थः। शास्त्रत इति—शास्त्रोक्तेन वरणपूर्वेण परिणयविधिना। अधिगतायाम्—स्वीकृतायां सत्याम्। धर्मः—पत्नीप्रयोगाख्यो रत्यादिप्रवर्तनं च। अर्थो—यौतकलाभाद्गार्हस्थ्यानुष्ठानाच्च। पुत्राः—दृष्टादृष्टार्थाः। संबन्धः—सहैकभोजनातिहेतुः। पक्षवृद्धिरिति—स्वपक्षस्य वृद्धिः, पक्षान्तरलाभात्। अनुपस्कृता रतिः—अकृत्रिमा, विश्वासातिशययोगात् ॥ १ ॥

कन्या वरण करने का विधान—

अपनी जाति की अक्षतयोनि कन्या से शास्त्र-विधि के अनुसार विवाह करने से धर्म की वृद्धि, धन की प्राप्ति, पुत्र सम्बन्ध, प्रीति सम्बन्ध, वंशवृद्धि और रति की वृद्धि तथा कामवासना की तृप्ति होती है ॥ १ ॥

यतश्चैवम्—

तस्मात्कन्यामभिजनोपेतां मातापितृमतीं त्रिवर्षात्प्रभृति न्यूनवयसं श्लाघ्याचारे धनवति पक्षवति कुले संबन्धिप्रिये संबन्धिभिराकुले प्रसूतां प्रभूतमातृपितृपक्षां रूपशीललक्षणसंपन्नामन्यूनाधिकाविनष्टदन्तनखकर्णकेशाक्षिस्तनीमरोगिप्रकृतिशरीरां तथाविध एव श्रुतवाञ्शीलयेत् ॥ २ ॥

तस्मात्कन्यां शीलयेदिति संबन्धः। अशीलितायां वरणासंभवात्। तत्र शीलमभिजनतः सनाथतो वयसः कुलाचारतोऽनुरागतो रूपतः शीलतो वा लक्षणत आरोग्यतश्चेति यथाक्रममाह—अभिजनं कुलं मातापितृगतम्। त्रिवर्षादिति—वर्षत्रयात्प्रभृति न्यूनवयसम्। नैकेन द्वाभ्यां वापि समवयसमधिकवयसं वा। श्लाघ्यः स्पृहणीय आचारो यस्मिन्कुले। धनवति—धनधान्याढ्ये। संबन्धिप्रियेऽनुरागिणि। पक्षवति—संबन्धिभिराकुले। प्रभूतमातापितृपक्षानित्यनेनातिसनाथतामिति दर्शयति। रूपम्—शरीरस्य शोभनो यो वर्णः संस्थानं च। शीलं सुस्वभावता। लक्षणमवैधव्यादिसूचकम्। अन्यूनेति। तत्प्रत्येकं योज्यम्। यथासंभवमन्यूनमनधिकमनष्टं च दन्तादि यस्याः। अवयवरूपेणापि युक्तामित्यर्थः। कन्याया दन्तादीनां प्रधानावयवत्वात्। अरोगिप्रकृतिशरीरामिति—स्वभावतो न रोगवच्छरीरं यस्या इत्यर्थः। तथाविध एवेति—अभिजनाद्युपेतः, अन्यथा ह्यगम्य एव स्यात्। विशेषमाह—श्रुतवानिति। गृहीतविद्य इत्यर्थः। शीलयेत्—मनसि समादध्यात्। 'शील समाधौ' इति धातुपाठात्॥ २॥

इसलिए बुद्धिमान् पुरुष ऐसी कन्या से विवाह करने की इच्छा करें जो आभिजात्य गुणों से सम्पन्न हो, माता और पिता से सनाथ हो, कम से कम तीन वर्ष अपने से छोटी हो, श्लाघ्य आचरण करने वाले कुल की हो, धनवान् घराना हो, जिसके खान्दान की प्रतिष्ठा और लोकप्रियता हो, जिसके वंश की रिश्तेदारियाँ ऐसे ही श्लाघ्य कुलों में दूर-दूर तक फैली हों, माता-पिता के अतिरिक्त अन्य अनेक कुटुम्बियों से जिसका ख़ान्दान भरा-पूरा हो। जो स्वयं रूप, गुण, शील, सौन्दर्य सम्पन्न हो, जिसके दाँत, नख, कान, बाल, आँखें और स्तन न बहुत छोटे हों और न बहुत बड़े हों और न इनका बिल्कुल अभाव ही हो॥ २॥

यां गृहीत्वा कृतिनमात्मानं मन्येत न च समानैर्निन्द्येत तस्यां प्रवृत्तिरिति घोटकमुखः॥ ३॥

गृहीत्वा—परिणीय। कृतिनम्—कृतार्थम्। न च समानैर्निन्द्येत कुत्साजन्यं कृतमनेनेति। प्रवृत्तिः—वरणसंविधानम्। घोटकमुखग्रहणमधिकरणप्रावीण्यख्यापनार्थम्॥ ३॥

आचार्य घोटकमुख का कहना है कि जिस कन्या से विवाह करके पुरुष अपने को धन्य समझे, तथा जिससे विवाह करने पर सदाचारी मित्रगण प्रशंसा करें निन्दा न करें, उससे विवाह करना उपयुक्त है॥ ३॥

वरणं द्विविधम्—पौरुषेण दैवेन च विधिना। तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

तस्या वरणे मातापितरौ संबन्धिनश्च प्रयतेरन्। मित्त्राणि च गृहीतवाक्यान्युभयसंबद्धानि॥ ४॥

तस्यां इति-शीलितायाः। वरणे—याचने। मातापितरौ नायकेन मित्रजनमभिधाय प्रेरितौ प्रयतेताम्। वरयितृपुरुषप्रेरणेन–संबन्धिनो ये नायककुले संबन्धं कृतवन्तः। मित्राणि च नायकस्य प्रयतेरन्नित्येव। गृहीतवाक्यानि—तद्वचनस्यानतिक्रमणीयत्वात्। उभयसंबद्धानि—मातृसंबन्धेन पितृसंबन्धेन च॥ ४॥

इस प्रकार के गुणों से युक्त कन्या को वरण करने के लिए माता-पिता और सम्बन्धी लोग प्रयत्न करें। मित्रगण भी जो दोनों ओर से सम्बन्धित हों प्रयत्न करें॥ ४॥

तान्यन्येषां वरयितॄणां दोषान्प्रत्यक्षानागमिकांश्च श्रावयेयुः। कौलान्पौरुषेयानभिप्रायसंवर्धकांश्च नायकगुणान्। विशेषतश्च कन्यामातुरनुकूलांस्तदात्वायतियुक्तान्दर्शयेयुः॥ ५॥

तानीति मित्त्राणि। अन्येषामिति नायकादन्ये ये वरयितारः। 'वर ईप्सायाम्' अदन्तश्चौरादिकः। प्रत्यक्षान्दोषान्विरूपकान्धकुब्जादीन्। आगमिकान् सामुद्रोक्तान्। 'आगामिकान्' इति पाठान्तरम्। भाविन इत्यर्थः। श्रावयेयुः। तस्याः पितरावित्यर्थात्। कौलान् कुले भवान् शीलशौण्डीर्यादीन् नायकगुणान्। पौरुषेयान् पुरुषकारनिष्पन्नान् शास्त्रकलाग्रहणादीन्। अभिप्रायसंवर्धकांश्चेति—पित्रोः कन्यादानाभिप्रायं संवर्धयन्ति ये। विशेषतः कन्यामातुर्येऽनुकूला भवन्ति ते बाल्यवयस्त्वादयः। तदात्वायतियुक्तानिति वर्तमानेन अनागतेन च कालेन फलदानात्संयुतान्। 'तत्कालस्तु तदात्वं स्यादायतिः काल उत्तरः' इत्यमरः। दर्शयेयुः। मित्त्राणीत्येव॥ ५॥

प्रायः मित्रों की प्रवृत्ति यह होती है कि अपने मित्र नायक की कुलीनता, उसके पौरुष, शील आदि की प्रशंसा करते हैं और दूसरे उम्मीदवार नायक के प्रत्यक्ष और आगामी दोषों को दिखाते हैं। वे अपने मित्र नायक के उन्हीं प्रत्यक्ष और आगामी गुणों का बखान करते हैं जिन्हें कन्या की माँ चाहती है॥ ५॥

दैवमधिकृत्याह—

दैवचिन्तकरूपश्च शकुननिमित्तग्रहलग्नबललक्षणदर्शनेन नायकस्य भविष्यन्तमर्थसंयोगं कल्याणमनुवर्णयेत्॥ ६॥

दैवचिन्तकरूपश्चेति–सांवत्सरव्यञ्जनो नायकप्रहितः। शान्तायां दिशि

रटतः काकादेः शकुनस्य । निमित्तस्य तज्जातादेः । शुभग्रहाणां लग्नादुपचयस्थानेषु स्थितानां यद्बलं दिक्कालस्थानस्वभावैस्तस्य दर्शनेन लक्षणस्य शंखचक्रादेर्दर्शनेन भविष्यन्तमनागतमर्थसंयोगं सेनापत्याध्यक्षपत्तनादिलाभम् । कल्याणमिति कल्याणहेतुत्वात् । अर्थानुबन्धमित्यर्थः ॥ ६ ॥

नायक द्वारा सिखाकर भेजा गया ज्योतिषी कौवे के बोलने आदि के शकुन से, जन्मकुंडली के ग्रहों और लग्न स्थान नायक होने वाले महान् अर्थ लाभ को तथा उसके कल्याण का अनुभवसिद्ध वर्णन करे ॥ ६ ॥

अपरे पुनरस्यान्यतो विशिष्टेन कन्यालाभेन कन्यामातरमुन्मादयेयुः ॥ ७ ॥

अपर इति दैवचिन्तकरूपाः । अस्य नायकस्य । अन्यत इति यतो व्रियते कन्या ततोऽन्यस्मात् । विशिष्टेनेति अमुष्य सेनापतेरर्थरूपवती सुमहिमा अस्मै कर्तुमिष्यते । येन वयं श्वस्तने नक्षत्रसंयोगं पृष्टा इत्यनेन कन्यामातरमुन्मादयेयुरनुरञ्जयेयुः । येनानुरक्ता दुहितरं दद्यात् ॥ ७ ॥

कन्या की माता के पास भेजे जाने वाले ज्योतिषियों को चाहिए कि कन्या की माता अपनी कन्या का विवाह जिस तरुण से करना चाहती हो उस तरुण की अपेक्षा अपने उस नायक के साथ ब्याह देने में अधिक लाभ बताए—जिसके भेजने पर वह वहाँ गया हो ॥ ७ ॥

दैवनिमित्तशकुनोपश्रुतीनामानुलोम्येन कन्यां वरयेद्दद्याच्च ॥

दैवनिमित्तशकुनोपश्रुतीनामिति । पूर्वजन्मकृतं शुभमशुभं वा कर्म दैवम् । तस्याभिव्यञ्जकत्वान्नक्षत्रग्रहा अपि दैवमुच्यते । अस्यानुकूल्येन षट्काष्टकादियोगाभावात् । किमियमूढा कल्याणकरी नेति शास्त्रोक्तं निमित्तं शकुनपृच्छा च कार्या। निशीथे चोपश्रुतिर्ग्राह्या । तेषामानुकूल्येन वराय दीयमानामीप्सेत, दद्याच्च कन्यापक्षः ॥ ८ ॥

लड़का और लड़की के विवाह संबंध निश्चित करने वालों को चाहिए कि वे दोनों के दैव (भाग्य) और ग्रह-नक्षत्र की अनुकूलता देखकर षष्ठ और अष्ट योगों को बचाकर तथा निमित्त एवं शकुन पूछकर आधी रात के समय की उपश्रुति ग्रहण कर वर-कन्या का गठबन्धन करें ॥ ८ ॥

न यदृच्छया केवलमानुषायेति घोटकमुखः ॥ ९ ॥

केवलमानुषायेति । केवलं मानुषं कर्म यस्याम् । यदृच्छायामभिजनसानाथ्यादिकमस्तीति । नैवान्येच्छया वरयेद्दद्याच्चेत्यर्थः । घोटकमुख इति परमतमभिमतम् । अप्रतिषिद्धत्वात् ॥ ९ ॥

आचार्य घोटकमुख का कहना है कि केवल वर और कन्या के माता-पिता ही अपनी इच्छा से विवाह-सम्बन्ध तय न करें बल्कि कुटुम्ब, सम्बन्ध के लोगों से भी राय ले लें ॥ ९ ॥

वरणकाले कन्यां दृष्ट्वा निमित्तं पश्येदिति दर्शयन्नाह—

सुप्तां रुदतीं निष्क्रान्तां वरणे परिवर्जयेत् ॥ १० ॥

सुप्तामिति । शयनमल्पायुषं सूचयति । रुदतीं दुःखभागिनीम् । निष्क्रान्तां गृहान्निष्क्रामन्तीम् । गृहत्यागिनीं दृष्ट्वा वरणकाले वरयिता वर्जयेत् ॥ १० ॥

जो कन्या अधिक सोने वाली (आलसी) हो, बात-बात पर रोने वाली (कलहप्रिय) हो, घर से बाहर निकल कर घूमने वाली हो उसके साथ विवाह न करना चाहिए ॥ १० ॥

अप्रशस्तनामधेयां च गुप्तां दत्तां घोनां पृषतामृषभां विनतां विकटां विमुण्डां शुचिदूषितां सांकरिकीं राकां फलिनीं मित्त्रां स्वनुजां वर्षकरीं च वर्जयेत् ॥ ११ ॥

अप्रशस्तनामधेयामिति भञ्जिका विन्नाटिकेति । गुप्तामप्रदर्शिताम् । आशङ्क्यमानदोषत्वात् । दत्तामित्यनन्यपूर्वामित्यस्य, घोनादयश्च लक्षणसंपन्नामित्यस्य प्रपञ्चोऽवश्यत्यागार्थः । तत्र घोनां कपिलां पतिघ्नीम् । पृषतां शुक्लबिन्दुयुतामर्थहानिकरीं पतिघ्नीं च । ऋषभां पुरुषसंस्थानां दुःशीलाम् । विनतां स्कन्धदेशावनतां दुःशीलाम् । विकटामसंहतोरूं दुःखभागिनीम् । विमुण्डां बृहल्ललाटां पतिघ्नीम् । शुचिदूषितां पितुर्मृतस्य दत्तोल्कां क्रियया न प्रशस्ताम् । सांकरिकीं पुरुषदूषिताम् । तस्यां पत्नीयोगो न धर्मः । राकां जातरजसम् । रजसा क्षतयोनित्वात् । फलिनीं मूकां संव्यवहारबाह्याम् । मित्त्रां मित्त्रत्वेन गृहीतामगम्याम् । स्वनुजामिति—त्रिवर्षात्प्रभृति—न्यूनवयसमित्यस्य शेषः । सुष्ठु पश्चाज्जातामित्यर्थः । यथोक्तम्—'चतुर्थादष्टमं यावत्कनिष्ठा वत्सरे वरात् । कन्यां परिणयेच्छस्तां नेतरातिवयाश्च याः ॥' वर्षंकरीं स्विद्यत्करचरणां पतिघ्नीम् ॥ ११ ॥

जो भद्दे नामवाली हो, हमेशा छिपकर रहने वाली हो, किसी की वाग्दत्ता हो, भूरे बालों वाली, सफेद दाग वाली हो, विकटा (भारी नितम्बों वाली) हो, जिसकी गर्दन झुकी हो, ऋषभा (बहुत तगड़ी, मर्दानी) और विमुण्डा (सिर में बाल न हों) हो, जो सांकरिकी (व्यभिचारिणी), गूंगी, बचपन की साथिन, अप्राप्त यौवना, जिसके हाथ-पाँव पसीजते हों—उससे विवाह न करना चाहिए ॥ ११ ॥

नक्षत्राख्यां नदीनाम्नीं वृक्षनाम्नीं च गर्हिताम् ।
लकाररेफोपान्तां च वरणे परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

नक्षत्राख्यां श्रवणां विशाखामित्येवमादि । नदीनाम गङ्गायमुनेत्यादि । वृक्षनाम जम्बूः प्रियंगुरित्यादि । लकाररेफोपान्तां चेति—लकाररेफावन्ताक्षरसमीपे नाम्नि यस्याः । कमलू विमलू चारू तारू चेति ॥ १२ ॥

जिस कन्या का नाम नक्षत्र, नदी और वृक्ष के नाम पर हो अथवा जिसके नाम के अन्त में ल अथवा र अक्षर हों उससे कदापि विवाह न करना चाहिए ॥ १२ ॥

यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः । नेतरामाद्रियेत । इत्येके ॥ १३ ॥

मनश्चक्षुषोर्निबन्धनमिति केषांचिन्मतम् । यस्यामभिजनादिसद्भावेऽपि मनःसङ्गश्चक्षुःप्रीतिश्चोभयमपरमस्ति तस्यां पत्न्यां सत्यां सिद्धिस्त्रिवर्गप्राप्तिरित्ययमुत्तमः पक्षः । नेतरामिति । यस्यां नास्ति न तामाद्रियेतेत्यधमः पक्षः । केवलमभिजनाद्यपेक्षां वरयेत् । पूर्वामादरेणेति विशेषः । दोषेषु तु मनश्चक्षुर्निबन्धनेऽप्युपेक्षाम् । तत्रापि दोषाणां गुरुलाघवं परीक्ष्यमिति ॥ १३ ॥

कुछ आचार्यों का मत है कि जिस कन्या से मन और आँखें मिल जाएँ उससे विवाह करने में सुख और वृद्धि होती है । यदि मन नहीं मिलता, आँखें नहीं मिलतीं तो विवाह न करना चाहिए ॥ १३ ॥

कन्यापक्षे वरणनिमित्तं संविधानमाह—

तस्मात्प्रदानसमये कन्यामुदारवेषां स्थापयेयुः । अपराह्णिकं च । नित्यं प्रासाधितायाः सखीभिः सह क्रीडा । यज्ञविवाहादिषु जनसंद्रावेषु प्रायत्निकं दर्शनम् । तथोत्सवेषु च । पण्यसधर्मत्वात् ॥

तस्मादिति—यतः सुप्राद्यनिमित्तात्कन्या न व्रियते तस्मात् । प्रदानसमय इति—उपलक्षणार्थत्वाद्वरणकालेऽपि । प्रसाधितां स्थापयेयुः कन्यापक्षीयाः । अपराह्णिकमिति—प्रदानात्प्रागपराह्णभवं विधिम् । स्थापयेयुरित्येव । तमाह—नित्यमिति । सखीभिः सह क्रीडा रथ्याचत्वरादिषु । यज्ञविवाहादिषु चान्यदीयेषु । जनसंद्रावेष्विति । जनाः संभूय द्रवन्ति येषु । 'समि युद्रुदुवः' इति अकर्तरि कारके घञ् । प्रायत्निकमिति प्रयत्नसाध्यम् । परिचाराधिष्ठितत्वाद कौतुकेन लोको यत्नेन पश्यति । तथोत्सवेषु च वसन्तकादिषु जनसंद्रावेषु प्रायत्निकम् । पण्यसधर्मत्वादिति—विक्रेतव्यतुल्यकौतुकेन हि लोको यत्नेन पश्यति । न ह्यदृश्यमाना पण्यवद्व्रियेत ॥ १४ ॥

शीघ्र कन्यावरण के साधन—इसलिए कन्या जब युवती हो जाए, उसके विवाह का समय आ जाए तब माता-पिता उसे सुन्दर वस्त्र पहनाया करें। सायंकाल वह अपनी सखियों के साथ सजधज कर क्रीडाएँ करे। यज्ञों में, विवाह आदि उत्सवों में, मेले-ठेले में खूब सजाकर उसे ले जाना चाहिए। क्योंकि जैसे बिक्री की कोई वस्तु जब तक सजाकर नहीं रखी जाती तब तक वह ग्राहकों को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकती उसी प्रकार जब तक लोग कन्या के सौन्दर्य को नहीं देखेंगे तब तक विवाह करने के लिए उसकी ओर उनका आकर्षण न होगा ॥ १४ ॥

वरयितॄणां च लक्षणमुपचारं चाह—

वरणार्थमुपगतांश्च भद्रदर्शनान् प्रदक्षिणवाचश्च तत्संबन्धिसङ्गतान् पुरुषान्मङ्गलैः प्रतिगृह्णीयुः ॥ १५ ॥

वरणार्थमिति। अहीनाङ्गत्वान्मङ्गलाचारप्रयुक्तत्वात्। प्रदक्षिणवाच इति—अनुकूलवाचः। तत्संबन्धिसंगतानिति—यत्प्रागुक्तं मित्राणि संबन्धिनश्चेति तैः सहेत्यर्थः। मङ्गलैर्दध्यक्षतादिभिः, प्रतिगृह्णीयात् कन्यापक्षीयः ॥ १५ ॥

जब सुन्दर, सुशील, मधुरभाषी व्यक्ति अपने मित्रों और सम्बन्धियों के साथ कन्यावरण के लिए कन्या को देखने के लिए उसके घर जाए तो कन्या के माता-पिता अच्छे-अच्छे पदार्थों से उसका स्वागत करें ॥ १५ ॥

कन्यां चैषामलंकृतामन्यापदेशेन दर्शयेयुः ॥ १६ ॥

अन्यापदेशेनेति—अन्यकार्यमपदिश्य न तूपेत्य दर्शयेत्, दानस्यानिश्चितत्वात् ॥ १६ ॥

जिस कन्या को देखने के लिए आए हों उसे वस्त्र आभूषण से अलंकृत करके किसी बहाने से दिखाएँ ॥ १६ ॥

दैवं परीक्षणं चावधिं स्थापयेयुः। आ प्रदाननिश्चयात् ॥

दैवं परीक्षणं चेति। यावत्प्रदानं न निश्चीयते तावदेवं प्राजापत्यधीनमिति। परीक्षणं च मित्रस्वजनैः सह निरूपयाम इत्यवधिं स्थापयेयुः।

अन्यस्त्वाह—'गोष्ठसीताह्रदवेदिश्मशानेरिणदेवतः। चतुष्पथाच्च मृत्पिण्डैः कुर्याद्दैवपरीक्षणम् ॥' १७ ॥

और जब तक उस पुरुष को कन्या देने का निश्चय न हो तब तक वरण करने के लिए आए हुए व्यक्ति से कह दें कि हम अपने सम्बन्धियों, मित्रों से सलाह करके अमुक तिथि तक अनुकूल उत्तर आपको देंगे ॥ १७ ॥

स्नानादिषु नियुज्यमाना वरयितारः सर्वं भविष्यतीत्युक्त्वा न तदहरेवाभ्युपगच्छेयुः ॥ १८ ॥

स्नानादिषु नियुज्यमानाः कन्यापक्षीयाः। वरयितार इति—वृण्वन्ति ये। सर्वमिति स्नानादिकम्। भविष्यति प्रजापतावनुकूले। तदहरेवेति। तं दिवसं स्नानादिभिर्नाङ्गीकुर्युः ॥ १८ ॥

यदि स्नान आदि के लिए वरण करने वाले अनुरोध करें तो उसी दिन स्वीकार न कर लेना चाहिए। उनसे सिर्फ इतना कह देना चाहिए कि देखिए सब कुछ यथासमय हो जाएगा ॥ १८ ॥

देशप्रवृत्तिसात्म्याद्वा ब्राह्मप्राजापत्यार्षदैवानामन्यतमेन विवाहेन शास्त्रतः परिणयेत्। इति वरणविधानम् ॥ १९ ॥

देशप्रवृत्तिसात्म्याद्वेति। यस्मिन्देशे या प्रवृत्तिस्तदानुकूल्यादित्यर्थः। ब्राह्मप्राजापत्यार्षदैवतानामिति। एषां धर्म्यत्वादन्यतमेन। तथा चोक्तम्—'सुहृदाहूय कन्यां तु ब्राह्मे दद्यात्स्वलंकृताम्। सह धर्मं चरेत्येवं प्राजापत्योऽभिधीयते ॥ वसुगोमिथुनं दत्त्वा विवाहस्त्वार्ष उच्यते। अन्तर्वेद्यां तु दैवः स्यादृत्विजे कर्म कुर्वते ॥' शास्त्रत इति गृह्योक्तेन विधिना। वरणसंविधानं त्रयोविंशं प्रकरणम् ॥

अपने देशाचार, कुलाचार के अनुसार ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष और दैव इन चार प्रकार के विवाहों में से किसी एक के द्वारा शास्त्र-विधि से कन्या से विवाह करना चाहिए ॥ १९ ॥

अभिजनादिभिः शीलितायामप्यनिश्चिते संबन्धे वरणाभावात्संबन्धनिश्चय उच्यते—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

समस्याद्याः सहक्रीडा विवाहाः सङ्गतानि च।
समानैरेव कार्याणि नोत्तमैर्नापि वाधमैः ॥ २० ॥

समस्याद्या इति संभूय क्रीडामार्दि कृत्वा। संगतानि सख्यानि। तादृशैरिति समानैः। तुल्यजात्यभिजनद्रव्यायतित्वात् ॥ २० ॥

इस विषय के प्राचीन श्लोक हैं—

एक साथ खेलना, विवाह करना और मित्रता करना ये तीनों कार्य अपने समान स्थिति और समानशील पुरुषों के साथ करने चाहिए। न तो अपने से ऊँचे से और न अपने से नीच के साथ करे ॥ २० ॥

तेन समानधर्मोत्तमसंबन्धिभेदात्संबन्धस्त्रिविधः। तस्य कार्यद्वारेण लक्षणमाह—

कन्यां गृहीत्वा वर्तेत प्रेष्यवद्यत्र नायकः।
तं विद्यादुच्चसंबन्धं परित्यक्तं मनस्विभिः ॥ २१ ॥

कन्यामिति। गृहीत्वा परिणीय। प्रेष्यवद्भृत्यवत्। द्रव्यायत्यभावात्। उच्चसंबन्धमिति अधिकेन च संबन्धनात्। परित्यक्तं मनस्विभिः। ये तु नैवं ते कुर्वन्त्येव ॥ २१ ॥

जो व्यक्ति अपने से अधिक धनवान् की लड़की से विवाह करता है उसे नौकर के समान रहना पड़ता है। इस प्रकार के सम्बन्ध को उच्च कहा जाता है। बुद्धिमान् लोग ऐसा सम्बन्ध कभी नहीं करते ॥ २१ ॥

स्वामिवद्विचरेद्यत्र बान्धवैः स्वैः पुरस्कृतः।
अश्लाघ्यो हीनसंबन्धः सोऽपि सद्भिर्विनिन्द्यते ॥ २२ ॥

स्वामिवदिति—कन्यां गृहीत्वा प्रभुवद्विचरेत्। द्रव्यायतिमत्त्वात्। बान्धवैः श्वशुरश्यालकादिभिः प्रेष्यभूतैः परिवृतः। अश्लाघ्य इत्यश्लाघनीयः। तदनुरूपलोकाचाराभावात्। सद्भिरिति लोकव्यवहारज्ञैः ॥ २२ ॥

गरीब घर की लड़की से विवाह कर पति पत्नी के ऊपर मालिक बनकर शासन करता है, स्त्री सदैव दासी बनी रहती है। इस प्रकार का सम्बन्ध हीन सम्बन्ध कहा जाता है। सज्जन पुरुष ऐसे सम्बन्ध को निन्दित मानते हैं ॥२२॥

परस्परसुखास्वादा क्रीडा यत्र प्रयुज्यते।
विशेषयन्ती चान्योन्यं संबन्धः स विधीयते ॥ २३ ॥

परस्परसुखास्वादेति—वरपक्षस्य कन्यापक्षस्य च सुखानुभवो यस्यां परस्परप्रयुक्तायां क्रीडायाम्। विशेषयन्ती चान्योन्यं प्रयुज्यते यस्मिन्संबन्धे स संबन्धो विधीयत इति। सद्भिः क्रियत इत्यर्थः। पूर्वौ तु न विधीयेते इत्यर्थोक्तम् ॥ २३ ॥

जिस विवाह से पति-पत्नी को समान आनन्द की अनुभूति हो, दोनों एक दूसरे के पूरक और शोभा-वर्द्धक हों वह विवाह करने योग्य होता है ॥ २३ ॥

तयोरपि कः श्रेयानित्याह—

कृत्वापि चोच्चसंबन्धं पश्चाज्ज्ञातिषु संनमेत्।
न त्वेव हीनसंबन्धं कुर्यात्सद्भिर्विनिन्दितम् ॥ २४ ॥

कृत्वापीति। ज्ञातिषु संनमेदिति–ज्ञातिगृहे स्वयं यायात्। न श्वशुरगृह इत्यर्थः। न त्वेवेत्येकान्तेनैव प्रतिषेधः। संबन्धनिश्चयश्चतुर्विंशं प्रकरणम् ॥२४॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे वरणविधानं संबन्धनिश्चयश्च प्रथमोऽध्यायः।

अपने से ऊँचा सम्बन्ध करने पर अपने संबन्धियों से दबना पड़ता है, उनके सामने झुकना पड़ता है। हीन सम्बन्ध को भी सज्जन लोग बुरा समझते हैं ॥ २४ ॥

वात्स्यायन दाम्पत्यजीवन, विवाहित जीवन को तरजीह देता है। उसने उन्मुक्त सहवास, उच्छृंखल कामुकवृत्तियों और व्यभिचार का निरोध करने के लिए कन्यावरण का विधान शास्त्र विधि से, और सजातीय में धर्म, अर्थ की वृद्धि के लिए बताया है। याज्ञवल्क्य ने भी इसी आशय का विधान याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है—

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः।
नैतन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम् ॥

इसकी व्याख्या में मिताक्षराकार लिखता है कि विवाह के तीन प्रयोजन हैं—रति के लिए, पुत्र के लिए और धर्म के लिए। इन तीनों में पुत्रार्थ विवाह दो प्रकार का होता है—एक नित्य दूसरा काम्य। नित्य विवाह के लिए सवर्ण वर-कन्या की ही प्रधानता है और काम्य विवाह में नित्य काम्यता होने से सवर्ण का विधान गौण माना जाता है।

काम्य विवाह के सम्बन्ध में मनु का वचन है—

कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः।
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते ॥
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः।

—कामना से प्रवृत्त हुए ब्राह्मण को चारों वर्ण की, क्षत्रिय को ब्राह्मण के अतिरिक्त तीन वर्ण की, वैश्य को दो वर्ण की और शूद्र को एक वर्ण की कन्या से विवाह करना चाहिए। किन्तु मनु के इस नियम का खण्डन करते हुए याज्ञवल्क्य कहता है कि नैतन्मम मतम्—यह विधान मुझे स्वीकार नहीं है, क्योंकि श्रुति का कहना है कि 'तज्जाया जाया भवति यदन्यां जायते पुनः'—जाया वही कही जा सकती है जिसमें पति पुत्र रूप से पुनः उत्पन्न हो। याज्ञवल्क्य का स्पष्ट मत है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को शूद्रा स्त्री से पुत्र न उत्पन्न करना चाहिए। इससे एक बात का स्पष्टीकरण हो जाता है कि यदि पुत्रोत्पत्ति करना आवश्यक है तो ब्राह्मण को, क्षत्रिया और वैश्या स्त्री से तथा क्षत्रिय को वैश्या स्त्री से विवाह करना दोष नहीं है।

किन्तु वात्स्यायन यहाँ पर काम्य विवाह का समर्थन नहीं करता। वह रक्त-शुद्धि का पूरा ख़याल रखता हुआ शास्त्र-सम्मत, धर्म-सम्मत विवाह का ही समर्थन करता है। यहाँ पर वह रति की तृप्ति धार्मिक बुद्धि से करने का पक्ष-

घात करता है। इसलिए सगाई के लिए सावधान करता है कि 'कन्यामभिजनोपेतां—आभिजात्यगुणों से सम्पन्न कन्या से सगाई की जाए, वह अनाथ न हो तथा दूर-दूर तक उसके वंश की नातेदारियाँ, रिश्तेदारियाँ फैली हों—इससे जातिकुल की परम्परा समझने में धोखा नहीं हो सकता है। वात्स्यायन के मत से समान जाति की कन्या होने के साथ ही वह अनन्यपूर्वा और उम्र में छोटी भी हो अर्थात् मन, वचन, कर्म से उसका कौमार्य भंग न हुआ हो। याज्ञवल्क्य का भी यही कहना है कि—

अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्॥

'जिस कन्या का पर पुरुष के साथ सम्बन्ध न हुआ हो, जो देखने सुनने में सुन्दर हो, अपने गोत्र की न हो, अवस्था और देह-प्रमाण से न्यून हो उस कन्या से विवाह करना चाहिए।' किन्तु वर महोदय भी ऐसे हों कि तबतक उनका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो। अन्यथा उन्हें अपने समान ही स्त्री की खोज करनी चाहिये। याज्ञवल्क्य की यह स्पष्ट व्यवस्था है।

वात्स्यायन मनोविज्ञान और शरीरविज्ञान तथा धर्मशास्त्र एवं समाजशास्त्र से परीक्षण करने के बाद सगाई करने का पक्षपाती है। धर्मशास्त्र से वह सवर्ण और असपिंड कन्या का, समाजशास्त्र से नातेदारी, रिश्तेदारी, माता-पिता आदि से युक्त कन्या का, मनोविज्ञान से शील, गुण युक्त कन्या का मूल्यांकन और परीक्षण करता है। इसके बाद शरीरविज्ञान से मूल्यांकन करता हुआ कहता है कि नाखून, दाँत, कान, आँख, बाल और स्तन न तो बहुत छोटे हों और न बहुत बड़े हों और न इनका एकदम अभाव ही हो। शरीर नीरोग हो, किसी प्रकार का रोग न हो—ऐसी कन्या से सगाई कर लेनी चाहिए।

मनु का कथन है कि जिसकी वंश-परम्परा दस पीढ़ी से अपने गुण, शील से विख्यात हो उस कुल की कन्या से विवाह करना चाहिए; किन्तु कन्या यदि संचारी रोगों से युक्त हो और अति महान् कुल की हो, फिर भी उससे विवाह न करना चाहिए।

दशपूरुषविख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात्।
स्फीतादपि न सञ्चारिरोगदोषसमन्वितात्॥

याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका की सम्मति है कि जिस कन्या में कुष्ठ, मृगी आदि संचारी रोग और माता-पिता के शुक्र-शोणित द्वारा संतान में प्रवेश करने वाले रोग हों तो वह चाहे महाकुल की भी क्यों न हो, उससे विवाह न करना चाहिए।

मनु ने १ क्रियाहीन, २ पुरुषहीन, ३ वेदरहित, ४ रोमश (अधिक बाल वाले), ५ अर्श (बवासीर) रोग युक्त, ६ क्षय, मन्दाग्नि, ८ अपस्मार (मृगी), ९ श्वित्र (सफेद दाग़) और १० कोढ़ रोग से युक्त इन दस प्रकार के कुलों में विवाह करने का निषेध किया है—

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दोरोमशार्शसम् ।
क्षय्यामय्याऽन्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥

अन्त में मनु और अधिक स्पष्ट करते हैं कि जो कन्या विकलांग न हो, जिसका नाम सौम्य हो, जिसकी चाल हंसिनी या हथिनी की तरह हो, जिसके लोम, केश, दाँत छोटे हों और अङ्ग कोमल हों उसके साथ विवाह करना चाहिए–

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥

वात्स्यायन अश्विनी, भरणी, अनुराधा आदि नक्षत्रपरक नाम वाली तथा गंगा, यमुना आदि नदीपरक एवं नीम, जासुन, खिन्नी, बादाम आदि वृक्षों के नाम वाली कन्या तथा जिस कन्या के नाम के अन्त में ल और र अक्षर हों उससे विवाह करने को मना करता है। नामकरण के सिद्धान्त पर विचार करने से मालूम होता है कि नाम के अक्षरों का, नामार्थ का प्रच्छन्न प्रभाव मनुष्य के शील, स्वभाव, सदाचार और विवेक पर अवश्य पड़ा करता है। भाषा विज्ञान (भारतीय) की दृष्टि से हर वर्ण अर्थवान् होता है; उसका अर्थ, उसका उच्चारण वातावरण को प्रभावित किया करता है। दीपक राग गाने से दीपक जल उठते हैं, मल्हार राग गाने से मेघ पानी बरसाने लगते हैं। वीणा की धुन सुन कर कस्तूरी मृग स्तब्ध हो जाता है। बीन सुन कर विषधर साँप मुग्ध हो जाता है। तात्पर्य यह कि जैसा नाम होगा उसका उच्चारण बार बार करने से, सुनने से, लिखने से उसका अप्रत्यक्ष प्रभाव सूक्ष्म मन पर पड़ता है और तदनुकूल मानसिक वातावरण बनता और बिगड़ता है।

अक्षरों से ही धातुएँ बनती हैं, उन्हीं धातुओं से शब्द बनते हैं और उन्हीं शब्दों से वाक्य बना करते हैं। प्रत्येक अक्षर अपनी ध्वनि, बनावट, असर, लिपि और उच्चारण से विज्ञान युक्त सिद्ध है। पाणिनि ने शब्दों की इस वैज्ञानिकता का मर्म समझ कर ही धातुपाठ का निर्माण किया है। अक्षरों के अर्थों के आधार पर ही उन्होंने धातु और उनके अर्थ निर्धारित किए हैं। पाणिनि के मत से 'ल' अक्षर का अर्थ लेना और रमण करना तथा र अक्षर का अर्थ देना और रमण करना है। यदि ल और र अक्षरों का अर्थ हृदयंगम कर लिया जाता है तो वात्स्यायन के इस कथन का कि कन्या के नाम के अन्त में ल और र अक्षर न हों—का रहस्य स्वयं समझ में आ जाता है।

स्पष्ट जाहिर है कि लकारान्त, रकारान्त नाम वाली कन्या लेने, देने और रमण कराने में अनियंत्रित हो सकती है। यह अनुमान से नहीं अनुभव और प्रत्यक्ष प्रमाणों से भी आँकने की बात है।

अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्रों के नाम पर कन्या का नाम वात्स्यायन की दृष्टि से गर्हित है। वात्स्यायन का यह दृष्टिकोण नितान्त वैज्ञानिक है। खगोल पर चन्द्रमा के भ्रमण के अनुसार आकाश के सत्ताइस अथवा अट्ठाइस खण्ड किए गए हैं। ये खण्ड ही नक्षत्र हैं। नक्षत्रों की गणना उनके भोग के अनुसार विषुव-वलय अथवा किसी भी अहोरात्र वृत्त पर होती है। प्रत्येक नक्षत्र अपने-अपने कदंबाभिमुख भोग के अनुसार किसी न किसी राशि का अंश माना जाता है जैसे अश्विनी, भरणी और कृत्तिका मेप राशि के अंश माने जाते हैं कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा वृषराशि के अंश माने जाते हैं। सूर्य और चन्द्र इन्हीं नक्षत्रों पर भ्रमण करते हैं। इनके इस भ्रमण से ही सौर मास और चान्द्रमास की कल्पना की गई है।

किसी दिन विशेष में सूर्य का संचार होने से वह नक्षत्र जिस पर सूर्य का संचार होता है याम्योत्तर मण्डल का उल्लंघन करता है। इसे परगमन भी कहा जाता है। कन्याओं में नक्षत्रों की भाँति मर्यादा उल्लंघन या परगमन की प्रवृत्ति न हो जाए। इसलिए नक्षत्रों के नाम पर नामकरण करने का निषेध किया गया है।

नदियों के नाम पर कन्याओं के नामकरण का निषेध करने का तात्पर्य स्पष्ट है। नदियों की गति, उनकी धारायें और उनके प्रवाह पर सामाजिक दृष्टि से विचार किया जाए तो नदियां निरन्तर नीचे—ढलुवाँ ज़मीन की ओर टेढ़े-मेढ़े बहा करती हैं। इसीलिए नदी का एक नाम निम्नगा भी है। कन्याओं का जीवन-प्रवाह नदियों की भाँति वक्र अथवा चञ्चल न हो जाए। वे निम्नगा न बनें इसलिए नदियों के नाम पर नामकरण न करना चाहिए।

वृक्ष स्थावर पदार्थ है, वृक्षों के जीवन में प्रति वर्ष पतझड़ और वसंत का प्रभाव पड़ता है। वृक्षों के फल, फूल पर सभी अपना अधिकार समझते हैं, वृक्षों के जीवन में गति नहीं, उत्कर्ष नहीं, कन्या की प्रवृत्ति स्थावर और गति-शून्य तथा परमुखापेक्षी न बने इसलिए वृक्षों के नाम पर नामकरण न करना चाहिए।

नक्षत्राख्यां नदीनाम्नीं इत्यादि श्लोक धर्मशास्त्र का वचन है, जिसे मुहूर्त्त-चिन्तामणि आदि ज्योतिष ग्रन्थों ने भी उद्धृत किया है। वात्स्यायन ने धर्मशास्त्र के इस वचन को उद्धृत करके अपना अभिप्राय प्रकट किया है। नामकरण के सम्बन्ध में धर्मशास्त्र का समर्थन किया है। नक्षत्र, नदी, वृक्ष-

परक नाम न रखने का व्यावहारिक एवं धर्मशास्त्रीय दोनों प्रयोजन भी हो सकते हैं। क्योंकि मनुस्मृति का कथन है कि—अपना नाम, अपने गुरु का नाम, अतिकृपण व्यक्ति का नाम तथा ज्येष्ठ सन्तान का और पत्नी का नाम न लेना चाहिए।

'आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥'

कदाचित् इसीलिये कोई स्त्री जिसके पति का नाम कपूरचन्द्र था, कपूर खरीदने गई तो वह सीधे कपूर न कहकर कहती है—

शंख से उज्ज्वल शशि वरन, मलयागिरि की बास।
ताहि बेसाहन सासु पठायउ, देहु साहु घर जाऊं॥

वात्स्यायन का कहना है कि कुछ आचार्यों का कहना है कि जिससे मन और आँखें लग जाएँ उसी कन्या से विवाह कर लेना चाहिये। यही मत आपस्तम्बधर्मसूत्र का है—'यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः।' अर्थात् जिस कन्या में मन और चक्षु दोनों निरन्तर लगे रहें उससे विवाह करने से ऋद्धि होती है।

किन्तु इस शास्त्रवचन को व्यवहार में लाने से पहले विवेक से काम लेना आवश्यक है। यदि कन्या विकलांग हो अथवा वह समान गोत्र की हो तो मन मिलने पर, आँखें लगने पर भी विवाह न करना चाहिए।

कुमारी कन्याओं को सुयोग्य वर मिले इसलिए वात्स्यायन कहता है कि कन्यायें जब विवाह योग्य हो जायें तो उन्हें साज-श्रृङ्गार के साथ बाहर निकाला जाए, मेले-ठेले में भेजा जाए, जिससे उनके सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होकर लोग उनसे विवाह करने का प्रस्ताव करें।

इस सम्बन्ध में वात्स्यायन तर्क प्रस्तुत करते हुए कहता है कि जैसे बाजार में लोग खरीदने योग्य वस्तु को भली भाँति देखे बिना नहीं खरीदते उसी प्रकार कन्या का विवाह भी बिना भली भाँति देखे नहीं किया जा सकता।

वात्स्यायन के इस कथन से उसके समय के समाज और विवाह-प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। ऐसा जान पड़ता है कि वात्स्यायन के जमाने में स्वयंवर की प्रथा बन्द सी हो गई थी, कन्याओं के विवाह किसी बहाने से उन्हें दिखा कर करने की प्रथा चल पड़ी थी। हमारे देश में वैदिक युग से ही कन्याओं के विवाह बहुत कुछ अनियंत्रित वातावरण में होते रहे हैं। स्वयंवर जैसी प्रथा भी बहुत पुरानी है। ऋग्वेद कहता है कि कितनी ही युवतियाँ वनिताभिलाषी युवकों की प्रार्थना पर उन्हें पति के रूप में अंगीकृत कर लिया करती हैं। जो

वधू कल्याणी और सुन्दरी होती है वह स्वयं मनुष्य-समूह में पति का वरण कर लेती है—

किंयती योषा मर्य्यतो वधूयोः परिप्रीतापन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जनेचित्॥

भारत की यह विवाह-पद्धति मुस्लिम आक्रमणों एवं अनैतिक शासनों के कारण बन्द हो गई। किन्तु अब भी इसके परिवर्तित रूप यत्र-तत्र मिलते हैं। पंजाब आदि प्रदेशों में माथुर कायस्थों में वर को कन्या द्वारा जयमाला पहनाने का रिवाज है। मिथिला के सौराठ गाँव में विवाहेच्छुक हजारों कुमार तरुण वर्ष में एक दिन एकत्र होते हैं जहाँ पर कन्याओं के पिता आकर अपनी कन्याओं के लिए उपयुक्त वरों का चुनाव करते हैं।

इससे सिद्ध है कि इससे पूर्व किसी जमाने में लड़कियाँ भी एकत्र हुआ करती रही होंगी। वहाँ अनेक प्रकार के खेल तमाशे हुआ करते रहे होंगे। इसी अवसर पर आपस में प्रेमसम्बन्ध, विवाहसम्बन्ध स्थिर हो जाता रहा होगा।

लेकिन कुमारी कन्या को सजाने तथा मेले-ठेले में भेजने का वात्स्यायन का तात्पर्य केवल उस कन्या के रूप, सौन्दर्य की ओर लोगों को आकृष्ट कराना मात्र जान पड़ता है। उसके सौन्दर्य पर आकृष्ट होने के बाद कदाचित् उसके पिता के पास कन्यादान करने का प्रस्ताव भेजा जाता रहा होगा, और कुल-शील, सनाथता आदि का मेल ठीक होने पर कन्या का पिता उनके प्रस्ताव को सर्वथा स्वीकार न कर कन्या को देखने के लिए आमंत्रित करता था। वात्स्यायन कहता है कि जब लोग कन्या को देखने आएँ तो उनकी खूब खातिरदारी की जाए और किसी बहाने से कन्या को दिखा दिया जाए। लेकिन तत्काल स्वीकृति न देकर परिवार के लोगों से, सम्बन्धियों से परामर्श करके उत्तर देने का बहाना करके उस वक्त टाल देना चाहिए। न तो बिल्कुल स्वीकृति-सूचक उत्तर दिया जाए और न साफ इनकार ही किया जाए। इसका तात्पर्य यह है कि वर-परीक्षा भी भलीभाँति की जाए। उसके कुल, शील, विवेक, माता-पिता सम्बन्धी तथा योग्यता, विद्वत्ता, आर्थिक स्थिति की पूरी जाँच कर लेने के बाद विवाह सम्बन्ध पक्का करना चाहिए।

नीतिशास्त्र का कथन है कि कुल, शील, सनाथता, विद्या, वित्त, शरीर और अवस्था इन सात गुणों पर भली भाँति विचार किए जाने के बाद सगाई निश्चित करनी चाहिए।

कुलं च शीलं च सनाथता च विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च।
एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयाः॥

आश्वलायन का कथन है कि वाग्दान (सगाई) निश्चित होने से पहले गोशाला को, बामी की, द्यूतस्थान की, सरोवर के दोनों तटों की, खेत की, चौराहे की और श्मशान की मिट्टी लाकर अलग-अलग आठ पिण्ड बनाए जायँ, फिर वर कन्या से कहे कि इन आठ पिण्डों में से वह किसी एक का स्पर्श करे। यदि कन्या गोशाला की मिट्टी का स्पर्श करे तो धन-धान्य युक्त होती है, बामी की मिट्टी का स्पर्श करे तो पशुओं से सम्पन्न, द्यूत स्थान की मिट्टी का स्पर्श करे तो अग्निहोत्र, यज्ञ-यजन करने वाली हो, सरोवर के नीचे तट की मिट्टी का स्पर्श करे तो विवेक सम्पन्न, ऊपरी तट की मिट्टी का स्पर्श करे तो रोगिणी, खेत की मिट्टी का पिण्ड स्पर्श करे तो वन्ध्या, चौराहे की मिट्टी के पिण्ड का स्पर्श करे तो व्यभिचारिणी और श्मशान की मिट्टी का स्पर्श करे तो विधवा होती है—

"पूर्वस्यां रात्रौ गोष्ठवल्मीककितवस्थानह्रदेरिणक्षेत्रचतुष्पथश्मशानेभ्यो मृत्तिकां गृहीत्वा पिण्डाष्टकं कर्तव्यम् । तत्रानुक्रमेण प्रथमे पिण्डे स्पृष्टे धान्यवती भवेत्, द्वितीये स्पृष्टे पशुमती भवेत्, तृतीयेऽग्निहोत्रशुश्रूषणपरा भवति, चतुर्थे विवेकिनी चतुरा सर्वजनार्चनपरा भवति, पञ्चमे रोगिणी, षष्ठे वन्ध्या, सप्तमे व्यभिचारिणी, अष्टमे विधवा भवेत् ।"

आश्वलायन यह भी कहता है कि किसी चतुर स्त्री द्वारा कन्या के स्त्रीत्व की भी परीक्षा करा लेने के बाद सगाई निश्चित करनी चाहिए। साथ ही यह भी देख लेना चाहिए कि उसका ब्रह्मचर्य तो नष्ट नहीं हुआ है। कन्या का ब्रह्मचर्य अविप्लुत होना आवश्यक है।

सगाई निश्चित हो जाने के बाद वात्स्यायन विवाह करने की राय देता है कि अपने देश के रिवाज के अनुसार ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष और दैव इन चार प्रकार के विवाहों में से किसी एक के अनुसार शास्त्रीय विधि से विवाह करना चाहिए।

धर्मशास्त्र में आठ प्रकार के विवाह उल्लिखित हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, पैशाच और राक्षस। इनमें से प्रथम चार शास्त्र-सम्मत हैं, शेष चार शास्त्र-निषिद्ध हैं। वात्स्यायन धर्मशास्त्रानुमोदित प्रथम चार प्रकार के विवाहों का ही समर्थन करता है शेष चार का नहीं। इसलिए कि गान्धर्व, आसुर, पैशाच और राक्षस विवाह अनैतिकता, बर्बरता, कामुकता और असामाजिकता के द्योतक हैं; इनसे समाज और धर्म दोनों की मर्यादा नष्ट होती है।

ब्राह्म विवाह का लक्षण बतलाते हुए याज्ञवल्क्य स्मृतिकार कहता है कि जिस विवाह में पूर्वोक्त वर को बुलाकर यथाशक्ति समलंकृत कन्या को संकल्प-

पूर्वक प्रदान किया जाता है उसे ब्राह्म विवाह कहते हैं। विवाह-पद्धति से विवाहित कन्या से पैदा हुआ पुत्र मातृकुल और पितृकुल के बीस पूर्वजों की तथा अपनी आत्मा को पवित्र बनाता है—

ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता।
तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम्॥

तुम दोनों अपने-अपने धर्म का आचरण करो—यह कहकर याचना करने वाले को जब कन्या दी जाती है तो उसे प्राजापत्य विवाह कहते हैं। इस विवाह से विवाहित कन्या से उत्पन्न पुत्र दोनों कुलों की छः-छः पीढ़ियों को तथा अपने को पवित्र बनाता है—

इत्युक्त्वाचरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने।
सकायः पावयेत्तज्जः षट्षड्वंश्यान्सहात्मना॥

जिस विवाह में यज्ञ कराते हुए ऋत्विक् को कन्या दी जाय वह दैवविवाह और जिस विवाह में करने योग्य धर्म के लिए दो बैल लेकर कन्या दी जाय वह आर्ष विवाह होता है—

यज्ञस्थ ऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम्।

इस प्रकार वाग्दान (सगाई) और विवाह की चर्चा समाप्त कर वात्स्यायन नीति-शास्त्र के प्राचीन श्लोकों को उद्धृत करते हुए विवाह-सम्बन्धी व्यावहारिक नीति का उल्लेख करता है। वह कहता है कि खेल, विवाह और मित्रता बराबर वालों से करनी चाहिए। न तो अपने से ऊँचे और न अपने से नीचे व्यक्ति से। एक नीतिकार कहता है कि—समं मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः। मित्रता और विवाह अपनी समता के लोगों से करना चाहिए, अपने से अधिक या कम से नहीं। इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करते हुए वात्स्यायन कहता है कि यदि अल्पवित्त व्यक्ति धनवान् की कन्या से विवाह कर लेता है तो उसे जीवन भर अपनी स्त्री से दबना पड़ता है। धन के जोर पर स्त्री उसे हमेशा अपना गुलाम बनाए रखती है। इसके विपरीत गरीब घर की लड़की यदि धनवान् घर में ब्याही जाती है तो उसका वहाँ तिरस्कार किया जाता है, पद-पद पर ताने सुनने को मिलते हैं। इस तरह दाम्पत्य-जीवन सुखी नहीं बन पाता है। इसलिए विद्या, वित्त, कुल इन तीन की समानता देखकर ही लड़की-लड़के का विवाह करना चाहिए।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके तृतीयेऽधिकरणे
वरणविधानं सम्बन्धनिश्चयश्च प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः

कन्याविस्रम्भणप्रकरणम्

एवमधिगताप्यविश्वासिता न प्रयोगार्हेति कन्याविस्रम्भणमुच्यते । तत्र विवाहानन्तरं मङ्गलाचारमाह—

संगतयोस्त्रिरात्रमधःशय्या ब्रह्मचर्यं क्षारलवणवर्जमाहारस्तथा सप्ताहं सतूर्यमङ्गलस्नानं प्रसाधनं सहभोजनं च प्रेक्षासंबन्धिनां च पूजनम् । इति सार्ववर्णिकम् ॥ १ ॥

संगतयोरिति—परिणयात्प्राप्तसमागमयोः । त्रिरात्रमिति—रात्रिग्रहणं रात्रिकर्मप्रदर्शनार्थम् । अधःशय्या–भूमौ शयनम्, न खट्वायाम् । ब्रह्म चर्यं यावच्चतुर्थिकाहोमो न क्रियते । दिवामैथुनस्य प्रतिषिद्धत्वात् । क्षारः—फाणितगुडादिः । लवणम्—सैन्धवादि, तद्वर्जं भोजनं मधुक्षीरघृतसंस्कृतप्रायम् । तच्च नक्तं स्यात्, रात्रिकर्मवर्गे पठितत्वात् । तथा सप्ताहमिति, यथा त्र्यहम्, तदूर्ध्वमपराणि सप्तानीत्यर्थः अहर्ग्रहणं दिनकर्मप्रदर्शनार्थम् । सवाद्यं समङ्गलं सगीतं स्नानं च प्रसाधनं मण्डनम् । सहभोजनं चेति—एकस्मिन्स्थाने । पूर्वत्रापि सहभोजनं किंतु व्रतस्थत्वात्क्षारलवणवर्जं नक्तं च तदिति । प्रेक्षासंबन्धिनां नटादीनां च दर्शनम् । पूजनं च गन्धमाल्यादिभिः । सार्ववर्णिकमिति, चतुर्ष्वपि ब्राह्मणादिवर्णेषु भवम्, अविरुद्धत्वात् । एतच्च लोके दशरात्रिकमित्युच्यते । तथा चोक्तम्—'कन्यावेश्मनि निर्वर्त्यं राजवद्दशरात्रिकम् । सभार्यः स्वगृहं यायात् स्थितेर्वा कुलदेशयोः ॥' इति ॥ १ ॥

विवाह हो जाने के बाद पति और पत्नी दोनों तीन रात्रि तक पृथिवी पर शयन करें और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें । भोजन में क्षार पदार्थ और नमकीन चीजें न हों । एक सप्ताह तक बाजे गाजे के साथ मंगल स्नान किया जाय, वर वधू दोनों को वस्त्रालंकार से सजाया जाय । भोजन में, गोष्ठी-नाटक आदि में दोनों साथ-साथ रहें । अपने से बड़ों का अभिवादन आदि से सम्मान करें—यह नियम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्ण के लिये हैं ॥ १ ॥

विस्रम्भणोपायमाह—

तस्मिन्नेतां निशि विजने मृदुभिरुपचारैरुपक्रमेत ॥ २ ॥

तस्मिन्निति–दशरात्रिके । कन्या द्विविधा—संसर्गयोग्या इतरा च । पूर्वस्या विस्रम्भणं रतापेक्षया, द्वितीयाया भयलज्जापगमापेक्षया । निशि मन्दसाध्वस-

त्वात् । विजने—कौतुकगृहे । लज्जापगमात् । मृदुभिरुपचारैरिति—अनुद्वेगकरैरालापस्पर्शनादिभिः ॥ २ ॥

रात में एकान्त स्थान पर कोमल उपचारों द्वारा पति पत्नी को अपनी ओर अभिमुख करे ॥ २ ॥

किमर्थमुपक्रम्यत इत्याह—

त्रिरात्रमवचनं हि स्तम्भमिव नायकं पश्यन्ती कन्या निर्विद्येत परिभवेच्च तृतीयामिव प्रकृतिम् । इति बाभ्रवीयाः ॥

त्रिरात्रमिति । स्तम्भमिव मूकं निश्चेष्टं तत्र निर्वचनं पश्यन्ती निर्विद्येत । मूकेन ग्राम्येण चाहमूढेति खिद्येत् परिभवेच्चेति—निश्चेष्टत्वान्नपुंसकमिति तिरस्कारबुद्धिं तत्र कुर्यात् ॥ ३ ॥

बाभ्रवीय आचार्यों का मत है कि प्रथम तीन रात्रियोंमें यदि पति जड़वस्तु की तरह स्थिर रहे, न तो कुछ बात करे और न स्पर्श करे, प्रेम भरी आँखों से पत्नी की ओर देखे भी नहीं तो नव-वधू दुःखी होती है और पति को नपुंसक समझकर उसके प्रति सम्मान का भाव नहीं रखती ॥ ३ ॥

अस्मिन्पक्षे सर्वस्याविशङ्कया करणे प्राप्ते प्रतिषेधमाह—

उपक्रमेत विस्रम्भयेच्च, न तु ब्रह्मचर्यमतिवर्तेत । इति वात्स्यायनः ॥ ४ ॥

उपक्रमेत यथा न निर्विद्येत । विस्रम्भयेच्च यथा संप्रयोगेऽनुकूला भवति । न तु ब्रह्मचर्यमतिवर्तेत । अनुकूलायामप्यकाले व्रतखण्डनस्याधर्मत्वात् ॥ ४ ॥

वात्स्यायन का कहना है कि प्रथम तीन रात्रियों में पत्नी के प्रति प्रेम प्रदर्शित करे और उसके हृदय में अपना विश्वास जमाये किन्तु ब्रह्मचर्य भंग न होने देना चाहिए ॥ ४ ॥

उपक्रममाणश्च न प्रसह्य किंचिदाचरेत् ॥ ५ ॥

उपक्रममाणश्चेत्यादिना मृदुभिरुपचारैरित्यस्य । प्रपञ्चः न प्रसह्य किंचिदिति । स्पर्शनमपि नाभिभूय कुर्यादित्यर्थः ॥ ५ ॥

किन्तु प्रेम-प्रदर्शन का उपक्रम करते हुए आलिंगन, चुम्बन आदि कोई आचरण जबरदस्ती न करे ॥ ५ ॥

किमर्थमित्याह—

कुसुमसधर्माणो हि योषितः सुकुमारोपक्रमाः । तास्त्वन-

धिगतविश्वासैः प्रसभमुपक्रम्यमाणाः संप्रयोगद्वेषिण्यो भवन्ति । तस्मात्साम्नैवोपचरेत् ॥ ६ ॥

कुसुमसधर्माण इति–कुसुमतुल्याः । योषित इति–सर्वा एव, विशेषतः कन्याः। सुकुमारोपक्रमा इति–मृदुरुपक्रमः स्पर्शनादिलक्षणो यासु । अनधिगतविश्वासैरिति–लब्धविश्वासैस्तु प्रसह्योपक्रमो न दोषाय । संप्रयोगद्वेषिण्यो जातानिच्छकत्वात् । तस्मात्साम्नेति–मृदुना । सर्वोपचाराणामयं प्राथमिको विधिः ॥ ६ ॥

क्योंकि स्त्रियाँ फूल के समान कोमल होती हैं, इसलिए उनके साथ बहुत सुकुमारता से व्यवहार करना चाहिये । जब तक पत्नी के हृदय में पति के प्रति पूर्ण विश्वास उत्पन्न न हो जाय तब तक कोई क्रिया जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए । कदाचित् कोई काम बलात्कार द्वारा किया जाता है तो पत्नी संभोग से चिढ़ जाती है, इसलिए पति को चाहिए कि वह ऐसे अवसर पर सुकुमारता से काम ले ॥ ६ ॥

तत्रालब्धप्रसरस्योपचारयोगासंभवात्तदुपायमाह—

युक्त्यापि तु यतः प्रसरमुपलभेत्तेनैवानु प्रविशेत् ॥ ७ ॥

युक्त्येति—कयाचिदर्थयुक्त्या तत्कालभाविन्या । यतः–प्रसरमिति–तत्सख्या सह संभाषणे क्रीडने वा आत्मनोऽवकाशमुपलभेत्तेनैव–संभाषणेन क्रीडनेन वा द्वारेण तामनुप्रविशेत् ॥ ७ ॥

बड़ी तरकीब से पत्नी के अङ्गों को शिथिल करके जहाँ भी अवकाश मिले अपने अङ्गों को प्रविष्ट कर देना चाहिए ॥ ८ ॥

ततो लब्धप्रसरस्य प्रथममुपगूहनेनोपक्रम इत्याह—

तत्प्रियेणालिङ्गनेनाचरितेन नातिकालत्वात् ॥ ८ ॥

तत्प्रियेणेति । कथं तत्प्रियमित्याह—नातिकालत्वादिति । यद्दत्त्वानन्तरमेवापनीयते, तस्यानुद्वेजनकरत्वात् ॥ ८ ॥

इस प्रकार अवसर मिलने पर बड़े प्यार से स्त्री का आलिंगन करे किन्तु अधिक देर तक नहीं ॥ ८ ॥

पूर्वकायेण चोपक्रमेत् । विषह्यत्वात् ॥ ९ ॥

पूर्वकायेण चेति । तस्या यो नाभेरूर्ध्वंभागस्तेन प्रथममुपक्रमेत् । विषह्यत्वादिति । तेनोपक्रमः शक्यते सोढुम् । नाधरकायेन । उद्वेजनकरत्वात् ॥ ९ ॥

प्रारम्भ में स्त्री से अधिक परिचय न होने के कारण आलिङ्गन छाती आदि ऊपरी अङ्गों का करना चाहिये, नाभि आदि नीचे के अङ्गों का नहीं ॥ ९ ॥

दीपालोके विगाढयौवनायाः पूर्वसंस्तुतायाः । बालाया अपूर्वायाश्चान्धकारे ॥ १० ॥

दीपालोके कौतुकगृहवर्तिनि । विगाढयौवनापूर्वसंस्तुतयोः । भयलज्जाभावात् । बालापूर्वयोरन्धकारे । लज्जाधिक्यात् । विगाढयौवनाप्यन्यशुभलक्षणयोगादूढा । लघुदोषत्वात् ॥ १० ॥

यदि विवाह से पूर्वपरिचित उन्मत्तयौवना पत्नी हो तो दीपक के प्रकाश में और यदि पहले से परिचित न हो और अप्राप्तयौवना हो तो अँधेरे में आलिगन करना चाहिए ॥ १० ॥

अङ्गीकृतपरिष्वङ्गायाश्च वदनेन ताम्बूलदानम् । तदप्रतिपद्यमानां च सान्त्वनैर्वाक्यैः शपथैः प्रतियाचितैः पादपतनैश्च ग्राहयेत् । व्रीडायुक्तापि योषिदत्यन्तक्रुद्धापि न पादपतनमतिवर्तते इति सार्वत्रिकम् ॥ ११ ॥

वदनेन ताम्बूलदानमिति स्वेन मुखेन । चुम्बनक्षान्तेरभिप्रेतत्वात् । तदप्रतिपद्यमानामिति ताम्बूलमगृह्णतीम् । सान्त्वनवाक्यैः प्रियाभिधायिभिः । शपथैरिति मच्छरीरेण शप्तासीति । प्रतियाचितैस्त्वमेतन्मे देहीति । पादपतनेन वा अन्त्यावस्थायां ग्राहयेत् । यतः स्त्रिया व्रीडात्याजने क्रोधापनयने च न पादपतनादूर्ध्वमुपायोऽस्ति । सार्वत्रिकमिति न कन्यायामेव, अन्यस्यामपि ॥ ११ ॥

जब स्त्री का आलिंगन आदि कराने में लाज-संकोच दूर हो जाए तो पति अपने मुखमें पान का बीड़ा रखकर उसको दे, यदि वह न स्वीकार करे तो मीठी-मीठी मनुहार भरी बातों से अनुरोध करे, अपनी कसम दिलावे, इतने पर भी पान का बीड़ा न ले तो उसके पैरों में गिरकर उसे मनाना चाहिये । कैसी भी लज्जायुक्त अथवा अत्यन्त कुपित स्त्री क्यों न हो अपने पैरों में पति का गिरना बरदाश्त नहीं कर सकती है—यह प्रवृत्ति सब जगह और सभी स्त्रियों के समान होती है ॥ ११ ॥

तद्दानप्रसंगेन मृदु विशदमकाहलमस्याश्चुम्बनम् ॥१२॥

मृद्विति यत्र ग्रहणं नास्ति । तस्योद्वेजनत्वात् । विशदं स्पर्शकरम् । अकाहलमशब्दम् । सशब्देन लज्जिता स्यात् ॥ १२ ॥

पान देते समय कोमलता से पत्नी का चुम्बन करे ॥ १२ ॥

तत्र सिद्धामालापयेत् ॥ १३ ॥

तत्र सिद्धां चुम्बनेनानुकूलामालापयेत् यथा ब्रवीति ॥ १३ ॥

यदि चुम्बन से पत्नी प्रसन्न हो तो उससे बातें करना शुरू करे ॥ १३ ॥

अत्रोपायमाह—

तच्छ्रवणार्थं यत्किंचिदल्पाक्षराभिधेयमजानन्निव पृच्छेत्

तच्छ्रवणार्थमिति—आलापश्रवणार्थम् । यत्किंचिदिति—दृष्टं श्रुतं वा तदानीम् । अल्पाक्षराभिधेयम्, सुकथनीयत्वात् । अजानन्निवेति—अन्यथा विहावयतीति जानीयात् ॥ १४ ॥

बात-चीत को सुनती हुई स्त्री से पति बीच में अनजान बनकर थोड़े शब्दों में कुछ पूछे ॥ १४ ॥

तत्र निष्प्रतिपत्तिमनुद्वेजयन्सान्त्वनायुक्तं बहुश एव पृच्छेत् ॥ १५ ॥

निष्प्रतिपत्तिम्—तूष्णीं स्थिताम् । सान्त्वनायुक्तम्—चाटुयुक्तम् ॥ १५ ॥

यदि वह उत्तर न दे तो उसे सताये बिना बड़ी मधुरता से बार-बार पूछे ॥

यत्राप्यवदन्तीं निर्बध्नीयात् ॥ १६ ॥

निर्बध्नीयात् अनेनैव क्रमेण ॥ १६ ॥

फिर भी न बोले तो अधिक जोर न देना चाहिए ॥ १६ ॥

निर्बन्धे विरज्यत इति चेदाह—

सर्वा एव हि कन्याः पुरुषेण प्रयुज्यमानं वचनं विषहन्ते । न तु लघुमिश्रामपि वाचं वदन्ति । इति घोटकमुखः ॥ १७ ॥

सर्वा एवेति । प्रयुज्यमानमिति पुनःपुनरुच्यमानं विषहन्ते । आविर्भवन्मन्मथत्वात् । लघुमिश्रामपीति—कतिपयाक्षरामन्यार्थश्लिष्टामपि न वदन्ति । लज्जापरतन्त्रत्वात् ॥ १७ ॥

आचार्य घोटकमुख का कहना है कि सभी नवविवाहित कन्याएँ पुरुष की हर बात को चुपचाप पी जाती हैं । वे उत्तर में न तो मिली-जुली भाषा में और न संक्षिप्त भाषा में ही कुछ बोलती हैं ॥ १७ ॥

अत्र कन्याया आलापयोजनोपायमाह—

निर्बध्यमाना तु शिरःकम्पेन प्रतिवचनानि योजयेत् । कलहे तु न शिरः कम्पयेत् ॥ १८ ॥

निर्बध्यमानेति । शिरःकम्पेनेति । किमिदं जानासीति पृष्टा जानामीत्यूर्ध्वाधःशिरश्चालनेन, न जानामीति तिर्यक् शिरश्चालनेन योजयेत् । धाष्टर्यपरिहारार्थम् । कलहे त्विति—अस्यामवदन्त्यां यदि कदाचिदर्थयुक्त्या प्रेरणप्रतिप्रेर-

ग्गादिलक्षणो वाक्कलहो जातस्तस्मिन् किं कुपितासि नेति पृष्टा न शिरः कम्पयेत् । कोपख्यापनार्थम् ॥ १८ ॥

बार-बार पूछने पर स्त्री सिर हिलाकर हाँ या नहीं का उत्तर देती है और यदि वह क्रुद्ध है तो सिर भी नहीं हिलाती है ॥ १८ ॥

अकलहे तु स्नेहजिज्ञासायामालापयोजनमाह—

इच्छसि मां नेच्छसि वा किं तेऽहं रुचितो न रुचितो वेति पृष्टा चिरं स्थित्वा निर्बध्यमाना तदानुकूल्येन शिरः कम्पयेत् । प्रपञ्च्यमाना तु विवदेत् ॥ १९ ॥

इच्छसि मां नेच्छसि वेति वार्तमानिकः प्रश्नः । किं तव रुचितोऽहमरुचितो वेति परिणयात्पूर्वकालिकः प्रश्नः । चिरं स्थित्वेति संकटः प्रश्नः । यदि पूर्वपक्षमाश्रयेयं तदा धाष्ट्र्यं लाघवं च, इतरं चेत्तदा नैष्ठुर्यमिति निर्बध्यमाना नायकेन संकटप्रश्ने किमनुष्ठास्यतीति । तस्या निर्बध्यमानाया उभयपक्षाश्रयणमेव युक्तमित्याह —तदानुकूल्येनेति । पूर्वपक्षेत्तरपक्षानुकूल्येनोभयथापि शिरः कम्पयेदित्यर्थः । प्रपञ्च्यमाना त्विति —अनिश्चितार्थप्रकाशनान्नायकेन प्रतार्यमाणा विवदेत् । कोपख्यापनार्थं विरुद्धं वदेत् न मे रुचितोऽसि नेच्छामि त्वामिति ॥१९॥

तुम मुझे चाहती हो या नहीं, मैं तुम्हें पसन्द हूँ या नहीं, इस प्रकार पूछे जाने पर पत्नी देर तक चुप रहकर फिर सिर हिलाकर अनुकूल उत्तर देती है और अगर क्रुद्ध हुई तो झगड़ पड़ती है ॥ १९ ॥

यदि पूर्वपरिचिता तदालापयोजने विधिमाह—

संस्तुता चेत्सखीमनुकूलामुभयतोऽपि विस्रब्धां तामन्तरा कृत्वा कथां योजयेत् । तस्मिन्नधोमुखी विहसेत् । तां चातिवादिनीमधिक्षिपेद्विवदेच्च । सा तु परिहासार्थमिदमनयोक्तमिति चानुक्तमपि ब्रूयात् । तत्र तामपनुद्य प्रतिवचनार्थमभ्यर्थ्यमाना तूष्णीमासीत । निर्बध्यमाना तु नाहमेवं ब्रवीमीत्यव्यक्ताक्षरमनवसितार्थं वचनं ब्रूयात् । नायकं च विहसन्ती कदाचित्कटाक्षैः प्रेक्षेत । इत्यालापयोजनम् ॥२०॥

संस्तुता चेदिति । सखीमिति सखीनां मध्ये यानुकूला । विस्रब्धोभयत इति द्वयोरपि विस्रब्धा । विदितपूर्ववृत्तान्तत्वात् । तामन्तरा कृत्वा व्यवधाय कथायोजनम् । नायकस्य तु पूर्ववृत्तां कथां योजयेत् । किमहमस्या रुचितो न वेत्यर्थः । तस्मिन्निति । यदैव तस्यां क्रीडायां परिचयोऽभूत्तत एव प्रभृति रुचितोऽसीति

सख्या कथने क्रियमाणेऽधोमुखी लज्जया विहसेत्। एवमिति तदितिख्यापनार्थम्। नायिका तां चेति सखीम्। अतिवादिनीमित्यनुरागातिशयं कथयन्तीमधिक्षिपेत्। विवदेच्च तया सह कलहयेत्। सा त्विति सखी। अनुक्तमपि नायिकया ब्रूयात्। अद्यैव यदि पाणिं गृह्णासि साधु भवतीति। तत्रेत्यनुरक्तकथने। अनवसितार्थमक्षराणामस्पष्टत्वाद् ब्रूयात्। मुग्धत्वख्यापनार्थम्। नायकं च विहसन्ती कदाचिदन्तरान्तरा परिचयवशात्कटाक्षेणोन्मुखीव प्रेक्षेत। अनुरागातिशयख्यापनार्थम् ॥ २० ॥

अपने अनुकूल और दोनों की विश्वासपात्र सखी को माध्यम बनाकर पति पत्नी से बात छेड़े। पति की बातें सुनकर स्त्री नीचे मुँह करके हँसती रहेगी और सखी को यह कहकर धमकायेगी कि तू बहुत बकवाद करने वाली है, उससे विवाद करेगी। सखी भी उससे हँसी उड़ाने के लिए उसके पति से झूठ-मूठ कहेगी कि मेरी सखी, आप से इस प्रकार कह रही है। उधर स्त्री से कहेगी कि तुम्हारे पति ऐसा कह रहे हैं जवाब क्यों नहीं देती हो। इस प्रकार पति और सखी से तंग आकर दबे शब्दों में पत्नी कहती है कि तुम मुझे तंग करोगी तो मैं नहीं बोलूँगी। साथ ही पति की ओर मुस्काती हुई तिरछी नजर से देखती जायेगी। पति पत्नी की प्रारम्भिक बातचीत की ये विधियाँ हैं ॥ २० ॥

एवं जातपरिचया चानिर्वदन्ती तत्समीपे याचितं ताम्बूलं विलेपनं स्रजं निदध्यात्। उत्तरीये वास्य निबध्नीयात् ॥ २१ ॥

एवमालिङ्गनताम्बूलचुम्बनालापैर्जातपरिचया। अनिर्वदन्ती गृहाणेति। याचितं नायकेन। निदध्यात्स्थापयेत् ॥ २१ ॥

इस प्रकार आपस में परिचय हो जाने पर पति के पास बिना बोले पत्नी चुपचाप पान, चन्दन और माला रख दे अथवा उसके उत्तरीय में बाँध दे ॥२१॥

तथायुक्तामाच्छुरितकेन स्तनमुकुलयोरुपरि स्पृशेत् ॥२२॥

तथा युक्तामिति निदधतीमुत्तरीये वा निबध्नतीम्। आच्छुरितेन पूर्वोक्तेन स्तनमुकुलयोरिति मुकुलग्रहणमतिस्पर्शनिवृत्त्यर्थम्। बालात्वात् ॥ २२ ॥

इसी समय पति पत्नी के स्तनों की घुंडियों को कोमलता से स्पर्श करे ॥

वार्यमाणश्च त्वमपि मां परिष्वजस्व ततो नैवमाचरिष्यामीति स्थित्या परिष्वञ्जयेत्। स्वं च हस्तमानाभिदेशात्प्रसार्य निवर्तयेत्। क्रमेण चैनामुत्सङ्गमारोप्याधिकमधिकमुपक्रमेत्। अप्रतिपद्यमानां च भीषयेत् ॥ २३ ॥

वार्यमाणश्चेति । स्पर्शनस्थितया व्यवस्थया परिष्वञ्जयेत् । स्थितिमाह—त्वमपीति । आ नाभिप्रदेशादिति नाभिप्रदेशं यावत् । प्रसार्य निवर्तयेदिति वीप्सार्थं क्षान्त्यर्थम् । प्रसार्य प्रसार्येत्यर्थः । क्रमेणेति । न सहसोत्सङ्गमारोपयेत् । अधिकमधिकमिति नखदशनपदैरप्रतिपद्यमानामधिकोपक्रमं भीषयेत् ॥ २३ ॥

स्त्री के रोकने पर पति यह कहकर कि 'तुम मेरा आलिंगन करो मैं नहीं रोकूंगा' पत्नी का आलिंगन करे और अपने हाथ को उसके नाभि के नीचे तक फैला कर हटा ले फिर उसे अपनी गोद में बैठाने का प्रयत्न करे, धीरे-धीरे आगे की क्रियाएँ बढ़ाता रहे, यदि स्त्री निषेध करे तो उसे कुछ भयभीत भी करा देना चाहिए ॥ २३ ॥

कथमित्याह—

अहं खलु तव दन्तपदान्यधरे करिष्यामि स्तनपृष्ठे च नखपदम् । आत्मनश्च स्वयं कृत्वा त्वया कृतमिति ते सखीजनस्य पुरतः कथयिष्यामि । सा त्वं किमत्र वक्ष्यसीति बालविभीषिकैर्बालप्रत्यायनैश्च शनैरेनां प्रतारयेत् ॥ २४ ॥

अहमिति । आत्मनश्च स्वयं कृत्वा दन्तपदं नखपदं च । किमसौ प्रतिपत्स्यते सखीजनो नवोढादुश्चेष्टितादन्यत्रेत्येतद्बालभीषितम् । अस्मिन्वचनानुष्ठाने तु नाहमेवं करिष्यामीति बालप्रत्यायनमर्थोक्तम् । शनैरेनां प्रतारयेत् कार्याभिमुखीं कुर्यादिति । एतत्प्रथमायां रात्रौ विस्रम्भणम् ॥ २४ ॥

मैं तेरे अधरोष्ठ पर दाँतों के निशान कर दूंगा, स्तनों पर नखक्षत करूंगा । अपने अङ्गों में खुद नखक्षत करके तेरी सखियों से कहूँगा कि तुम्हारी सखी ने ये घाव कर दिए हैं । तब बता तू क्या कहेगी । इस प्रकार बच्चों की भाँति डरा-धमकाकर धीरे-धीरे उस नायिका को नायक मनचाहे काम में लगा ले ॥२४॥

द्वितीयस्यां तृतीयस्यां च रात्रौ किञ्चिदधिकं विस्रम्भितां हस्तेन योजयेत् ॥ २५ ॥

तस्मात्किञ्चिदधिकं द्वितीयस्यां रात्रौ तृतीयस्यां च । हस्तेन योजयेदिति कक्षोरुजघनेषु हस्तस्पर्शसम्बन्धिनीं कुर्यात् ॥ २५ ॥

इस प्रकार प्रथम रात विश्वास में आयी हुई नायिका को नायक दूसरी-तीसरी रात उसकी जाँघ आदि में हाथ फेरना शुरू कर दे ॥ २५ ॥

हस्तेन योजनोपायमाह—

सर्वाङ्गिकं चुम्बनमुपक्रमेत ॥ २६ ॥

सर्वाङ्गिकमिति । ललाटनयनादिषु विचुम्ब्यमाना पर्याकुला सर्वमभ्युपगच्छति ॥ २६ ॥

फिर सभी अङ्गों को चूमने का उपक्रम करना चाहिए ॥ २६ ॥

हस्तयोजनविधिमाह—

ऊर्वोश्चोपरि विन्यस्तहस्तः संवाहनक्रियायां सिद्धायां क्रमेणोरुमूलमपि संवाहयेत् । निवारिते संवाहने को दोष इत्याकुलयेदेनाम् । तच्च स्थिरीकुर्यात् । तत्र सिद्धाया गुह्यदेशाभिमर्शनम् ॥ २७ ॥

ऊर्वोरिति । तत्रायं क्रमः—प्रथमं पूर्वकायस्य संवाहनक्रिया । तस्यां सिद्धायामूर्वोरुपरि न्यस्तहस्त ऊरू संवाहयेत् । क्रमेणोरुमूलमिति । तत्रेत्यूरुमूले । आकुलयेत् चुम्बनाच्छुरितकैः । तच्चेति । यत्पूर्वमभ्युपगतं संवाहनं तच्च स्थिरीकुर्यात् क्षान्त्यर्थम् । तत्रेत्यूरुमूलसंवाहने सिद्धाया गुह्यदेशाभिमर्शनम् ॥ २७ ॥

जंघाओं के ऊपर हाथ रखकर ऊपर-नीचे हाथों से सहलाने के बाद जांघों के जोड़ में हाथ ले जाए । कदाचित् स्त्री ऐसा करने से रोके तो उससे कहना चाहिए कि अरे, इसमें क्या हर्ज है । जाँघों को सहलाने के साथ ही आलिंगन और चुम्बन करते हुए उसे व्याकुल बनाना चाहिए । बीच-बीच में सहलाना बन्द कर देना चाहिए । जब जांघों को सहलाते हुए स्त्री किसी प्रकार का निषेध न करके उसमें रुचि लेने लगे तब धीरे से उसके गुप्तांग तक हाथ पहुंचा देना चाहिये ॥ २७ ॥

रशनावियोजनं नीवीविस्रसनं वसनपरिवर्तनमूरुमूलसंवाहनं च । एते चास्यान्यापदेशाः । युक्तयन्त्रां रञ्जयेत् । न त्वकाले व्रतखण्डनम् ॥ २८ ॥

संवाहनव्यपदेशेन रसनावियोजनाद्यपि कुर्यात् । पूनरूरुमूले संवाहनग्रहणमपरित्यागार्थम् । गुह्यस्पर्शहेतुत्वात् । एत इति गुह्यस्पर्शनादयो व्यापाराः । अस्येति नायकस्य । अन्यापदेशा इति त्रिरात्रादर्वागन्यमपदिश्य कर्तव्याः । न तु व्रतखण्डनमधिकृत्येत्यर्थः । युक्तयन्त्रां च चतुर्थिकाहोमादूर्ध्वं रञ्जयेदिति । रञ्जनमनुद्वेज्य सुखोत्पादनम् ॥ २८ ॥

फिर कमर की करधनी खसकाकर साड़ी की गाँठ को ढीली कर दे और साड़ी को उलट दे और जांघों के जोड़ों में हाथ फेरता रहे । ये सब क्रियायें पत्नी पर अपना प्रेम और विश्वास पैदा करने के लिये की जानी चाहिये न

कि उच्छृङ्खल कामातुर बनकर संभोग काल में स्त्री की प्रसन्नता का ख्याल रखते हुये असमय में ब्रह्मचर्य भङ्ग करने के लिये ॥ २८ ॥

अनुशिष्याच्च । आत्मानुरागं दर्शयेत् । मनोरथांश्च पूर्वकालिकाननुवर्णयेत् । आयत्यां च तदानुकूल्येन प्रवृत्तिं प्रतिजानीयात् । सपत्नीभ्यश्च साध्वसमवच्छिन्द्यात् । कालेन च क्रमेण विमुक्तकन्याभावामनुद्वेजयन्नुपक्रमेत । इति कन्याविस्रम्भणम् ॥

अनुशिष्यात् चातुःषष्टिकान्योगान् शिक्षयेत् । आत्मानुरागं च दर्शयेत् इङ्गिताकाराभ्याम् । मनोरथान् पूर्वकालीनाननुवर्णयेत् ये ये तस्यामधरपानादयश्चिन्तिताः । आयत्यामिति । अनागतकाले तदानुकूल्येन प्रवृत्तिं प्रतिजानीयात् 'यदाह भवती तन्मया विधातव्यम्' इति । सपत्नीभ्यः साध्वसमवच्छिन्द्यात् , यद्यधिविन्ना स्यात् । कालेन च गच्छता मुक्तकन्याभावां युवतीमनुद्वेजयन्नुपक्रमेत । तदाप्ययमेव क्रमः । स स्फुटः कर्तव्यः ।। २९ ।।

सुहागरात से प्रथम तीन रात्रियों में कामकला की शिक्षा भी पत्नी को देनी चाहिये । इन रात्रियों में पत्नी पर अपना प्रेम प्रकट करते हुये पिछले मनोरथों, मनसूबों की बातें भी करनी चाहिये और साथ ही यह प्रतिज्ञा भी करे कि मैं जीवन भर तुम्हारे कहने पर चलूँगा । मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हें अपनी सौतों की शंका न होनी चाहिये । तुम्हारे रहते हुए मैं किसी और को पत्नी नहीं बनाऊँगा । इस प्रकार नव वधू में विश्वास पैदा करने की विधि समाप्त हुई ॥ २९ ॥

उक्तमुपसंहरन्नाह—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

एवं चित्तानुगो बालामुपायेन प्रसाधयेत् ।
तथास्य सानुरक्ता च सुविस्रब्धा प्रजायते ॥ ३० ॥

एवमिति । चित्तानुग इति चित्ताभिप्रायं बुद्ध्वा । उपायेनेति युक्त्या । प्रसाधयेद्विश्वासयेत् । किमेवं स्यादित्याह—तथेति । सुविस्रब्धा सती अनुरक्ता प्रजायत इति योज्यम् ।। ३० ।।

इस विषय पर प्राचीन आचार्यों का कथन है—

इस प्रकार नव वधू के चित्त की वृत्तियाँ जान कर यदि पुरुष तरकीब से उसे अपने प्रेम बन्धन में बाँध लेता है, तो आरम्भ से ही वह स्त्री अनुगामिनी बन कर उसकी सेवा करती है ॥ ३० ॥

तत्रापि विशेषमाह—

नात्यन्तमानुलोम्येन न चातिप्रातिलोम्यतः ।
सिद्धिं गच्छति कन्यासु तस्मान्मध्येन साधयेत् ॥ ३१ ॥

नात्यन्तमिति । सिद्धि सुखम् । तत्र तदानुलोम्येन प्रवृत्तौ स एवोत्तरकालमपि मार्गः स्यात् । ततश्चास्य स्वेच्छाविघातात्तद्विषयासिद्धिः । प्रातिलोम्येनातिप्रवृत्तौ तु तदानीमेव विरक्तत्वात्कथं तद्विषया सिद्धिः । तस्मान्मध्येनोपायेन साधयेत् ॥ ३१ ॥

किन्तु न तो अधिक क्रीतदास बनकर और न अधिक प्रतिकूल होकर ही स्त्री को अपने वश में किया जा सकता है । इसलिये चतुर पति को चाहिये कि वह मध्यम मार्ग अपनाये ॥ ३१ ॥

विस्रम्भणं किं फलमित्याह—

आत्मनः प्रीतिजननं योषितां मानवर्धनम् ।
कन्याविस्रम्भणं वेत्ति यः स तासां प्रियो भवेत् ॥ ३२ ॥

आत्मन इति । वर्धनमिति । उपचारस्य तथाविधत्वात् । कन्यानामिति वक्तव्ये योषिद्ग्रहणं प्रथमसमागमे सर्वविषयमिदमिति दर्शनार्थम् । तत्परिज्ञानफलमाह—प्रियो भवेदिति ॥ ३२ ॥

स्त्रियों की प्रीति अपने में उत्पन्न कराना, स्त्रियों का मान करना और नई ब्याही गई स्त्री में अपना विश्वास पैदा कराना—इन तीनों बातों को जो जानता है, वही स्त्रियों का प्रिय हो सकता है ॥ ३२ ॥

अतिलज्जान्वितेत्येवं यस्तु कन्यामुपेक्षते ।
सोऽनभिप्रायवेदीति पशुवत्परिभूयते ॥ ३३ ॥

अतिलज्जान्वितेति । अस्मात्कारणात्कन्या नोपेक्षणीया । अनेन त्रिरात्रं निर्वचनं पश्यन्ती निर्विद्येत, परिभवेच्चेत्यस्य प्रपञ्चः ॥ ३३ ॥

जो पुरुष नव विवाहिता स्त्री को शर्मीली समझ कर उसकी उपेक्षा करता है, वह नारी-मनोविज्ञान को न समझने के कारण पशु के समान दुतकारा जाता है ॥ ३३ ॥

सहसा वाप्युपक्रान्ता कन्याचित्तमविन्दता ।
भयं वित्रासमुद्वेगं सद्यो द्वेषं च गच्छति ॥ ३४ ॥

उपक्रान्तेति—उपसर्पिता । भयं यतो दर्शनपथेऽपि न तिष्ठति । वित्रासं तत्स्मरणाच्छरीरविधूननम् । उद्वेगं भोजनादिभ्यो व्यावर्तनम् ॥ ३४ ॥

जो पुरुष पहले स्त्री को आश्वस्त, विश्वस्त न बनाकर उसके मनोभावों को समझे बिना ही सम्भोग करने की चेष्टा करता है, वह स्त्री के भय, क्रोध और ईर्ष्या, द्वेष का पात्र बन जाता है ॥ ३४ ॥

सा प्रीतियोगमप्राप्ता तेनोद्वेगेन दूषिता ।
पुरुषद्वेषिणी वा स्याद्विद्विष्टा वा ततोऽन्यगा ॥ ३५ ॥

प्रीतियोगमप्राप्ता ! लज्जान्वितेत्युपेक्षितत्वात् । उद्वेगेन दूषिता । सहसोपक्रान्तत्वात् । पुरुषद्वेषिणी सर्वान्पुरुषान्द्वेष्टि । सर्वोऽप्येवंविध इति द्विष्टा । प्रीतियोगमप्राप्तत्वात् । ततश्च तं मुक्त्वान्यं पुरुषं गच्छति । इति कन्याविस्रम्भणं पञ्चविंशं प्रकरणम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृ।सूत्रभाष्यायां कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे कन्याविस्रम्भणं।द्वितीयोऽध्यायः ।

पति का प्यार न पाकर स्त्री जलन और घृणा से भर जाती है । फिर तो वह या तो अपने पति की विद्रोहिणी बन जाती है या. पराये पुरुष से फँस जाती है ॥ ३५ ॥

वात्स्यायन का यह कथन मनोविज्ञान समत है कि विवाह के बाद नव वधू को जब तक भलीभांति आश्वस्त और विश्वस्त न कर लिया जाय तब तक वह संयोग करने के योग्य नहीं होती, इसलिये आचार्य ने कन्याविस्रम्भण प्रकरण लिखकर अपने बुनियादी विचारों को धर्मशास्त्र, तर्कशास्त्र, मानसशास्त्र और लोकशास्त्र का आधार लेकर पल्लवित किया है ।

आचार्य का कहना है कि विवाह हो जाने के बाद वर और वधू दोनों को प्रथम तीन रात पलङ्ग पर न सोकर जमीन पर सोना चाहिये । धर्मशास्त्र का कथन है कि जब तक चतुर्थी कर्म—विवाह से चौथे दिन होनेवाली क्रिया—न हो जायें तब तक वर वधू को पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये ।

त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ स्यातामधः शयीतां संवत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः ।—पा० गृ० सू०, क० ८ ।

इसके भाष्यकार हरिहर का मत है कि विवाह से लेकर तीन दिन, तीन रात तक भोजन में क्षार पदार्थों और नमकीन पदार्थों का उपभोग न करे । हरिहर जमीन पर कुछ बिछाकर सोने का समर्थन करते हैं; किन्तु कामसूत्र के जयमङ्गला टीकाकार तो सेन्धा, साँभर जैसे नमक और गुड़ आदि क्षार पदार्थों के सेवन का तीन दिन तक निषेध करते हैं और बिना कुछ बिछाये ही जमीन पर सोने का विधान बतलाते हैं । इस सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यों के चार मत

प्रसिद्ध हैं—१. पूरे एक वर्ष तक, २. बारह दिन तक, ३. छह दिन तक और ४. तीन दिन तक नव विवाहित वर वधू को ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये। कदाचित् ये चारों मत वर और वधू की सहवास शक्ति के आधार पर व्यवस्थित किये गये हैं। क्योंकि जहाँ तीन रात्रि तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने की व्यवस्था दी गई है वहीं इतना और जोड़ दिया गया है कि चतुर्थी कर्म हो जाने के बाद पाँचवीं रात सहवास करना चाहिये। कारण बताते हुये धर्मशास्त्र कहता है कि जब तक चतुर्थी कर्म नहीं हो जाता तब तक नव विवाहिता कन्या स्त्री नहीं बनती और चतुर्थी कर्म विवाह संस्कार का एक अङ्ग है इसलिये ब्रह्मचर्य स्खलित करनेवाले काम चतुर्थी कर्म कर लेने के बाद ही होने चाहिये—

त्रिरात्रपक्षाश्रयणेऽपि चतुर्थीकर्मानन्तरं पञ्चम्यादिरात्रावभिगमनं चतुर्थीकर्मणः प्राक् तस्या भार्यात्वमेव न संवृत्तं विवाहैकदेशत्वाच्चतुर्थीकर्मणः॥

नव वधू को अपना पूरा विश्वास प्रदान करने के लिये धर्मशास्त्र और कामशास्त्र की दृष्टि से विवाह के प्रारम्भिक तीन दिनों तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना युक्तिसंगत है। जीवन-क्षेत्र, गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने का यह प्रथम सोपान है। इस समय वधू की अपेक्षा वर को अत्यन्त संयम, सुबुद्धि और सहृदयता से व्यवहार करने की आवश्यकता रहती है क्योंकि वधू तो नई-नई ब्याह कर आती है। भय, संकोच, लज्जा का आवरण उस पर चढ़ा रहता है, ऐसी स्थिति में उसे विश्वास पैदा कराने के लिये वर को सक्रिय व्यवहार ऐसे करने चाहिये कि स्त्री के मन, मस्तिष्क पर किसी प्रकार के भय या आशंका की गाँठ बद्धमूल न हो जाये। परस्पर स्नेह, सौहार्द और प्रेम-विश्वास की ऐसी रसधारा पति प्रवाहित करे कि सुहागरात के इस परीक्षण काल से लेकर जीवन पर्यन्त वह धारा सूखे नहीं बल्कि उत्तरोत्तर गतिशील और गम्भीर होती जाये। जमीन पर सोने और नमकीन, खारे पदार्थों के खाने की मनाही इसीलिये की गई है कि पति-पत्नी में तीन रात की उस अवधि तक जब तक परस्पर विश्वास और प्रेम पैदा करना तथा बढ़ाना है—सात्त्विक वृत्ति, सात्त्विक बुद्धि और सात्त्विक भावों का उदय रहे। उत्तेजक पदार्थ खाने से सात्त्विकता और विवेक के स्थान पर कामुकता, पाशविकता और अविवेक छा जाता है, इस ज़रा-सी प्रारम्भिक गलती के कारण दाम्पत्य जीवन सदा के लिये नीरस बन जाता है। परस्पर सन्देह, आशंका और ईर्ष्या, घृणा की वैतरणी में वह डूबने-उतराने लगता है। भारतीय वैवाहिक जीवन के इस प्रारम्भिक विधान में जीवन-तत्त्व, जीवन-विज्ञान और मनोविज्ञान निहित है। जबसे इस व्यवस्था की उपेक्षा होने लगी, इसे केवल रस्म अदायगी समझा जाने लगा, तबसे भारतीय दाम्पत्य जीवन में वह रस नहीं रह गया जो पहले कभी

था, यह भी सही है कि पति-पत्नी के बीच दीवार खड़ी हो जाने या उनके प्रेम सम्बन्ध में दरार पड़ जाने का एक अन्यतम प्रमुख कारण ऐसी प्रारम्भिक उपेक्षा या भूल भी अपना बहुत कुछ स्थान रखती है, जिस पर हम कभी ध्यान नहीं देते हैं।

तीन दिन तक ब्रह्मचर्य पालन करने का तात्पर्य यह भी नहीं है कि सुहाग-शयनागार में पति-पत्नी माला और जपमाली लेकर बैठे रहें, तब तो फिर परस्पर विश्वास पैदा होना दूर रहा एक और नई बला पैदा हो सकती है, नव-वधू पति को कायर, अशक्त समझने की भूल कर सकती है। ऐसी स्थिति में पति को चाहिये कि मीठी-मीठी मनोरञ्जक बातों द्वारा उसका मन बहलाने की चेष्टा करे। बात ऐसे कौशल से करे कि पत्नी को उत्तर देने का अवकाश रहे। प्रारम्भ में वह मुँह से उत्तर न देकर सिर हिलाकर हाँ या नहीं का भाव प्रकट करती है, धीरे-धीरे पति की बुद्धिमत्तापूर्ण बातों से उसके संकोच का आवरण जब खुलने लगता है तो वह हाँ, हूँ करने लगती है, आँखों के इशारों से अपने भाव व्यक्त करने लगती है। प्रसंगात् हँस देती है। इस ब्रह्मचर्य अवस्था में पति अपने मन को सर्वथा पवित्र बनाकर पत्नी के अङ्गों में हाथ फेर सकता है, आवश्यकता पड़ने पर आलिङ्गन, चुम्बन भी कर सकता है किन्तु अत्यन्त संयत भाव से, शालीनता से। इस अवधि में पत्नी के साथ बड़ी कोमलता और मधुरता से व्यवहार करने की आवश्यकता रहती है, क्योंकि स्त्रियाँ फूल का सा कोमल-स्वभाव रखती हैं। उनके साथ वही व्यवहार करना चाहिये जो फूलों के साथ किया जाता है। पत्नी की इच्छा के विरुद्ध ऐसा कोई काम न करे, ऐसी कोई बात न करे जो उसे उद्विग्न बनाने वाली हो। पत्नी को विश्वास दिलाने के लिये, उसकी लज्जा दूर करने के लिये बड़ी आत्मीयता और कोमलता से बातें करनी चाहिये। जैसे स्त्रियाँ अपनी सहेलियों के साथ खेलती हैं उसी प्रकार उस समय पति शास्ता न बनकर पत्नी की सहेली बनकर उसको आश्वस्त, विश्वस्त करे, साथ ही पत्नी के मनोभावों को भी भाँपते रहना चाहिये। सुहागरात की इन घड़ियों में पत्नी की नाहीं में हाँ छिपी रहती है। उसके नाहीं कर देने पर पति को उसके मनोभावों की पारिख कर लेनी चाहिये। यदि पति पत्नी की मानसिक वृत्तियों को नहीं समझ पाता और स्त्री की चित्त-वृत्ति के प्रतिकूल बलात्कार या रति-वैराग्य ग्रहण कर लेता है तो वह पत्नी की नजरों से गिर जाता है। और उस क्षण का यह प्रभाव आजीवन कुण्ठा बनकर विद्यमान रहता है।

कामशास्त्रियों का मत है कि सुहागरात के समय आलिङ्गन करते हुये पति को सर्वप्रथम पत्नी के ऊपर के भागों का स्पर्श करना चाहिये। नाभि से

नीचे का भाग शुरू में ही स्पर्श करने से सुहागरात की वधू उद्विग्न हो जाती है, वह पति को निर्लज्ज और व्यभिचारी भी समझ लेती है। राजा नल ने दमयन्ती की सुहागरात के समय दमयन्ती के अङ्गों का प्रथम स्पर्श बड़े कौशल से किया था।

दमयन्ती के गले में हार पड़ा हुआ था। बहाना बनाते हुये नल ने उससे कहा कि आपके गले में पड़ा हुआ यह हार बहुत अच्छा है। उत्सुकता-वश दमयन्ती ने पूछ लिया कि कौन-सा तो नल ने हाथ लगाकर बताने के बहाने हार के साथ ही उसके अङ्ग को छू लिया। इससे दमयन्ती को जब सिहरन पैदा हो गई तो नल ने बहाने बना बनाकर गले से लेकर स्तनों तक हाथ फेर दिया।[1]

महाराज उदयन बहुत ही रसिक नागरिक थे उन्होंने रानी वासवदत्ता और सागरिका के सुहागरात में सर्वप्रथम उनका हाथ ही पकड़ा था। आलि-ङ्गन, चुम्बन और स्पर्श अँधेरे ही में करना चाहिये। क्योंकि नव वधू में लज्जा की मात्रा अधिक रहती है साथ ही ये क्रियायें मानवीय वृत्ति के अनुसार अँधेरे ही में फलप्रद हुआ करती हैं। रोशनी में करने से व्याघात हो सकता है। महाराज उदयन ने जब वासवदत्ता का आलिङ्गन कर उसे अङ्कस्थ करना चाहा तो वासवदत्ता ने शर्म के मारे उनके भुज बन्धन को छुड़ाकर मणियों के प्रकाश को दीपक का प्रकाश समझ कर—बुझाने का असफल प्रयास किया था।

आलिंगन बरदाश्त कर लेने के बाद पति अपने मुँह में पान का बीड़ा दबाकर पत्नी को दे। यदि पत्नी अपने मुँह से उस बीड़ा को स्वीकार कर लेती है तो समझ लेना चाहिए कि वह चुम्बन स्वीकार करेगी। चुम्बन सिद्ध हो जाने पर रसभरी प्रेम की बातें करनी चाहिए। यदि पत्नी उन बातों में हाँ, नहीं किसी प्रकार का समर्थन नहीं करती तो उसके सामने ऐसे लतीफ़े, किस्से कहने चाहिएँ कि वह बरबस हँस पड़े। अपने कौशल से मनगढ़न्त ऐसी बात कहे कि पत्नी तुरन्त बोल उठे कि नहीं ऐसा भी कभी हो सकता है। इतने पर भी यदि वह गुम-सुम ही रहे तो किसी को माध्यम बनाकर बातें करनी चाहिए।

आलिंगन करने, ताम्बूल देने, चुम्बन करने और बात करने से पत्नी जब परिचित हो जाए तो पुरुष को उससे कभी पान माँगना चाहिए, कभी पानी

१. हारचारिमविलोकने मृषा कौतुकं किमपि नाटयन्नयम्।
कण्ठमूलमबलीयमस्पृशत् पाणिनोपकुचधाविना धवः॥
—नैषधीयचरित।

आदि। उस समय स्त्री को चाहिए कि वह बिना कुछ बोले मुस्कुराती हुई वह चीज़ उसके पास रख दे। जब वह पान या पानी रख रही हो तो उसके झुकते ही पति उसके स्तनों का स्पर्श कर ले। इस तरह धीरे-धीरे उसकी नाभि तक हाथ फेरने का बहाना कर लेना चाहिए।

नल ने दमयन्ती के स्तन छूने के लिए बड़ा सुन्दर बहाना खोज निकाला था। उसने दमयन्ती से कहा कि स्वयंवर सभा में तुमने मेरे कण्ठ में वरमाला छोड़ मेरा जो उपकार किया है उसके बदले में मैं भी तुम्हें कुछ देना चाहता हूँ—यह कहकर उसने अपने गले का हार उतार कर दमयन्ती के गले में डाल दिया और उसी बहाने उसकी छोटी-छोटी स्तनकलियों का स्पर्श कर लिया।[1]

बालकों की तरह मीठे ढंग के डरा-धमकाकर भी पत्नी का आलिंगन-चुम्बन करना चाहिए। उससे कहे कि जाओ हमारी बात नहीं मानती हो तो हमारी-तुम्हारी छुट्टी। अथवा यह कहे कि ठीक है मैं अपने गालों में निशान बनाकर तुम्हारी सखियों से कहूँगा कि तुमने दाँत गड़ा दिए हैं। इस तरह के प्रेम के उलाहनों और प्रेम प्रताड़ना से भी आलिंगन-चुम्बन करना चाहिए।

ये क्रियाएँ विवाह के बाद प्रथम रात्रि के प्रथम मिलन में होनी चाहिएँ। दूसरी और तीसरी रात में स्त्री के पूरे शरीर में हाथ फेरना चाहिए। जंघाओं के जोड़ में हाथ फेरे। स्त्री में सिहरन भरने के लिए बीच-बीच में हाथों से सहलाना बन्द कर देना चाहिए। धीरे-धीरे मदन-मन्दिर तक हाथ पहुँचा दे। जब पत्नी इस क्रिया को सहन कर ले तो उसकी साड़ी की गाँठ खोल दे, उसकी साड़ी उलट दे, उसे उठाकर गोद में ले ले, किन्तु संयम नहीं खोना चाहिए। ब्रह्मचर्य स्खलित न होने पाए। क्योंकि अभी तीसरा दिन ही है। चतुर्थी कर्म हो जाने के बाद प्रथम समागम करना चाहिए।

तीन दिन तक भोजन, शयन आदि नियमों के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ पति आलिंगन, चुम्बन, वार्तालाप और अन्य रसमयी क्रियाओं से पत्नी से इस प्रकार घनिष्ठता बढ़ाए कि वह पति को अपना सर्वस्व समझने लग जाए। उसे उसकी ओर से किसी प्रकार का भय, सन्देह न रह जाए। जब वह पूर्ण विश्वस्त हो जाए तब पति को समागम रत होना चाहिए। स्त्री जब हृदय से पति पर विश्वास करने लगेगी तो उसे संभोग काल का कष्ट भी आनन्द-सा प्रतीत होगा।

---

१. यत्त्वयाऽस्मि सदसि स्तनाञ्चितस्तन्मयापि भवदर्हणार्हति।
इत्युदीर्य निजहारमर्पयन्नस्पृशत् स तदुरोजकोरकौ॥
—नैषधीय चरित

श्रीहर्ष ने नल दमयन्ती का समागम वात्स्यायन के बताए हुए नियमों के आधार पर किया है। नल और दमयन्ती को समागम काल में और उसके बाद कैसी अनुभूति होती है उसका वर्णन इस प्रकार है—

—सुरतारम्भ से पहले तो दमयन्ती नाहीं-नाहीं करती रही। समझाने-बुझाने पर उसे यह जानने का कुतूहल हुआ कि कैसा लगता है। उस प्रकार का आनन्द उससे पहले कभी न मिलने के स्मरण और संभोगश्रम से पसीना बह चला। साथ ही सिहरन और कम्पन भी होने लगा। लेकिन संभोग समाप्त होने के बाद क्या होगा—यह डर दमयन्ती को बना रहा, लेकिन जब नल ने अपना लिंग उसके मदन-मन्दिर में धीरे-धीरे प्रविष्ट किया तो दमयन्ती को अभूतपूर्व आनन्द मिला। उसे यह अनुभव होने लगा कि इसमें बहुत कुछ आनन्द है। जब संभोग समाप्त होने लगा तो नल और दमयन्ती दोनों आपस में आलिंगनबद्ध हो गए।[1]

सुहागरात समाप्त होने के बाद पति को चाहिए कि वह पत्नी को काम-कला की क्रियात्मक शिक्षा देकर अपने प्रेम का निश्छल प्रदर्शन करे। वह ऐसे वायदे करे, ऐसे काम करे, ऐसी बातें करे जिससे भविष्य में किसी प्रकार स्त्री के हृदय में भय, आशंका और घृणा का संचार न हो सके। उसे यह दृढ़ विश्वास हो जाए कि मुझे छोड़कर मेरा पति किसी अन्य स्त्री पर आसक्त नहीं हो सकता। पति का यह भी कर्त्तव्य है कि पत्नी का यौवन ज्यों-ज्यों निखार पर आता जाए त्यों-त्यों बिना उद्विग्न किए उसके साथ रति-क्रीडाओं को बढ़ाता रहे।

वात्स्यायन कन्याविस्रम्भण जैसे इस उपयोगी प्रकरण में जो कुछ कहा है उसका सार मर्म यही है कि पुरुष को नारी-मनोविज्ञान का विशेषज्ञ होना चाहिए। नारी के मानसिक भावों को जाने बिना विवाह और वैवाहिक जीवन को निष्फल और निरर्थक बनाना है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे कन्यासम्प्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे
कन्याविस्रम्भणं द्वितीयोऽध्यायः

---

१. अस्तिवाम्यभरमस्तिकौतुकं सास्तिघर्मजलमस्तिवेपथुः।
अस्तिभीतिरतमस्तिवाञ्छितं प्रापदस्तिसुखमस्तिपीडनम्॥
—नैषधीयचरित

तृतीयोऽध्यायः

बालोपक्रमणम्

वरणसंविधानपूर्वकमधिगतायां विस्रम्भणमुक्तम् ।

या तु व्रियमाणा न लभ्यते तत्र गान्धर्वादयश्चत्वारो विवाहाः ।

पिछले प्रकरण में यह बताया गया है कि जो कन्या विधिपूर्वक सगाई के बाद ब्याह कर ससुराल लाई जाती है उसे विश्वस्त और आश्वस्त बनाने के लिए किन-किन उपायों का प्रयोग करना चाहिए। यह भी बताया गया है कि ब्राह्म, अग्नि, दैव, प्राजापत्य—ये चार प्रकार के विवाह होते हैं।

जो कन्या पूर्वोक्त चारों प्रकार के विवाहों द्वारा न प्राप्त हो सके उसे गान्धर्व आदि चार प्रकार के विवाहों द्वारा प्राप्त करना चाहिए, अर्थात् कन्या के चाहते हुए भी उसके माँ-बाप जब अभीष्ट को नहीं देना चाहते तब गान्धर्व, पैशाच, राक्षस आदि विवाह विधियों से उसे वरण कर लेना चाहिए।

तत्रालाभकारणान्येव तावदाह—

धनहीनस्तु गुणयुक्तोऽपि, मध्यस्थगुणो हीनापदेशो वा; सधनो वा प्रातिवेश्यः मातृपितृभ्रातृषु च परतन्त्रः, बालवृत्तिरुचितप्रवेशो वा कन्यामलभ्यत्वान्न वरयेत् ॥ १ ॥

धनहीनस्त्वभिजनादिगुणयुक्तोऽपि दरिद्रः कन्यां न लभते। मध्यस्थगुणो हीनापदेशो वेति। मध्यस्था रूपशीलादयो गुणा अभिजनः प्रधानं तदभावाद्धीनव्यपदेशः। सधनो वा प्रातिवेश्य इति स्वगृहसमीपवासी सीमासम्बन्धेन कलहादिजनकत्वात् धनगर्वान्न लभते। मातापित्रोर्भ्रातृषु च सत्सु परतन्त्रोऽप्रधानः सधनोऽपि न लभते। बालवृत्तिरुचितप्रवेशो वेति। यो लाडीकवद्दृश्यते सोऽनिषिद्धगृहप्रवेशोऽपि परिभवान्न लभते ॥ १ ॥

न मिलने के कारण—

जो व्यक्ति गुणवान होते हुए भी धनहीन है, अथवा मध्यस्थ गुणोंवाला होते हुए भी हीन कुल का है, या धनवान होते हुए भी कन्या के घर का पड़ोसी है, अथवा अपने माता-पिता के अधीन है या जिसमें जनखापन है—उसे चाहिए कि किसी कुल, शीलसम्पन्न लड़की से विवाह करने का प्रयत्न न करे ॥ १ ॥

यदि न वरयेत्कथमधिगच्छेदित्याह—

बाल्यात्प्रभृति चैनां स्वयमेवानुरञ्जयेत् ॥ २ ॥

बाल्यादिति । अनुरञ्जयेत् । अनुरक्ता हि स्वयमेव गान्धर्वेण विवाहेन पाणि ग्राहयति । यतः 'स्वयं संयोगे गान्धर्वः' इति । तस्मादनुरञ्जनार्थं बालायामुपक्रमादनेकप्रकारा उच्यन्ते ॥ २ ॥

इस प्रकार चाहनेवालों को चाहिए कि बचपन से ही कन्या से अपना अनुराग बढ़ाते रहें ॥ २ ॥

यत्र च देशे प्रायेणैवंविधा वृत्तिस्तामधिकृत्याह—

तथायुक्तश्च मातुलकुलानुवर्ती दक्षिणापथे बाल एव मात्रा च पित्रा च वियुक्तः परिभूतकल्पो धनोत्कर्षादलभ्यां मातुलदुहितरमन्यस्मै वा पूर्वदत्तां साधयेत् ॥ ३ ॥

तथायुक्तश्चेति । धनहीनत्वादियुक्तः । दक्षिणापथ इति । तत्र हि मातुलदुहिता परिणीयते । वियुक्तः पित्रोर्मृतत्वात्परिभूतकल्पो मातुलकुलयुक्तः । अन्यस्मै वा पूर्वदत्तामदत्तां वा ॥ ३ ॥

जिस प्रदेश में प्रायः इसी ढंग से कन्या को अनुरक्त बनाकर फिर उससे विवाह किया जाता है, उस देश के ऐसे पुरुषों के कन्या को अनुरक्त करने के ढंग को कहते हैं—

दक्षिण देश में जिन बातों के कारण लोग अपनी कन्याएँ नहीं देते उन्हीं हीनताओं से युक्त माता-पितारहित ग़रीब लड़का अपने मामा के घर रहकर धनवान मामा की बेटी को चाहे उसकी सगाई कहीं अन्यत्र हो भी गई हो—सिद्ध कर ले ॥ ३ ॥

अन्यामपि बाह्यां स्पृहयेत् ॥ ४ ॥

अन्यामपि बाह्यामिति । या मातुलदुहिता न भवति पित्रोः सम्बन्धबाह्या तामपि स्पृहयेत् । तत्र कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमत्वेन विवक्षितत्वात्कर्मत्वम् । अनेनान्यस्मिन्नपि देशे विधिरयमिति दर्शयति ॥ ४ ॥

जो अपने मामा के गोत्र की न हो और अपने गोत्र की न हो कर किसी अन्य बिरादरी की हो तब भी उसे अनुरक्त करके उसके साथ गान्धर्व विवाह कर लेना चाहिए ॥ ४ ॥

बालायामेवं सति धर्माधिगमे संवननं श्लाघ्यमिति घोटकमुखः ॥ ५ ॥

बाल्यात्प्रभृति सति धर्माधिगमे बालायां धर्मार्थमधिगमे सन्दर्शनालापलक्षणे

सति संवननं वशीकरणमनुरञ्जनलक्षणं श्लाघ्यम्। अन्यथा दर्शनात्कथं संवननं स्यात्। धर्म्याश्च गान्धर्वा विवाहाः। यथोक्तम्—'तत्र पूर्वे धर्म्याश्चत्वारः। षडित्येके' ॥ ५ ॥

आचार्य घोटकमुख का मत है कि लड़कपन से ही किसी लड़की पर यदि सात्त्विक आसक्ति हो तो उसे वश में कर लेना निन्दनीय नहीं है ॥ ५ ॥

उपक्रमवत्त्वाद् द्विविधो बालो युवा च। तत्र पूर्वमधिकृत्यानुरञ्जनमाह—

तया सह पुष्पावचयं ग्रथनं गृहकं दुहितृकाक्रीडायोजनं भक्तपानकरणमिति कुर्वीत। परिचयस्य वयसश्चानुरूप्यात् ॥६॥

तयेति—बालया। अवचयमुच्चपादपात्। ग्रथनं पुष्पाणाम्। गृहकं काष्ठमयं मृण्मयं वा स्वल्पम्। दुहितृका सूत्रदार्वादिमयी। भक्तपानकरणमिति—सद्भक्तं तण्डुलैरितरत्पांसुभिः। परिचयस्य वयसश्चेति—आत्मनः स्वल्पमधिकं वा परिचयम्, बाल्यं तारुण्यं वा वयो बुद्ध्वा तदनुरूपमाचरेत्, नोक्तमित्येव ॥ ६ ॥

उपक्रम करनेवाला बालक भी हो सकता है और युवक भी। इन दोनों में बालक किस प्रकार कन्या को अनुरक्त करे—यह बताते हैं—

उसके साथ फूल बीनना, फूलों की माला गूँथना, घरौंदा बनाना, गुड़ियों का खेल रचाना, मिट्टी, धूल आदि भात आदि खाने-पीने की चीजें तैयार करना और अपनी उम्र और जानकारी के अनुसार अन्य क्रीड़ाएँ करना ॥ ६ ॥

आकर्षक्रीडा पट्टिकाक्रीडा मुष्टिद्यूतक्षुल्लकादिद्यूतानि मध्यमाङ्गुलिग्रहणं षट्पाषाणकादीनि च देश्यानि तत्सात्म्यात्तदाप्तदासचेटिकाभिस्तया च सहानुक्रीडेत ॥ ७ ॥

आकर्षक्रीडा पाशकक्रीडा। पट्टिकाग्रथनम्। मुष्टिद्यूतं प्रसिद्धम्। क्षुल्लकद्यूतम् पञ्चसमयादि। मध्यमाङ्गुलिग्रहणमिति—अङ्गुलिविपर्यासेन गोपितुर्मध्यमाङ्गुलेर्ग्रहणम्। षट्पाषाणकमिति—यत्र स्वल्पानि षट्पाषाणानि हस्तस्य क्रोडेनोत्क्षिप्य पृष्ठेन गृह्यन्ते। आदिशब्दादन्यानि च देश्यानि पञ्चिकाप्रसृतकादीनि। तत्सात्म्यादिति यत्र नायिकाया अभिनिवेशः। तदाप्तदासचेटिकाभिरिति—तस्य ये दासाश्चेटिकाश्च ताभिः क्रीडन्तीभिः सहानुक्रीडेत। ततो लब्धप्रसरस्तया च ॥ ७ ॥

रस्साकशी, एक दूसरे के हाथ की अँगुलियों को फँसा पट्टा बाँधकर चक्कर लगाना, कोई शर्त लगाकर मुट्ठी बाँधकर पूछना कि इसमें क्या है? बीच की बड़ी अँगुली को छिपाकर बुझाना और छह कंकड़ियों से खेलना (गोटी खेलना) इन देशी खेलों को बचपन में लड़की के साथ खेलना चाहिए ॥ ७ ॥

क्ष्वेडितकानि सुनिमीलितकामारब्धिकां लवणवीथिकामनिलताडितकां गोधूमपुञ्जिकामङ्गुलिताडितकां सखीभिरन्यानि च देश्यानि ॥ ८ ॥

क्ष्वेडितकानि चेति येष्वङ्गव्यायामाः तान्याह—सुनिमीलितकामिति यत्रैकस्य कश्चिन्नेत्रे निमीलयति शेषाः प्रच्छन्नेष्वात्मानं गोपायित्वा तिष्ठन्ति ततोऽसावुन्मीलितचक्षुर्यद् गृह्णाति तस्य नेत्रनिमीलनमिति । आरब्धिकां कृष्णफलक्रीडाम् । लवणवीथिकां लवणहट इति प्रतीताम् । अनिलताडितकां यत्र पक्षवद्बाहू प्रसार्य चक्रवद्भ्रमणम् । गोधूमपुञ्जिकामिति । गोधूमग्रहणं व्रीह्युपलक्षणम् । यत्र बहूनामेकः प्रत्येकं रूपकानादाय व्रीहिषु क्षिप्त्वा सम्मिश्र्य च तावतो भागान्करोति । अतस्ते यथेच्छमेकैकं भागमादाय रूपकमन्विष्यन्ते । तत्र यो न लभते सोऽन्यद्ददाति । अङ्गुलिताडितकामिति । यत्रैकं निमीलितनेत्रमन्यैर्ललाटे आहत्य केनाभिहतोऽसीति प्रश्नः । अन्यानि च देश्यानि मण्डूकिकैकपादिकादीनि । एते प्रायशो बालस्योपक्रमाः ॥ ८ ॥

आँखमिचौनी, कृष्णफल क्रीडा, नमक की दूकान, दोनों हाथ फैलाकर चारों ओर घूमना (घाईं-माईं), गेहूँ के ढेर में सभी बालक पैसे छोड़कर एक में मिला दें फिर बराबर-बराबर बाँट लें (गोधूम पुञ्जिका क्रीडा), अँगुली से खोटका मारना । (एक बालक अपनी आँख मूँद लेता है और कई बालक उसके सिर पर अँगुली से खोटका मारते हैं, आँख मूँदनेवाला जब यह जान जाता है कि सबसे पहले किसने मारा तो वह चोर माना जाता है और उसे आँख मूँदनी पड़ती है) तथा और अपने-अपने प्रदेश के अनुसार खेल होते हैं—उन्हें खेलना चाहिए ॥ ८ ॥

अविवाहित कन्या से प्रेम सम्बन्ध जोड़ने की विधि और उसके निषेध का उल्लेख वात्स्यायन ने सामाजिक दृष्टिकोण से किया है । वह कहता है कि यदि युवक और युवती एक दूसरे से प्रेम करते हों, परस्पर विवाह-बन्धन में बँधना चाहते हों; किन्तु कुलीनता, विद्वत्ता या सम्पत्ति की कमी होने से युवक युवती से शास्त्रों में वर्णित उत्तम विधि से विवाह करने में असमर्थ हो तो उसे चाहिए कि वह गान्धर्व, राक्षस आदि निकृष्ट पद्धति का विवाह कर ले—तात्पर्य यह कि वह अपनी प्रेयसी को लेकर भाग जाए ।

वात्स्यायन ऐसे प्रेमी युवकों को यह हिदायत देता है कि जो युवक, युवती की अपेक्षा उसके वंश से हीन हो, धनहीन हो, विजातीय हो या उसके पड़ोस में बसता हो अथवा परिवारवालों के नियन्त्रण में हो तो उसे इस प्रकार का प्रेम सम्बन्ध ही न जोड़ना चाहिए । इतने पर भी यदि इस प्रकार के व्यक्ति

किसी लड़की से प्रेम करके उसे पत्नी बनाना चाहते हों तो उन्हें उचित है कि बचपन से ही उस लड़की के साथ मैत्री-भाव का सम्बन्ध स्थापित करें।

इस स्थल पर अनेकविध प्रेम मैत्री का जिक्र करते हुए आचार्य ने कुछ देशाचारों का भी उल्लेख किया है। उनका कहना है कि यदि लड़का माता-पिताहीन हो और अपने मामा के घर रहता हो तो मामा की लड़की से प्रेम सम्बन्ध जोड़कर उसके साथ विवाह कर ले; क्योंकि दक्षिण में महाराष्ट्र के लोगों में मामा की लड़की के साथ विवाह करना जायज माना जाता है। वात्स्यायन का कहना है कि जिस प्रदेश में महाराष्ट्र प्रदेश की भाँति विवाह-पद्धति प्रचलित हो अथवा जैसी हो उसी ढंग से बालिका को आकृष्ट कर उस पर अनुरक्त होकर विवाह कर लेना चाहिए। वात्स्यायन के इस कथन से यह प्रतीत होता है कि प्रेमविवाह की परम्परा भारत में बहुत प्राचीनकाल से चली आ रही है। स्मृतियों में भी गान्धर्व, राक्षस, पैशाच विवाहों का जो विधान है वह भी इस बात का साक्षी है।

इस प्रकरण और अधिकरण के विशेषज्ञ आचार्य घोटकमुख बचपन से ही लड़की-लड़के का एक दूसरे पर अनुरक्त होना अधर्म नहीं समझते साथ ही वह गान्धर्व, पैशाच, राक्षस और आसुर जैसे स्मृतियों द्वारा निन्दित विवाहों को भी धर्मानुकूल मानते हैं। यहाँ एक बात प्रश्नचिह्न बनकर उपस्थित होती है; वह यह कि नन्हें-मुन्ने बालक-बालिकाएँ आपस में मिल-मिलकर खेल सकते हैं सही, किन्तु उनमें कामुकभाव कैसे उत्पन्न हो सकते हैं, उन्हें यह बोध कैसे हो सकता है कि अभी से हम मैत्री जोड़कर उसे बढ़ाते रहें और भविष्य में विवाह-बन्धन में बँध जाएँ। यह एक अव्यवहारिक सुझाव है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह माना जा सकता है कि बचपन से ही बालक-बालिकाओं में यौन-भावनाओं का उदय हो जाता है, फ्रायड तो जन्म के साथ से ही यौन-भावनाओं का बीज मानते हैं। यह भी देखा जाता है कि लड़के-लड़कियाँ अबोधावस्था में दुलहिन-दुलहा का खेल रचाया करते हैं, किन्तु यह बात गले के नीचे नहीं उतरती कि उन्हें यह संज्ञान कैसे प्राप्त हो जाता है कि अभी से यदि प्रेम जुड़ा रहेगा तो आगे चलकर हम एक दूसरे से विवाह कर लेंगे।

लड़की-लड़कों में बचपन से ही परस्पर प्रीति और आकर्षण उत्पन्न करने के लिये जिन बाल-क्रीड़ाओं का वर्णन किया है उनकी दीर्घकालीन परम्परा का परिचय मिलता है। फूल तोड़ना, माला गूँथना, घरौंदा बनाना आदि क्रीड़ायें प्रायः सार्वदेशिक हैं, किन्तु आकर्ष क्रीड़ा, पट्टिका क्रीड़ा, मुष्टिद्यूत आदि क्षुल्लकद्यूत तथा अंगुलि ग्रहण और षट्पाषाणक खेल ऐसे हैं जिन्हें

विशुद्ध जनपदीय कहा जा सकता है। ये क्रीड़ायें अक्सर देहाती बच्चे ही खेलते हैं। आश्चर्य है कि वात्स्यायन के समय से अबतक इन खेलों की परम्परा बनी हुई है। आकर्ष क्रीडा (रस्साकशी) भी अधिकतर देहाती बालकों में ही प्रचलित है। पट्टिका क्रीडा को टीकाकार यशोधर पट्टिकाग्रथनम्—पट्टेगूंथी लिखते हैं, लेकिन यह खेल समझ में नहीं आ रहा है कि पट्टे किस प्रकार गूंथे जाते थे। हमारी समझ में यह वह खेल है जो प्रायः लड़कियों में ही प्रचलित है। चार, पाँच या अधिक लड़कियाँ गोला—घेरा बनाकर खड़ी होती हैं और अपने हाथों की अँगुलियाँ एक दूसरे की अँगुलियों में फंसाकर पट्टे बाँधकर उछलती हुई घूमती हैं और मिलकर एक साथ कहती हैं—कुइयाँ कुदुम से। कजला दुमसे :

इस तरह कहती और चक्कर लगाती हुई लड़कियों में से जिसके हाथ का पट्टा छूट जाता है वह हार जाती है। मुष्टिद्यूत क्रीड़ा देहातों में आमतौर से प्रचलित है। इमली के बीज या अन्य किसी वस्तु जैसे रेंड़ी आदि हाथ की मुट्ठी में छिपाकर कोई लड़की या लड़का किसी दूसरे साथी खिलाड़ी लड़के या लड़की से पूछता है कि जुस्स लेना है या ताख। सम संख्याएं दो, चार, छह, आठ आदि जुस्स होती हैं और तीन, पांच, सात आदि विषम संख्याएँ ताख कहलाती हैं। जुस माँगने पर यदि ताख निकलता है तो हारने वाले को उतने ही दाने उस वस्तु के देने पड़ते हैं। मध्यमाङ्गुलि-ग्रहण क्रीड़ा बिना किसी शर्त या बाजी की होती है। इसमें एक दूसरे की चतुराई की परीक्षा होती है। एक हाथ की अंगुलियों का सम्पुटाकार करके बीचवाली सबसे बड़ी अंगुली को मोड़कर छिपा लिया जाता है, फिर जानने वाला मध्यमा अंगुली को पकड़ कर पहचानता है, यदि उसे पकड़ लेता है तो जीत जाता है अन्यथा हार जाता है। षट्पाषाणक्रीड़ा को आमतौर से 'गोट्टी' कहा जाता है यह प्रायः लड़कियों का ही खेल है। छोटे-छोटे छह कंकड़ लेकर उछाला जाता है और उन्हें बीच ही में लोक लिया जाता है। जमीन पर गिर जाने से हार मानी जाती है। उपर्युक्त बाजी लगाकर खेले जाने वाले इन खेलों के बाद उन खेलों को भी बताया गया है जो शारीरिक दृष्टि से महत्त्व के माने जाते हैं। इनसे शरीर के अंगों का व्यायाम हो जाता है। जैसे आँख मिचौनी—इस खेल में खेलने वालों की संख्या जितनी ही अधिक होती है उतना ही अधिक खेल जमता है। इस खेल के खिलाड़ी प्रारंभ में इकट्ठा होते हैं। उनमें से किसी एक को चोर बनाया जाता है। चोर बनाने का विधान भी बड़ा न्यायपूर्ण होता है और इसकी कई विधियाँ हैं। अधिकतर यह खेल चाँदनी रात में ही खेला जाता है। सभी खिलाड़ी एक कतार में

खड़े हो जाते हैं। ऐसे ढंग से खड़े होते हैं कि उनकी परछाइयाँ उनके सामने पड़ती हैं। खिलाड़ियों में से एक खिलाड़ी निर्देशक या सरदार चुन लिया जाता है, जो सभी पंक्तिबद्ध खड़े खिलाड़ियों को सावधान करते हुए अपनी-अपनी परछाईं हिलाने का आदेश देता है, इसके बाद शान्त, सुस्थिर खड़े होने की चेतावनी देकर वह मुट्ठी में धूल भर कर हर परछाईं को गौर से देखता है, जिसकी परछाईं हिलती-डुलती नजर आती है उस पर वह धूल फेंक देता है। धूल फेंकते ही सभी खिलाड़ी तितर-बितर होकर भागने और छिपने लगते हैं और सरदार चोर बने हुए व्यक्ति की आँखें कुछ देर के लिए मूँद लेता है, जब सब लोग छिप जाते हैं तो उसकी आँखें खोल दी जाती हैं, छिपे हुए व्यक्ति अपना संकेत वाक्य 'टीको', 'कूकी' आदि देशाचार के अनुसार कहते हैं—जिसका अनुसरण कर चोर उन्हें खोजता है, खिलाड़ी भागकर यह कोशिश करते हैं कि चोर के छूने से पहले उस विन्दु का स्पर्श कर लिया जाय जो खेल के चौगान में निश्चित किया गया है। यदि उसे छूने से पहले चोर किसी को बीच ही में छू लेता है तो जो व्यक्ति छू जाता है वही चोर बनता है, फिर उसकी आँखें मूँदी जाती हैं। इसी प्रकार घंटों खेल का क्रम भाग-दौड़, धरपकड़ का चलता रहता है

बचपन के साथी लड़के और लड़कियाँ इसी तरह के अनेक खेल खेलती हैं, किन्तु उनके हृदयों में यौन विकार बिलकुल नहीं उत्पन्न होता इसलिए कि अबोधावस्था रहती है। जिन किशोर-किशोरियों में यौन भावनाओं की समझ पैदा हो जाती है वे इस प्रकार मिल-जुल कर नहीं खेला करते और न उनकी अवस्था के ये खेल ही हैं। ऐसी अवस्था में शास्त्रकार का यह मत अग्राह्य ही नहीं असामाजिक, अव्यावहारिक-सा जान पड़ता है कि कोई बालक किसी बालिका से युवावस्था आने पर शादी करने के लिए बचपन से ही उसके साथ खेलना शुरू करे। हाँ, युवक ऐसे प्रयत्न कर सकते हैं। युवकों के प्रयत्नों का उल्लेख सूत्रकार इस प्रकार करते हैं—

यूनस्तु ये प्रायशस्तानाह—

यां च विश्वास्यामस्यां मन्येत तया सह निरन्तरां प्रीतिं कुर्यात्। परिचयांश्च बुध्येत ॥ ९ ॥

अस्यामिति—नायिकायाम्। विश्वास्याम्—निरन्तराम्—अनवच्छिन्नाम्। प्रीतिं कुर्यात्। सापि हि धात्रेयिका मत्कार्यं करिष्यतीति परिचयांश्चावबुध्येत। प्रीतिं किमप्यस्यामपि करोतीति ॥ ९ ॥

युवक के प्रयत्न—अब उन प्रयोगों को बताया जाता है जिन्हें प्रायः युवक

करते हैं—जिस लड़की से युवक प्रेम करना चाहता हो, उसकी विश्वासपात्र सहेली से वह निरंतर प्रेम और परिचय बढ़ाये ॥ ९ ॥

धात्रेयिकां चास्याः प्रियहिताभ्यामधिकमुपगृह्णीयात्। सा हि प्रीयमाणा विदिताकाराप्यप्रत्यादिशन्ती तं तां च योजयितुं शक्नुयात्। अनभिहितापि प्रत्याचार्यकम् ॥ १० ॥

धात्रेयिकाम्—धात्र्या दुहितरम्। प्रियम्—तदात्वे सुखकरम्। हितमायत्याम्। अधिकोपग्रहे फलमाह—सा हीति। प्रीयमाणा—ह्रियमाना। विदिताकारापीति—नायको नायिकामिच्छतीति ज्ञाताभिप्रायापि। अप्रत्यादिशन्ती तमिति—नायकमप्रत्याचक्षाणा। तां चेति—नायिकां भयलज्जाव्यपनयनेन प्रतार्य योजयितुं शक्नुयात्। अनभिहिता प्रत्याचार्यकमिति—संयोजने त्वमाचार्या भवेत्येतत्प्रति नायकेनानुक्तापि सती योजयितुं शक्नुयादिति योज्यम् ॥ १० ॥

उस लड़की की धाय की पुत्री को भी प्यार भरी और हितकर बातों से अपनी ओर मिला लेना चाहिये। क्योंकि अगर धाय की लड़की अपने वश में हो जाती है तो वह प्रसन्न होकर बिना कहे हुए ही उसके हाव-भावों को जानकर प्रेयसी से मिला देगी ॥ १० ॥

अविदिताकारापि हि गुणानेवानुरागात्प्रकाशयेत्। यथा प्रयोज्यानुरज्येत ॥ ११ ॥

अविदिताकारापीति—यद्यपि नायक एनामिच्छतीति न ज्ञातवती तथापि गुणानेव प्रकाशयेत्। अनुरागादिति नायकविषये धात्रेयिकानुरागात् ॥ ११ ॥

नायिका के भाव बिना जाने ही धाय की लड़की नायक के अनुराग से उसके गुणों को ऐसा प्रकट करे जिससे नायिका नायक पर अनुरक्त हो जाए ॥ ११ ॥

यत्र यत्र च कौतुकं प्रयोज्यायास्तदनु प्रविश्य साधयेत् ॥

यत्र यत्र चेति—प्रतारणप्रकारे। तत्तदनुप्रविश्य—विज्ञाय। साधयेदिति—संपादयेत् ॥ १२ ॥

नायिका को जिस वस्तु पर कुतूहल हो, जिस कौतुक को वह देखना चाहती हो उसे जानकर नायक उसे लाकर दे ॥ १२ ॥

क्रीडनकद्रव्याणि यान्यपूर्वाणि यान्यन्यासां विरलशो विद्येरंस्तान्यस्या अयत्नेन संपादयेत् ॥ १३ ॥

क्रीडनद्रव्याणि वक्ष्यति। अन्यासामिति—कन्यानाम्। विरलशः, न बाहुल्येन। अयत्नेनेति—संपादनसामर्थ्यं दर्शयति ॥ १३ ॥

यदि नायिका छोटी उम्र की हो तो उसे ऐसे खिलौने खरीद कर प्रदान करे, जो बहुमूल्य दुर्लभ होने के साथ ही ऐसे हों जिन्हें नायिका ने पहले कभी देखा भी न हो ॥ १३ ॥

तत्र कन्दुकमनेकभक्तिचित्रमल्पकालान्तरितमन्यदन्यच्च संदर्शयेत्। तथा सूत्रदारुगवलगजदन्तमयीर्दुहितृका मधूच्छिष्टपिष्टमृन्मयीश्च ॥ १४ ॥

क्रीडनकद्रव्याण्याह—कन्दुकमिति। अल्पकालान्तरितमिति कौतुकप्रबन्धाभ्युपगमार्थम्। अन्यदन्यत् भक्तीनां वैसादृश्यात्। दारु काष्ठम्। गवलं शृङ्गम्। दुहितृकाः पुत्रिकाः। संदर्शयेदित्येव। मधूच्छिष्टं सिक्थकम् ॥ १४ ॥

नायक को चाहिए कि अपनी नायिका को रिझाने के लिए ऐसी गेंद दिखाए जिसमें चित्र-विचित्र रंगों की फाँकें बनी हों और उनमें चित्र काढ़े गए हों तथा वह गेंद ढनगाई जाने पर थोड़ी-थोड़ी देर पर रंग बदलती जाए। इसके अलावा फुंकनी से साबुन जैसे फेनिल तरल पदार्थों के फुलक्का बनाकर उड़ाए जाएँ। भिन्न-भिन्न प्रकार की गेंदें दिखाए और डोरा, काठ, सींग, हाथी-दाँत, मोम, मैदा या मिट्टी की बनी हुई तरह-तरह की पुतलियाँ, गुड़ियाँ दिखाए ॥ १४ ॥

भक्तपाकार्थमस्या महानसिकस्य च दर्शनम् ॥ १५ ॥

महानसिकस्येति—महानसविषयं कर्म महानसिकमित्युक्तम्। भक्तग्रहणमुपलक्षणार्थम्। भक्तादिपाकार्थस्य कर्मणस्तत्तच्छास्त्रोक्तेन विधिना दर्शनम्। स्त्रीणां प्रधानविद्यात्वात् ॥ १५ ॥

भात बनाने के लिए रसोई दिखानी चाहिए अथवा खाना बनाने की विधि सिखायी जाए ॥ १५ ॥

काष्ठमेढ्रकयोश्च संयुक्तयोश्च स्त्रीपुंसयोरजैडकानां देवकुलगृहकाणां मृद्विदलकाष्ठविनिर्मितानां शुकपरभृतमदनसारिकालावकुक्कुटतित्तिरिपञ्जरकाणां च विचित्राकृतिसंयुक्तानां जलभाजनानां च यन्त्रिकाणां वीणिकानां पटोलिकानामलक्तकमनःशिलाहरितालहिङ्गुलकश्यामवर्णकादीनां तथा चन्दनकुङ्कुमयोः पूगफलानां पत्राणां कालयुक्तानां च शक्तिविषये प्रच्छन्नं दानं प्रकाशद्रव्याणां च प्रकाशम्। यथा च सर्वाभिप्रायसंवर्धकमेनं मन्येत तथा प्रयतितव्यम् ॥ १६ ॥

संयुक्तयोरिति एककाष्ठघटितयोः स्त्रीपुंसयोर्मेढ्रकयोरविप्रयोगार्थं दर्शनम्। अजैडकानां काष्ठमयानाम्। उपलक्षणार्थत्वाद्गवाश्वादीनां च। मृदा वंशविदलैः काष्ठैर्वा विनिर्मितानां देवकुलानां देवगृहाणां च। शुकादिपञ्जराणां मृदादिनिर्मितानाम्। तत्र मदनसारिका पठति। जलभाजनानां शङ्खशुक्तिखण्डानां मृत्काष्ठशिलानिर्मितानाम्। विचित्राणां वर्णिकया आकृतियुक्तानां संस्थानवताम् यन्त्रिकाणामिति यन्त्रमातृकोक्तानाम्। वीणिका स्वल्पवीणा। पिण्डोलिका यत्र दुहितृकाः स्थाप्यन्ते। पटोलिका यत्र प्रसाधनं विधीयते। श्यामवर्णकं राजावर्तचूर्णं चित्रकर्मोपयोगि। पत्त्राणि ताम्बूलस्य। कालयुक्तानामिति। यस्मिन्काले येनार्थिनी तत्र तस्य दर्शनमित्यर्थः। शक्तिविषय इति यस्मिन्प्रच्छन्ने स्वयं प्रवेष्टुं सामर्थ्यं तत्र दानम्। कुंकुमादीनामप्रकाश्यत्वात्। प्रकाशद्रव्याणां कन्दुकादीनां प्रकाशदानाम्। तैरेव कल्पनीयत्वात्। सर्वाभिप्रायसंवर्धकमितिसर्वाभिलाषपूर्वकं यज्जन्मन ईप्सितं तत्तत्संपादयतीति। दीयमानं च यथा प्रच्छन्नमर्थयेत् ॥ १६ ॥

एक काष्ठ पर बने हुए मेढ़ों के जोड़े, गाय-बैल, बकरी-बकरा के जोड़े, मिट्टी, बाँस और लकड़ी के बने हुए देव-मंदिर, तोते, मैना, लवा, मुर्गे, तीतर आदि पिंजड़े में बैठे हुए तथा विचित्र ढंग के शंख, सीप, कौड़ियाँ, वीणा, श्रृङ्गारदान, चित्र खींचने के लिए लाख, गेरू, हड़ताल आदि रंग, चन्दन, सुपारी, पान, इत्र आदि वस्तुओं को मौका देखकर छिपा कर या प्रत्यक्ष अपनी प्रेयसी को प्रदान करे ॥ १६ ॥

किं निमित्तमित्याह—

वीक्षणे च प्रच्छन्नमर्थयेत् तथा कथायोजनम् ॥ १७ ॥

वीक्षणे चेति। दर्शननिमित्तम्। प्रच्छन्ने दृश्यमाना निःशङ्कमुपचर्यते। तथा कथायोजनमिति—अन्यमुखेन संवर्धनार्थं च कथां योजयेत् ॥ १७ ॥

नायिका से लुक-छिप कर मिलने का अनुरोध करे तथा ऐसी अन्य बातें कहे जिससे उसकी अनुरक्ति बढ़े ॥ १७ ॥

प्रच्छन्नदानस्य तु कारणमात्मनो गुरुजनाद्भयं ख्यापयेत्। देयस्य चान्येन स्पृहणीयत्वमिति ॥ १८ ॥

प्रच्छन्नस्य तु कारणमुभयम्। तत्रात्मनो गुरुजनाद्भयं ख्यापयेत् तव पितरौ रुष्यत इति। अन्येन स्पृहणीयत्वमिति—अन्योऽप्येतद् दृष्ट्वा स्पृहयति। ततश्च गृह्णीयादिति ॥ १८ ॥

यदि नायिका लुका-छिपा कर चीजें देने का कारण पूछे तो माता-पिता का

भय बताए या दी जाने वाली वस्तुओं को किसी और के चाहने की बात बनाए ॥ १८ ॥

वर्धमानानुरागं चाख्यानके मनः कुर्वतीमन्वर्थाभिः कथाभिश्चित्तहारिणीभिश्च रञ्जयेत् ॥ १९ ॥

अन्वर्थाभिः स्वयं प्रयुक्ताभिः शकुन्तलाराजदारिकाकथाभिः। चित्तहारिणीभिरन्याभिरनुरागयुक्ताभिः ॥ १९ ॥

नायक-नायिका के बढ़ते हुए अनुराग के दरम्यान यदि नायिका नायक की बातें सुनने की रुचि प्रकट करे तो वह अवसर के अनुकूल सुन्दर रोचक कहानियाँ सुनाकर उसका मनोरंजन करे ॥ १९ ॥

विस्मयेषु प्रसह्यमानामिन्द्रजालैः प्रयोगैर्विस्मापयेत् । कलासु कौतुकिनीं तत्कौशलेन गीतप्रियां श्रुतिहरैर्गीतैः । आश्वयुज्यामष्टमीचन्द्रके कौमुद्यामुत्सवेषु यात्रायां ग्रहणे गृहाचारे वा विचित्रैरापीडैः कर्णपत्रभङ्गैः सिक्थकप्रधानैर्वस्त्राङ्गुलीयकभूषणदानैश्च । नो चेद्दोषकराणि मन्येत ॥ २० ॥

विस्मयेषु प्रसह्यमानामिति—आश्चर्येषु प्रसक्तिं यान्तीम् । कलासु—पत्रच्छेद्यादिषु । गीतप्रियामिति । कलान्तर्गतमपि पुनर्गीतग्रहणं प्राधान्यार्थम् । प्रायेण हि गीतप्रियो लोकः । आश्वयुज्यां कोजागरे । अष्टमीचन्द्रके मार्गशीर्षबहुलाष्टम्याम् । तत्र हि दिनमुपोष्योद्गते चन्द्रमसि भुज्यते । कौमुद्यामिति सामान्योपादानेऽपि यत्र कन्याभिर्ज्योत्स्नामण्डलकपूजा [क्रियते] सात्र द्रष्टव्या । सा कार्तिक्यां भवति । उत्सवेषु इन्द्रमहादिषु । यात्रायां देवतायाः । ग्रहणे सूर्याचन्द्रमसोः । गृहाचारे गृहमागतायाम् । आपीडादिभिर्विस्मापयेदिति संबन्धः । नो चेद्दोषकराणीति तद्दाने यद्यात्मनोऽपायं न पश्येत् ॥ २० ॥

यदि नायिका की इच्छा जादू के खेल देखने की हो तो उसे इन्द्रजाल के आश्चर्यजनक खेल दिखाकर आश्चर्य में डाल दे । यदि वह कलाओं का कौशल देखना चाहती हो तो उसे कलात्मक कौशल दिखाकर प्रसन्न करे । यदि उसे संगीत सुनने में रुचि हो तो मधुर गाने सुनाकर उसका मन बहलाव करे । कोजागरी व्रत के दिन, बहुला अष्टमी के दिन एवं कौमुदी महोत्सव के दिन, देवयात्रा तथा ग्रहण के दिन घर आने पर विचित्र ढङ्ग के आपीड, कर्णपत्रभंग, छाप, छल्ला, वस्त्र आदि देकर उसे प्रसन्न करे । लेकिन यह सब वस्त्रालंकार देते समय अवसर का ध्यान रखा जाए जिससे किसी प्रकार की ग़लतफ़हमी या बदनामी न हो ॥ २० ॥

अन्यपुरुषविशेषाभिज्ञतया धात्रेयिकास्याः पुरुषप्रवृत्तौ चातुःषष्टिकान्योगान्ग्राहयेत् ॥ २१ ॥

अन्यपुरुषविशेषाभिज्ञतयेति—अन्येभ्यः पुरुषेभ्यो मम विशेषं धात्रेयिका जानातीति। पुरुषप्रवृत्ताविति—जातसंप्रयोगाम्। अन्यथा कथं विशेषमेवेति ॥२१॥

नायिका की सहेली या धाय की लड़की नायिका से नायक की तारीफ़ करते हुए कहे कि दूसरे युवकों की अपेक्षा वह इस काम में बहुत होशियार है। इस तरह कहकर नायिका का भय-संकोच दूर कर दें। और उसे काम संबंधी कलाओं की शिक्षा दें ॥ २१ ॥

तद्ग्रहणोपदेशेन च प्रयोज्यायां रतिकौशलमात्मनः प्रकाशयेत् ॥ २२ ॥

तद्ग्रहणोपदेशेनेति-धात्रेयिकोपदेशद्वारेण। रतिकौशलमिति तज्ज्ञताम् ॥२२॥

सहेलियों द्वारा तारीफ किये जाने पर नायक को चाहिये कि वह नायिका पर अपने रति-कौशल को प्रकट करे ॥ २२ ॥

उदारवेषश्च स्वयमनुपहतदर्शनश्च स्यात्। भावं च कुर्वतीमिङ्गिताकारैः सूचयेत् ॥ २३ ॥

अनुपहतदर्शन इति। अस्योपाय उदारवेषत्वम्। तथाभूतं तं च दृष्ट्वा भावं कुर्वतीमनुरागं चेतसि जनयन्तीमिङ्गिताकारैर्लिङ्गैर्विद्यात् ॥ २३ ॥

नायक को चाहिए कि नायिका के सामने बड़े टीप-टाप से रहे और सदा उसकी नजरों से गुजरता रहे। वह मुझसे प्रेमभाव रखती है या नहीं यह बात उसके भावों से समझता रहे ॥ २३ ॥

किमित्यनुपहतदर्शनः स्यादित्याह—

युवतयो हि संसृष्टमभीक्ष्णदर्शनं च पुरुषं प्रथमं कामयन्ते। कामयमाना अपि तु नाभियुञ्जत इति प्रायोवादः। इति बालायामुपक्रमाः ॥ २४ ॥

युवतय इति जातयौवनाः। संसृष्टं जातपरिचयम्। अभीक्ष्णदर्शनं सदा दृश्यमानम्। कामयन्त इच्छन्ति। नाभियुञ्जते कथाचिल्लज्जाद्यर्थयुक्त्या ॥ बालायामुपक्रमाः षड्विंशं प्रकरणम् ॥ २४ ॥

यह निश्चित है कि अधिकांश युवतियाँ अपने परिचितों और आसपास रहनेवाले युवकों को अधिक चाहती हैं और चाहते हुए भी लज्जावश उनसे समागम नहीं करती हैं। बाला के उपक्रम समाप्त हुए ॥ २४ ॥

भावं च कुर्वतीमिङ्गिताकारैः सूचयेदित्युक्तं तेषां सूचनं प्रकाशनमुच्यते। यदाह—

तानिङ्गिताकारान् वक्ष्यामः ॥ २५ ॥

तानिति। तत्रेङ्गितमन्यथा वृत्तिः। आकारो मुखनयनरागः। तदुभयमुत्तरत्र यथायोगं योज्यम् ॥ २५ ॥

अब युवतियों के इशारों तथा मुख और नेत्र के भावों को कहेंगे ॥ २५ ॥

संमुखं तं तु न वीक्षते। वीक्षिता व्रीडां दर्शयति। रुच्यमात्मनोऽङ्गमपदेशेन प्रकाशयति। प्रमत्तं प्रच्छन्नं नायकमतिक्रान्तं च वीक्षते ॥ २६ ॥

संमुखं न वीक्षत इति लज्जया। पराङ्मुखी तं तु नायकम्। वीक्षितेति नायकेन तु व्रीडां दर्शयति अधोमुखी भूत्वा। रुच्यमतिमनोहरम्। आत्मनोऽङ्गं स्तनबाहुमूलादि। अपदेशेनेति प्रावरणव्याजेन। प्रमत्तमनवहितम्। प्रच्छन्नमेकाकिनम्। अतिक्रान्तं दूरगतम् ॥ २६ ॥

युवतियाँ अपने प्रेमियों के सामने शर्म के कारण नहीं देखा करतीं लेकिन मुँह फेर कर युक्ति से देख लिया करती हैं। अपने सुन्दर अंगों को किसी बहाने से दिखाती हैं। यदि नायक उनकी ओर मुखातिब न हो, असावधान या दूर हो तो देखती हैं ॥ २६ ॥

पृष्टा च किंचित्सस्मितमव्यक्ताक्षरमनवसितार्थं च मन्दं-मन्दमधोमुखी कथयति। तत्समीपे चिरं स्थानमभिनन्दति। दूरे स्थिता पश्यतु मामिति मन्यमाना परिजनं सवदनविकारमाभाषते। तं देशं न मुञ्चति ॥ २७ ॥

पृष्टा यत्किंचिदिति नायकेन। सस्मितमित्यादिनानुरागोन्मुखता व्रीडा चाख्यायते। तत्समीप इति—नायकसमीपे। परिजनमित्यात्मीयम्। सवदनविकारमिति—सभ्रूभङ्गकटाक्षकम्। तं देशमिति—यत्र स्थिता तं पश्यति ॥ २७ ॥

कुछ पूछने पर युवती नायिका मुस्कराती हुई नीचे मुख किए धीरे-धीरे अस्पष्ट भाषा में ऐसा उत्तर देती है कि उसका तात्पर्य समझ में न आए। नायक के पास देर तक बैठना पसन्द करती है। दूर खड़ी हुई—'यह (नायक) मुझे

देखे'—ऐसा भाव रखकर अपने परिवार वालों से मुँह बनाकर बोलती है और उस जगह से हटती भी नहीं ॥ २७ ॥

यत्किंचिद् दृष्ट्वा विहसितं करोति। तत्र कथामवस्थानार्थमनुबध्नाति। बालस्याङ्कगतस्यालिङ्गनं चुम्बनं च करोति। परिचारिकायास्तिलकं च रचयति। परिजनानवष्टभ्य तास्ताश्च लीला दर्शयति ॥ २८ ॥

तत्रैव यत्किंचिद् दृष्ट्वा विहसितं करोति। तिर्यक्पश्यन्ती। तत्र कथामनुबध्नाति सखीं प्रोत्साह्य। बालस्येति लाडीकस्य स्वाङ्कमारोपितस्य। चुम्बनावगूहनं च संक्रान्तकम्। परिचारिकायाः स्वस्यास्तिलकं रचयति नायकं पश्यन्ती। परिजनानवष्टभ्येति परिजनक्रोडापाश्रया। तास्ताश्चेति केशविरचनांगवलनविजृम्भिकादिकाः ॥ २८ ॥

जहाँ नायक खड़ा रहता है वहीं नायिका कुछ भी देखकर हँसती है। खड़े रहने के लिए बातों का सिलसिला जोड़ती रहती है। गोद के बालक का आलिंगन, चुम्बन करने लगती है। परिचारिका से अपनी बेंदी ठीक कराने लगती है। अपने लोगों का सहारा लेकर हाव-भाव, नाज़-नखरे दिखाने लगती है ॥ २८ ॥

तन्मित्रेषु विश्वसिति। वचनं चैषां बहु मन्यते करोति च। तत्परिचारकैः सह प्रीतिं संकथां द्यूतमिति च करोति। स्वकर्मसु च प्रभविष्णुरिवैतान्नियुङ्क्ते। तेषु च नायकसंकथामन्यस्य कथयत्स्ववहिता तां शृणोति ॥ २९ ॥

तन्मित्रेषु नायकमित्रेषु। विश्वसिति स्वभावं प्रकटयति। वचने चैषां बहुमानं कुरुते। तदनुरूपानुष्ठानात्। तत्परिचारकैरिति नायकपरिचारकैः। एतानिति नायकपरिचारकान्। तेष्विति परिचारकेषु कस्यचिदन्यस्य कथयत्सु। तां संकथाम् ॥ २९ ॥

प्रेमिका अपने प्रेमी के मित्रों पर विश्वास करती है। उनकी बातों का समादर करती है। उसके नौकरों के साथ बातचीत, प्रीति व्यवहार करती है और उनके साथ शतरंज, ताश आदि भी खेलती है। प्रेमी के नौकरों को मालिक की भाँति ही आदेश देती है। यदि वे नौकर नायक की बातें करते हैं तो उनकी बातें एकाग्र होकर सुनती है ॥ २९ ॥

धात्रेयिकया चोदिता नायकस्योदवसितं प्रविशति।

तामन्तरा कृत्वा तेन सह द्यूतं क्रीडामालापं चायोजयितुमिच्छति। अनलंकृता दर्शनपथं परिहरति। कर्णपत्त्रमङ्गुलीयकं स्रजं वा तेन याचिता सधीरमेव गात्रादवतार्य सख्या हस्ते ददाति। तेन च दत्तं नित्यं धारयति। अन्यवरसंकथासु विषण्णा भवति। तत्पक्षकैश्च सह न संसृज्यत इति ॥ ३० ॥

धात्रेयिकया चोदिता प्रविशति इति। उदवसितं गृहम्। तामन्तरा कृत्वेति धात्रेयिकां व्यवधानीकृत्य। नायकेन सह द्यूतादि नियोजयितुमिच्छति। दर्शनपथमिति नायकस्य। सधीरमवतार्य किं ग्रहीष्यतीति। सख्या हस्त इति लज्जया न तद्धस्ते ददाति। नित्यं धारयति श्लाघ्यमाना। तत्पक्षैरिति अन्यवरपक्षैः ॥ ३० ॥

वह नायिका अपनी सहेली के कहने पर अपने प्रेमी के घर चली जाती है। सहेली को माध्यम बनाकर प्रेमी के साथ शतरंज आदि खेलती है और प्रेमालाप करती है। नायक के सामने बिना साज-श्रृङ्गार के नहीं आती। यदि नायक कर्णफूल, अंगूठी या माला माँगता है तो बड़ी धीरता के साथ उतारकर सहेली के हाथ में रख देती है। नायक की दी हुई वस्तुएँ सदैव धारण करती है। दूसरे नायकों की बातों में उदासीन हो जाती है और उनके समर्थकों का संसर्ग छोड़ देती है ॥ ३० ॥

प्रकरणद्वयमुपसंहरन्नाह—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

दृष्ट्वैतान्भावसंयुक्तानाकारानिङ्गितानि च।
कन्यायाः संप्रयोगार्थं तांस्तान्योगान्विचिन्तयेत् ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वेति। एतानिति आकारान् इङ्गितानि चेति लिङ्गविपरिणामेन योज्यम्। भावसंयुक्तानिति अनुरागसंगतान्। संप्रयोगार्थमिति। संप्रयोगोऽत्र समागमलक्षणो गान्धर्वो ज्ञेयः। योगानिति अभियोगान् ॥ ३१ ॥

इस संबंध में दो प्राचीन श्लोक हैं—इस प्रकार कन्या के हाव-भाव, नाज़-नख़रों और इशारों को देखकर उसके समागम के लिए उचित उपायों को काम में लाना चाहिए ॥ ३१ ॥

त्रिविधा कन्या—बाला तरुणी प्रौढा चेति। यथाक्रममुपक्रममाह—

बालक्रीडनकैर्बाला कलाभिर्यौवने स्थिता।
वत्सला चापि संग्राह्या विश्वास्यजनसंग्रहात् ॥ ३२ ॥

बालक्रीडनकैरिति। कलाभिरनुरागिणी। वत्सला प्रौढा। यस्तया विश्वास्यस्तदुपग्रहात्स्वीकर्तव्या ॥ इङ्गिताकारसूचनं सप्तविंशं प्रकरणम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे बालोपक्रमा इङ्गिताकारसूचनं च तृतीयोऽध्यायः।
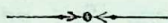
कन्या तीन प्रकार की होती है—बालक्रीडा करनेवाली बाला कहलाती है। कामकलाओं से अनुराग रखनेवाली तरुणी कही जाती है। वात्सल्य भाव रखनेवाली प्रौढ़ा होती है। इसलिए चतुर नायक को चाहिए कि वह खेल-खिलौनों से तो बाला को वशीभूत करे, कामकला के कौशल से तरुणी को और प्रौढ़ा को उसके विश्वासी आदमियों को अपने वश में करके आकृष्ट करे ॥३२॥

इस प्रकरण में तरुण नायक नायिका को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए, अपने ऊपर अनुरक्त होने के लिए—कौन से प्रयत्न करे—उन्हीं प्रयत्नों का सविस्तर वर्णन है। इस प्रकार के प्रयत्नों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है। एक तो नायिका की सहेलियों और अद्भुत आकर्षक वस्त्राभूषण एवं अन्य वस्तुओं को माध्यम बनाकर नायिका से परिचय प्राप्त करना, प्रेम को उत्तरोत्तर बढ़ाना। दूसरे वर्ग में ऐसी भावबोधक वस्तुयें प्रदान करना जिससे नायिका नायक के मनोभावों को भली भाँति समझ सके। तरुण नायक को नायिका को वशीभूत करने के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने का सुझाव उपर्युक्त दोनों प्रकार के माध्यमों में बताया गया है।

प्रारंभ में माध्यम का चुनाव बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी से करना चाहिए। नायिका की जो सहेलियाँ हैं, उन पर अधिक विश्वास और प्रेम जताना चाहिए। उन्हें अपना माध्यम बनाते समय उनकी परीक्षा कर लेनी चाहिए कि नायिका और नायक के बीच प्रीति-संबर्द्धन में यह कहाँ तक सहयोगी सिद्ध हो सकती है। माध्यम उसी व्यक्ति को चुनना चाहिए जो नायिका का अन्तरंग हो, नायिका से आत्मीयता रखता हो। वह अन्तरंग और आत्मीय ऐसा हो जो नायिका को रतिभावों की ओर प्रोत्साहित करता रहे, अवसर पड़ने पर समागम का भी लाभ करा सके। वात्स्यायन ने व्यक्ति के रूप में धाय की लड़की और अन्तरंग सखी को ही माध्यम बनाने का सुझाव दिया है। ये सहेलियाँ ऐसी होती हैं जो नायिका के मनोभावों को भलीभाँति समझ कर उसकी इच्छाओं की पूर्ति करने का उद्योग कर सकती

हैं, उसके मार्ग को प्रशस्त बनाने का उपाय कर सकती हैं और नायिका अपने मनोभावों को खुलकर बिना शील-संकोच के उनसे व्यक्त कर सकती है। ऐसे विश्वस्त माध्यम से नायक अपनी प्रेयसी के पास तक उपहार भेज सकता है, सन्देश भेज सकता है, और नायिका के हृदय के उद्गार सुन, समझ सकता है। सहेलियों को नायक इसलिए प्रसन्न रखे, उन पर इसलिए अटल विश्वास रखे, उन पर इसलिए अधिक प्रेम रखे कि वे सहेलियाँ उस नायिका से नायक की तारीफें कर करके उसे इतना विमुग्ध बना देती है कि वह नायक को देखने के लिए आकुल-व्याकुल हो जाती है। बिना किसी परिचय के, बिना देखे ही नायिका नायक पर आसक्त होने लगती है और उसकी उस आसक्ति को सहेलियाँ उत्तरोत्तर बढ़ाती रहती हैं।

नायक को चाहिए कि नायिका के पास जो वस्तुएँ उपहार के रूप में भेजे वे अद्भुत, अपूर्व हों, जिन्हें नायिका ने कभी देखा न हो और न वे वस्तुएँ उसकी अन्य सखियों के पास हों। ऐसी वस्तुएँ पाकर नायिका गर्वान्वित होती है, वह अपने नायक पर फ़ख्र करने लग जाती है। उन वस्तुओं का उपयोग करके अपनी सखियों को दिखाकर वह अपने को धन्य समझती है। उसकी मानसिक ग्रन्थियाँ अनायास खुल जाती हैं और वह मन ही मन नायक पर आत्म-समर्पण कर देती है।

उपहार की वस्तुएं नायिका की रुचि के अनुकूल होने के साथ ही दाम्पत्य-जीवन, रति-भावनाओं, काम-कलाओं के भावों का बोध करानेवाली हों। जिन्हें देखते ही नायिका अपने भावी जीवन की सुन्दर कल्पनाएँ करने लगे, नायक के साथ रति-क्रीड़ा के लिए व्यग्र हो उठे। उसकी रुचि और उसके चुनाव की तारीफ़ करे। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि नायिका की इच्छा किन उपयोगी और भोग्य वस्तुओं की है, उसकी इच्छा के अनुकूल भी उन वस्तुओं को संगृहीत कर नायिका को प्रदान करना चाहिए।

इस तरह सहेलियों के माध्यम से नायिका से जब प्रेम-परिचय बढ़ जाए तब नायक को यह प्रयत्न, यह सावधानी हर समय रखने की ज़रूरत होती है कि वह भद्र आकर्षक वेष में सदैव रहे, नायिका से देखा-देखी करता रहे। उसके सामने से गुज़रने का कई बार प्रयत्न करे। इस देखा-देखी के दरम्यान नायक, नायिका के हाव-भाव, कटाक्ष देखकर यह भाँपता रहे कि नायिका उसके प्रति कैसा भाव रखती है।

नायक, नायिका के इशारों और भावों को समझने में कहीं भूल न कर जाए, इसलिए वात्स्यायन स्त्रियों की मनोवृत्ति का सूक्ष्म विश्लेषण भी इसी प्रसंग पर करते हैं। उनका कहना है कि अधिकतर स्त्रियाँ उन्हीं पुरुषों को चाहती हैं जो व्यक्तित्व की विशेषता रखने के साथ उनके आस-पास मँडराते रहते हैं, जिन्हें देख कर नायिका परिचित बन जाती है। लेकिन उसका चाहना स्पष्ट और प्रकट नहीं हो पाता—वह चाहती हुई भी लज्जा और संकोच से अपने प्रेमी से समागम नहीं कर पाती। इसलिए युवकों को चाहिए कि स्त्रियों के इशारों, उनकी मुख-मुद्राओं और हाथ-पैर की चेष्टाओं से उनके मनोभावों को ताड़ लिया करें। स्त्रियों के देखने का ढंग विचित्र और निराला हुआ करता है। उनकी नाहीं में हाँ समाया रहता है। उनकी विपरीत चेष्टाओं में अनुकूलता रहती है। नायिका नायक को सामने से न देख कर मुँह फेर कर कनखियों से देखा करती है। कदाचित् नायक उसकी ओर देखने लगता है तो वह शिर नीचा कर लेती है। अपनी साड़ी सँभालने, अंगों को बार-बार ढकने तथा आभूषणों पर हाथ फेरने या अंगुलियाँ चटकाने, अंगुली से जमीन कुरेदने के भावों का प्रदर्शन करती है। कदाचित् नायिका को नायक नहीं देख पाता और नायिका की नजर उस पर पड़ जाती है तो वह उसे दूर तक देखती रह जाती है। उसके दर्शन से अघाती नहीं। नायिका से किसी स्थान पर भेंट हो जाने पर नायक जब उससे कुछ पूछता है तो वह अटपटा, अस्पष्ट उत्तर मुस्कराती हुई, इठलाती हुई अधोमुखी हो कर देती है। कदाचित् सखियों या स्वजनों के बीच में नायिका हो और पास ही नायक भी हो तो नायिका अपनी सखियों से मुँह बिगाड़ कर बातें करेगी। इस प्रकार का प्रयत्न करेगी कि नायक उसे देखने लगे। उसकी यह इच्छा बलवती बनी रहती है कि जब तक नायक खड़ा रहे, वह वहीं स्थिर रहे।

नायक को देख कर नायिका के नाज़-नख़रे कभी बड़े लचीले, सजीले होते हैं कभी बड़े विचित्र। अगर गोद में बालक लिए रहती है तो उसका बार-बार आलिंगन, चुम्बन करती है। अपनी सखी-सहेलियों या दासियों से अपने आभूषण ठीक कराने लगती है और उन्हीं का सहारा लेकर विविध प्रकार के हाव-भाव, लीला-विलास करती है। चतुर नायक को चाहिए कि नायिका के हर लीला-विलास का अध्ययन सूक्ष्म दृष्टि से करे।

वात्स्यायन ने प्रेम करने योग्य बाला, तरुणी और प्रौढ़ा तीन प्रकार की स्त्रियों का उल्लेख किया है। बाल क्रीड़ाओं में रत रहनेवाली बाला, काम कलाओं से रुचि रखनेवाली तरुणी और वात्सल्य-प्रेम से भरी हुई प्रौढ़ा होती

है। वात्स्यायन का कहना है कि बाला को खेल-खिलौनों से रिझा कर वशीभूत किया जाना चाहिए। तरुणी को काम-कला के कौशल दिखा कर और प्रौढ़ा को उसके बच्चों, भाइयों आदि को प्यार करके वशीभूत किया जा सकता है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे कन्यासम्प्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे बालोपक्रमा इङ्गिताकारसूचनं च तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

एकपुरुषाभियोगप्रकरणम्

शास्त्रकार एव प्रकरणसम्बन्धमाह—

दर्शितेङ्गिताकारां कन्यामुपायोऽभियुञ्जीत ॥ १ ॥

दर्शितेङ्गिताकारामिति । उपायत इति उपाया एवाभियोगाः । अभियुज्यते तैरिति । ते चासहायस्येत्येकपुरुषाभियोगा उच्यन्ते । ससहायस्यापि केचित्संभवन्ति ॥ १ ॥

इस प्रकार कन्या का प्रेम प्रकट हो जाने पर युवक उससे सम्बन्ध स्थापित कर लेता है ॥ १ ॥

ते द्विविधाः—बाह्या आभ्यन्तराश्चेति । तत्र पूर्वानधिकृत्याह—

द्यूते क्रीडनकेषु च विवदमानः साकारमस्याः पाणिमवलम्बेत ॥ २ ॥

द्यूत इति । विवदमानो वाक्कलहं कुर्वन् । साकारं पाणिमवलम्बेत यथावगच्छेत् 'अहमनेनोढा' इति ॥ २ ॥

शतरञ्ज आदि खेलों में विवाद करता हुआ नायक नायिका का हाथ इस प्रकार पकड़े जिससे कुछ गहरी अनुभूति हो ॥ २ ॥

यथोक्तं च स्पृष्टकादिकमालिङ्गनविधिं विदध्यात् ॥ ३ ॥

स्पृष्टकादिकमिति स्पृष्टकं विद्धकमुद्घृष्टकं पीडितकमिति चतुष्टयमवसरप्राप्तत्वाद्यथायोग्यं विदध्यात् ॥ ३ ॥

स्पृष्टक, विद्धक, उद्धृष्टक और पीडितक इन चार आलिङ्गनों में से यथावसर जो उचित हो उसका प्रयोग करे ॥ ३ ॥

पत्रच्छेद्यक्रियायां च स्वाभिप्रायसूचकं मिथुनमस्या दर्शयेत् ॥

पत्रेति । स्वाभिप्रायसूचकं संप्रयोगसूचकं हंसादिमिथुनम् ॥ ४ ॥

अपने अभिप्राय को व्यक्त करनेवाले मिथुन चित्र पत्तों में खींच कर दिखाये ॥ ४ ॥

एवमन्यद्विरलशो दर्शयेत् ॥ ५ ॥

एवमिति । अन्यदपि यन्मिथुनं भवति तिलकादिकं साकारम् । विरलश इति । सततदर्शने हि ग्राम्यता संभाव्यते कौतुकं चापैति ॥ ५ ॥

कभी-कभी मिथुन-चित्र दिखा देना चाहिये ॥ ५ ॥

जलक्रीडायां तद्दूरतोऽप्सु निमग्नः समीपमस्या गत्वा स्पृष्ट्वा चैनां तत्रैवोन्मज्जेत् ॥ ६ ॥

जलेति । स्पृष्ट्वा चैनामिति निमग्न एव । तत्रैवोन्मज्जेत् नायिकासमीपे ॥ ६ ॥

जलक्रीड़ा करते समय प्रेमी अपनी प्रेमिका से दूर डुबकी लगा कर प्रेमिका के पास आकर उसका स्पर्श करे और फिर अपना सिर पानी से बाहर निकाले ॥ ६ ॥

नवपत्रिकादिषु च सविशेषभावनिवेदनम् ॥ ७ ॥

नवपत्रिकादिषु चेति—देश्यक्रीडासु । सविशेषभावनिवेदनमिति—पूर्वोक्तेनैव स्वाभिप्रायसूचकेन पत्रच्छेद्यादिना ॥ ७ ॥

नवीन कोमल पत्तों पर अपने मन के विशेषभाव लिखकर देना चाहिये॥७॥

आत्मदुःखस्यानिर्वेदेन कथनम् ॥ ८ ॥

आत्मदुःखस्य च कथनम् 'न जाने किंकृता मम चेतसि पीडा' इति । तत्राप्यनिर्वेदेन भूयो भूयः प्रधानकार्यत्वात्कथनम् ॥ ८ ॥

अपने दुःख को बिना किसी वेदना के कहना चाहिये ॥ ८ ॥

स्वप्नस्य च भावयुक्तस्यान्यापदेशेन ॥ ९ ॥

अन्यापदेशेनेति त्वत्तुल्यरूपया सहोपगमः स्वप्ने ममाभूदिति कथनम् ॥९॥

किसी बहाने भावयुक्त स्वप्न की बातें कहनी चाहिये ॥ ९ ॥

प्रेक्षणके स्वजनसमाजे वा समीपोपवेशनम् । तत्रान्यापदिष्टं स्पर्शनम् ॥ १० ॥

स्वजनसमाजः स्वजनगोष्ठी । समीपोपवेशनमिति नायिकायाः । तत्रेति समीपे प्रेक्षणकादिषु । अन्यापदिष्टमन्यदपदिश्य स्पर्शनम् ॥ १० ॥

खेल तमाशे देखते समय तथा स्वजनों की गोष्ठी के समय नायक नायिका के ही पास बैठे और कोई बहाना बनाकर उसका अङ्ग स्पर्श करे ॥ १० ॥

अपाश्रयार्थं च चरणेन चरणस्य पीडनम् ॥ ११ ॥

अपाश्रयार्थमिति । अपाश्रयस्तदङ्गे स्वाङ्गस्थापनम् । चरणस्य पीडनं स्वचरणेन ॥ ११ ॥

उसके शरीर के अङ्गों को अपने अङ्गों पर रखने के लिये उसके पैरों को अपने पैरों से दबाये ॥ ११ ॥

ततः शनकैरेकैकामङ्गुलिमभिस्पृशेत् ॥ १२ ॥

तत इति । तस्मात्सिद्धादुत्तरकाले । शनकैरिति कियतीं कालकलामतिक्रम्य तस्या अंगुलिमभिस्पृशेत् ॥ १२ ॥

इसके बाद धीरे-धीरे एक-एक अंगुलि से छुये ॥ १२ ॥

पादाङ्गुष्ठेन च नखाग्राणि घट्टयेत् ॥ १३ ॥

पादांगुष्ठेनेति । नखाग्राणि घट्टयेच्चालयेत् ॥ १३ ॥

पैर के अंगूठे से नाखूनों की नोक चलाये ॥ १३ ॥

तत्र सिद्धः पदात्पदमधिकमाकाङ्क्षेत् ॥ १४ ॥

तत्रेति । सिद्धो नखाग्रघट्टने । पदात्पदमिति स्थानात्स्थानान्तरं जघनोरुनितम्बादिकं स्प्रष्टुं सोपानक्रमेण कांक्षेत् ॥ १४ ॥

यदि वहाँ बैठे-बैठे इस प्रकार अङ्गों के स्पर्श कराने से नायिका कुछ एतराज न करे तो अपने पैर से उसके पैर के ऊपरी भाग को दबाये ॥ १४ ॥

क्षान्त्यर्थं च तदेवाभ्यसेत् ॥ १५ ॥

क्षान्त्यर्थं चेति—सहनार्थम् । अभ्यसेत् तदेव यत्पूर्वाभ्युपगतम् ॥ १५ ॥

अङ्गसंस्पर्श और घर्षण को सहन करने के लिये बार-बार अङ्ग से अङ्ग दबाने का अभ्यास करना चाहिये ॥ १५ ॥

आन्तरानधिकृत्याह—

पादशौचे पादाङ्गुलिसंदंशेन तदङ्गुलिपीडनम् ॥ १६ ॥

पादशौच इति पादधावनं ददत्याः । स्वपादांगुलिसंदंशेन पीडनम् ॥ १६ ॥

पैर दबाने के बाद पैर की अंगुलियों में उसके पैर की अंगुलियाँ फँसाकर दबाये ॥ १६ ॥

द्रव्यस्य समर्पणे प्रतिग्रहे वा तद्गतो विकारः ॥ १७ ॥

तद्गतो विकार इति । द्रव्यं पूगफलादिकं समर्पयता प्रतिगृह्णता वा द्रव्यगतो विकारः कार्यः । सनखस्पर्शमर्पयेत्प्रतिगृह्णीयाद्वेत्यर्थः ॥ १७ ॥

दी जाने वाली चीज पर या उससे पाई हुई चीज पर निशान लगा देना चाहिये ॥ १७ ॥

आचमनान्ते चोदकेनासेकः ॥ १८ ॥

आचमनान्त इति । उपस्प्रष्टुं ददतीं तदन्ते जलचुलकेनाहन्यात् ॥ १८ ॥

पानी पीते समय थोड़ा जल उस पर छिड़क देना चाहिये ॥ १८ ॥

विजने तमसि च द्वन्द्वमासीनः क्षान्तिं कुर्वीत । समानदेशशय्यायां च ॥ १९ ॥

द्वन्द्वमिति साहचर्येणासीनः । क्षान्तिं कुर्वीतेति नखस्पर्शादिना । तत्काले लज्जाभावात्कन्यायाः । समानदेशशय्यायां च क्षान्तिं कुर्वीत ॥ १९ ॥

यदि एकान्त में या अँधेरे में एक दूसरे से सट कर बैठे हुए हों तो नायिका के अङ्गों को धीरे-धीरे इस तरह दबाता रहे कि वह सहन करती जाये। यदि एक ही चारपाई पर दोनों बैठे या लेटे हों तो भी उसे नाखूनों से धीरे-धीरे नखक्षत करते रहना चाहिये ॥ १९ ॥

तत्र यथार्थमनुद्वेजयतो भावनिवेदनम् ॥ २० ॥

तत्रेति आसने शयने च। यथार्थं भावनिवेदनमाकारेण। न वाचा। प्रत्याख्यानभयात्। अनुद्वेजयत इति—यथा नोद्विजते ॥ २० ॥

नायिका को बिना उद्विग्न किये ही अपने भावों को प्रस्तुत करे ॥ २० ॥

यदा वाचा तदा विधिमाह—

विविक्ते च किंचिदस्ति कथयितव्यमित्युक्त्वा निर्वचनं भावं च तत्रोपलक्षयेत्। यथा पारदारिके वक्ष्यामः ॥ २१ ॥

विविक्ते चेति। 'किंचिदस्ति कथयितव्यम्' इत्येतावद्वक्तव्यम्। 'किं तत्' इति तयोच्यमाने निर्वचनं ब्रूयादित्यर्थः। तत्रेति वचनोपन्यासे। भावं संप्रयोगाभिलाषमस्या लक्षयेत्। कथमित्याह—यथेति। तत्र प्रवृत्त्या भावपरीक्षां वक्ष्यति। इङ्गिताकारैश्च यद्भाववेदनं तदनुरागमात्रवेदनमिति ॥ २१ ॥

नायिका के एकान्त में मिलने पर नायक उससे इतना ही कहे कि मैं कुछ कहना चाहता हूँ। 'क्या कहना है'—यह पूछने पर नायक युक्ति से अपनी बात कहे, और यह अनुभव करता रहे कि बात का असर उस पर कैसा पड़ता है। ऐसी बातों का असर नायिका पर कैसा पड़ता है—इसका विवेचन आगे पारदारिक अधिकरण में कहेंगे ॥ २१ ॥

विदितभावस्याभ्यन्तरमभियोगमाह—

विदितभावस्तु व्याधिमपदिश्यैनां वार्ताग्रहणार्थं स्वमुदवसितमानयेत् ॥ २२ ॥

विदितेति। व्याधिमपदिश्येति कृतकं शिरःशूलादिकमपदिश्य। स्वमुदवसितं स्वगृहम्। आनयेत् विश्वास्यया प्रणिहितया ॥ २२ ॥

नायिका के भावों को अपने अनुकूल जानकर सिर-पीड़ा आदि का बहाना करके विचारों का आदान-प्रदान करने के लिये उसे अपने घर बुलाये ॥ २२ ॥

आगतायाश्च शिरःपीडने नियोगः। पाणिमवलम्ब्य चास्याः साकारं नयनयोर्ललाटे च निदध्यात् ॥ २३ ॥

शिरःपीडन इति शिरो मे दुःखयति पीडय हस्तेनेति नियोगः ॥ २३ ॥

घर आ जाने पर नायिका से सिर दबवाये। उसका हाथ पकड़ कर अपने दोनों नेत्रों और ललाट पर फिरावे ॥ २३ ॥

औषधापदेशार्थं चास्याः कर्म विनिर्दिशेत् ॥ २४ ॥

औषधेति। यथा जानात्यस्मत्कृतेयमस्यावस्थेति ॥ २४ ॥

फिर उससे कहे कि दवा से बढ़कर तुम्हारे हाथ हैं। हाथों के स्पर्श से ही सिर दर्द अच्छा हो गया ॥ २४ ॥

इदं त्वया कर्तव्यम्। नह्येतदृते कन्याया अन्येन कार्यमिति गच्छन्तीं पुनरागमनानुबन्धमेनां विसृजेत् ॥ २५ ॥

त्वयेति त्वयैव साधितं सिद्धिदं भवतीति। अनुबन्धं पुनरागन्तव्यमित्येवंरूपम् ॥ २५ ॥

यह काम तुम्हें ही करना चाहिये। कुमारी कन्या को छोड़कर किसी और से नहीं कराया जाता। यदि वह जाने लगे तो दुबारा आने का आग्रह उससे करे॥ २५ ॥

अस्य च योगस्य त्रिरात्रं त्रिसंध्यं च प्रयुक्तिः ॥ २६ ॥

अस्येति कन्यासाध्यस्य। त्रिरात्रं त्रिसंध्यं प्रयुक्तिः प्रयोगः ॥ २३ ॥

नायिका को अपनी प्रेयसी बनाने के लिये इस तरकीब को तीन रात और तीन सन्ध्या को करना चाहिये ॥ २६ ॥

एतन्निर्देशे फलमाह—

अभीक्ष्णदर्शनार्थमागतायाश्च गोष्ठीं वर्धयेत् ॥ २७ ॥

अभीक्ष्णेति। गोष्ठीमिति कलानामाख्यायिकानां वा। तेन तदासक्ता चिरं तिष्ठेदित्यर्थः ॥ २७ ॥

घर आई नायिका को बार-बार देखने के लिये बातें बढ़ानी चाहिये ॥२७॥

अन्याभिरपि सह विश्वासनार्थमधिकमधिकं चाभियुञ्जीत। न तु वाचा निर्वदेत् ॥ २८ ॥

अन्याभिरिति। ताभिर्विश्वासनं कार्यमिति हेतोरिति भावः। न त्विति ॥२८॥

नायिका को विश्वास कराने के लिये अन्यान्य गप्पें छेड़ता रहे किन्तु अपने मुँह से मतलब की बात न कहे ॥ २८ ॥

तत्र दोषमाह—

दूरगतभावोऽपि हि कन्यासु न निर्वेदेन सिद्ध्यतीति घोटकमुखः ॥ २९ ॥

दूरेति । अत्यर्थजातविस्रम्भोऽपि न सिद्धयति । बहुशोऽभियोगापेक्षणीयत्वात्कन्यानाम् । घोटकमुखग्रहणं पूजार्थम् । तन्मतस्याप्रतिषिद्धत्वात् ॥ २९ ॥

इस अधिकरण के विशेषज्ञ आचार्य घोटकमुख का कहना है कि युवतियों को चाहे जितना विश्वास दिलाया जाय और उनका पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया जाय किन्तु उनसे कष्ट सहन करने और घर-बार के त्याग करने की आशा नहीं की जा सकती ॥ २९ ॥

यदा तु बहुसिद्धां मन्येत तदैवोपक्रमेत् ॥ ३० ॥

यदा त्विति । बहुसिद्धां बहुभिरभियोगैः कार्योन्मुखीमुपक्रमेत ॥ ३० ॥

नायिका पर किये गये सभी प्रयोग जब सफल हो जायें तभी उसके साथ सम्भोग के लिये तैयार होना चाहिये ॥ ३० ॥

तत्र कालमाह—

प्रदोषे निशि तमसि च योषितो मन्दसाध्वसाः सुरतव्यवसायिन्यो रागवत्यश्च भवन्ति । न च पुरुषं प्रत्याचक्षते । तस्मात्तत्कालं प्रयोजयितव्या इति प्रायोवादः ॥ ३१ ॥

प्रदोष इति रात्रिप्रारम्भे । निशि रात्रौ त्रियामालक्षणायाम् । तत्राप्यन्धकारे प्रतार्यसर्वस्त्रीप्रतिपत्त्यर्थम् । मन्दसाध्वसाः कैश्चिदहश्यमानत्वात् । रागवत्यः संप्रयोगाभिलाषिण्यः । न प्रत्याचक्षते न निषेधन्ति । तस्मात्तत्कालमिति । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । प्रयोजयितव्या योज्याः । वाञ्छितकार्येषु ॥ ३१ ॥

अब सम्भोग का समय बतलाते हैं—

प्रदोषकाल में, रात में और अँधेरे में जब कोई दूसरा नहीं दिखाई पड़ता है ऐसे समय में युवतियाँ सम्भोग की इच्छा करती हैं, उनका राग बढ़ता है, उस समय वे इनकार नहीं करतीं । इसलिये नायक को इसी समय नायिका को सुरत के लिये तैयार करना चाहिये ॥ ३१ ॥

एकपुरुषाभियोगानां त्वसंभवे गृहीतार्थया धात्रेयिकया सख्या वा तस्यामन्तर्भूतया तमर्थमनिर्वदन्त्या सहैनामङ्कमानाययेत् । ततो यथोक्तमभियुञ्जीत ॥ ३२ ॥

एकेति । विप्रकृष्टत्वात्स्वयमेकस्याभियोगो न संभवति । सहायमपेक्षते । गृहीतार्थयेति नायकोऽपि नायिकां समीपमानयितुमिच्छतीत्येतद्रूपार्थज्ञानवत्या । अस्यामन्तर्भूतया नायिकायां प्रभवन्त्या । तादृशी तु धात्रेयिका सखी वा । अर्थं नायकपार्श्वगमनरूपम् । अनिर्वदन्त्या अन्यव्यपदेशिन्येत्यर्थः । ततो यथोक्तमिति द्यूतक्रीडनकेषु विवदमाना इति यथासंभवं पूर्वोक्तं योज्यमित्यर्थः ॥ ३२ ॥

नायिका से दूर रहने पर यदि अकेले प्रिया मिलन सम्भव न हो तो उसकी सहेली को माध्यम बना ले जो बिना बताये नायिका को नायक के घर ले जाये, फिर जैसा बताया जा चुका है उसी विधि से रति-निरत होना चाहिये ॥

स्वां वा परिचारिकामादावेव सखीत्वेनास्याः प्रणिदध्यात् ॥

स्वामिति सहायार्थमिति भावः ॥ ३३ ॥

अथवा अपनी परिचारिका को पहले से ही उसकी सखी बनाकर उसके पास छोड़ दे ॥ ३३ ॥

यज्ञे विवाहे यात्रायामुत्सवे व्यसने प्रेक्षणकव्यापृते जने तत्र तत्र च दृष्टेङ्गिताकारां परीक्षितभावामेकाकिनीमुपक्रमेत ॥ ३४ ॥

यज्ञ इति। यज्ञादयो लोकव्यग्रत्वहेतवः। तत्र तत्रेति—अन्यत्राप्यनुक्त इत्यर्थः। परीक्षितभावामिति—नेयं शुष्कप्रतिग्राहिणीव द्विधाभूतमानसा वा, किं स्वितरेति। उपक्रमेत गान्धर्वेण विधिनेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

यज्ञ, विवाह, यात्रा, उत्सव, विपत्ति आदि में लोग प्रायः व्यग्र हो जाते हैं, ऐसे अवसर पर प्रेमी अपनी प्रेमिका से उस हालत में गान्धर्व विवाह कर सकता है जब कि उसने प्रेमिका को अपने इशारों से पूर्ण परिचित करा दिया हो—उसकी परीक्षा ले चुका हो ॥ ३४ ॥

नहि दृष्टभावा योषितो देशे काले च प्रत्युज्यमाना व्यावर्तन्त इति वात्स्यायनः। इत्येकपुरुषाभियोगाः ॥ ३५ ॥

दृष्टभावा उपलब्धभावाः। दृष्टोऽभिप्रेते काले यज्ञादिकाले प्रदोषादौ चेति ॥ इत्येकपुरुषाभियोगा अष्टविंशं प्रकरणम् ॥ ३५ ॥

वात्स्यायन का सिद्धान्त है कि जिन स्त्रियों के भावों की परीक्षा अनेक बार हो चुकी है, ऐसी स्त्रियाँ यज्ञ आदि के समय इशारा पाकर नट नहीं सकतीं। यह एक पुरुष द्वारा किये गये उपायों का प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

यथा धनहीनत्वादियुक्तः कन्यामलभ्यत्वात्स्वयमेवानुरञ्जयेत् तत्र कन्यापि तथाविधा कैश्चिददास्यमाना स्वयमुपावर्तेत। तत्प्रयोज्यस्योपावर्तनमाह। उपावर्तनमभिमुखीकरणम्।

कथं न व्रियत इत्याह—

मन्दापदेशा गुणवत्यपि कन्या धनहीना कुलीनापि समानैरयाच्यमाना मातापितृवियुक्ता वा ज्ञातिकुलवर्तिनी वा प्राप्तयौवना पाणिग्रहणं स्वयमभीप्सेत ॥ ३६ ॥

मन्देति। मन्दापदेशा हीनाभिजना। गुणवत्यपि सा तैरदास्यमाना वा। धनहीना वा कुलीनापि। समानैस्तुल्याभिजनैर्धनिभिः। मातृपितृवियुक्ता वा अनाथत्वादयाच्यमाना। प्राप्तयौवनेति प्रत्येकं योज्यम्। स्वयमीप्सेत। तदानीं स्वयंवरस्याभ्यनुज्ञानात्। यथोक्तम्—'त्रीणि वर्षाण्युपासीत कुमार्यनुमता सती। ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥' इति॥ ३६॥

हीन कुल की होने पर भी कन्या यदि गुणवती हो, किन्तु उसके घरवाले उसका विवाह न कर रहे हों अथवा कुलीन होते हुये भी निर्धनता के कारण कुलीन धनवान उसकी सगाई से इनकार कर रहे हों या अभिजात्य-कुल में पैदा होते हुये भी माता-पिता-रहित हो तो ऐसी युवती को चाहिये कि वह स्वयं अपना विवाह कर ले॥ ३६॥

सदृशप्रतिपत्तावुपायमाह—

सा तु गुणवन्तं शक्तं सुदर्शनं बालप्रीत्याभियोजयेत्॥३७॥

सा त्विति। गुणवन्तं नायकगुणयुक्तम्। शक्तं युद्धादिषु। सुदर्शनं रूपवन्तम्। बालेति। बाल्ये क्रीडायां या प्रीतिस्तया प्रयोज्यकर्त्र्या स तथाभियुञ्जानः सिद्धयतीत्यर्थः॥ ३७॥

ऐसी युवती किसी ऐसे गुणवान्, शक्तिशाली, सुन्दर युवक से विवाह कर सकती है जो उसका बचपन का साथी हो॥ ३७॥

गुणान्तरमाह—

यं वा मन्येत मातापित्रोरसमीक्षया स्वयमप्ययमिन्द्रियदौर्बल्यान्मयि प्रवर्तिष्यत इति प्रियहितोपचारैरभीक्ष्णसंदर्शनेन च तमावर्जयेत्॥ ३८॥

यं वेति। असमीक्षयेति मातापितृभ्यां मम मार्गं गत्वा। इन्द्रियाणि नियन्तुमसमर्थत्वात् यमेवं मन्येत तमपि योजयेदिति संबन्धः। प्रियहितेति प्रियोपचारा एतदर्थं सुखं कुर्वन्ति। आवर्जनमभिमुखीकरणम्॥ ३८॥

वह युवती जिस युवक पर यह विश्वास करे कि वह इन्द्रिय दौर्बल्य के कारण अपने माता-पिता की परवाह किये बिना मुझ पर आसक्त हो जायेगा, उसे बार-बार अपने हाव-भाव दिखाकर और अन्य विविध उपायों से अपनी ओर आकृष्ट करे॥ ३८॥

माता चैनां सखीभिर्धात्रेयिकाभिश्च सह तदभिमुखीं कुर्यात्॥

माता चैनामिति। सा न जीवति चेत्कृतकमाता वा। सखीभिः सह लज्जापगमार्थम्। उपचारैर्बाह्यैराभ्यन्तरैश्चेति शेषः॥ ३९॥

उस युवती की माँ को भी चाहिये कि वह अपनी लड़की को उसकी सखियों के सहयोग से उस युवक की ओर अग्रसर करे ॥ ३९ ॥

तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

पुष्पगन्धताम्बूलहस्ताया विजने विकाले च तदुपस्थानम्। कलाकौशलप्रकाशने वा संवाहने शिरसः पीडने चौचित्यदर्शनम्। प्रयोज्यस्य सात्म्ययुक्ताः कथायोगाः बालायामुपक्रमेषु यथोक्तमाचरेत् ॥ ४० ॥

पुष्पेति। तदुपस्थानं नायकसमीपगमनम्। कौशलप्रकाशनार्थम्। औचित्यदर्शनमिति। सहसा न प्रतिजानीयात्। अनुवन्ध्यमानमनुकुर्यादित्यर्थः। प्रयोज्यस्य सात्म्ययुक्ताः—प्रयोज्यानुकूलाः। बालायां ये नायकस्योपक्रमा उक्तास्तेषु यथोक्तं समाचरेत् ॥ ४० ॥

उस युवती को चाहिये कि अभीष्ट युवक का सत्कार अकेले में और कुसमय में पान, फूल, गन्ध, माल्य से करे। कामशास्त्रीय ६४ कलाओं में किसी कला की दक्षता का प्रदर्शन करे। युवक की रुचि के अनुकूल बातें करे। पिछले अध्याय में बाला के विषय में जो उपाय बताये जा चुके हैं, उन उपायों को भी करे ॥ ४० ॥

न चैवान्तरापि पुरुषं स्वयमभियुञ्जीत। स्वयमभियोगिनी हि युवतिः सौभाग्यं जहातीत्याचार्याः ॥ ४१ ॥

अन्तरापीति। कामपरवशापि न स्वयमभियुञ्जीत। आचार्यग्रहणं पूजार्थम्। तन्मतस्याप्रतिषिद्धत्वात्। स चेदभियुञ्जीत प्रतिगृह्णीयात् ॥ ४१ ॥

युवती को चाहिये कि वह चाहे कितनी कामातुर हो किन्तु अपनी ओर से सम्भोग न शुरू करे। क्योंकि आचार्यों का कथन है कि स्वयमेव सम्भोगरत होनेवाली स्त्री अपने सौभाग्य को नष्ट कर देती है ॥ ४१ ॥

तत्प्रयुक्तानां त्वभियोगानामानुलोम्येन ग्रहणम् ॥ ४२ ॥

तत्प्रयुक्तानामिति बाह्यानामभियोगानाम्। आनुलोम्येन येन न विमुखीभवति ॥ ४२ ॥

और यदि प्रेमी सम्भोग की क्रिया का प्रयोग करता है तो युवती को चाहिये कि वह उस क्रिया को अनुकूलता से स्वीकार करे ॥ ४२ ॥

आन्तरमधिकृत्याह—

परिष्वक्ता च न विकृतिं भजेत्। श्लक्ष्णमाकारमजानतीव प्रतिगृह्णीयात्। वदनग्रहणे बलात्कारः ॥ ४३ ॥

परिष्वक्तेति । न विकृतिमिति । मा ज्ञासीन्नायको मामुद्विग्नामिति हेतोरित्यर्थः । आकारमिति नायकस्य भावसूचकमाकारं प्रतिगृह्णीयात् । न प्रत्याचक्षीत । तत्रापि श्लक्ष्णमस्फुटम् । क्रियाविशेषणमेतत् । अजानतीवेति धाष्टर्यपरिहारार्थम् । बलात्कार इति—तथा कार्यं यथा हठाद्वदनं गृह्णातीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

नायक के आलिङ्गन, चुम्बन, परिरम्भण करने पर अपने राग या जोश को प्रकट न होने दे । नायक के भावसूचक हाव-भाव को अनजान की तरह मुग्धा बनकर स्वीकार करे, किन्तु युवती ऐसा भी व्यवहार करे कि नायक उसका मुँह जबर्दस्ती चूम ले ॥ ४३ ॥

रतिभावनामभ्यर्थ्यमानायाः कृच्छ्राद्गुह्यसंस्पर्शनम् ॥ ४४ ॥

रतिभावनामिति । आत्मनो व्युत्पत्तिं नायकेन यदा साभ्यर्थ्यते स्वगुह्ये तत्पाणिन्यासेन तदा कृच्छ्रान्नायकगुह्यस्पर्शनम् ॥ ४४ ॥

यदि नायक (नायिका से रति की भावना से) नायिका को गोपनीय अङ्ग का स्पर्श करने के लिये प्रेरित करे तो नायिका को चाहिये कि वह बड़ी कठिनाई से उसके गोपनीय अङ्ग का स्पर्श करे ॥ ४४ ॥

तत्रापि विशेषमाह—

अभ्यर्थितापि नातिविवृता स्वयं स्यात् । अन्यत्रानिश्चयकालात् ॥ ४५ ॥

नातिविवृतेति । भावाङ्गप्रत्यङ्गदर्शनेनेत्यर्थः । तत्र हेतुः—अनिश्चयेति ॥४५॥

युवती को चाहिये कि वह युवक की जरा-सी प्रार्थना पर ही अपने अङ्गों को उघाड़ कर न दिखाने लगे । क्योंकि कोई निश्चय नहीं कि कब यह विवाह करेगा ॥ ४५ ॥

यदा तु मन्येतानुरक्तो मयि न व्यावर्तिष्यत इति तदैवैनमभियुञ्जानं बालभावमोक्षाय त्वरेत् ॥ ४६ ॥

यदा त्विति । न व्यावर्तिष्यते न मां त्यक्ष्यति । अभियुञ्जानं प्रच्छन्नप्रदेशे । बालभावमोक्षायेति—गान्धर्वविधिपूर्वकं कौमारहरणाय त्वरयेत् ॥ ४६ ॥

जब युवती को यह पूर्ण विश्वास हो जाये कि नायक मुझ पर भलीभाँति अनुरक्त है, मुझे किसी भी दशा में छोड़ नहीं सकता, उस समय एकान्त में नायक के प्रयत्न करने पर नायिका अपने कौमार्य को भङ्ग करे ॥ ४६ ॥

विमुक्तकन्याभावा च विश्वास्येषु प्रकाशयेत् । इति प्रयोज्यस्योपावर्तनम् ॥ ४७ ॥

विश्वास्येषु सखीधात्रेय्यादिषु । प्रकाशयेत् गान्धर्वेण विवाहेनाहमूढेति ॥

इति प्रयोज्यस्योपावर्तनमेकोनत्रिंशं प्रकरणम् ॥ ४७ ॥

यदा प्रयोज्यमुपावर्तमाना बहुभिरभियुज्यते तदा ॥

अभियोगतः कन्यायाः प्रतिपत्तिरुच्यते । अभियोगं दृष्ट्वा कन्याया अनुष्ठानमित्यर्थः ॥

जब युवती का कौमार्य भंग हो जाये तो वह अपनी विश्वस्त सखियों से बता दे । कन्या का अपने उपायों द्वारा मनचाहे प्रेमी को आकृष्ट करनेवाला यह प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

कन्याभियुज्यमाना तु यं मन्येताश्रयं सुखम् ।
अनुकूलं च वश्यं च तस्य कुर्यात्परिग्रहम् ॥ ४८ ॥

कन्येति । आश्रयमिति । आश्रीयत इति कृत्वा सुखमिति । बाह्यस्योपभोगसुखस्य आन्तरस्य च रतसुखस्य हेतुत्वात् । अनुकूलं तच्चित्तानुविधायिनं वश्यं वशं गतं यथोक्तकारिणं मन्येत, ततस्तस्य प्रतिग्रहं कुर्यात् स्वयंवरे तस्योत्तमत्वात्, सोऽपि तथैवाचरेदित्यर्थः ॥ ४८ ॥

इस विषय में कुछ श्लोक हैं—

युवती अपने उपायों से अनुकूल एवं वशीभूत पति स्वयं चुनने में स्वाधीन है ॥ ४८ ॥

अनपेक्ष्य गुणान्यत्र रूपमौचित्यमेव च ।
कुर्वीत धनलोभेन पतिं सापत्नकेष्वपि ॥ ४९ ॥

अनपेक्ष्येति । यस्मिन्स्वयंवरे गुणाननपेक्ष्य तदभावात् धनवानेव केवलम् । सापत्नकेष्वपि । न केवलमसापत्नकेषु । प्रायेण धनिनां बहुदारत्वात् ॥ ४९ ॥

यदि युवती को धन का ही लोभ हो तो रूप-औचित्य और गुणों की ओर ध्यान न देकर, सौतों के होते हुये भी धनी को अपना पति चुन ले ॥४९॥

तत्र युक्तगुणं वश्यं शक्तं बलवदर्थिनम् ।
उपायैरभियुञ्जानं कन्या न प्रतिलोभयेत् ॥ ५० ॥

तत्र स्वयं युक्तगुणं सगुणं शक्तं समर्थं बलवदर्थिनमेकान्ततोऽर्थिनं न प्रतिलोभयेत् अपाकुर्यात् ॥ ५० ॥

जो युवक गुणी हो, अपने वशवर्ती हो, हर बात में सामर्थ्य रखता हो, जिसके लिये अपना आकर्षण प्रबल हो—ऐसे व्यक्ति को अपना पति बनाने का लोभ युवती को न छोड़ना चाहिये ॥ ५० ॥

यस्तु धनवान्बहुपत्नीको गुणवानपि तमभियुञ्जानं प्रतिलोमयेदिति दर्शयन्नाह—

वरं वश्यो दरिद्रोऽपि निर्गुणोऽप्यात्मधारणः ।
गुणैर्युक्तोऽपि न त्वेवं बहुसाधारणः पतिः ॥ ५१ ॥

वरमिति आत्मधारणः—कुटुम्बमात्रधारकः । बहुसाधारणो बहूनामेकः । यस्तु धनवान् कृतपरिग्रहो गुणवान् वश्यः सन् प्रतिलोभयेदित्यर्थः ॥ ५१ ॥

जो तरुण गरीब हो, गुणहीन हो, फिर भी अपना पेट स्वयं पाल लेता हो और वश में रहनेवाला हो उससे ब्याह कर लेना अच्छा है; किन्तु गुणी होते हुये भी यदि व्यभिचारी हो तो वह अच्छा नहीं ॥ ५१ ॥

यस्तु न वश्यस्तत्र दोषमाह—

प्रायेण धनिनां दारा बहवो निरवग्रहाः ।
बाह्ये सत्युपभोगेऽपि निर्विस्रम्भा बहिःसुखाः ॥ ५२ ॥

प्रायेणेति। अत एव धनवान्बहून्दारान्प्रतिगृह्णाति। विशेषतस्ताश्च निरवग्रहा—निरंकुशाः । तत्र कारणम्—बाह्य इति । आसनाद्युपभोगेन बहिःसुखाः । निर्विस्रम्भा आन्तरेण रतारूयसुखेन वर्जिता इत्यर्थः ॥ ५२ ॥

धनियों के घर में बहुत-सी स्त्रियाँ रहती हैं किन्तु प्रायः वे निरंकुश हुआ करती हैं । क्योंकि उन्हें बाहरी सुख मिलते हुये भी भीतरी सुख नहीं मिल पाता ॥ ५२ ॥

नीचो यस्त्वभियुञ्जीत पुरुषः पलितोऽपि वा ।
विदेशगतिशीलश्च न स संयोगमर्हति ॥ ५३ ॥

नीचोऽधमजातिः पूर्वंगुणयुक्तोऽपि । पलितो वृद्धः । सदा प्रवासी ॥ ५३ ॥

जो निम्नवर्ग का व्यक्ति हो या बूढ़ा अथवा परदेश में रहनेवाला हो उससे विवाह न करना चाहिये ॥ ५३ ॥

यदृच्छयाभियुक्तो यो दम्भद्यूताधिकोऽपि वा ।
सपत्नीकश्च सापत्यो न स संयोगमर्हति ॥ ५४ ॥

यदृच्छयेति । स्वेच्छाभियोगशीलः । बलात्कारेणेति भावः । व्याजबहुलो दम्भद्यूतासक्तश्च । सपत्नीकः सापत्यश्च-परिणीतभार्यायुक्तस्तदपत्यवांश्च । एकतरवान्वा ॥ ५४ ॥

स्त्री की इच्छा के विरुद्ध जो व्यक्ति बलात्कार करता है, तथा जो बहानेबाज, कपटी और जुआरी होते हैं, जिसके घर में विवाहिता स्त्री और बाल-बच्चे हों—उससे विवाह न करे ॥ ५४ ॥

बह्वयस्तु तादृशोऽपि संयोगमर्हत्येवेत्याह—

गुणसाम्येऽभियोक्तृणामेको वरयिता वरः।
तत्राभियोक्तरि श्रैष्ठ्यमनुरागात्मको हि सः॥ ५५॥

गुणेति। यथोक्तगुणानां साम्ये। एको वर इति व्रियन्त इति वराः सर्व एवाभियोक्तारः। तेषां वर एको वरयिता वरणे साधुः। 'वर ईप्सायाम्'। साधुकारिणि तस्मिन्नभियोक्तरि तत्त्वाविशेषे श्रैष्ठ्यं श्रेष्ठता। तस्यानुरागात्मकत्वात्। इत्यभियोगतः कन्यायाः प्रतिपत्तिस्त्रिंशं प्रकरणम्॥ ५५॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां कन्यासम्प्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे एकपुरुषाभियोगा अभियोगतश्च कन्यायाः प्रतिपत्तिश्चतुर्थोऽध्यायः।

यदि कन्या को वरण करनेवाले समान गुणशील युक्त हों तो उनमें से कन्या उसी व्यक्ति को वरण करे जिससे वह अधिक प्रेम करती हो॥ ५५॥

पिछले अध्याय में प्रेमिका को प्राप्त करने के लिये साथियों की सहायता का उल्लेख किये जाने के बाद आचार्य उन युवकों-युवतियों को अभीष्ट सिद्धि का उपाय बताते हैं, जो असहायावस्था में हैं किन्तु विवाह सम्बन्ध करने के इच्छुक हैं। असहाय पुरुष कुल-शील सनाथ कन्या को किस प्रकार अपनी प्रेमिका बनाकर उसके साथ गान्धर्व विवाह करे तथा असहाय कन्या अपने से उच्च कुल, शीलसम्पन्न युवक को आकृष्ट कर उसे अपना पति चुने—इन्हीं उपायों का विस्तृत विवरण इस अध्याय का मुख्य विषय है। इस प्रकरण में ऐसे उपायों का उल्लेख किया गया है, जिन्हें अकेला आदमी कर सकता है। इसलिये इस प्रकरण का नाम एकपुरुषाभियोग रखा गया है।

वात्स्यायन ने एकाकी उपायों को दो तरह का बताया है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य उपायों का विवरण प्रस्तुत करते हुए सूत्रकार ने बताया है कि जब प्रेमी-प्रेमिका आपस में शतरञ्ज आदि खेल खेलते हों तो प्रेमी को चाहिए कि खेल के बीच में ही वह ऐसा विवाद उत्पन्न करे कि दोनों के बीच में वाग्युद्ध छिड़ जाय। तब युवक युवती का हाथ इस प्रकार पकड़ ले जिस प्रकार विवाह के अवसर पर वर वधू का पाणिग्रहण करता है। उसके इस ढंग से हाथ पकड़ने से युवती को यह बोध हो जायगा कि यह मेरे साथ गान्धर्व विवाह करना चाहता है। इसके अतिरिक्त युवक कभी उसे मिथुन चित्र

दिखाए, कभी अवसर के अनुकूल उसका आलिंगन करे, जलक्रीड़ा करते समय डुबकी लगाकर उसके अङ्गों का स्पर्शन, मर्दन करे, कभी अपने दिल के दर्द की अभिव्यक्ति करे। उत्सवों, गोष्ठियों में उसके पास बैठकर उसका भाव समझने के लिए धीरे-धीरे उसके पैरों का स्पर्श करे, फिर पैरों में अंगुलियाँ फँसाकर उन्हें धीरे से दबाए, जब स्त्री की ओर से कोई एतराज न हो तो पैर के ऊपर पैर रख दे, फिर पैरों के ऊपरी भाग पर हाथ फिराये, फिर क्रमशः उसकी जाँघों पर, नितम्ब पर, पेट-पीठ और स्तनों पर हाथ फिराये। नाखूनों को गड़ाए। जब युवक की इन सब हरकतों को युवती चुपचाप सहन करती रहे तो फिर नीचे-ऊपर सब जगह वह उसके शरीर पर बराबर हाथ फेरता रहे।

इन बाह्य उपायों की सिद्धि मिल जाने के बाद युवक को भीतरी और बाहरी दोनों उपायों को प्रयोग में लाना चाहिये। जहाँ कहीं युवती मिल जाय वहीं उससे छेड़खानी करना शुरू कर दे। कोई चीज उसे दे तो उसमें रति-भाव व्यक्त करने वाले निशान लगा दे। जब कहीं ऐसा मौका मिल जाय कि दोनों एकान्त में, अँधेरे में एक दूसरे से सट कर बैठे हों तो उसके नितम्ब, स्तनों पर इस ढङ्ग से चुटकी काटे कि वह बरदाश्त कर सके। एकान्त और अँधेरे में स्त्रियों को लज्जा नहीं रह जाती, इसलिए यह अवसर रति और संभोग के लिए बहुत उपयुक्त माना गया है। साथ ही कामशास्त्र का यह भी सिद्धान्त है कि रात में, एकान्त में स्त्रियों की कामवासना सहज ही जाग्रत हो जाती है। अधिक प्रयास करने की आवश्यकता नहीं रहती। एक जगह जहाँ कहीं भी नायक-नायिका सटकर बैठे हों वहाँ इशारों से ही अपने मनोभाव प्रकट करने चाहिए। मुख से निवेदन नहीं करना चाहिए। क्योंकि मुख से कहने पर नायिका शिर हिलाकर इनकार भी कर सकती है। यदि मुँह से कहने की आवश्यकता समझी जाय तो बहुत ही रहस्यमय ढङ्ग से, संक्षेप में इस तरह कहा जाय कि स्त्री उसे जानने के लिए उत्सुक हो जाय और जब स्त्री जान-बूझकर पूछे उस समय उसके हाव-भाव पर गौर करना चाहिए।

इस प्रकार युवती के मनोभावों को अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग उपायों द्वारा परीक्षा कर लेने के बाद नायक उसे किसी बहाने अपने घर बुलाए। सिर दर्द आदि का बहाना करके उससे सिर मलवाये और उसके हाथों के स्पर्श को दवा से बढ़कर कहकर उसके प्रति अपना प्रेम और विश्वास प्रकट करे। धीरे-धीरे उसे अधिक वशवर्ती बनाकर उससे देर तक गप्पें करते रहना, गोष्ठियों, बिहारों में उसके साथ जाकर तरह-तरह की चुहलबाजियाँ करना; लेकिन जहाँ तक हो सके अपने मुँह से गान्धर्व विवाह की बात प्रकट न होने देना। क्योंकि इस प्रकरण के विशेषज्ञ घोटकमुख का कहना है कि स्त्रियाँ अपने प्रेमी पर चाहे

जितना अधिक प्रेम करें किन्तु अधिकांश ऐसी होती हैं जो सहसा कष्ट, बार-बार की असफलताओं से ग्लानि या वैराग्य आदि प्रयत्नों से वशवर्ती नहीं होतीं, युवतियों को सोलहों आने अनुकूल बनाने में महती साधना, महान् प्रयत्न की आवश्यकता हुआ करती है। तरह-तरह के प्रयत्न करने के बाद जब युवक को यह पूर्ण विश्वास हो जाय कि उसकी प्रेमिका उसकी हर बात पर तैयार हो सकती है—सोलहों आने वशवर्तिनी है तब उसके साथ सम्भोग के लिए प्रस्तुत होना चाहिए।

इस प्रकार के प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिए वात्स्यायन ने सम्भोग का समुचित समय और अवसर बताते हुए कहा है कि प्रदोष का समय, रात में और अँधेरे में यदि युवती से सम्भोग की प्रार्थना की जाय तो वह इनकार नहीं कर सकती। क्योंकि वह ऐसा स्थान और समय चाहती है कि उसे कोई देखे नहीं। साथ ही ऐसे स्थान और समय में स्त्रियों के हृदय में राग उमड़ता है। कामवासनाएँ उभड़ उठती हैं। वह स्वयं सहवास के लिए लालायित हो उठती है। किन्तु अपने आप कुछ कहती नहीं। यदि ऐसे समय पर पुरुष स्त्री से सहवास करने लगे तो वह रोकती नहीं।

वात्स्यायन का मत है कि जिस तरह धनहीन, हीनकुल का युवक अपने से उच्चकुल या समान वर्ग की ऐसी लड़की से विवाह करना चाहता है जो उसे नहीं मिल सकती तो उसे स्वयं पिछले प्रकरण में बताये गए उपायों से उस लड़की को प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। उसी तरह ऐसी लड़की जो अनाथ हो या धनहीन माँ-बाप की बेटी हो और उसका विवाह मनोभिलषित व्यक्ति से हो सकना सम्भव न हो तो उस लड़की को भी अभीष्ट वर प्राप्त करने के लिए स्वय प्रयत्न करना चाहिए। कन्या के लिए भी बाह्य प्रयत्न और अन्तरङ्ग प्रयत्न बताए गए हैं। जब उसे वह व्यक्ति एकान्त में, अंधेरे में मिल जाए जिसके साथ लड़की गान्धर्व विवाह करना चाहती है, तो वह उसका ऐसा सत्कार करे जिसमें कामशास्त्र की ६४ कलाओं में से किसी एक कला का कौशल प्रकट हो। आकृष्ट नायक के अनुकूल ही बातें करे, उसकी हर बात का अनुमोदन करे। हर काम का अनुकरण करे, लेकिन उसके तनिक से कहने या इशारा मात्र से संभोग के लिए तैयार हो जाने की गलती कदापि न करे। अत्यधिक कामातुर होते हुए भी अपने आप संभोग के लिए कोई प्रयत्न न करे, कोई उतावली न दिखाए। वात्स्यायन कहता है कि स्वयं संभोग के लिए प्रयत्न करनेवाली स्त्री का सौभाग्य नष्ट हो जाता है। तात्पर्य यही है कि पुरुष उसे कुलटा, व्यभिचारिणी समझकर उसकी अवहेलना करने लगता है, उससे अपना चित्त हटा लेता है। हाँ, यदि नायक संभोग

की कोई क्रियाएँ करना चाहता है तो स्त्री उन क्रियाओं को अनुकूलता से स्वीकार कर ले। नहीं-नहीं का अधिक हठ न ठाने। संभोग से पूर्व जब नायक नायिका का आलिंगन करता हो, उस समय नायिका अधिक उत्तेजित और चंचल न बन कर नायक के भावों की परीक्षा करे। जैसे उसके भाव हों उसी ढंग से वह आचरण करे। उसके भावों का प्रत्याख्यान न करे। उस समय वह बिल्कुल अनजान, मुग्धा बन कर नायक की क्रियाओं को स्वीकार करती रहे, कोई एतराज न करे; लेकिन नायक जब मुँह चूमना चाहे तो उसमें थोड़ी आनाकानी जरूर करे—जिससे नायक बलात्कार चुम्बन कर सके।

ऐसी तरुणी को एक बात का ध्यान यह भी रखना चाहिए कि जब उसे यह पूरा विश्वास हो जाए कि मेरा प्रेमी हर कीमत चुकाकर मेरा प्रेम निभाएगा तभी उसके सामने अपने अंगों को खोले अन्यथा नहीं। दूसरी बात यह है कि धन के लोभ से ऐसे धनी से विवाह न करे जिसमें यौवन न हो और सौतें तमाम हों; परदेशी, बूढ़े, बलात्कारी, कपटी, जुआरी, शेखचिल्ली को पति न चुनकर अपने समान गुणशील वाले को ही चुने।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे कन्यासम्प्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे
एकपुरुषाभियोगा अभियोगतश्च कन्यायाः
प्रतिपत्तिश्चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

विवाहयोगप्रकरणम्

एवमनुरञ्जितां स्वयंवरप्रवृत्तां च गान्धर्वेण योजयेत् । विपरीतामासुरादिभिरिति विवाहयोगा उच्यन्ते । तत्र गान्धर्वेण प्रायशो दृश्यन्ते । तस्यास्तावत्सहायसाध्यविधिमाह—

प्राचुर्येण कन्याया विविक्तदर्शनस्यालाभे धात्रेयिकां प्रियहिताभ्यामुपगृह्योपसर्पेत् ॥ १ ॥

प्राचुर्येणेति । धात्रेयिकां पुरुषप्रवृत्तामित्यर्थात् । उपगृह्य प्रियहिताभ्यामुपसर्पेत् तस्याः समीपे निसृष्टार्थीं प्रेषयेत् ॥ १ ॥

यदि कन्या से एकान्त में देखा-देखी संभव न हो तो उसकी धाय का कोई उपकार करके उस पर सहानुभूति प्रकट कर उसे अपने अनुकूल बना ले ॥ १ ॥

सा चैनामविदिता नाम नायकस्य भूत्वा तद्गुणैरनुरञ्जयेत् । तस्याश्च रुच्यान्नायकगुणान्भूयिष्ठमुपवर्णयेत् ॥ २ ॥

सा चेति । सा उपसर्पिता नायकस्याविदितेव भूत्वा कृतकप्रयोगपरिहारार्थम् । तस्य—नायकस्य, गुणैः । तस्याश्चेति ॥ २ ॥

वह धाय नायक की अपरिचित-सी बन कर उस लड़की को उस नायक के गुणों पर अनुरक्त कर दे । इसके लिए वह धाय नायक के उन्हीं गुणों का बढ़ा-चढ़ाकर बखान करे जो नायिका को रुचिकर लगते हों ॥ २ ॥

अन्येषां वरयितॄणां दोषानभिप्रायविरुद्धान्प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥

अभिप्रायविरुद्धानिति यथा नेच्छति तानियं तथेत्यर्थः ॥ ३ ॥

उन अन्य नायकों के—जिनकी ओर लड़की का झुकाव हो—ऐसे दुर्गुणों की निन्दा करे जिन्हें नायिका नापसन्द करती हो ॥ ३ ॥

मातापित्रोश्च गुणानभिज्ञतां लुब्धतां च चपलतां च बान्धवानाम् ॥ ४ ॥

गुणानभिज्ञतां लुब्धतां चेति—अगुणज्ञौ तव पितरौ लुब्धौ च येन गुणवन्तमपहायान्यं धनिनं निर्गुणं गवेषयत इति ॥ ४ ॥

वह धात्री उस नायिका से यह भी कहे कि तुम्हारे माता-पिता और परिवारवाले नासमझ हैं, लोभी हैं—इसलिए गुणवान वर न ढूंढ कर धनी किन्तु गुणरहित वर ढूंढते हैं ॥ ४ ॥

याश्चान्या अपि समानजातीयाः कन्याः शकुन्तलाद्याः स्वबुद्ध्या भर्तारं प्राप्य संप्रयुक्ता मोदन्तेस्म ताश्चास्या निदर्शयेत् ॥ ५ ॥

नानुरूपोऽयं ममेति। स्वबुद्धयावधारणं, न पित्रोरिच्छया! तथा कर्तव्ये शकुन्तलादिकृताः कथाः कथयेत्। कौशिकः स्वतपोविघ्नार्थमिन्द्रसंप्रेषितामप्सरसं मेनकां दृष्ट्वा जातरागश्चकमे। सा च तद्वीर्यग्रहणात्तत्रैव कन्यां प्रसूय त्यक्त्वा चारण्ये दिवं जगाम। शकुन्तसंपातमध्यगतां च तां कन्यां कण्वर्षिः करुणयाश्रममानीय वर्धितवान्। यथार्थं च शकुन्तलेति नाम चक्रे। सा च कालेन प्राप्तयौवना मृगयाप्रसङ्गादागतं दुष्यन्तं राजानं दृष्ट्वा स्वबुद्धया पाणिं ग्राहितवती। आदिशब्दाद्राजदारिकाः कन्या निदर्शयेत् ॥ ५ ॥

उस कन्या की अभिरुचि तीव्र करने के लिए स्वयमेव अपना वर चुननेवाली उसकी जाति की कन्याओं तथा शकुन्तला आदि की प्राचीन कहानियाँ सुनाकर उसे अपने आप अपना पति चुनने के लिए उकसाये ॥ ५ ॥

महाकुलेषु सापत्नकैर्बाध्यमाना विद्विष्टाः दुःखिताः परित्यक्ताश्च दृश्यन्ते ॥ ६ ॥

महाकुलेष्विति। महाकुलेषु च लोभात्पित्रा दत्ता नियतं सापत्नकैर्बाध्यन्ते। ततश्च विद्विष्टाः परिजनस्य परित्यक्ताः सत्यो दुःखिता दृश्यन्त इति दर्शयेत् ॥ ६ ॥

धनाढ्य घराने की बहुओं के कष्टों का वर्णन करती हुई वह धाय उस नायिका से सौतों द्वारा सताये जाने, उभड़ते हुए कलह और द्वेषभाव तथा दुःखी दाम्पत्य जीवन के मार्मिक वर्णन करे ॥ ६ ॥

आयतिं चास्य वर्णयेत् ॥ ७ ॥

आयतिमुत्तरभाविनमर्थम्। भविष्यति चेति ॥ ७ ॥

जिस नायक के साथ उस नायिका का विवाह कराना चाहे उसके उज्ज्वल भविष्य का बखान वह धात्री करे ॥ ७ ॥

सुखमनुपहतमेकचारितायां नायकानुरागं च वर्णयेत् ॥ ८ ॥

एकचारितायामिति—एकपत्नीत्वे सुखमनुपहतं वर्णयेत्। सापत्न्यदुःखाभावात्। नायकानुरागं चेति ॥ ८ ॥

उसे कहे कि अनुरक्त पति की अकेली पत्नी बनने में बड़ा सुख मिलता है। इसीलिए कि सौतों का झमेला नहीं रहता है। साथ ही नायक के एकपत्नीव्रत वाले गुण और स्वभाव भी उससे बताये ॥ ८ ॥

समनोरथायाश्चास्या अपायं साध्वसं व्रीडां च हेतुभिरवच्छिन्द्यात् ॥ ९ ॥

समनोरथाया इति। अस्त्येवायमस्या मनोरथः किं तु दोषान्पश्यतीत्युत्प्रेक्ष्याह—अपायमिति। विनाशं कुतश्चित्। साध्वसं भयं गुरुजनात्, व्रीडां परिजनेषु हेतुभिरुपायैर्दर्शनैरपनयेत् ॥ ९ ॥

जब धात्री यह समझ ले कि नायिका उसके बताये हुए नायक की ओर आकृष्ट हो रही है, तो समुचित निमित्तों द्वारा वह उस नायिका के भय और शर्म को दूर करने का प्रयत्न करे ॥ ९ ॥

दूतीकल्पं च सकलमाचरेत् ॥ १० ॥

दूतीकल्पं च पारदारिके वक्ष्यमाणं प्रतारणकरणम् ॥ १० ॥

उस धात्री को चाहिए कि पारदारिक अधिकरण में बताये गए समस्त दूती कर्म को उस समय काम में लाए ॥ १० ॥

त्वामजानतीमिव नायको बलाद्ग्रहीष्यतीति तथा सुपरिगृहीतं स्यादिति योजयेत् ॥ ११ ॥

त्वामजानतीमिवेति। अजानतीमिव बलात्कारेण ग्रहीष्यति तदा न तव दोषः। तथेति तेन प्रकारेण सुगृहीतं स्यात् ॥ ११ ॥

उससे कहे कि नायक तुझे अपरिचिता की भाँति हर ले जाएगा तो लोग तुझे दोषी भी नहीं ठहराएंगे और तेरा मनोरथ भी पूरा हो जाएगा ॥ ११ ॥

प्रतिपन्नामभिप्रेतावकाशवर्तिनीं नायकः श्रोत्रियागारादग्निमानाय्य कुशानास्तीर्य यथास्मृति हुत्वा च त्रिः परिक्रमेत् ॥

प्रतिपन्नामिति। अभ्युपगतामेकान्तदेशवर्तिनीम्। श्रोत्रियेति। तत्राग्नेः संस्कृतत्वादित्यर्थः। यथास्मृति स्वगृह्योक्तविधिना। त्रिः परिक्रमेत् अग्निं भ्रमयेत् ॥ १२ ॥

इस तरह बहकायी नायिका जब पिता के घर से निकल जाए, किसी प्रकार का भय, आशंका न रह जाए तब किसी अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर से यज्ञाग्नि लाकर धर्मशास्त्र के अनुसार हवन कर के नायक-नायिका दोनों उस अग्नि की तीन परिक्रमा करें ॥ १२ ॥

ततो मातरि पितरि च प्रकाशयेत् ॥ १३ ॥

प्रकाशयेत् प्रणिधिना यथा नायकेनोढेति ॥ १३ ॥

भाँवर पड़ जाने के बाद फिर वे अपने-अपने माता-पिता को भी सूचित कर दें ॥ १३ ॥

अग्निसाक्षिका हि विवाहा न निवर्तन्त इत्याचार्यसमयः ॥

न निवर्तन्त इति नान्येनोह्यते इति दर्शयति। धर्मविवाहेष्वग्निसंनिधानं कार्यमिति ॥ १४ ॥

आचार्यों का कहना है कि अग्नि की साक्षी में किए गए विवाह अवैध नहीं हुआ करते हैं ॥ १४ ॥

दूषयित्वा चैनां शनैः स्वजने प्रकाशयेत् ॥ १५ ॥

दूषयित्वेति अभिगम्येत्यर्थः। नोद्वाहितमात्राम्। शनैः स्वजने प्रकाशयेत्, तस्या आत्मीकरणार्थम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार उस कन्या का कौमार्य भंग कर देने के बाद उसके और अपने परिवार वालों से सच्ची घटना बता दे ॥ १५ ॥

यथा पितरौ तथाविधामपि प्रयच्छत इति तदाह—

तद्बान्धवाश्च यथा कुलस्याघं परिहरन्तो दण्डभयाच्च तस्मा एवैनां दद्युस्तथा योजयेत् ॥ १६ ॥

तद्बान्धवा इति। नायिकाबान्धवाः। नायकोपगृहीतेत्यघं दोषं परिहरन्तो यदि तस्मै न प्रतिपाद्यते तदा कुलं दुष्यत इति। दण्डभयाच्चेति। एवं चानुष्ठीयमानं यदि राजा शृणुयात् तदा दण्डं पातयेत् तस्मै एव नायकायैव ॥ १६ ॥

अथवा जिससे नायिका के माता-पिता कुल-कलंक से भयभीत होकर उसी नायक को अपना जामाता स्वीकार कर लें—ऐसे उपाय करने चाहिए ॥ १६ ॥

अनन्तरं च प्रीत्युपग्रहेण रागेण तद्बान्धवान्प्रीणयेदिति १७

अनन्तरं चेति ॥ १७ ॥

जब इस प्रकार कूटनीति से वह लड़की उस नायक को मिल जाय तो प्रेम व्यवहार तथा सुन्दर उपहारों, उपकारों द्वारा नायिका के बन्धु-बान्धवों को वह राजी कर ले ॥ १७ ॥

गान्धर्वेण विवाहेन वा चेष्टेत ॥ १८ ॥

अथवा इस निकृष्ट कर्म की अपेक्षा गान्धर्व विवाह कर लेना उत्तम है ॥ १८ ॥

आन्तरस्थामधिकृत्याह—

अप्रतिपद्यमानायामन्तश्चारिणीमन्यां कुलप्रमदां पूर्वं संसृष्टां-

प्रीयमाणां चोपगृह्य तया सह विषह्यमवकाशमेनामन्यकार्यापदेशेनानाययेत् ॥ १९ ॥

अप्रतिपद्यमानायामिति स्वयं पाणिग्रहणमकुर्वत्याम्। अन्तश्चारिणीमन्यामित्यन्तरङ्गां कुलस्त्रियम्। पूर्वसंबद्धां पित्रोः सौजन्येन प्रीयमाणां नायकस्य। उपगृह्येति द्रव्येण स्वीकृत्य। विषह्यमिति गम्यम्। अन्यं कार्यमपदिश्यानाययेत्प्रणिधिना ॥१९॥

जो नायिका अपने आप नायक से विवाह करने में असमर्थ हो तो दोनों के बीच पड़नेवाली या नायिका के माता-पिता से घनिष्ठ स्नेह-संबंध रखनेवाली किसी कुलवधू को मध्यस्थ बनाकर, उसे धन का लोभ देकर, किसी बहाने गुप्तचरों द्वारा उस लड़की को अपने यहाँ बुलाए ॥ १९ ॥

ततः श्रोत्रियागारादग्निमिति समानं पूर्वेण ॥ २० ॥

समानं पूर्वेणेति। श्रोत्रियागारादित्यादि पूर्ववदित्यर्थ ॥ २० ॥

और फिर किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर से अग्नि लाकर दोनों अग्नि की साक्षी में विवाह कर लें ॥ २० ॥

आसन्ने च विवाहे मातरमस्यास्तदभिमतदोषैरनुशयं ग्राहयेत् ॥

यदि नायिका के माता-पिता किसी और के साथ विवाह निश्चित कर चुके हों और विवाह-समय नजदीक आ गया हो उस समय दूती को चाहिये कि निर्धारित वर के अनेक दोषों को नायिका की माँ से कहकर उसका मन, मस्तिष्क बिगाड़ दे और जब वह यह तय कर ले कि अब अपनी लड़की का विवाह वह उससे नहीं होने देगी तो दूती उस नायक के गुणों का बखान उससे करे जिसकी ओर से वह दलाली कर रही है।—इस तरह कुट्टिनी प्रयोगों से वह नायिका की माँ को उसी नायक से विवाह करने के लिये राजी कर ले ॥ २१ ॥

ततस्तदनुमतेन प्रातिवेश्याभवने निशि नायकमानाय्य श्रोत्रियागारादग्निमिति समानं पूर्वेण ॥ २२ ॥

तदनुमतेन मातुरभिप्रायेण। अनुशयादूर्ध्वम्। प्रातिवेश्याभवने इति। तस्या द्रव्येणोपगृहीतत्वात्। इति द्वितीयः ॥ २२ ॥

जब नायिका की माँ पहले से तय किए हुए वर से चित्त हटाकर दूती द्वारा बताए गये नायक से अपनी लड़की की शादी करने को तैयार हो जाए तो उसी की सलाह से पड़ोसिन के घर में अग्निहोत्री के यहाँ से आग मँगाकर, नायक को बुलाकर उसके साथ अपनी लड़की का विवाह चुपचाप करा दे ॥२२॥

भ्रातरमस्या वा समानवयसं वेश्यासु परस्त्रीषु वा प्रसक्तमसुकरेण साहाय्यदानेन प्रियोपग्रहैश्च सुदीर्घकालमनुरञ्जयेत् । अन्ते च स्वाभिप्रायं ग्राहयेत् ॥ २३ ॥

अस्या भ्रातरं तुल्यवयसमेकान्तप्रसक्तम् असुकरेण—कष्टसाध्येन दुःसाध्यस्त्रीसंपादनादिना । प्रियोपग्रहैरिति—सामदानैरन्यैर्वा । इत्यनुरञ्जनविधिः । स्वाभिप्रायमिति त्वद्भगिनीं परिणेतुमिच्छामि ॥ २३ ॥

यदि कोई नायक किसी वेश्या या परस्त्री पर आसक्त होकर उसे अपनी बना कर रखना चाहे तो उस नायिका के किसी ऐसे भाई को जो नायक की उम्र का ही हो, कोई सहायता देकर, उत्तम उपहार देकर बहुत दिनों तक उसे अपनी ओर आकृष्ट और अनुरक्त बनाए फिर उससे अपना अभिप्राय प्रकट कर दे ॥

प्रायेण हि युवानः समानशीलव्यसनवयसां वयस्यानामर्थे जीवितमपि त्यजन्ति । ततस्तेनैवान्यकार्यात्तामानाययेत् । विषह्यं सावकाशमिति समानं पूर्वेण ॥ २४ ॥

अन्यकार्य्यादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी । अन्यकार्यमुद्दिश्येत्यर्थः । तत्रापि नायिकामानाययेदिति तृतीयः ॥ २४ ॥

यह बात निश्चित है कि प्रायः तरुण लोग अपने समान स्वभाव, समान आयु के मित्रों के लिए जरूरत पड़ने पर प्राण तक न्यौछावर कर देते हैं । इस लिये उस नायिका के भाई को ही माध्यम बनाकर उसे किसी एकान्त जगह में बुलाकर अग्नि की साक्षी में विवाह कर ले ॥ २४ ॥

सुप्तप्रमत्तोपगमात्पैशाचः । तमधिकृत्याह—

अष्टमीचन्द्रिकादिषु च धात्रेयिका मदनीयमेनां पाययित्वा किंचिदात्मनः कार्यमुद्दिश्य नायकस्य विषह्यं देशमानयेत् । तत्रैनां मदात्संज्ञामप्रतिपद्यमानां दूषयित्वेति समानं पूर्वेण ॥२५॥

अष्टमीचन्द्रिकादिष्विति । अष्टमीचन्द्रिकादिषु तत्र दिवसमुपोष्य पूजापुरःसरं रात्रिजागरणमाचन्द्रोदयम् । अनन्तरं तां धात्रेयिका नायकप्रसक्ता मदनीयं सुरादिकं पाययित्वा । किंचिदात्मनः कार्यमिति । अंगुलीयकं विस्मृत्यागतास्मि तत्र गच्छेत्युपदिश्यानयेदित्यर्थः । तत्रेति विषह्यदेशे । संज्ञां चेतनाम् । दूषयित्वेति । दूषयित्वा चैनां शनैः स्वजनेषु प्रकाशयेत् । तद्वान्धवाश्चेत्यादिपूर्ववत् । इत्येकः प्रकारः ॥ २५ ॥

अष्टमी, चन्द्रिका आदि उत्सवों में धाय की लड़की यां सखी उस नायिका को मद्य जैसे मादक पान कराकर, अपने किसी काम के बहाने एकान्त स्थान में ले जाकर नायक द्वारा उसे दूषित करा दे फिर उसके बन्धु-बान्धवों में यह बात प्रकट कर दे ॥ २५ ॥

सुप्तां चैकचारिणीं धात्रेयिकां वारयित्वा संज्ञामप्रतिपद्यमानां दूषयित्वेति समानं पूर्वेण ॥ २६ ॥

सुप्तां चैकचारिणीमिति । अङ्कसुप्तेति द्वितीयः । अत्राग्न्याहरणादिकं नास्ति, अधर्मत्वादिति ॥ २६ ॥

सोयी हुई, अकेली कहीं जाती हुई, अथवा नशीली चीजें खिला कर बेहोश की हुई नायिका को दूषित करके फिर लोगों से प्रकट कर देना और फिर उसे अपनी बना लेना पैशाच विवाह है ॥ २६ ॥

प्रसह्याहरणाद्राक्षसमधिकृत्याह—

ग्रामान्तरमुद्यानं वा गच्छन्तीं विदित्वा सुसंभृतसहायो नायकस्तदा रक्षिणो वित्रास्य हत्वा वा कन्यामपहरेत् । इति विवाहयोगाः ॥ २७ ॥

ग्रामान्तरमिति । अस्माद्ग्रामादन्यग्रामम् । सुसंभृतसहाय इति सुसंनद्धबहुसहायः । रक्षिणः कन्यारक्षकान् । वित्रास्य, ते यथा त्यक्त्वा पलायन्ते । हत्वा वा प्रहारैः कन्यामपहरेत् । कृष्णवद्रुक्मिणीम् । अत्राप्यधर्मत्वान्नाग्न्याहरणादि । विवाहयोगा गान्धर्वादीनां विषयः ॥ २७ ॥

जब यह पता चल जाए कि नायिका दूसरे गाँव या बगीचे में जा रही है तो अपने सहायकों को साथ ले जाकर उसके रक्षकों को डरा धमका कर या मार कर उस लड़की का हरण कर लेना—राक्षस विवाह है। ये विवाह योग पूरे हुए ॥ २७ ॥

अष्टानां विवाहानां मध्ये किमपेक्षया कस्य प्राधान्यमित्याह—

पूर्वः पूर्वः प्रधानं स्याद्विवाहो धर्मतः स्थितेः ।
पूर्वाभावे ततः कार्यो यो य उत्तर उत्तरः ॥ २८ ॥

पूर्वः पूर्व इति । धर्मसंस्थितेरिति धर्मतो व्यवस्थानादित्यर्थः । तत्र पूर्वे धर्म्याश्चत्वारः । अस्मिन्दर्शने गान्धर्वाद्ब्राह्मादयः प्रधानम् । तत्रापि केचित्तरतमभेदेन पूर्वः पूर्व इत्याहुः । गान्धर्वो ह्यासुरात् षडिति । एतौ एकस्मिन्पक्षे द्वावपि धर्म्यौ । किंतु यथा पूर्वेण तथा परतः । यथा च गान्धर्वो न तथासुर इति । केचित् 'आसुरोऽपि

वैशाचात्तथाधर्मत्वात् । पैशाचोऽधर्म्योऽपि राक्षसात्प्रधानम् । राक्षसस्य साहसकर्मत्वात् । यो य उत्तर उत्तर इति अन्यगतया अन्यः' इत्याहुः ॥ २८ ॥

धार्मिक दृष्टि से विचार करने पर प्रथम विवाह विधि की अपेक्षा बाद के सभी विवाह उत्तरोत्तर निकृष्ट हैं ॥ २८ ॥

गान्धर्व एव प्रधानमित्याह—

व्यूढानां हि विवाहानामनुरागः फलं यतः ।
मध्यमोऽपि हि सद्योगो गान्धर्वस्तेन पूजितः ॥ २९ ॥

व्यूढानामिति कृतानामनुरागः फलम् । अन्यथानुरागाभावे निष्फलः स्यात् । मध्यमोऽपि हि षडित्येकस्मिन्पक्षे । सद्योग इति शोभनोऽनुरागात्मको योगोऽस्येति । तेन च सद्योगेन गान्धर्व इत्युच्यते ॥ २९ ॥

अनुराग प्राप्त करना ही विवाह का उद्देश्य है । बिना प्रेम के विवाह निष्फल होता है । इसलिए मध्यम होते हुए भी गान्धर्व विवाह उचित माना जाता है । इसमें प्रेम, अनुराग का सुन्दर योग रहता है ॥ २९ ॥

एवं च कृत्वास्य प्राधान्यमित्याह—

सुखत्वादबहुक्लेशादपि चावरणादिह ।
अनुरागात्मकत्वाच्च गान्धर्वः प्रवरो मतः ॥ ३० ॥

सुखत्वादिति सुखहेतुत्वात् । अबहुक्लेशात् प्रायेणेति । प्रायशो न यत्नसाध्य इत्यर्थः । अवरणात् वरणसंविधानाभावात् । इति विवाहयोगा एकत्रिंशं प्रकरणम् ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे विवाहयोगाः पञ्चमोऽध्यायः ।
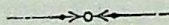
गान्धर्व विवाह सुखद, अल्पप्रयत्न, अल्पक्लेशसाध्य और विधि-विधानों के बखेड़ों से रहित प्रेमप्रधान होता है, इसीलिए श्रेष्ठ माना जाता है ॥ ३० ॥

ब्राह्म, आर्ष आदि चार दिव्य विवाहों का विवेचन पहले ही किया जा चुका है । उन विवाहों में वर या कन्या को स्वयं प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है । लेकिन जिन्हें उक्त दिव्य विवाहों से मनचाही कन्या या मनचाहा वर नहीं मिल सकता उनके लिए वात्स्यायन ने स्वयं अनुरक्त करने की चेष्टा करने के अनेक उपाय बताए हैं । आचार्य ने युवक और युवती को सुझाव दिया है कि इस स्थिति में उन्हें गान्धर्व विवाह कर लेना चाहिए । जो युवक मनचाही युवती को अनुरक्त न कर सके वह उसके माँ-बाप को

धन देकर आसुर विवाह द्वारा उसे प्राप्त करे। यदि धन देने पर भी वह युवती प्राप्त न हो सके तो वह युवक उस युवती का अपहरण करके उसके साथ विवाह कर ले। इस प्रकार के विवाह राक्षस और पैशाच कहलाते हैं।

ब्राह्म आदि दिव्य विवाह-विधि से मनचाही कन्या न प्राप्त होने पर कन्या की इच्छा से उसके साथ गान्धर्व विवाह कर लेना कामसूत्रकार उचित समझते हैं। लेकिन आसुर, राक्षस, पैशाच विधि से विवाह करना सर्वथा वर्ज्य समझते हैं। गान्धर्व विवाह में सर्वप्रथम कन्या को वशंगत करने की ज़रूरत पड़ती है, बिना उसके राजी हुए गान्धर्व विवाह संभव नहीं हो सकता। इस विवाहयोग प्रकरण में आचार्य ने सहायकों द्वारा कन्या को अपने अनुकूल बनाने का विधान बताया है। सहायकों में निःसृष्टार्था दूती को प्राथमिकता दी गई है। पारदारिक अधिकरण के चौथे अध्याय में निःसृष्टार्था दूती के लक्षण बताए गए हैं। निःसृष्टार्था दूती प्रेमी-प्रेमिकाओं का जोड़ा बैठाने में इतनी सिद्धहस्त होती है कि युवक को उससे सिर्फ इतना ही कहने की आवश्यकता होती है कि वह अमुक युवती को उसके अनुकूल बना दे, बस फिर वह दूती स्वतः उस काम को सिद्ध कर लेती है। नायक को कोई खटपट या चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। मालतीमाधव नाटक में आचार्या कामन्दकी ने भी निःसृष्टार्था दूती की प्रशंसा और उसकी सफलता पर भरोसा करते हुए कहा है—

निःसृष्टार्थदूतीकल्पः सूत्रयितव्यः।

अर्थात् निःसृष्टार्थ दूती के व्यापार का प्रस्ताव ही उचित है। इस प्रकार की दूती का काम युवती की धाय की लड़की अथवा उसकी अन्तरंग सहेली ही प्रायः किया करती है। इस प्रकार की दूती जब नायक के कहने पर युवती से बातें करती है तो नायक की सर्वथा अपरिचित बन जाती है। वह ऐसे वातावरण और प्रसंग की रचना करती है, नायिका की रुचि का ख़याल रख कर नायक की प्रशंसा इस ढंग से करती है कि नायिका भाँप न सके कि नायक से इसका परिचय है। साथ ही जब उस दूती को यह ज्ञात हो जाता है कि नायिका किसी और नायक को चाहती है तो उसके उस चहेते की निन्दा ऐसे कौशल से करती है कि नायिका चाहते हुए भी उससे घृणा करने लग जाय। कदाचित् उसे यह ज्ञात हो जाए कि जिस नायक के लिए दूती स्वयं दलाली कर रही है उसे नायिका भी दिल से चाहती है किन्तु उसके माता-पिता उस युवक को कतई नहीं पसन्द करते हैं, तब वह चतुर दूती अपने कौशल से नायिका के माँ-बाप की भी ऐसी बुराई करती है कि नायिका माता-पिता के विरुद्ध उस नायक के साथ गान्धर्व विवाह करने के लिए राज़ी हो जाती है।

मालतीमाधव नाटक में आचार्या कामन्दकी ने ठीक ऐसे ही अवसर पर मालती के पिता की निन्दा कितने कौशल से की है—

> गुणापेक्षाशून्यं कथमिदमुपक्रान्तमधुना,
> कुतोऽपत्यस्नेहः कुटिलनयनिष्णातमनसाम् ।
> इदं त्वैदंपर्यं यदुत नृपतेर्नर्मसचिवः
> सुतादानान्मित्रं भवतु स हि नो नन्दन इति ॥

यदि युवती के माँ-बाप किसी और के साथ अपनी कन्या का ब्याह करना चाहते हैं, तो निःसृष्टार्था दूती उस कन्या को शकुन्तला आदि का उदाहरण दे कर अपनी इच्छा से पति का चुनाव करने के लिए उकसाती है। वह कहती है कि विश्वामित्र ऋषि की तपस्या में विघ्न डालने के लिए इन्द्र ने जब मेनका अप्सरा को भेजा तो विश्वामित्र के संयोग से मेनका के एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसे वह उसी जंगल में छोड़ कर स्वर्ग चली गई। शकुन्त पक्षियों के बीच उस नवजात कन्या को देख कर दयालु ऋषि कण्व ने अपने आश्रम में ले आकर उसका नाम शकुन्तला रख दिया। ऋषि द्वारा पाली-पोसी गई शकुन्तला जब तरुणी हुई तो महाराज दुष्यन्त को देख कर उसने अपने पालक पिता से बिना पूछे उन्हें अपना पति चुन लिया। इस प्रकार की अन्यान्य कथाएँ सुना कर दूती उस युवती को माता-पिता से विरुद्ध बना कर गान्धर्व विवाह के लिए तैयार कर देती है।

दूतियों द्वारा इस प्रकार बहकायी जाने पर जब कन्या अपने चहेते के पास छिप कर पहुँच जाती है तब भी वात्स्यायन उसके विवाह की व्यवस्था देते हैं। वह धार्मिक विधि का उल्लंघन करने का समर्थन करके यह सुझाव देते हैं कि प्रेमी के घर पर ही शास्त्र विधि से गान्धर्व विवाह सम्पन्न होना चाहिए। अग्नि को साक्षी देकर विवाह करने का तात्पर्य यह भी है कि शासन और समाज दोनों निरस्त्र हो जाते हैं। माता-पिता और क़ानून कोई भी उस विवाह को अवैध घोषित नहीं कर सकता।

गान्धर्व विवाह का प्रचलन भारत में बहुत प्राचीन काल से है और इस विवाह की लोकप्रियता और वैधता सर्वत्र ख्यात थी। राजपुत्रियों के स्वयंवर गान्धर्व विवाह ही थे। स्वयंवर में कन्या जिसको वरमाला पहना देती थी वह उसका पति घोषित अवश्य हो जाता था लेकिन उसके बाद विधिवत् गृह्यसूत्र के आधार पर अग्नि को साक्षी बना कर विवाह संस्कार भी किया जाता था। नल-दमयन्ती, अज-इन्दुमती, राम-सीता, उदयन-वासवदत्ता, मालती-माधव आदि के विवाह इसी प्रकार सम्पन्न हुए थे।

वात्स्यायन का कहना है कि इस प्रकार का गान्धर्व विवाह हो जाने के

बाद विवाहिता के साथ जब संसर्ग हो जाए तो उसके माता-पिता को सूचित कर देना चाहिए, यही नहीं बल्कि उन्हें प्रसन्न करने के उपाय भी करने चाहिए। गान्धर्व विवाह कर लेने का तात्पर्य यह नहीं कि विवाहिता युवती का संबंध अपने परिवार और रिश्तेदारों से विच्छेद हो जाए। इसीलिए वात्स्यायन ने इस प्रकार के गान्धर्व विवाह को उत्तम माना है।

प्रथम कोटि के गान्धर्व विवाह का विवेचन करने के बाद आचार्य मध्यम कोटि के गान्धर्व विवाह की विवेचना करते हुए कहते हैं कि दूती द्वारा युवती का मन युवक की ओर आकृष्ट कर लेने पर यदि उसके माता-पिता बाधक हों तो दूती को चाहिए कि वह उसकी माँ को धन आदि देकर अनुकूल बना ले और उसकी राय से नायिका को किसी बहाने घर से बाहर ले जाकर नायक के साथ अग्नि को साक्षी दिला कर गान्धर्व विवाह करा दे।

तीसरे प्रकार के निकृष्ट गान्धर्व विवाह में लड़की के भाई को फाँसा जाता है। उसकी मनचाही मुरादें पूरी कर उसे अपने अनुकूल बना ले फिर नायक उससे स्पष्ट कहे कि मैं तेरी बहिन के साथ विवाह करना चाहता हूँ। तब उसके अनुमोदन से किसी बहाने उसकी बहिन को बुला कर गान्धर्व विवाह कर लिया जाता है।

उत्तम, मध्यम और निकृष्ट इन तीन प्रकार के गान्धर्व विवाहों को बतलाने के बाद पैशाच विवाह बतलाते हुए वात्स्यायन कहते हैं कि जब युवती सोती हो या उसे कोई नशा खिला पिला कर बेहोश करके उसके साथ सहवास कर उसका सतीत्व नष्ट कर दिया जाता है तब मजबूर हो कर वह पतित युवती उस खल नायक से विवाह कर लेती है अथवा सतीत्व भंग करने के बाद उसे बलात् पत्नी बना लिया जाता है—इसे पैशाच विवाह कहते हैं। कन्या को बहका कर उसका सतीत्व नष्ट करना और फिर उसे सबसे प्रकट कर देना भी पैशाच है। इस विवाह में अग्नि में होम आदि धार्मिक कृत्य न होने से यह अधर्म विवाह माना गया है। इस प्रकार का बलात्कार करने वालों को शास्त्रकारों ने पिशाच कह कर प्राणदण्ड का विधान बताया है—

योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति।
सकामां दूषयँस्तुल्यो न वधमाप्नुयान्नरः॥—मनुस्मृति

किसी कन्या का अपहरण कर उसका सतीत्व बिगाड़ना राक्षस विवाह है। यह भी अधार्मिक विवाह है क्योंकि इसमें अग्नि का आवाहन और हवन आदि कोई धार्मिक कृत्य नहीं हुआ करता है। वात्स्यायन ने राक्षस विवाह को पैशाच से अच्छा माना है क्योंकि इस विवाह में साहस कर्म प्रधान है। आचार्य की दृष्टि में यद्यपि गान्धर्व विवाह मध्यम कोटि का है फिर भी यह

प्रधान है। इसलिये कि विवाह का चरम परिणाम दाम्पत्य प्रेम ही है और गान्धर्व विवाह प्रारम्भ से ही प्रेम को माध्यम बनाता है।

वात्स्यायन इस विवाह पद्धति को सुन्दर योग कहते हैं। उनका मत है कि गान्धर्व विवाह सुख का हेतु है, इसमें कोई अधिक क्लेश नहीं है और आदि से अन्त तक अनुराग ही को माध्यम बनाता है। लेकिन धार्मिक दृष्टि से ब्राह्म, प्राजापत्य, दैवत और आर्ष ये चार प्रकार के विवाह धर्मसङ्गत और श्रेष्ठ हैं।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे कन्यासम्प्रयुक्तके तृतीये-ऽधिकरणे विवाहयोगाः पञ्चमोध्यायः॥
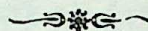
भार्याधिकारिकं चतुर्थमधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

एकचारिणीवृत्तप्रकरणम्

कन्या पुरुषेण संप्रवृत्ता तया पुंसि कथं वर्तितव्यमित्यतो भार्याधिकारिकमुच्यते। तच कन्यासंप्रयुक्तकशेषभूतम्। अन्यथा विशेषाधिकाननुष्ठानात्संयुक्ताप्यसंप्रयुक्तकैव स्यात्।

भार्या च द्विविधा—एकचारिणी सपत्निका च। तत्र प्राधान्येनैकचारिणीवृत्तमुच्यते—

भार्यैकचारिणी गूढविश्रम्भा देववत्पतिमानुकूल्येन वर्तेत ॥

भार्येति। गूढविश्रम्भा। इतरस्याः कपटव्यवहारः। संभावितत्वात्। 'भर्ता तु देवता स्त्रीणाम्' इति न्यायात्। आनुकूल्येन चित्तानुविधानेनैव। वर्तेतेत्यन्तर्भावितोऽर्थः। शरीरस्थितिविषयमेतत् ॥ १ ॥

भार्या दो प्रकार की होती है—१ एकचारिणी (अकेली) २ सपत्निका (सौतों वाली)। इन दोनों में पहले प्रधान भार्या एकचारिणी का आचरण बतलाया जाता है—

पतिव्रता भार्या वही है जो पति की एकान्त विश्वासपात्र बनकर उसे अपना हृदय-देवता मान कर उसकी चित्तानुगामिनी होती है ॥ १ ॥

वृत्तं सूचयति—

तन्मतेन कुटुम्बचिन्तामात्मनि संनिवेशयेत् ॥ २ ॥

तन्मतेनेति यदा तु नायकेनानुज्ञाता। कुटुम्बचिन्तां गृहचिन्ताम्। बाह्यवस्तुविषयमेतत्। आत्मनि संनिवेशयेत्—आत्माधीनां कुर्यात्। यथायोगं योज्यम् ॥ २ ॥

अब एकचारिणी भार्या के आचरण का वर्णन किया जाता है—

पति की अनुमति से गृह–प्रबन्ध का भार अपने ऊपर ले ले ॥ २ ॥

तत्र गृहप्रतिबद्धत्वाद् वृत्तस्य चिन्तामाह—

वेश्म च शुचि सुसंमृष्टस्थानं विरचितविविधकुसुमं श्लक्ष्णभूमितलं हृद्यदर्शनं त्रिषवणाचरितबलिकर्म पूजितदेवतायतनं कुर्यात् ॥ ३ ॥

वेश्म चेति। कुर्यादित्यनेन संबन्धः। सुसंमृष्टं सुशोधितम्। स्थानेषु विरचितानि विप्रकीर्णानि विविधानि कुसुमानि यस्य। श्लक्ष्णभूमितलमिति मसृणभूतलम्। हृद्यं हृदयप्रियं दर्शनं यस्य। त्रिषवणं त्रिसंध्यमाचरितं कारितं बलिकर्म यत्र। देवतायतनं देवगृहम्। तत्पूजितं यस्मिन्॥ ३॥

जिन घरेलू व्यवहारों से वह बँधी रहती है, उसका वर्णन करते हैं—

झाड़, पोंछकर घर को स्वच्छ और पवित्र रखे, उपयुक्त स्थानों पर सुगंधित फूल बिखेर कर उन्हें सजाये। आँगन को दर्शनीय और सुकोमल बनाये। प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल तीनों समय में देवकर्म किये जायँ। घर के अन्दर के देवमन्दिर में पूजा का प्रबन्ध ठीक समय पर हो॥ ३॥

न ह्यतोऽन्यद्गृहस्थानां चित्तग्राहकमस्तीति गोनर्दीयः॥

अतोऽन्यदिति–अत्रोपवर्णितवेश्मनः। चित्तग्राहकं मनोहारि। गोनर्दीय इति पूजार्थम्। अधिकरणेऽधिकृतत्वात्॥ ४॥

आचार्य गोनर्दीय का कहना है कि इससे बढ़कर और कुछ नहीं है जो गृहस्थों के चित्त के लिये मनोहारि हो॥ ४॥

तत्र वृत्तद्वयं दर्शयन्नाह—

गुरुषु भृत्यवर्गेषु नायकभगिनीषु तत्पतिषु च यथार्हं प्रतिपत्तिः॥ ५॥

गुरुष्विति श्वशुरादिषु। नायकभगिनीषु ननान्दृषु। तत्पतिषु ननान्दृपतिषु। यथार्हं प्रतिपत्तिरिति यथा यस्यां प्रतिपत्तिः। वाक्कायाभ्यामनुष्ठानात्॥ ५॥

दो प्रकार के आचरणों का उल्लेख करते हैं—

सास-ससुर, ननद-नन्दोई और नौकर-चाकर के साथ यथायोग्य व्यवहार करे॥ ५॥

परिपूतेषु च हरितशाकवप्रानिक्षुस्तम्बाञ्जीरकसर्षपाजमोदशतपुष्पातमालगुल्मांश्च कारयेत्॥ ६॥

परिपूतेषु चेति पवित्रेषु। हरितं धान्याकार्द्रकादि। शाकं पालङ्क्यादि च। एषां वप्रान्केदारान्। इक्षुस्तम्बानिक्षुविटपान्। जीरकादीञ्शतपुष्पापर्यन्तान्कारयेत्। तत्राजमोदोऽनेनैव नाम्ना प्रतीतः। तमालगुल्मांस्तमालविटपान्॥ ६॥

नित्य उपयोग में आने वाले साग और सब्जियों की क्यारियाँ साफ-सुथरी जगह पर बनाये। तथा ईख, जीरा, सरसों, अजमोदा, सौंफ और तमाल के पौधों को भी लगा दे॥ ६॥

कुब्जकामलकमल्लिकाजातीकुरण्टकनवमालिकातगरनन्द्यावर्तजपागुल्मानन्यांश्च बहुपुष्पान्बालकोशीरकपातालिकांश्च वृक्षवाटिकायां च स्थण्डिलानि मनोज्ञानि कारयेत् ॥ ७ ॥

तत्र कुब्जकादीनां गुल्मान् । तगरः पिण्डीतगरः । जपा ओड्रपुष्पम् । बहुपुष्पा ये निर्भरं पुष्प्यन्ति । बालकोशीरयोः पातालिका केदारः । स्थण्डिलान्यवपदिकानि ॥ ७ ॥

गुलाबबास, मोतिया, चमेली, नेवारी, वासन्ती, तगर, कदम्ब, जपाकुसुम के पौधे तथा अन्यान्य फूलों के गाछ और नेत्रबाला, खश, पातालिका के वृक्ष गृह-वाटिका में लगाकर चलने के लिये सुन्दर पगडण्डियाँ भी बनाये ॥ ७ ॥

मध्ये कूपं वापीं दीर्घिकां वा खानयेत् ॥ ८ ॥

वापीं समचतुरस्रां पुष्करिणीम् , दीर्घिकामायतचतुरस्रां खानयेत् । वास्तुवशात् ॥ ८ ॥

और गृह-वाटिका के बीच में कुआँ, बावड़ी या लम्बी चौकोर दीर्घिका का निर्माण कराये ॥ ८ ॥

भिक्षुकीश्रमणाक्षपणाकुलटाकुहकेक्षणिकामूलकारिकाभिर्न संसृज्येत ॥ ९ ॥

भिक्षुकी भिक्षणशीला । श्रमणा क्षपणा प्रव्रजिता रक्तपट्टिका च । कुलटा प्रच्छन्नं खण्डितचारित्रा । कुहका कौतु [क] कारिका । ईक्षणिका विप्रश्निका । मूलकारिका वशीकरणेन मूलेन या कर्म करोति तां (तया) च न संसृज्येत, भर्तुर्विकल्पहेतुत्वात् ॥ ९ ॥

भिखारिनों, बौद्ध और जैन संन्यासिनियों, नाच-गान-तमाशा दिखाने वाली कुलटाओं, सगुन धराने वाली, व्यभिचारिणी और जादू-टौना करने वाली स्त्रियों से सम्पर्क न रखे ॥ ९ ॥

भोजने च रुचितमिदमस्मै द्वेष्यमिदं पथ्यमिदमपथ्यमिदमिति च विन्द्यात् ॥ १० ॥

भोजने चेति । भोजनकाले रुचिता [दी] नि विन्द्यात् ॥ १० ॥

पति की रुचि और उसके पथ्यापथ्य का ध्यान रखते हुये भोजन का निर्माण कराये ॥ १० ॥

स्वरं बहिरुपश्रुत्य भवनमागच्छतः किं कृत्यमिति ब्रुवती सज्जा भवनमध्ये तिष्ठेत् ॥ ११ ॥

किं कृत्यमिति। आदिश्यमानकार्यस्यानुष्ठानबुद्धया। सज्जा सावधाना। भवनमध्येऽङ्गणके ॥ ११ ॥

बाहर से घर के भीतर आते हुये पति की आवाज सुनते ही 'क्या काम है'—ऐसा मनमें सोचती हुई कार्य सम्पादन के लिये आँगन में आकर प्रस्तुत हो जाये ॥ ११ ॥

परिचारिकामपनुद्य स्वयं पादौ प्रक्षालयेत् ॥ १२ ॥

परिचारिकामिति। पादप्रक्षालनोद्यतामपनुद्यापास्य ॥ १२ ॥

स्वामी के पैर धोने के लिये प्रस्तुत नौकरानी को हटाकर पत्नी स्वयं अपने पति के पैरों को धुलाये ॥ १२ ॥

नायकस्य च न विमुक्तभूषणं विजने संदर्शने तिष्ठेत् ॥१३॥

संदर्शन इत्यग्रतो न तिष्ठेत्। कृतशरीरसंस्कारामदृष्ट्वा वैराग्यमपि स्यात् ॥१३॥

एकान्त में पति के सामने अलंकारविहीन होकर न आये ॥ १३ ॥

अतिव्ययमसद्व्ययं वा कुर्वाणं रहसि बोधयेत् ॥ १४ ॥

अतिव्ययमुचितव्ययादधिकम्। असद्व्ययं यदनर्थिजने प्रतिपाद्यते। रहसि बोधयेत्। लोकमध्ये हि लज्जित एव स्यात् ॥ १४ ॥

पति के अधिक अथवा नाजायज खर्च करने पर उसे एकान्त में समझाये ॥

आवाहे विवाहे यज्ञे गमनं सखीभिः सह गोष्ठीं देवताभिगमनमित्यनुज्ञाता कुर्यात् ॥ १५ ॥

आवाहे वरगृहे। विवाहे कन्यागृहे। गोष्ठीं संभूय पानभोजनम्। देवताभिगमनं द्रष्टुमनुज्ञाता कुर्यात्। अन्यथा स्वैरिणीत्याशङ्कयेत ॥ १५ ॥

जिसका विवाह हो रहा हो ऐसे वर के घर अथवा कन्या के घर, सखियों के साथ खान-पान गोष्ठी या देवदर्शन के लिये यदि जाना हो तो पति से पूछ कर ॥ १५ ॥

सर्वक्रीडासु च तदानुलोम्येन प्रवृत्तिः ॥ १६ ॥

सर्वक्रीडासु चेति यक्षरात्र्यादिषु लोके प्रवृत्तासु तच्चित्तानुविधानेन प्रवृत्तिः ॥

पति की इच्छा के अनुकूल ही खेलों में भाग ले ॥ १६ ॥

पश्चात्संवेशनं पूर्वमुत्थानमनवबोधनं च सुप्तस्य ॥ १७ ॥

पश्चात्संवेशनं शयितस्य नायकस्य। पूर्वमुत्थानमनुत्थितान्नायकात्। अहनि यावन्न प्रतिबुध्येत ॥ १७ ॥

पति के सो जाने पर पत्नी को सोना चाहिये और उसके जागने से पहले जागना चाहिये ॥ १७ ॥

महानसं च सुगुप्तं स्याद्दर्शनीयं च ॥ १८ ॥

महानसं सुगुप्तं स्यात्। यथान्य उपरिको न विशति। दर्शनीयं चान्धकाराभावात् ॥ १८ ॥

रसोई घर साफ सुथरा, सजा हुआ हो, ऐसी जगह पर हो जहाँ बाहरी आदमी की नजर न जा सके ॥ १८ ॥

नायकापचारेषु किंचित्कलुषिता नात्यर्थं निर्वदेत् ॥ १९ ॥

नायकापचारेष्विति नायकापराधेषु। किंचित्कलुषिता धीरोदात्तत्वख्यापनार्थम्। निर्वदेत् पुनर्मा कार्षीरिति। तत्रापि नात्यर्थं मा भूद्वैलक्ष्यमस्येति ॥ १९ ॥

पति द्वारा कोई विरुद्ध आचरण किये जाने पर बहुत थोड़ी नाराजगी दिखाते हुये धीरोदत्त बनकर उसे भविष्य में ऐसा न करने की मीठी चेतावनी दे ॥

साधिक्षेपवचनं त्वेनं मित्रजनमध्यस्थमेकाकिनं वाप्युपालभेत। न च मूलकारिका स्यात् ॥ २० ॥

मित्रजनमध्यस्थं यदि कार्यवशात्साधिक्षेपवचनमुपालभेत। न च मूलकारिका स्यात् ॥ २० ॥

प्रयोजनवश यदि पति को उलाहना देना हो तो उसे अकेले या उसके मित्रों के बीच दे, लेकिन जादू-टोना के द्वारा उसे वशीभूत करने की चेष्टा न करे ॥ २० ॥

सत्स्वप्यपचारेषु युक्तिमाह—

नह्यतोऽन्यदप्रत्ययकारणमस्तीति गोनर्दीयः ॥ २१ ॥

अत इति मूलकर्मणः। अप्रत्ययकारणमविश्वासकारणम्। गोनर्दीयमतमनुमतम्। अप्रतिषिद्धत्वात् ॥ २१ ॥

पति-पत्नी के बीच परस्पर अविश्वास उत्पन्न कराने वाला यही मूल कारण है, ऐसा गोनर्दीय आचार्य का मत है ॥ २१ ॥

दुर्व्याहृतं दुर्निरीक्षितमन्यतो मन्त्रणं द्वारदेशावस्थानं निरीक्षणं वा निष्कुटेषु मन्त्रणं विविक्तेषु चिरमवस्थानमिति वर्जयेत् ॥ २२ ॥

दुर्व्याहृतं दुर्मन्त्रितम्। दुर्निरीक्षितमस्निग्धवीक्षणम्। अन्यतो मन्त्रणं तिर्यङ्मुखं कृत्वा भाषणम्। एतत्त्रितयं वैराग्यजननम्। द्वारदेशावस्थानं गृहद्वारस्थितिर्निरीक्षणं च तदुभयमयत्नसाध्यसूचकम्। निष्कुटेष्विति गृहवाटिकायां निर्गत्य कयाचित्सह मन्त्रणम्। विविक्तेषु निर्जनेषु गृहप्रदेशेषु चिरमवस्थानमस्निग्धताजनकं भवेत् ॥ २२ ॥

दुर्वाक्य बोलना, आँखें तरेर कर देखना, मुँह घुमाकर बात करना, दरवाजे पर खड़ी रहकर देखते रहना, चुपके से घर की वाटिका में जाकर किसी से सलाह करना, एकान्त में देर तक खड़े रहना—ये बुरी आदतें हैं, साध्वी पत्नी को इनसे दूर रहना चाहिये ॥ २२ ॥

स्वेददन्तपङ्कदुर्गन्धांश्च बुध्येतेति विरागकारणम् ॥ २३ ॥

स्वेदादीन्बुध्येतापनयनार्थम् । दन्तपङ्को दन्तमलः । विरागकारणमिति वैराग्यजनकं भवेद्भर्तुः ॥ २३ ॥

यदि पसीने में बदबू आती हो, दाँतों में मैल जमकर दुर्गन्ध पैदा करता हो तो इन्हें तत्काल दूर कर देना चाहिये, क्योंकि इनसे पति को अरुचि हो जाती है ॥ २३ ॥

बहुभूषणं विविधकुसुमानुलेपनं विविधाङ्गरागसमुज्ज्वलं वास इत्याभिगामिको वेषः ॥ २४ ॥

नानावर्णकालवशाद्यद्यद्विराजते वर्णतस्तत्तदुपादेयमिति । आभिगामिको नायकाभिगमनप्रयोजनः । तदा हि बहुभूषणादिभिः कालौपयिकेन च रक्तवाससा प्रसाधिता मनोहरेति ॥ २४ ॥

जब पति के पास जाने की इच्छा हो तो अनेक प्रकार के आभूषण, विविध प्रकार के सुगन्धित लेप और अंगराग धारण कर तथा चमकते हुए धवल वस्त्र पहन कर जाना चाहिए ॥ २४ ॥

प्रतनुश्लक्ष्णाल्पदुकूलता परिमितमाभरणं सुगन्धिता नात्युल्वणमनुलेपनम् । तथा शुक्लान्यन्यानि पुष्पाणीति वैहारिको वेषः ॥ २५ ॥

प्रतनु श्लक्ष्णमल्पं सूक्ष्मं शोभते वस्त्रम् । परिमितं कर्णयोर्ग्रीवायां च । नात्युद्धतं वर्णविन्यासाभ्यां चेति वैहारिको, यात्राक्रीडाविहारप्रयोगाः ॥ २५ ॥

और गोष्ठी-विहार के लिए जाना हो तो हल्का, पतला और चिकना परिधान हो । केवल कान और गले में आभूषण पहने । बालों में सफेद फूल गुँथे हों और चन्दन आदि का लेप बहुत हल्का रहे ॥ २५ ॥

नायकस्य व्रतमुपवासं च स्वयमपि करणेनानुवर्तेत । वारितायां च नाहमत्र निर्बन्धनीयेति तद्वचसो निवर्तनम् ॥२६॥

व्रतं नियमं स्वयमनुकरणेनानुवर्तेत भक्तिख्यापनार्थम् । वारितायां नायकेन

व्रतोपवासाभ्याम् । नाहमत्र निर्बन्धनीया निषेवनीयेति वाक्येन नायकवचसो निवर्तनं भक्तेर्नाख्यार्थम् ॥ २६ ॥

पति भक्ति प्रकट करनेके लिए पति की भाँति व्रत-नियम पत्नी को भी करना चाहिए। यदि पति व्रत, उपवास करने को मना करे तो अपनी पति-भक्ति प्रदर्शित करते हुए उसे कहना चाहिए कि मैं कैसे मान सकती हूँ जब आपकी अनुगामिनी हूँ ॥ २६ ॥

मृद्विदलकाष्ठचर्मलोहभाण्डानां च काले समर्घग्रहणम् ॥

मृद्भाण्डं घटादि । विदलभाण्डं पिटकादि । काष्ठभाण्डं पीठखट्वादि । लोह-भाण्डं ताम्रादिमयम् । काल इत्युपयोगकाले । तत्रापि समर्घं प्राप्यते ॥ २७ ॥

मिट्टी के बर्तन, बाँस की दोहरी, पिटारी, पीढ़ा, चारपाई, तखत आदि लकड़ी की चीजें और लोहे के तवा, करछुली, चिमटा, कड़ाही आदि बरतन जब भी सस्ते मिलें, खरीद कर रख ले ॥ २७ ॥

तथा लवणस्नेहयोश्च गन्धद्रव्यकटुकभाण्डौषधानां च दुर्लभानां भवनेषु प्रच्छन्नं निधानम् ॥ २८ ॥

लवणं सैन्धवादि । स्नेहा घृततैलवसामज्जानः । गन्धद्रव्यं तगरादि । कटुकं तुम्ब्यादि । औषधं द्विपञ्चमूलादि । दुर्लभा ये न तत्रत्याः । अपि तु दुःखेन लभ्यन्ते । प्रच्छन्नं निधानं यत्र तानि भवन्ति, न विनश्यन्ति वा ॥ २८ ॥

सेंधा नमक, साँभर नमक, घी, तेल आदि रसपदार्थ, तगर, अछरीला, दारुहल्दी आदि सुगन्धित वस्तुएँ, लौकी की तुम्बी आदि कड़वी चीजें, द्विमूल, पंचमूल, दशमूल आदि दवाइयाँ तथा जो वस्तुएँ कठिनाई से मिलने वाली हों या जो दुर्लभ हों उन्हें संचित करके वर्तनों में भरकर छिपा कर रख दे ॥ २८ ॥

मूलकालुकपालङ्की-दमनकाम्रातकैर्वारुकत्रपुसवार्ताककूष्माण्डालाबुसूरणशुकनासास्वयंगुप्तातिलपर्णिकाग्निमन्थलशुनपलाण्डु-प्रभृतीनां सर्वौषधीनां च बीजग्रहणं काले वापश्च ॥ २९ ॥

मूलकादीनां च बीजग्रहणमिति । एर्वारुकः कर्कटिका । अलाबुस्तुम्बी । सूरणः कन्दः । शुकनासा सर्वतोभद्रा । स्वयंगुप्ता कपिकच्छूः । तिलपर्णिका काश्मरी । अग्निमन्थोऽनेनैव नाम्ना प्रथितः । पलाण्डुर्लशुनाकारो लोहितः ॥ २९ ॥

मूली, आलू, पालकी, दौना, आमड़ा, ककड़ी, मरसा, बैगन, कोंहड़ा, लौकी, सूरन, सोनपाठा, केवांच, खँभारी, अरणी, लहसुन, प्याज और औषधियों के बीज सँभाल कर रखे और यथावसर उन्हें बोये ॥ २९ ॥

स्वस्य च सारस्य परेभ्यो नाख्यानं भर्तृमन्त्रितस्य च ॥ ३० ॥

सारस्य द्रव्यस्य परेभ्यो नाख्यानं 'धनायुषी गुप्ततमे कार्ये' इति वचनात्। भर्तृमन्त्रितस्य च नाख्यानं मा ज्ञासीद्भिन्नरहस्येति ॥ ३० ॥

अपनी पूंजी को और पति द्वारा बताई गई गुप्त बात को कभी किसी से नहीं बताना चाहिए ॥ ३० ॥

समानाश्च स्त्रियः कौशलेनोज्ज्वलतया पाकेन मानेन तथोपचारैरतिशयीत ॥ ३१ ॥

आत्मनोऽधिकत्वख्यापनार्थम्। मानेन मनस्वितया। उपचारैर्भर्तरि क्रियमाणैः ॥ ३१ ॥

पत्नी को चाहिए कि अपनी बराबर की उम्र और हैसियत की स्त्रियों से अपनी कुशलता, पवित्रता, विविध व्यंजन बनाने की दक्षता, स्वाभिमान और अन्य व्यवहारों से आगे बढ़ जाए ॥ ३१ ॥

सांवत्सरिकमायं संख्याय तदनुरूपं व्ययं कुर्यात् ॥ ३२ ॥

तदनुरूपम् आयानुरूपं कालयापनार्थम् ॥ ३२ ॥

साल भर की अपनी आमदनी का बजट बनाकर उसी के अनुसार खर्च करे ॥ ३२ ॥

भोजनावशिष्टाद्गोरसाद्घृतकरणम् तथा तैलगुडयोः। कर्पासस्य च सूत्रकर्तनम् सूत्रस्य वानम्। शिक्यरज्जुपाशवल्कलसंग्रहणम्। कुट्टनकण्डनावेक्षणम्। आमचामण्डतुषकणकुट्यङ्गाराणामुपयोजनम्। भृत्यवेतनभरणज्ञानम्। कृषिपशुपालनचिन्तावाहनविधानयोगाः। मेषकुक्कुटलावकशुकशारिकापरभृतमयूरवानरमृगाणामवेक्षणम्। दैवसिकायव्ययपिण्डीकरणमिति च विद्यात् ॥ ३३ ॥

घृतकरणमिति यज्ञादिषु ब्राह्मणान्भोजयित्वा यदवशिष्टं तस्माद् घृतकरणं मथितं चापरं भवति। तैलगुडयोः करणं सर्षपेक्षुकाण्डपीडनात्। कर्पासस्य सूत्रकरणम्। वानमाच्छादनार्थम्। शिक्यस्य भाण्डारोपणार्थम्। रज्ज्वा जलोद्धरणार्थम्। पाशस्य पशुबन्धनार्थम्। वल्कलस्य रज्ज्वाद्यर्थं संग्रहणम्। कुट्टनं धान्यानाम्। कण्डनं तण्डुलानाम्। तयोरवेक्षणं परीक्षणम्। आचामस्य मण्डस्य च पानार्थं चेटिकादिषूपयोजनम्। तुषाणां रन्धनलेपनादिषु। कणानां क्षुद्रतण्डुलानां

कुक्कुटादिषु । कुटीनां तण्डुलपरागाणां गोमेषादिषु । अङ्गाराणां महानसादुत्पन्नानां लोहभाण्डकरणादिषु । भृत्या ये बहिरन्तः कर्मसु नियुक्ताः । तेषां वेतनं प्रतिमासं प्रतिवर्षं वा यो निबन्धः भरणं प्रतिदिनं मम्नकं (?) तयोर्ज्ञानं देशकालकर्मवशेन । कृषिपशुपालनचिन्तेति कर्षणवापनलेपणादिप्रत्यवेक्षणम् । प्रत्यहायव्ययस्य पिण्डीकरणमेकीकरणमिति । विद्यादित्येतद् घृतकरणादि ॥३३॥

भोजन से बचे हुए दूध से घी, ईख से गुड़ तथा सरसों आदि से तेल निकलवाना चाहिए । चरखे में कपास का सूत कातना और उस सूत के कपड़े बुनवाना, शिकहर (छींका) रस्सी, फन्दा और मूंज, पटसन आदि के वल्कल सहेज कर रखना, दासियों को अनाज कूटते, दरते, छरते, छानते, फटकते हुए देखते रहना, भात का माँड़, धान की भूसी, चावल की किनकी, कोयला और जला हुआ कोयला न फेंक कर उसका दुबारा उपयोग करना, नौकर की नौकरी और उसके भोजन की जानकारी रखना । खेती और पशुओं के पालन की फिक्र रखना, घर के पालतू मेढ़ा, मुर्गा, लवा, तोता, मैना, कोयल, मोर, वानर और मृगों की देखभाल रखना । दिन भर के आमदनी और खर्च का हिसाब रखना—ये सब बातें साध्वी पत्नी को हर समय ध्यान में रखनी चाहिए ॥ ३३ ॥

तज्जघन्यानां च जीर्णवाससां संचयस्तैर्विविधरागैः शुद्धैर्वा कृतकर्मणां परिचारकाणामनुग्रहो मानार्थेषु च दानमन्यत्र वोपयोगः ॥ ३४ ॥

तज्जघन्यानामिति नायकोपभुक्तानाम् । तैः संचितैः कृतकर्मणामिति यैः कर्म कृतम् । मानार्थेषु चेति मान एवार्थो येषाम् । ते हि तैर्दत्तैर्मानिता भवन्ति । अन्यत्र वेति दीपवर्त्यादिषु ॥ ३४ ॥

पति के उतरे हुए कपड़ों को एकत्र कर के उन्हें धुलवा ले । यदि उनमें कोई रँगने लायक हों तो उन्हें रँगा ले, फिर अच्छा काम करने वाले नौकरों को देकर उन पर अपना अनुग्रह प्रकट करे । जो कपड़े देने लायक न हों उनका उपयोग दूसरे कामों में करना चाहिए ॥ ३४ ॥

सुराकुम्भीनामासवकुम्भीनां च स्थापनं तदुपयोगः क्रयविक्रयावायव्ययावेक्षणम् ॥ ३५ ॥

स्थापनमिति प्रच्छन्नम् । तदुपयोग इति कार्यवशात्सुरादीनामुपयोजनम् । क्रयविक्रयौ समर्घमहर्घतया । आयव्ययावल्पमहत्तयावेक्षेत ॥ ३५ ॥

सुरा और आसव की सुराहियों को रखना और उनका उपयोग करना, अथवा उन्हें बेच देना या जरूरत पड़ने पर खरीदना तथा इस बेचने-खरीदने में हानि-लाभ का निरीक्षण करते रहना ॥ ३५ ॥

नायकमित्राणां च स्रगनुलेपनताम्बूलदानैः पूजनं न्यायतः ॥

न्यायत इति गुणजातिवयोऽपेक्षया । पूजनं स्वीकरणार्थं परिचयधर्मार्थं च ॥

अपने पति के मित्रों का पुष्पहार, चन्दन, ताम्बूल आदि से उचित सत्कार करना चाहिए ॥ ३६ ॥

श्वश्रूश्वशुरपरिचर्या तत्पारतन्त्र्यमनुत्तरवादिता परिमिताप्रचण्डालापकरणमनुच्चैर्हासः तत्प्रियाप्रियेषु स्वप्रियाप्रियेष्विव वृत्तिः ॥ ३७ ॥

तत्पारतन्त्र्यं तद्वचनानुष्ठानात् । अनुत्तरवादिता तयोः प्रत्युत्तरं न देयम्, परिमिताप्रचण्डालापकरणमिति तयोरग्रतः स्वल्पं च मृदु च ब्रूयात् । अनुच्चैर्हासस्तत्समीपे । तत्प्रियाप्रियेष्विति तयोरिष्टानिष्टेषु स्वप्रियाप्रियेष्विव वृत्तिर्यथात्मनः प्रियाप्रियौ भवतः ॥ ३७ ॥

सास और ससुर की सेवा करना, उनकी आज्ञा मानना, उन्हें उलट कर जवाब न देना, उनके सामने धीरेसे थोड़ा बोलना और धीरे से ही हँसना भी चाहिए। जो उन्हें प्रिय हों उनके साथ प्रेम व्यवहार रखना और जो उनके अप्रिय हों उनके साथ ऐसा व्यवहार करना जिससे वह अपना अप्रिय न बन जाए ॥ ३७ ॥

भोगेष्वनुत्सेकः ॥ ३८ ॥

भोगेषु महत्स्वपि सत्स्वनुत्सेको लाघवपरिहारार्थं चित्तविकारो न कर्तव्यः ॥

भोग-सुखों के विषय में अभिमान न करे ॥ ३८ ॥

परिजने दाक्षिण्यम् ॥ ३९ ॥

परिजनलोकस्य सर्वदा दाक्षिण्यमुपसंग्रहार्थम् ॥ ३९ ॥

परिवार के सभी लोगों के साथ बड़े कौशल से दक्षतापूर्ण व्यवहार रखे ॥ ३९ ॥

नायकस्यानिवेद्य न कस्मैचिद्दानम् ॥ ४० ॥

अनिवेद्य न कस्मैचिद्दानं सपुत्राया अपि स्वातन्त्र्यपरिहारार्थम् ॥ ४० ॥

पति की जानकारी बिना कोई चीज किसी को न दे ॥ ४० ॥

स्वकर्मसु भृत्यजननियमनमुत्सवेषु चास्य पूजनमित्येकचारिणीवृत्तम् ॥ ४१ ॥

स्वकर्मस्विति यो यत्र नियुक्तस्तत्र तस्य नियमनं कर्मणां निपातनार्थम् (?)। अस्येति भृत्यजनस्य। पूजनं पानभोजनादिना। एकचारिणीवृत्तं द्वात्रिंशं प्रकरणम् ॥ ४१ ॥

नौकरों को उनके काम पर निरत रखे, तिथि-त्यौहार और उत्सवों में उनका समादर भी करे। एकचारिणीवृत्त समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

एकचारिण्याः संनिहिते नायके वृत्तमुक्तम्, प्रोषिते तु तद्वृत्तशेषभूता प्रवासचर्यारभ्यते—

प्रवासे मङ्गलमात्राभरणा देवतोपवासपरा वार्तायां स्थिता गृहानवेक्षेत ॥ ४२ ॥

वार्तायां स्थितेति नायकवार्तान्वेषणपरेत्यर्थः। गृहानवेक्षेतेति तात्स्थ्यात्कर्मण्याह ॥ ४२ ॥

प्रवासचर्य्याप्रकरण

पति के परदेश चले जाने पर सौभाग्य चिह्न को छोड़कर सभी अलंकारों को उतार देना चाहिए। देवताओं की पूजा, उपासना और उनका व्रत करे तथा पति ने जो सीख दी हो उसके अनुकूल आचरण करते रहना चाहिए ॥४२॥

शय्या च गुरुजनमूले। तदभिमता कार्यनिष्पत्तिः। नायकाभिमतानां चार्थानामर्जने प्रतिसंस्कारे च यत्नः ॥ ४३ ॥

गुरुजनमूल इति श्वश्रूजनसमीपे शयनमात्मविशुद्धयर्थम्। तदभिमतेति गुरुजनाभिमतस्य कार्यस्यानुष्ठानमानुकूल्यख्यापनार्थम्। अर्जने प्रयत्न इति नायकस्य येऽभिमता न च तेनार्जितास्तेषाम् ॥ ४३ ॥

पति के परदेश में रहने पर पत्नी को चाहिए कि वह अपने ससुर और सास के पास चारपाई बिछा कर सोये, उनके सुझाव और सलाह से काम करे, पति को भाने वाली वस्तुओं को इकट्ठी करे और उनकी रखवाली करती रहे ॥ ४३ ॥

नित्यनैमित्तिकेषु कर्मसूचितो व्ययः। तदारब्धानां च कर्मणां समापने मतिः ॥४४ ॥

नित्यं कर्माशनपानादि। नैमित्तिकं कर्म बालकोत्सवादि। उचितो व्ययो

यावता विधिः संपद्यते, नायककल्पितो वा। तदारब्धानामिति नायकारब्धानां देवकुलोद्यानादिकर्मणां समापने मतिः। येन प्रकारेण निष्पद्यते तथा कार्यमित्यर्थः ॥ ४४ ॥

नित्य नैमित्तिक कार्यों में उचित अथवा पति का बताया हुआ ही खर्च होना चाहिए। विदेश जाने से पूर्व पति ने जिन कामों को प्रारंभ किया था उन्हें पूर्ण करने की चेष्टा करनी चाहिए ॥ ४४ ॥

ज्ञातिकुलस्यानभिगमनमन्यत्र व्यसनोत्सवाभ्याम्। तत्रापि नायकपरिजनाधिष्ठिताया नातिकालमवस्थानमपरिवर्तितप्रवासवेषता च ॥ ४५ ॥

ज्ञातिकुलस्य पितृगृहस्य। अनभिगमनं कारणं विना। तत्रापि व्यसनोत्सवे। नायकपरिजनाधिष्ठिताया गमनमात्मविशुद्धयर्थम्। नातिकालमवस्थानमिति नातिचिरकालमवस्थानं श्वशुरकोपभयात्। अपरिवर्तितप्रवासवेषता चेत्युत्सवमधिकृत्येदं वचनम् ॥ ४५ ॥

अपने मायके तभी जाए जब वहाँ कोई उत्सव या गमी हो। वहां जाने पर ससुराल का कोई आदमी भी साथ रहे, फिर भी ज्यादा दिन न रुके। उत्सव, विवाह आदि में भी प्रोषितपतिका की भाँति रहे, साज-श्रृंगार न करे ॥ ४५ ॥

गुरुजनानुज्ञातानां करणमुपवासानाम्। परिचारकैः शुचिभिराज्ञाधिष्ठितैरनुमतेन क्रयविक्रयकर्मणा सारस्यापूरणं तनूकरणं च शक्त्या व्ययानाम् ॥ ४६ ॥

गुरुजनानुज्ञातानां करणं स्वातन्त्र्यपरिहारार्थम्। क्रयविक्रयकर्मणेति वणिज्याधर्मेण। सारस्यापूरणम् द्रव्यस्याभिवर्धनम्। तनूकरणं चेति कृशीकरणम्। शक्त्या व्ययानामिति कार्यवशाद्यदि व्ययस्य महत्ता स्यात्तदा कृशं सारं कुर्यादित्यर्थः ॥ ४६ ॥

व्रत, उपवास करना हो तो सास-ससुर से पूछ कर करे, ईमानदार, वशीभूत नौकरों के मार्फत क्रय-विक्रय करके घटी को पूरा करे। यथाशक्ति खर्च में कमी कर दे ॥ ४६ ॥

आगते च प्रकृतिस्थाया एव प्रथमतो दर्शनं दैवतपूजनमुपहाराणां चाहरणमिति प्रवासचर्या ॥ ४७ ॥

आगते चेति–प्रवासात्प्रत्यागते नायके । प्रकृतिस्थाया इति प्रवासवेषस्थाया एव प्रथमतो दर्शनं स्यात्स्वरूपख्यापनार्थम् । न पुनरागत इत्यात्मानं प्रसाधयेत् । देवतापूजनं सहपरिजनेन । उपहाराणामुपयाचितकानाम् । आहरणं दानं देवताभ्यः । प्रसासचर्या त्रयस्त्रिंशं प्रकरणम् ॥ ४७ ॥

परदेश से लौटकर आया हुआ पति अपनी पत्नी को प्रोषितपतिका के रूप में देखे । उसके घर पहुँचने पर पत्नी देवताओं की पूजा करे, भेंट चढ़ाए । प्रवासचर्या समाप्त हुई ॥ ४७ ॥

प्रकरणद्वयोपसंहारणार्थमाह—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

तद्वृत्तमनुवर्तेत नायकस्य हितैषिणी ।
कुलयोषा पुनर्भूर्वा वेश्या वाप्येकचारिणी ॥
धर्ममर्थं तथा कामं लभन्ते स्थानमेव च ।
निःसपत्नं च भर्तारं नार्यः सद्वृत्तमाश्रिताः ॥ ४८ ॥

सदिति न कपटेनानुवर्तनमिति दर्शनार्थम् । अस्मिन्वृत्ते नायिकात्रयमधिकृत्याह—कुलयोषेति । अन्यैर्नोढा (अनन्योढा) कुलयोषिदित्युच्यते । वृत्तानुवर्तने फलमाह–धर्ममिति । स्थानं प्रतिष्ठानम् । निःसपत्नं निष्कण्टकम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां भार्याधिकारिके चतुर्थेऽधिकरणे एकचारिणीवृत्तं प्रवासचर्या च प्रथमोऽध्यायः ।

इस विषय के दो श्लोक हैं—

एकचारिणी पत्नी का कर्तव्य है कि वह अपने पति की कल्याण-कामना करती हुई सदाचार का पालन करे । चाहे वह कुलवधू हो या पुनर्भू अथवा वेश्या हो । स्त्रियाँ अपने स्त्री-धर्म पर आरूढ़ रहकर अर्थ, धर्म, काम, स्थान और बिना सौतों का पति प्राप्त करती हैं ॥ ४८ ॥

वात्स्यायन द्वारा अनुमोदित वैधानिक विवाह पद्धति द्वारा जिस युवती का विवाह हो गया है, उसे अपने पति के साथ कैसा व्यवहार, आचरण करना चाहिए यही इस अध्याय का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है । वात्स्यायन ने पत्नी दो प्रकार की बतलायी है—एक तो एकचारिणी अर्थात् अकेली और दूसरी वह

जिसके एक या अनेक सौतें हों। इस अध्याय में एकचारिणी पत्नी के आचरणों, व्यवहारों का दिग्दर्शन कराया गया है। सबसे पहला कर्त्तव्य पत्नी का यह है कि वह अपने पति का पूर्ण विश्वास प्राप्त करे। पति के मनोऽनुकूल ही अपना बरताव और व्यवहार बनाए। यह तभी संभव है जब पति और पत्नी दोनों दो शरीर किन्तु एक प्राण बन जाएँ। ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के लिए मनोभावों को पवित्र और एकाकार बनाने की आवश्यकता पड़ती है इसलिए शास्त्रकारों ने सुझाव दिया है कि पत्नी अपने पति को देवता मानकर उसकी पूजा करे और पति अपनी पत्नी को गृहलक्ष्मी समझकर उसका सम्मान करे। जिस घर में नारी का सम्मान होता है उस घर में समृद्धि, सुख, सदैव निवास करते हैं ऐसा धर्मशास्त्र का वचन है। पति को ही सर्वस्व मानने की भावना उत्पन्न करने के लिए स्त्री को पति की सहधर्मिणी और अनुगामिनी बनने का प्रयत्न करना चाहिए। वह अपना स्व (अपनापन) पति पर समर्पित करके उसके अधीन बन जाए तभी ऐसी उच्च भावना का उदय पत्नी के हृदय में हो सकता है। पत्नी चाहे बालिका हो, युवती हो अथवा वृद्धा हो, उसे पति के अधीन रहकर आचरण करना चाहिए।[1]

पति की अनुमति से घर-गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी और देख-रेख पत्नी को अपने ऊपर ले लेनी चाहिए। पत्नी गृहलक्ष्मी तभी कही जा सकती है जब वह घर का प्रबंध सुचारु रूप से संचालित करे। सारे घर को स्वच्छ और पवित्र रखे, उसे सुन्दर चित्रों और पुष्पों से सजाती रहे। आँगन, दालान और कमरों में कहीं भी एक तिनका या कंकड़ी नज़र न आए। घर की सफ़ाई और सजावट देखते ही देखने वाले का मन प्रसन्न हो जाए। धार्मिक वातावरण घर में सदैव पुलकता रहना चाहिए। घर में देव-मंदिर की स्थापना कर नित्य नियमपूर्वक देवार्चन करते रहना चाहिए।[2] घर गृहस्थी की देख-रेख के साथ सास-ससुर की सुख-सुविधा का ध्यान भी

१. बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि॥

२. युवतिरपि विहाय प्रातिकूल्यं स्वनाथं
वचनहृदयकायैः पूजयेदिष्टदेवम्
गृहवसतिमथासौ चिन्तयेद् भर्तृवाचा
प्रतिदिनमतिसृष्टं वेश्म कुर्यात्सुशोभम्॥
तथा—सायं स्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमंत्रं बलिं हरेत्।
नैत्यकं हि नामैतत् सायं प्रातर्विधीयते॥

रखना चाहिए। सास-ससुर, ननद-नन्दोई सबके साथ प्रेम और आत्मीयता का व्यवहार करना चाहिए। गृहलक्ष्मी कही जाने वाली पत्नी को चाहिए कि घर के अन्दर एक भाग में गृहवाटिका की स्थापना कर उसमें धनिया, अदरख, मिर्च, मेथी, सोवा, पालक आदि साग-सब्जियाँ सुन्दर क्यारियाँ बनाकर बो दे तथा गन्ना, अजमोदा, तमाल आदि के वृक्षों को भी उगाए। फुलवारी की शोभा बढ़ाने के लिए गुलाबवास, मोतिया, चमेली, जुही, वासन्ती, जवाकुसुम आदि के सुगन्धित फूलों के पौधे उगाए। तथा बीच-बीच में सुन्दर गली, गलियारे और चबूतरे भी बनवाए।[1] बीच में कुवाँ, बावली या दीर्घिका भी खुदवाए।

अपनी भावनाओं को अटल बनाए रखने के लिए तथा अपने आचरण को असंदिग्ध और पवित्र बनाए रखने के लिए कुलवधू को भिखारिनों, सधुवाइनों तथा सगुन धरानेवाली स्त्रियों, व्यभिचारिणी स्त्रियों, जादू-टोना करने वाली स्त्रियों के चक्कर में न आना चाहिए। क्योंकि उपर्युक्त ढंग की स्त्रियाँ कुट्टिनी का काम किया करती हैं, ऐसी स्त्रियाँ पतिव्रताओं के भी मन को चंचल बना दिया करती हैं, इसलिये इनसे सावधान रहने की शिक्षा धर्मशास्त्र ने भी दी है।[2]

पति को आश्वस्त, विश्वस्त और पूर्ण सन्तुष्ट बनाए रखने के लिए कुलवधू को चाहिए कि वह पति की आवाज़ परखती रहे, उसके संकेतों का अध्ययन इस प्रकार करती रहे, कि पति जो चाहता है वही वह सम्पादित कर सके। पति को अड़चन या कठिनाई न महसूस होने दे। बाहर से पति के आने पर उसकी आहट पाते ही तुरन्त आँगन में खड़ी होकर यह सोचने लगे कि इनका कौन सा प्रयोजन है।[3] साथ ही पति की रुचि के अनुकूल उसके पथ्यापथ्य का ख़याल रखते हुए भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए।[4]

१. मरुबकनवमालीमालतीकुन्दमल्ली-
तरुणसदृशपुष्पा वीरुधः सौरभाढ्याः।
सुमधुरफलवृक्षान् मूलकालाम्बुभाण्ड-
प्रभृतिविटपकादीनर्पयेद् वाटिकायाम् ॥—(कोकशास्त्र)

२. सकृदपि कुलटाभिर्योगिनीभिक्षुकाभि-
र्न नटविघटिताभिः संसृजेन्मौलिकाभिः ॥

३. वचनमपि निशम्याऽऽगच्छतो वेश्ममध्ये
तदुपकरणसज्जा संवसेदागतस्य।—(कोकशास्त्र)

४. रुचितमिदममुष्मै पथ्यमेतन्न वेति
प्रतिदिनमपि भर्तुर्भोजनेच्छां विदध्यात्।—(कोकशास्त्र)

जब पति कहीं बाहर से घर आए या भोजन करने के लिए तैयार हो उस समय नौकरों-चाकरों की अपेक्षा न कर पत्नी स्वयं अपने पति के चरण धोने का प्रयत्न करे। इन सब आचरणों को करते हुए पत्नी इस बात का सदैव ख़याल रखे कि वह मैले-कुचैले वस्त्रों में, रूखे-सूखे, बिखरे बालों से पति के सामने कभी न आए। जब कभी वह पति के सामने आए, साफ-सुथरी हालत में मुस्कराती हुई नजर आए। इससे पति का पत्नी पर प्रेम और आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता है। किसी बात पर पति से नाराज़ भी हो तो उसे व्यक्त न करे और यदि पति उस पर नाराज हो तो अपने हृदय में उसके प्रति घृणा न पैदा होने दे। यदि पति आवश्यकता से अधिक या नाजायज कामों में धन खर्च करता हो तो उसे एकान्त में प्रेमपूर्वक समझाने की कोशिश करे। रुपये-पैसे के मामले में उसे दूसरों के सामने जलील करने, लज्जित करने की चेष्टा न करे और न झगड़ा-बखेड़ा ही खड़ा करे। अपने चातुर्य से पति की खर्चीली आदत को सुधारने का मोहक प्रयत्न करे। घर की हर छोटी-बड़ी चीज को यथास्थान करीने के साथ सजा कर रखे, हर वस्तु की स्वच्छता और पवित्रता का बराबर ध्यान रखे।[1]

धार्मिक विधि से जब वर-कन्या का विवाह होता है उस समय सप्तपदी नाम का एक कृत्य संपादित होता है। उसमें वर-वधू दोनों एक दूसरे से प्रतिज्ञा करते हैं। उसी प्रतिज्ञा के अन्तर्गत कामसूत्रकार पत्नी को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि कहीं भी विवाह-शादी, उत्सव, मेला-ठेला यहाँ तक कि मायके भी जाना हो तो पति से पूछ कर ही जाना चाहिए। कदाचित् पत्नी बिना पूछे चले जाने की ग़लती कर बैठती है तो पति उसे स्वेच्छाचारिणी समझकर उसपर सन्देह करने लगेगा। सन्देह के वातावरण में सुनहला दाम्पत्य जीवन नीरस होकर चौपट हो जाता है। इसलिए पत्नी के लिये यह सर्वथा उचित है कि वह कहीं भी बाहर जाए तो पति की इच्छाओं का अनुसरण करती हुई कदम उठाए। कोका पंडित तो यहाँ तक सुझाव देते हैं कि पति की अनुमति मिलने के बाद भी किसी विश्वस्त व्यक्ति को साथ लेकर जाना चाहिए, अकेले नहीं।[2]

सोते समय पति से मीठी-मीठी बातें कर उसके हाथ-पैर दबाकर पति को

---

१. सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥
तथा—स रहसि परिबोध्यो वित्तनाशे प्रसक्तः।—(कोकशास्त्र)

२. अनुमतिमुपलभ्याधिष्ठितान्यत्र यायात्।—(कोकशास्त्र)

उसी प्यार और स्नेह से सुलावे जैसे माँ अपने बच्चे को सुलाती है। पति के सो जाने पर पत्नी को सोना चाहिए और उसके जागने से पहिले जग जाना चाहिए। रसोईघर स्त्री के शील-स्वभाव और गुणों का परीक्षास्थल माना जाता है। इसलिए पत्नी को रसोईघर की हर प्रकार की पवित्रता पर ध्यान रखना चाहिए। रसोईघर ऐसी जगह में इस प्रकार बनाया जाए कि भोजन करने वाले रसोईघर के अन्दर की चीजें देख न सकें। रसोईघर में प्रकाश और स्वच्छता का ख्याल रखा जाए।

वात्स्यायन कहते हैं कि गृहलक्ष्मी कही जाने वाली पत्नी के किसी कार्य-व्यवहार में फूहड़पन की झलक न आने पाए। जब वह बोले तो सुमधुर वाणी, जब भी देखे तो प्यार भरी, पवित्र निगाहों से, दरवाजे पर खड़ी होकर गप-शप न करे, एकान्त में जाकर किसी से सलाह न करे, सभ्यता और शिष्टता से बात का जवाब दे। किसी पुरुष को लुक छिप कर या बेशर्मी से देखने की इच्छा न करे।[1] यदि किसी स्त्री का आचरण इससे विपरीत होता है तो वह अपने पति का प्यार, सम्मान सब कुछ खो बैठती है।

कुलवधू के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता तन-मन की सफाई है। वह हर समय अपने शरीर को स्वच्छ, सुन्दर रखने की चेष्टा करती रहे। उसके पसीने में बदबू न पैदा होने पाए, दाँतों में मैल जमकर मुँह में दुर्गन्ध न पैदा हो जाए—इसका बराबर खयाल रखना चाहिए। यदि इस शारीरिक गन्दगी की ओर उसका ध्यान नहीं जाता तो उसका मन भी मलीन होता जाएगा। पति का भी उसके प्रति आकर्षण कम होता जाएगा। धीरे-धीरे उसका स्वास्थ्य भी गिरने लगेगा और सौन्दर्य दो कौड़ी का बन जाएगा। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य-सौन्दर्य पर ध्यान रखना स्त्री का महान् धर्म है—यह एक बहुत बड़ी साधना और महान् योग है। जब स्त्री को अपने शारीरिक सौन्दर्य का पूर्ण बोध रहता है तभी वह देश, काल, ऋतु के अनुसार शृङ्गार, आभरण और वस्त्रों का चुनाव कर सकती है, तदनुकूल उन्हें धारण कर आकर्षक और सुदर्श बन सकती है। किस ऋतु में किस रंग की कैसी साड़ी पहनी जाए, कौन से पुष्प जूड़ा में खोंसे जाएँ, कौन सी सुगन्धि देह में लगाई जाए इसकी परिचय-चारुता हर चतुर पत्नी को होनी चाहिए, तभी

१. क्वचिदपि निभृते वा द्वारि वा नैव तिष्ठेत्,
चिरमपि गिरमस्मिन् विप्रियां न प्रयच्छेत्।
न विरलजनदेशे मन्त्रयेन्निष्कुटे वा,
न पुरुषमथ पश्येन्मंत्रहेतुं विना च॥—(कोकशास्त्र)

वह अपने पति पर विजय प्राप्त कर साक्षात् लक्ष्मी कहाने का गौरव प्राप्त करती है।

श्रृंगार-सौन्दर्य की साधना में घर-गृहस्थी को भूल जाना, घर का खर्च बढ़ा देना वात्स्यायन को अभीष्ट नहीं है, वह हर स्त्री को अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों पर आर्थिक आचरण करने की सलाह देता है। वात्स्यायन का कहना है कि चतुर पत्नी वही है जो मिट्टी के बर्तन, बाँस की दोहरी, चौकी, पीढ़ा, करछुल, कड़ाही आदि जैसे नित्य के उपयोगी साधनों के रहते हुए भी यदि कभी उन वस्तुओं को सस्ते में पा जाती है तो खरीद कर रख ले। साथ ही घी, तेल, नमक, मसाला एवं घरेलू दवाइयों का संग्रह बड़े जतन से करे। कुलवधू का यह भी कर्त्तव्य होना चाहिए कि घर की बात बाहर न प्रकट करे और बाहर सुनी हुई बात घर में न कहे। अपने धन की तादाद, उसके रखने की जगह का भी परिचय किसी को न दे, साथ ही इतना खयाल हमेशा रखे कि अपनी हैसियत की जाति-बिरादरी की स्त्रियों में अपना स्वाभिमान और गौरव ऊँचा रखने की चेष्टा करे।

घर की रानी बहू घर के खर्च का सन्तुलन बराबर बनाए रखे। साल भर के आमदनी-खर्च का बजट बना ले और उसी के अनुसार खर्च और बचत करने की बराबर चेष्टा करे, कदाचित् किसी कारणवश निर्धारित बजट से व्यय ज्यादा हो जाए तो घर की फटी, पुरानी चीजें कबाड़ियों को बेंच कर उसे पूरा करने का प्रयत्न करे। जहाँ तक हो सके घी-तेल बाजार से खरीदने की चेष्टा न करे। नित्य के खर्च से बचे हुए दूध को जमा दे और उससे घी निकाल लिया करे, घर के सरसों-तिल से तेल निकलवा लिया करे, खेत में पैदा हुई कपास या खरीदी हुई कपास का सूत कातकर उससे उपयोग में आनेवाले वस्त्र बुनवा ले। फटी-पुरानी रजाइयों, गद्दों की पुरानी रुई से दरियाँ, खेस आदि बुनवा ले। छोटे-मोटे कपड़ों की सिलाई घर पर ही कर ले। मूंज, सन को खरीद कर उसकी रस्सियाँ बनवा ले। पानी भरने के लिए घड़ों के फन्दे भी बनवा कर रख छोड़े, शिकहर या छींका भी बनवा ले। धान कूटती हुई, अनाज पछोरती और छानती हुई नौकरानियों-मजदूरिनों पर निगाह रखे, यह भी ज्ञान रखे कि कितने धान में कितना चावल निकलता है। धान की भूसी, चावलों की कनी, भात के माँड को न फेंक कर उसका भी उपयोग करे। रसोई बन चुकने के बाद जले हुए कोयले को बुझाकर उसे फिर से उपयोग के लिए सुरक्षित रख दे। घर के बाहर-भीतर काम करनेवाले नौकरों की मजदूरी, खुराक का भी हिसाब रखे। खेत के बोए-जोते जाने का भी ख्याल

रखना चाहिए। कितने बीघा में कितना बीज पड़ना चाहिए, उसमें कितना अनाज पैदा होना चाहिए, इसका पूरा अनुभव होना चाहिए। आगामी वर्ष के लिए कितना बीज सुरक्षित रखना है, बीज को किस ढङ्ग से कहाँ रखा जाए इत्यादि बातों का अनुभव और यत्न करना चाहिए। प्रतिदिन की आमदनी-खर्च का पूरा ब्यौरा रखना चाहिए। पति के पुराने उतारे हुए कपड़ों को धुलवा लिया जाए, यदि कोई रँगने योग्य हों तो उन्हें रँगवाकर नौकरों-चाकरों को बाँटकर उन्हें प्रसन्न रखना चाहिए। जो वस्त्र पहनने लायक न हों उनके झाड़न आदि बना लेना चाहिए। टूटे-फूटे पुराने अनुपयोगी बरतनों को बदलकर नये उपयोगी बरतन ले लेना चाहिए। इस प्रकार का गुंजायशी प्रबन्ध करने का मतलब यह नहीं है ,कि गृहिणी कंजूस बन जाए। उसे उदारहृदया और अवसर की पंडिता भी होना चाहिए। अतिथियों के सत्कार में किसी प्रकार का हीला-हवाला, कोई कोर-कसर नहीं करनी चाहिए। सब से हँस कर बोलना, सब की बातें मानना, सबका समादर करना सीखना चाहिए। सास-ससुर-पति जिनसे घृणा करते हों उनके साथ भी ऐसा वर्ताव करे कि अपना कोई नुकसान न हो और वह भी उससे स्नेह रखे।

इस प्रकार के आचरण करने से बहू की लोकप्रियता बढ़ती है, उसके गुणों की ख्याति बढ़ती है। ऐसी लोकप्रियता और ख्याति तथा समृद्धि को पाकर बहू को अभिमान न करना चाहिए। सुख-सुविधा पाकर मन में विकार न आने दे, क्योंकि ऐसा करने से महानता नष्ट होती है। लघुता आ जाती है।

पति के परदेश चले जाने पर पत्नी का आचार-व्यवहार कैसा होना चाहिए? इस विषय पर वात्स्यायन का कथन है कि ऐसी हालत में पत्नी को प्रोषितपतिका के समस्त आचार-व्यवहार अपनाने चाहिए। मात्र सौभाग्य-चिह्नों को छोड़कर सभी आभरणों, शृङ्गारों का परित्याग कर देना चाहिए। पति के कल्याण के लिए देवाराधन करना चाहिए तथा चलते समय उसने जो सीख दी हो उसे तत्परता से पालन करना चाहिए। किसी को उसके आचरण पर अँगुली उठाने का अवसर न मिले इसलिए वह एकान्त में अकेली कभी न रहे। रात में भी सास-ससुर के पास चारपाई बिछा कर सोवे। अपने दैनिक खर्च में यथाशक्ति कमी कर दे। परदेश जाने से पहले पति ने जो काम प्रारम्भ किए हों उन्हें पूरा कराने का प्रयत्न करे। अपने माँ-बाप के घर उसी हालत में जाए जब वहाँ कोई विवाह आदि उत्सव या किसी प्रकार की गमी पड़ जाए। उसमें भी ससुराल से किसी को साथ लेती जाए और थोड़े ही दिन बाद वापस आ जाए। इस प्रकार का संयमित, नियमित जीवन

व्यतीत करती हुई वधू का पति जब लौट आए तो प्रोषितपतिका के वेष में ही उसका साक्षात्कार करे, फिर सभी प्रकार के वस्त्रालङ्कार धारण कर पति के सकुशल लौट आने की खुशी में देव-पूजन आदि धार्मिक कृत्य करे।

वात्स्यायन का कहना है कि जो पत्नी अपने पति का कल्याण चाहती है वही इस प्रकार का पातिव्रत और आचरण अङ्गीकार करती है। इस प्रकार का आचरण करनेवाली स्त्री धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्ग को अपने जीवन में सिद्ध कर यशस्विनी बनती है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे भार्याधिकारिके चतुर्थेऽधिकरणे
एकचारिणीवृत्तं प्रवासचर्या च प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

ज्येष्ठादिवृत्तप्रकरणम्

सैव यदा सपत्नीभिर्युज्यते तदा कथं वर्तितव्यमिति सपत्नीषु ज्येष्ठावृत्तमुच्यते। तत्र सापत्नककारणमाह—

जाड्यदौःशील्यदौर्भाग्येभ्यः प्रजानुत्पत्तेराभीक्ष्ण्येन दारिकोत्पत्तेर्नायकचापलाद्वा सपत्न्यधिवेदनम् ॥ १ ॥

जाड्यं शाठ्यम्। दौःशील्यं चारित्रखण्डनात्। प्रजानुत्पत्तेर्वन्ध्यत्वात्। अभीक्ष्णेन दारिकोत्पत्तेः ॥ १ ॥

मूर्खता, चरित्र-हीनता, दुर्भाग्य एवं निःसन्तान होने अथवा बार-बार लड़कियों के पैदा होने से अथवा पति की चञ्चल वृत्ति होने के कारण एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह किया जाता है ॥ १ ॥

तदादित एव भक्तिशीलवैदग्ध्यख्यापनेन परिजिहीर्षेत्। प्रजानुत्पत्तौ च स्वयमेव सापत्नके चोदयेत् ॥ २ ॥

तस्मात्तदादित एवात्मनो भक्तिशीलवैदग्ध्यख्यापनेन यथाक्रमं जाड्यादित्रयं परिहर्तुमिच्छेत्। नायकचापलं वैदग्ध्यख्यापनेनैव। प्रजानुत्पत्तौ स्वयमेव। अन्यथा तेन कर्तव्यमेव। सापत्नके चोदयेत्—कुरु विवाहमिति। दारिकोत्पत्तावप्ययमेव क्रमः। स्त्रीपरिग्रहस्य पुत्रफलकत्वात् ॥ २ ॥

इसलिए स्त्री को उचित है कि वह पहले से ही अपनी भक्ति, सच्चरित्रता और चातुर्य से पति को दूसरा विवाह करने का अवसर न दे। कदाचित् उससे कोई सन्तान न उत्पन्न हो तब वह स्वयं अपने पति को दूसरा विवाह करने के लिए प्रेरित करे ॥ २ ॥

अधिविद्यमाना च यावच्छक्तियोगादात्मनोऽधिकत्वेन स्थितिं कारयेत् ॥ ३ ॥

अधिविद्यमानेति सापत्ने युज्यमाना न त्वधिविन्ना। यावच्छक्तीति यावती शक्तिस्तदपेक्षयात्मनः स्थितिं कारयेत्। अधिकत्वेनेति—सपत्न्याः सकाशादाधिक्येनेत्यर्थः ॥ ३ ॥

नवविवाहिता पत्नी की यह प्रवृत्ति होती है कि वह अधिकाधिक अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करती है। इसलिए प्रथम विवाहिता पत्नी से उसकी लड़ाई होने लगती है। दोनों में सौतियाडाह पैदा हो जाता है ॥ ३ ॥

अधिविन्ना तु किं कुर्यादित्याह—

आगतां चैनां भगिनीवदीक्षेत। नायकविदितं च प्रादोषिकं विधिमतीव यत्नादस्याः कारयेत्। सौभाग्यवैकृतमुत्सेकं वास्या नाद्रियेत॥ ४॥

नायकविदितमिति–यथा नायको जानात्यनया कारितमिति। प्रादोषिकम् प्रदोषभवं संस्कारम्। अतियत्नादनिच्छन्त्या अपि तस्याः सहृत्यापनार्थं परिचारिकया कारयेत्। सौभाग्यजं वैकृतं यदहंकृत्या व्याहृतम्। औत्सुक्यमुत्सेकं चित्तविकारं नाद्रियेत नापेक्षेत। अभिभवभयात्॥ ४॥

इस सौतियाडाह को दूर करने का उपाय वात्स्यायन बताते हैं—

इसलिए पहली विवाहिता पत्नी को चाहिए कि दूसरी नव-विवाहिता को वह अपनी सौत न समझकर बहिन समझे। रात में रतिक्रीडा के योग्य उसका समस्त श्रृङ्गार करे, तब दोनों में सौहार्द बढ़ेगा। कदाचित् नई बहू कोई कठोर बात भी कभी कह दे तो बड़ी बहू को उस पर विचार न करना चाहिए॥४॥

भर्तरि प्रमाद्यन्तीमुपेक्षेत। यत्र मन्येतार्थमियं स्वयमपि प्रतिपत्स्यत इति तत्रैनामादरत एवानुशिष्यात्॥ ५॥

भर्तरीति–भर्तृविषये, प्रमाद्यन्तीम्–प्रमादं यान्तीमुपेक्षेत। अनेनैव स्खलितदोषेण दौर्भाग्यं स्यादिति। यत्रेति यस्मिन्प्रमादे मन्येत नायकसंभोगार्थमियं कृता सपत्नी स्वयमेव प्रतिपत्स्यते प्रमादो मा भूदिति तत्रैनां स्नेहख्यापनार्थमादरतोऽनुशिष्यात्पुनर्मा कार्षीरिति॥ ५॥

यदि नई बहू पति के प्रति कोई असावधानी करे तो बड़ी बहू उसकी उपेक्षा कर दे। फिर जब उसे स्वस्थ-चित्त समझे तो भविष्य में ऐसा व्यवहार न करने की सीख उसे दे दे॥ ५॥

नायकसंश्रवे च रहसि विशेषानधिकान् दर्शयेत॥ ६॥

नायकसंश्रवे चेति नायकस्य श्रुतिगोचरे सति। रहसि च यत्रान्यो न शृणोति। विशेषानिति कलाविशेषान् अधिकानिति ये नायकस्य न दर्शिताः। तद्दर्शने ह्युभावपि स्निह्यतः॥ ६॥

वह उस नई बहू को ऐसे एकान्त स्थान में कामकला की शिक्षा दे जहाँ से उसका पति भी सुन सके॥ ६॥

तदपत्येष्वविशेषः। परिजनवर्गेऽधिकानुकम्पा। मित्रवर्गे प्रीतिः। आत्मज्ञातिषु नात्यादरः। तज्ज्ञातिषु चातिसंभ्रमः॥ ७॥

तदपत्येष्वित्यपुत्रया सपुत्राया दर्शितव्यः। परिजनवर्गं इति सपत्न्याः। अधिकानुकम्पा येयसौ नायकस्याप्यनभिमतः। मित्रवर्ग इति तस्या अधिको यो मित्रवर्गस्तस्मिन् प्रीतिः स्वीकारार्थम्। आत्मनो ज्ञातिषु नात्यादरो वचनीयतापरिहारार्थम् ॥ ७ ॥

नई बहू के बच्चों से वह अत्यन्त प्रेम करे; उसके सेवकों पर अधिक अनुग्रह रखे, उसकी सखियों से प्रीति रखे, अपने भाई-भतीजों की अपेक्षा उसके भाई-भतीजों का अधिक सम्मान करे ॥ ७ ॥

बह्वीभिस्त्वधिविन्ना अव्यवहितया संसृज्येत ॥ ८ ॥

बह्वीभिस्त्वधिविन्ना सपत्नीभिः। अव्यवहितयेत्यनन्तरया कनीयस्या संसृज्येत, विदितशीलत्वात् ॥ ८ ॥

यदि कई सौतें हों तो जो ज्येष्ठ हो वह अपने से छोटी सौत पर अधिक स्नेह रखे ॥ ८ ॥

यां तु नायकोऽधिकां चिकीर्षेत्तां भूतपूर्वसुभगया प्रोत्साह्य कलहयेत् ॥ ९ ॥

यां तु तासु नायकोऽधिकां चिकीर्षेत्कर्तुमिच्छेत्। भूतपूर्वसुभगयेति नायकस्य प्रज्ञातानुनयया। प्रोत्साह्य तामेव सौभाग्यबीजोपन्यासेन च तयैव कलहयेत् ॥ ९ ॥

M. कई पत्नियों में से जिस किसी एक को पति ज्यादा प्यार करता हो उसके साथ दूसरी पत्नी का झगड़ा करा देना चाहिए ॥ ९ ॥

ततश्चानुकम्पेत ॥ १० ॥

तत इत्युत्तरकालमनुकम्पेत कलहितां प्रच्छन्ने समाश्वासयेत्कलहवर्धनार्थम् १०

और फिर कलह बढ़ाने के लिए उसे आश्वासन दिलाए ॥ १० ॥

ताभिरेकत्वेनाधिकां चिकीर्षितां स्वयमविवदमाना दुर्जनीकुर्यात् ॥ ११ ॥

ताभिरेकत्वेनेति सपत्नीभिरन्याभिरेकत्वेनेत्यैक्येन। सङ्घधर्मस्थितावित्यर्थः। एकाभावेऽपि सैव सौभाग्यबीजोपन्यासहेतुं नायकस्याग्रतो दुर्जनीकुर्यात्। येन नायकस्य तस्यामगमबुद्धिः स्यात्। दृष्टो हि बहुभिः सकलश्चाह्नियमाणः। तत्रापि स्वयमविवदमाना मध्यस्था सती। न तत्प्रयोग इति ख्यापनार्थम् ॥ ११ ॥

पति यदि किसी स्त्री को अधिक महत्त्व और ज्येष्ठ पद देना चाहे तो ज्येष्ठ पत्नी को चाहिए कि वह खुद न लड़कर दूसरी सौतों को उससे भिड़ाकर उसे निकृष्ट साबित करा दे ॥ ११ ॥

नायकेन तु कलहितामेनां पक्षपातावलम्बनोपबृंहितामाश्वासयेत् ॥ १२ ॥

नायकेन तु कलहितामेनां दौर्जन्योपन्यासेन। पक्षपातावलम्बनोपबृंहितामिति तद्गुणोपबृंहितां दापितप्रत्युत्तरामाश्वासयेत् ॥ १२ ॥

पति के साथ जिसका बिगाड़ हो जाए उसका कलह और बढ़ा दिया जाए, इसके बाद फिर सुलह करायी जाए ॥ १२ ॥

कलहं च वर्धयेत् ॥ १३ ॥

नायकेन सह। यत्नस्य तदर्थत्वात् ॥ १३ ॥

वह जेठी स्त्री अपनी सौतों में लड़ाई को बढ़ाती रहे ॥ १३ ॥

मन्दं वा कलहमुपलभ्य स्वयमेव संधुक्षयेत् ॥ १४ ॥

छिद्यमानं तूपलभ्य कलहं संधुक्षयेद्यथा न मन्दीभवति ॥ १४ ॥

जब लड़ाई शिथिल होते देखे तो फिर चिनगारी लगा दे ॥ १४ ॥

यदि नायकोऽस्यामद्यापि सानुनय इति मन्येत तदा स्वयमेव सन्धौ प्रयतेतेति ज्येष्ठावृत्तम् ॥ १५ ॥

स्वयं वा संधौ प्रयतेत। यद्ययमेकान्तेनास्यां निरनुनयस्तदा तिष्ठत्वसमद्विधैव मैनामवमन्यस्वमिति प्रसादयेत्। इति ज्येष्ठावृत्तं चतुस्त्रिंशं प्रकरणम् ॥ १५ ॥

इतने पर भी जब वह समझ ले कि नायक उस पर प्रेम करता है तब वह जेठी सौत खुद सुलह कराने का प्रयत्न करे। ज्येष्ठ सपत्नी (सौत) का बर्ताव समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

कनिष्ठापि भार्या कथं वर्तेतेति कनिष्ठावृत्तमुच्यते—

कनिष्ठा तु मातृवत्सपत्नीं पश्येत् ॥ १६ ॥

मातृवन्मातरमिव ज्येष्ठाम् ॥ १६ ॥

कनिष्ठावृत्त प्रकरण

अब छोटी सौत का बर्ताव बताते हैं—

छोटी बहू अपने से बड़ी को माता के समान समझे ॥ १६ ॥

ज्ञातिदायमपि तस्या अविदितं नोपयुञ्जीत ॥ १७ ॥

अज्ञार्पणोपाय एषः ॥ १७ ॥

अपने माँ-बाप, भाई-बन्धुओं से प्राप्त वस्तुओं को भी बड़ी बहू की आज्ञा बिना उपयोग में न लाए ॥ १७ ॥

आत्मवृत्तान्तांस्तदधिष्ठितान् कुर्यात् ॥ १८ ॥

आत्मवृत्तान्तानित्यात्मनि प्रतिषिद्धत्वाद् व्यवहारान् । तदधिष्ठितान् ॥ १८ ॥

अपना समस्त कार्य-व्यवहार उसके अधीन कर दे ॥ १८ ॥

अनुज्ञाता पतिमधिशयीत ॥ १९ ॥

अनुज्ञाता ज्येष्ठया धर्मप्राप्तेऽधिशयने पतिमधिशयीत ॥ १९ ॥

उसकी आज्ञा लेकर पति के समीप जाए ॥ १९ ॥

न वा तस्या वचनमन्यस्याः कथयेत् ॥ २० ॥

तस्या वचनं-ज्येष्ठावचनं, सदसद्वान्यस्या अग्रे न कथयेत् । कलहपरिहारार्थम् ॥ २० ॥

उसकी बात को और किसी से न कहे ॥ २० ॥

तदपत्यानि स्वेभ्योऽधिकानि पश्येत् ॥ २१ ॥

तदपत्यानि- ज्येष्ठान्यज्येष्ठानि च ॥ २१ ॥

अपने बच्चों से अधिक उसके बच्चों को प्यार करे ॥ २१ ॥

रहसि पतिमधिकमुपचरेत् ॥ २२ ॥

रहसि शयने । अधिकमुपचरेद्येनायमन्याभ्यस्तस्यामनुरज्येत ॥ २२ ॥

किन्तु एकान्त में पति की सेवा उससे अधिक करे ॥ २२ ॥

आत्मनश्च सपत्नीविकारजं दुःखं नाचक्षीत ॥ २३ ॥

सपत्नीविकारजम्—सपत्नीपरिभवजम् । नात्मना परस्याचक्षीत । स्वयं कथ्यमानं नायको न प्रतीयात् । अन्येन तु कथयेत् ॥ २३ ॥

सौत से जो कष्ट होता हो, वह पति से न कहे ॥ २३ ॥

पत्युश्च सविशेषकं गूढं मानं लिप्सेत् ॥ २४ ॥

पत्युः सविशेषकमित्यन्यतरभार्याभ्यो वैशेषिकीं पूजां पत्युः सकाशादप्रकटं लब्धुमिच्छेत् ॥ २४ ॥

दूसरी सौतों के न रहने पर पति से अधिक सम्मान और प्रेम पाने की कोशिश करे ॥ २४ ॥

अनेन खलु पथ्यदानेन जीवामीति ब्रूयात् ॥ २५ ॥

अनेनेति सविशेषेण मानेन । पथ्यदानेन शम्बलभूतेन जीवामि ॥ २५ ॥

और पति से कहे कि आपका सम्मान ही मेरा जीवन है ॥ २५ ॥

तत्तु श्लाघया रागेण वा बहिर्नाचक्षीत ॥ २६ ॥

तन्मानम् । श्लाघया विकत्थनेन । रागेण चेति सपत्नीक्रोधेन । बहिः सामान्यजनस्य नाचक्षीत ॥ २६ ॥

किन्तु पति से प्राप्त सम्मान को घमण्ड से अथवा लड़ाई हो जाने पर कभी व्यक्त न करे ॥ २६ ॥

दोषमाह—

भिन्नरहस्या हि भर्तुरवज्ञां लभते ॥ २७ ॥

अवज्ञा तिरस्कारः ॥ २७ ॥

पति का रहस्य प्रकट कर देने वाली स्त्रियाँ पति के द्वारा अपमानित हुआ करती हैं ॥ २७ ॥

ज्येष्ठाभयाच्च निगूढसंमानार्थिनी स्यादिति गोनर्दीयः ॥२८॥

अन्यथा सविशेषं मानं पश्यन्ती कुप्येदनर्थं वा चिन्तयेत्। गोनर्दीयमतमनुमतम्। अप्रतिषिद्धत्वात् ॥ २८ ॥

बड़ी सौत के भय से एकान्त में ही पति के सम्मान का आनन्द लेना चाहिए। यह गोनर्दीय आचार्य का मत है ॥ २८ ॥

दुर्भगामनपत्यां च ज्येष्ठामनुकम्पेत नायकेन चानुकम्पयेत् ॥

अनुकम्पयेत्संभाषणं क्रियतामिति। आत्मसाधुत्वख्यापनार्थम् ॥ २९ ॥

अभागिन सन्तानरहित जेठी सौत पर छोटी सौत दया करे और पति को भी उस पर दया रखने को प्रेरित करे ॥ २९ ॥

प्रसह्य त्वेनामेकचारिणीवृत्तमनुतिष्ठेदिति कनिष्ठावृत्तम् ॥

एनामिति दुर्भगामनपत्यां ज्येष्ठाम्। ज्येष्ठाकनिष्ठयोर्मध्यवर्तिनीनां पूर्वापरापेक्षया ज्येष्ठाकनिष्ठावृत्तं योज्यम्। इति कनिष्ठावृत्तं पञ्चत्रिंशं प्रकरणम् ॥ ३० ॥

यह जो बड़ी और छोटी सौत का व्यवहार बताया गया है इसी के अनुसार जो इनके बाद बीच की छोटी बड़ी सौतें हों उनका भी ऐसा ही व्यवहार होना चाहिए। छोटी बहू का बर्ताव समाप्त हुआ ॥ ३० ॥

यथा कन्याभार्या तथा पुनर्भूरिति पुनर्भूवृत्तमुच्यते। पुनर्भूर्द्विधा—क्षतयोनिरक्षतयोनिश्च। तत्रान्त्या संस्कारार्हत्वात्कन्यायामेवान्तर्भूता। यथोक्तम्—'पुनरक्षतयोनित्वादूह्यते या यथाविधि' इति। द्वितीयाया न संस्कारः। स्वीकार एव केवलम्। सा च लोकेऽपरुद्धिकेत्युच्यते। सा चैवंविधा शास्त्रेऽनुज्ञातैव। यथाह वसिष्ठः—'मनोदत्ता वचोदत्ता या च मङ्गच्छयाचिका (?) उदकस्पर्शिका चैव या च पाणिगृहीतका ॥ अग्नि परिगता चैव पुनर्भूः प्रसवा च या ॥' इति। अत्र पूर्वाः षडक्षतयोनयः। प्रसवेति क्षतयोनिरित्यर्थः। तामेवाधिकृत्य वृत्तमाह—

विधवा त्विन्द्रियदौर्बल्यादातुरा भोगिनं गुणसंपन्नं च या पुनर्विन्देत्सा पुनर्भूः ॥ ३१ ॥

विधवेति मृतभर्तृका। इन्द्रियदौर्बल्यादितीन्द्रियाणि नियन्तुमसमर्थत्वात्। आतुरा कामेन बाध्यमाना। भोगिनमित्युपभोगसंपन्नम्। गुणसंपन्नमिति नायकगुणैर्युक्तम्। या पुनर्विन्देत द्वितीयं लभेत सा पुनर्भूर्भार्यात्वेन पुनर्भवतीति कृत्वा। भोगिनं गुणसंपन्नमिति गोनर्दीयमतमेतद्भविष्यति ॥ ३१ ॥

पुनर्भू-प्रकरण

काम-वासनाओं को नियंत्रित न रख सकने वाली विधवा जब भोगी, विलासी नायक-गुण सम्पन्नव्यक्ति को अपना पति बना लेती है तब उसे पुनर्भू कहा जाता है ॥ ३१ ॥

यतस्तु स्वेच्छया पुनरपि निष्क्रमणं निर्गुणोऽयमिति तदान्यं काङ्क्षेदिति बाभ्रवीयाः ॥ ३२ ॥

यतस्त्विति भर्तृगृहान्तरात्। स्वेच्छया निष्क्रान्ता पुनरपि यतः पुरुषात् स्वेच्छया निष्क्रमणं स्यात्। निर्गुणोऽयमिति निष्क्रमणोपायः ॥ ३२ ॥

अथवा कई स्त्रियाँ स्वेच्छा से अपने पति से असन्तुष्ट होकर दूसरा पति कर लेती हैं—यह बाभ्रवीयों का मत है ॥ ३२ ॥

सौख्यार्थिनी सा किलान्यं पुनर्विन्देत ॥ ३३ ॥

सौख्यार्थिनी विषयपरिभोगार्थिनी। किलेति वितर्के ॥ ३३ ॥

अथवा बहुत-सी स्त्रियाँ उपभोग के लिए भी दूसरे पुरुषों को प्राप्त करती हैं ॥

गुणेषु सोपभोगेषु सुखसाकल्यं तस्मात्ततो विशेष इति गोनर्दीयः ॥ ३४ ॥

सुखसाकल्यमिति—गुणसुरतपरिभोगसुखयोः समवायात्। तत्किमिति निष्क्रामति। यतश्चैवं तस्मात्ततो निर्गुणभोगिनो विशिष्यते गुणवान्भोगी या तु पुनः पुनर्निष्क्रामत्यसौ वेश्याविशेषेऽन्तर्भवति ॥ ३४ ॥

आचार्य गोनर्दीय का मत है कि यदि छोड़े गए दूसरे, तीसरे नायक से अधिक कामकला-कुशल चौथा नायक हो तो वह पुनर्भू स्त्री वर्तमान नायक को गुणहीन समझ कर चौथे नायक के पास जा सकती है। उससे भी अधिक यदि कोई अन्य नायक गुणी हो तो उसके पास जाकर रह सकती है। इस तरह उत्तरोत्तर निर्गुणी नायकों को छोड़ती और गुणी नायकों को पकड़ती हुई पुनर्भू स्त्री वेश्याकोटि में आ जाती है ॥ ३४ ॥

आत्मनश्चित्तानुकूल्यादिति वात्स्यायनः ॥ ३५ ॥

आत्मनश्चित्तानुकूल्यादिति । सत्यपि गुणवति भोगिनी चित्तं चेन्नानुकूलं तथापि न सुखसाकल्यं तस्मादयमपरो विशेषः । तेनोक्तलक्षणादगम्योऽन्यो दर्शयति ॥ ३५ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि जहाँ अपना मन बैठता हो वहीं पुनर्भू को बैठ जाना चाहिए ॥ ३५ ॥

सा बान्धवैर्नायकादापानकोद्यानश्रद्धादानमित्रपूजनादिव्ययसहिष्णु कर्म लिप्सेत ॥ ३६ ॥

सेति विधवा । बान्धवैः स्वैः । नायकाद्यत्कर्मणा लब्धुमिच्छेत्तत्रापानकं मद्यगोष्ठी । उद्यानं पुष्पफलौपयिकम् । श्रद्धादानं यच्छ्रद्धया दीयते । मित्रपूजनादीत्यादिशब्दात्स्वजनं च वस्त्रादिना । एतेषु कर्तव्येषु यद्व्ययं सहते कर्म । न तु ग्रासाच्छादनमात्रमिति । इयमुत्तमप्रकृतेर्लिप्सा ॥ ३६ ॥

उत्तम कोटि की पुनर्भू स्त्री अपने कुटुम्बियों से, जिसके घर बैठे उससे उसकी सेवा करके जो लेना चाहे वह इतना हो कि जिससे मद्यपान, मनोरंजन, दान-दक्षिणा और मित्रों के सत्कार आदि का खर्च चल जाए ॥ ३६ ॥

आत्मनः सारेण वालङ्कारं तदीयमात्मीयं वा बिभृयात् ॥

आत्मनः सारेण वेति । मध्यमाधमा सावधानीभूय धारयेदित्यर्थः ॥ ३७ ॥

मध्यम और निम्नकोटि की पुनर्भू स्त्री उपर्युक्त खर्च अपने निजी संचित धन से चलाए । और अपने ही जेवरात पहने । यदि अपने जेवरात न हों तो नायक के दिए हुए पहने ॥ ३७ ॥

प्रीतिदायेष्वनियमः ॥ ३८ ॥

प्रीतिदायेष्विति प्रीत्या दत्तेष्वनियमो धारणं प्रति ॥ ३८ ॥

नायक द्वारा प्रेम से दी गई वस्तु के उपयोग का कोई विशेष नियम नहीं है ॥ ३८ ॥

स्वेच्छया च गृहान्निर्गच्छन्ती प्रीतिदायादन्यन्नायकदत्तं जीयेत । निष्कास्यमाना तु न किंचिद्दद्यात् ॥ ३९ ॥

स्वेच्छया चेति (न तु) नायकदोषात्तेन गृहान्निर्गच्छन्तीति प्रीतिदायादन्यन्नायकदत्तं लोहक्षुरं (;) जीयेत दाप्येत ॥ ३९ ॥

अपनी इच्छा से एक नायक को छोड़कर दूसरे के पास चली जाए तो पहले नायक के दिए हुए उपहारों को छोड़कर बाकी उसकी सभी वस्तुएँ वह पुनर्भू स्त्री उसे वापस कर दे ॥ ३९ ॥

सा प्रभविष्णुरिव तस्य भवनमाप्नुयात् ॥ ४० ॥

सेति जिगमिषुः । प्रभविष्णुरिव स्वामिनीव नायकगृहं स्वीकुर्यात् । अनन्तमपि कालम् ॥ ४० ॥

जिस नायक के घर जाए वहाँ उसके घर की मालकिन बनकर रहे ॥४०॥

निजासु किं कुर्यादित्याह—

कुलजासु तु प्रीत्या वर्तेत ॥ ४१ ॥

कुलजास्विति धर्मोढासु । प्रीत्या स्नेहेन ॥ ४१ ॥

उसकी अन्य स्त्रियों से प्रेम का बर्ताव करे ॥ ४१ ॥

दाक्षिण्येन परिजने सर्वत्र सपरिहासा मित्रेषु प्रतिपत्तिः । कलासु कौशलमधिकस्य च ज्ञानम् ॥ ४२ ॥

परिजने सर्वत्र कुलजानां नायकस्य दाक्षिण्येन वर्तेत । सपरिहासा सविकारा कलासु कौशलं दर्शनीयमधिकस्य नायकाविदितस्य ज्ञानं दर्शयितव्यम् ॥ ४२ ॥

नायक के घर वालों के साथ अनुकूलता का व्यवहार करे । उसके मित्रों से हँसी-मजाक के साथ बात करे । कलाओं में कुशलता और अभिज्ञान का परिचय दे ॥ ४२ ॥

कलहस्थानेषु च नायकं स्वयमुपालभेत ॥ ४३ ॥

कलहस्थानेष्विति उपचितच्छेदः स्वैरिणीसंसर्गो द्विरात्रागमनं वासकान्निष्क्रमणं चेत्यस्याः कलहस्थानानि । तेषु स्वयमुपालभेत ॥ ४३ ॥

कुलटाओं के संसर्ग में रहने, कई रात बाहर रहने, उपचित की हानि करने पर नायक को उलाहना दे ॥ ४३ ॥

रहसि च कलया चतुःषष्ट्यानुवर्तेत । सपत्नीनां च स्वयमुपकुर्यात् । तासामपत्येष्वाभरणदानम् । तेषु स्वामीवदुपचारः । मण्डनकानि वेषानादरेण कुर्वीत । परिजने मित्रवर्गे चाधिकं विश्राणनम् । समाजापानकोद्यानयात्राविहारशीलता चेति पुनर्भूवृत्तम् ॥ ४४ ॥

रहसि चेति नायकं शयनागतम् । कलयेत्यालिङ्गनादिभिः पुरुषोपसृप्तान्तैः । सपत्नीनां कुलजानाम् । उपकुर्यादुत्पन्ने प्रयोजने । आभरणं मण्डनकादि । स्वामिवदुपचारस्तेषां कुलसंततिहेतुत्वात् । मण्डनकानि पुष्पानुलेपनादीनि । परिजन इत्यात्मीये । विश्राणनमिति दानम् । समाजेति गोष्ठीशीलता आपानशीलता उद्यानविहारशीलता चेति पुनर्भूवृत्तं षट्त्रिंशं प्रकरणम् ॥ ४४ ॥

नायक की इच्छा के अनुसार एकान्त में ६४ कलाओं का प्रदर्शन करे। अपनी सौतों का शुभचिन्तन बिना किसी प्रेरणा के करे। उनके बच्चों को वस्त्रालंकार प्रदान करे। आवश्यकता के अनुसार उनकी परिचर्या अभिभाविका बन कर करे। बड़े आदर सत्कार से सौतों के बच्चों को वस्त्राभूषण से अलंकृत किया करे। नायक के परिवार और मित्रजनों के प्रति अधिक उदारता दिखाए। मद्यपान और गोष्ठी विहारों में अधिक रुचि दिखाए। पुनर्भू स्त्री के ये चरित्र समाप्त हुए ॥ ४४ ॥

आसां भार्याणां दुर्भगापि काचित्संभवति तया कथं वर्तितव्यमिति दुर्भगा-वृत्तमुच्यते—

दुर्भगा तु सापत्नकपीडिता या तासामधिकमिव पत्यावुपचरेत्तामाश्रयेत्। प्रकाम्यानि च कलाविज्ञानानि दर्शयेत्। दौर्भाग्याद्रहस्यानामभावः ॥ ४५ ॥

दुर्भगा त्विति। सापत्नकपीडितेति दौर्भाग्यफलम्। तासामिति सपत्नीनां मध्ये या पत्यौ [उप] चरेत्। अधिकमिवेति—नायकेनाधिकृतेन या त्वधिका सपत्न्युपचिता तां सुतरामेवाश्रयेत्। तामाश्रित्य प्रकाश्यानि कलाविज्ञानानि पत्त्रच्छेद्यादिकौशलानि दर्शयेत्। वैदग्ध्यख्यापनं हि दौर्भाग्यनिवृत्तिकारणम् ॥ ४५ ॥

दुर्भगावृत्त प्रकरण

ऐसी पुनर्भू स्त्रियों में अभागिन पुनर्भू वे होती हैं जो अपनी सौतों द्वारा सतायी जाती हैं। ऐसी अभागिनों को चाहिए कि वे उस सौत का पक्ष ग्रहण करें जिसे उनका नायक अधिक मानता हो। प्रदर्शन योग्य कलाओं को उसे दिखाएँ क्योंकि प्रवीणता का परिचय करा देने से भी बदनसीबी खत्म हो जाती है ॥ ४५ ॥

नायकापत्यानां धात्रेयिकानि कुर्यात् ॥ ४६ ॥

धात्रेयिकान्यभ्यञ्जनोद्वर्तनस्नपनादीनि ॥ ४६ ॥

नायक की सन्तानों का लालन-पालन धाय की भाँति करे ॥ ४६ ॥

तन्मित्राणि चोपगृह्य तैर्भक्तिमात्मनः प्रकाशयेत् ॥ ४७ ॥

तन्मित्राणि चेति नायकमित्राणि। चोपगृह्य प्रियहिताभ्याम्। तैरित्युपगृहीतैर्भक्तिमात्मनः श्रावयेदशाठ्यख्यापनार्थम् ॥ ४७ ॥

नायक के मित्रों को अनुकूल बनाकर उनके द्वारा नायक पर अपनी निष्ठा व्यक्त करे ॥ ४७ ॥

धर्मकृत्येषु च पुरश्चारिणी स्याद्व्रतोपवासयोश्च ॥ ४८ ॥

धर्मकृत्येषु श्राद्धादिषु पुरश्चारिणी प्रारम्भिका स्यात् । व्रतोपवासयोश्च नायकेन क्रियमाणयोः पुरश्चारिणी ॥ ४८ ॥

नायक के घर धर्म कार्य, व्रत और उपवास संबंधी जो त्योहार पड़े उसमें वह अगुवा रहे ॥ ४८ ॥

परिजने दाक्षिण्यम् । न चाधिकमात्मानं पश्येत् ॥ ४९ ॥

परिजने नायकस्य दाक्षिण्यमानुकूल्यं दर्शयितव्यम् न चाधिकमात्मानं पश्येत्सपत्नीभ्यः परिजनेभ्यश्च । दौर्भाग्यहेतुत्वादिति । बाह्यमेतद्वृत्तम् ॥ ४९ ॥

नायक के परिवार वालों के प्रति अनुकूलता प्रदर्शित करती हुई वह अपना बड़प्पन न देखे ॥ ४९ ॥

आभ्यन्तरमाह—

शयने तत्सात्म्येनात्मनोऽनुरागप्रत्यानयनम् ॥ ५० ॥

तत्सात्म्येनेति—नायकानुकूल्येन । यथैव नायकोऽभियुक्ते तथैवानिच्छन्त्यप्यात्मनोऽनुरागमातृप्ति प्रत्यानयेत् ॥ ५० ॥

नायक के साथ शयन करते समय उसकी प्रकृति के अनुकूल अनुराग को पुनः उत्पन्न करे ॥ ५० ॥

न चोपालभेत वामतां च न दर्शयेत् ॥ ५१ ॥

न चोपालभेतेति तवाहमप्रियेति । वामतां प्रातिकूल्यमङ्गगूहनेन न दर्शयेत् ॥

न तो नायक को उलाहना दे और न अपनी कुटिलता दिखाए ॥ ५१ ॥

यया च कलहितः स्यात्कामं तामावर्तयेत् ॥ ५२ ॥

यया हि पत्न्या कलहितः स्यात्तामावर्तयेदभिमुखीकुर्यात् । काममित्यभ्युपगमे । अनेनापि प्रकारेण ममाभिमुखः स्यात् ॥ ५२ ॥

नायक पुनर्भू की जिस सौत से लड़ गया हो वह उसे अपनी ओर मिलाने की चेष्टा करे ॥ ५२ ॥

यां च प्रच्छन्नां कामयेत्तामनेन सह संगमयेद्गोपयेच्च ॥५३॥

यां प्रच्छन्नां परस्त्रियं कामयेदनेन दूतीकर्मणा तां संगमयेत् । काममित्येव गोपयेच्चेतरस्मै नाचक्षीत ॥ ५३ ॥

नायक जिस स्त्री से गुप्त प्रेम करता हो उस स्त्री को नायक से मिलाने तथा फिर छिपा देने का प्रयत्न पुनर्भू स्त्री करे ॥ ५३ ॥

यथा च परिव्रतात्वमशाठ्यं नायको मन्येत तथा प्रतिविदध्यादिति दुर्भगावृत्तम् ॥ ५४ ॥

प्रतिविदध्यादनुतिष्ठेत् । जाड्यदौःशील्ययोः प्रायेण दौर्भाग्यहेतुत्वात् । इति दुर्भगावृत्तं सप्तत्रिंशं प्रकरणम् ॥ ५४ ॥

पुनर्भू को ऐसे आचरण करना चाहिए जिससे नायक उसे पतिव्रता समझे । दुर्भगा का यह वृत्त समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

यथा भार्याधिकारस्तथा भार्यायां नायकस्यापीति सप्तमीसमासोऽपि द्रष्टव्यः । अन्यथा नायकेन संगताप्यनुवर्तिता न संप्रयुज्येत । तत्र नायको द्विविधः—राजन्यको जानपदश्च । तत्र पूर्वमधिकृत्यान्तःपुरिकमुच्यते । अन्तःपुरे भवं वृत्तमान्तःपुरिकम् । 'रोपधेतोः प्राचाम्' इति वुञ् ।

ननु च यथा राज्ञो वृत्तं तथान्तःपुरिकाणामपि वक्तव्यमित्याह—

अन्तःपुराणां च वृत्तमेतेष्वेव प्रकरणेषु लक्षयेत् ॥ ५५ ॥

अन्तःपुराणां चेति तत्स्थस्त्रीणामेवाभिधानम् । एतेष्वेव प्रकरणेषु लक्षयेत् । तत्राप्येकचारिणीज्येष्ठादयः सन्तीति पृथङ्नोक्तम् ॥ ५५ ॥

अन्तःपुरिक वृत्त प्रकरण

पिछले प्रकरण में ज्येष्ठा, कनिष्ठा सौतों के जो आचरण बताए गए हैं उसी के अनुसार अन्तःपुर की रानियों के आचरण भी समझ लेने चाहिए ॥ ५५ ॥

राज्ञस्तु पृथगुच्यते—

माल्यानुलेपनवासांसि चासां कञ्चुकीया महत्तरिका वा राज्ञो निवेदयेयुर्देवीभिः प्रहितमिति ॥ ५६ ॥

देवीभिः प्रहितमिति ॥ ५६ ॥

अन्तःपुर की कंचुकियों और महत्तरिकाओं को चाहिए कि वे रानियों के माल्य, उपलेपन और वस्त्र लेकर राजा को यह कहकर दें कि—इन्हें अमुक रानी ने भेजा है ॥ ५६ ॥

तदादाय राजा निर्माल्यमासां प्रतिप्राभृतकं दद्यात् ॥५७॥

तदादायेत्याद्यनुरागख्यापनार्थम् ॥ ५७ ॥

उन वस्तुओं को लेकर राजा अपनी धारण की हुई वस्तुओं को उन रानियों के पास भेजे जिन्होंने माल्य, उपलेपन आदि भेजे थे ॥ ५७ ॥

अलंकृतश्च स्वलंकृतानि चापराह्णे सर्वाण्यन्तःपुराण्यैकध्येन पश्येत् ॥ ५८ ॥

अलंकृतश्चेति गृहीतनेपथ्यो राजा ऐकध्येनेत्येकधाशब्दाद्धावे ध्यमुन् ॥ ५८ ॥

राजा को चाहिए कि वह तीसरे पहर अन्तःपुर जाने की पोशाक पहन कर शृंगार की हुई रानियों का सहसा अवलोकन करे ॥ ५८ ॥

तासां यथाकालं यथार्हं च स्थानमानानुवृत्तिः सपरिहासाश्च कथाः कुर्यात् ॥ ५९ ॥

यथार्हं चेति यद्यस्याः कुलवयोऽपेक्षया स्थानं नियोगो मानः पूजा आभ्यामनुवृत्तिः कार्या । सपरिहासाः सर्वाकाराः कथाः । परिणीतास्विदं वृत्तम् ॥ ५९ ॥

समय और रानियों की योग्यता के अनुकूल उनके साथ संभोग करे, उन्हें सम्मान प्रदान करे तथा हँस-हँस कर उनसे बातें भी करे ॥ ५९ ॥

तदनन्तरं पुनर्भुवस्तथैव पश्येत् ॥ ६० ॥

तदनन्तरमिति परिणीतादर्शनानन्तरम् । पुनर्भुवस्तथैव पश्येदैकध्येन तथा स्थानमानानुवृत्तिभिश्च ॥ ६० ॥

इसके बाद रखेल स्त्रियों से भी इसी प्रकार का व्यवहार करे ॥ ६० ॥

ततो वेश्या आभ्यन्तरिका नाटकीयाश्च ॥ ६१ ॥

आभ्यन्तरिका अन्तःपुरिका । नाटकीयाश्च नाटकहिताः । तथैव पश्येदेव ॥

तदनन्तर अन्तःपुर में रहने वाली वेश्याओं और रंगमंच की अभिनेत्रियों से भी ऐसी ही मुलाकात करे ॥ ६१ ॥

तासां यथोक्तकक्षाणि स्थानानि ॥ ६२ ॥

तासामिति पुनर्भ्वादीनाम् । यथोक्तकक्षाणीति मध्ये देवीनां स्थानम् । ततो बहिःकक्षे पुनर्भुवाम् । ततो बहिर्वेश्यानाम् । ततोऽपि नाटकीयानामिति ॥ ६२ ॥

रनिवास के मध्य में विवाहित रानियों का निवासस्थान हो, उसके बाद बाहरी कक्षाओं में रखेल स्त्रियों का, उसके बाहर वेश्याओं का और उसके बाद के कक्ष में अभिनेत्रियों, नर्तकियों का निवासस्थान होना चाहिए ॥ ६२ ॥

वासकपाल्यस्तु यस्या वासको यस्याश्चातीतो यस्याश्च ऋतुस्तत्परिचारिकानुगता दिवा शय्योत्थितस्य राज्ञस्ताभ्यां प्रहितमङ्गुलीयकाङ्कमनुलेपनमृतुं वासकं च निवेदयेयुः ॥ ६३ ॥

[अतीतो–व्यस] नोत्सवाभ्यामन्तरितः । ऋतुश्च यस्याः प्रत्युपस्थितः । तत्परिचारिकानुगता इति–तिसृणामपि देवी (व्यादी) नां याः परिचारिकास्ताभिरनुगता वासकपाल्यः । दिवाशय्योत्थितस्य—भुक्त्वा शयितोत्थितस्य । ताभ्यामिति–यस्या [वासको] अतीतो यस्याश्च ऋतुः । अंगुलीयकाङ्कमिति

मुद्रितम् । अनुलेपनं संबन्धिनः ख्यापनार्थम् । वासकं क्रमप्राप्तमतीतं वा । ऋतुं च प्रत्युपस्थितम् ॥ ६३ ॥

अन्तःपुर में राजा के भोग-विलास का प्रबंध करने वाली (वासकपाली) को चाहिए कि जिस अन्तःपुरिका के साथ संभोग करने की पारी हो, किसी कारणवश जिसकी पारी खत्म हो चुकी हो और जो रानी ऋतुमती हुई हो उन सबकी परिचारिकाओं को अपने साथ लेकर वह भोजन के बाद शयन से उठे हुए राजा को उन रानियों द्वारा भेजी गई अपने नाम से अंकित अंगूठी, कुंकुम का उपलेपन और वासक भेंट करे ॥ ६३ ॥

तत्र राजा यद् गृह्णीयात्तस्या वासकमाज्ञापयेत् ॥ ६४ ॥

तत्रेति निवेदिते । यद् गृह्णीयादिति—यदीयमंगुलीयकम् ॥ ६४ ॥

भेंट में आयी हुई वस्तुओं में से जिसकी अंगूठी राजा स्वीकार कर ले उस रानी की परिचारिका रानी को यह खबर कर दे कि आज राजा शयनगृह में पधारेंगे ॥ ६४ ॥

उत्सवेषु च सर्वासामनुरूपेण पूजापानकं च । संगीत-दर्शनेषु च ॥ ६५ ॥

अनुरूपेण पूजेति—कुलवयोऽनुरूपा । आपानकं च ताभिः सह ॥ ६५ ॥

अन्तःपुर के उत्सवों में सभी प्रकार की रानियों का सत्कार राजा मद्यपान आदि के द्वारा करे । संगीतगोष्ठी में भी सभी का समान समादर हो ॥ ६५ ॥

अन्तःपुरचारिणीनां बहिरनिष्क्रमो बाह्यानां चाप्रवेशः । अन्यत्र विदितशौचाभ्यः । अपरिक्लिष्टश्च कर्मयोग इत्यान्तःपुरिकम् ॥ ६६ ॥

अप्रवेश (अन्यत्र) इति । ता ह्युपधाशुद्धत्वान्नान्यत्प्रयोजयन्ति । अपरिक्लिष्टश्च कर्मयोग इति रतोपचारोऽकदर्थितः स्यात् । इत्यान्तःपुरिकमष्टत्रिंशं प्रकरणम् ॥ ६६ ॥

अन्तःपुरिकाओं को बाहर न निकलने दिया जाए तथा संदिग्ध चरित्र वाली स्त्रियों को अन्तःपुर में प्रविष्ट न होने दिया जाए । जिनके पवित्र आचरण का परिचय हो उन्हें ही अन्तःपुर में प्रवेश करने दिया जाए । रानियों के साथ राजा उच्चकोटि की कलात्मक विधियों से सहवास करे—अन्तःपुर के आचरण समाप्त हुए ॥ ६६ ॥

यथा राज्ञो बह्वयः स्त्रियस्तथा जनपदस्यापि भवन्तीति पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिरुच्यते ।

तत्र सामान्यमाह—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

पुरुषस्तु बहून् दारान् समाहृत्य समो भवेत् ।
न चावज्ञां चरेदासु व्यलीकान्न सहेत च ॥ ६७ ॥

समो भवेदिति–नैकत्र स्नेहेन वर्तेत । न चावज्ञां चरेदिति–गुणरूपरहितास्वपि तिरस्कारं न कुर्वीत । व्यलीकानपराधान्न सहेत । अन्यथा क्षान्तेषु पुनः कुर्युः ॥ ६७ ॥

इस विषय के प्राचीन श्लोक हैं—

जो पुरुष कई स्त्रियों का पति हो उसे सब के साथ समान बर्ताव करना चाहिए । न तो किसी का अनादर ही करे और न किसी के अपराधों की उपेक्षा ही करे ॥ ६७ ॥

एकस्यां या रतिक्रीडा वैकृतं वा शरीरजम् ।
विस्रम्भाद्वाप्युपालम्भस्तमन्यासु न कीर्तयेत् ॥ ६८ ॥

'युक्तं वासकशय्यया (सज्जया)' इति पाठान्तरम् । अन्यासु न कीर्तयेदिति स्त्रीणां वैराग्यहेतुत्वात् ॥ ६८ ॥

कोई अन्तःपुरिका अपनी रतिक्रीडा या शरीर में उत्पन्न विकृत भाव अथवा उपालम्भ को विश्वास में आकर किसी और रानी या रखेल से न कहे ॥ ६८ ॥

न दद्यात्प्रसरं स्त्रीणां सपत्न्याः कारणे क्वचित् ।
तथोपालभमानां च दोषैस्तामेव योजयेत् ॥ ६९ ॥

प्रसरं न दद्यात्कलहपरिहारार्थम् । सपत्न्याः कारणे इति–सापत्न्यसंबन्धिनि सत्यपि निमित्ते । तथा तेनैव प्रकारेण निःसर (सार ?) तयोपालभमानां युक्तमेवोपेक्षितमिति । दोषैस्तामेव योजयेत्तवैव दोषो न तस्या इति ॥ ६९ ॥

राजा को चाहिए कि कलह का कारण उपस्थित होने पर भी सौतों को लड़ने का अवसर न दे तथा जो आकर उलाहना दे, शिकायत करे उसी को दोषी ठहराए ॥ ६९ ॥

प्रत्येकं प्रतिपत्तिमाह—

अन्यां रहसि विस्रम्भैरन्यां प्रत्यक्षपूजनैः ।
बहुमानैस्तथा चान्यामित्येवं रञ्जयेत् स्त्रियः ॥ ७० ॥

रहसि विश्वासैर्या लज्जावती । प्रत्यक्षपूजनैर्या सपत्नीषु पंक्तिमिच्छति । बहुमानैर्या मनस्विनी । ७० ॥

किसी को एकान्त में विश्वास देकर, किसी का प्रकट रूप में सम्मान करके तथा किसी को अतिशय सम्मान देकर अपने ऊपर सभी स्त्रियों को अनुरक्त रखने का प्रयत्न करते रहना चाहिए ॥ ७० ॥

उद्यानगमनैर्भोगैर्दानैस्तज्ज्ञातिपूजनैः ।
रहस्यैः प्रीतियोगैश्चेत्येकैकामनुरञ्जयेत् ॥ ७१ ॥

उद्यानगमनैर्या तच्छीला। भोगैर्या परिभोगलालसा। तज्ज्ञातिपूजनैर्या ज्ञातिषु कर्तव्यबुद्धिः। रहस्यै रहसि भवैः प्रीतियोगैर्या रतिप्रिया ॥ ७१ ॥

प्रत्येक स्त्री को अलग-अलग क्रम से—वनविहार, भोगविलास, उपहार-प्रदान, उसके भाई-भतीजों का सत्कार कर तथा एकान्त प्रेम द्वारा अनुरक्त रखना चाहिए ॥ ७१ ॥

अधिकरणार्थानुष्ठाने फलमाह—

युवतिश्च जितक्रोधा यथाशास्त्रप्रवर्तिनी ।
करोति वश्यं भर्तारं सपत्नीश्चाधितिष्ठति ॥ ७२ ॥

जितक्रोधेति शास्त्रानुष्ठाने कारणम्। यथाशास्त्रप्रवर्तिनीति यद्यस्याः शास्त्रमेकचारिणीज्येष्ठादिवृत्तम्। सपत्नीरधितिष्ठतीति 'अधिशीङ्स्थासां–' इति कर्मसंज्ञा। इति पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिरेकोनचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ७२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां भार्याधिकारिके चतुर्थेऽधिकरणे सपत्नीषु ज्येष्ठावृत्तं कनिष्ठावृत्तं पुनर्भूवृत्तं दुर्भगावृत्तमान्तःपुरिकं पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिर्द्वितीयोऽध्यायः।

जो स्त्री क्रोध को नियंत्रित रखकर कामशास्त्र के अनुसार व्यवहार करती है वह अपने पति को वशीभूत बनाकर सभी सौतों में श्रेष्ठ पद प्राप्त करती है ॥ ७२ ॥

इस अध्याय का संबंध पिछले अध्याय से जुड़ा हुआ है। पिछले अध्याय में एकचारिणी पत्नी के आचार-व्यवहार का उपदेश दिया गया है, इस प्रकरण में यह बताया गया है कि वही एकचारिणी यदि सौतों से युक्त हो जाए तो उसे किस प्रकार का बर्ताव अपनी सौतों के साथ करना चाहिए। तब जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि किन कारणों से सौतें होती हैं। वात्स्यायन कहते हैं कि पति की मूर्खता से, उसके दुश्चरित्र होने से, स्त्री के बाँझ होने से

अथवा हर बार लड़की ही पैदा होने से एकचारिणी पत्नी को सौतों की वेदना भोगनी पड़ती है।

सौतों का वर्णन करते हुए वात्स्यायन ने बताया है कि मध्यम श्रेणी का गृहस्थ तो उपर्युक्त कारणों से दूसरा विवाह करता है किन्तु उच्चकोटि के नागरिक, राजा-महाराजा शौकिया अनेक विवाह करते हैं। वात्स्यायन ने सौतों के इस वर्गीकरण को दृष्टिगत रखते हुए मध्यम परिवार के नागरिक की दो पत्नियों में बड़ी और छोटी के कर्त्तव्यों का उल्लेख किया है—और एक से अनेक सौतें जब सम्भ्रान्त नागरिक के घर में होती हैं तो उनके कर्त्तव्य का विवेचन एक के बाद उत्तरोत्तर जेठी और छोटी बहुओं के बीच किया है।

दो सपत्नियों के रहते हुए बड़ी बहू के कर्त्तव्य का निर्देश करते हुए वात्स्यायन ने जो विस्तृत वर्णन किया है उसका सारांश यही है कि बड़ी बहू नई विवाहिता अपनी सौत के साथ छोटी बहिन या लड़की के समान व्यवहार करने, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा को न पैदा होने देने के लिए हर संभव उपाय करती रहे, उसकी गलतियों, उसके क्रोध-आक्रोश की परवाह न कर उचित अवसर पर उसे उचित सलाह देती रहे। उसकी हर सुख-सुविधा का खयाल बराबर रखती रहे। यहाँतक कि उसकी रतिक्रीड़ाओं का भी प्रबंध करे, उसे कामकलाओं की शिक्षा दे, उसके बच्चों को अत्यधिक प्यार करे, उसके मायके के लोगों का सम्मान अपने भाई-बन्धुओं से अधिक करे।

यदि कई एक सौतें हों तो जो स्त्री जिससे बड़ी हो वह अपनी छोटी सौत के साथ उपर्युक्त ढंग का बर्ताव करे। लेकिन बहुत-सी सौतें हो जाने पर कलह रोका नहीं जा सकता। परस्पर चढ़ा-उतरी के षड्यन्त्र आपस में किए ही जाते हैं। यदि पति किसी को अधिक प्यार करता है तो पहली स्त्री को, जिसे वह पहले प्यार करता था, दूसरी सौतें उकसा कर लड़ा देती हैं। लड़ाई हो जाने पर सिर-चढ़ी सौत की लल्लो-पत्तो दूसरी सौतें करने लगती हैं। इस तरह आपस का सौतियाडाह घर को कुरुक्षेत्र बनाए रखता है। लेकिन सौतों की इस भीड़ में जो समझदार और सुशील स्त्री होती है वह बड़े कौशल से अपना जीवन बिता लेती है। ऐसी सौत अपने से बड़ी सौत का समादर करती है, उनके बाल-बच्चों को अपने बच्चों के समान मानती है। बड़ी सौत की कोई बात इधर-उधर नहीं उड़ने देती। एकान्त में जब कभी पति से सहवास का मौका मिलता है तो उसकी अत्यधिक खुशामद कर उसे अपनी ओर आकृष्ट किए रहती है। सौतों द्वारा सताई जाने पर भी वह अपनी मानसिक वेदना पति से कभी नहीं कहती। कभी-कभी दूसरों से कहला देती है।

वात्स्यायन कहते हैं कि ऐसी चतुर सपत्नियों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अपने कौशल से पति को वशीभूत कर लेने पर उनमें ऐसा घमंड न आना चाहिए कि मदोन्मत्त होकर दूसरी सौतों का अनादर करने लग जाएँ। अपने और पति के बीच का कोई रहस्य भी प्रकट न करे, ऐसा करने से वह पति का विश्वास खो सकती है, उससे अनादर पा सकती है।

वात्स्यायन का सुझाव है कि यदि बड़ी सौत अभाग्यवश वन्ध्या हो तो छोटी सौत को उस पर दया करनी चाहिए और पति को भी उस पर अनुग्रह बनाए रखने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए।

इस अध्याय में वात्स्यायन ने एक पुनर्भूप्रकरण भी रखा है जिसमें पुनर्भू सपत्नियों का जिक्र किया है। जैसे विवाह के बाद कन्या भार्या कहलाती है उसी प्रकार पुनर्भू भी एक प्रकार की भार्या है। पुनर्भू भार्या के दो प्रकार हैं—एक तो क्षतयोनि दूसरी अक्षतयोनि। वसिष्ठस्मृति का कथन है कि जो अक्षतयोनि कन्या मन से, वचन से, मङ्गलाचार से, सङ्कल्प से पाणिग्रहण संस्कार से किसी को प्रदान कर दी गई हो और किसी कारणवश दुबारा उसका विवाह किसी के साथ कर दिया जाता है तो वह कन्या पुनर्भू भार्या कहलाती है। स्मृति के अनुसार पुनर्भू भार्याएँ ६ प्रकार की होती हैं। जिसके बाल-बच्चे पैदा हो जाते हैं वह क्षतयोनि कहलाती है। जो विधवा अपनी इन्द्रियों का संयम नहीं कर पाती और कामार्त्त होकर किसी विलासी पुरुष की भार्या बन जाती है वह पुनर्भू कहलाती है। अक्षतयोनि का तो दुबारा विवाह संस्कार शास्त्रविहित है किन्तु क्षतयोनि विधवा का पुनः संस्कार नहीं हो सकता, उसे यों ही रख लिया जाता है, वह रखेल कही जाती है।

वात्स्यायन इसी प्रसङ्ग पर तलाक की व्यवस्था देते हैं। उनका कहना है कि जिस स्त्री का पति मर गया हो वह यदि अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए किसी और के घर बैठ जाती है और फिर उसे भी छोड़ना चाहती हो तो स्वेच्छा से वह उसे छोड़ सकती है लेकिन 'यह कमजोर है, नपुंसक है'—ऐसा कुछ कहकर उसे छोड़ना चाहिए। वात्स्यायन कहते हैं कि जिसने अपनी विषय-वासनाओं की तृप्ति के लिए विवाहित पति का घर छोड़ दिया है वह फिर एक नहीं हजार पति छोड़ सकती है। उसके लिए मनाही नहीं है। लेकिन एक-दो-तीन को जब वह लगातार छोड़ती-पकड़ती जाएगी तो उसकी गिनती पत्नी में न होकर वेश्या में होगी।

इसके विपरीत वात्स्यायन उत्तम पुनर्भू के सम्बन्ध में कहते हैं कि उत्तम स्वभाव की पुनर्भू वही कही जा सकती है जो एक बार किसी के घर बैठ जाए

तो उस घर के परिवार की सेवा करके उनसे अपनी गुजर के लिए इतना प्राप्त कर ले जिससे अतिथि सत्कार, दान-दक्षिणा, उद्यानगोष्ठियों का खर्च पूरा हो सके। यदि वह नायक की इच्छा के विरुद्ध उसे छोड़कर दूसरे के पास रहना चाहती है तो उसे उचित है कि वह नायक द्वारा दी गई उसकी सभी वस्तुएँ वापस कर दे।

राजाओं के अन्तःपुर में निवास करनेवाली अनेक सौतों का वही कर्त्तव्य बताया गया है जो पिछले प्रकरण में मध्यम, उत्तम श्रेणी के गृहस्थ की अनेक स्त्रियों के लिए कहा गया है। यहाँ पर आचार्य राजा के लिए एक ही मूल बात यह कहते हैं कि चाहे जितनी पत्नियाँ हों किन्तु राजा को सबके साथ समान प्रेम, समान व्यवहार रखना चाहिए। सपत्नी की सफलता की कुञ्जी यह बतलाते हैं कि जो स्त्री क्रोध पर काबू रखती है और सदचार को प्रश्रय देती है वही अपनी सौतों पर, अपने पति पर विजय प्राप्त करती है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे भार्याधिकारिके चतुर्थेऽधिकरणे सपत्नीषु ज्येष्ठावृत्तं कनिष्ठावृत्तं पुनर्भूवृत्तं दुर्भगावृत्तमान्तःपुरिकं पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिर्द्वितीयोऽध्यायः॥

पारदारिकं पञ्चममधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनप्रकरणम्

कन्यापुनर्भूनायकयोः समागमोपायः सविशेष उक्तः। तत्र वेश्यायाः काम एव परदारेभ्योऽर्थंकामाविति तत्समागमोपायदर्शनार्थं वैशिकात्प्राक्पारदारिकमुच्यते ।

तत्र स्त्रीपुंसयोः शीलमनवस्थाप्योत्तरव्यापारासंभवात्स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनमुच्यते ।

परपरिगृहीतासु कामः प्रतिषिद्ध इति चेदाह—

व्याख्यातकारणाः परपरिग्रहोपगमाः ॥ १ ॥

व्याख्यातकारणा इति–परपरिग्रहगमनस्य सुखपुत्रव्यतिरेकेण कारणानि विशुद्धपूर्वकाणि नायिकाविमर्शे व्याख्यातानीति स्मारयति ॥ १ ॥

पराई स्त्रियों से नाजायज सम्बन्ध जोड़ने के कारण पहले ही बताए जा चुके हैं ॥ १ ॥

तेषु साध्यत्वमनत्ययं गम्यत्वमायतिं वृत्तिं चादित एव परीक्षेत ॥ २ ॥

तेष्विति परपरिग्रहेषु । सत्स्वपि कारणेष्विदमादित एव परीक्षेतेत्याह । साध्यत्वमिति साधयितुं शक्येति । अनत्ययमत्ययाभावात् । गम्यत्वं कुष्ठिन्युन्मत्ताद्यभावात् । आयतिं प्रभावं (?) तत्संयोगात् । वृत्तिमात्मनो वृत्त्यभिधानात् ॥ २ ॥

परस्त्री के साथ गमन करने की इच्छा करने से पूर्व यह सोच लेना चाहिए कि अभीष्ट स्त्री मिल सकेगी या नहीं, उसको प्राप्त करने में प्राणों का सङ्कट तो नहीं उपस्थित होगा । वह गमन करने योग्य है या नहीं, उसे अपने वश में कर लेने के बाद मेरा प्रभाव कैसा रहेगा और मुझे लाभ क्या होगा ॥२॥

मुख (ख्य) मपि गमनकारणं यदा शरीरोपघातं पश्येदित्याह—

यदा तु स्थानात्स्थानान्तरं कामं प्रतिपद्यमानं पश्येत्तदात्मशरीरोपघातत्राणार्थं परपरिग्रहानभ्युपगच्छेत् ॥ ३ ॥

यदा त्विति–कांचित्स्त्रियं दृष्ट्वा संप्रयोगेच्छालक्षणः काम उत्पन्नस्तं यदा

प्रथमात्स्थानात्स्थानान्तरमवस्थान्तरं प्रतिपद्यमानं गच्छन्तं पश्येदनुभवेन्न च प्रतिसंख्या (स्थाप) ने निवर्तयितुमीशः स्यात् ॥ ३ ॥

जब किसी स्त्री को देखकर कामातुर हो, उस समय कामी व्यक्ति को यह सोचना चाहिए कि मैं कहाँ से कहाँ जा रहा हूँ। जब उसे यह विश्वास हो जाए कि उस स्त्री के सहवास के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता हूँ तभी पराई स्त्री से सहवास करे ॥ ३ ॥

तस्य कति स्थानानीत्याह—

दश तु कामस्य स्थानानि ॥ ४ ॥

कामो ह्युन्मादात्प्रभृति विषयाप्राप्तावनुकूलप्रत्ययवशात्प्रतिक्षणमुपवर्धमान आ-प्राणत्यागं वर्तते। तस्यासाधारणकार्योत्पत्त्या व्यवहारार्थं दश स्थानानि पूर्वाचार्यैरुक्तानि ॥ ४ ॥

व्यवहार के लिए काम के दश स्थान हैं ॥ ४ ॥

तानि क्रमेणाह—

चक्षुःप्रीतिर्मनःसङ्गः संकल्पोत्पत्तिर्निद्राच्छेदस्तनुता विषयेभ्यो व्यावृत्तिर्लज्जाप्रणाश उन्मादो मूर्च्छा मरणमिति तेषां लिङ्गानि ॥

स्त्रियं दृष्टवतः संयोगेच्छालक्षणात्कामादनन्तरं दृशौ स्निग्धे भवतः। ततो विषयाप्राप्तो मनःसङ्गस्तत्र मनसः सक्तिः। तस्मिन्सक्ते संकल्पोत्पत्तिः कथं प्राप्स्यामि प्राप्य चैवमनुष्ठातव्यमिति। ततः संकल्पयतो निद्राच्छेदः। ततो निद्रामलभमानस्य तनुता शरीरकार्श्यम्। ततो विषयेभ्यो व्यावृत्तिः। सर्वथा तद्गतचित्तत्वादन्यविषयाञ्ज्वलदनलप्रख्यान्नोपयाति। तेभ्यश्च व्यावर्तमानस्य लज्जा-प्रणाशनम्। गुरुभ्योऽपि निर्लज्जत्वान्न बिभेति। विप्रनष्टलज्जस्य निर्भयस्य चोन्मादः प्रवर्तते। ततो मूर्च्छा भवत्यस्वास्थ्यसंज्ञिका। ततो मरणं प्राण-त्यागः तेषामिति कामस्थानानां प्रतिपत्त्यर्थमेते चक्षुःप्रीत्यादयो लिङ्गानि। तत्कार्यत्वात् ॥ ५ ॥

स्त्री को देखकर आँखों में प्रेम छलक उठना, फिर मन आसक्त हो जाना, इसके बाद उसे प्राप्त करने का सङ्कल्प उत्पन्न हो जाना, निद्रा का न आना, दुर्बल होते जाना; विषयों से वैराग्य-सा हो जाना, लज्जा का नाश होना, उन्माद पैदा हो जाना, मूर्च्छा आना और मृत्यु हो जाना—ये काम के दश स्थान परिचायक हैं ॥ ५ ॥

तत्राकृतितो लक्षणतश्च युवत्याः शीलं सत्यं शौचं साध्यतां चण्डवेगतां च लक्षयेदित्याचार्याः ॥ ६ ॥

तत्रेति तस्मिन् रागवशादभिगमने शीलादिकमेव प्राधान्येन लक्षयेत्। आकृतित इति शरीरस्थाने। लक्षणतः शरीरस्थानचिह्नेन। शीलं वक्ष्यमाणकम्। सत्यं यथार्थवादिताम्। शौचं चारित्रविशुद्धिम् ॥ ६ ॥

कामशास्त्र के आचार्यों का मत है कि पराई स्त्री से सहवास करने में चतुर लोग स्त्री की सूरत-शकल और उसके लक्षणों को देखकर समझ लेते हैं कि कौन स्त्री शील, सत्य, पवित्रता से युक्त है और कौन व्यभिचार में प्रवृत्त हो सकने वाली है ॥ ६ ॥

व्यभिचारादाकृतिलक्षणयोगानामिङ्गिताकाराभ्यामेव प्रवृत्तिर्बोद्धव्या योषित इति वात्स्यायनः ॥ ७ ॥

सत्यप्याकृतियोगे लक्षणयोगेनावश्यं शीलसत्यशौचानि गम्यन्ते। साध्यासाध्यतां चण्डमृदुवेगतां पुनर्गमयन्त्येव। कथं तर्हि लक्षयेदित्याह—इङ्गिताकाराभ्यामिति। बोद्धव्या शीलादियुक्तेत्यर्थः। तत्रेङ्गिताकारौ कन्यासंप्रयुक्तकेऽभिहितौ। प्रवर्तनं प्रवृत्तिः। इङ्गितव्यतिरेकेण तत्र त्रिभिरेव सत्यशीलशौचानि विशेषाणि प्रवृत्त्या स्त्रीपुंसयोः ॥ ७ ॥

वात्स्यायन का मत है कि स्त्री के शरीर और शरीर के चिह्नों को देखकर ही सती या व्यभिचारिणी स्त्री पहचानी जा सकती है ॥ ७ ॥

कस्य किं शीलमित्याह—

यं कश्चिदुज्ज्वलं पुरुषं दृष्ट्वा स्त्री कामयते। तथा पुरुषोऽपि योषितम्। अपेक्षया तु न प्रवर्तते इति गोणिकापुत्रः ॥ ८ ॥

यं कंचिदिति स्वकीयं परकीयं वा पुरुषम्। उज्ज्वलं वर्णविषाभ्याम्। कामयते संजातरागा भवति। पुरुषोऽपि योषितमुज्ज्वलां दृष्ट्वा कामयते। अपेक्षया तु कस्यचित्कार्यस्य। प्रवर्तते द्वावपि न संप्रयुज्येते। तदुभयोरप्युज्ज्वलकामित्वं कार्यापेक्षित्वं च शीलम्। गोणिकापुत्रग्रहणं प्रावीण्यख्यापनार्थम् ॥ ८ ॥

आचार्य गोणिकापुत्र का मत है कि जिस तरह स्त्री किसी रूप-शील-गुण-समृद्धि-सम्पन्न पुरुष को देखकर उस पर आसक्त हो जाती है, उसी तरह पुरुष भी किसी सुन्दरी को देखकर उसे चाहने लगता है किन्तु किसी कार्य से रुके हुए एक दूसरे से मिल नहीं पाते ॥ ८ ॥

तत्र स्त्रियं प्रति विशेषः ॥ ९ ॥

तत्रेति तयोस्तुल्यशीलत्वेऽपि। विशेषः प्रत्येकं विशेष उच्यते ॥ ९ ॥

यद्यपि स्त्रियों और पुरुषों को ऐसी प्रवृत्ति में समानता है किन्तु स्त्रियों में परपुरुष पर रीझने की विशेष प्रवृत्ति पाई जाती है ॥ ९ ॥

न स्त्री धर्ममधर्मं चापेक्षते कामयत एव। कार्यापेक्षया तु नाभियुङ्क्ते ॥ १० ॥

न स्त्रीति–प्रवृत्तौ धर्मः स्यान्न वेति नापेक्षते। तमोबहुलत्वात्कामयत एवैनम्। कार्यापेक्षया तु नाभियुंक्त एवेति–तत्रात्मनि च दोषदर्शनात्। इदं दृष्टदोषदर्शित्वं शीलम् ॥ १० ॥

स्त्री धर्म और अधर्म की कोई परवाह नहीं करती, वह केवल कामना करती है किन्तु मिलने में अपने में कोई विशेष दोष देख लेती है तो फिर नहीं मिलती, क्योंकि देखे हुए दोष को देखने का स्त्री का शील होता है ॥ १० ॥

स्वभावाच्च पुरुषेणाभियुज्यमाना चिकीर्षन्त्यपि व्यावर्तते ॥

चिकीर्षन्त्यपीति–तेन सह योगं कर्तुमिच्छन्त्यपि व्यावर्तते नायकाभियोगात्। कारणापेक्षया यावदभियुक्तकामित्वं कारणापेक्षित्वं च शीलम् ॥ ११ ॥

जब कोई पुरुष उससे मिलने का उपाय करता है तो वह चाहती हुई भी स्वभावतः पीछे हट जाती है ॥ ११ ॥

पुनःपुनरभियुक्ता सिद्ध्यति ॥ १२ ॥

पुनःपुनरभियुक्ता सिद्ध्यतीति भूयोऽभियुक्तकामित्वं शीलम् ॥ १२ ॥

पुरुष के बारम्बार प्रयत्न करने पर ही वह उससे सम्बन्ध स्थापित करती है ॥ १२ ॥

पुरुषस्तु धर्मस्थितिमार्यसमयं चापेक्ष्य कामयमानोऽपि व्यावर्तते ॥ १३ ॥

धर्मस्थितिमिति–श्रुतिस्मृतिविहितमदृष्टार्थम्। आर्यसमयं शिष्टाचारं दृष्टार्थम्। कामयमानोऽपीतीच्छन्नपि व्यावर्तत इति दृष्टादृष्टदोषदर्शित्वं शीलम् ॥ १३ ॥

अधिकांश पुरुष ऐसे होते हैं जो चाहते हुए भी धर्म और समाज के डर से परस्त्री सहवास का प्रयत्न नहीं करते ॥ १३ ॥

तथाबुद्धिश्चाभियुज्यमानोऽपि न सिद्ध्यति ॥ १४ ॥

तथाबुद्धिश्चेति धर्मस्थित्यपेक्षी आर्यसमयापेक्षी चाभियुज्यमानोऽपि स्त्रिया। न सिद्ध्यति न प्रवर्तते। अस्य पूर्वोक्तमेव शीलम्। कर्तृकर्मभेदाद्भेदः ॥ १४ ॥

ऐसे पुरुष को यदि कोई स्त्री अपनी ओर से प्रेमपाश में बाँधना चाहे तो वे नहीं बँध सकते ॥ १४ ॥

निष्कारणमभियुङ्क्ते। अभियुज्यापि पुनर्नाभियुङ्क्ते। सिद्धायां च माध्यस्थ्यं गच्छति ॥ १५ ॥

निष्कारणमिति—सुखं कारणान्तरं चानपेक्ष्य । अभियुज्य पुनर्नाभियुंक्ते कारणस्यासमीहितत्वात् । इदं शुद्धकामित्वं शीलम् । सिद्धायां च माध्यस्थ्यं गच्छतीत्यभियुंक्ते न च संप्रयुज्यते । इति शुद्धकामित्वं शीलम् ॥ १५ ॥

स्त्रियाँ तो केवल भोग-विलास के लिए ही सम्बन्ध करती हैं किन्तु पुरुष तो सहवास करने के बाद फिर उदासीन हो जाता है ॥ १५ ॥

सुलभामवमन्यते । दुर्लभामाकाङ्क्षत इति प्रायोवादः ॥१६॥

सुलभामवमन्यते दुर्लभामाकांक्षत इति वामशीलत्वम् । इति स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनमेकोनचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ १६ ॥

अक्सर ऐसा देखा गया है कि पुरुष सहज प्राप्त होनेवाली स्त्री का अनादर करता है और कठिनाई से मिलनेवाली स्त्री के लिए प्रयत्न करता है ॥ १६ ॥

तत्र व्यावर्तनकारणानि ॥ १७ ॥

तत्रेति स्त्रीपुरुषशीलावस्थापने यानि व्यावर्तनकारणानि तानि प्रकरणान्तर्गतान्युच्यन्ते ॥ १७ ॥

व्यावर्त्तन कारण प्रकरण

जिन कारणों से स्त्रियाँ दूसरे पुरुषों की कामना नहीं करतीं उनका उल्लेख करते हैं ॥ १७ ॥

पत्यावनुरागः ॥ १८ ॥

पत्यावनुरागो व्यावृत्तिकारणं प्रत्यन्यायामपीप्सायाम् ॥ १८ ॥

दूसरे की इच्छा होते हुए भी पति का प्रेम स्त्री को रोक देता है ॥ १८ ॥

अपत्यापेक्षा ॥ १९ ॥

अपत्यापेक्षेति—स्तनंधयं ममापत्यमिति ॥ १९ ॥

दुधमुँहे बच्चे का प्रेम भी रोक देता है ॥ १९ ॥

अतिक्रान्तवयस्त्वम् ॥ २० ॥

अतिक्रान्तवयस्त्वमिति परिणतवया लज्जते बलात्परपुरुषाणामङ्गार्पणेनेति ॥

जवानी निकल जाने से भी स्त्री रुक जाती है ॥ २० ॥

दुःखाभिभवः ॥ २१ ॥

इष्टमरणादिदुःखाभिभूता जातेच्छापि व्यावर्तते ॥ २१ ॥

शोकातुर होने से भी रुक जाती है ॥ २१ ॥

विरहानुपलम्भः ॥ २२ ॥

विरहानुपलम्भो भर्तुः सदा संनिहितत्वाद्वियोगं न पश्यति येन संप्रयुज्यते ॥

जिसे कभी पति का वियोग नहीं होता वह भी रुक जाती है ॥ २२ ॥

अवज्ञयोपमन्त्रयत इति क्रोधः ॥ २३ ॥

अवज्ञयोपमन्त्रयतेऽनादरेणाभियुंक्त इति भयात्क्रोधो व्यावृत्तिकारणम् ॥२३॥

कहीं अनादर करने के लिए तो नहीं बुलाता है—ऐसा क्रोध करके भी दूर हट जाती है ॥ २३ ॥

अप्रतर्क्य इति संकल्पवर्जनम् ॥ २४ ॥

अप्रतर्क्यो दुःखग्राहचित्त इति तस्मिन्नबहुमानात्संकल्पवर्जनम् । मनो न संकल्पत इत्यर्थः ॥ २४ ॥

यह पुरुष वश में नहीं आ सकेगा—यह समझ कर भी सहवास का संकल्प छोड़ देती है ॥ २४ ॥

गमिष्यतीत्यनायतिरन्यत्र प्रसक्तमतिरिति च ॥ २५ ॥

गमिष्यतीति न चिरकालमनेन संप्रयोग इत्यनायतिर्भविष्यत्कालाभावः कारणम् । अन्यत्र प्रसक्तमतिरिति वानायतिस्तात्कालिकत्वात् ॥ २५ ॥

यह पुरुष किसी और से प्रेम कर लेगा अथवा किसी से प्रेम कर रहा है—यह सोचकर वह हट जाती है ॥ २५ ॥

असंवृताकार इत्युद्वेगः ॥ २६ ॥

असंवृताकार आकारसंवरणमकुर्वंल्लोके मद्वीतिकां करोतीति परिभवादुद्वेगः ॥ २६ ॥

वह पुरुष बातें छिपा नहीं सकता—यह सोचकर दूर हट जाती है ॥२६॥

मित्रेषु निसृष्टभाव इति तेष्वपेक्षा ॥ २७ ॥

मित्त्रेषु निसृष्टभावस्ते (तानि) च यदाहुस्तत्करोतीति च तेष्वपेक्षा मयि त्ववज्ञा ॥ २७ ॥

मित्रों से अपने मन की बात कह देता है, उनकी ही अपेक्षा करता है—इसलिए वह नहीं चाहती ॥ २७ ॥

शुष्काभियोगीत्याशङ्का ॥ २८ ॥

शुष्काभियोगी निष्कारणमभियुंक्त इत्याशङ्का ॥ २८ ॥

उसके उपायों को निरर्थक समझकर सहवास से दूर रहती है ॥ २८ ॥

तेजस्वीति साध्वसम् ॥ २९ ॥

तेजस्वीति साध्वसं–प्रमादावस्खलितेऽनर्थं करिष्यतीति ॥ २९ ॥

पुरुष की तेजस्विता के भय से उससे दूर रहती है ॥ २९ ॥

चण्डवेगः समर्थो वेति भयं मृग्याः ॥ ३० ॥

मृग्या इति मन्दवेगायाः । मृग्याश्चण्डवेगः समर्थो वेत्यस्य इति भयम् ॥ ३० ॥

मृगी जाति की स्त्री पुरुष के साधन को बड़ा और उसे चण्डवेगी समझ कर उससे सहवास नहीं कराती ॥ ३० ॥

नागरकः कलासु विचक्षण इति व्रीडा ॥ ३१ ॥

नागरक इति यो नागरकवृत्तावधिकृतः । कलासु च विचक्षणो नागरकादन्यः । व्रीडा ग्राम्याया अविदग्धायाश्च ॥ ३१ ॥

यह नागरक है, काम-कलाओं में बहुत दक्ष है—इस लज्जा से भी उससे सहवास नहीं कराती ॥ ३१ ॥

सखित्वेनोपचरित इति च ॥ ३२ ॥

सखित्वेनेति मित्रत्वेन मयायमुपचरितः कथं पुनरेवं कुर्यामिति च व्रीडा ॥

मेरा इसका मित्रता का व्यवहार रह चुका है ॥ ३२ ॥

अदेशकालज्ञ इत्यसूया ॥ ३३ ॥

अदेशकालज्ञ इति चासूया देशकालयोर्नाभियुक्त इति ॥ ३३ ॥

देश, काल को नहीं समझता—इस कारण घृणा ॥ ३३ ॥

परिभवस्थानमित्यबहुमानः ॥ ३४ ॥

परिभवस्थानं नीचत्वात् ततश्च सखीजनोऽन्यो वा मां परिभविष्यतीत्यर्थंचतेति तस्मिन्नबहुमानकारणम् ॥ ३४ ॥

यह पुरुष नीच कुल का है ऐसा समझकर अनादर करती है ॥ ३४ ॥

आकारितोऽपि नावबुध्यत इत्यवज्ञा ॥ ३५ ॥

अभिप्रायं दर्शितो नावबुध्यत इत्यवज्ञा न विदग्ध इति ॥ ३५ ॥

यह पुरुष इशारा भी नहीं समझ पाता—इस अनादर से ॥ ३५ ॥

शशो मन्दवेग इति च हस्तिन्याः ॥ ३६ ॥

हस्तिन्या इति चण्डवेगायाः । हस्तिन्याः शशो मन्दवेग इति चावज्ञा ॥ ३६ ॥

हस्तिनी नायिका को जब यह पता चल जाता है कि यह पुरुष शश जाति का है, इसका साधन छोटा है और मंदवेगी है तो वह उससे सहवास की इच्छा नहीं करती ॥ ३६ ॥

मत्तोऽस्य मा भूदनिष्टमित्यनुकम्पा ॥ ३७ ॥

मत्तोऽस्येति मन्निमित्तेन मामधिगच्छतो मा भूदनिष्टं शरीरतोऽर्थतो वेत्यनुकम्पा ॥ ३७ ॥

मेरे कारण बेचारे का कुछ बुरा न हो जाए इस भय से भी स्त्री सहवास से विरत हो जाती है ॥ ३७ ॥

आत्मनि दोषदर्शनान्निर्वेदः ॥ ३८ ॥

आत्मनि दोषदर्शनादिति शरीरे रोगादिकं वैगन्ध्यादिकं पश्यन्त्या निर्वेदः ॥

अपने ही में दोष देखकर भी स्त्री सहवास से दूर हो जाती है ॥ ३८ ॥

विदिता सती स्वजनबहिष्कृता भविष्यामीति भयम् ॥३९॥

विदिता स्वजनस्य विप्रतिपन्नेति तस्माद्बहिष्कृता भविष्यामीति भयम् ॥३९॥

कहीं यह प्रकट हो जाए कि मैं बदचलन हूँ तो कुटुम्बियों द्वारा निकाल ही जाऊँगी—इस भय से वह नहीं मिलती ॥ ३९ ॥

पलित इत्यनादरः ॥ ४० ॥

पलितो वृद्ध इत्यनादरः ॥ ४० ॥

वृद्ध देखकर भी आदर नहीं करती ॥ ४० ॥

पत्या प्रयुक्तः परीक्षत इति विमर्शः ॥ ४१ ॥

पत्या प्रयुक्त इति किं पतिव्रता नेति ज्ञातुं नियुक्तः परीक्षत इति विमर्शः ॥

कहीं मेरे ही पति ने तो इसे नहीं भेजा है—इस खयाल से भी नहीं मिलती ॥ ४१ ॥

धर्मापेक्षा चेति ॥ ४२ ॥

धर्मापेक्षा च कारणम् । अस्त्येव हि काचित्स्त्री या धर्माधर्मावपेक्षते ॥४२॥

धार्मिक भावना के कारण भी बुरे कर्म से मन हटा लेती है ॥ ४२ ॥

प्रतिविधानमाह—

तेषु यदात्मनि लक्षयेत्तदादित एव परिच्छिन्द्यात् ॥ ४३ ॥

तेष्विति व्यावर्तनकारणेषु यदात्मनि कारणं लक्षयेन्ममेदं भवितेति तदादित एव परिच्छिन्द्यात्परित्यजेद्यथा न भवति ॥ ४३ ॥

उपर्युक्त कारणों के होते हुए परस्त्री-गमन करनेवालों को क्या करना चाहिए—उसका विधान बतलाते हैं—

चालाकी से अपनी कमजोरियों और दोषों को स्त्रियों में प्रकट न होने दे ॥

उत्पन्नानि चात्मनि स्त्रियां वा परिच्छिन्द्यादुपायैरित्याह—

आर्यत्वयुक्तानि रागवर्धनात् ॥ ४४ ॥

आर्यत्वयुक्तानीति—पत्यावनुरागोऽपत्यापेक्षातिक्रान्तवयस्त्वं दुःखाभिभवो धर्मापेक्षा चेत्येतानि स्त्रीगतान्यार्यत्वयुक्तानि रागवर्धनात्परिच्छिन्द्याद्यथा तस्या रागो वर्धेत तथा प्रतिविधेयम् ॥ ४४ ॥

जिन विशिष्ट कारणों से चाहती हुई भी स्त्री नहीं मिलती पुरुष उन कारणों को अपना अनुराग बढ़ाता हुआ काटता जाए ॥ ४४ ॥

अशक्तिजान्युपायप्रदर्शनात् ॥ ४५ ॥

विरहानुपलम्भोऽस्य मा भूदनिष्टमात्मनि दोषदर्शनात् ॥ ४५ ॥

जिस असमर्थता के कारण स्त्री न मिलती हो उसकी उस असमर्थता को दूर करने का उपाय पुरुष उसे बता दे ॥ ४५ ॥

बहुमानकृतान्यतिपरिचयात् ॥ ४६ ॥

अप्रतर्क्यो नागरकः कलासु विचक्षणः सखित्वेनोपचरितः पत्या प्रयुक्तः परीक्षत इत्यात्मगतानि बहुमानकृतान्यतिपरिचयात् । कृतेऽतिपरिचये तस्योपरि मानो विगलति ॥ ४६ ॥

अत्यधिक आत्मसम्मान के अवरोध को स्त्री से अति परिचय बढ़ाकर दूर कर दे ॥ ४६ ॥

परिभवकृतान्यतिशौण्डीर्याद्वैचक्षण्याच्च ॥ ४७ ॥

शुष्काभियोगी अदेशकालज्ञः परिभवस्थानमाकारितो नावबुध्यते पलित इत्यात्मगतानि नायिकापरिभवकृतान्यतिशौण्डीर्यादिति—परिभवप्रक्षालनात् । वैचक्षण्याच्चेति—शास्त्रकलाप्रकाशनात् ॥ ४७ ॥

परिभव की भावना से उत्पन्न हुए अवरोध को कुशलतापूर्वक दूर कर दे ॥ ४७ ॥

तत्परिभवजानि प्रणत्या ॥ ४८ ॥

अवज्ञयोपमन्त्रयते असंवृताकारो मित्रेषु निसृष्टभाव इत्यात्मगतानि । तत्परिभवजानि नायिकापरिभवजानि । प्रणत्येति तत्रैकान्तप्रसृतया ॥ ४८ ॥

उसके प्रति स्त्री में जो अविश्वास हैं उन्हें अपनी नम्रता द्वारा दूर कर दे ॥ ४८ ॥

भययुक्तान्याश्वासनादिति ॥ ४९ ॥

तेजस्वी चण्डवेगः समर्थो भवति शशो मन्दवेगो विदिता सती स्वजनबहिष्कृता भविष्यामीत्यात्मगतानि भययुक्तान्याश्वासनादिति यथा न भयं तथा प्रतिविधानेनेति । इति व्यावर्तनकारणानि चत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ४९ ॥

भययुक्त अवरोधों को आश्वासनों द्वारा दूर कर दे ॥ ४९ ॥

एवं शीलमवधार्यात्मनः सिद्धतां पश्येत् । अन्यथाभियोगासंभवादिति स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषा उच्यन्ते—

पुरुषास्त्वमी प्रायेण सिद्धाः—कामसूत्रज्ञः कथाख्यानकुशलो बाल्यात्प्रभृति संसृष्टः प्रवृद्धयौवनः क्रीडनकर्मादिनागतविश्वासः प्रेषणस्य कर्तोचितसंभाषणः प्रियस्य कर्तान्यस्य भूतपूर्वो

दूतो मर्मज्ञ उत्तमया प्रार्थितः सख्या प्रच्छन्नं संसृष्टः सुभगाभिख्यातः सहसंवृद्धः प्रातिवेश्यः कामशीलस्तथाभूतश्च परिचारको धात्रेयिकापरिग्रहो नववरकः प्रेक्षोद्यानत्यागशीलो वृष इति सिद्धप्रतापः साहसिकः शूरो विद्यारूपगुणोपभोगैः पत्युरतिशयिता महार्हवेषोपचारश्चेति ॥ ५० ॥

अमी वक्ष्यमाणाः। प्रायेण बाहुल्येन। कामसूत्रज्ञः, कथाख्यानकुशल इति द्वावपि कामशीलत्वात्स्त्रीषु सिद्ध्यतः। बाल्यात्प्रभृतीति योऽन्यस्माद्गृहादागतो बाल्यात्प्रभृति स प्रवृद्धस्नेहत्वादस्याः सिद्धः। प्रवृद्धयौवन इति स हि वयःसामर्थ्यात्स्त्रीषु सिद्धः। क्रीडनकर्मादिनेति क्रीडनव्यापारेण। आदिशब्दात्पत्रच्छेद्यादिना यस्या आगतविश्वासः स तस्याः सिद्धः। प्रेषणस्य कर्ता यस्या वचनकरस्तस्याः सिद्धः। उचितसंभाषणोऽनियन्त्रणात्सिद्धः। प्रियस्य कर्ता यस्या य इष्टं संपादयति स तस्याः सिद्धः। अन्यस्य भूतपूर्वो दूतः पूर्वसंस्तुतत्वादस्याः सिद्ध इति योज्यम्। उत्तमयेत्यधिकया यः प्रार्थितः स पूर्वायाः सिद्ध्यति। सख्या प्रच्छन्नं संसृष्टः प्रच्छन्नं कामितस्तत्परिचयान्नायिकायाः सिद्धः। सुभगाभिख्यातः सौभाग्यख्यातिमावहन्स्त्रीषु सिद्धः। सहसंवृद्धो यया एकस्मिन् गृहे स तस्याः सिद्धः। प्रातिवेश्यः कामशीलः सोऽस्या वचनमात्रसाध्यः। तथाभूतश्च परिचारकः कामशीलः सोऽस्याः सिद्ध.। धात्रेयिकापरिग्रहो धात्रेयिकया पतित्वेन यो गृहीतस्तत्परिचयादस्याः सिद्धः। नववरक इति यस्मिन् गृहे नवो जामाता तत्रत्यासु स्त्रीषु सिद्धः। प्रेक्षोद्यानत्यागशील इति नटादिप्रेक्षणशील उद्यानक्रीडाशीलस्त्यागशीलस्त्रयोऽपि कामशीलत्वात्स्त्रीषु सिद्धाः। वृष इति सिद्धप्रतापो व्यवायीति यो लब्धप्रतापः स स्त्रीषु सिद्ध एवास्ति। साहसिक इति नावमृष्य सहसा यः प्रवर्तते स स्त्रीणां वचनमात्रमपेक्षते। शूर इत्यकुतोभयत्वात्परस्त्रियमपेक्षमाण एव तिष्ठति। पत्युरतिशयितेति यस्या भर्तारं विद्यादिभिरतिशेते स तस्याः सिद्धः। महार्हौ वेषोपचारौ यस्य स कामशीलत्वात्स्त्रीषु सिद्धः। इति स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषा एकचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ५० ॥

स्त्रियों में सिद्ध पुरुषों का प्रकरण

पराई स्त्रियों को वश करने में ये लोग सफल होते हैं—

कामसूत्र का ज्ञाता, कथा-कहानी कहने में चतुर, बचपन का साथी, अच्छा खासा जवान, खेल खेलने में विश्वासी, स्त्री जो कहे वही करे, उचित बोलनेवाला, मनचाही वस्तुओं को लाकर देनेवाला, पहले दूत का काम कर चुका हो, किसी सुन्दर स्त्री का प्रेम प्राप्त कर चुका हो, जिसे चाहता हो उससे

गुप्त रूप से मिल चुका हो, प्रसिद्ध सौभाग्यशाली हो, स्त्री के साथ उसका भी लालन-पालन हुआ हो, पड़ोसी, क्रियाशील नौकर, धाय की लड़की का पति, नया जमाई, नृत्य-नाटक देखने में रुचि रखता हो, उद्यान यात्राएँ करता हो, स्त्रियों को भेंट देता हो, हृष्ट-पुष्ट साहसी, प्रेयसी के लिए प्राण भी न्यौछावर कर देने वाला, निर्भय-वीर, विद्या, रूप, गुण और भोग में स्त्री के पति से बढ़कर हो, जिसका उत्तम वेष हो, और काम कलाओं में सिद्ध हो तथा मर्मज्ञ हो ॥ ५० ॥

यथात्मनः सिद्धतां पश्येदेवं योषितोऽपि ॥ ५१ ॥

जिस प्रकार पुरुष अपने उपायों की सफलता पर विचार करता है उसी प्रकार उसे यह भी सोच लेना चाहिए कि जिस स्त्री को वह चाहता है, वह मिल सकेगी या नहीं ॥ ५१ ॥

अयत्नसाध्या योषितस्त्विमाः—अभियोगमात्रसाध्याः । द्वारदेशावस्थायिनी । प्रासादाद्राजमार्गावलोकिनी । तरुणप्रातिवेश्यगृहे गोष्ठीयोजिनी । सततप्रेक्षिणी । प्रेक्षिता पार्श्वविलोकिनी । निष्कारणं सपत्न्याधिविन्ना । भर्तृद्वेषिणी विद्विष्टा च । परिहारहीना । निरपत्या ॥ ५२ ॥

अयत्नसाध्या योषितस्त्विवति वक्ष्यमाणाः । अभियोगमात्रसाध्या इति या अभियोगमात्रमपेक्षन्ते नाधिकं ता अयत्नसाध्या इत्युच्यन्ते । द्वारदेशावस्थायिनीति पुरुषदिदृक्षया द्वारदेशेऽवस्थातुं शीलं यस्याः सा चपलाभियोगमात्रसाध्या । प्रासादादिति प्रासादमारुह्य राजमार्गावलोकिनी । राजमार्गे हि पुरुषाणां सन्निधानात् । सतरुणेति सतरुणाः पुमांसो यत्रेति प्रातिवेश्यगृहे तत्रत्याभिः स्त्रीभिर्गोष्ठीयोजिनी सा चापल्यं द्योतयति । सततप्रेक्षिणी चेति या सततं प्रेक्षते सा तस्य साध्या । प्रेक्षितेति नायकेन पार्श्वविलोकिनी या पार्श्वमवलोकयति किमन्येन दृष्टास्मीति सापि चापल्यं कथयति । निष्कारणमिति या तु दौःशील्यादिकं विनेति सपत्न्याधिविन्ना युक्तामर्षात्परपुरुषमिच्छति । भर्तृद्वेषिणी गुणवन्तमपि भर्तारमनिच्छन्ती, विद्विष्टा चेति भर्ता यां द्वेष्टि द्वे अपि चञ्चले । परिहारहीना निष्परिहारा परिहार्येषु सा स्वभावत एव व्यभिचारिणी । निरपत्या भर्तुरपत्यमपश्यन्ती परानुपैति ॥ ५२ ॥

अयत्नसाध्य योषित् प्रकरण

आसानी से वशीभूत हो जानेवाली स्त्रियाँ—घर के दरवाजे पर हरदम खड़ी रहनेवाली । छत से सड़क की ओर देखने वाली, जवान पड़ोसी के यहाँ जाकर गप्पें लड़ाने वाली । आने जानेवालों को देखनेवाली । जब कोई उसे

देखे तो तिरछी निगाह से देखनेवाली। बिना कारण के ही जिसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया हो। जो पति को पसन्द न करती हो। जिससे पति घृणा करता हो। स्वभाव से ही जो व्यभिचारिणी हो। सन्तान हीन हो ॥५२॥

ज्ञातिकुलनित्या। विपन्नापत्या। गोष्ठीयोजिनी। प्रीतियोजिनी। कुशीलवभार्या। मृतपतिका बाला। दरिद्रा बहूपभोगा। ज्येष्ठभार्या बहुदेवरका। बहुमानिनी न्यूनभर्तृका। कौशलाभिमानिनी भर्तुर्मौर्ख्येणोद्विग्ना। अविशेषतया लोभेन ॥

ज्ञातिकुलनित्या ज्ञातिगृहे सदावस्थिता स्वातन्त्र्याद्भिन्नवृत्तिः। विपन्नापत्या भर्तुर्यद्यदपत्यं तत्तद्विपद्यत इति परपुरुषापेक्षापत्याभावाद्वा। गोष्ठीयोजिनी स्वगृहे सखीगृहे वा चापल्यं सूचयति। प्रीतियोजिनी येन सह प्रीतिं योजयति तस्य साध्या। कुशीलवभार्या नटनर्तकादीनां भार्या वेश्याप्रायाः। मृतपतिका बालेति बाला च या विधवा सा तारुण्ये निषद्यमाना शीलं खण्डयति। दरिद्रा बहूपभोगान्वितं दातारमभिगच्छति। ज्येष्ठभार्या बहुदेवरका प्रायशो देवरैरेव व्युत्पादिता। बहुमानिनी न्यूनभर्तृकेत्यात्मनि बहुमानो यस्याः। न्यूनश्च भर्ता सा न तत्र रमते। कौशलाभिमानिनी कलानां परिज्ञानाभिमानो यस्याः सा भर्तुर्मौर्ख्येण मूर्खत्वेनोद्विग्ना नियतं तत्कुशलमन्विष्यति। अविशेषतया भर्तुरुद्विग्ना विशेषज्ञा लोभेन भर्तुरुद्विग्ना स्वयमलुब्धा न तत्र रमते ॥ ५३ ॥

जो अधिकतर अपने मायके में रहती हो। जिसे बच्चे होकर मर जाते हों। बकवाद करनेवाली। जो हर स्त्री से मित्रता जोड़ती हो। नृत्य नाटक करनेवालों की स्त्रियाँ हों। बाल विधवा हो। जो गरीब होकर भी शानशौकत प्रिय हो। जिसके बहुत देवर हों। जो अपने रूप के अभिमान में पति को हीन समझती हो। जो अपने कला-कौशल और बुद्धि पर अभिमान करती हो और जो पति की मूर्खता से तङ्ग आ गई हो। जो पति पर लुब्ध न होकर दूसरे को चाहती हो॥

कन्याकाले यत्नेन वारिता कथंचिदलब्धाभियुक्ता च सा तदानीम्। समानबुद्धिशीलमेधाप्रतिपत्तिसात्म्या। प्रकृत्या पक्षपातिनी। अनपराधे विमानिता। तुल्यरूपाभिश्चाधः कृता। प्रोषितपतिकेति। ईर्ष्यालुपूतिचोक्षक्लीबदीर्घसूत्रकापुरुषकुब्जवामनविरूपमणिकारग्राम्यदुर्गन्धिरोगिवृद्धभार्याश्चेति ॥ ५४ ॥

कन्याकाल इति कन्यावस्थायां यत्नान्नायकेन वृता कथंचिद्दैवयोगात्तु न लब्धा सत्यन्येनोढेत्यभियुक्ता तदानीं यदा तस्येच्छा सा तस्य साध्या, पूर्वानुरागात्।

समानबुद्धिरिति नायकेन तुल्या बुद्ध्यादयो यस्याः सा तस्य साध्या। तत्र बुद्धिर्बोध्येषु। शीलं स्वभावः। मेधा विद्याकलासु ग्रहणशक्तिः। प्रतिपत्तिरनुष्ठानम्। सात्म्यं देशसात्म्यं प्रकृतिसात्म्यं च। प्रकृत्येति स्वभावेन यं प्रति पक्षपातो यस्याः सा तस्य साध्या। अनपराध इति दोषं विना भर्त्राविमानिता परिभूता न तत्र सज्जते। अन्यमिच्छति। तुल्यरूपाभिश्चाधः कृतेति समानप्रतिपत्तिभिः सपत्नीभिर्न्यक्कृता विरागादन्यमिच्छति। प्रोषितभर्तृका ब्रह्मचर्येण भग्ना कथमन्यान्नेच्छेत्। यो निष्कारणमीर्ष्यते तस्य भार्या विटैश्चिरमपहृतैव। पूतिः शरीरसंस्काररहितस्तस्य भार्या कश्मलत्वाद्विमुखीभवति। चोक्षो जातिविशेषस्तद्भार्या वेश्याप्राया। क्लीबो नपुंसकः। दीर्घसूत्रः कार्यमवमृश्य तदात्वे नारभते। कापुरुषः पौरुषहीनः द्वयोरपि भार्या परस्यैव। कुब्जवामनयोर्विरूपयोरप्युपादानं वैरूप्यभेदप्रकर्षणार्थम्। द्वयोरपि भार्या खण्डितशीला। मणिकारो मणीनां संस्कर्ता। तद्भार्या सदैव हट्टचारिणी खण्डितशीला। ग्राम्यभार्या नागरकस्यायत्नसाध्या स्यात्। दुर्गन्धिः शरीरे यस्य दुष्टो गन्धः स उद्वेगकरः। रोगी यो दीर्घरोगयुक्तः। वृद्धो व्यवायाक्षमः। एषां भार्या व्यभिचारिण्यः ॥ ५४ ॥

जिसे मनचाहा पति न मिला हो। बुद्धि, शील, विवेक में जिस पुरुष से बराबरी रखती हो। जिसका पक्षपात जिस पर हो। जो निरपराध अनादर पाती हो। जिसका पति परदेश रहता हो तथा जिसका पति गन्दा रहता हो, ईर्ष्यालु स्वभाव का हो, जिसका पति चोक्ष (बेढ़िया जाति का) हो। नपुंसक हो, दीर्घसूत्री हो, कायर हो, कुबड़ा, बौना, कुरूप हो, व्यभिचारी, गँवार, दीर्घकाल तक रोगी और बूढ़ा हो—ऐसी स्त्रियाँ व्यभिचारिणी बन जाती हैं ॥५४॥

प्रकरणत्रयार्थमुपसंहरन्नाह—

श्लोकावत्र भवतः—

इच्छा स्वभावतो जाता क्रियया परिबृंहिता।
बुद्ध्या संशोधितोद्वेगा स्थिरा स्यादनपायिनी ॥ ५५ ॥

इच्छेति स्वभावतो यं कंचिदुज्ज्वलं दृष्ट्वा कामयत इति। क्रिययेति परिचयाभियोगलक्षणया परिबृंहिता वर्धिता। बुद्ध्येति प्रज्ञया संशोधितोद्वेगेति संप्रयोगोपायमपश्यन्ती उद्वेगयुक्तापि स्यात्। तदुपायदर्शनेनापनीतोद्वेगा। सा चैवंविधा स्थिरा स्यात्। अनपायिनीत्वात् ॥ ५५ ॥

इस सम्बन्ध में दो प्राचीन श्लोक प्रसिद्ध हैं—यह एक स्वाभाविक बात है कि किसी भी सुन्दर पुरुष को स्त्री चाहती है और सुन्दरी स्त्री को पुरुष चाहता है। ऐसी कामनाएँ परिचय और उपायों द्वारा बढ़ाई जा सकती हैं। और बुद्धि

से उद्वेगों का संशोधन करके इस प्रकार की इच्छा स्थायी बनाई जा सकती है ॥ ५५ ॥

सिद्धतामात्मनो ज्ञात्वा लिङ्गान्युन्नीय योषिताम् ।
व्यावृत्तिकारणोच्छेदी नरो योषित्सु सिध्यति ॥ ५६ ॥

सिद्धतामिति ज्ञात्वा किमहमस्याः सिद्ध इति। लिङ्गानीच्छासूचकानि । इङ्गिताकारानित्यर्थः । उन्नीयेति ज्ञात्वा । व्यावृत्तिकारणोच्छेदी रागवर्धनादिभिः । योषित्सु सिद्धयत्यभियुञ्जानः फलं लभत इत्यर्थः । इत्ययत्नसाध्या योषितो द्वाचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनं व्यावर्तनकारणानि स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषा अयत्नसाध्या योषितः प्रथमोऽध्यायः ।

अपनी सफलताओं को समझकर स्त्री के हावभाव कटाक्ष का अनुमान करके अड़चनों को दूर करने का उपाय करके मनुष्य पराई स्त्रियों से सहवास करने में सफल हो सकता है ॥ ५६ ॥

पराई स्त्रियों से किस प्रकार सम्पर्क स्थापित किया जाए—इस प्रश्न का हल इस अधिकरण में किया गया है किन्तु प्रस्तुत प्रथम अध्याय में पहले स्त्री-पुरुषों के शील, स्वभाव की व्यवस्था बताई गई है, फिर उन कारणों का निरूपण किया गया है जिनसे चाहती हुई भी स्त्री पुरुष से दूर रहती है। फिर यह बताया गया है कि किस प्रकार के पुरुष और कैसी स्त्रियाँ अनायास परस्त्रियों और परपुरुषों को मिला लिया करती हैं। ऐसी कौन-सी स्त्रियाँ हैं जो बिना प्रयास के परपुरुष से सहवास कराने के लिए तैयार हो जाती हैं।

'मातृवत् परदाराणि'—कहकर धर्मशास्त्र पराई स्त्रियों को माता के समान समझने की व्यवस्था देता है और कामसूत्र पराई स्त्रियों को फँसाने की तरकीब बताता है। यह कहना भी उचित न होगा कि कामशास्त्र विशुद्ध व्यवहार शास्त्र है इससे धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः धर्म, अर्थ और काम ये तीनों एक-दूसरे से सम्पृक्त रहनेवाले हैं। मनुष्य का जीवन इनसे साड़ी और सूत की भाँति सम्बन्ध रखता है। काम का प्रयोजन जितना लौकिक है उतना

पारलौकिक है। किन्तु शास्त्रकार या शास्त्र यथार्थ से कभी आँखें नहीं फेरता है, वह सत् और असत् का विवेचन समानभाव से करता है। कामसूत्र धर्मसूत्र नहीं है किन्तु धर्म और सामाजिक मान्यताओं और सीमाओं का उल्लंघन भी नहीं करता है।

कामसूत्र एक दर्शन है जो मनोवैज्ञानिक आधार लेकर व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर अवतरित हुआ है। मनुष्य की अच्छी और बुरी सभी प्रकार की प्रवृत्तियों और वृत्तियों का विश्लेषण करता हुआ जो निर्णय देता है वह कल्याण की कामना रख कर ही। शास्त्र में अच्छी और बुरी सभी बातों का समावेश रहता है किन्तु आचरण उन्हीं का करना चाहिए जिसमें अपना बहुमुखी कल्याण निहित हो। कामसूत्रकार की दृष्टि में परदारगमन महान् पाप है, किन्तु वह इस तथ्य को कैसे छिपा सकता है, मानव भी इस प्रवृत्ति को कैसे तिरोहित कर सकता है जो युग-युग से मानव-जाति के इतिहास में चली आ रही है। इसी उद्देश्य से वात्स्यायन ने कामसूत्र में परदार-गमन अधिकरण को स्थान दिया है। उपनिषदों ने भी इसी आशय से वामदेव्य की भावना को ही परदार-गमन का प्रयोजन बताया है। आयुर्वेद शास्त्र कामज्वर की चिकित्सा परदार-गमन ही बतलाता है।

वात्स्यायन केवल शास्त्रकार ही नहीं था वह राष्ट्र और समाज का निर्माता और संशोधक भी था, उसने यह स्पष्ट लिखा है कि शास्त्र होने के नाते अच्छी बुरी सभी बातें जो इसमें लिखी गई हैं वे ज्ञान के लिए। विचारशील व्यक्तियों को चाहिए कि वे नीर-क्षीर विवेक द्वारा अच्छी बातें ही ग्रहण करें। क्योंकि आयुर्वेद में रोगविशेष में कुत्ते का मांस खाने का विधान है, तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हर रोग में कुत्ते का मांस खाया जाए। इसी प्रकार विशेष स्थिति में जिस किसी व्यक्ति को परदारगमन की आवश्यकता पड़े तो वह कामसूत्र के अध्ययन से परिपक्व बुद्धि द्वारा उसका उचित प्रयोग करे तो बुरा भी नहीं है लेकिन इसे हर व्यक्ति अपना विहित धर्म मान ले तो समाज निरंकुश और सन्तानें वर्णसंकर बन जाएँगी। सामाजिक मर्यादाएँ भङ्ग हो जाएँगी। राष्ट्रीय धर्म पतित हो जाएगा। मानवता का ह्रास हो जाएगा। धर्म का शासन तिरोहित हो जाएगा और राष्ट्र तथा समाज विवेकशून्य होकर पाशविक वृत्ति का बन जाएगा।

वात्स्यायन ने इस प्रसङ्ग में काम की दस दशाएँ बताई हैं। ये दस दशाएँ वियोग के समय में ही हुआ करती हैं। यह लाज़िमी नहीं है कि काम की ये दस दशाएँ केवल पराई स्त्री से लेकर ही प्रवृत्त हुआ करती हैं। जहाँ कहीं भी कामना—चाह होती है वहीं काम की दस दशाएँ भी उत्पन्न होती हैं।

वात्स्यायन द्वारा कही गई मूल बात यही है कि तरुणी, तरुण, स्वकीया, परकीया कोई भी हो मनचाही वस्तु के अभाव में कामसूत्र का यह अधिकरण सर्व-साधारण दशाओं को लेकर प्रवृत्त हुआ है। इस अधिकरण का लक्ष्य केवल पराई नारी ही नहीं है किन्तु चाह की सर्व-साधारण वस्तु को समझना चाहिए।

वात्स्यायन ने काम की जिन दस दशाओं का उल्लेख किया है वे केवल पुरुषों को ही नहीं सतातीं बल्कि स्त्रियों को भी व्यथित करती रहती हैं। जैसे पुरुष परस्त्रीगामी होते हैं वैसे स्त्रियाँ भी परपुरुषगामिनी हुआ करती हैं। परस्त्री से सहवास की इच्छा रखकर पुरुष जो प्रयत्न करता है स्त्री भी परपुरुष से सहवास की इच्छा रखकर वह ही प्रयत्न करती है। यह बात दूसरी है कि पुरुष में लज्जा और संकोच का अभाव तथा साहस की अधिकता रहती है और स्त्रियों में साहस की कमी तथा लज्जा की अधिकता रहती है। लेकिन पुरुष की भाँति स्त्री भी परपुरुष की कामना रखती है—इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है। ऋग्वेद में यम और यमी का संवाद इस बात का प्रमाण है[1]।

यम की बहिन यमी कामातुर होकर यम से कहती है—यह स्थान नितान्त निराला है, यहाँ न कोई जान सकेगा, न देख सकेगा। मैं योग्य (तरुणी) हूँ मेरे साथ सहवास करके तू अपना पुत्र मेरे गर्भ से पैदा कर—यह मेरी कामना है।

बहिन की इस अनैतिकतापूर्ण निर्लज्ज वाणी सुनकर यम जवाब देता है—

तू मेरी बहिन है इसलिए मैं तेरे साथ कोई अनैतिक व्यापार नहीं कर सकता। जो बात तू कह रही है और जिस कार्य में तू प्रवृत्त हो रही है वह बहिन के नहीं—यह तो 'सलक्ष्मया यद् विषुरूपावभाति। तथा जो भाई बहिनों के साथ ऐसे बुरे आचरण करते हैं वे भाइयों के नहीं बल्कि वज्रपापियों के हैं—'पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छति'।

वामदेव्य साम की प्रशंसा करते हुए छान्दोग्य उपनिषद् कहती है कि स्त्री को सङ्केत करना (हिंकार), उसके अनुमोदन पर उसे प्रसन्न करना (प्रस्ताव), उसके साथ सहवास करने के लिए उसकी शय्या पर पहुँच जाना (उद्गीथ), लिङ्गसंयोग करना (प्रतिहार), स्पर्श सुख के काल तक पहुँचना (निधन) एवं मैथुन की समाप्ति पर पहुँच जाना पूर्ण निधन है। यह वामदेव्यसाम इस प्रकार के मिथुन (सहवास) में स्थित है। जो व्यक्ति इस साम को यथार्थ

१. ॐ चित् सखायं सख्या ववृत्याम् तिरःपुरूचिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमदधीत वेधा अधिक्षमि प्रतरं दीध्यानः॥

रूप से जानता है, उसका ऐसा सहवास करना सफल है। वह तेजस्वी होता है। पूरी आयु प्राप्त करता है। प्रजा, पशु और कीर्ति से बढ़ता है, कई पत्नियों वाला होता है। किसी का परित्याग न करे—यही व्रत है।[1]

'किसी का परित्याग न करे' इस श्रुतिवाक्य का भाष्य करते हुए शङ्कराचार्य ने लिखा है कि 'शय्या पर आई हुई किसी भी कामार्त्त स्त्री को न छोड़ना चाहिए।'

रामानुजाचार्य ने भी अपने भाष्य में लिखा है कि—जो पराई स्त्री सहवास के लिए अत्यन्त व्याकुल है, उस स्त्री के साथ संभोग करने का वामदेव्य साम की उपासना के अङ्गरूप में विधान होने से परदारगमन निषिद्ध नहीं है।[2]

इनके अतिरिक्त पुराणों में अहल्या और इन्द्र, कुन्ती और सूर्य की कथाएँ साहित्य में दुष्यन्त और शकुन्तला, मालतीमाधव नाटक में मालती और माधव आदि की अनन्त प्रेमकथाएँ परदारगमन की शृङ्खला बनी हुई हैं।

शास्त्रकार शास्त्र की रचना देश-काल की सीमा में बँधकर नहीं किया करता वह सार्वभौम सिद्धान्त रखकर शास्त्र की रचना करता है। उसे हर देश, हर काल के मानव समाज को आचार-विचार और कल्याण को दृष्टिगत रखना पड़ता है। हो सकता है कि परस्त्रीगमन कहीं महान् पाप माना जाता हो और कहीं सभ्यता और सामाजिक जीवन का अङ्ग। जैसे मामा की बेटी से ब्याह करना उत्तर भारत में महान् अधर्म समझा जाता है तो दक्षिण भारत में वह जायज़ माना जाता है। वर्तमान समय में एक स्त्री के कई पति होना व्यभिचार और सामाजिक शिष्टाचार के विरुद्ध पद्धति समझी जाती है किन्तु अब भी हिमालय की उपत्यका ज्वौनसार बावर में एक स्त्री के पांच पति होना कुलीनता का अङ्ग माना जाता है। केरल में नाम्बूद्री ब्राह्मणों के ज्येष्ठ पुत्र को छोड़कर शेष सभी लड़कों के विवाह नैय्यर (शूद्र) की लड़की से होते हैं। उनकी सन्तान मातुलगोत्र को अपना कर मामा, नाना की जायदाद की

१. उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रतिस्त्रीं सह शेते स प्रतीहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनम् एतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति। मिथुनात् मिथुनात् प्रजायते। सर्वमायुरेति उथोग्जीवति। महान् प्रजया पशुभिर्भवति। महान् कीर्त्या न कांचन परिहरेत् तद्व्रतम्। (छान्दोग्य उपनिषद् २-१३-१-२)

२. प्रार्थयमानामिति शेषः। प्रार्थयमानसर्वयोषिद्गमनस्य वामदेव्योपासनासंगत्वेन विधानात्, परदारगमनप्रतिषेधवचनानि तद्व्यतिरिक्तविषयाणि द्रष्टव्यानि।

उत्तराधिकारिणी बनती है जो शेष भारत के लिए निन्दनीय, और पापाचरण, पतितकर्म माना जाता है।

पाश्चात्य देशों में परदारगमन सामाजिक सभ्यता का अङ्ग माना जाता है भारत में इस शिष्टाचार का सर्वथा अभाव नहीं कहा जा सकता है। हो सकता है कि वात्स्यायन से पूर्व या उसके जमाने में ही किसी भूभाग में या सर्वत्र छिटपुट परदारगमन सभ्यता का सामाजिक परम्परा का अङ्ग माना जाता रहा हो जैसा कि पुराणों, काव्यों, उपनिषदों आदि से प्रमाणित है तो फिर कामसूत्र में इस विषय का विवेचन यदि न किया जाता तो एक बहुत बड़े समाज की, मानवीय प्रवृत्ति की उपेक्षा समझी जाती जिसकी आशा वात्स्यायन जैसे बहुश्रुत शास्त्रकार से स्वप्न में भी नहीं की जा सकती है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनं व्यावर्त्तनकारणानि स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषा अयत्नसाध्या योषितः प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

परिचयकारणाभियोगप्रकरणम्

क्रियया परिबृंहितेत्युक्तं तां क्रियां दर्शयितुमाह—

यथा कन्या स्वयमभियोगसाध्या न तथा दूत्या। परस्त्रियस्तु सूक्ष्मभावा दूतीसाध्या न तथात्मनेत्याचार्याः ॥ १ ॥

द्वे नायिके कन्या परयोषिच्च। अभियोगो द्विविध आत्मना दूत्या च। अत्राचार्याणां मतं यथा कन्येति। कन्यानामसंप्रयुक्तत्वात्तासु प्रायेण युक्त्याभियोगाः। तांश्च नायक एव प्रयोक्तुं शक्नोति। न दूती। एवं च तास्वेकपुरुषाभियोगा उक्ताः। सूक्ष्मभावा इति प्रवृत्तसंयोगात्परपुरुषः संभवति (?)। किमु तस्मिन्भावप्रदर्शनं प्रकाशनं दूत्यामुभयं संभवति। तस्माद्दूत्यैव साध्या इति ॥ १ ॥

कामशास्त्र के प्राचीन आचार्यों का मत है कि जिस प्रकार कन्या स्वयं अपने उपायों से हासिल की जा सकती है उस तरह दूती से सम्भव नहीं। एवं जिस प्रकार सूक्ष्म भावों की पराई स्त्रियां दूतियों द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं, उस तरह स्वयम् नहीं ॥ १ ॥

सर्वत्र शक्तिविषये स्वयं साधनमुपपन्नतरकं दुरुपपादत्वात्तस्य दूतीप्रयोग इति वात्स्यायनः ॥ २ ॥

सर्वत्रेति—कन्यासु परस्त्रीषु चेति। शक्तिविषय इति—यत्र स्वयमभियोक्तुं शक्नोति। उपपन्नतरकं दूतीसाधनात्। तस्येति—स्वयमभियोगस्य। दुरुपपादकत्वादिति—यत्र दुःखेनोपपाद्यते तत्र दूतीप्रयोगः ॥ २ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि सर्वत्र अपने बल भरोसे से उपाय करना दूती की अपेक्षा अधिक उत्तम है। कदाचित् स्वयं उपाय करने में असमर्थ हो तो दूती का प्रयोग करना चाहिए ॥ २ ॥

तत्र प्रायोवादेन दर्शयन्नाह—

प्रथमसाहसा अनियन्त्रणसंभाषाश्च स्वयं प्रतार्याः। तद्विपरीताश्च दूत्येति प्रायोवादः ॥ ३ ॥

प्रथमं साहसं चारित्रखण्डनं यासां तासु नायक एव समर्थो न दूती। अनियन्त्रणमनिषिद्धं संभाषणं यासां नायकेन सह यास्वपि किं दूत्येति। स्वयं प्रतार्या इति स्वयमुपपन्नतरकत्वं प्रदर्शयति। दुरुपपादत्वमाह—तद्विपरीता इति बहुशः खण्डितचारित्रा नियन्त्रणसंभाषिण्यः ॥ ३ ॥

जिस स्त्री का चरित्र पहली बार ही खण्डित हुआ हो उसे प्राप्त करने में नायक ही समर्थ है दूती नहीं। कदाचित् नायिका से कभी बात न हुई हो, उसका चरित्र कई बार गिर चुका हो और उसे मिलाना नायक के वश की बात न हो तब तो फिर दूती का ही सहारा लेना चाहिए ॥ ३ ॥

ननु प्रथमसाहसायां गमनं प्रतिषिद्धम्। विषयस्याशुद्धत्वात्। शरीरोपघात-त्राणार्थमप्ययुक्तम्। स्वयमभियोगस्य (स्तु) न परिचयं विनेति परिचयकारणान्युच्यन्ते। यदाह—

स्वयमभियोक्ष्यमाणस्त्वादावेव परिचयं कुर्यात् ॥ ४ ॥

अभियोक्ष्यमाणोऽभियोगं करिष्यन्। परिचयं संदर्शनं दूतीपूर्वकम् ॥ ४ ॥

यदि नायक स्वयं उपाय करना चाहता हो तो नायिका से पहले मेल-जोल परिचय बढ़ाकर उपाय करना चाहिए ॥ ४ ॥

संदर्शनं च द्विविधमित्याह—

तस्याः स्वाभाविकं दर्शनं प्रायत्निकं च ॥ ५ ॥

स्वाभाविक और प्रायत्निक दो तरह की भेंट होती है। बिना किसी प्रयत्न के नायिका को देखना स्वाभाविक है और किसी उपाय से देख पाना प्रायत्निक है ॥ ५ ॥

स्वाभाविकमात्मनो भवनसंनिकर्षे प्रायत्निकं मित्रज्ञाति-महामात्रवैद्यभवनसंनिकर्षे विवाहयज्ञोत्सवव्यसनोद्यानगमनादिषु।

भवनसंनिकर्ष इति गृहसमीपे क्वचिदागताया दर्शनं स्वाभाविकं न प्रयत्नकृतम्। मित्रादीनां यद्गृहं तत्समीपे यद्दर्शनं विवाहादिषु च। तत्प्रायत्निकम्। प्रयत्नसाध्यत्वात् ॥ ६ ॥

नायिका को अपने घर के पास आते-जाते देख लेना—स्वाभाविक तथा मित्र, बिरादरी, राजमन्त्री, वैद्य के घर के पास अथवा विवाह, यज्ञ, उत्सव, विपत्ति, उद्यानयात्रा के अवसर पर देखना प्रायत्निक दर्शन है ॥ ६ ॥

तत्र च द्विविधे संदर्शने परिचयकारणं द्विविधं बाह्यमाभ्यन्तरं च। तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

दर्शने चास्याः सततं साकारं प्रेक्षणं केशसंयमनं नखाच्छुरणमाभरणप्रह्लादनमधरौष्ठविमर्दनं तास्ताश्च लीला वयस्यैः सह प्रेक्षमाणायास्तत्संबद्धाः परापदेशिन्यश्च कथास्त्यागोपभोगप्रकाशनं सख्युरुत्सङ्गनिषण्णस्य साङ्गभङ्गं जृम्भणमेकभ्रूक्षेपणं मन्दवाक्यता

तद्वाक्यश्रवणं तामुद्दिश्य बालेनान्यजनेन वा सहान्योपदिष्टा द्व्यर्था कथा तस्यां स्वयं मनोरथावेदनमन्यापदेशेन तामेवोद्दिश्य बालचुम्बनमालिङ्गनं च जिह्वया चास्य ताम्बूलदानं प्रदेशिन्या हनुदेशघट्टनं तत्तद्यथायोगं यथावकाशं च प्रयोक्तव्यम् ॥ ७ ॥

साकारमिति भावसूचकेन मुखनयनगतेनाकारेण सह प्रकृते प्रेक्षणं कर्तव्यम् । केशसंयमनं केशानवमुच्य बन्धनम् । नखाच्छुरणं स्वाङ्गेष्वाच्छुरितकम् । आभरणप्रह्लादनं शब्दनम् । अधरोष्ठविमर्दनमंगुष्ठसंपुटेन परिघर्षणम् । तास्ताश्चेति गुणसंवर्धनप्रधानाः कथाः । वयस्यैर्मित्रैः । प्रेक्षमाणाया इति नायिकायाः पश्यन्त्याः । तत्संबद्धा इति नायिकासंबद्धाः । परापदेशिन्य इति नायिकापदेशिन्यः । त्यागोपभोगप्रकाशनं दातृत्वभोगित्वख्यापनार्थम् । सख्युरिति मित्रस्योत्सङ्गे निषण्णस्य । साङ्गभङ्गमिति साङ्गस्फोटनं जृम्भणं विजृम्भिका स्यात् । एकभ्रूक्षेपणं निषण्णस्यैव । मन्दवाक्यता गद्गदवचनता किमु मां किंचिद्वक्तीति । तामिति नायिकाम् । बालेनेति तत्पार्श्ववर्तिना गर्भरूपेण । जनेन चान्येन । अन्योपदिष्टेति तत्सुहृदा कृता न स्वयम् । द्व्यर्था कथेत्येको बालेन संबद्धोऽर्थो द्वितीयो नायिकया । तस्यामिति कथायां क्रियमाणायां स्वयमात्मना मनोरथावेदनम् । अन्यापदेशेनेत्यस्मिन्मित्रस्या (?) मिति दुर्घटो मनोरथः स किं भविष्यति न भविष्यतीति न जाने । तामेवेति नायिकाम् । बालस्य चुम्बनमालिङ्गनं संक्रान्तकम् । जिह्वया च प्रसारितया । प्रदेशिन्या तर्जन्या । हनुदेशघट्टनं कपोलयोरधस्ताच्चलनम् । तामुद्दिश्येति सर्वत्र योज्यम् । तत्तदित्यन्यदप्येवंविधम् । यथायोगमिति यद्यस्य युज्यते स्पर्शनं ताडनं वा । यथावकाशमिति यथाप्रदेशं कक्षयोरुरसि पृष्ठे वा बालस्य विधेयम् ॥ ७ ॥

नायिका का भावदर्शन इस प्रकार करना चाहिए—जब वह बालों को खोलकर बाँध रही हो, नाखूनों से खुजला रही हो, आभूषणों को सुधार रही हो । नीचे के ओठों को चबा रही हो, तब अपने मित्रों के साथ नायिका के उन भावों की नकल कर भावनाव्य करना चाहिए । दूसरों के बहाने उसकी बातें करे, अपने त्याग और भोग-विलासों का बखान करे, मित्र की गोद में लेटकर अँगड़ाई लेने लगे, जमुहाता हुआ उसकी ओर भौंहें मटकाए, धीरे से बोले और उसकी बातें सुने, उसको लक्ष्य करके बालक से या किसी दूसरे आदमी से दूसरों की कही हुई दो अर्थों वाली बातें करे । उसके विषय की अपने मन की बात दूसरे के बहाने से कहे, उसको लक्ष्य करके बालक का मुँह चूमे, उसका आलिङ्गन करे, उसी बालक को जीभ से पान दे, तर्जनी अँगुली से कपोलों के नीचे गुदगुदाए ।

समय और स्थान देखकर उपर्युक्त प्रयोगों में जो कर सके करना चाहिए ॥ ७ ॥

तस्याश्चाङ्कगतस्य बालस्य लालनं बालक्रीडनकानां चास्य दानं ग्रहणं तेन संनिकृष्टत्वात्कथायोजनं तत्संभाषणक्षमेण जनेन च प्रीतिमासाद्य कार्यं तदनुबन्धं च गमनागमनस्य योजनं संश्रये चास्यास्तामपश्यतो नाम कामसूत्रसंकथा ॥ ८ ॥

तस्याश्चेति नायिकायाः । अङ्कगतस्य क्रोडस्थस्य लालनं मृदुता च सा (?) बालक्रीडनकानां यानुष्टु (?) गुटिकादीनाम् । तेनेति दानग्रहणसंबन्धेन संनिकृष्टत्वात्कथायोजनं कार्यम् । तेन सह प्रीतिमासाद्य संयोज्य कार्यं प्रयोक्तव्यमिति शेषः । तदनुबन्धं चेति कार्यानुबन्धम् । गमनागमनस्य योजनं येन लोकोऽनेन कार्येणास्य गमनागमनं नान्येनेति मन्यते । संश्रवे चास्या इति यत्र सा शृणोति तत्र कामसूत्रसंकथा विज्ञत्वख्यापनार्थम् । तत्रापि तामपश्यतो नामेति न किलाहमेनां पश्यामीति । अन्यथा तां पश्यतः कथयतो दुर्विदग्धता स्यात् ॥८॥

नायिका के गोद के बालक को प्यार करे, उसे खेलने के लिए खिलौने दे और फिर ले ले। पास आकर उससे बात करे, जो आदमी उससे बात कर सकता हो उससे मित्रता जोड़ ले और उसके द्वारा अपना प्रयोजन सिद्ध करे। कोई काम का बहाना लेकर उसके घर आना-जाना प्रारम्भ कर दे। कामसूत्र-सम्बन्धी ऐसी गप्पें ऐसी जगह लगाएँ जहाँ से नायिका सुन सके, और ऐसे ढङ्ग से कहे कि सुननेवाली यह न भाँप सके कि उसे देखकर कह रहा है ॥८॥

आभ्यन्तरमधिकृत्याह—

प्रसृते तु परिचये तस्या हस्ते न्यासं निक्षेपं च निदध्यात् । तत्प्रतिदिनं प्रतिक्षणं चैकदेशतो गृह्णीयात् । सौगन्धिकं पूगफलानि च ॥ ९ ॥

प्रसृते तु सर्वथोत्पन्ने परिचये । न्यासाः संस्थाप्याश्चिरकालग्राह्याः । निक्षेपं यदल्पकालग्राह्यम् । प्रतिदिनं न्यासः प्रतिदिनं निक्षेपकम् । तदेकदेशं स्तोकस्तोकेन गृह्णीयात् । तदेव यथाक्रमं दर्शयति—सौगन्धिकं सुगन्धिद्रव्याणां समूहः । तद्द्वारेण प्रतिदिनं न्यासं निक्षेपं च यदल्पकालग्राह्यं प्रतिक्षणं च दृश्यते ॥ ९ ॥

परिचय बढ़ जाने पर उसके हाथ ऐसी वस्तुएँ दे जो वह कुछ दिन रखे रहे, फिर उससे लेकर पुनः ऐसी वस्तु रखने को दे जो अधिक दिन तक वह रख सके। प्रेम, विश्वास और परिचय बढ़ाने के लिए प्रतिदिन धरने, उठाने,

लेने-देने का क्रम जारी रखे, इत्र, सुपारी आदि ऐसी वस्तुएँ जो उपयोग के लिए नित्य माँगी जाती हैं और घटने पर लाकर फिर रखी जाती हैं ॥ ९ ॥

तामात्मनो दारैः सह विस्रम्भगोष्ठ्यां विविक्तासने च योजयेत् ॥ १० ॥

विस्रम्भगोष्ठ्यां विविक्तासने चेति तामुपनिमन्त्र्यास्माभिः प्रच्छन्ने समुपविश्य पानगोष्ठी कर्तव्येत्यभिधाय स्वदारैः सह तत्र योजयेत् ॥ १० ॥

उसे अपने घर की स्त्रियों के साथ एकान्त में बातचीत, खान-पान में लगा दे ॥ १० ॥

नित्यदर्शनार्थं विश्वासनार्थं च ॥ ११ ॥

नित्यदर्शनार्थं विश्वासनार्थं चेति प्रतिक्षणं दर्शनार्थं स्वयं प्रयतेतेति वक्ष्यमाणेन संबन्धः ॥ ११ ॥

ऐसे प्रयत्न करते रहने चाहिए कि नायिका नित्य दिखाई पड़ती रहे और प्रेम तथा विश्वास भी बढ़ता रहे ॥ ११ ॥

सुवर्णकारमणिकारवैकटिकनीलीकुसुम्भरञ्जकादिषु च कामार्थिन्यां सहात्मनो वश्यैश्चैषां तत्संपादने स्वयं प्रयतेत ॥ १२ ॥

वैकटिको रत्नानां परिशोधकः । नीलीरञ्जककुसुम्भरञ्जकौ प्रतीतौ । आदिशब्दात्त्वष्टृकांस्यकारादयः । तेषां कामार्थिन्यां सत्यामात्मवश्यैर्विधेयैः सुवर्णकारादिभिस्तत्संपादने सुवर्णादिकर्मसंपादने तदनुष्ठानं निरस्य सुवर्णादिकर्म स्वयमधिष्ठाय कारयेत् ॥ १२ ॥

सोनार, जड़िया, न्यारिया, नीलगर, रँगरेज, बढ़ई आदि से यदि नायिका को कुछ काम कराना हो तो नायक अपने परिचितों से उस काम कराने का जिम्मा ले ले, और उसे वहाँ न रहने देकर स्वयं काम कराए ॥१२॥

तदनुष्ठाननिरतस्य लोकविदितो दीर्घकालं संदर्शनयोगः ॥

संदर्शनयोगो न प्रच्छन्नयोगः स्यात् । अपि तु दीर्घकालं लोकस्य विदितः । अन्यथा लोकस्तं दृष्ट्वा सहसा विकल्पयति ॥ १३ ॥

इस प्रकार काम करते हुए नायक को लोग बहुत देर में समझ पाते हैं ॥ १३ ॥

तस्मिंश्चान्येषामपि कर्मणामनुसन्धानम् ॥ १४ ॥

तस्मिन्निति कर्मण्यनुष्ठीयमानेऽसमाप्त एवान्येषां कर्मणामनुसंधानं कर्तव्यं मा भूद्दर्शनविच्छेद इति ॥ १४ ॥

एक काम पूरा न होने पाए कि दूसरा शुरू कर दे ॥ १४ ॥

येन कर्मणा द्रव्येण कौशलेन चार्थिनी स्यात्तस्य प्रयोग-मुत्पत्तिमागममुपायं विज्ञानं चात्मायत्तं दर्शयेत् ॥ १५ ॥

येनेति कर्मणां पुष्कलेन ॥ १५ ॥

नायिका को जिन-जिन कामों की जरूरत हो, जिन वस्तुओं को वह चाहती हो एवं जिस कला-कौशल को वह सीखना चाहती हो, उन सब को पूरा करने, जानने और जानकारी रखने तथा प्रयत्न करने की अपनी योग्यता, क्षमता उससे प्रकट करे ॥ १५ ॥

पूर्वप्रवृत्तेषु लोकचरितेषु द्रव्यगुणपरीक्षासु च तया तत्परिजनेन च सह विवादः ॥ १६ ॥

पुराने रीति-रिवाजों, वस्तुओं के गुणों की पहचान में उससे तथा उसके नौकरों से बहस करे जिससे संकोच दूर होता रहे ॥ १६ ॥

तत्र निर्दिष्टानि पणितानि तेष्वेनां प्राश्निकत्वेन योजयेत् ॥

इस प्रकार की बहस में किसी वस्तु की जो कीमत लगाई जाए उसको पूछने के लिए नायिका को लगा दे ॥ १७ ॥

तया तु विवदमानोऽत्यन्ताद्भुतमिति ब्रूयादिति परिचयकारणानि ॥ १८ ॥

इति परिचयकारणानि त्रयश्चत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ १८ ॥

नायिका के साथ बहस करते समय उसे बहुत अद्भुत, बुद्धिमती कहे। ये परिचय के कारण हैं ॥ १८ ॥

शास्त्रकार एव प्रकरणसम्बन्धमाह—

कृतपरिचयां दर्शितेङ्गिताकारां कन्यामिवोपायतोऽभियुञ्जीतेति। प्रायेण तत्र सूक्ष्मा अभियोगाः। कन्यानामसंप्रयुक्तत्वात्। इतरासु तानेव स्फुटमुपदध्यात्। संप्रयुक्तत्वात् ॥ १९ ॥

कृतपरिचर्यामिति कन्यामिवेति। तस्या अपि दर्शितेङ्गिताकाराया एवाभियोग उपायत इत्युपाया अभियोगा अभियुज्यन्त एभिरिति कृत्वा त एवात्रापि द्रष्टव्या ये कन्यासम्प्रयुक्तकेऽभिहिताः ॥ १९ ॥

अभियोग-प्रकरण

जिस स्त्री से परिचय कर लिया हो, जिसने इशारे और हाव-भाव दिखा दिये हों, उसे उसी तरह अपनाया जाए जैसा कन्यासम्प्रयुक्त अधिकरण में कन्या को अपनाने का उपाय बताया गया है। कन्याएँ मिली-जुली नहीं

रहतीं इसलिए उन्हें वशीभूत करने के लिए सूक्ष्म प्रयोग किए जाते हैं, किन्तु जो खेली-खाई रहती हैं उन्हें वश में करने के लिए प्रकट उपाय ही करने चाहिए ॥ १९ ॥

संदर्शिताकारायां निर्भिन्नसद्भावायां समुपभोगव्यतिकरे तदीयान्युपयुञ्जीत ॥ २० ॥

निर्भिन्नसद्भावायामिति प्रकटितसंभृतभावायां सत्याम्। समुपभोगव्यतिकरे तदीयानीति नायिकावस्तूनि स्वयमुपयुञ्ज्यात्स्वानि च तामुपभोजयेत् ॥ २० ॥

जिस स्त्री ने अङ्गों के हाव-भाव दिखा दिये हों, जिसने सद्भाव प्रकट किया हो उसकी चीजों को उसका प्रेमी भोगे और प्रेमी की चीजों का उपभोग प्रेमिका करे ॥ २० ॥

तत्र महार्हगन्धमुत्तरीयं कुसुमं स्यादङ्गुलीयकं च। तद्धस्ताद्गृहीतताम्बूलया गोष्ठीगमनोद्यतस्य केशहस्तपुष्पयाचनम् ॥

तत्रेति परिवर्तमाने। महार्हगन्धमत्यन्तसुरभि। उत्तरीयं कुसुमं चात्मीयं स्यात्स्वीकुर्यादित्यर्थः। अंगुलीयकं च महार्हं स्यात्। तद्धस्तान्नायकहस्ताद्यदि तया ताम्बूलं गृहीतम्। गोष्ठीगमनोद्यतस्येति कर्तरि षष्ठी। केशहस्तः केशकलापः। तत्रत्यपुष्पयाचनम्। सिद्धकरमेतदिति ॥ २१ ॥

वस्तुओं के उपभोग का आदान-प्रदान शुरू होने पर अत्यन्त सुगन्धित वस्तु, अँगूठी, दुपट्टा, और फूल नायिका के देने पर नायक ले ले और जब वह अपने हाथ का पान खा ले तो वन-विहार जाने की तैयारी करते समय उसके सिर के जूड़े में खोंसे हुए सुगन्धित फूलों को माँगे ॥ २१ ॥

तत्र महार्हगन्धं स्पृहणीयं स्वनखदशनपदचिह्नितं साकारं दद्यात् ॥ २२ ॥

स्वयं तु ददन्नायको यन्महार्हगन्धं स्पृहणीयं लोकस्य तदन्यहस्तेन यदा दद्यात्तदा स्वनखदशनपदचिह्नितम्। यदा स्वहस्तेन तदा साकारम्। क्रियाविशेषणमेतत्। एवं प्रकारद्वयेऽपि भावः सूचितो भवति ॥ २२ ॥

बदले में नायक कोई सुगन्धित या मनचाही वस्तु नायिका को दे तो अपने नाखून से उस पर निशान बना दे ॥ २२ ॥

अधिकैरधिकैश्चाभियोगैः साध्वसविच्छेदनम् ॥ २३ ॥

अधिकैरधिकैः पूर्वपूर्वेभ्यः साध्वसविच्छेदनम्। प्रायेण परयोषित्परपुरुषेषु ससाध्वसा भवति ॥ २३ ॥

नायक को चाहिए कि वह नायिका से उत्तरोत्तर मेल-मिलाप बढ़ाता रहे ॥ २३ ॥

आन्तरानधिकृत्याह—

क्रमेण च विविक्तदेशे गमनमालिङ्गनं चुम्बनं ताम्बूलस्य ग्राहणं दानान्ते द्रव्याणां परिवर्तनं गुह्यदेशाभिमर्शनं चेत्यभियोगाः ॥ २४ ॥

क्रमेण चेति यदैकान्तेन गतसाध्वसा तदा विविक्तदेशगमनं यस्मिन्प्रच्छन्ने देशे तिष्ठति। तत्र चालिङ्गनादयः प्रयोक्तव्याः। गुह्यदेशाभिमर्शनं कक्षोरुमूलविमर्दनम्। जघने उत्क्षिप्तकेन ॥ २४ ॥

धीरे-धीरे एकान्त में मिलने जुलने लगे, आलिङ्गन-चुम्बन करने लगे, पान लेना और देना, चीजों का परिवर्तन, विनिमय करना और फिर नायिका के गोपनीय अंगों को स्पर्श करना। यही अभियोग है ॥ २४ ॥

अभियोगस्याविषयमाह—

यत्र चैकाभियुक्ता न तत्रापरामभियुञ्जीत ॥ २५ ॥

यत्र चेति गृहे। अपरामिति द्वितीयां नाभियुञ्जीत ॥ २५ ॥

जहाँ पहले किसी से अभियोग (मिलन) हो चुका हो वहाँ दूसरी से मिलन न करना चाहिए ॥ २५ ॥

तत्र या वृद्धानुभूतविषया प्रियोपग्रहैश्च तामुपगृह्णीयात् ॥२६॥

प्रियोपग्रहैश्चेति प्रियं यदा स्वसुखकारणं तदैवोपग्रहः। उपगृह्यते अनेनेति। उपगृह्य स्वीकृत्योपन्यस्यात् ॥ २६ ॥

जिस जगह नायिका से मिलन करना हो वहाँ यदि खेली-खाई हो कोई खलीफा बुढ़िया हो तो उसे कुछ दे-दिलाकर अपने अनुकूल बना लेना चाहिए ॥ २६ ॥

श्लोकावत्र भवतः—

अन्यत्र दृष्टसंचारस्तद्भर्ता यत्र नायकः।
न तत्र योषितं कांचित्सुप्रापामपि लङ्घयेत् ॥ २७ ॥

यत्रेति यस्मिन्गृहे नायिकाया भर्ता अन्यस्यां योषिति दृष्टसंचारो दृष्टाभिगमो न तत्र गृहे सुप्रापामपि सुलभामपि लंघयेदधिगच्छेदित्यर्थः ॥ २७ ॥

इस विषय के दो प्राचीन श्लोक हैं—जिस घर में नायिका के पति ने किसी

दूसरी स्त्री का व्यभिचार देखा या सुना हो, वहाँ आसानी से भी मिलनेवाली से मिलना ठीक नहीं है ॥ २७ ॥

शङ्कितां रक्षितां भीतां सश्वश्रूकां च योषितम् ।
न तर्कयेत मेधावी जानन्प्रत्ययमात्मनः ॥ २८ ॥

शङ्कितामभियोक्तरि जाताशङ्काम् । रक्षितां रक्षिभिः । भीतां पत्युः । सश्वश्रूकां श्वश्र्वधिष्ठितां न तर्कयेत । जानन्प्रत्ययमित्यहमत्राशक्त इति निश्चयमगच्छन् । इत्यभियोगाश्चतुश्चत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ २८ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे परिचयकारणान्यभियोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

आत्मविश्वासी व्यक्ति को चाहिए कि वह शंकित हृदयवाली, रक्षित, डरपोक और सास-ससुरवाली स्त्री को भूल कर भी न चाहे ॥ २८ ॥

पिछले अध्याय में यह कहा गया है कि पुरुष को चाहिए कि वह क्रियाओं द्वारा पराई स्त्री की इच्छाओं को बढ़ाता रहे । अब इस अध्याय में उन क्रियाओं का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है । क्रियाओं के सम्बन्ध में मुद्दे की बात यह बताई गयी है कि जिन पराई स्त्रियों से सहवास की इच्छा की जाती है वे प्रायः दो प्रकार की हुआ करती हैं, एक तो कन्या—जो पहले कभी बिगड़ी न हो । उसे मिलाने के लिए पुरुष को दूती की सहायता न लेकर स्वयं अपने उपायों और साहस का भरोसा रखना चाहिए । इसलिए कि कन्या को कोई अनुभव नहीं रहता है, उस पर आसानी से जाल फेंका जा सकता है । उस पर जो रंग चढ़ाया जाता है, वह विफल नहीं होता, किन्तु जो खेली-खाई रहती हैं उन अनुभवशील स्त्रियों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए पुरुष को दूती के माध्यम से काम करना चाहिए, वह सब इशारों, संकेतों को समझती है । जहाँ तक हो सके कन्या या अनुभवशील स्त्री दोनों को आकृष्ट करने के लिए दूती की अपेक्षा स्वयं का प्रयत्न लाभदायक होता है, हाँ जहाँ स्वयं का प्रयत्न करने में कठिनाई हो वहाँ दूती का सहारा लेना आवश्यक है ।

आकृष्ट करने के प्रयत्नों में सर्वप्रथम परिचय, मेल-मुहब्बत बढ़ाना चाहिए । उसको देखने तथा अपने को उसे दिखाने का प्रयत्न करना चाहिए । इधर-उधर चलती-फिरती को देख लेना स्वाभाविक दर्शन है और विशेष

अवसरों पर, उत्सवों आदि में जाकर देखना प्रयत्नदर्शन कहलाता है। जिस स्त्री से मिलन की इच्छा हो उसके हाव-भाव, अंग संचालन को देखकर अनुकरण करना, उसको लक्ष्य करके किसी बालक को चूमना, आलिंगन करना आदि बाह्य परिचय कहे जाते हैं। इस प्रकार के बाह्य परिचय से धीरे-धीरे बातें करना या सिलसिला जोड़ना चाहिए।

जब बाह्य-परिचय हो जाए, उससे मिलने-जुलने के अवसर प्राप्त होने लगें, उसके घर आने-जाने का सिलसिला जारी हो जाए तो पान, सुपारी, इत्र जैसी चीजें उसे रखने के लिए इसलिए देना चाहिए कि इन वस्तुओं का रोजाना लेना-देना बना रहता है, इस बहाने नित्य भेंट-मुलाकात, बात करने का मौका मिलता रहता है। धीरे-धीरे उसके उन कामों के कराने का भार अपने ऊपर ले लेना चाहिए, जो जेवर या अन्य उपयोगी चीजें वह सुनार, जड़िया, आदि से बनवाना चाहती है। उसके सामने अपनी परिचय-चारुता, जानकारी की डींग हरफनमौला बनकर हाँकनी चाहिए।

धीरे-धीरे छोटी-छोटी बातों पर उससे बहस करना प्रारंभ कर दे, उस बहस में उसके साथ उसके नौकर-चाकरों को भी सम्मिलित कर लिया करे। बहस के दौरान में स्त्री की प्रखर बुद्धि, उसके चातुर्य और अद्भुत व्यक्तित्व की प्रशंसा करता जाए।

पराई स्त्रियों को फँसाने के लिए कामसूत्रकार ने संकेतों और इशारों को प्राथमिकता दी है। कामशास्त्रियों ने इस विषय के कुछ 'कोडवर्ड' भी बना रखे हैं। जैसे—पुरुष को उसका नाम न लेकर 'फल' और स्त्री को फूल कहकर सम्बोधित किया जाना। उनके वंश को 'अंकुर' कहना चाहिए। यदि वह ब्राह्मण जाति का है तो दाड़िम, क्षत्रिय है तो कटहल, वैश्य है तो केला, शूद्र है तो आम, राजकुमार है तो चाँद, राजा है तो घटा, हीनकुल का हो तो कालपुष्प, सामन्त खान्दान का हो तो सर, तरुण है तो मध्याह्न, बच्चा हो तो अपक्व, वृद्ध हो तो पक्व, और स्त्री के लिए यदि वह ब्राह्मणी हो तो कुन्दपुष्प, राजकुमारी हो तो मालती, वैश्यपुत्री हो तो मल्लिका, शूद्रपुत्री हो तो कुमुदिनी, व्यापारी की लड़की हो तो सरोज, मन्त्री की लड़की हो तो उत्पल कहकर सम्बोधित करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त कामी को कामी न कहकर भ्रमर कहना चाहिए। कामिनी को चूतमंजरी, बुलाने के लिए अंकुश शब्द का प्रयोग करना चाहिए। रोकना हो तो 'दीवार' शब्द का प्रयोग किया जाए। रात के लिए ढँका चाँद, दिन के लिए सूर्य प्रकाश, दिन के पहले प्रहर के लिए शंख, दूसरे प्रहर के लिए महाशंख, तीसरे प्रहर के लिए पद्म, चौथे प्रहर के लिए महापद्म, पाँचवें

प्रहर के लिए राग, छठे प्रहर के लिए विराग, सातवें प्रहर के लिए प्रवर और आठवें प्रहर के लिए प्रत्युप शब्द का संकेत करना चाहिए।

इन्हें भाषा-संकेत कहते हैं। इन संकेतो का प्रयोग अपने अभिप्राय किसी और से छिपाने तथा नायिका या दूती से प्रकट करने के लिए उस समय करना चाहिए जब कई लोग हों, अथवा पत्र लिखने में इन भाषा-संकेतों का प्रयोग करना चाहिए।

भाषा-संकेतों के अतिरिक्त अंग-संकेत, पुष्पमाला-संकेत, ताम्बूल-संकेत, वस्त्र-संकेत और पोटली-संकेत पाँच और संकेत बताये गये हैं।

अंग-संकेत—नायक-नायिका को जब एक दूसरे का कुशल-प्रश्न पूछना हो तो कान छूना चाहिए। अपनी चाह दिखाने के लिए शिर पर हाथ रखना चाहिए। प्रेम की आकुलता प्रकट करने के लिए छाती पर हाथ रखना चाहिए। सम्मान प्रकट करने के लिए ललाट पर हाथ रखना चाहिए। मिलन का अवसर पूछने के लिए हाथ की मध्यमा अंगुली को तर्जनी पर चढ़ा देना चाहिए। अवसर के उत्तर की स्वीकृति में हाथ जोड़ देना चाहिए। यदि बुलाना हो तो मुट्ठी बाँधकर हाथ जोड़ना चाहिए।

किसी दिन के लिए इकरार करना हो तो तिथियों का संकेत करना चाहिए। कनिष्ठा अँगुली के पहले पोर से लेकर अँगूठे के आखिरी पोर तक पन्द्रह पोर होते हैं। प्रतिपदा से लेकर पूर्णमासी तक इन्हें पन्द्रह दिन माना जाता है। ये तिथियों के संकेत हैं। जब किसी तिथि का संकेत करना हो तो अंगुलियों के पोरों से करना चाहिए। दिशाओं का संकेत भी अंगुलियों से किया जाता है। अंगूठा दिखाने से पूर्व दिशा का, तर्जनी से दक्षिण, मध्यमा से पश्चिम, कनिष्ठा तथा उसके पास की अंगुली से उत्तर का बोध होता है। शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष का संकेत हाथों से करना चाहिए। बायाँ हाथ दिखाने से शुक्ल पक्ष, दाहिना हाथ दिखाने से कृष्ण पक्ष का संकेत बनता है।

इन अंग-संकेतों का उपयोग उस समय किया जाता है जब प्रेमी दीवाना बना प्रेमिका की गली में चक्कर काटता रहता है और प्रेमिका खिड़कियों, झरोखों से संकेतों की सूचना देती है।

पुष्पमाला-संकेत—अनुराग प्रकट करने के लिए लाल फूलों की माला, प्रेमिका से वैराग्य प्रकट करने के लिए गेरुआ रंग के फूलों की माला, प्यार न मिलने पर काले सूत में पिरोई हुई पुष्पमाला का व्यवहार करना चाहिए। जब प्रेमी इस प्रकार की माला गले में डालकर प्रेमिका के सामने से निकलता है तो माला के संकेत से प्रेमिका प्रेमी के मनोभावों को समझ लेती है। स्वयं

पहनने के अतिरिक्त अपने मनोभाव प्रकट करने के लिए दूतियों द्वारा प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे के पास पुष्प या पुष्पमालाएँ भेजते भी हैं।

ताम्बूल-संकेत—प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच पान का जो आदान-प्रदान होता है, उस बीड़े के पांच प्रकार होते हैं। पान की नसें निकाल कर जो बीड़ा बनाया जाता है उसे 'कौशल' कहते हैं। अंकुश के आकार के बीड़े को 'अंकुश', बाण के आकार के बीड़े को 'कन्दर्प', चौरस बीड़े को पर्यंक और चौकोर बीड़े को चतुरस्र कहते हैं।

स्नेहाधिक्य प्रकट करने के लिए 'कौशल', परस्पर मैत्री प्रकट करने के लिए 'अंकुश', कामपीड़ा प्रकट करने के लिए 'कन्दर्प' और संभोग का संकेत व्यक्त करने के लिए 'पर्यंक' पान का बीड़ा दिया जाता है।

'अभी मौका नहीं है' का संकेत करने के लिए चौकोना पान का बीड़ा, मनोमालिन्य प्रकट करने के लिए बिना सुपारी का पान और प्रेम प्रदर्शित करने के लिए सुपारी, इलायची मिलाकर पान दिया जाता है। सम्बन्ध-विच्छेद प्रकट करने के लिए पान को तोड़-मरोड़कर काले सूत से बाँध दिया जाता है। संयोग का भाव व्यक्त करने के लिए दो पानों की नोकें जोड़कर लाल धागे से बाँधा जाता है, अत्यन्त प्रेम में टुकड़े-टुकड़े जोड़ कर पान लगाया जाता है। अन्दर केशर भर दी जाती है और बाहर चन्दन का लेप कर दिया जाता है। ताम्बूल बीड़ा का संकेत अत्यन्त चतुर नागर-नागरियाँ करते हैं।

वस्त्र-संकेत—जब प्रेमी अपनी कामपीड़ित जर्जर दशा को प्रेमिका से बताना चाहे तो वस्त्रों में छेद करके इस अवस्था का संकेत करना चाहिए। अनुराग का संकेत लाल वस्त्र से और वैराग्य का संकेत गेरुए वस्त्र से करना चाहिए। वियोग की दशा का संकेत फटे-चीथड़े वस्त्र से, परस्पर मिलन का संकेत सूत को बाँध कर, काम की दशा का संकेत वस्त्र में गाँठे डालकर, अपने मनोभाव प्रकट करने चाहिए।

वस्त्रसंकेत का प्रयोग उस समय किया जाता है जब नायक-नायिका अपने-अपने घरों की छतों पर खड़े हुए एक दूसरे से मिलने के लिए आकुल-व्याकुल रहते हैं।

पोटली-संकेत—प्रेम जताने के लिए सुगन्धित वस्तुएँ, सुपारी, मेवा आदि की पोटली बाँध कर दी जाती है। यह प्रथा अब भी प्रायः सुहागरात के दिन प्रचलित है। अत्यन्त प्रेम प्रदर्शित करने के लिए छोटी इलायची, जावित्री और लौंग की पोटली बनायी जाती है, प्रेम भंग हो जाने पर मूगों की पोटली बनायी जाती है, बहुत पुरानी दोस्ती प्रकट करने के लिए दो मूंगे पोटली में बाँधे जाते हैं, जब कामज्वर की पीड़ा व्यक्त करनी हो तो

कड़वी चीजों की पोटली बनाई जाती है। संभोग का संकेत करने के लिए मुनक्का की पोटली बनायी जाती है। अपना शरीर समर्पित कर देने के भाव में कपास की पोटली, प्राण समर्पित करने के लिए जीरा की पोटली, भय दिखाने के लिए भिलावा की पोटली, भय दूर होने की सूचना में हरें की पोटली का संकेत करना चाहिए।

प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच काम-वासना, प्रणय-प्रीति की दशा का प्रतीक मोम माना जाता है। लाल रंग अनुराग का प्रतीक एवं पांचों अंगुलियों के निशान कामदेव के पांच बाणों का प्रतीक माना जाता है।

पोटली-संकेत के लिए मोम की टिकिया बनाकर उस पर पाँचों अँगुलियों के नाखून के निशान बनाकर लाल धागे से बाँध देना चाहिए। उसे ही पोटली कहा जाता है।

प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच उपर्युक्त ६ प्रकार के जो संकेत बताए गये हैं उनका ज्ञान शिक्षा और शिक्षण के बिना असंभव है। इन संकेतों का उपयोग, प्रयोग वही नागर-नागरिकाएँ कर सकती हैं जो काम-कला की शिक्षा प्राप्त किए रहती हैं। गँवार, उजड्ड प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिए ये संकेत निरर्थक हैं, वे पशुओं की भाँति आचरण कर सकते हैं।

उपर्युक्त संकेतों में आजकल भाषा-संकेत और अंग-संकेत के कुछ अंश स्वभावतः बिना शिक्षा-प्रशिक्षा के प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच प्रचलित देखे जाते हैं, प्रेम-पत्रिकाओं में इसी ढंग के कोडवर्ड लिखे मिलते हैं, प्रेयसी के कूचे में घूमते हुए प्रेमियों को उनकी प्रेमिकाओं द्वारा इसी ढंग-के अंग-संकेत मिलते हुये देखे जाते हैं।

वात्स्यायन ने इस अध्याय को परिचय और अभियोग इन दो भागों में बाँटा है। परिचय का संक्षिप्त किया जा चुका है। अब अभियोग की व्याख्या की जा रही है। अभियोग का अर्थ यहाँ पर अपराध या मुकद्दमा नहीं है बल्कि प्रेमी-प्रेमिकाओं के परस्पर मिलन को अभियोग कहा गया है। संकेतों, इशारों द्वारा प्रेमिका को आकृष्ट कर, उसे विश्वस्त बनाकर उससे मिलन का प्रयत्न करना चाहिये। इस कार्य-व्यापार में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए, धीरज और संयम से काम लेना चाहिये। चीजों का आदान-प्रदान करना चाहिये—अपने वैभव, चातुर्य और सद्‌गुणों का प्रदर्शन वस्तुओं के आदान-प्रदान के माध्यम से करना चाहिए। उनके अन्दर का भय-संकोच और सन्देह दूर करने का उत्तरोत्तर प्रयत्न करना चाहिये। भय, संकोच, लज्जा और सन्देह-रहित हो जाने पर आलिंगन, चुम्बन का क्रम प्रारम्भ करना चाहिए। प्रेमिका के गुप्तांगों का स्पर्श करना शुरू कर दे, फिर किसी ऐसी खलीफा स्त्री का घर

ठीक करना चाहिये जो अकेली रहती हो और प्रेमी-प्रेमिकाओं के मिलन के लिए अपने घर को अड्डा बनाने में सहायता कर सकती हो। ऐसी स्त्रियाँ लालची होती हैं, उन्हें भी कुछ देकर सन्तुष्ट करना चाहिये।

ऐसे अड्डों को देशी भाषा में 'आढ़त' कहा जाता है, बड़े-बड़े नगरों में आज-कल भी ऐसे अड्डे हैं, जहाँ स्त्रियाँ देवदर्शन आदि का बहाना कर पहुँचती हैं और अपने प्रेमियों से मिलती हैं। इनके अतिरिक्त शास्त्रकारों ने और भी जगहें बताई हैं—अरहर, ज्वार आदि के घने खेत, घर की वाटिका, टूटे-फूटे प्रतिमाहीन सूने मंदिर या खण्डहर, माली का घर, कुट्टिनियों के घर, श्मशान, नदीतट, नाला, गुफा आदि व्यभिचार के स्थान हैं।[1] किन्तु इन सब में अधिक सुरक्षित और विश्वस्त दूतियों के घर को माना गया है। यदि दूतियों के घर न मिल सकें तो एकान्त निर्जन स्थान या जंगल भी उपयुक्त माने गये हैं।[2] नदियों के तट को भी इस काम के लिये शास्त्रकारों ने उपयुक्त माना है।[3]

इति श्री वात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे
परिचयकारणान्यभियोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः।

---

[1] क्षेत्रं वाटी भग्नदेवालयो दूतीगृहं वनम्,
आलयं च श्मशानं च नद्यादीनां तटी तथा।
एवं कृताभिसाराणां पुंश्चलीनां विनोदने,
स्थानान्यष्टौ तथा ध्वान्तच्छन्ने कुत्रचिदाशयः॥

—साहित्यदर्पण

[2] पश्य निश्चलनिस्यन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका,
निर्मलसरकतभाजनपरिस्थिता शंखशुक्तिरिव।

—काव्यप्रकाश

[3] उपपरिसरं गोदावर्याः परित्यजताध्वगाः,
सरणिमपरो मार्गस्तावद् भवद्भिरवेक्ष्यताम्।
इह हि विहितो रक्ताशोकः कयाऽपि हताशया,
चरणनलिनं न्यासोदञ्चन्नवांकुरकञ्चुकः॥

—काव्यप्रकाश

तृतीयोऽध्यायः

भावपरीक्षाप्रकरणम्

सत्यप्यभियोगे धीराः प्रगल्भपरीक्षिण्यो याः स्त्रियस्ता न निर्भिन्नसद्भावास्त-स्तश्च न तासु विशेषाभियोग इति भावपरीक्षोच्यते—

अभियुञ्जानो योषितः प्रवृत्तिं परीक्षेत। तया भावः परीक्षितो भवति। अभियोगांश्च प्रतिगृह्णीयात् ॥ १ ॥

प्रवृत्तिं चेष्टां परीक्षेत। अनया हि परीक्षितया भावः परीक्षितो भवति। तत्कार्यत्वात् ॥ १ ॥

स्त्री से मिलते-जुलते हुए पुरुष को उसकी प्रवृत्ति की, उसके भावों की परीक्षा भी करनी चाहिए। क्योंकि भाव ही चेष्टा का कार्य है ॥ १ ॥

कथं साधयेत्याह—

मन्त्रमवृण्वानां दूत्यैनां साधयेत् ॥ २ ॥

मन्त्रमवृण्वानामिति सांप्रयोगिकं भावमप्रकाशयन्तीं दूत्या साधयेत्। प्रग-ल्भत्वात् ॥ २ ॥

प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच की सलाह प्रकट न करने वाली चतुर दूती को साधना चाहिए ॥ २ ॥

अप्रतिगृह्याभियोगं पुनरपि संसृज्यमानां द्विधाभूतमानसां विद्यात्। तां क्रमेण साधयेत् ॥ ३ ॥

अप्रतिगृह्याभियोगं नायकेन क्रियमाणं प्रत्याख्याय पुनरपि कियन्तो दिवसा-न्स्थित्वा संसृज्यमानां नायकेन संसर्गं यातां द्विधाभूतमानसां विद्यात्। परीक्ष-णीयत्वात्कि कुर्यामहं न वेति तां क्रमेण साधयेत् ॥ ३ ॥

नायक के मिलन को स्वीकार न करके भी नायिका जब सहवास करती है तो उसे दुविधा में फँसी हुई समझना चाहिये। उसकी इस प्रकार की दुविधा को धीरे-धीरे दूर करने का उपाय करना चाहिए ॥ ३ ॥

अत्र विशेषमाह—

अप्रतिगृह्याभियोगं सविशेषमलंकृता च पुनर्दृश्येत तथैव तमभिगच्छेच्च विविक्ते बलाद्ग्रहणीयां विद्यात् ॥ ४ ॥

सविशेषमिति यथा पूर्वमलंक्रियमाणा अतः सविशेषमलंकृता पुनर्नायकेन

दृश्येत तथैवाभिगच्छेत् [च] नायिकां विविक्ते स्थितां बलाद्गृह्णीयाद्धठाद्गृह्यां विद्यात् ॥ ४ ॥

जो नायक से मिलती नहीं फिर भी पहले से अधिक साज-शृङ्गार से रहती हों, तो नायक को उससे उसी प्रकार मिलने का प्रयत्न करना चाहिये। नायक उसके इस भाव को समझ ले कि यह नायिका एकान्त में जबरदस्ती संभोग कराने की प्रवृत्ति रखती है ॥ ४ ॥

बहूनपि विषहतेऽभियोगान्न च चिरेणापि प्रयच्छत्यात्मानं सा शुष्कप्रतिग्राहिणी परिचयविघटनसाध्या ॥ ५ ॥

धीरत्वाद्बहूनपि विषहते ये ये क्रियन्ते। न च चिरेणापीति-बहुभिरपि दिवसैः। शुष्कप्रतिग्राहिणीत्यर्थशून्यानभियोगान्प्रतिग्रहीतुं शीलमस्याः। अतिपरीक्षणीयत्वात्। परिचयविघटनसाध्येति परिचयापनयनसाध्या ॥ ५ ॥

जो स्त्री कई बार मिल चुकी हो किन्तु संभोग कराने से कतराती हो तो उसे नीरस मिलन वाली समझना चाहिये। उससे सहवास करने के लिये अत्यन्त मेल-जोल बढ़ाना चाहिए ॥ ५ ॥

कथं तदपनयनात्सिद्ध्यतीत्याह—

मनुष्यजातेश्चित्तानित्यत्वात् ॥ ६ ॥

मनुष्यजातेरिति तच्चित्ताभिधानम्। चित्तानित्यत्वादिति मनसश्चलत्वात्। यतो विच्छिन्ने परिचये पुनः स्वयं संधत्ते ॥ ६ ॥

मनुष्य की चित्त-वृत्तियाँ बदलती रहती हैं, इसलिये एकबार परिचय टूट जाने पर फिर भी जोड़ा जा सकता है ॥ ६ ॥

अभियुक्तापि परिहरति, न च संसृज्यते। न च प्रत्याचष्टे। तस्मिन्नात्मनि च गौरवाभिमानात्। सातिपरिचयात्कृच्छ्रसाध्या। मर्मज्ञया दूत्या तां साधयेत् ॥ ७ ॥

अभियुक्तापि परिहरति। अभियोगं परिहृत्यापि काचित्संसर्गं यातापीत्याह। न च संसृज्यते इति तस्या आत्मन्यभिमानात्। न च प्रत्याचष्टे नायिका (यक) मेकान्तेन। तस्मिन्नायके च गौरवाभिमानात्। सातिपरिचयात्कृच्छ्रसाध्या तस्या ह्यतिधीराया अतिपरिचयेन गौरवाभिमानौ कृच्छ्रयन्स्फुटयति। मर्मज्ञया दूत्या साध्या। तद्वशत्वात् ॥ ७ ॥

कुछ ऐसे स्वभाव की भी स्त्रियाँ होती हैं जो कई बार प्रेमी से मिलन के बाद उससे मिलना छोड़ देतीं हैं, सम्भोग नहीं करातीं और न इनकार ही करती हैं—ऐसा करने में ही वह अपना गौरव समझती हैं। उसे या तो अधिक

परिचय बढ़ाकर सहवास के लिये तैयार कराना पड़ता है अथवा चतुर दूती से साधना पड़ता है ॥ ७ ॥

तत्र विशेषमाह—

सा चेदभियुज्यमाना पारुष्येण प्रत्यादिशत्युपेक्ष्या ॥ ८ ॥

पारुष्येण प्रत्यादिशति निष्ठुरवाक्येन प्रत्याचष्टे। उपेक्षिताभियुञ्जीत ॥ ८ ॥

जो मिलने पर नायक पर अपनी उपेक्षा प्रकट करे और पूछने पर निठुर जबाब दे तो नायक को उसका पीछा छोड़ देना चाहिये ॥ ८ ॥

अत्रापि विशेषमाह—

परुषयित्वापि तु प्रीतियोजिनीं साधयेत् ॥ ९ ॥

परुषमुक्त्वापि प्रीतियोजिनीं प्रीतियोजनशीलां साधयेत्पुनरभियुञ्जीत। तस्या जातविप्रतीसारत्वात् ॥ ९ ॥

कुछ ऐसे स्वभाव की स्त्रियाँ होती हैं जो पहले कटु वाणी बोलती हैं पीछे प्रेम भी जोड़ती हैं, ऐसी स्त्रियों से सहवास करने के लिए नायक को प्रयत्नशील रहना चाहिए ॥ ९ ॥

कारणात्संस्पर्शनं सहते नावबुध्यते नाम द्विधाभूतमानसा सातत्येन क्षान्त्या वा साध्या ॥ १० ॥

कारणादिति कुतश्चिन्निमित्तात्संस्पर्शनमभियोगं सहते। न शुष्कप्रतिग्राहिणीत्यर्थः। नावबुध्यते नामेति नायकाभिप्रायमजानतीव संस्पर्शनं सहते सैवंभूता द्विधाभूतमानसा परीक्षणीयत्वात्सातत्येन क्षान्त्या साध्येति। अविच्छेदेन संस्पर्शस्य क्षमणं कार्यमित्यर्थः ॥ १० ॥

यदि प्रेमिका किसी कारण से पुरुष के आलिंगन, अङ्गस्पर्श को, उससे मिलन को अनजान की तरह सहन करती है तो उसे दुविधा में फँसी हुई समझ कर नायक धैर्यपूर्वक उसके सहवास की प्रतीक्षा करे ॥ १० ॥

समीपे शयानायाः सुप्तो नाम करमुपरि विन्यसेत्। सापि सुप्तेवोपेक्षते। जाग्रती त्वपनुदेद्भूयोऽभियोगाकांक्षिणी ॥ ११ ॥

समीपे शयानाया आन्तराभियोगेन प्रवृत्तिं परीक्षेत। सुप्तो नामेति कृतकमपदिश्यापनयति। किमर्थमित्याह—भूयोऽभियोगाकांक्षिणीति। अन्यथा किं सुप्तेनैव न्यस्तः किं वाभियोगार्थं कृतकसुप्तेनेति संदेहः ॥ ११ ॥

समीप में सोती हुई सी नायिका के ऊपर सोता हुआ सा नायक हाथ रखे, वह सोती हुई के समान कुछ परवाह न करेगी। जो मिलन की अधिक इच्छा रखती है वह नायक के हाथों को फौरन हटा देती है ॥ ११ ॥

एतेन पादस्योपरि पादन्यासो व्याख्यातः ॥ १२ ॥

एतेन हस्तन्यासेन ॥ १२ ॥

हाथ रखने के बाद पैर के ऊपर पैर भी लाद देना चाहिये ॥ १२ ॥

तस्मिन्प्रसृते भूयः सुप्तसंश्लेषणमुपक्रमेत् ॥ १३ ॥

तस्मिन्निति हस्तन्यासे पादन्यासे च । प्रसृते निबन्धनत्वेन प्रवृत्ते । सुप्तसंश्लेषणमिति—कृतकसुप्ताया आलिङ्गनमेवोपक्रमेण (त) चुम्बनादिकम् ॥ १३ ॥

धीरे-धीरे जब निःशंक होकर हाथ-पैर रखने लग जाए तब लेटे-लेटे ही आलिंगन भी प्रारम्भ कर देना चाहिए ॥ १३ ॥

तदसहमानामुत्थितां द्वितीयेऽहनि प्रकृतिवर्तिनीमभियोगार्थिनीं विद्यात् । अदृश्यमानां तु दूतीसाध्याम् ॥ १४ ॥

तदिति संश्लेषणम् । उत्थितां शयनात् । प्रकृतिवर्तिनीमकुपिताम् । अभियोगार्थिनीं विद्यात् । दृश्यमानां पुनरभियुञ्जीतेत्यर्थः । अस्या अप्रगल्भत्वात् । अदृश्यमानान्तु प्रकृतिवर्तिनीं दूतीसाध्यां [विद्यात्] तद्विषयत्वात् ॥ १४ ॥

यदि वह स्त्री आलिंगन करते ही उठकर खड़ी हो जाय और दूसरे दिन नाराज न जान पड़े तो नायक समझ जाए कि अभी यह मिलना ही पसन्द करती है, इसलिये उससे मिलते रहना चाहिये, यह समझ कर कि प्रगल्भा नायिका है, जो दूसरे दिन भी वैसी ही प्रतीत हो, सम्भोग से दूर भागती हो तो दूती द्वारा उसे साधना चाहिए ॥ १४ ॥

चिरसदृष्टापि प्रकृतिस्थैव संसृज्यते कृतलक्षणां तां दर्शिताकारामुपक्रमेत् ॥ १५ ॥

यदा तु तदसहमानोत्थिता चिरं बहून्दिवसान्दृष्टा सती पुनरपि प्रकृतिस्थैवाकुपिता संसृज्यते संसर्गं करोतीति यद्यप्येवं तथापि कृतलक्षणां तामिति जातावसरां दर्शिताकारामुपक्रमेताभियुञ्जीत । तस्या अतिशयेनाप्रगल्भत्वात् ॥ १५ ॥

बहुत दिनों बाद भेंट होने पर भी यदि नायिका मिलना चाहती हो, इशारेबाजी करती हो, हावभाव दिखाती हो तो उससे पुनः मिलना-जुलना शुरू करदेना चाहिए ॥ १५ ॥

अनभियुक्ताप्याकारयति । विविक्ते चात्मानं दर्शयति । सवेपथुगद्गदं वदति । स्विन्नकरचरणाङ्गुलिः स्विन्नमुखी च भवति । शिरःपीडने संवाहने चोर्वोरात्मानं नायके नियोजयति ॥

अभियुक्तेति । अभियुक्ता तावद्भावसूचकमाकारं दर्शयत्येव । तत्र च यदि

वदति सवेपथु सगद्गदम् । स्विन्नकरचरणांगुलिः स्विन्नमुखी च भवत्येकान्तेनाहित-भावत्वात् ॥ १६ ॥

बिना मिले हुए ही हाव-भाव दिखाती हो, एकान्त में अपने अङ्गों का प्रदर्शन करती हो, बोलते हुए आवाज में कम्पन हो, वाणी गद्गद हो, हाथ-पैर और मुँह पर पसीना आ जाता हो, नायक के शिर-पैर आदि दबाने लगती हो तो उसे समझना चाहिए कि यह नायिका नायक को प्यार करती है ॥ १६ ॥

आतुरासंवाहिका चैकेन हस्तेन संवाहयन्ती द्वितीयेन बाहुना स्पर्शमावेदयति श्लेषयति च । विस्मितभावा ॥ १७ ॥

आतुरेति । आतुरामेकान्तेन प्रगल्भयेत् । एवमवस्थापि विविक्ते नायकं दूतादभियुक्ते। संवाहिका चेति कदाचिदप्रगल्भा संवाहनद्वारेण प्रवृत्तिं दर्शयति। स्पर्शमावेदयतीत्यात्मीयं नायकं ज्ञापयति । विस्मितभावेति विस्मिताख्यो भावो यस्याः । स्पर्शं निवेदयमाना तावत्स्पर्शं विना जातविस्मया सती तेनैव द्वितीय-बाहुना श्लेषयति श्लेषं करोति ॥ १७ ॥

नायिका जब कामातुर होती है तो वह अपना पैर दबाने लगती है, एक हाथ से पैर दबाती जाती है, दूसरे हाथ से स्पर्श का संकेत करती है । और नायक के स्पर्श के बिना ही चकित होती हुई दूसरे हाथ से करती जाती है ॥ १७ ॥

निद्रान्धा वा परिस्पृश्योरुभ्यां बाहुभ्यामपि तिष्ठति । अलिकैकदेशमूर्वोरुपरि पातयति । ऊरुमूलसंवाहने नियुक्ता न प्रतिलोमयति । तत्रैव हस्तमेकमविचलं न्यस्यति । अङ्गसंदंशेन च पीडितं चिरादपनयति ॥ १८ ॥

वाशब्दो भिन्नक्रमे । उभाभ्यां बाहुभ्यां कृतकनिद्रा परिस्पृश्यापि ऊरुभ्यां तिष्ठति । अलिकैकदेशमग्रभागं पातयति । संवाहयन्ती न प्रतिलोमयति । तत्सं-वाहनं स्यात् । तत्रैवेत्यूरुमूले । अविचलनं न्यस्यति तत्र ज्ञाप्या (?) न व्यापा-रयति । मा भूज्जघनपार्श्वसंस्पर्श इति । अङ्गसंदंशेन चेत्यूरुद्वयसंदंशेन नायकेन पीडितं चिरादपनयति । मा भूदिच्छाविघातोऽस्येति ॥ १८ ॥

अथवा नींद का बहाना करके दोनों हाथों से नायक का स्पर्श करके दोनों घुटनों के बल बैठती है । और माथे को घुटनों पर टेक देती है, नायक के पैर को दबाती हुई हाथों को उसकी जाँघों की तरफ ही बढ़ाती है, नीचे की ओर नहीं ले जाती । एक हाथ को जाँघों के जोड़ में रखे रहती है, जब नायक

अपनी जाँघों से उसके हाथ को जोर से दबाता है तभी वह हाथ हटाती है ॥ १८ ॥

प्रतिगृह्यैवं नायकाभियोगान्पुनर्द्वितीयेऽहनि संवाहनायोपगच्छति ॥ १९ ॥

नायकाभियोगानिति—तस्यामवस्थायामन्यदा वा नायकाभियोगान्दृष्ट्वा तदीयं भावं प्रतिगृह्य पुनःसंवाहनायोपगच्छति कार्यस्यानिष्पन्नत्वात् ॥ १९ ॥

इस प्रकार पहले दिन वह नायिका नायक से हिल-मिलकर दूसरे दिन फिर उसका पैर दबाने के लिए आती है ॥ १९ ॥

नात्यर्थं संसृज्यते । न च परिहरति ॥ २० ॥

नात्यर्थमिति । कदाचिदतिधैर्याद् गूढभावैव प्रवृत्तिं दर्शयति, स्वयं नात्यन्तं संसृज्यते । न च परिहरत्यमुम् ॥ २० ॥

अत्यन्त धीर नायिका होने के कारण भाव को छिपा कर ही अपनी प्रवृत्तियों को दिखाती है । न तो स्वयं अत्यन्त सम्पर्क स्थापित करती है और न नायक का परित्याग ही करती है ॥ २० ॥

विविक्ते भावं दर्शयति निष्कारणं चागूढमन्यत्र प्रच्छन्नप्रदेशात् ॥ २१ ॥

विविक्ते भावं दर्शयति माऽन्यो ज्ञासीदिति, अन्यत्र प्रच्छन्नप्रदेशादिति । जनसंबाधे गूढ इत्याह—निष्कारणमिति । कारणं विना, गूढत्वादिति । प्रच्छन्नत्वात् ॥ २१ ॥

दूसरा कोई देख नहीं सकेगा यह समझ कर वह नायिका एकान्त में भाव का प्रदर्शन करती है और जन-समुदाय में प्रच्छन्न भाव दिखाती है ॥ २१ ॥

संनिकृष्टपरिचारकोपभोग्या सा चेदाकारितापि तथैव स्यात् सा मर्मज्ञया दूत्या साध्या ॥ २२ ॥

जो नायिका नायक के पास रहकर सेवा करके भोग करने योग्य हो वह इशारा, संकेत, कटाक्ष करने पर भी ज्यों की त्यों रहती है वह दूती की सहायता से ही साधी जा सकती है ॥ २२ ॥

व्यावर्तमाना तु तर्कणीयेति भावपरीक्षा ॥ २३ ॥

भावपरीक्षा पञ्चचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ २३ ॥

जो संकेत करती हुई भी सहवास से दूर रहे, उसकी इस प्रवृत्ति पर विचार करना चाहिए कि यह भीतरी मन से ऐसा करती है या नखरे दिखा रही है ॥ २३ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

आदौ परिचयं कुर्यात्ततश्च परिभाषणम्।
परिभाषणसंमिश्रं मिथश्चाकारवेदनम् ॥ २४ ॥

सर्वप्रथम नायिका से परिचय करना चाहिए, फिर बातों का सिलसिला जोड़ना चाहिए। वार्त्तालाप में ही परस्पर भावों का आदान-प्रदान और पहचान हो जानी चाहिए ॥ २४ ॥

प्रत्युत्तरेण पश्येच्चेदाकारस्य परिग्रहम्।
ततोऽभियुञ्जीत नरः स्त्रियं विगतसाध्वसः ॥ २५ ॥

संकेत करने पर यदि उसका उत्तर संकेत द्वारा नायिका से मिल जाता है तो नायक निर्भय होकर उस नायिका से सहवास करने के लिये प्रवृत्त हो जाये ॥ २५ ॥

आकारेणात्मनो भावं या नारी प्राक्प्रयोजयेत्।
क्षिप्रमेवाभियोज्या सा प्रथमे त्वेव दर्शने ॥ २६ ॥

जो नायिका संकेत के साथ अपने मनोगत भावों को जोड़ देती है, वह तो प्रथम परिचय काल ही में सहवास के लिये तैयार हो सकती है ॥ २६ ॥

श्लक्ष्णमाकारिता या तु दर्शयेत्स्फुटमुत्तरम्।
सापि तत्क्षणसिद्धेति विज्ञेया रतिलालसा ॥ २७ ॥

जिस स्त्री को गुप्त इशारा किया जाए और वह स्पष्ट उत्तर दे तो समझ लेना चाहिए कि वह सहवास चाहती है ॥ २७ ॥

धीरायामप्रगल्भायां परीक्षिण्यां च योषिति।
एष सूक्ष्मो विधिः प्रोक्तः सिद्धा एव स्फुटं स्त्रियः ॥ २८ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गना-
विरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां
पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे भावपरीक्षा तृतीयोऽध्यायः।

जो नायिका स्वभाव से धीर हो, चतुर न हो और नायक की परीक्षा करती हो तो ऐसी स्त्रियों के लिए सूक्ष्म विधि बतायी गयी है। क्योंकि ऐसी स्त्रियाँ कभी न कभी सहवास करायेंगी यह स्पष्ट है ॥ २८ ॥

पुरुष जिस पराई स्त्री से सहवास करने की इच्छा रख कर उसे अपनी ओर आकृष्ट करता है, उससे मेल-जोल बढ़ाता है, किन्तु फिर भी वह स्त्री धीर प्रकृति की होने से अपने मनोभावों को जल्दी नहीं प्रकट करती, सहवास कराने का मौका नहीं देती, ऐसी स्त्रियों के मन के भाव की परीक्षा करने का सुझाव वात्स्यायन इस प्रकरण में देते हैं।

पुरुष को चाहिए कि ऐसी स्त्रियों से जब वह मिले, उनके भाव की परीक्षा करता रहे। उनकी हरकतों, चेष्टाओं और प्रवृत्तियों का अध्ययन बारीकी से करे क्योंकि चेष्टा के कार्य का ही नाम भाव है। यदि सहवास का भाव वह किसी प्रकार भी प्रकट न करती हो तो नायक को दूती से सहायता लेकर उसे सिद्ध करना चाहिए।

नायिका के भाव का सूक्ष्म अध्ययन करने के लिये नायक को मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनानी चाहिए। वह नायिका की चेष्टाओं को देखता हुआ यह समझे कि यह नायिका दुविधा में फँसकर सहवास का मौका नहीं दे रही है या इसका स्वभाव ही है कि जब तक इसके साथ जबर्दस्ती न की जायगी तब तक संभोग नहीं हो सकता है। जो नायिका दुविधा में फँसी रहती है वह नायक से मिलती-जुलती रहने पर भी एकदम मिलना-जुलना बन्द कर देती है, फिर कुछ दिनों में मिलती है, उसके अन्दर यह दुविधा रहती है कि 'सहवास में प्रवृत्त होऊँ या नहीं' इस प्रकार दुविधा में फँसी हुई स्त्री के भाव समझ कर नायक को अपने प्रयत्नों से विरत न होना चाहिये। उसके सहवास की आशा न खो बैठे बल्कि जिस प्रकार वह नायिका नायक की परीक्षा लेती है उसी प्रकार नायक को भी उसकी परीक्षा लेनी चाहिए, उसके भावों का निरन्तर अध्ययन करते रहना चाहिए, धीरे-धीरे वह नायिका सहवास के लिए तैयार हो जाती है।

लेकिन बाज नायिका ऐसी भी होती है जो नायक से मिलती-जुलती तो नहीं किन्तु प्रथम परिचय के बाद से ही अधिक बनाव-श्रृङ्गार से, नाज-नखरों से उसके सामने से गुजरती रहती है। इस प्रकार की नायिका के भाव को समझ कर नायक भी टीप-टाप से उसके सामने प्रस्तुत हो और जब कभी एकान्त में उससे मुलाकात हो तो उसके नहीं, नहीं करने पर भी उसके साथ जबर्दस्ती सहवास करे।

कुछ स्त्रियाँ जरूरत से ज्यादा धीरज वाली और नीरस प्रवृत्ति की हुआ करती हैं, वे नायक से मिलती भी हैं, आलिङ्गन, चुम्बन भी बरदाश्त करती हैं, लेकिन सहवास के लिए इधर-उधर करती हैं। नायक से उनका मिलना-जुलना, आलिङ्गन, चुम्बन कराना अर्थशून्य होता है। ऐसी नीरस नायिका

का अर्थरहित भाव समझकर नायक उसके सहवास की आतुरता न बढ़ाकर उससे परिचय बढ़ाने का प्रयत्न करे। परिचय बढ़ जाने के बाद वह स्वतः आत्मसमर्पण कर देती है।

नायिका के भावों की परीक्षा के लिए वात्स्यायन नायक को सचेत करते हुए कहते हैं कि मनुष्य का स्वभाव अनित्य होता है, वह निरन्तर परिवर्तन स्वीकार किया करता है। किस समय किसका कैसा 'मूड' है यह परखने की चेष्टा करनी चाहिए। स्त्रियों का स्वभाव और भी अधिक चञ्चल हुआ करता है, इसलिए स्त्रियों की करनी-कथनी में बहुत कम स्थिरता रहती है। इस स्वभाव-चांचल्य के कारण वे अपने प्रेमियों से परिचय तोड़ने के बाद भी स्वयं जोड़ा करती हैं।

मनुष्य स्वभाव की चञ्चलता का उल्लेख दर्शनशास्त्र ने भी किया है। चित्त की चञ्चलता दूर करने के लिये ही योगदर्शन का निर्माण हुआ है। मन ही को बन्धन और मोक्ष का कारण दर्शनशास्त्र ने माना है। गीता तो स्पष्ट शब्दों में कहती है कि मन निहायत चञ्चल और महान् बलवान है, इसे वश में करना वायु को वश में करने के समान कठिन है।

सभी स्त्रियाँ या अधिकांश स्त्रियाँ नहीं बल्कि कुछ थोड़ी-सी स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जो पर-पुरुष से समागम की इच्छा रखती हैं, या उनमें इस विषय की इच्छा उत्पन्न की जा सकती है अथवा इच्छा रखती हुई भी स्त्रियाँ अपने चाहने वालों को बेवकूफ बनाने में आनन्द प्राप्त करती हैं।

इसलिए पुरुष को स्त्री के भाव की परीक्षा करने की बड़ी और सर्वप्रथम आवश्यकता होती है, वह सब धान बाईस पसेरी न समझकर विवेक बुद्धि से भी काम ले। जो स्त्री दुराचारिणी नहीं है कदाचित् पुरुष उसे फँसाने के लिए इशारेबाजी करता है और इशारे का जवाब इशारे से न पाकर कठोर, घृणित शब्दों में पाता है तो उसे उस स्त्री का पीछा यह समझकर फिर न करना चाहिए कि वह स्त्री पर-पुरुष से अभिगमन करने की प्रवृत्ति नहीं रखती है। कुछ ऐसी भी होती हैं, जो पर-पुरुष से फँसी होने पर भी किसी अन्य व्यक्ति को इशारेबाजी, टॉन्ट कसते देखकर अपने सतीत्व का इजहार जूता, चप्पलों से करती हैं। कुछ ऐसे स्वभाव की होती हैं, कि चाहती हुई भी लज्जा, सङ्कोच के कारण सहवास में प्रवृत्त नहीं होतीं। इसलिए चतुर नायक को चाहिए कि परिचय बढ़ाकर, मेल-जोल पैदा कर और भावों को परख कर पराई स्त्री पर हाथ लगाए।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे
भावपरीक्षा तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः

दूतीकर्मप्रकरणम्

अभियुञ्जानः प्रवृत्तिं परीक्षेत, यत्र स्वयमभियोगासंभवस्तत्र दूतीप्रयोग इति दूतीकर्माण्युच्यन्ते—

दर्शितेङ्गिताकारां तु प्रविरलदर्शनामपूर्वां च दूत्योपसर्पयेत्।

इङ्गिताकारौ दर्शयित्वा काचिदात्मानं न दर्शयति च कार्ययोगात्तामपूर्वां चापरिचिताम् । न दर्शिताकारामित्यर्थः । दूत्योपसर्पयेदात्मसमीपं ढौकयेत् ॥ १ ॥

जो स्त्री भाव-संकेत दिखा चुकी हो, किन्तु मिलने-जुलने से कतराती हो या अपूर्व स्त्री हो तो उसे दूती के द्वारा प्राप्त करना चाहिए ॥ १ ॥

मूलभूतास्तिस्रो दूत्यः—निसृष्टार्था परिमितार्था पत्त्रहारी चेति । [तासां] सामान्येन कर्माण्याह—

सैनां शीलतोऽनुप्रविश्याख्यानकपटैः सुभगंकरणयोगैर्लोक-वृत्तान्तैः कविकथाभिः पारदारिककथाभिश्च तस्याश्च रूपविज्ञान-दाक्षिण्यशीलानुप्रशंसाभिश्च तां रञ्जयेत् ॥ २ ॥

शीलत इति—शीलेनादावनुप्रविश्य विश्वासार्थं शीलवती स्यात् । आख्यानकपटैरिति—यमुपदिश्याख्यानकानि चित्रलिखितानि । सुभगंकरणैर्योगैर्वक्ष्यमाणैः । लोकवृत्तान्तैः—पुराणनिबन्धनैः कविकथाभिरिति—कविभिर्निबद्धाभिर्बिन्दुमतीप्रभृतिभिः । पारदारिककथाभिर्गौतमबृहस्पत्यादिदाराणामिन्द्रचन्द्रादिभिरपहरणकथाभिः । अनुप्रविश्य किं कुर्यादित्याह—तस्या इति—नायिकाया रूपं वर्णं संस्थानं च । [विज्ञानदाक्षिण्यं] शास्त्रकलासु दाक्षिण्यमानुकूल्यम् । शीलं सुस्वभावता । तेषां प्रशंसाभिः ॥ २ ॥

जिस स्त्री को दूती फँसाना चाहे उसके घर उत्तम शील-स्वभाव का परिचय देकर प्रवेश करे, इसके बाद कपट-कहानियों से, खूबसूरती बढ़ानेवाले योगों से, लोकवार्त्ताओं से, पराई नारी और पर-पुरुष को रसमयी कहानियों से तथा उस स्त्री की सुन्दरता, उसकी कला-कुशलता और उसके शील की प्रशंसा करके उसे प्रसन्न करे ॥ २ ॥

कथमेवंविधायास्तवायमित्थंभूतः पतिरिति चानुशयं ग्राहयेत् ।

कथमेवंविधाया यथोक्तगुणाया इत्थंभूतो वैरूप्यादिप्रकारमापन्नः । अनुशयं विप्रतीसारं ग्राहयेत् [न] भद्रकमापतितं यदहमनेनोढेति ॥ ३ ॥

'तुम जैसी इतनी सुन्दर, सुशील और सुदक्ष को ऐसा पति कैसे मिला'—यह कहकर वह दूती उस स्त्री के हृदय में उसके प्रति घृणा और द्वेष पैदा करे ॥ ३ ॥

न तव सुभगे दास्यमपि कर्तुं युक्त इति ब्रूयात् ॥ ४ ॥

सुभग इत्यामन्त्रणं जनसौभाग्यख्यापनार्थम् । दास्यमपि किमु तव पतित्वम् ॥

अरी सुन्दरी, यह तो तुम्हारा दास भी होने लायक नहीं है ॥ ४ ॥

मन्दवेगतामीर्ष्यालुतां शठतामकृतज्ञतां चासंभोगशीलतां कदर्यतां चपलतामन्यानि च यानि तस्मिन् गुप्तान्यस्या अभ्याशे सति सद्भावेऽतिशयेन भाषेत ॥ ५ ॥

मन्दवेगतां च भाषेत यदि सा चण्डवेगा। उपलक्षणं चैतत्। शीघ्रवेगतां च यदि चिरवेगा। असंभोगशीलतामिति–विषयान्भोक्तुमशीलताम्। कदर्यतामहीनकायताम्। अन्यानि चेति पारुष्यनैर्घृण्यदाम्भिकत्वादीनि। तस्मिन्पत्यौ। अस्या अभ्याश इति नायिकायाः समीपे यथान्यो न शृणोति। सति सद्भाव इति विदग्धत्वे सति। अतिशयेन भाषेत येन सा तथैव प्रतिपद्यते ॥ ५ ॥

तुम्हारा यह पति ठण्डा है, ईर्ष्यालु है, धूर्त है, कृतघ्न है, भोगविलास करने में नीरस और उदासीन रहता है, बुरे काम करनेवाला और बहुत चपल है। इसके अतिरिक्त उस पुरुष के जो गुप्त दोष हों, उन्हें भी उसकी पत्नी से कहे, जितना सुवृत्त हो उतना ही उसे वह दूती दुर्वृत्त कहे ॥ ५ ॥

येन च दोषेणोद्विग्नां लक्षयेत्तेनैवानुप्रविशेत् ॥ ६ ॥

येन चेति प्रत्यक्षीकृतेन तद्दोषेण तेनैवैनामनुप्रविशेत्। कथितमेव मया यथायं दोषबहुल इति ॥ ६ ॥

जिस दोष को सुनकर उस स्त्री को व्याकुल होती देखे उसी दोष से उसे पति से विमुख बना दे ॥ ६ ॥

यदासौ मृगी तदा नैव शशतादोषः ॥ ७ ॥

नैव शशतादोषः किं त्वश्वत्वदोषो वाच्यः ॥ ७ ॥

यदि वह स्त्री मृगी हो तो उसके पति पर शश होने का दोष न लगाए ॥७॥

एतेनैव वडवाहस्तिनीविषयश्चोक्तः ॥ ८ ॥

एतेनैवेत्यनन्तरोक्तेन स्वजातीयन्यायेन। वडवाहस्तिनीविषययोगे न दोषो वृषत्वमश्वत्वं च। किं तु शशत्वं दोषः ॥ ८ ॥

इसी से बडवा और हस्तिनी का भी सम्बन्ध समझ लेना चाहिए। तात्पर्य

यह कि यदि स्त्री का गुह्याङ्ग छोटा हो तो उसके पति पर छोटे गुह्याङ्ग होने का दोष न लगाना चाहिए। उस समय पति का गुह्याङ्ग बड़ा बताना ही दोष होगा। इसी तरह यदि स्त्री बडवा या हस्तिनी हो तो उसके पति को अश्व या वृष न कहकर शश कहना ठीक होगा ॥ ८ ॥

दूत्योपसर्पयेदिति सामान्येनोक्तमत्र गोणिकापुत्रदर्शनमाह—

नायिकाया एव तु विश्वास्यतामुपलभ्य दूतीत्वेनोपसर्पये-त्प्रथमसाहसायां सूक्ष्मभावायां चेति गोणिकापुत्रः ॥ ९ ॥

विश्वास्यतामुपलभ्य दूतीत्वेनोपसर्पयेत्। कस्मिन्विषय इत्याह—प्रथमसाहसायामिति। या प्रथमं चारित्रं खण्डयति। सूक्ष्मभावायामस्फुटभावायाम्। एतदनुमतमप्रतिषिद्धत्वात् ॥ ९ ॥

आचार्य गोणिकापुत्र का कहना है कि दूती नायिका की विश्वस्त बनकर अपने दूत कार्य से उसे अपने घर बुलाए। किन्तु उसी नायिका को जो पहली बार पर-पुरुष से मिलने का साहस करती हो अथवा अपने गूढ़ भावों को व्यक्त न करती हो ॥ ९ ॥

सा नायकस्य चरितमनुलोमतां कामितानि च कथयेत् ॥

चरितमनुलोमतामानुलोम्यं कामितानि चेति त्रिविधं कामितं रतस्यारम्भे मध्येऽवसाने च ॥ १० ॥

नायिका को अपने घर बुलाकर नायक के उत्तम गुण और चरित्र का बखान करे। उसकी सरलता की प्रशंसा करे और नायिका को भावभङ्गिमाओं को बताए कि संभोग के आदि में क्या भाव होता है, मध्य में कैसा होता है और अन्त में कैसा होता है ॥ १० ॥

प्रसृतसद्भावायां च युक्त्या कार्यशरीरमित्थं वदेत् ॥ ११ ॥

प्रसृतसद्भावायां नायिकायां सत्याम्। अन्यथोक्ते दोषकरणमपि स्यात्। युक्त्या न यथाकथंचित्। यदर्थं दूतीकल्पस्तत्कार्यंशरीरम्। इत्थमिति वक्ष्यमाणप्रकारम् ॥ ११ ॥

यदि नायिका को पातिव्रत से डिगती हुई देखे तो उससे इस प्रकार की बात करे ॥ ११ ॥

शृणु विचित्रमिदं सुभगे, त्वां किल दृष्ट्वामुत्रासावित्थं गोत्रपुत्रो नायकश्चित्तोन्मादमनुभवति। प्रकृत्या सुकुमारः कदाचिदन्यत्रापरिक्लिष्टपूर्वस्तपस्वी। ततोऽधुना शक्यमनेन मरणमप्यनुभवितुमिति वर्णयेत् ॥ १२ ॥

विचित्रमिदं यदन्याभिः काम्यमानोऽपि त्वां दृष्ट्वापि चित्तोन्मादमनुभवति। एवं च सुभग इत्यामन्त्रणमर्थवद्भवति। किलेति त्वं दृष्टासीति परोक्षं ममेत्याह। इत्थं गोत्रपुत्रो न यस्य कस्यचित्पुत्रः। कार्यस्य बलीयस्त्वं दर्शयन्नाह—प्रकृत्येति। अन्यत्रेत्यन्यस्याम्। अपरिक्लिष्टपूर्वस्तद्वचन [कर] त्वात् स्त्रीणाम्। तपस्वीत्यनुकम्पायाम्। शक्यमनेन मरणमप्यनुभवितुं–विनश्य [इक्षच] तीत्यर्थः॥ १२॥

अरी परम सुन्दरी, मैं तुझे एक विचित्र बात सुनाती हूँ। ध्यान से सुन। अमुक खान्दान का अमुक युवक तुझे अमुक स्थान पर देखकर पागल हो उठा है। वह बेचारा कोमल स्वभाव का है, अभी तक कभी कष्ट उठाया ही नहीं, वह तो पूरा तपस्वी है। अगर वह तुझे नहीं पाएगा तो तड़प-तड़प कर मर जाएगा॥ १२॥

तत्र सिद्धा द्वितीयेऽहनि वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां च प्रसादमुपलक्ष्य पुनरपि कथां प्रवर्तयेत्॥ १३॥

तत्रेति तस्मिन्नभिधीयमाने सिद्धा न प्रत्याख्याता। वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां च त्रिष्वपि प्रसादं प्रसन्नताम्। कथां प्रवर्तयेत्सामान्याम्॥ १३॥

इस प्रकार विचित्र बात सुनने में उसकी रुचि देखकर दूसरे दिन दूती उसे फिर बुलाए और उसका मुख यदि प्रसन्न दिखाई पड़े और आँखों में प्रसन्नता छलकती हो तो फिर साधारण बातें करे॥ १३॥

शृण्वत्यां चाहल्याविमारकशाकुन्तलादीन्यन्यान्यपि लौकिकानि च कथयेत्तद्युक्तानि॥ १४॥

शृण्वत्यां स्वकथाम्। अहल्या गोतमभार्या तयोत्कण्ठितया देवराजः कामितः। अग्निहोत्रकेना (णा) ग्निपरिचरणे वधूर्नियुक्ता। सा च कुण्डादुत्थितेन मूर्तिमताग्निना कामिता। जातगर्भां च तां श्वशुरः कुलदोषभयादटव्यां तत्याज। प्रसूता च सह सुतेन (सा सुतम्। तं) शबरसेनापतिरपत्यबुद्ध्या संवर्धितवान्। तत्पुत्रश्चाजाविकसमूहेन बालवयस्त्वात्क्रीडमानः परिभ्रमन् क्षीरपानान्महाबलोऽभूत्। येन शिशुरेव हस्तग्रहणादजाविकं जघान। सेनापतिरप्यन्वर्थमस्य नाम चक्रेऽविमारक इति। ततः प्रवृद्धयौवनः कदाचिद्राज्ञोऽटव्यां समावासितस्य दुहितरं हस्तिना व्यापाद्यमानां तं हत्वा ररक्ष। ततो जातोत्कण्ठा [सा] स्वयमेव पाणिं ग्राहितवती। तद्युक्तानि पारदारिकयुक्तानि॥ १४॥

जब वह नायिका बातें सुनने में तल्लीन हो जाए तो उसी समय अहल्या, अविमारक, शकुन्तला जैसी उन स्त्रियों-पुरुषों की कहानियाँ तथा अन्यान्य ऐसी ही लोककथाएँ सुनाए जो पर-पुरुष और पर-नारी के समागम से सम्बन्ध रखती हों॥ १४॥

वृषतां चतुःषष्टिविज्ञतां सौभाग्यं च नायकस्य । श्लाघनीयतां (या) चास्य प्रच्छन्नं संप्रयोगं भूतमभूतपूर्वं वा वर्णयेत् ॥

वृषतां व्यवाय (यि) ताम् । चतुःषष्टिविज्ञतामिति गीतादिकायां पाञ्चालिकायां विज्ञताम् । सौभाग्यं पुरुषेणाप्यभिलषत (?) इति । श्लाघनी [य] येति यां स्त्रियं श्लाघते । प्रच्छन्नं लोकस्याविदितम् । एवं चाभूतमपि भूतामिव जातम् ॥ १५ ॥

नायक के संभोग की प्रबल शक्ति, कामकलाओं में उसकी दक्षता, उसकी सौभाग्यशालिता, और उत्तमता का बखान कर ऐसी विख्यात सुन्दरी एवं सती स्त्री का नाम लेकर बताए कि वह भी उससे संभोग करा चुकी है ॥१५॥

आकारं चास्या लक्षयेत् ॥ १६ ॥

आह्नि (क्रि) यते गृह्यते भावो येनेति वाक्कायव्यापारोऽत्र गृह्यते ॥ १६ ॥

नायिका को इतना सुनाकर फिर उसकी भाव-भङ्गिमा को परखे ॥ १६ ॥

तदेव दर्शयन्नाह—

सविहसितं दृष्ट्वा संभाषते ॥ १७ ॥

सविहसितमिति संभाषणक्रियाविशेषणमेतत् ॥ १७ ॥

जिन चेष्टाओं से दूती नायिका के भावों का पता लगा लेती है उन्हें बताते हैं—

देखकर हँसती हुई बोलती है ॥ १७ ॥

आसने चोपनिमन्त्रयते ॥ १८ ॥

उपनिमन्त्रयते इदमासनमास्यतामिति ॥ १८ ॥

सम्मानपूर्वक आसान पर बैठने के लिए कहती है ॥ १८ ॥

क्वासितं क्व शयितं भुक्तं क्व चेष्टितं किं वा कृतमिति पृच्छति ॥ १९ ॥

चेष्टितं भ्रान्तम् । कृतमवश्यकर्तव्यमिति पृच्छति । तेन द्वारेण नायकसंबद्धं किंचिदभिधास्यतीति ॥ १९

कहाँ बैठी, कहाँ सोई, कहाँ भोजन किया, कहाँ क्या करती रही अथवा कहाँ क्या किया है इत्यादि पूछती है ॥ १९ ॥

विविक्ते दर्शयत्यात्मानम् ॥ २० ॥

विविक्ते दर्शयत्यात्मानं रहस्यं किञ्चिद्वक्ष्यतीति ॥ २० ॥

एकान्त में अपने को दिखाती है ॥ २० ॥

आख्यानकानि नियुङ्क्ते ॥ २१ ॥

आख्यानकानि नियुंक्तेऽधृतिकथनार्थं नायककथां वा करिष्यतीति ॥ २१ ॥

स्वतः बातें छेड़ती है ॥ २१ ॥

चिन्तयन्ती निःश्वसिति विजृम्भते च ॥ २२ ॥

चिन्तयन्तीत्यभ्युद्गत (तद्गत) मानसा निःश्वसिति । विजृम्भते मदनलालसा ॥

कुछ सोचती हुई उभर-उभर साँसें लेती है, जँभाई भरती है ॥ २२ ॥

प्रीतिदायं च ददाति ॥ २३ ॥

प्रीतिदायमिति यत्प्रीत्या दीयते कटकमुत्तरीयं वा तदस्यै ददाति ॥ २३ ॥

प्रेमभेंट देती है ॥ २३ ॥

इष्टेषूत्सवेषु च स्मरति ॥ २४ ॥

इष्टेषु कार्येषूत्सवेषु च स्मरति कथमद्य नायातेति ॥ २४ ॥

विशेष कामकाज और उत्सवों में उसे बुलाती है ॥ २४ ॥

पुनर्दर्शनानुबन्धं विसृजति ॥ २५ ॥

पुनर्दर्शनानुबन्धमिति पुनर्मया द्रष्टव्यासीति प्रेषयति ॥ २५ ॥

फिर से आने की शर्त रखकर विदा करती है ॥ २५ ॥

साधुवादिनी सती किमिदमशोभनमभिधत्स इति कथामनुबध्नाति ॥ २६ ॥

साधुवादिनीति त्वद्दर्शनं नामश्रवणमपि तं सुखयतीति दूत्या कथायां प्रवर्तितायामाह—साधुवादिनी सती किमिदमशोभनमयुक्तमभिधत्से इत्यभिधाय कथामनुबध्नाति प्रवर्तयति ॥ २६ ॥

बातचीत के दौरान में कह देती है कि आप तो बड़ी सज्जन हैं फिर फूहड़पन की बातें क्यों करती हैं ॥ २६ ॥

नायकस्य शाठ्यचापल्यसंबद्धान्दोषान्ददाति ॥ २७ ॥

दोषान्ददातीति शठोऽसौ न निर्व्याजं व्यवहरति लोके । चपलश्च नैकस्यां रमत इति ॥ २७ ॥

नायक की चञ्चलता और धूर्तता को दोष बताती हुई कहती है कि वह एक पर तो कभी टिकता ही नहीं ॥ २७ ॥

पूर्वप्रवृत्तं च तत्संदर्शनं कथाभियोगं च स्वयमकथयन्ती तयोच्यमानमाकांक्षति ॥ २८ ॥

तत्संदर्शनमिति नायकदर्शनं यत्तस्याः पूर्वप्रवृत्तं यत्र [यत्र] यदा यथा ।

कथाभियोगं च पुनः पुनः कथायोगं पूर्ववृत्तं स्वयमकथयन्ती लज्जया तयोच्यमानं दूत्या कथ्यमानं कांक्षति तेनापि सुखं स्थीयत इति ॥ २८ ॥

वह यह आकांक्षा रखती है कि नायक की देखा-देखी की बात दूती ही चलाए ॥ २८ ॥

नायकमनोरथेषु च कथ्यमानेषु सपरिभवं नाम हसति । न च निर्वदतीति ॥ २९ ॥

नायकमनोरथेष्विति स दिवसो भविष्यति यत्र पादपतनैः प्रसादिताया अधरं पास्यामीत्येवमादिषु दूत्या कथ्यमानेषु सपरिभवमिव हसति दूरात् (दुराशा) शठस्य धूर्तस्येति। न च निर्वदति निश्चयेनाभिधत्ते सिध्यत्येव तस्य मनोरथ इति ॥

दूती जब नायक की मनोकामना बताती है तो 'धत्' कहकर हँस देती है, लेकिन यह नहीं कहती कि तुम्हारी चाह पूरी होगी ॥ २९ ॥

विषये (शेषे) ण नायिकाया आकारे लक्षिते किं फलमित्याह—

दूत्येनां दर्शिताकारां नायकाभिज्ञानैरुपबृंहयेत् ॥ ३० ॥

नायकाभिज्ञानैरिति नायकस्य तया सह पूर्वं व्यावृत्तानि तैरुपबृंहयेदत्यन्तमनुरक्तां कुर्यात् ॥ ३० ॥

इस प्रकार की भाव-भङ्गिमाओं को देखकर दूती उसे नायक की उन्हीं पुरानी विशेषताओं पर अनुरक्त करे ॥ ३० ॥

असंस्तुतां तु गुणकथनैरनुरागकथाभिश्चावर्जयेत् ॥ ३१ ॥

असंस्तुतामित्यपरिचिताम्, अभिज्ञानासंभवात् । नायकस्य गुणकथनैरनुरागकथाभिश्चावर्जयेत् ॥ ३१ ॥

जो नायिका नायक से परिचित न हो उसे नायक के गुणों का बखान कर उसकी प्रेम-कहानियाँ सुनाकर नायिका को आकृष्ट करे ॥ ३१ ॥

अत्राचार्याणां मतभेदमाह—

नासंस्तुतादृष्टाकारयोर्दूत्यमस्तीत्यौद्दालकिः ॥ ३२ ॥

नासंस्तुतादृष्टाकारयोति ययोर्न परिचयो न चाकारदर्शनं चास्मिन्विषये न दूत्या कर्मं विषयो वास्ति । यत्रेदमुक्तम्—'कृतपरिचयां दर्शितेङ्गिताकारां कन्यामिवोपायतोऽभियुञ्जीत' ॥ ३२ ॥

श्वेतकेतु औद्दालकि का मत है कि जो नायिका नायक से सर्वथा अपरिचित है उसके साथ दूती कर्म नहीं हो सकता है ॥ ३२ ॥

असंस्तुतयोरपि संसृष्टाकारयोरस्तीति बाभ्रवीयाः ॥ ३३ ॥

संसृष्टाकारयोस्तयोरसंस्तुतयोरप्यवस्थाकारस्यैव दूत्यं मितत्रत्वात् । यथोक्तम्—

'आकारेणात्मनो भावं या नारी प्राक्प्रदर्शयेत् । क्षिप्रमेवाभियोज्या सा प्रथमे चैव दर्शने' ॥ ३३ ॥

किन्तु बाभ्रवीय आचार्यों का मत है कि अपरिचित होने पर भी यदि भाव-भङ्गिमा, संकेत मिल चुके हों तो दूतीकर्म हो सकता है ॥ ३३ ॥

संस्तुतयोरप्यसंसृष्टाकारयोरस्तीति गोणिकापुत्रः ॥ ३४ ॥

असंसृष्टाकारयोरिति व्यामिश्रभावत्वात्तदाकारोऽपि संसृष्टशुद्धो भवति । ततश्च तयोरपि । यत्रेदमुक्तम्—'धीरायामगल्भायाम्' इत्यादि ॥ ३४ ॥

गोणिकापुत्र जो पारदारिक गमन प्रकरण के विशेषज्ञ हैं उनका कहना है कि बिना परिचय और इशारा मिले हुए भी दूतीकर्म होता है ॥ ३४ ॥

असंस्तुतयोरदृष्टाकारयोरपि दूतीप्रत्ययादिति वात्स्यायनः ॥

दूतीप्रत्ययादिति दूतीसामर्थ्यादसंस्तुतयोरपि । अस्मिन्पक्षे त्रितयाभावेऽपि दूत्यमस्ति । यत्रेदं वक्ष्यति–'कौतुकाच्चानुरूपौ युक्ताविमौ परस्परस्य' इति ॥३५॥

आचर्य वात्स्यायन का कहना है कि बिना परिचय और इशारे के भी दूती कर्म होता है—दूती के विश्वास पर ॥ ३५ ॥

तासां मनोहराण्युपायनानि ताम्बूलमनुलेपनं स्रजमङ्गुलीयकं वासो वा तेन प्रहितं दर्शयेत् ॥ ३६ ॥

तासामित्यसंस्तुतानाम् । मनोहराण्युपायनानि कौशलिकास्ताम्बूला (दी)नि ॥

अपरिचित होते हुए भी नायक नायिका के लिए मनभावनी भेंट, पान केशर, माला, अँगूठी और सुन्दर वस्त्र भेजे ॥ ३६ ॥

तेषु नायकस्य यथार्थं नखदशनपदानि तानि तानि च चिह्नानि स्युः ॥ ३७ ॥

तेष्वित्युपायनेषु । यथार्थमिति यथाप्रयोजनं च संप्रयोगसूचकमेव चिह्नं स्यात् ॥

उन उपहार-वस्तुओं में भावबोधक नाखून तथा दातों के चिह्न बनाए जाएँ जो नायिका को नायक के प्रयोजन की सूचना दें ॥ ३७ ॥

वाससि च कुङ्कुमाङ्कमञ्जलिं निदध्यात् ॥ ३८ ॥

कुंकुमाङ्कमञ्जलिमिति कुंकुमेनाङ्कितमञ्जलिं निदध्याद्यथा प्रतिबिम्बमुत्पद्यते । तत्त्वदाराधनपरोऽयं जन इति ख्यापनार्थम् ॥ ३८ ॥

भेंट में दिए जाने वाले कपड़ों पर केशर के थापे और छाप हों ॥

पत्रच्छेद्यानि नानाभिप्रायाकृतीनि दर्शयेत् । लेखपत्त्रगर्भाणि कर्णपत्त्राण्यापीडांश्च ॥ ३९ ॥

नानाभिप्रायाकृतीनीति नानाभिप्राया रतिशोकक्रोधविस्मयादिभावसूचना आकृतिः संस्थानं येषाम्। लेखपत्रगर्भाणि मध्ये लेखपत्रं प्रक्षिप्य वेष्टितानि। आपीडांश्च लेखपत्रगर्भान् ॥ ३९ ॥

कोमल पत्तों पर विभिन्न प्रकार के अभिप्रायों की शकलें बनाकर, रति, क्रोध, शोक का भाव व्यक्त करे, कर्णपत्र और आपीड के भीतर प्रेमपत्रिका भर नायिका के पास भेजना चाहिए ॥ ३९ ॥

तेषु स्वमनोरथाख्यापनम्। प्रतिप्राभृतदाने चैनां नियोजयेत्।

मनोरथाख्यापनमिति लिखित्वा च लेखा (खैः) आचक्षीत। प्रतिप्राभृतं प्रतिकोशलिका ॥ ४० ॥

उन लेखों में अपना अभिप्राय, अपनी मनोकामना व्यक्त करे ॥ ४० ॥

एवं कृतपरस्परपरिग्रहयोश्च दूतीप्रत्ययः समागमः ॥४१॥

कृतपरस्परपरिग्रहयोरिति कृतान्योन्यस्वीकारयोः। दूतीप्रत्ययः (समागमः) तथैव तदानीं निर्दिश्यमानत्वात् ॥ ४१ ॥

इस प्रकार नायक-नायिका के हृदय में चाह पैदा कर दूती के विश्वास पर समागम होता है ॥ ४१ ॥

स तु देवताभिगमने यात्रायामुद्यानक्रीडायां जलावतरणे विवाहे यज्ञव्यसनोत्सवेष्वग्न्युत्पाते चौरविभ्रमे जनपदस्य चक्रारोहणे प्रेक्षाव्यापारेषु तेषु तेषु च कार्येष्विति बाभ्रवीयाः ॥४२॥

देवताभिगमने देवतामभिपूजयितुं यद्गमनं तत्र। यात्रायां कस्याश्चिद्देवतायाः। जलावतरण इति यदा स्नातुं जनसमूहो जलमवतरति न चालक्ष्यते स्थानात्स्थानान्तरगमनम्। अग्न्युत्पाते दह्यमानात्प्रातिवेश्यगृहाद् गृहान्तरगमनं संभवति। चौरविभ्रमे चौराः किल पतन्तीति। अत्र सिध्यति (?)। चक्रारोपणे जनपदं निवेशयितुं स्वीकारारोपणे (?)। तदाह्यनुस्थापितप्रकारत्वात्स्त्रीजनो न सुखी भवति। तेषु तेषु च कार्येष्विति येषु येषु जनानां संमर्दः शून्यता वा ॥ ४२ ॥

बाभ्रवीय सम्प्रदाय के आचार्यों का कहना है कि वह समागम तो देवपूजन, देवयात्रा में जाते समय, वन बिहार में, जल बिहार में, विवाह के अवसर पर, यज्ञ, उत्सव और मृत्यु के अवसर अथवा अग्नि लगने आदि उपद्रवों की भीड़ में, चोरों को पकड़ने के शोरगुल में, राज-बेराजी में, खेल-तमाशों में सम्भव होता है ॥ ४२ ॥

सखीभिक्षुकीक्षपणिकातापसीभवनेषु सुखोपाय इति गोणिकापुत्रः ॥ ४३ ॥

सुखोपाय इति यदैवेच्छति तदैव भवति ॥ ४३ ॥

सहेली, सधुवाइन, भिखारिन, संन्यासिनी और तपस्विनी इनके घर में नायक और नायिका का मिलना-जुलना आसानी से हो सकता है—ऐसा गोणिका पुत्र का मत है ॥ ४३ ॥

तस्या एव तु गेहे विदितनिष्क्रमप्रवेशे चिन्तितात्ययप्रतीकारे प्रवेशनमुपपन्नं निष्क्रमणमविज्ञातकालं च तन्नित्यं सुखोपायं चेति वात्स्यायनः ॥ ४४ ॥

तस्या एवेति नायिकायाः। निष्क्रम्यते प्रविश्यते च येन मार्गेण तदुभयं विदितं वीक्षितं यत्र गेह इति। तदप्यविज्ञातकालमनियतकालं प्रवेशनं निष्क्रमणं चोपपन्नं युक्तमनुपलक्ष्यमाणत्वाद्भवति। प्रवेशनं निष्क्रमणं चानित्यं तस्याः तदासंनिहितत्वात्। न सख्यादिगृहेषु। सुखोपायं च विदितमार्गत्वात्प्रतिविहितदोषत्वाच्च ॥ ४४ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि नायिका के घर में यदि घुसने का मार्ग नायक को मालूम हो तो उसके घर में ही समागम हो सकता है ॥ ४४ ॥

सामान्येन कर्माण्युक्त्वा दूतीभेदं प्रदर्शयन्नाह—

निसृष्टार्था परिमितार्था पत्रहारी स्वयंदूती मूढदूती भार्यादूती मूकदूती वातदूती चेति दूतीविशेषाः ॥ ४५ ॥

निसृष्टार्था, परिमितार्था, पत्रहारी, स्वयंदूती, मूढ़दूती, भार्यादूती, मूकदूती और वातदूती—ये ६ प्रकार की दूतियाँ होती हैं ॥ ४५ ॥

नायकस्य नायिकायाश्च यथामनीषितमर्थमुपलभ्य स्वबुद्ध्या कार्यसम्पादिनी निसृष्टार्था ॥ ४६ ॥

यथामनीषितमिति—यथेप्सितम्। इयमेवाकृतपरस्परपरिग्रहौ (यथा संप्रयुज्येतेति त्रिविधं कार्यं संपादयति।) यथा तावनुरज्येते यथा कृतपरस्परपरिग्रहौ संप्रयुज्येते तत्त्रिविधं कार्यं संपादयति। दूती निसृष्टार्थेति इदं करणीयमित्येतावतोऽर्थस्य निसृष्टत्वात् ॥ ४६ ॥

निसृष्टार्था दूती—जो नायक और नायिका के अभिलषित प्रयोजन को जानकर अपनी बुद्धि से कार्य करती है उसे निसृष्टार्था दूती कहते हैं ॥ ४६ ॥

अस्या विषयमाह—

सा प्रायेण संस्तुतसंभाषणयोः ॥ ४७ ॥

संभाष्यत इति संभाषा संभाषणम् । 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति ल्युट् । संस्तुतौ च तौ संभाषणौ च । यदि वा संस्तुतं च संभाषणं च ययोरस्तीति मत्वर्थीयोऽकारः । तयोः प्रायेण दृश्यते । अन्यतरप्रयुक्ता विषयशुद्धिगोचरत्वात् ॥ ४७ ॥

यह दूती जिन नायक-नायिकाओं में जान-पहचान, मेल-मिलाप रहता है उन्हीं का कार्य करती है ॥ ४७ ॥

नायिकया प्रयुक्ता असंस्तुतसंभाषणयोरपि ॥ ४८ ॥

नायिकया च प्रयुक्ता प्रायेणासंस्तुतभाषणयोरपि परिचितावेव केवलं न तु संभाषणमनयोरस्ति । यत इदमुक्तम्—'आदौ परिचयं कुर्यात्ततश्च परिभाषणम्' इति । तथा संभाषमाणोऽपि नायकः संस्तवत्वात्सुसाधन इति प्रायेण दृश्यते । न तु नायिकेति ॥ ४८ ॥

नायिका के भेजने पर बिना परिचय और मिलन के भी काम करती है ॥ ४८ ॥

कौतुकाच्चानुरूपौ युक्ताविमौ परस्परस्येत्यसंस्तुतयोरपि ॥

प्रायेण युक्ताविमौ समानशीलवयस्त्वात्परसंयोजने युक्ताविति निसृष्टार्थया यदा कौतुकमुत्पद्यते तस्माच्चासंस्तुतयोरपि द्रष्टव्या न तु प्रायेण । तथाविधार्थस्य कादाचित्कत्वात् ॥ ४९ ॥

यदि यह दूती रूप, गुण, शील, आयु में बराबर वाले नायक-नायिका को अपनी ओर से मिलाना चाहे तो मिला सकती है ॥ ४९ ॥

कार्यैकदेशमभियोगैकदेशं चोपलभ्य शेषं संपादयतीति परिमितार्था ॥ ५० ॥

कार्यस्याभियोगस्यैकदेशमसमापितमन्यतरस्मादुपलभ्य शेषमसमापितं संपादयतीति परिमितार्था । परिमितः परिच्छिन्नोऽर्थोऽस्या इति ॥ ५० ॥

परिमितार्था दूती—नायक और नायिका के मिलन के किसी अंश को जान कर बाकी का उपाय खुद कर ले तो वह दूती परिमितार्था कहलाती है ॥५०॥

विषयमाह—

सा दृष्टपरस्पराकारयोः प्रविरलदर्शनयोः ॥ ५१ ॥

दृष्टपरस्पराकारयोरित्याकारग्रहणेन दृष्टं परस्परं (?) नान्यत्किंचित्तयोः कार्यशेषं संभाषणम् । प्रविरलदर्शनयोरभियोगशेषम् ॥ ५१ ॥

जहाँ नायक-नायिका दोनों एक दूसरे के इशारे देख चुके हों किन्तु उनकी प्रेम-चेष्टाएँ कभी-कभी दिखाई पड़ें, उनका सहवास कराने में परिमितार्था दूती काम करती है ॥ ५१ ॥

संदेशमात्रं प्रापयतीति पत्रहारी ॥ ५२ ॥

संदेशमात्रमिति कार्यस्य स्थिरत्वात्तन्मात्रं पत्रेण वचसा [वा] प्रापयतीति पत्रहारीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

पत्रहारी दूती—जो नायक-नायिका के सन्देश व पत्र ले जाने का काम करती है वह पत्रहारी दूती है ॥ ५२ ॥

कस्मिन्विषय इत्याह—

सा प्रगाढसद्भावयोः संसृष्टयोश्च देशकालसंबोधनार्थम् ॥५३॥

प्रगाढसद्भावयोः। संप्रयोगं प्रत्यभिमुखत्वात्। संसृष्टयोश्च कृतसंसर्गयोश्च द्रष्टव्या। किमर्थमित्याह— देशकालेति। अस्मिन्काले स्थाने वानयोः समागम इति प्रबोधनार्थमन्यतरेण युज्यते सा ॥ ५३ ॥

यह दूती उन नायकों के मिलने-जुलने, सहवास की जगह निश्चित करती है जो आपस में प्रेमपाश में बँध चुके हों, कई बार मिल चुके हों ॥ ५३ ॥

स्वयंदूती (विश्लिष्टार्था) द्विविधा। तत्रैका परार्था या परेण प्रयुज्यते। द्वितीयात्मार्था सा स्वयंदूतीति द्वितीयं नाम लभते। तस्या विधिमाह—

दौत्येन प्रहितान्यया स्वयमेव नायकमभिगच्छेदजानती नाम तेन सहोपभोगं स्वप्ने वा कथयेत्। गोत्रस्खलितं भार्यां चास्य निन्देत्। तद्व्यपदेशेन स्वयमीर्ष्यां दर्शयेत्। नखदशन-चिह्नितं वा किंचिद्दद्यात्। भवतेऽहमादौ दातुं संकल्पितेति चाभिदधीत। मम भार्याया का रमणीयेति विविक्ते पर्यनुयुञ्जीत सा स्वयंदूती ॥ ५४ ॥

दौत्येनेति दूतक्रियया अन्यया नायिकया प्रहिता या स्वयमेव नायकमभिगच्छेत्कामयेत्सा स्वयंदूतीति सम्बन्धः। अभिगमोपायोपदेशमाह—अजानती नामेति। अद्य स्वप्ने त्वयाहं किलोपभुक्तेति। गोत्रस्खलितं निन्देत् ईदृशं तदस्मदीयं नाम भूतं येन त्वया भार्याहूयत इति। भार्यां चास्य निन्देत्—युक्तमाह्वयितुं यदेयं रूपवती स्यात्। तद्व्यपदेशेनेति गोत्रस्खलितमपदिश्य स्वयमीर्ष्यां दर्शयति। नखादिचिह्नितं भावसूचनार्थम्। किंचिदिति ताम्बूलावलरे रागादिकम् (?) ददतीति चानुरागख्यापनार्थमिदं ब्रूयादित्याह—भवतेति। का रमणीयेति। (अथ) को ज्ञास्यतीति ॥ ५४ ॥

स्वयंदूती—जब कोई नायिका किसी दूती को नायक के पास भेजती है और वह दूती नायिका का खयाल छोड़कर खुद ही नायक की नायिका बन जाती है तो उसे स्वयंदूती कहते हैं। उससे अपरिचित होते हुए भी वह सपने में उस नायक से सहवास की बात कहती है और अपने इस पतन की निन्दा करती है कि मेरा भाग्य ही ऐसा है कि अब आप मुझे न बुलाकर अपनी स्त्री को ही बुलाते हैं। यदि वह सुन्दरी होती तो बुलाना भी उचित था, इस तरह कहती हुई वह नायक की स्त्री से ईर्ष्या प्रकट करे, भाव-भंगिमा प्रकट करने के लिये नाखून और दाँतों के निशान बनाकर कोई वस्तु नायक को दे। रात में पान देते समय अपने प्रेम का प्रतीक रागात्मक वस्तुओं द्वारा प्रदान करे। और उससे कहे कि मेरे पिता ने पहले आप ही के साथ विवाह करने का संकल्प किया था। मुझमें और आपकी स्त्री में किसमें सौन्दर्य अधिक है। वह एकान्त में ही इस तरह का अनुयोग करती है ॥ ५४ ॥

तस्या विविक्ते दर्शनं प्रतिग्रहश्च ॥ ५५ ॥

स्वयं दूती को देखने तथा उससे सन्देश लेने देने में एकान्त होना चाहिए ॥ ५५ ॥

प्रतिग्रहच्छलेनान्यामभिसंधायास्याः संदेशश्रावणद्वारेण नायकं साधयेत् तां चोपहन्यात्सापि स्वयंदूती ॥ ५६ ॥

जो नायिका सन्देश नायक से लाने के बहाने अभिसन्धि करके नायिका का सन्देश सुनाने का उपक्रम करके नायक को अपने पर ही आसक्त कर लेती है, नायिका को उससे नहीं मिलने देती वह भी स्वयंदूती कहलाती है ॥५६॥

एतया नायकोऽप्यन्यदूतश्च व्याख्यातः ॥ ५७ ॥

स्वयंदूत—इसी प्रकार जो पुरुष किसी नायक का सन्देश ले जाने के बहाने नायिका के पास जाता है और नायक के बजाय खुद उसे फँसा लेता है वह स्वयंदूत कहलाता है ॥ ५७ ॥

नायकभार्यां मुग्धां विश्वास्यायन्त्रणयानुप्रविश्य नायकस्य चेष्टितानि पृच्छेत्। योगाञ्शिक्षयेत्। साकारं मण्डयेत्। कोपमेनां ग्राहयेत्। एवं च प्रतिपद्यस्वेति श्रावयेत्। स्वयं चास्यां नखदशनपदानि निर्वर्तयेत्। तेन द्वारेण नायकमाकारयेत्सा मूढदूती ॥ ५८ ॥

साकारं मण्डयेत् स्वाभिप्रायसूचनार्थम्। कोपमस्मिन्ग्राहयेत् आत्मनोऽपीर्ष्यां दर्शयितुम्। चपलोऽयमन्यस्यां सक्तः किमस्ति येन न कुप्यसीति। एवं च

प्रतिपद्यस्व यथाहमाचक्ष इति तां श्रावयेत् । तत्प्रतिकूलां मामनुकूलां ज्ञास्यतीति । स्वयं चास्यां भार्यायां नखदशनपदानि विदधीत, संप्रयोगाभिलाषख्यापनार्थम् । तेनेति क्लेशपथोक्तेन (?) द्वारेण । नायकमाकारयेदाकारं ग्राहयेत्, येनासौ संप्रयोगार्थिनीति विद्यात् । सेति भार्या मूढदूती दूत्यर्थापरिज्ञानादियं परीक्षा द्रष्टव्या ॥

मूढदूती—नायक की मुग्धा नायिका को विश्वास दिला, बिना किसी प्रयास के उसके हृदय में छिपी हुई नायक की बातें पूछकर, सम्भोग की क्रियाएँ सिखाए। अभिप्राय प्रकट करने वाली श्रृङ्गार-रचना कराए। पति से उसका विद्वेष करादे, स्वयं ही उसके अङ्गों में दाँत और नाखून से निशान बना दे उसे तब फिर अपने आशय को प्रकट करे। ऐसी दूती मूढ़दूती कही जाती है ॥ ५८ ॥

तस्यास्तयैव प्रत्युत्तराणि योजयेत् ॥ ५९ ॥

तस्या इति नायिकायाः । तयैवेति मूढदूत्या । प्रत्युत्तराणि प्रत्यभियोगान् । यदि नायिका ॥ ५९ ॥

यदि कोई नायिका ऐसी मूढ़दूती से कार्य करा रही हो तो नायक उसे बदला देने के लिए उसी के साथ संभोग करे ॥ ५९ ॥

'नायकोऽप्यन्यदूतश्च व्याख्यातः' इत्युक्तं च तत्र गोचरे लज्जायां वा यदि स्वयं दौत्यं न प्रतिपद्येत तदा स्वभार्यया तामाकारयेदित्याह—

स्वभार्यां वा मूढां प्रयोज्य तया सह विश्वासेन योजयित्वा तयैवाकारयेत् । आत्मनश्च वैचक्षण्यं प्रकाशयेत् । सा भार्या दूती तस्यास्तयैवाकारग्रहणम् ॥ ६० ॥

मूढामज्ञाम् । विज्ञा हि विकल्पयति मामनया योजयतीति । विश्वासेन हेतुना योजयित्वा तयैवाकारयेत्स्वभार्यया आकारं ग्राहयेत् । वैचक्षण्यं कलाकौशलं तयैव प्रकाशयेत् । सा भार्यादूती पत्रहारीप्रकारा । तयैव भार्यादूत्या तस्या नायिकाया आकारग्रहणं प्रत्युत्तरं प्रथममित्यर्थः ॥ ६० ॥

भार्यादूती—नायक जिस स्त्री से सहवास करना चाहता हो उसके साथ अपनी अबोध स्त्री को मिलाकर उसकी विश्वस्त सहेली बना दे। फिर उसी से अपने भावों को परिचित कराए। इस अवसर पर यदि वह स्त्री अपनी कुशलता का परिचय दे तो उसे भार्यादूती कहते हैं। प्रेमिका का भाव उसी से जाना जाता है ॥ ६० ॥

यदि स्वभार्याया न गोचरस्तदा किं प्रतिपद्येतेत्याह—

बालां वा परिचारिकामदोषज्ञामदुष्टेनोपायेन प्रहिणुयात् ।

तत्र स्रजि कर्णपत्रे वा गूढलेखनिधानं नखदशनपदं वा सा मूकदूती । तस्यास्तथैव प्रत्युत्तरप्रार्थनम् ॥ ६१ ॥

बालां वा परिचारिकां नायकोचिताम् । अदोषज्ञामधूर्ताम् । अदुष्टेनेति बालक्रीडनकाद्युपायेन । नायिकागृहं प्रतिदिनं प्रहिणुयात् । यत्रेति तस्यां जातपरिचयायां गूढलेखविधानं च वाचयित्वा मां नायकोऽप्याकारयतीति सा प्रतिपद्यते । नखदशनपदानि च स्रजि कर्णपत्रे वा निदध्यादिति योज्यम् । सा मूकदूती । अर्थानभिभावनात् । इयं पत्रहारीप्रकारा । तस्या नायिकायास्तथैव प्रत्युत्तरप्रार्थनम् । यदि तया कर्णपत्रात्पत्रं गृहीतं किमत्र मृगयसीति ॥ ६१ ॥

मूकदूती—जिसे अच्छाई-बुराई का ज्ञान न हो, ऐसी नाबालिग नौकरानी को खेलने के लिये नायिका के घर भेजे । उस लड़की के साथ नायिका की जान-पहचान हो जाने पर कर्णपत्र या माला में प्रेमपत्र रखकर नाखून और दाँत के निशान बना दे । इस तरह कार्य करने वाली मूकदूती कहलाती है ॥६१॥

यत्र बालाया अप्यगोचरस्तत्र किं प्रतिपद्येतेत्याह—

पूर्वप्रस्तुतार्थलिङ्गसंबद्धमन्यजनाग्रहणीयं लौकिकार्थं द्व्यर्थं वा वचनमुदासीना या श्रावयेत्सा वातदूती । तस्या अपि तथैव प्रत्युत्तरप्रार्थनमिति तासां विशेषाः ॥ ६२ ॥

पूर्वप्रस्तुतेति—नायिकानायकयोर्यत्पूर्वप्रस्तुतं वृत्तं तस्य चिह्नं तेनाभिज्ञानार्थं संबद्धं वचनम् । अन्यजनाग्रहणीयम् । तस्यामेव तदर्थस्य ग्रहणात् । अत्र म्लेच्छितकविकल्पकला द्रष्टव्या । लौकिकार्थं च लोकविदितार्थम् । द्व्यर्थमप्रस्तुतार्थस्यापि वाचकत्वात् । उदासीना या न क्वचित्प्रतिप्राययाए (श्रावयेत्)सा वातदूतीत्युच्यते । पत्रहारीप्रकारैव चेति । तथैव प्रत्युत्तरप्रार्थनं तस्य हि प्रश्नस्य प्रतिप्रश्नं याचेदित्यर्थः । तासां विशेषा निसृष्टार्थादीनां स्वयंदूत्यादयो विशेषाः । एवमन्येऽपि यथासंभवमत्रैव द्रष्टव्याः । यथाहुर्बाभ्रवीयाः—'पुत्रिका चित्ररूपाणि पशवः शुकसारिकाः । सर्वेषां गूढभावानां दूतकर्माणि कुर्वते ।' इति ॥ ६२ ॥

वातदूती—नायक की सांकेतिक भाषा, श्लेषभाषा को जो उदासीन होकर नायिका को सुनाए और उससे उसी भाषा में उत्तर भी ले ले उसे वातदूती कहते हैं ॥ ६२ ॥

यास्तिस्रो दूत्य उक्तास्ताः का इत्याह—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

विधवेक्षणिका दासी भिक्षुकी शिल्पकारिका ।
प्रविशत्याशु विश्वासं दूतीकार्यं च विन्दति ॥ ६३ ॥

प्रविशति। गृहमिति शेषः। विश्वासं दूतीकार्यं च विन्दति लभते ॥६३॥

इस विषय के श्लोक हैं—

विधवा, सगुन धरानेवाली, भिखारिन, नाउन ये जल्दी ही प्रविष्ट होकर विश्वासपात्र बन जाती हैं, फिर दूती का काम करने लगती हैं ॥ ६३ ॥

संक्षेपेण दूतीकर्माण्याह—

विद्वेषं ग्राहयेत्पत्यौ रमणीयानि वर्णयेत्।
चित्रान्सुरतसंभोगानन्यासामपि दर्शयेत् ॥ ६४ ॥

विद्वेषं ग्राहयेदिति तस्य रूपादिप्रशंसाभिः 'अनुशयं ग्राहयेत्' इत्यादिना। रमणीयानि वर्णयेत्। 'नायकस्य चरितमनुलोमतां कामितानि च कथयेत्' इत्यनेन। चित्रान्सुरतसंभोगान्दर्शयेत् (इत्यादिना) 'वृषतां चतुःषष्टिविज्ञतां संवर्णयेत्' इत्यनेन। अन्यासामपि तत्सखीनामग्रतो न केवलं नायिकायाः। यतस्तास्तस्यै कथयन्ति ॥ ६४ ॥

दूतियाँ पति से विद्वेष करा दें, नायिका को जिससे मिलाना चाहें उसकी प्रशंसा करें। दूसरी स्त्रियों के सामने भी अश्लील चित्र, सुरत और संभोगों के दिखाएँ ॥ ६४ ॥

नायकस्यानुरागं च पुनश्च रतिकौशलम्।
प्रार्थनां चाधिकस्त्रीभिरवष्टम्भं च वर्णयेत् ॥ ६५ ॥

नायकस्यानुरागं वर्णयेत् 'शृणु विचित्रं' इत्यादिना। पुनश्च रतिकौशलं वर्णयेत्प्रधानत्वादस्य। प्रार्थनां चाधिकस्त्रीभिः 'श्लाघनीयया चास्य प्रच्छन्नं संयोगं भूतमभूतपूर्वं वा वर्णयेत्' इत्यनेन। अवष्टम्भं नायिकाविषयं निश्चयं तदङ्कशयनं श्मशानशयनं वा। यदुक्तम्—'शक्यमनेन मरणमप्यनुभवितुम्' इति ॥ ६५ ॥

नायक के रति और अनुराग का वर्णन करे, नायिका से भी बढ़कर सुन्दरी और धनवती स्त्रियों का वर्णन सुनाए कि वह भी नायक पर आसक्त हैं, साथ ही नायिका के दृढ़ निश्चय को भी प्रकट करे ॥ ६५ ॥

प्रथमेऽधिकरणे पटुतादयो गुणा उक्ता दूतानां तेषां पटुता प्रधानमिति दर्शनार्थमाह—

असंकल्पितमप्यर्थमुत्सृष्टं दोषकारणात्।
पुनरावर्तयत्येव दूती वचनकौशलात् ॥ ६६ ॥

दोषकारणादिति व्यावृत्तिकारणात्। नापानकयोग्य इत्यर्थः परित्यक्तः (?)।

स्वकस्थितीनविचिन्तितः (?)। दूती पुनस्तमावर्तयत्यभिमुखीकरोति। वचनकौशलात्पटुतायोगात्। इति दूतीकर्माणि षट्चत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृत-सूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे दूतीकर्माणि चतुर्थोऽध्यायः।

दूती अपने वाक्चातुर्य से निन्दित, हेय, परित्यक्त और अनादृत नायक को भी फिर से प्रेमिकाओं का प्रेमी बना देने में सिद्धहस्त होती है ॥ ६६ ॥

इस अध्याय के पहले-दूसरे अध्याय में यह बताया जा चुका है कि नायक जिस पराई स्त्री को वश में करने में कुछ कठिनाई या असमर्थता का अनुभव करे वहाँ उसे दूतियों के द्वारा मिलाने का उपाय करना चाहिए। अब इस प्रकरण में विभिन्न प्रकार की दूतियों के लक्षण और उनके कार्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

कामसूत्रकार ने विशिष्ट और सामान्य दो प्रकार की दूतियाँ मानी हैं। निसृष्टार्था, परिमितार्था और पत्रहारी—ये तीन प्रकार की दूतियाँ विशिष्ट कोटि की हैं और निसृष्टार्था, परिमितार्था, पत्रहारी, स्वयंदूती, मूढ़दूती, भार्यादूती, मूकदूती, वातदूती—ये आठ सामान्य कोटि की दूतियाँ हैं।

कामसूत्रकार और जयमंगलाटीकाकार का मत है कि इन दूतियों का कार्य यही है कि ये नायिका के पास जाकर नायक की कहानियाँ सुनाएँ, श्रुति, शोभा और सौभाग्य के देनेवाले रति-रहस्य बताएँ, अन्यान्य आकृष्ट करनेवाली बातें करें, जब नायिका दूती पर पूर्ण निर्भर हो जाए, उसपर पूर्ण विश्वास करने लग जाए तब उसे नायक से मिलने, आलिंगन, परिरम्भण और संभोग के लिए क्रम से प्रेरित करे।

कोकशास्त्रकार कोक पंडित का कहना है कि दूती को चाहिए कि पहले वह नायिका से घनिष्ठ सम्पर्क जोड़े, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करे इसके बाद नायक से संबंधित बातें करनी शुरू करे[1] ॥

---

1 दूतीविधेयमधुना यादृग् वक्ष्यामि तदपि संक्षेपात्।
प्रथममतिशीलयोगादाख्यानाद्यैर्विशेषयेदेनाम् ॥
श्रुतिशोभासौभाग्यदमन्त्रौषधिकाव्यरतिरहस्यानाम्।
घटयेत् कथाप्रसंगान् ब्रूयाद् विश्वासमुत्पाद्य ॥

अनङ्गरङ्ग कामसूत्र और कोकशास्त्र से कुछ अधिक दूतियाँ मानता है। उसके मत से मलिन, सहेली, विधवा, धाय, नटी, शिल्पिनी, सैरन्ध्री, प्रतिगेहिका, रजकी, दासी, सम्बन्धिनी, बाला, प्रव्रजिता, भिक्षुवनिता, दूध-दही-छांछ बेचनेवाली, संन्यासिनी और कारुवधू—इन्हें दूती बनाकर नायिका के पास भेजना चाहिए।

कामसूत्र में बतायी गई आठ प्रकार की दूतियों का वर्गीकरण यथेष्ट है, उनका चुनाव कार्य, आवश्यकता और अवसर की उपयोगिता का ध्यान रखकर किया गया है। उनके लक्षण इस प्रकार समझने चाहिए—

निसृष्टार्था—नायक का अभिप्रायमात्र जानकर अपने ही बुद्धिबल से जो कार्य सम्पादित करती है वह निसृष्टार्था दूती है। जब नायक-नायिका में देखा-देखी, बातचीत हो चुकी हो तब इस नायिका की उपयोगिता है ॥ १ ॥

बुद्ध्वैकसमीहितमारमधियैवारभते या कार्यं सा हि निसृष्टार्था।

परिमितार्था—जिसे कुछ उपाय बता दिए जाते हैं फिर जो कुछ शेष रह जाता है उसे वह अपने अनुभव से समझकर नायक-नायिका का माध्यम बनती है उसे परिमितार्था कहते हैं ॥ २ ॥

जब दो प्रेमी-प्रेमिका आपस में एक दूसरे को देख लेते हैं, किन्तु कदाक-भार ही एक दूसरे को देख पाते हैं, मिलन नहीं हो पाता तब परिमितार्था नायिका उनका मिलन कराने का प्रयत्न करती है।

लिंगेनोन्नीय या कार्यं शेषं सम्पादयति स्वयमेवैषा परिमितार्थोक्ता।

पत्रहारी दूती—जो परस्पर परिचित प्रेमी-प्रेमिकाओं के सन्देश, प्रेम-पत्र इधर-उधर पहुँचाने का काम करती है, वह पत्रहारी है ॥ ३ ॥

जो प्रेमी-प्रेमिका प्रेम-पाश में बँध चुके हैं, मिलन और सम्भोग भी हो चुका है, उनके बीच यह दूती यही काम करती है कि जिस समय जिस स्थान पर समागम का निश्चय नायक या नायिका की ओर से किया जाता है उसकी सूचना वह नायक या नायिका को दे दिया करती है ॥

संसृष्टयोस्तु नेत्री सन्देशं पत्रहारी स्यात् ॥

स्वयंदूती—जो नायिका कोई सन्देश का बहाना लेकर नायक के पास जाती है और वहाँ उससे अपनी तारीफ कर के या अन्य उपायों से नायक को मोहित कर उससे सहवास कराती हैं, वह स्वयंदूती कही जाती है। स्वयंदूती का अर्थ है, अपने लिए खुद दूती बन जाना ॥ ४ ॥

स्वयंदूती का यह कार्य उसी दशा में बनता है जब नायक उसे एकान्त में मिलता है।

दौत्यमिषेणान्यस्या नायकमेत्यात्मगुणभावान् ।
व्याजेन वेदयन्ती स्वार्थं घटेत् स्वयंदूती ॥

मूढ़दूती—कोई नायिका जब किसी नायक को चाहती है तो उसे अपने ऊपर आसक्त, आकृष्ट बनाने के लिए वह चतुर नायिका नायक की सीधी-सरल पत्नी से प्रेम गाँठ कर नायक की रुचि, उसका रति-रहस्य सब कुछ जानकर फिर उसी के अनुकूल भाव-भङ्गिमायें, कटाक्ष विलास करके अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेती है तब नायक की अबोध पत्नी मूढ़दूती कही जाती है ॥ ५ ॥

मुग्धां नायकभार्यां यत्नाद् विश्वास्य या रहः स्पृष्ट्वा ।
अभिलाषलिङ्गमादौ तेन द्वारेण नायकं गमयेत् ॥

भार्यादूती—जब कोई नायक किसी नायिका को फँसाने के लिए उसके पीछे अपनी पत्नी को लगा देता है और फिर अपना प्रयोजन सिद्ध करता है तो उसकी पत्नी भार्यादूती कही जाती है। भार्यादूती मूढ़दूती ही बना करती है ॥ ६ ॥

अपि नायकः स्वभार्यां प्रयोज्य तद्वत् समायोज्य ।
प्रकटयति नागरत्वं तां भार्यां दूतिकां प्राहुः ॥

मूकदूती—किसी अबोध, अनजान नौकरानी या बालिका से माला या कर्णफूल के अन्दर छिपाकर प्रेम-पत्रिका भेजवायी जाए तो इसे मूकदूती कहते हैं ॥ ७ ॥

बालां परिचारिकां वा दोषज्ञां प्रेषयेत्सततम् ।
तत्र स्रजि कर्णपत्रे गूढं सन्देशमालिख्य ॥

वातदूती—जो नायक-नायिका दोनों की आपस की बातें श्लेष भाषा से अथवा सांकेतिक भाषा से कह दे कि दूसरे लोग समझ न सकें साथ ही अपनी बात भी उदासीनों की तरह सुना दे तो उसे वातदूती कहा जाता है ॥ ८ ॥

द्व्यर्थं पूर्वं प्रस्तुतमथवा दुर्लक्ष्यमन्येन ।
यन्मुग्धया कयाचिच् श्राव्योक्ता वातदूती सा ॥

बिल्कुल स्त्री दूतियों की भाँति भी दौत्यकर्म किया करते हैं, संस्कृत साहित्य में दूतियां और दूतों का विशद वर्णन भरा पड़ा है। साहित्य में गिनाए गए दूतों और दूतियों और उनके कार्य को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि कामसूत्र में दूतीकर्म प्रकरण एक निर्देश अथवा संकेत मात्र है। साहित्यदर्पणकार दूतों या दूतियों द्वारा प्रेम-पत्रों, प्रेम-सन्देशों के आदान-प्रदान को भावों की अनुभूति और उनके परिचय का मुख्यसाधन मानते हैं।

प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच मधुरालाप, हाव-भाव, और इशारों को तो भावाभिव्यक्ति का उद्गम समझते हैं—

लेख्यप्रस्थापनैः स्निग्धैर्वीक्षितैर्मृदुभाषितैः ।
दूतीसम्प्रेषणैर्नार्या भावाभिव्यक्तिरिष्यते ॥

कामसूत्रकार ने दूसरे अधिकरण के रतिविशेष प्रकरण में कामकला में दक्ष नागरकों को ग्रामीण—गँवार स्त्रियों के साथ सम्भोग करने को खलरत कहा है—वात्स्यायन का कहना है कि गाँव की स्त्रियाँ कामकला से अनभिज्ञ रहती हैं। वात्स्यायन का यह कथन सर्वथा उचित नहीं कहा जा सकता है। हाँ यदि प्रायोवाद कहा जाता तो मान्य हो सकता था, गाँवों में सभी और सब प्रकार से गँवार ही बसते हैं यह अस्वीकार्य मान्यता है। वात्स्यायन की इस मान्यता के विरुद्ध उसके परवर्ती साहित्यकारों ने ग्रामयुवतियों, ग्राम्यनायिकाओं की कला-कुशलता का अतिविस्तृत वर्णन किया है।

एक ग्रामतरुणी के संकेत पर कामकलाकोविद नागरक तरुणी के संकेत निकुंज पर पहुँच गया, किन्तु किसी कारणवश तरुणी ठीक समय पर वहाँ न पहुँचकर विलम्ब से पहुंची तबतक युवक अपने पहुँचने की निशानी मंजरी रखकर चला गया था। प्रेमी द्वारा रखी हुई मंजरी का संकेत समझ कर युवती विह्वल हो उठी, उसका मुंह सूख गया, उसे बड़ा खेद रहा कि हाय, मैं पहुंच न सकी। इसी भाव को लेकर कवि कहता है—

ग्रामतरुणं तरुण्या नववञ्जुलमञ्जरीसनाथकरम् ।
पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया ॥

वात्स्यायन ने पिछले अभियोग प्रकरण में प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच जिन गूढ़ संकेतों एवं प्रेम-पत्रों की सांकेतिक भाषा का उल्लेख किया है, उसका परिचय काव्य, साहित्य के माध्यम से हमें ग्रामीण स्त्रियों में भी मिलता है—

किसी पथिक को देखकर एक ग्राम युवती उससे कहती है—पथिक, इस पथरीले गाँव में बिछौना मिलना कठिन है। लेकिन उमड़ती हुई घन-घटाओं को देखकर यदि तुम रुकना चाहते हो तो रुक जाओ?

ग्राम युवती की इस श्लेष भाषा का मुख्य तात्पर्य यह है कि सुन्दर तरुण पथिक को देखकर सुन्दरी नवयौवना आसक्त हो जाती है, वह श्लेष-भाषा में अपने मनोभावों को प्रकट करती हुई उससे कहती है कि—यह तो गँवारों का गाँव है यहाँ कलाओं का अभाव है फिर भी यदि तुम मेरे उभरे हुए जोबन तथा उभड़ती हुई मेरी जवानी देखकर उसका उपभोग करना चाहते हो तो रुक जाओ।

एक देहाती रमणी शहरी स्त्री को उसकी नागरिकता पर फबती कसते हुए जो मुँहतोड़ जवाब देती है उस से वात्स्यायन की धारणा पर पानी फिर जाता है—

यह ठीक है कि मैं गँवार हूँ, गाँव में बसती हूँ और मुझे शहरी रीति-रिवाजों का कुछ पता नहीं है, लेकिन मुझे इतना विश्वास है कि मैं चाहे जो होऊँ किन्तु कामकला में निपुण कही जाने वाली नगर-निवासिनी स्त्रियों के पतियों को अपनी चतुराई से हर सकती हूँ।

ग्रामीणास्मि ग्रामे वसामि नगरस्थितिं न जानामि।
नागरिकाणां पतीन् हरामि या भवामि सा भवामि॥

वात्स्यायन ने दूसरे अधिकरण के रति विशेष प्रकरण में 'ग्रामव्रजप्रत्यन्त-योषिद्भिश्च नागरकस्य' लिखकर देहाती, ग्वालिन और भीलनी वर्ग की स्त्री के साथ संभोग करने वाले कामकलानिपुण नागरक को खलरत करने वाला बताया है। वात्स्यायन के इस मत को निरर्थक सिद्ध करते हुए एक भील युवक अपनी प्रेयसी भील तरुणी से व्यंजनापूर्ण शब्दों में कहता है—मुझ गरीब की यह बिनती है कि कुचयुगों को पत्ता से न ढक।

'दीनस्त्वामनुनाथते कुचयुगं पत्रावृतं मा कृथाः'।

और एक देहातिन युवती वात्स्यायन द्वारा अनुमोदित स्वयंदूती बनकर जो चमत्कार दिखाती है उसे साहित्यदर्पणकार ने बड़े यत्न से सँजोकर इस प्रकार रखा है—एक पथिक गाँव से जा रहा है, पनघट पर पहुँचने पर एक ग्राम-युवती की नजर उस पर पड़ती है, वह उसके तारुण्य और सौन्दर्य पर आसक्त होकर श्लेष भाषा में बोलती है, पथिक, प्यासा क्यों जा रहा है, यहाँ तुझे कोई रोकनेवाला नहीं है, थोड़ा घनरस पीते जाओ, न हो तो एक ही बार रसपान करो यहाँ कोई अवरोध नहीं है।

पान्था पिपासित इव लक्ष्यसे यासि तत्किमन्यत्र।
न मनागपि वारक इहास्ति घनरसं पिबताम्॥

एक दूसरी ग्रामीण स्वयंदूती बनकर अपने प्रेमी को किस कौशल से आमन्त्रित कर रही है। क्या कहूँ सारे घर भर में मेरी निर्दयी सास मुझे सताती रहती है। शाम को थोड़े समय के लिए आराम मिल जाता है। अर्थात् शाम को तुम आजाओ उस समय कोई रुकावट नहीं रहेगी।

एक दूसरी ग्राम युवती अपने घर में रात बिताने वाले पथिक को स्वयं-दूती बनकर किस प्रकार अपनी शय्या का परिचय देती है, कि वह अँधेरे में अनायास उसके पास तक पहुँच सके—

यहाँ मेरी सास सोती है और यहाँ पर मैं सोती हूँ। इसलिए हे पथिक, समझ लो कहाँ खाट से ठोकर खाकर अँधेरे में गिर न पड़ना।

श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्रहं गृहभरे सकले।
मा पथिक ! राज्यन्ध शय्यायां निमंक्ष्यसि ॥

काव्य और साहित्य में दूतीकल्प का वर्णन और विवेचन कामसूत्र से कहीं अधिक प्रशस्त और व्यावहारिक मिलता है। अभिज्ञान शाकुन्तल, मालती-माधव, स्वप्नवासवदत्तम्, मृच्छकटिक आदि नाटकों तथा हर्षचरित, नैषधीयचरित, कादम्बरी, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि कथा-काव्य ग्रन्थों में विशद दूतीकल्प है। कुट्टिनीमतम्, कुचुमारतंत्र आदि अनेक स्वतंत्र ग्रन्थ ही इस विषय पर लिखे गए हैं।

स्त्री दूतियों की तरह पुरुष दूतों का भी दौत्य कार्य संस्कृत साहित्य में विपुल मात्रा में मिलता है। नैषधीयचरित में नल ने दमयन्ती के पास जाकर स्वयंदूत का काम किया था, इस विषय के मेघदूत, पवनदूत, हंसदूत आदि अनेक दूतकाव्यों की रचना हुई है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे
दूतीकर्माणि चतुर्थोऽध्यायः।

पञ्चमोऽध्यायः

ईश्वरकामितप्रकरणम्

ईश्वराणां परगृहप्रवेशाभावात्कामितं न संभवति । प्रायशस्तत्र कथमधिक्रियत इति तदनन्तरमीश्वरकामितमुच्यते ।

यदाह—

न राज्ञां महामात्राणां वा परभवनप्रवेशो विद्यते ।
महाजनेन हि चरितमेषां दृश्यतेऽनुविधीयते च ॥ १ ॥

जनसमूहेनैतेषां चरितं दृश्यते सर्वदा तननुगतत्वात् । यदि दृष्टं तदा को दोष इत्याह—अनुविधीयते चेति । 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः' इति ॥ १ ॥

राजाओं, राजमंत्रियों तथा महान् व्यक्तियों का दूसरों के घरों में प्रवेश संभव नहीं होता है । क्योंकि प्रजा इनके चरित्रों को देखकर तदनुकूल आचरण किया करती है ॥ १ ॥

तदेव दृष्टान्तेन दर्शयति—

सवितारमुद्यन्तं त्रयो लोकाः पश्यन्ति अनूद्यन्ते च ।
गच्छन्तमपि पश्यन्त्यनुप्रतिष्ठन्ते च ॥ २ ॥

सविता लोकेषु श्रेष्ठः । तमुद्यन्तं पश्यन्तीति चरितदर्शनम् । अनूद्यन्ते च तस्मिस्तूद्गते सुप्ताः प्रबुध्यन्त इति चरितानुविधानम् । गच्छन्तमपि देशान्तरे पश्यन्तीति चरितदर्शनम् । अनुप्रतिष्ठन्ते च यथास्वं क्रियासु प्रवर्तन्त इति चरितानुविधानम् ॥ २ ॥

यह सामान्य नियम है कि सूर्योदय देखकर तीनों लोक उठा करते हैं । और सूर्यास्त होने पर सो जाते हैं ॥ २ ॥

तस्मादशक्यत्वाद्गर्हणीयत्वाच्चेति न ते वृथा किंचिदाचरेयुः ॥ ३ ॥

परगृहं प्रविश्य यद्यत्त (यदन्य) दाराभिगमनं तदशक्यम् । महाजनेन दृश्यमानत्वात् । गर्हणीयत्वाच्चेति—इतरोऽपि जनोऽनुविदध्यादिति शिष्टानां कुत्सनीयं तस्मात्तदर्थं न ते किंचिदनुष्ठानमाचरेयुः । निष्फलत्वात्स्वपरिग्रहेष्वपि सुखसंभवात् ॥ ३ ॥

इसलिए राजाओं, राजमंत्रियों, बड़े लोगों को उचित है कि ये परस्त्री-गमन जैसे निन्दनीय कार्य में प्रवृत्त न हों ॥ ३ ॥

अवश्यं त्वाचरितव्ये योगान्प्रयुञ्जीरन् ॥ ४ ॥

अन्यकारणवशात्स्थानान्तरयायिनो वा रागवशादाचरितव्ये। योगानिति प्रयोगान् ॥ ४ ॥

यदि किसी कारणवश अथवा रागवश परस्त्री-गमन करना आवश्यक हो जाये तो उन्हें भी उपायों को अपनाना चाहिए ॥ ४ ॥

ते द्विविधाः—प्रच्छन्नाः प्रकाशाश्च। ईश्वरा अपि द्विविधाः—क्षुद्रा मुख्याश्च। तत्र क्षुद्रानधिकृत्य प्रच्छन्नमाह—

ग्रामाधिपतेरायुक्तकस्य हलोत्थवृत्तिपुत्रस्य यूनो ग्रामीणयोषितो वचनमात्रसाध्याः। ताश्चर्षण्य इत्याचक्षते विटाः ॥ ५ ॥

ग्रामभुक्त्या युक्तस्याधिकृतस्य। हलोत्थवृत्तिर्ग्रामकूटः। तस्य ग्रामीणैः कर्षणहलिका दीयन्ते। तस्य पुत्रस्य। यून इति प्रत्येकं योज्यम्। यत्तेषामीश्वरत्वाद्वचनमात्रसाध्या नाभियोगमपेक्षन्ते किं सर्वा एवेत्याह—ताश्चर्षण्य इति संज्ञा इत्यर्थः ॥ ५ ॥

गाँव के तरुण मुखिया, गाँव के तरुण अधिकारी (आयुक्त) हलोत्थवृत्ति ग्रामकूट (पटवारी) के तरुण पुत्र का ग्रामीण युवतियाँ केवल कहने मात्र से सहवास स्वीकार कर लेती हैं। विट लोग ऐसी स्त्रियों को 'चर्षणी' कहते हैं ॥५॥

ताभिः सह विष्टिकर्मसु कोष्ठागारप्रवेशे द्रव्याणां निष्क्रमणप्रवेशनयोर्भवनप्रतिसंस्कारे क्षेत्रकर्मणि कर्पासोर्णातसीशणवल्कलादाने सूत्रप्रतिग्रहे द्रव्याणां क्रयविक्रयविनिमयेषु तेषु तेषु च कर्मसु संप्रयोगः ॥ ६ ॥

ताभिरिति—चर्षणीभिः सह संप्रयोग इति वक्ष्यमाणेन संबन्धः। अत्रोपायमाह—विष्टिकर्मस्विति—सक्तमात्रेण (?) विना यानि पेषणकुट्टनरन्धनादीनि कार्याणि तानि विष्टिकर्माणि। कोष्ठागारप्रवेशे—तत्रस्थं कर्म कर्तुं प्रविष्टाभिः। द्रव्याणां धान्यादीनां कोष्ठागारान्निष्क्रामणे तत्र च प्रवेशे तत्र कर्म कर्तुं प्रविष्टाभिः। क्रियमाणे, भवनप्रतिसंस्कारे—गृहमण्डने। क्षेत्रकर्मणि बीजानां रक्षणोत्पाटनगदी·····(?)। कर्पासस्योर्णाया अतसीशणवल्कलस्य च भाण्डागारात्सूत्रकर्तनाय दाने। सूत्रस्य च कर्तितस्य प्रतिग्रहे स्वीकारे कर्तनिकाभिः। द्रव्याणामिति धान्यादीनाम्। क्रयविक्रयविनिमयेष्विति क्रेतुं विक्रेतुं वा प्रविष्टाभिः। तेषु तेषु चेति राजकुलप्रवेशहेतुषु ॥ ६ ॥

जब चर्षणी स्त्रियाँ पीसने, कूटने, पकाने, चीज वस्तु को धरने, उठाने, घर की सफाई करने कोठार या घर में प्रवेश करें अथवा खेत में काम करने जायें, कपास, ऊन, अलसी, सन, मूंज, सूत लेने के लिए प्रवेश करें अथवा जिस समय वस्तुओं की खरीद-फरोख्त हो रही हो, उनसे वस्तुएं मंगाई और रखायी जा रही हों, इत्यादि ऐसे ही काम करते समय इनसे छोटे अधिकारी सहवास कर सकते हैं ॥ ६ ॥

तथा व्रजयोषिद्भिः सह गवाध्यक्षस्य ॥ ७ ॥

गोपीभिर्गवाध्यक्षस्य दधिमथनादिकर्मसु ॥ ७ ॥

गवाध्यक्ष अधिकारी दही मथते समय ग्वालिनों से सहवास कर सकता है ॥ ७ ॥

विधवानाथाप्रव्रजिताभिः सह सूत्राध्यक्षस्य ॥ ८ ॥

स ह्यधिष्ठाय राजकीयसूत्राणि विधवादिभिः कर्तनिकाभिः कर्तयति ॥ ८ ॥

विधवा, अनाथा और संन्यासिनी स्त्रियों के साथ सूत्राध्यक्ष सहवास कर सकता है ॥ ८ ॥

मर्मज्ञत्वाद्रात्रावटने चाटन्तीभिर्नागरस्य ॥ ९ ॥

नगरे नियुक्तस्य दाण्डपाशिकस्य स्त्रीमर्मज्ञत्वाद्रात्रावटने चाटन्तीभिः ॥ ९ ॥

रात को पहरा देते हुए रहस्यों का ज्ञाता नगराध्यक्ष भी घूमनेवाली स्त्रियों से सहवास कर सकता है ॥ ९ ॥

क्रयविक्रये पण्याध्यक्षस्य ॥ १० ॥

राजकीयपण्यानि क्रयितुं विक्रयितुं च नियुक्तस्य क्रेतृविक्रेतृस्त्रीभिः । संप्रयोग इति सर्वत्र योज्यम् ॥ १० ॥

माल को बेंचते-खरीदते समय बाजार का पण्याध्यक्ष बाजारू औरतों से सहवास कर ककता है ॥ १० ॥

मुख्यानधिकृत्य प्रच्छन्नमाह—

अष्टमीचन्द्रकौमुदीसुवसन्तकादिषु पत्तननगरखर्वटयोषितामीश्वरभवने सटान्तःपुरिकाभिः प्रायेण क्रीडा ॥ ११ ॥

कौमुदी कोजागरः । नागरकविटौ (नगरखर्वटौ) व्याख्यातौ । पत्तनादिकमुपलक्षणार्थम् । द्रोणमुखश्च । ईश्वरभवन इति यस्य नगरादि (न) विद्यते तस्य भवने । अन्तःपुरिका अन्तःपुरस्त्रियः ॥ ११ ॥

बहुला अष्टमी, कौमुदी महोत्सव, सुवसन्तक आदि उत्सवों के दिन राज-

धानी, जिला, तहसील की रहनेवाली स्त्रियों के साथ तथा अन्तःपुर में रहनेवाली स्त्रियों के साथ प्रायः ऐसी क्रीडायें हुआ करती हैं ॥ ११ ॥

तत्र चापानकान्ते नगरस्त्रियो यथापरिचयमन्तःपुरिकाणां-पृथक्पृथग्भोगावासकान्प्रविश्य कथाभिरासित्वा पूजिताः प्रपीता-श्चोपप्रदोषं निष्क्रामयेयुः ॥ १२ ॥

तत्रेति—क्रीडायाम् । आपानकान्त इति—अन्तःपुरिकाभिः सर्वाभिः सह पेयं पीत्वा । तदन्ते विशेषविधिमाह—नगरस्त्रिय इति । अत्रापि नगरखर्वटद्रोणमुखस्त्रियश्च । भोगावासकानिति परिभोगप्रदेशान् । कथाभिरासित्वेति अन्तःपुरिकाभिः सह कथाभिः स्थित्वा । पूजिता अन्तःपुरिकाभिः । प्रपीता इति प्रपीतमासां विद्यत इति मत्वर्थेऽकारः । उपप्रदोषं प्रदोषसमीपे निष्क्रामन्ति दिनं राजभवनेऽतिवाह्य ॥ १२ ॥

उन क्रीड़ाओं में मदिरा-पान करके शहरी स्त्रियाँ अपने परिचय की अन्तः-पुरिकाओं के साथ अलग-अलग गुप्त जगहों में बैठकर गप्पें लड़ाती हैं और वहाँ स्वागत सत्कार, खाना-पीना प्राप्त कर शाम को बाहर निकलती हैं ॥ १२ ॥

तत्र प्रणिहिता राजदासी प्रयोज्यायाः पूर्वसंसृष्टा तां तत्र संभाषेत ॥ १३ ॥

तत्रेत्यष्टमीचन्द्रादिषु । प्रणिहिता राज्ञा प्रयुक्ता । प्रयोज्याया इति यामभिगन्तुमिच्छेत् । पूर्वसंसृष्टेति पूर्वमेव ग्रहयित्वा (?) संसर्गं कृतवती । तामिति प्रयोज्यां राजभवने प्रविष्टां भाषयेत्कुशलपूर्वकम् ॥ १३ ॥

वहाँ पर राजा द्वारा भेजी हुई दासी उस स्त्री से बात करे जिससे पहले बात तय हो चुकी हो जो खास तौर से उसदिन राजा के सहवास के लिए उत्सव के बहाने राजभवन में आई हो ॥ १३ ॥

रामणीयकदर्शनेन योजयेत् ॥ १४ ॥

रामणीयकदर्शनेन चित्तहरणार्थम् ॥ १४ ॥

दासी को चाहिए कि उस स्त्री को राजमहल की रमणीक वस्तुओं को देखने में लगा दे ॥ १४ ॥

प्रागेव स्वभवनस्थां ब्रूयात् । अमुष्यां क्रीडायां तव राज-भवनस्थानानि रामणीयकानि दर्शयिष्यामीति काले च योज-येत् । बहिःप्रवालकुट्टिमं ते दर्शयिष्यामि ॥ १५ ॥

प्रागेवेति राजभवनप्रवेशात् स्वभवनस्थां ब्रूयादौत्सुक्यकारणार्थम् । अमुष्या-

मिति काले च प्रज्ञाते योजयेत् । रामणीयकरोचनान्याह–बहिरिति । प्रवाल-कुट्टिमम् ॥ १५ ॥

दासी को चाहिए कि उस स्त्री से—राजा जिससे सहवास करना चाहता हो—उसके घर जाकर पहले ही कह आए कि आगामी उत्सव में जब आप आएँगी तब आपको मैं राजभवन की रमणीक वस्तुयें दिखाऊँगी। उसके राज-महल आ जाने पर उसे राजभवन दिखाए फिर प्रवाल कुट्टिम (मूँगों से जड़ा हुआ फर्श) दिखाने के लिए ले जाए ॥ १५ ॥

मणिभूमिकां वृक्षवाटिकां मृद्वीकामण्डपं समुद्रगृहप्रासादा-न्गूढभित्तिसंचारांश्चित्रकर्माणि क्रीडामृगान् यन्त्राणि शकुना-न्व्याघ्रसिंहपञ्जरादीनि च यानि पुरस्ताद्वर्णितानि स्युः ॥ १६ ॥

मणिभूमिकां स्फटिकाद्याकारकृतं कुट्टिमं भूमिम् । वृक्षवाटिकां पुष्पफलसमृद्धाम् । मृद्वीकामण्डपं द्राक्षामण्डपम् । समुद्रगृहप्रासादानिति–गूढभित्तिमध्यंगतत्वात् जलसंचारा येषु समुद्रगृहेषु प्रासादेष्वपि निष्कासनप्रवेशनलक्षणसंचारानिति योज्यम् । यन्त्राणि सजीवानि निर्जीवानि घटितान्यन्यानि च यानि कौतुकानि । क्रीडार्था ये मृगाः । शकुनकान् हंसादीन् । व्याघ्रपञ्जरान्व्याघ्राधिष्ठितान् । कस्याश्चिदेव क्वचित्कौतुकमुत्पद्यत इत्यनेकोपदर्शनम् ॥ १६ ॥

मणियों से जड़ी हुई फर्श, वृक्षों की वाटिका, अंगूरीलताओं का मंडप, समुद्रगृह महल जिसकी दीवारों से बहता हुआ पानी झलकता हो, चित्रशाला, क्रीडामृग, यंत्रचालित ऐसे कौतुक जो निर्जीव होते हुए सजीव जान पड़ते हों, हंस, चकोर आदि पक्षियों तथा सिंह, व्याघ्र आदि पिंजड़ों में बन्द जानवरों को दिखाये ॥ १६ ॥

एकान्ते च तद्गतमीश्वरानुरागं श्रावयेत् ॥ १७ ॥

एकान्त इति । अनुग्रहोचितत्वादेव प्रवेशोऽपि तस्या उचित इति ॥ १७ ॥

फिर एकान्त में अवसर पाकर उस पर राजा का अनुराग प्रकट करे ॥ १७ ॥

संप्रयोगे चातुर्यं चाभिवर्णयेत् ॥ १८ ॥

और संभोग में राजा की काम-कला की निपुणता का भी बखान करे ॥ १८ ॥

अमन्त्रश्रावं च प्रतिपन्नां योजयेत् ॥ १९ ॥

राजा से सहवास करा चुकने के बाद दासी उस स्त्री को समझा दे कि वह इस बात को किसी से कहे नहीं ॥ १९ ॥

अप्रतिपद्यमानां स्वयमेवेश्वर आगत्योपचारैः सान्त्विताम् रञ्जयित्वा संभूय च सानुरागं विसृजेत् ॥ २० ॥

जिसपर राजा अनुरक्त हो और दासी के द्वारा वह न आए तो राजा स्वयं उससे मिलकर उसे आकृष्ट करे और सहवास कर चुकने के बाद प्रेमपूर्वक उसे विदा करे ॥ २० ॥

प्रयोज्यायाश्च पत्युरनुग्रहोचितस्य दारान्नित्यमन्तःपुरमौचित्यात्प्रवेशयेत् । तत्र प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण ॥२१॥

तत्रेति प्रविष्टायां प्रयोज्यायाम् । प्रणिहिता राजदासीत्यनेन पूर्वोक्तेन समानम् । प्रयोगद्वयेऽप्यत्र प्रयोज्यानुप्रवेशस्य सुकरत्वात् । दास्येव प्रयुक्ता ॥ २१ ॥

राजा जिसपर अनुरक्त हो और उसका पति राजा का कृपा-पात्र बनने योग्य हो तो दासी उसके घर की अन्य स्त्रियों को भी आदरपूर्वक राजमहल में ले आए ॥ २१ ॥

अन्तःपुरिका वा प्रयोज्यया सह स्वचेटिकासंप्रेषणेन प्रीतिं कुर्यात् । प्रसृतप्रीतिं च सापदेशं दर्शने नियोजयेत् । प्रविष्टां पूजितां पीतवतीं प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण ॥ २२ ॥

चे वी ग्युक्तान्तःपुरिका । संप्रेषणेन प्रीतिं कुर्यादात्मनो विश्वासासंभवात् । प्रसृतप्रीतिं प्रयोज्यां यादृशं (?) सापदेशं च किंचित्कार्यमपदिश्य तयैव चेटया दर्शनेऽपि नियोजयेत् यथा मां द्रष्टुमागच्छतीति ॥ २२ ॥

जिस स्त्री पर राजा आसक्त हो, उसके पास अपनी चेरी भेजकर राजा की चतुर रानी प्रेम जोड़े । प्रीति बढ़ जाने पर देखने के बहाने उसी दासी से अपने यहाँ बुलवाये । रनिवास में आ जाने पर रानी उसका स्वागत-सत्कार कर मदिरा पिलाकर बेहोश कर दे । फिर राजा आकर अपनी इच्छा पूरी करे ॥२२॥

यस्मिन्वा विज्ञाने प्रयोज्या विख्याता स्यात्तद्दर्शनार्थमन्तःपुरिका सोपचारं तामाह्वयेत् । प्रविष्टां प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण ॥ २३ ॥

यस्मिन्वेति गीततन्त्रीविज्ञाने । विख्याता प्रवीणा । सोपचारमिति वस्त्रादिदानपूर्वकमाह्वयेत् । अत्र च प्रयोगद्वये प्रवेशस्य संभवात् अन्तःपुरिका द्वितीया प्रयुक्ता ॥ २३ ॥

गाने-बजाने आदि जिस कला में राजा की प्रेयसी विख्यात हो, उसका प्रदर्शन करने के लिए उसे अन्तःपुर में रहने वाली स्त्रियाँ बुलायें । जब वह

राजमहल में आ जाये तो राजा की दासी उसे राजमहल दिखाने के बहाने राजा से मिला दे ॥ २३ ॥

उद्भूतानर्थस्य भीतस्य वा भार्यां भिक्षुकी ब्रूयात् असावन्तःपुरिका राजनि सिद्धा गृहीतवाक्या मम वचनं शृणोति। स्वभावतश्च कृपाशीला तामनेनोपायेनाधिगमिष्यामि। अहमेव ते प्रवेशं कारयिष्यामि। सा च ते भर्तुर्महान्तमनर्थं निवर्तयिष्यतीति प्रतिपन्नां द्विस्त्रिरिति प्रवेशयेत्। अन्तःपुरिका चास्या अभयं दद्यात्। अभयश्रवणाच्च संप्रहृष्टां प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण ॥ २४ ॥

उद्भूतानर्थस्य त्विति—अर्थप्रतिघाति यत्कार्यं तदुत्पन्नं यस्य। भीतस्य चेति यो राजकुलाद्भीतस्तस्य जायां भिक्षुकी राजप्रणिहिता ब्रूयात्। तस्मिन्प्रयोगे तृतीयापरा प्रयुक्ता। सा ह्येवंविधं कार्यं बुद्ध्वा प्रयोज्यामन्तःपुरिकया योजयति। राजनि सिद्धा प्रसादयितृका (प्रसादवित्तका)। गृहीतवाक्येति सा यदाह तद्राजा करोति मम वचनं शृणोतीत्यात्मनो गृहीतवाक्यतामाह। स्वभावतः कृपाशीलेत्युक्त्या वाभावं (स्वभावं) दर्शयति। तामनेनेति तदानीं बुद्धिविकल्पितेनोपायेन कथं मम प्रवेश इति चेदाह—अहमेवेति। अनर्थमित्युपलक्षणार्थम्। भयं च निवर्तयिष्यति। द्विस्त्रिरिति प्रवेशयेत्पश्चाज्जातपरिचया स्वयमेव प्रवेक्ष्यति। अभयमस्यै दद्यात्। अभयं निवेदितवत्यै संप्रहृष्टां न तूद्विग्नां संभाषेत ॥ २४ ॥

राजकुल से जिसको कुछ भय हो अथवा जिसका कोई भारी नुकसान होने की संभावना है, उसकी पत्नी से भिखारिन जाकर कहे कि महारानी की मुझ पर बड़ी कृपा रहती है, मेरी बात बहुत मानती हैं, स्वभाव से बहुत कोमल और दयालु हैं, मैं तुम्हें उनसे मिला कर तुम्हारे पति को क्षमादान, अभयदान दिला दूँगी। इस तरह उस स्त्री को दो तीन बार वह राजमहल में ले जाए। उसके पति को अभयदान मिल जाने पर वह दासी पहले बताए गए उपायों और बहानों से उस स्त्री का राजा से सहवास करा दे ॥ २४ ॥

एतया वृत्त्यर्थिनां महामात्राभितप्तानां बलाद्विगृहीतानां व्यवहारे दुर्बलानां स्वभोगेनासंतुष्टानां राजनिप्रीतिकामानां राज्यजनेषु पंक्ति (व्यक्ति) मिच्छतां सजातैर्बाध्यमानानां सजातान्बाधितुकामानां सूचकानामन्येषां कार्यवशिनां जाया व्याख्याताः ॥ २५ ॥

एतयेति उद्भूतानर्थभीतजायया । वृत्त्यर्थिनां जीवनार्थिनाम् । महामात्राभितप्तानां महामात्रैः प्रभवद्भिः पीडितानाम् । बलाद्विगृहीतानां राजवत्त्वात् । व्यवहारे दुर्बलानां न्यायबलाभावात् । स्वभोगेन तावन्मात्रेणासंतुष्टानामधिकमिच्छताम् । राजनि प्रीतिकामानां क्वचित्परिभवं मम मा कार्षीदिति । राज्यजनेषु पंक्ति (व्यक्ति) प्रसिद्धिमिच्छतां राज्ञः प्रसाद्योऽयमिति । सजातैर्दायादैः । सूचकानामुद्भाषकाणाम् । कार्यवशिनामिति कार्यार्थिनाम् । जाया व्याख्याताः । अत्रापि भिक्षुकी ब्रूयादिति योज्यम् । एते प्रच्छन्नयोगा अत्याजितस्वकुलासु स्त्रीषु ॥२५॥

इसी प्रकार राजा से जीविका चाहने वालों की, राजा के मंत्री आदि अधिकारियों से सताये जानेवालों की, राजपुरुषों द्वारा जबर्दस्ती गिरफ्तार किये जाने वालों की, मुकद्दमा में हार जानेवालों की, अपनी आमदनी से असन्तुष्ट रहने वालों की, राजा द्वारा तंग किए जाने के भय से उसका अनुग्रह चाहनेवालों की, राजा के प्रियपात्रों में प्रसिद्धि चाहनेवालों की, खानदानवालों से तंग किए जानेवालों की, और कार्यार्थी व्यक्तियों की स्त्रियों को भी पूर्वोक्त ढंग से राजा के साथ सहवास के लिए फँसाया जा सकता है ॥ २५ ॥

अन्येन वा प्रयोज्यां सह संसृष्टां संग्राह्य दास्यमुपनीतां क्रमेणान्तःपुरं प्रवेशयेत् ॥ २६ ॥

येन केनचित्ससृष्टा कृतसंसर्गा । संग्राह्येति नागरकेण विधिना ग्राहयित्वा । दास्यमुपनीतामिति—प्रकाशविनष्टाया वेश्याविशेषत्वात् । तां सामान्यस्त्रियं कारयित्वा क्रमेणान्तःपुरं प्रवेशयेत् । न सहसा निरन्तरमेव । मा भूदेतत्कृतः प्रयोग इति ॥ २६ ॥

किसी के साथ संसर्ग करती हुई सुन्दरी स्त्री को गिरफ्तार करके राजा के अन्तःपुर में दासी बना कर रख दे ॥ २६ ॥

प्रणिधिना चायतिमस्याः संदूष्य राजनि विद्विष्ट इति कलत्रावग्रहोपायेनैनामन्तःपुरं प्रवेशयेदिति प्रच्छन्नयोगाः । एते राजपुत्रेषु प्रायेण ॥ २७ ॥

प्रणिधिना चारेण संदूष्य संभूतेनैव दोषेण । अन्यथा अदुष्टदूषणमधर्माय भवति । एवं चास्य कलत्रावग्रहो न दोषाय । एतद्योगद्वयमत्याजितस्वकुलासु । एते राजपुत्रेषु प्रायेण न तु राज्ञः । तस्य मण्डले प्रतिष्ठितत्वात्कादाचित्काः स्युः ॥२७॥

किसी सुन्दरी स्त्री के पति को अपने राजदूतों द्वारा झूठ या सच दोषारोपण करके उसे राजद्रोही सिद्ध कर दिया जाए और उसकी स्त्री को उपायों

द्वारा अन्तःपुर में लाकर रख दे। ये गुप्त प्रयोग प्रायः राजपुत्रों द्वारा हुआ करते हैं ॥ २७ ॥

ननु परभवनप्रवेशेनापि प्रच्छन्नयोगाः संभवन्ति यदा दूत्या प्रयोज्यां संकेत्य प्रच्छन्नः प्रविशति । न च तदानीं चरितं महाजनेन दृश्यतेऽनुविधीयते चेत्यत्राह-

न त्वेवं परभवनमीश्वरः प्रविशेत् ॥ २८ ॥

प्रविशेत्प्रच्छन्नोऽपीत्यर्थः ॥ २८ ॥

चेतावनी देते हुए वात्स्यायन कहते हैं कि आत्मसम्मान रखनेवाले पुरुषों और राजाओं को दूसरे के घर में कदापि प्रवेश न करना चाहिए ॥ २८ ॥

अत्र विवृतं दोषं दर्शयति—

आभीरं हि कोट्टराजं परभवनगतं भ्रातृप्रयुक्तो रजको जघान । काशिराजं जयसेनमश्वाध्यक्ष इति ॥ २९ ॥

गुर्जराते कोट्टं नाम स्थानं तस्य राजानमाभीरनामानम् परभवनगतमिति—श्रेष्ठिवसुमित्रस्य भार्यामधिगन्तुं तद्भवनगतं जघान ॥ २९ ॥

क्योंकि कोट्ट (गुजरात) के आभीर राजा को वसुमित्र सेठ की स्त्री से सहवास करते हुए, सेठ के भाई ने एक धोबी से मरवा दिया। इसी प्रकार काशिराज जयसेन को अश्वाध्यक्ष ने मार डाला था ॥ २६ ॥

प्रकाशास्तु योगा राज्ञः प्रायेण द्रष्टव्याः । यदाह—

प्रकाशकामितानि तु देशप्रवृत्तियोगात् ॥ ३० ॥

देशप्रवृत्तियोगादिति यो यस्मिन्देशे समाचारः पूर्वैः स्थापितस्तद्योगादिति । अतो दृश्यमानान्यपि कामितानि महाजनेन नानुविधीयन्ते । राज्ञामेव तत्राधिकारात् ॥ ३० ॥

पुरानी प्रथाओं के अनुसार जिस देश में जैसी रीति चल जाती है, उसके अनुसार विशिष्ट व्यक्तियों की जानकारी में भी खुल्लमखुल्ला राजा लोग परायी स्त्रियों के साथ रमण करते हैं ॥ ३० ॥

प्रत्ता जनपदकन्या दशमेऽहनि किंचिदौपायनिकमुपगृह्य प्रविशन्त्यन्तःपुरमुपभुक्ता एव विसृज्यन्त इत्यान्ध्राणाम् ॥३१॥

प्रत्तां इत्यूढा । औपायनिकमुपायप्रयोजनं वस्त्रादि । उपभुक्ता राज्ञा संप्रयुक्ताः । विसृज्यन्ते त्यक्ष्यन्ते इत्यान्ध्राणां प्रवृत्तिः ॥ ३१ ॥

आन्ध्र देश की रीति है कि नवविवाहिता कन्या को विवाह के दसवें दिन कुछ उपहार देकर राजा के पास संभोग के लिए भेज दिया जाता है ॥ ३१ ॥

महामात्रेश्वराणामन्तःपुराणि निशि सेवार्थं राजानमुपगच्छन्ति वात्सगुल्मकानाम् ॥ ३२ ॥

महामात्राणामीश्वरा मुख्यास्तेषामन्तःपुराणि स्त्रियः। सेवार्थमिति कर्तुं (रन्तुम्)। वात्सगुल्मकानामिति दक्षिणापथे सोदर्यौ राजपुत्रौ वत्सगुल्मौ ताभ्यामध्यासितो देशो वात्सगुल्मक इति प्रतीतः। तत्रभवानामियं प्रवृत्तिः ॥ ३२ ॥

दक्षिण के वत्सगुल्म[1] राज्य के मन्त्री, सेनापति आदि की स्त्रियाँ रात में सेवा के लिए राजा के पास अन्तःपुर में भेजी जाती रही हैं ॥ ३२ ॥

रूपवतीर्जनपदयोषितः प्रीत्यपदेशेन मासं मासार्धं वातिवासयन्त्यन्तःपुरिका वैदर्भाणाम् ॥ ३३ ॥

रूपवतीरिति प्रशंसायां वतिः। प्रीत्यपदेशेनेति प्रीतिस्तत्रापदेशः। संप्रयोगस्तु प्रयोजनम् ॥ ३३ ॥

विदर्भ देश की ऐसी चाल है कि वहाँ रानियाँ राज्य की सुन्दर स्त्रियों को प्रेम के बहाने अन्तःपुर में महीना-महीना, पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक रखती रही हैं ॥ ३३ ॥

दर्शनीयाः स्वभार्याः प्रीतिदायमेव महामात्रराजभ्यो ददत्यपरान्तकानाम् ॥ ३४ ॥

अपरान्त देश के लोग अपनी सुन्दर स्त्रियों को राजा और मन्त्रियों को उपहार में पेश करते हैं ॥ ३४ ॥

राजक्रीडार्थं नगरस्त्रियो जनपदस्त्रियश्च सङ्घश एकशश्च राजकुलं प्रविशन्ति सौराष्ट्रकाणामिति ॥ ३५ ॥

नगरं यत्र राजधानी तत्र स्त्रियो नगरस्त्रियः। ततो बाह्या जनपदस्त्रियः। सङ्घश इति संभूय। एकश इत्येकैकशश्च सौराष्ट्रकाणामिति ॥ ३५ ॥

सौराष्ट्र राज्य की रीति है कि राजधानी और राजधानी से बाहर की स्त्रियाँ झुण्ड की झुण्ड या अकेले राजा के पास राजभवन में जाती हैं ॥ ३५ ॥

उक्तमनुक्तं चोपसंहरन्नाह—

श्लोकावत्र भवतः—

'एते चान्ये च बहवः प्रयोगाः पारदारिकाः।
देशे देशे प्रवर्तन्ते राजभिः संप्रवर्तिताः ॥ ३६ ॥

---

1. यशोधर का अनुमान है कि दक्षिण में वत्स और गुल्मक दो सहोदर राजपुत्र थे, उन्हीं के नाम पर उनका राज्य वत्सगुल्मक कहलाया।

एते चेति अन्ये चैतत्प्रकाराः। पारदारिकाः परदारप्रयोजना एते देशे देशे प्रवर्तन्ते, पूर्वराजभिः संप्रवर्तितत्वात् ॥ ३६ ॥

इस विषय के दो प्राचीन श्लोक हैं—

राजाओं द्वारा प्रवर्तित परदार-गमन की अनेक परम्पराएँ विभिन्न देशों में प्रचलित हैं ॥ ३६ ॥

न त्वेवैतान्प्रयुञ्जीत राजा लोकहिते रतः।
निगृहीतारिषड्वर्गस्तथा विजयते महीम् ॥ ३७ ॥'

स महीपतिर्न विजयते अनिगृहीतारिषड्वर्गत्वात्। विजयस्य कारणं कामक्रोधलोभमानमदहर्षजय इति। ईश्वरकामितं सप्तचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरण ईश्वरकामितं पञ्चमोऽध्यायः।

लोकोपकारी राजा को ऐसी रीतियाँ न चलानी चाहिए और जो चली आ रही हों उन्हें रोक देना चाहिए। जो राजा काम, क्रोध, लोभ आदि छहों शत्रुओं को जीत लेता है वह सदा विजयी होकर सुखपूर्वक राज्य करता है ॥ ३७ ॥

इस अध्याय में राजा, मंत्री आदि पदाधिकारी तथा वैभवशाली व्यक्ति किस प्रकार परस्त्री गमन करते हैं, परस्त्री को फँसाने, उसके साथ संभोग करने के लिए किस तरह के उपाय और षड्यंत्र रचते हैं। विलासी राजाओं ने अपने राज्यों में प्रजा की बहू-बेटियों के सतीत्व अपहरण करने की कैसी प्रथायें चलायी हैं और शिष्ट लोग परम्परा मानकर उसका विरोध भी नहीं करते—राजघरानों में रनिवासों में किस तरह लुक छिपकर प्राकृतिक, अप्राकृतिक व्यभिचार करते हैं, जिन्हें सम्भोग के लिए स्त्रियाँ नहीं मिलतीं वे घोड़ी, बकरी, कुतिया जैसे जानवरों के साथ अप्राकृतिक व्यवहार एवं हस्तमैथुन में किस तरह निरत हो जाते हैं—इत्यादि समस्त यौनविकारों का विशद वर्णन किया गया है।

वात्स्यायन ने इस प्रवृत्ति और प्रथा की निन्दा करते हुए इसे सर्वथा त्याज्य और अमानुषिक व्यापार बताया है। साथ ही, राजाओं, रईसों, सामन्तों को लोकहित की भावना तथा मानवीय भावों की रक्षा, उन्नति के लिए इन

प्रवृत्तियों से दूर रहने का सुझाव दिया है। इस प्रसङ्ग में वात्स्यायन ने अपने समय के तथा अपने से पूर्ववर्ती कतिपय राजाओं के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिनके यहाँ प्रजावर्ग की नवविवाहिता वधू पहले राजा के पास उपभोग के लिए भेजी जाती थी, कुछ ऐसे भी राजाओं का उल्लेख किया है, जिनके महल में प्रतिदिन मंत्रियों, सेनापतियों के घर की युवतियाँ रात में राजसेवा के लिए जाती थीं। वात्स्यायन ने राजाओं की इस प्रवृत्ति की भर्त्सना करते हुए उन्हें सुझाव दिया है कि राजा को प्रजापालक होना चाहिए, इज्जत का ग्राहक नहीं। श्री, विजय, विभूति चाहनेवाले राजा को चाहिए कि वह ऐसी प्रवृत्ति से अपने को सर्वथा मुक्त रखे और यदि उसके यहाँ इस तरह की प्रथा चलती आ रही हो तो उसे बन्द कर दे।

वात्स्यायन-काल में तथा उससे पूर्व कुछ राजाओं के यहाँ नवविवाहिता वधू के प्रथम उपभोग का अधिकार राजा को रहा है; यह कोई आश्चर्य की बात नहीं; पराधीनता के साथ सदा के लिए समाप्त भारतीय नरेशों में कुछ ऐसे इस युग में भी रहे हैं जिनके यहाँ कामसूत्र में बताई गई रंगरेलियाँ और नारीत्व का अपहरण परंपरा और प्रथा के नामपर होता रहा है। उनके रनिवासों में नारीवेश में युवक बुलाए ही नहीं जाते थे, बल्कि वहीं निवास भी करते थे।

वात्स्यायन ने यह भी बताया है कि एक राजा की अनेक रानियाँ अपनी अतृप्त वासनाओं को शान्त करने के लिए अपनी सहेलियों, सखियों, दासियों को पुरुष वेष धारण कराकर कृत्रिम लिंग द्वारा संभोगरत हुआ करती थीं। बैगन, मूली आदि को साधन बनाया करती थीं।

वात्स्यायन ने अतृप्त वासनाओं की तृप्ति के लिए प्रायः सभी प्रकार के कृत्रिम, अकृत्रिम संभोग की चर्चा की है किन्तु आश्चर्य है कि अतृप्त रानियों के 'चपती' मैथुन का कोई जिक्र नहीं किया। कदाचित् वात्स्यायन-काल में 'चपती' मैथुन का आविष्कार नहीं हुआ था, अन्यथा वात्स्यायन जैसे सूक्ष्मदर्शी की रहस्यभेदिनी दृष्टि से यह ओझल न होती। वर्तमान समय में जब चिरकुमारी बनने का शौक अधिक बढ़ गया है, 'चपती' खेलना, कृत्रिम साधनों का उपयोग करना अधिक व्यावहारिक और तृप्ति का कारण माना जाने लगा है।

वात्स्यायन में मानवीय चित्तवृत्तियों को परखने की अद्भुत शक्ति थी। परदारगमन अधिकरण लिखकर उसने मानव की पाशविकवृत्तियों का, उसकी गोमुखव्याघ्रता का पर्दाफाश किया है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे
ईश्वरकामितं पञ्चमोऽध्यायः।

षष्ठोऽध्यायः

अन्तःपुरिकावृत्तप्रकरणम्

यथेश्वराणां परभवनप्रवेशो नास्ति तथान्तःपुरिकाणां नागरकाणां चान्तःपुरप्रवेश, इत्यान्तःपुरिकाणां नागरकाणां चोभयथाऽप्यान्तःपुरिकावृत्तमुच्यते, तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

नान्तःपुराणां रक्षणयोगात्पुरुषसंदर्शनं विद्यते पत्युश्चैकत्वादनेकसाधारणत्वाच्चातृप्तिः। तस्मात्तानि प्रयोगत एव परस्परं रञ्जयेयुः ॥ १ ॥

नान्तःपुराणामिति। तस्मादन्तःपुरिकाणामित्यर्थः। तासां पतिरस्त्येवेति चेदाह—पत्युश्चैकत्वादिति। एकोऽपि तृप्तिं कुर्यादिति चेदाह—अनेकसाधारणत्वाच्चेति। स हि तासां साधारणः कथं तृप्तिं कुर्यात्। प्रयोगत एवेति। प्रयोगतः। परस्परमिति या रतिमन्यस्यां कुर्यात्तस्यामन्येति ॥ १ ॥

अन्तःपुरों में सुरक्षा की दृष्टि से सख्त पहरा रहता है जिससे वहाँ किसी पुरुष का प्रवेश नहीं हो पाता। रानियाँ कई होती हैं और उनका पति राजा एक होता है, इसलिए सभी रानियों की काम-वासना पूर्णतया तृप्त नहीं हुआ करती है। इसलिए वे रानियाँ आपस में ही वासनाओं की तृप्ति का प्रयोग करती हैं ॥ १ ॥

प्रयोगमाह—

धात्रेयिकां सखीं दासीं वा पुरुषवदलंकृत्याकृतिसंयुक्तैः कन्दमूलफलावयवैरपद्रव्यैर्वात्माभिप्रायं निवर्तयेयुः ॥ २ ॥

पुरुषवदलंकृत्येति—तत्र हि पुरुषबुद्ध्यातिमात्रे भावे तृप्तिरतिशयितवती भवति। आकृतिसंयुक्तैरिति—पुरुषेन्द्रियसंस्थानवद्भिः। कन्दमूलफलावयवैरिति—तत्र कन्दा आलुककदल्यादीनाम्। मूलं तालकेतकीनाम्। फलमलाबुकर्कटिकादीनाम्। एतानि संशोध्य ग्राह्याणीति। अवयवग्रहणे फलं दर्शयति—आत्माभिप्रायमिति—रागभावं निवर्तयेयुः। केवलं श्रद्धाविनो [दनं] न तथाविधः कामः स्यादप्राधान्यात् ॥ २ ॥

धाय की लड़की, सहेली या दासी को पुरुषों की भाँति वस्त्रालङ्कार पहना कर मूली, गाजर, बैगन आदि का कृत्रिम लिंग बनाकर उन्हें अपने ऊपर लिटाकर कृत्रिम संभोग से तृप्त हुआ करती हैं ॥ २ ॥

पुरुषप्रतिमा अव्यक्तलिङ्गाश्चाधिशयीरन् ॥ ३ ॥

पुरुषप्रतिमाः पुरुषदेहाः । अव्यक्तलिङ्गा अजातश्मश्रुत्वात्स्त्रीरूपाभासा इत्यर्थः ॥ ३ ॥

बिना दाढ़ी, मूछ के स्त्री जैसे जान पड़ने वाले पुरुषों को स्त्री वेष धारण कराकर अपने पास सुलाती हैं ॥ ३ ॥

एकोऽपि तृप्तिं कुर्याद्यः कामार्तासु कृपाशीलो यथा प्राच्यानामित्याह—

राजानश्च कृपाशीला विनापि भावयोगादायोजितापद्रव्या यावदर्थमेकया रात्र्या बह्वीभिरपि गच्छन्ति । यस्यां तु प्रीतिर्वा-सक ऋतुर्वा तत्राभिप्रायतः प्रवर्तन्त इति प्राच्योपचाराः ॥ ४ ॥

विनापि भावयोगादित्यजातसंप्रयोगेच्छा अपि । आयोजितापद्रव्या इति कट्यामाबद्धकृत्रिमसाधनाः । यावदर्थं यावत्तृप्ति बह्वीभिरपि स्त्रीभिः सह गच्छन्ति संप्रयोगमिति । अभिप्रायतो भावेनेत्यर्थः । अयमन्तःपुरविषये योग उक्तः ॥ ४ ॥

और राजा भी रानियों पर अनुग्रह करके बिना कामेच्छा के ही, कृत्रिम लिंग लगाकर एक ही रात में बहुत सी रानियों से सहवास करते हैं । किन्तु जिस रानी पर उनका विशेष अनुराग रहता है अथवा जो ऋतुस्नाता होती है उसके साथ वे भावपूर्वक सहवास करते हैं । यह प्राच्यों का उपचार है ॥ ४ ॥

स्त्रीयोगेणैव पुरुषाणामप्यलब्धवृत्तीनां वियोनिषुविजातिषु स्त्रीप्रतिमासु केवलोपमर्दनाच्चाभिप्रायनिवृत्तिर्व्याख्याता ॥ ५ ॥

यथा स्त्रीणां क्वचित्पुरुषबुद्धिषु स्वाभिप्रायनिवृत्तिरेवं पुरुषाणामपि केषामित्याह—अलब्धवृत्तीनामिति-ये स्त्रियं न प्राप्नुवन्ति । वियोनिषु-चलोरुकरव्यादिषु (?) । विजातिषु—एडीवडवादिषु । स्त्रीप्रतिमासु—स्त्रीप्रकृतिषु समुत्कीर्णस्त्रीलिङ्गादिषु । केवलमुपमर्दनाच्चेति—सिंहाक्रान्तकरेण वा साधनस्य मन्थनादेव केवलात् । यथोक्तम् – 'भुवि विन्यस्तहस्ताभ्यामवष्टभ्योत्कटासनः । बाहुमध्ये विमृद्नीयात्सिंहाक्रान्तेऽव्ययं विधिः ॥' अस्थानेषु शुक्रविसृष्टिर्विधर्म इति चेत् सप्ताभिधाने (?) कथम् ? तत्र प्रायश्चित्तविधानादिति चेदिहापि विहितत्वात् ॥ ५ ॥

पुरुष भी स्त्रियों के न मिलने पर घोड़ी, बकरी, कुतिया आदि पशुओं से, बनावटी योनि से, स्त्रियों की बनी प्रतिमा से अथवा हस्तमैथुन से अपनी कामवासना शान्त करते हैं ॥ ५ ॥

बहिर्विषयमाह—

योषावेषांश्च नागरकान्प्रायेणान्तःपुरिकाः परिचारिकाभिः सह प्रवेशयन्ति ॥ ६ ॥

परिचारिकाभिरिति । प्रदोषे परिचरितुमन्तःपुरं प्रविशन्तीभिः ॥ ६ ॥

प्रायः अन्तःपुरिकायें दासियों के साथ नागरकों को स्त्री वेष में अन्तःपुर में बुला लेती हैं ॥ ६ ॥

तेषामुपावर्तने धात्रेयिकाश्चाभ्यन्तरसंसृष्टा आयतिं दर्शयन्त्यः प्रयतेरन् ॥ ७ ॥

तेषामिति—नागरकाणाम् उपावर्तने-अभिमुखीकरणे, प्रयतेरन् । अभ्यन्तरसंसृष्टा इति–तासु नागरकाणां यथार्थबुद्धिर्न बाह्यासु । आयतिमिति–आगामिफलमेवं भविष्यतीति ॥ ७ ॥

नागरकों को अन्तःपुर में ले जाने के लिए धाय की लड़कियाँ या रानियों की अन्तरंग सखियाँ, सहचरियाँ लोभ देकर ले जाया करती हैं ॥ ७ ॥

सुखप्रवेशितामपसारभूमिं विशालतां वेश्मनः प्रमादं रक्षिणामनित्यतां परिजनस्य वर्णयेयुः ॥ ८ ॥

अपसारभूमिम्–अपक्रमणमार्गम् । विशालतामिति–विस्तीर्णं न ज्ञायते क्व किं वर्तत इति । प्रमादम्–असावधानताम् । अनित्यतामिति–राजपरिजनो न नित्यं संनिहित इति ॥ ८ ॥

वे उन नागरिकों को बहकाते समय रनिवास में आसानी से प्रवेश करने और निकलने के सुगम मार्ग, पहरेदारों की असावधानी, महल की विशालता एवं राजा और राजकुमारों का हर समय रनिवास में न रहने का विश्वास दिलाती हैं ॥ ८ ॥

न चासद्भूतेनार्थेन प्रवेशयितुं जनमावर्तयेयुर्दोषात् ॥ ९ ॥

असद्भूतेनेति–विनाभावेन सुप्रवेशितां विना । जनमिति–नागरकम् । आवर्तयेयुः–अभिमुखीकुर्युः । दोषादिति–विनाभावमदुष्टदूषणे आत्मनः सुप्रवेशिताद्यभावे च जनस्यापकारः ॥ ९ ॥

यदि आने जाने का मार्ग निरापद और सुगम न हो तो जनाना घर के अन्दर परपुरुष का प्रवेश न कराना चाहिए । क्योंकि इससे हानि हो जाने का खतरा है ॥ ९ ॥

द्वितीयं वृत्तमधिकृत्याह—

नागरकस्तु सुप्रापमप्यन्तःपुरमपायभूयिष्ठत्वान्न प्रविशेदिति वात्स्यायनः ॥ १० ॥

अपायभूयिष्ठत्वादिति बहूनां विनाशकारणानां संनिधानात् ॥ १० ॥

वात्स्यायन का सुझाव है कि अन्तःपुर में प्रवेश करने की चाहे जितनी सुगमता सुविधा हो किन्तु नागरक को हरगिज़ न प्रवेश करना चाहिए क्योंकि इससे महती हानि की सम्भावना है ॥ १० ॥

अत्र विशेषमाह—

सापसारं तु प्रमदवनावगाढं विभक्तदीर्घकक्ष्यमल्पप्रमत्तरक्षकं प्रोषितराजकं कारणानि समीक्ष्य बहुश आहूयमानोऽर्थबुद्ध्या कक्ष्याप्रवेशं च दृष्ट्वा ताभिरेव विहितोपायः प्रविशेत् ॥ ११ ॥

प्रमदवनं क्रीडावनं तेनावगाढं गहनम् । कक्ष्या प्रकोष्ठकानि । प्रोषितराजकं राज्ञोऽन्यत्र गतत्वात् । कारणान्यभिगमनस्य । बहुश आहूयमानोऽर्थबुद्ध्या । कक्ष्याप्रवेशं दृष्ट्वा अनेन मार्गेण मया प्रवेष्टव्यमिति । ताभिरिति—या उपावर्तन्ते । विहितोपाय इत्येवंवेषोऽस्मिन्काले गृहीत्वा चेदमिति ॥ ११ ॥

नागरक उसी हालत में रनिवास में जाने को प्रस्तुत हो जब भाग निकलने का रास्ता हो, रनिवास से लगा हुआ सघन प्रमद वन हो, अलग-अलग बड़ी और लम्बी-लम्बी दालानें हों, रक्षक थोड़े और असावधान हों, राजा बाहर गए हो, कई बार महारानी बुला चुकी हों, अर्थलाभ का विश्वास हो और रानी के कक्ष में प्रवेश करते समय रास्ता बताने वाली साथ हो ॥ ११ ॥

शक्तिविषये च प्रतिदिनं निष्क्रामेत् ॥ १२ ॥

शक्तिविषये चेति—येन प्रवेशेन प्रतिदिनं निष्क्रमितुं शक्तिस्तस्मिन्सति । इदमुपावर्तनस्य वृत्तम् ॥ १२ ॥

यदि रनिवास में आने जाने की ऐसी सुविधा नित्य हो तो रोजाना आना जाना चाहिए ॥ १२ ॥

यस्तु स्वयमुपावर्तते तस्य वृत्तमाह—

बहिश्च रक्षिभिरन्यदेव कारणमपदिश्य संसृज्येत ॥ १३ ॥

बाह्या ये रक्षिणः । अन्यदेवेत्यमुकसंबन्धेन मम त्वं भ्राता भगिनीपतिर्वेति । संसृज्येत प्रीतिं कुर्यात् । येन तेषां तन्निवारणे शैथिल्यं स्यात् ॥ १३ ॥

अन्तःपुर में आने जाने वाले नागरक को चाहिए कि किसी काम के बहाने बाहर के रक्षकों से मेल-जोल कर ले ॥ १३ ॥

अन्तश्चारिण्यां च परिचारिकायां विदितार्थायां सक्त मात्मानं रूपयेत्। तदलाभाच्च शोकमन्तःप्रवेशिनीभिश्च दूतीकल्पं सकलमाचरेत् ॥ १४ ॥

विदितार्थायामिति मय्यनुरक्त इति विदितार्थायां शक्ति (सक्तं) रूपयेत्प्रकाशयेदाकारसंवरणार्थम्। एवं च दार्ढ्यार्थमाह—तदलाभादिति। परिचारिकाया अप्राप्तेः शोकं प्ररूपयेदित्यर्थः। अन्तःप्रवेशिनीभिश्चेति—बाह्याभिरन्तःपुरप्रवेशनशीलाभिः स्त्रीभिः करणभूताभिः। दूतीकल्पं दूतीविधिं यथोक्तम् ॥ १४ ॥

अन्तःपुर में आने जाने वाली किसी परिचारिका को नागरक जब यह समझ ले कि मुझ पर आसक्त है; ऊपरी ढंग से उस पर अपनी दृढ़ आसक्ति प्रकट करे, जब कभी वह न मिले विकल होने का भाव प्रकट करे, इसी प्रकार अन्य ऐसी दासियों से व्यवहार रख कर उनसे दूतीपने का काम ले ॥ १४ ॥

राजप्रणिधींश्च बुध्येत ॥ १५ ॥

राजप्रणिधींश्चेति—राजचरान् बुध्येतात्मसंरक्षणार्थम् ॥ १५ ॥

आत्मरक्षा के लिए नागरक राजा के गुप्तचरों को पहचान ले ॥ १५ ॥

दूत्यास्त्वसंचारे यत्र गृहीताकारायाः प्रयोज्याया दर्शनयोगस्तत्रात्रस्थानम् ॥ १६ ॥

यत्र यस्मिन्प्रदेशे दूरस्थाया एव दर्शनयोगः। गृहीताकाराया इति। अन्यथासत्यपि दर्शनयोगेऽवस्थानं निष्फलमेव स्यात् ॥ १६ ॥

यदि दूती न जा सके और स्वीकृतिसूचक इशारे कर दिए हों तो वह वहीं ऐसी जगह खड़ा हो जाए जहाँ दूर से दिखाई पड़ता हो। यदि आँखें न मिली हों तो सिर्फ देखने मात्र के लिए खड़ा रहना निरर्थक है ॥ १६ ॥

तस्मिन्नपि तु रक्षिषु परिचारिकाव्यपदेशः ॥ १७ ॥

तस्मिन्नपि तु प्रदेशे स्थितेन रक्षिषु परिचारिकाव्यपदेशः कार्यः। यस्यामात्मनः सक्तोऽतिनिरूपितः (?) ॥ १७ ॥

उस जगह खड़े रहने पर मेल जोल के पहरेदारों को उसी परिचारिका के देखने का बहाना करे ॥ १७ ॥

चक्षुरनुबध्नन्त्यामिङ्गिताकारनिवेदनम् ॥ १८ ॥

चक्षुरनुबध्नन्त्यामिति—पुनः पुनः पश्यन्त्यां प्रयोज्यायाम्। इङ्गिताकारनिवेदनं भावसूचनार्थम् ॥ १८ ॥

यदि चाहने वाली नागरक पर बार बार नजर गड़ाए तो नागरक भी अपने संकेत और भाव-चेष्टाओं को दिखाए ॥ १८ ॥

यत्र संपातोऽस्यास्तत्र चित्रकर्मणस्तद्युक्तस्य द्व्यर्थानां गीतवस्तुकानां क्रीडनकानां कृतचिह्नानामापीनकाना (कस्य) मङ्गुलीयकस्य च निधानम् ॥ १९ ॥

संपात इति-यत्रोद्देशे सम्यग्जननम्। तद्युक्तस्येति प्रयोज्यायुक्तस्य। सानुरागमात्मानं फलके भित्तौ (वा) विलिख्य निदध्यात्। द्व्यर्थानामिति यानि प्रयोज्याविषयमनुरागं सूचयन्ति। गीतवस्तूनां खण्डगाथावर्णादीनाम्। क्रीडनकानां पुत्रिकाकन्दुकादीनां कृतचिह्नानाम्। आपीनकस्य (?) नखदशनपदाङ्कितस्य। अंगुलीयकस्य नामाङ्कितस्य ॥ १९ ॥

जिसको वह चाहता है उसकी दासी की दृष्टि जिस स्थान पर पड़ती रहती हो उस स्थान पर वह दीवारों पर चित्र बनाए, श्लेष अर्थ व्यञ्जक द्विपदी खण्ड गीत, गाथा ऐसे लिखे जो प्रेमिका के प्रति प्रीति के अभिव्यञ्जक हों तथा नाखून और दाँतों से चिह्नित गेंद, गुड़िया आदि खिलौने भी वहीं रखदे तथा अपने नाम की अंगूठी रख दे ॥ १९ ॥

प्रत्युत्तरं तया दत्तं प्रपश्येत्। ततः प्रवेशने यतेत ॥२०॥

प्रत्युत्तरं चेति तयान्यया वा दत्तं प्रकर्षेण पश्येत्। तत इति ल्यब्लोपे पञ्चमी। त्यक्तं क्रमणम् (?) ॥ २० ॥

उस दासी द्वारा दिये गए उत्तर को देखने के बाद ही अन्दर प्रवेश करे ॥२०॥

यत्र चास्या नियतं गमनमिति विद्यात्तत्र प्रच्छन्नस्य प्रागेवावस्थानम् ॥ २१ ॥

जिस जगह पर प्रेयसी की दासी हमेशा आती जाती रहती हो वहीं पहले से छिपकर बैठ जाए ॥ २१ ॥

रक्षि (त) पुरुषरूपो वा तदनुज्ञातवेलायां प्रविशेत् ॥ २२ ॥

अथवा निर्दिष्ट समय पर पहरेदार का वेष बनाकर महल के अन्दर घुस जाए ॥ २२ ॥

आस्तरणप्रावरणवेष्टितस्य वा प्रवेशनिर्हारौ ॥ २३ ॥

अथवा उस प्रेमी नागरक को ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों में लपेट कर भीतर-बाहर लाया, भेजा जा सकता है ॥ २३ ॥

पुटापुटयोगैर्वा नष्टच्छायारूपः ॥ २४ ॥

पुटापुटैरिति मंजूषायां सपिधानायां प्रक्षिप्तस्य योगैराम्नायागतैः। नष्टच्छायारूपस्येति। कश्चिद्रूपमेव तिरस्करोति न च्छायाम्। यो रूपमपि न पश्यते ॥२४॥

पुट और अपुट ता...त्मक योगों से अपनी छाया और रूप को लुप्त करके महल के अन्दर घुसा जा सकता है ॥ २४ ॥

तत्रायं प्रयोगः—नकुलहृदयं चोरकतुम्बीफलानि सर्पाक्षीणि चान्तर्धूमेन पचेत् । ततोऽञ्जनेन समभागेन पेषयेत् । अनेनाभ्यक्तनयनो नष्टच्छायारूपश्चरति । (अन्यैश्च जलब्रह्मक्षेमशिरःप्रणीतैर्बाह्यपानकैर्वा) ॥ २५ ॥

पुटापुट योग यह है—नकुल का हृदय, चोर तुम्बी का फल, साँप की आँखें, इन तीनों को पुटपाक विधि से निधूर्म अग्नि में तपा लिया जाए। फिर तीनों के बराबर अंजन मिलाकर पीस डाले। आँखों में इस अंजन को लगाते ही रूप और परछाईं दोनों किसी को नहीं दिखाई पड़ते । इसके अतिरिक्त जलब्रह्म, क्षेमशिर प्रणीत बाह्य पानक भी है ॥ २५ ॥

रात्रिकौमुदीषु च दीपिकासंबाधे सुरङ्गया वा ॥ २६ ॥

रात्रिकौमुदीषु चेति सुखरात्रिकासु वा। दीपिकासंबाधे गृहीतदीपिकानां समूहे । तद्वेषधारिणः । सुरङ्गया वा अन्तःपुरोद्भिन्नया । प्रवेशनिर्हारौ सर्वत्र योज्यौ ॥ २६ ॥

दीपमालाओं को लिए हुए दीपावली में जब लोग इधर-उधर आ जारहे हों तो उन्हीं की तरह दीप लेकर सुरंग के रास्ते महल में गुप्त प्रवेश करे और उसी तरह निकल भी आए ॥ २६ ॥

तत्रैतद्भवति—

'द्रव्याणामपि निर्हारे पानकानां प्रवेशने ।
आपानकोत्सवार्थेऽपि चेटिकानां च संभ्रमे ॥
व्यत्यासे वेश्मनां चैव रक्षिणां च विपर्यये ।
उद्यानयात्रागमने यात्रातश्च प्रवेशने ॥
दीर्घकालोदयां यात्रां प्रोषिते चापि राजनि ।
प्रवेशनं भवेत्प्रायो यूनां निष्क्रमणं तथा ॥ २७ ॥

तत्रेति प्रवेशननिर्हारयोरेतद्वक्ष्यमाणमुपायान्तरं भवति । द्रव्याणामिति—सारदार्वादिपानकानां युग्मादीनां करैर्निर्हारे प्रवेशने च तन्मध्यवर्तिनोऽपि प्रवेशनं निष्क्रमणं चेति सर्वत्र योज्यम् । आपानकमुत्सवः । चार्थेऽपिः । चेटिकानां च

संभ्रमे इतस्ततो गमने। तद्वेश्मव्यत्यास इति चकारादुद्यानतश्च। दीर्घकालोदयामिति दीर्घकाल उदयः फलं यस्यां न पात्रसाध्यं स तु न भवतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

राजमहल में घुसने और निकलने के उपाय ये होते हैं—सार वस्तुओं को छकड़े में लादकर भीतर बाहर रखने उठाने के समय में, मदिरापान की गोष्ठी या उत्सव में आते-जाते हुए लोगों के साथ प्रवेश कर और निकल भी आए। कार्य वश राजभवन की चेटियाँ जब इधर-उधर भाग दौड़ कर रही हों, जब घर का सामान एक घर से दूसरे घर में रखा जा रहा हो, या पहरा बदला जा रहा हो, उद्यानयात्रा को प्रस्थान किया जा रहो या राजा कहीं लम्बी यात्रा के लिए जा रहा हो। ऐसे अवसर पर तरुण नागरक राजमहल में आसानी से प्रविष्ट हो सकता है और निकल सकता है ॥ २७ ॥

ननु या नैवंविधा अन्तःपुरिकास्ताभिर्मन्त्रो भिद्येतेत्याह—

परस्परस्य कार्याणि ज्ञात्वा चान्तःपुरालयाः।
एककार्यास्ततः कुर्युः शेषाणामपि भेदनम् ॥
दूषयित्वा ततोऽन्योन्यमेककार्यार्पणे स्थिरः।
अभेद्यतां गतः सद्यो यथेष्टं फलमश्नुते ॥ २८ ॥

परस्परस्येति। कार्याणि रहस्यानि। अन्तःपुरालया अन्तःपुरिकाः। एककार्या इति। एकस्या यत्कार्यं तत्संभूयास्माभिर्निष्पाद्यमिति। शेषाणां भेदनं कुर्युर्यथा ता अपि समानधर्मिण्यः स्युः। किं फलमिति चेदाह—दूषयित्वेति। एककार्यार्पण इति—एकं चारित्रखण्डनाख्यं कार्यं परस्परस्यार्पयति योऽन्तःपुरिकासङ्घः। अभेद्यतां गतो मन्त्रभेदाभावादेव स्थितिः (स्थिरः)। इदमन्तःपुरिकावृत्तं प्रच्छन्नमुक्तम् ॥ २८ ॥

अन्तःपुरवासिनी स्त्रियाँ आपस में एक दूसरे के रहस्य को जानकर संगठित हो जाएँ और अपने अभीष्ट कार्य को सिद्ध करने का निश्चय करके जो बाकी बची हुई स्त्रियाँ हों उन्हें भी अपनी ओर फोड़ लें। एक दूसरे का चरित्र खराब करने के बाद जब सभी एक ही आचरण की हो जाएँ तब फिर कोई किसी का भेद नहीं खोलती और सभी यथेष्ट फल प्राप्त करती हैं ॥ २८ ॥

प्रकाशं तु देशप्रवृत्त्या। यदाह—

तत्र राजकुलचारिण्य एव लक्षण्यान्पुरुषानन्तःपुरं प्रवेशयन्ति नातिसुरक्षत्वादापरान्तिकानाम् ॥ २९ ॥

तत्रेति। राजकुलचारिण्यो या राजकुले चरन्ति स्त्रियः। लक्षण्यानिति।

ये स्त्र्यादिलक्षणे साधवस्तज्ज्ञास्तानित्यर्थः। नातिसुरक्षत्वादिति नात्यन्तं स्वा राजकीया तत्र रक्षास्ति ॥ २९ ॥

अपरान्तक देश के राजकुल में आने-जाने वाली स्त्रियाँ सुन्दर, चण्डवेग तरुणों को राजमहलों में प्रविष्ट करा देती हैं। क्योंकि वहाँ अधिक चौकसी, पहरा नहीं रहता है ॥ २९ ॥

क्षत्रियसंज्ञकैरन्तःपुररक्षिभिरेवार्थं साधयन्त्याभीरकाणाम् ॥

क्षत्रियसंज्ञकैरिति नान्यै रक्षिभिः, तेषां तत्राभ्यन्तरप्रवेशात्। अर्थमिति संप्रयोगं साधयन्ति राजकुलचारिण्य एव ॥ ३० ॥

आभीर राजा के राजभवन में आने-जाने वाली स्त्रियाँ राजमहल के क्षत्रिय रक्षकों को ही फँसा कर रनिवास में ले जाती हैं ॥ ३० ॥

प्रेष्याभिः सह तद्वेषान्नागरकपुत्रान्प्रवेशयन्ति वात्सगुल्मकानाम् ॥ ३१ ॥

प्रेष्याभिरिति—दासीभिः। तद्वेषान्—दासीवेषान्। प्रवेशयन्ति राजकुलचारिण्य इति वर्तते ॥ ३१ ॥

वत्सगुल्म राज के राजभवन में दासी के वेष में दासियों के साथ तरुणों को ले जाया जाता है ॥ ३१ ॥

स्वैरेव पुत्रैरन्तःपुराणि कामचारैर्जननीवर्जमुपयुज्यन्ते वैदर्भकाणाम् ॥ ३२ ॥

स्वैरिति राजापेक्षया। कामचारैरित्यनिषिद्धसंचारैः। जननीवर्जमिति मुख्यमातरं मुक्त्वा। उपयुज्यन्तेऽभिगम्यन्ते ॥ ३२ ॥

विदर्भराज की रानियाँ तो अपने कोख से उत्पन्न पुत्र को छोड़कर सभी राजकुमारों से सहवास कराती हैं ॥ ३२ ॥

तथा प्रवेशिभिरेव ज्ञातिसंबन्धिभिर्नान्यैरुपयुज्यन्ते स्त्रैराजकानाम् ॥ ३३ ॥

स्त्रीराजः स्त्रीपुरी तत्र भवानाम् ॥ ३३ ॥

स्त्री राज्य की रानियाँ केवल स्वजातीय पुरुषों से ही सहवास कराती हैं दूसरों से नहीं ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणैर्मित्रैर्भृत्यैर्दासचेटैश्च गौडानाम् ॥ ३४ ॥

मित्रैर्भृत्यैरिति। मित्रैर्भृत्यैश्च। दासचेटैरिति। दासा गृहजातास्ततोऽन्ये चेटाः। गौडानामिति। गौडाः कामरूपकाः प्राच्यविशेषाः ॥ ३४ ॥

गौड देश की रानियाँ ब्राह्मण, मित्र भृत्य, दास और चेटों से भी संभोग कराती हैं ॥ ३४ ॥

परिस्पन्दाः कर्मकराश्चान्तःपुरेऽनिषिद्धा अन्येऽपि तद्रूपाश्च सैन्धवानाम् ॥ ३५ ॥

परिस्पन्दाः प्रतिहाराः। कर्मकराः शयनासनचमरादिकर्मान्तिकाः। अन्येऽपि तद्रूपा येऽनिषिद्धसंचाराः। उपयुज्यन्त इत्यर्थकत्वाद्विभक्तिविपरिणामेन संबन्धः। सैन्धवानामिति—सिन्धुनामा नदस्तस्य पश्चिमेन सिन्धुदेशस्तत्र भवानाम् ॥ ३५ ॥

सिन्धु देश में जिन नौकरों, नागरिकों को राजमहल के अन्दर प्रवेश करने की मनाही नहीं है उन सबके साथ वहाँ की रानियाँ सहवास कराती हैं ॥३५॥

अर्थेन रक्षिणमुपगृह्य साहसिकाः संहताः प्रविशन्ति हैमवतानाम् ॥ ३६ ॥

अर्थेनोपगृह्य, रक्षिणः लुब्धत्वात्। साहसिका निर्भया नान्ये। संहता एकीभूय। हैमवतानामिति हिमवद्द्रोणीभवानाम् ॥ ३६ ॥

हिमालय की दून के राजाओं के यहाँ साहसी तरुण पहरेदारों को धन का लोभ देकर इकट्ठा राजमहल में प्रवेश किया करते हैं ॥ ३६ ॥

पुष्पदाननियोगान्नगरब्राह्मणा राजविदितमन्तःपुराणि गच्छन्ति। पटान्तरितश्चैषामालापः। तेन प्रसङ्गेन व्यतिकरो भवति वङ्गाङ्गकलिङ्गकानाम् ॥ ३७ ॥

नगरब्राह्मणा इति। तत्रैव नगरे ये ब्राह्मणास्ते पुष्पाणि दातुमन्तःपुरे गच्छन्ति। राजविदितमिति राजप्रज्ञातम्। पटान्तरितश्चैषामालापो न ताभिः साक्षाद्दृश्यमानाभिरिति देशस्थितिभेदेनेति। पुष्पदानप्रसङ्गेन व्यतिकरः संप्रयोगः, बंगाः तिरुहितात् पूर्वेण, अंगा महानद्याः पूर्वेण, कलिङ्गाः गौडविषयाद्दक्षिणेन ॥३७॥

अंग, बंग और कलिंग देश के राजमहलों में ब्राह्मण लोग मंत्राक्षत देने जाते हैं, तब रानियाँ उनसे परदे की ओट से बातें करती हैं। और इसी प्रसंग में वहाँ व्यतिकर सम्प्रयोग भी हो जाता है ॥ ३७ ॥

संहत्य नवदशेत्येकैकं युवानं प्रच्छादयन्ति प्राच्यानामिति। एवं परस्त्रियः प्रकुर्वीत। इत्यन्तःपुरिकावृत्तम् ॥ ३८ ॥

संहत्य नवदशेतीत्यत्रेतिशब्दः प्रकारे। एकैकं युवानं व्यवायक्षमं प्रच्छादयन्ति न यथा दृश्यते। एवमित्युक्तेन पारदारिकेण विधिना प्रकुर्वीताभिगच्छेत्। इत्यन्तःपुरिकावृत्तमष्टचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ३८ ॥

प्राच्य देश की रीति यह है कि आठ-दस स्त्रियाँ मिलकर किसी चण्डवेग तरुण को फँसाकर अपने पास रखती हैं। अन्तःपुर की स्त्रियों के पास यदि जाना पड़ जाए तो उक्त ढंग से जाना चाहिए ॥ ३८ ॥

यथा परस्त्रियमेभिरुपायैरभिगच्छेत्तथा तद्दारानपरोऽपीति दाररक्षितकमुच्यते। दाररक्षाप्रयोजनमस्येति । यदाह—

एभ्य एव च कारणेभ्यः स्वदारान् रक्षेत् ॥ ३९ ॥

एभ्य एवेति तथासिद्धपुरुषेभ्यः। यैश्च द्वारदेशावस्थानादिभिः कारणैरभियोगमात्रसाध्यत्वं यानि च परिचयकारणानि अभियोगदूतीकर्माणि ईश्वरकामितमन्तःपुरिकावृत्तं च तेभ्यो रक्षेत् । तत्रायं प्रथमोपायो यद्रक्षानिवेशनम् ॥ ३९ ॥

इन्हीं कारणों से अपनी स्त्रियों की देख-रेख करनी चाहिए ॥ ३९ ॥

यदाह—

कामोपधाशुद्धान्रक्षिणोऽन्तःपुरे स्थापयेदित्याचार्याः ॥४०॥

कामोपधेति । कामविषये या परीक्षा तया शुद्धान् ॥ ४० ॥

दाररक्षित प्रकरण

आचार्यों का मत है कि जो कामविषयक परीक्षा में खरे साबित हों उन्हीं को रनिवास, राजमहल का रक्षक नियुक्त करना चाहिए ॥ ४० ॥

ते हि भयेन चार्थेन चान्यं प्रयोजयेयुस्तस्मात्कामभयार्थोपधाशुद्धानिति गोणिकापुत्रः ॥ ४१ ॥

ते हीति । यद्यपि स्वयं कामोपधाशुद्धा नाभिगच्छन्ति तथापि भयेन लोभेन चान्यं प्रयोजयेयुस्तदशुद्धिसंभवात्तस्मादेतादृशानित्यर्थः ॥ ४१ ॥

गोणिकापुत्र का कहना है कि वे पहरेदार सदाचारी होते हुए भी यदि भय या लोभ से किसी और को रनिवास में प्रविष्ट करा दें तो ? इसलिए केवल काम की ही परीक्षा नहीं लेनी चाहिए, भय और धन की भी परीक्षा लेनी चाहिए ॥ ४१ ॥

अद्रोहो धर्मस्तमपि भयाज्जह्यादतो धर्मभयोपधाशुद्धानिति वात्स्यायनः ॥ ४२ ॥

धर्मोपधाशुद्धो न परदारानभिगच्छति, नार्थलोभात्स्वामिद्रोहमाचरति, भयात्तु धर्मं परित्यजेदिति ॥ ४२ ॥

वात्स्यायन का मत है कि स्वामिद्रोह न करना धर्म है उस भी भय से

वह छोड़ सकता है, इसलिए जो निर्भीक और धर्मात्मा हों उन्हीं को रनिवास का पहरेदार नियुक्त करना चाहिए ॥ ४२ ॥

स्वदारेषु परीक्षणमपि रक्षणोपाय इति केचिदित्याह—

परवाक्याभिधायिनीभिश्च गूढाकाराभिः प्रमदाभिरात्मदारानुपदध्याच्छौचाशौचपरिज्ञानार्थमिति बाभ्रवीयाः ॥ ४३ ॥

परवाक्येति । अमुकस्त्वय्यनुरक्तः स एवमाह मम प्राणसमा धार्यतामिति । गूढाकाराभिरिति सा न जानाति पत्या प्रयुक्तेति । तयोपदध्यात्परीक्षेत । अप्रतिपन्नायाः शौचं प्रतिपन्नायाश्चाशौचं ज्ञातं भवति ॥ ४३ ॥

बाभ्रवीय आचार्यों का मत है कि दूसरे की कही हुई बात का बहाना करके कहनेवाली, अपने आशय को छिपा लेनेवाली स्त्रियों से अपने रनिवास की स्त्रियों के शुद्धाचरण-दुराचरण की परीक्षा कर लेनी चाहिए ॥ ४३ ॥

दुष्टानां युवतिषु सिद्धत्वान्नाकस्माददुष्टदूषणमाचरेदिति वात्स्यायनः ॥ ४४ ॥

दुष्टानामिति विनाशकारणानामित्यर्थः । एवं मन्यते तथाहि—विनाशकारणेषु सत्सु स युवा परीक्षावान् स्यात्, असत्सु वा । तत्र पूर्वस्मिन्पक्षे दूष्याणां दूषणमाचरेत् । उत्तरत्र नेत्याह—नाकस्मादिति । अविद्यमानविनाशकारणानामित्यर्थः । अदुष्टशोधः बुद्धिबोधनस्य (शुद्धशोधनस्य) दोषवत्त्वात् । यथोक्तम्—'न शोधनमदुष्टस्य विशेषेणाम्भसश्चरेत् । कदाचिद्विप्रकृष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ॥' तस्माद्विनाशकारणान्येव निरूप्यन्ते येभ्यो व्यावर्तन्ते ॥ ४४ ॥

वात्स्यायन का मत है कि दुष्ट लोग तो युवतियों को फँसाया ही करते हैं, इसलिए सदाचारियों को अकस्मात् दूषित न किया जाय ॥ ४४ ॥

तान्याह—

अतिगोष्ठी निरङ्कुशत्वं भर्तुः स्वैरता पुरुषैः सहानियन्त्रणता प्रवासेऽवस्थानं विदेशे निवासः स्ववृत्त्युपघातः स्वैरिणीसंसर्गः पत्युरीर्ष्यालुता चेति स्त्रीणां विनाशकारणानि ॥ ४५ ॥

अतिगोष्ठी स्त्रीभिः सह गोष्ठी । भर्तुः स्वैरता—भर्त्रा स्वातन्त्र्येण व्यवहारिता । पुरुषैः कैश्चिदनियन्त्रणा नियन्त्रणाभावः प्रवासेऽवस्थानं भर्तरि प्रोषिते यदेकाकिन्यावस्थातव्यम् । स्ववृत्त्युपघातः—स्वशरीरस्थित्युपघातः । स्वैरिण्याः पुंश्चल्याः संसर्गः । पत्यावीर्ष्यासंभव इति विनाशकारणानि । एषु सत्सु परदाराभिमर्शयोगसंभवात् ॥ ४५ ॥

बहुत ज्यादा गप-शप करना, अनुशासनहीनता, स्वेच्छाचारिता, पुरुषों के

साथ निःसंकोच, स्वच्छन्दभाव से रहना, बातें करना, पति के बाहर चले जाने पर अकेली रहना, घर से बाहर विदेश में रहना, जीविकाहीन होना, कुलटाओं का साथ मिल जाना, पति से ईर्ष्या करना—आदि कारणों से स्त्रियाँ व्यभिचारी बन जाती हैं ॥ ४५ ॥

अधिकरणार्थमुपसंहरन्नाह—

संदृश्य शास्त्रतो योगान्पारदारिकलक्षितान् ।
न याति च्छलनां कश्चित्स्वदारान् प्रति शास्त्रवित् ॥ ४६ ॥

पारदारिकलक्षितानिति—पारदारिकेऽधिकरणे ये प्रोक्तास्तैर्लक्षितान् । अन्यथा कथमेताः शास्त्रतः पश्येत् ॥ ४६ ॥

पराई स्त्रियों को किस प्रकार व्यभिचारी लोग फँसाया करते हैं, उनके सभी हथकंडों को इस कामसूत्र के पारदारिक अधिकरण में पढ़कर कोई बुद्धिमान अपनी स्त्री के विषय में धोखा नहीं खा सकता है ॥ ४६ ॥

पाक्षिकत्वात्प्रयोगाणामपायानां च दर्शनात् ।
धर्मार्थयोश्च वैलोम्यान्नाचरेत्पारदारिकम् ॥ ४७ ॥

पाक्षिकत्वादिति यदान्यकारणानि पश्येत् । अपायानां च शरीरोपघातादी-
..म् । वैलोम्यादिति विपक्षत्वात् । परदारप्रयोजनप्रयोगं नाचरेदिति ॥ ४७ ॥

इस शास्त्र में यह दिखाया जा चुका है कि पराई स्त्रियों से संबंध करना दोनों लोकों को बिगाड़ता है । इसलिए कोई भी बुद्धिमान पुरुष इस बुरे कर्म में प्रवृत्त होने की इच्छा न करे ॥ ४७ ॥

तर्हि किमर्थं तदधिकरणमुक्तमिति चेत्तदाह—

तदेतद्दारगुप्त्यर्थमारब्धं श्रेयसे नृणाम् ।
प्रजानां दूषणायैव न विज्ञेयोऽस्य संविधिः ॥ ४८ ॥

तदेतदिति । नहि तदर्थं मुख्यं विधानमित्यर्थः । इति दाररक्षितकमेकोनपञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे आन्तःपुरिकं दाररक्षितकं षष्ठोऽध्यायः ।

पुरुषों की भलाई और स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के लिए ही यह प्रकरण लिखा गया है। इसलिए इसमें बताये गये प्रयोगों का उपयोग किसी को दूषित करने में न किया जाय ॥ ४८ ॥

पिछले प्रकरण में परस्त्रीसमागम करनेवाले व्यक्तियों की चेष्टाएँ, दूतियों के भयंकर षड्यंत्र, राजाओं की स्वेच्छाचारिता, रनिवास की रानियों की कपट-लीलाओं का जो वर्णन किया गया है, उसका तात्पर्य यह है कि इन सब रहस्यों को पढ़कर, समझकर, अनुभव करके लोग धोखे में न आएँ, उनका कर्त्तव्य है कि अपनी स्त्रियों के चरित्र की रक्षा सावधान होकर करते रहें। इस प्रसंग में वात्स्यायन ने स्त्रियों की रक्षा के उपायों को बताते हुए उन कारणों को भी स्पष्ट किया है, जिनसे स्त्रियों के चरित्र का विनाश हुआ करता है। उन्होंने हिदायत की है कि स्त्रियाँ अधिक गप-शप न किया करें, घर से बाहर दरवाजे पर न खड़ी रहें, रास्ते से आते-जाते हुए पुरुषों को न देखा करें, परपुरुषों से खुलकर धृष्टतापूर्वक बातें न किया करें, अकेली न तो घर में रहें और न यात्रा करें, कुलटा स्त्रियों से सम्पर्क न रखें।

वात्स्यायन का यह सुझाव धर्मशास्त्रसम्मत है, धर्मशास्त्र का भी ठीक यही कथन है—

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट्॥

वात्स्यायन की भाँति अन्य कामशास्त्रियों ने भी स्त्रियों के बिगड़ने के कारणों पर पर्याप्त विचार किया है। आचार्य पद्मश्री का कहना है कि उद्यान वीथी, नटयुद्ध, उत्सव, यात्रा तथा देवालय, आस-पास पड़ोस के घरों में और खेतों में जाकर स्त्रियाँ अश्लील बातें न तो करें और न सुनें ही क्योंकि जवानी का उन्माद स्त्री को विवेकशून्य बना देता है, दूतियों के वाग्जाल में फँसकर वे अपना कुलाचार और सतीत्व या कौमार्य खो बैठती हैं।

आचार्यों का कहना है कि जो स्त्री तरुण, सुन्दर युवक को देखकर विचलित नहीं होती और उसके इशारों को नहीं समझती है वह उत्तम श्रेणी की स्त्री है। अनंगरंग का मत है कि जो स्त्री अधिकतर अपने मायके में रहती है, कुलटा स्त्रियों के सम्पर्क में रहती है, या पति परदेश में रहता हो अथवा उसका पति वृद्ध या नपुंसक होता है तो वह स्त्री व्यभिचारिणी बन सकती है।

यहाँ इस प्रकरण के विषय-विवेचन के संबंध में इतना समझ लेना आवश्यक है कि वात्स्यायन ने अपने समाज की, अपनी कौम की मर्यादा

बिगाड़ने के लिए यह प्रकरण नहीं लिखा है। उसने परस्त्रीगमन की जो चर्चा की है, वह चिरकाल से एक प्रथा के रूप में प्रचलित है, किन्तु वात्स्यायन का अभिप्राय केवल यह है कि परदारागमन करने वालों से, दूतियों से, इज़्ज़तदार घराने दूर रहें, अपनी स्त्रियों के शील और चरित्र को बिगाड़ने के बजाय सात्त्विक, सुदृढ़ और निष्कलंक बनाने की कोशिश करते रहें।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे
आन्तःपुरिकं दाररक्षितकं षष्ठोऽध्यायः ।

वैशिकं षष्ठमधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

सहायगम्यागम्यगमनकारणचिन्ताप्रकरणम्

तिसृभिर्नायिकाभिः समागमोपाय उक्तः। वेश्याभिः सह वक्तुं तदधिकरणमुच्यते। तत्र सहायादिनिरूपणे व्यापारपूर्वकत्वादुत्तरव्यापारस्येति सहायगम्यागमनकारणचिन्तोच्यते।

पुंवेश्ययोस्तुल्येऽपि रतिफले वेश्याया एव प्रयोक्तृतया तत्राधिकारः, न पुंसः। तत्प्रतिबद्धत्वाज्जीविकायास्तदाह—

वेश्यानां पुरुषाधिगमे रतिर्वृत्तिश्च सर्गात् ॥ १ ॥

पुरुषस्याधिगमे प्राप्तौ। सतीति शेषः। रतिर्विसृष्टिसुखं वृत्तिर्जीविका अर्थोपादानात्। सर्गादिति सृष्टेः। एषैव हि सृष्टिर्यत्कामोऽर्थागमः ॥ १ ॥

वेश्याओं में धन और संभोग की प्रवृत्ति पैदायशी हुआ करती है ॥ १ ॥

रतितः प्रवर्तनं स्वाभाविकं कृत्रिममर्थार्थम् ॥ २ ॥

रतित इति तत्र द्वयोः फलयोर्यदा रतिमभिसंधाय प्रवर्तनं तदा स्वाभाविकम्। तत्र रागस्य सहजत्वात्। यदा त्वर्थमभिसंधाय तदा कृत्रिमम्। रागाभावात् ॥

उनका रति के कारण प्रवृत्त होना स्वाभाविक है तथा धन के लिए प्रवृत्त होना बनावटी है ॥ २ ॥

तदपि स्वाभाविकवद्रूपयेत् ॥ ३ ॥

तदपीति। तदपि कृत्रिमं स्वाभाविकवद्रूपयेत्प्रकाशयेत्कान्तानुवृत्त्या ॥ ३ ॥

वेश्याओं को चाहिए कि वे जहाँ बनावटी राग दिखाएँ वहाँ भी स्वाभाविक की भाँति प्रतीत हो ॥ ३ ॥

किमर्थं तत्राह—

कामपरासु हि पुंसां विश्वासयोगात् ॥ ४ ॥

कामेति। स्नेहेन मयि वर्तत इति पुंसां विश्वासयोगः सक्तियोगः न त्वर्थपरासु॥

कामासक्त स्त्री पर ही पुरुष आसक्त हुआ करते हैं ॥ ४ ॥

कामपरतां च ख्यापयन्ती नार्थरूपतामपि ख्यापयेदित्याह—

अलुब्धतां च ख्यापयेत्तस्य निदर्शनार्थम् ॥ ५ ॥

अलुब्धतामिति । स्वाभाविकत्वस्य ख्यापनार्थम् । एवं च सति सक्ताद्वित्तादानमपि स्वाभाविकं सिद्धं भवति ॥ ५ ॥

पुरुष को मात्र दिखाने भर के लिए वेश्या निर्लोभ बन जाए ॥ ५ ॥

तत्रापि विनोपायेन नाददीतेत्याह—

न चानुपायेनार्थान् साधयेदायतिसंरक्षणार्थम् ॥ ६ ॥

न चेति । उपायान्वक्ष्यति—आयतीति । आयतिः प्रभावः ॥ ६ ॥

अपना प्रभाव कायम रखने के लिए वेश्या बिना उपाय के अर्थोपार्जन न करे ॥ ६ ॥

नित्यमलङ्कारयोगिनी राजमार्गावलोकिनी दृश्यमाना न चातिविवृता तिष्ठेत् । पण्यसधर्मत्वात् ॥ ७ ॥

नित्यमिति सदालंकृता स्यात् । अन्यथा आयतिहानिः । निरुज्ज्वलत्वात् । राजमार्गावलोकिनी गम्यैर्यथा दृश्येत तथा । तत्रापि दृश्यमाना नातिविवृता प्रकटा । पण्यसधर्मत्वादिति । अतिप्रकटस्यादुर्लभत्वादित्यर्थः ॥ ७ ॥

उसे चाहिए कि वह हर समय साज सिंगार से रहे । सड़क की ओर आने-जानेवालों को देखती रहे । ऐसी जगह पर बैठे कि आने-जानेवाले लोग उसे आसानी से देख सकें किन्तु बिलकुल खुली होकर न बैठे क्योंकि वेश्यावृत्ति भी बाजार में बिकनेवाली चीज़ के समान है ॥ ७ ॥

तत्र सहायचिन्तामाह—

यैर्नायकमावर्जयेदन्याभ्यश्चावच्छिन्द्यादात्मनश्चानर्थं प्रतिकुर्यादर्थं च साधयेन्न च गम्यैः परिभूयेत तान् सहायान् कुर्यात् ॥८॥

आवर्जयेदभिमुखीकुर्यात् । अवच्छिन्द्यात्संसृष्टमाकर्षयेत् । सहायान्कुर्याद्यथोक्तकार्यसाधकानित्यर्थः ॥ ८ ॥

वेश्या उसी को अपना सहायक बनाए जो उसके नायक को उसकी ओर आकृष्ट कर सके । दूसरी नायिकाओं से वियुक्त-विरक्त करा सके, वेश्या पर आये हुए अनर्थों को दूर कर सके । उसका मतलब हल कर सके । वह सहायक ऐसा भी हो कि वेश्या से मिलने के लिए आनेवाले उसे दबा न सकें ॥ ८ ॥

ते त्वारक्षकपुरुषा धर्माधिकरणस्था दैवज्ञा विक्रान्ताः शूराः समानविद्याः कलाग्राहिणः पीठमर्दविटविदूषकमालाकारगान्धिकशौण्डिकरजकनापितभिक्षुकास्ते च ते च कार्ययोगात् ॥ ९ ॥

आरक्षका नागरकादयः। धर्माधिकरणस्थाः प्राड्विवाकादयः। उभयेऽप्यनर्थघातिनोऽर्थसाधकाः। दैवज्ञा इति। तया संयोगे ते वृद्धिर्भविष्यतीति गम्यं प्रोत्साह्य योजयन्ति। विक्रान्ताः शरीरापेक्षाः साहसिकाः। ततोऽन्ये शूराः। उभयेऽनर्थं घ्नन्त्यर्थं च साधयन्ति। समानविद्या इति। ते स्निह्यन्तोऽस्यास्त्वर्थं साधयन्ति। कलेति। ये नायिकातः कलां गृह्णन्ति ते तद्विज्ञतां प्रकाशयन्तो गम्यान्योजयन्ति। पीठमर्दादयः स्वकर्मभिरर्थकृतः परभवनप्रवेशाद्गम्यं योजयन्ति। कश्चिदेव किंचित्कार्यं साधयतीति तद्वशादन्येऽपि स्युः। सहायाः प्रियहिताभ्यामनुवर्तनीयाः न त्वभिगम्याः। तदभिगमने स्वार्थमेवैते कुर्युर्न तदर्थम् ॥ ९ ॥

वेश्या की रचा करनेवाला, शासनाधिकारी, वकील, ज्योतिषी, साहसी, शूरवीर, वेश्या के समान कलाकुशल, कलागुरु, पीठमर्द, विट, विदूषक, मालाकार, गन्धी, मद्यविक्रेता, धोबी, नाई, भिखारी तथा अन्य ऐसे ही व्यक्ति वेश्या के सहायक बन सकते हैं ॥ ९ ॥

गम्यचिन्तामाह—

केवलार्थास्त्वमी गम्याः—स्वतन्त्रः पूर्वे वयसि वर्तमानो वित्तवानपरोक्षवृत्तिरधिकरणवानकृच्छ्राधिगतवित्तः। संघर्षवान् सन्ततायः सुभगमानी श्लाघनकः पण्डकश्च पुंशब्दार्थी। समानस्पर्धी स्वभावतस्त्यागी। राजनि महामात्रे वा सिद्धो दैवप्रमाणो वित्तावमानी गुरूणां शासनातिगः सजातानां लक्ष्यभूतः सवित्त एकपुत्रो लिङ्गी प्रच्छन्नकामः शूरो वैद्यश्चेति ॥ १० ॥

केवलः प्रीतिरहितोऽर्थो येभ्यः इति रतियशसी अर्थः प्रयोजनं येभ्यः। स्वतन्त्रो गुरुष्वपरायत्तः। न वृद्धो न दरिद्रः। अपरोक्षेति। परोक्षवृत्तेस्तु यदा ततः किञ्चिदेष्यति तदा दास्यतीति कदर्थितं दानं स्यात्। अधिकरणवानध्यक्षो योऽर्थाधिकारेऽधिकृतः सोऽर्थदः। अकृच्छ्रेति। अन्वयाधिगतं निधिलाभाद्वावाप्तं धनं येन। अन्यथा कृच्छ्रप्रदः स्यात्। संघर्षवानिति स्पर्धावानन्येन गम्येन बहु ददाति। संततायः शौल्किको वार्धुषिकश्च। सुभगाभिमानीति। दुर्भगोऽपि यः सुभगमात्मानमभिमन्यते। दुर्भगत्वमात्मनोऽप्रकटयितुं नायिकामन्यतो व्यावर्तयन् बहु ददाति। श्लाघनिकः स्वश्लाघाकर्तुर्बहुप्रदः। पण्डको नपुंसकः। स पुंस्त्वख्यापनार्थं बहु ददाति। समानस्पर्धी कुलविद्यावित्तवयोरन्यतरं स्पर्धते तदपेक्षयाधिकं ददाति। स्वभावतस्त्यागी सोऽवश्यं ददाति दातृस्वभावत्वात्। सिद्धो ग्राह्यवचनः। स यदि स्वयं न ददाति राजानममात्यं वाभिधाय दापयति ममेयं प्रीतेति। दैवप्रमाणो भाग्यक्षयेण क्षीयते नोपभोगेन संपदिति मन्वानो बहु

ददाति । गुरूणामिति । तदधीनस्य पराधीनत्वादबहुदातृत्वम् । लक्ष्यभूतः प्रधान-भूतः स दाता । एकपुत्र इति । बहु प्रयच्छन्नपि न पितृभ्यां स निवार्यते नान्यत्र यासीदिति । लिङ्गी प्रव्रजितः । प्रच्छन्नकामी प्रकटं न कामयते लोको मा ज्ञासी-दिति । सकामेन बाध्यमानो बहु ददाति । शूरो यः सहायभावेनोपचरितो वित्त-वांश्च । वैद्यस्य दातृत्वाभावेऽपि व्याधितायाश्चिकित्साकारित्वाद्दातृत्वमेव ॥ १० ॥

वेश्याएँ उन्हीं व्यक्तियों से धन लेने का संबंध जोड़ती हैं, जो सामाजिक, पारिवारिक बन्धनों से मुक्त सर्वतंत्रस्वतंत्र होते हैं। एक बँधी हुई आमदनी वाले तरुण होते हैं तथा जो धन व्यय करने में स्वतंत्र होते हैं। जिसके पास विपुल पैतृक सम्पत्ति हो और जो स्वयं न कमाकर दूसरों की कमाई खर्च करता हो। इस प्रकार जो व्यक्ति अपने रूप-यौवन सम्पत्ति का अभिमान रखता हो, नपुंसक होकर भी जो अपने को वीर्यवान् तरुण कहता हो, धन देने की जिसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो, राजा और मंत्री पर भी जिसका असर हो, ज्योतिषी, आवारा, माँ-बाप का इकलौता बेटा, संन्यासी जो वेश्या से संबंध करके उसे छिपाना चाहता हो तथा शूरवीर और वैद्य, इन व्यक्तियों से वेश्या धन के लिये संबंध जोड़ती है ॥ १० ॥

प्रीतियशोऽर्थास्तु गुणतोऽधिगम्याः ॥ ११ ॥

यतो गुणवद्भ्य एव प्रीतिर्यशश्च भवति ॥ ११ ॥

किन्तु जो विशुद्ध प्रीति और यश की आकांक्षा रखती हैं वे वेश्याएँ गुणी, कलाकार व्यक्तियों से संसर्ग करती हैं ॥ ११ ॥

उभयोरपि गुणान् वैशिके वक्ष्याम इत्युक्तम्—

महाकुलीनो विद्वान्सर्वसमयज्ञः कविराख्यानकुशलो वाग्मी प्रगल्भो विविधशिल्पज्ञो वृद्धदर्शी स्थूललक्षो महोत्साहो दृढ-भक्तिरनसूयकस्त्यागी मित्रवत्सलो घटागोष्ठीप्रेक्षणकसमाजसमस्या-क्रीडनशीलो नीरुजोऽव्यङ्गशरीरः प्राणवानमद्यपो वृषो मैत्रः स्त्रीणां प्रणेता लालयिता च। न चासां वशगः स्वतन्त्रवृत्तिर-निष्ठुरोऽनीर्ष्यालुरनवशङ्की चेति नायकगुणाः ॥ १२ ॥

विद्वान्-आन्वीक्षिक्यादिज्ञः । सर्वेति-पाषण्डसमयपरिज्ञानात् । कविः संस्कृतादिकाव्यकृत् । प्रगल्भः प्रतिभानवान् । शिल्पम्-लेख्यादि । वृद्धदर्शी विद्या-वयोवृद्धानामुपासकः । स्थूललक्षः महेच्छः । महोत्साह इति—महत्त्वं च योगान्तर-महत्त्वयोगात् । यथोक्तम्—'शौर्यममर्षता शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः ।' घटा-गोष्ठ्यौ व्याख्याते । प्रेक्षणकं नटादिदर्शनम् । समाजः पानगोष्ठी । समस्याक्रीडा

संभूय क्रीडा। अव्यङ्गमहीनम्। प्राणो बलम्। अमद्यपो ब्राह्मणोऽर्थाल्लभ्यते। वृषो व्यवायक्षमः। मैत्रः करुणावान्। स्त्रीणां प्रणेता प्रणेतृत्वमुपदेशेन तासां समुदाचारेषु स्थापनम्। लालनं तासां शरीरस्थितिवैकल्यसंवरणम्। अनवशङ्की निःशङ्कमारम्भवान्। नायकगुणा इति। गुणिद्वारेण गुणाभिधानमत्र प्रकरणायत्तत्वाद् गम्यगुणा इति वक्तव्ये नायकग्रहणं सामान्यसंज्ञाप्रतिपत्त्यर्थं ततश्च पूर्वोक्तं गुणागुणान् वैशिके वक्ष्याम इति तद्व्याख्यातं भवति, स एव नायको गुणान्तरयोगात् कन्यापुनर्भूपरदारवेश्यापेक्षया यथाक्रमं वरो जारः सिद्धो गम्यश्चेति संज्ञान्तराणि लभते ॥ १२ ॥

व्यक्तियों के जिन गुणों पर वेश्याएँ रीझती हैं वे गुण ये हैं—आभिजात्यकुल, विद्वत्ता, संकेतों की अभिज्ञता, कवि होना, कथाकार होना, गाथाकार—गप-शप करने में चतुर, हस्त-शिल्प का विशेषज्ञ, विनम्र, उच्च आशय रखना, उत्साहसम्पन्नता, दृढनिष्ठा, निन्दा न करने की प्रवृत्ति, त्याग, मित्रवत्सलता, घटा, गोष्ठी, प्रेक्षणक, समाज, उत्सव, समस्याक्रीडा आदि में रुचि विशेष, स्वस्थ, छरहरा बदन, शक्तिशाली, मादक वस्तुओं से घृणा, प्रचंड वेग, दयावान, स्त्रियों के सदाचार का समर्थक और पालक, स्त्रियों के वशीभूत न होना, स्वतंत्र वृत्ति, ईर्ष्यारहित और निर्भयता ॥ १२ ॥

नायिकायाः पुना रूपयौवनलक्षणमाधुर्ययोगिनी गुणेष्वनुरक्ता न तथार्थेषु प्रीतिसंयोगशीला स्थिरमतिरेकजातीया विशेषार्थिनी नित्यमकदर्यवृत्तिर्गोष्ठीकलाप्रिया चेति नायिकागुणाः ॥१३॥

नायिकायाः पुनरिति। रूपं वर्णसंस्थानं यच्छोभनम्। लक्षणं सौभाग्यसूचकम्। माधुर्यं प्रियवाक्यत्वम्। तैर्योगः स यस्यास्तद्योगिनीति। तेषु (गुणेषु) नायकसंबन्धिष्वनुरक्ता न तथार्थेषु तदीयेषु। प्रीतिसंयोगशीलेति प्रीतिग्रहणं बाह्यसंयोगनिवृत्त्यर्थम्। रतिसंभोगशीलेत्यर्थः। स्थिरमतिः कर्तव्यमिति निश्चित्यार्थान्करोति। एकजातीयेत्येकप्रकारा न मायाविनी। विशेषार्थिनी न यत्रक्वचनवस्तुनि रमते। अकदर्यवृत्तिरात्मवृत्त्यनुरोधेनार्थसंचयः। तत्रापि न कदाचिदित्याह—नित्यमिति। गोष्ठीकलाप्रियेति गोष्ठी या क्रीडामात्रैककार्या। नायिकाया गुणा इति योज्यम्। अत्रापि पूर्ववद्द्वेश्याया इति नोक्तम् ॥ १३ ॥

अब सुन्दरी वेश्या नायिका के गुण बताते हैं:—सुन्दरी लावण्यवती, रूप, यौवन, माधुर्यसम्पन्ना, नायक के गुणों पर आसक्त, धन पर नहीं, रतियुक्त संभोग को चाहनेवाली, स्थिर बुद्धि, माया-मक्कर न करनेवाली, विशेषताओं पर रीझनेवाली, पवित्रता से गुजर करनेवाली तथा गोष्ठी और कलाओं से प्रेम करनेवाली हो ॥ १३ ॥

एतद्द्वयोरप्यसाधारणतामाह—

नायिका पुनर्बुद्धिशीलाचार आर्जवं कृतज्ञता दीर्घदूरदर्शित्वं अविसंवादिता देशकालज्ञता नागरकता दैन्यातिहासपैशुन्यपरिवादक्रोधलोभस्तम्भचापलवर्जनं पूर्वाभिभाषिता कामसूत्रकौशलं तदङ्गविद्यासु चेति साधारणगुणाः ॥ १४ ॥

बुद्धिः प्रज्ञा। शीलं सुस्वभावता, आचारः देशकालोचितः समुदाचारः, आर्जवम् अवक्रता, कृतज्ञता पूर्वोपकार-स्मरणम् दीर्घदूरदर्शितत्वम् आगामिनोर्थस्य देशान्तरगतस्य परिज्ञानम्, अविसंवादिता प्रतिज्ञायान्यथा न करणं, देशकालज्ञता, अस्मिन् देशे काले चेदं प्रयुज्यत इति । नागरकता नागरकवृत्तानुष्ठानम्। दैन्यं याच्ञा । अतिहासो नित्यप्रहसनता । पैशुन्यं परस्परसंभेदनम् । परिवादः । परदोषोदाहरणम् । चापलमधैर्यम् । वर्जनं त्यागः । तेन गुणा एवोक्ता दैन्यादयः । पूर्वाभिभाषिता यावदेव परो न संभाषते । कामसूत्रे कौशलं ज्ञानम् । अत्र न गुणिद्वारेण गुणाभिधानम् ॥ १४ ॥

अब नायक और नायिका दोनों के सामान्य गुण बताते हैं :—बुद्धि, शील, आचार, विनम्रता, कृतज्ञता, दूरदर्शिता, वाद-विवाद से दूर, स्थान और समय को पहचानना, शिष्टाचार गुणयुक्त एवं याचना, निष्प्रयोजन हास्य, चुग़लखोरी, परनिन्दा, क्रोध, लोभ, अभिमान और चंचलता आदि दुर्गुणों से रहित तथा जब तक कोई कुछ पूछे नहीं तब तक बोलना नहीं और कामशास्त्र के कौशलों एवं कामशास्त्र की अंग-विद्याओं में पूरी जानकारी होना—नायक-नायिका के साधारण गुण हैं ॥ १४ ॥

गुणविपर्यये दोषाः ॥ १५ ॥

साधारणादन्यतरत्वादन्यलिङ्गनिदर्शनेन हि गुणाभिधाने साधारणानां विपर्यये दोषा दौष्कुलेयत्वादयो वैरूप्यादयो दौर्बुद्ध्यादयश्च । तद्योगान्नायकोऽप्यनायक इत्युच्यते । सत्स्वपि गुणेषु दोषान्तरयोगादगम्या इति ॥ १५ ॥

उपर्युक्त गुणों से विरुद्ध बातें होने पर वही नायक-नायिका के दोष हो जाते हैं ॥ १५ ॥

अगम्यचिन्तामाह—

क्षयी रोगी कृमिशकृद्वायसास्यः प्रियकलत्रः परुषवाक्कदर्यो निर्घृणो गुरुजनपरित्यक्तः स्तेनो दम्भशीलो मूलकर्मणि प्रसक्तो मानापमानयोरनपेक्षी द्वेष्यैरप्यर्थहार्यो विलज्ज इत्यगम्याः॥

क्षयो राजयक्ष्मा। रोगशब्दः सामान्यवाच्यपि लोकप्रसिद्ध्या कुष्ठवाची। द्वयोरपि सांक्रामिकत्वात्। कृमिशकृदिति पुरीषमक्षिकेति प्रसिद्धा। सा हि यस्मिन्व्रणे पुरीषं मुञ्चति तत्र कृमिर्भवति तद्वच्छुक्रसंसर्गाद्या हि गर्भमाधत्ते सा स्त्री जरां धत्ते। वायसास्यो दुर्गन्धमुखः। यद्वा काकः शुच्यशुचौ मुखं निक्षिपति एवं निर्विचारं स्त्रीः कामयते स तासामनभिगमनीयः स्यात्। प्रियकलत्र इति तस्यान्यत्रानासक्तेः नाप्यर्थदः। परुषवाक् असह्यवाक्। कदर्यो य आत्मानं भृत्यांश्च संपीड्यार्थसंचकः। निर्घृणो निर्दयः। उभावप्यदातारावकार्यकरौ च। मूलकर्म कार्मणम् द्वेष्यैरप्यर्थहार्यो यो द्वेष्यैरप्यर्थलोभात्संधत्ते स लुब्धः कथं ददाति ॥ १६ ॥

क्षयरोगी, कोढ़ी, कृमिरोगी, जिसके मुँह से दुर्गन्ध निकलती हो, पत्नीव्रत, कटुभाषी, दुराचारी, निर्दयी, माता-पिता द्वारा बहिष्कृत, चोर, दम्भी, जादूगर, मान अपमान की परवाह न करनेवाला, लोभवश शत्रुओं से मिल जानेवाला और निर्लज्ज—इस प्रकार के व्यक्तियों से वेश्या संभोग न कराए ॥ १६ ॥

यैः कारणैरभिगमनं तत्र चिन्तामाह—

रागो भयमर्थः संघर्षो वैरनिर्यातनं जिज्ञासा पक्षः खेदो धर्मो यशोऽनुकम्पा सुहृद्वाक्यं ह्रीः प्रियसादृश्यं धन्यता रागापनयः साजात्यं साहवेश्यं सातत्यमायतिश्च गमनकारणानि भवन्तीत्याचार्याः ॥ १७ ॥

राग इति क्वचित्स्वाभाविक उत्पन्नः। भयं व्यापादनभयम्। अर्थो भूम्यादिलाभः। संघर्षः स्पर्धा। यथा देवदत्ताया अनङ्गसेनयेति। ततो हि समाकृष्य स्पर्धया मूलदेवः कामितः। वैरं निर्यातयन्ती क्वचिदभिगच्छति। जिज्ञासेति विदग्धोऽयमिति श्रूयते तत्किं तथैवेति। पक्ष आश्रयः यमाश्रित्य कार्यं साधयति। खेदः परिश्रमः। संप्रयोगो हि जीविका। तत्र चाकृतखेदा सहसा क्वचित्क्वचित्प्रवृत्ता विमर्दं न सहते। धर्मोऽकिंचनविद्वद्ब्राह्मणाभिगमनात्। यशः कस्यांचित्तिथौ कामसत्रप्रदानात्। अनुकम्पा अकामयमानायां त्वयि म्रियेऽहमित्येवंवादिनि दया भवति। सुहृद्वाक्यं मम प्रीतकः समायातस्तेन सहाद्य शयितव्यमिति। ह्रीर्यो गुरुस्थानीयः स लज्जयाभिगम्यते। प्रियसादृश्यं मत्प्रियस्यायं सदृश इति। धन्यतेति पुण्यवानयं यतो धनवान्रूपवांश्च। रागापनयः शुश्रूषातोरुद्रिक्तस्य कंचिदभिगम्यापनयनम्। साजात्यं सजातिरयमिति विप्रतिपन्नायाः कुलयोषितोऽभिगमनकारणमेतत्। साहवेश्यं सहवेशकोऽयमिति। आयतिः प्रभावः प्रभवन्तमधिगम्य ॥ १७ ॥

राग, भय, अर्थ, संघर्ष, वैर का बदला चुकाने की भावना, पक्षपात, खेद, धर्म, यश, अनुकम्पा, प्रियवाक्य, लज्जा, प्रेमी के अनुरूप होना, धनी, विगत-राग, सजातीयता, साथ रहना और प्रभाव—ये सब समागम के कारण हैं ॥

अर्थोऽनर्थप्रतीघातः प्रीतिश्चेति वात्स्यायनः ॥ १८ ॥

अत्राह शास्त्रकारः—परिगणनमेतत्प्रदर्शनं वा । तत्र परिगणनं चिकित्सा मैत्री शोकापनयः कलागम इत्येवमादीनापि संभवात् । प्रदर्शने चार्थोऽनर्थप्र-तीघातः प्रीतिरिति तावद्वक्तव्यम् सर्वेषामत्रैवान्तर्भावः । संघर्षजिज्ञासापक्षखेद-धर्मयशःसुहृद्वाक्यरागापनया अर्थे । भयं वैरमनुकम्पा अनर्थप्रतीघाते । शेषाः प्रीतौ । ह्रीरपि प्रीत्यंशमेव स्पृशति ॥ १८ ॥

वात्स्यायन का मत है कि अर्थ और अनर्थ की हानि एवं प्रीति ही समा-गम के कारण होते हैं ॥ १८ ॥

अर्थस्तु प्रीत्या न बाधितः । अस्य प्राधान्यात् ॥ १९ ॥

अर्थस्त्विति अर्थप्रीत्योर्यथास्वं विषयेषु युगपत्प्रत्युपस्थितेः प्रीतिविषयं त्यक्त्वार्थविषयमधिगच्छेदित्यर्थः ॥ १९ ॥

जहाँ धन और प्रेम दोनों उपस्थित हों वहाँ प्रीति को छोड़कर धन का विषय अपनाना चाहिए ॥ १९ ॥

भयादिषु तु गुरुलाघवं परीक्ष्यमिति सहायगम्यागम्य-(गमन) कारणचिन्ता ॥ २० ॥

गुरुलाघवमग्रे वक्ष्यति । इति सहायगम्यागम्यगमनकारणचिन्ता पञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ २० ॥

भय आदि जो गमन के कारण पहले सूत्र में बताए गए हैं उनमें गुरुता और लाघव की परीक्षा कर लेनी चाहिए । सहाय, गम्य, अगम्य और गमन के कारणों पर विचार समाप्त हुआ ॥ २० ॥

एवं सहायं निरूप्य गम्यमभिमुखीकुर्यादिति गम्योपावर्तनमुच्यते—

उपमन्त्रितापि गम्येन सहसा न प्रतिजानीयात् । पुरुषाणां सुलभावमानित्वात् ॥ २१ ॥

स्वयमुपावर्तितेन नायकेन प्रार्थिता न सहसा गच्छेत् । सुलभावमानित्वात्पुनः पुनरुपमन्त्रिता गच्छेदिति ॥ २१ ॥

गम्योपावर्तन प्रकरण

समागम करने योग्य पुरुष द्वारा समागम के लिए आमंत्रित करने पर भी सहसा उससे समागम नहीं करना चाहिए । क्योंकि पुरुषों की यह प्रवृत्ति होती

है कि वे सुलभ वस्तु को ठुकराकर दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति का प्रयत्न किया करते हैं ॥ २१ ॥

भावजिज्ञासार्थं परिचारकमुखान्संवाहकगायनवैहासिकान्गम्ये तद्भक्तान्वा प्रणिदध्यात् ॥ २२ ॥

भावजिज्ञासार्थमिति । वैहासिको विदूषकः । तस्य गम्यस्य । भक्तान्सेवापरान् । प्रणिदध्यान्नियुञ्जीत ॥ २२ ॥

नायक के भावों की परीक्षा करने के लिए वेश्या अपने पैर दबानेवाले नौकर, गाना सुनानेवाले अथवा विदूषक जैसे प्रमुख सेवकों को नियुक्त करे ।

तदभावे पीठमर्दादीन् । तेभ्यो नायकस्य शौचाशौचं रागापरागौ सक्तासक्ततां दानादाने च विद्यात् ॥ २३ ॥

पीठमर्दादिशब्दाद्विटमालाकारगान्धिकशौण्डिकादयः सहायाः । भावोऽभिप्रायः । तस्मिन्ननेकप्रकारेऽपि प्राधान्याच्छौचादिभावेष्वेव येनायं वेत्ति जिज्ञासनमिति । नायकस्येति गम्यसंज्ञकस्य । शुचिसमुदाचारान् शौचं भावम् । तद्विपरीतमशौचम् । यतः कश्चित्स्वयं ममोपरि कष्टं प्रयुंक्ते प्रयोजयति नोभयं वेति । रागः संयोगेच्छा तद्विपरीतमपरागम् । शक्ततां वक्ष्यमाणलक्षणां तद्विपरीतामशक्तताम् । दानं दातृत्वं तद्विपरीतमदानम् ॥ २३ ॥

उपर्युक्त विश्वस्त सेवकों के अभाव में पीठमर्द आदि को नियुक्त करे, उसके द्वारा अपने प्रति नायक के शौच, अशौच, राग-विराग, शक्तता-अशक्तता, दान-अदान आदि बातों को समझ ले ॥ २३ ॥

संभावितेन च सह विटपुरोगां प्रीतिं योजयेत् ॥ २४ ॥

संभावितेन चेति भावान् ज्ञात्वा प्रवर्तते । विटपुरोगामिति विटो हि जीर्णनागरकवृत्तः । तेन पूर्वप्रणिहितेन प्रीतिं योजयेत् ॥ २४ ॥

जिसमें अपनी चाह की बातों की संभावना हो उसके साथ विट को नियुक्त कर देना चाहिए ॥ २४ ॥

योजितायां विधिमाह—

लावककुक्कुटमेषयुद्धशुकशारिकाप्रलापनप्रेक्षणककलाव्यपदेशेन पीठमर्दो नायकं तस्या उदवसितमानयेत् ॥ २५ ॥

लावकादीनां युद्धं शुकादिप्रलापनम् । प्रेक्षणकं नटादिदर्शनम् । कला—गीतादिका । उदवसितं गृहम् ॥ २५ ॥

वेश्या द्वारा नियुक्त पीठमर्द को चाहिए कि वह लवा, मुर्गा, मेढ़ा की लड़ाई दिखाने के बहाने अथवा तोता-मैना की बातें सुनने के लिए, कोई

तमाशा देखने के लिए एवं संगीत, नृत्य आदि कलाएँ दिखाने के बहाने नायक को वेश्या के घर ले जाए ॥ २५ ॥

तां वा तस्य ॥ २६ ॥

तां वेति नायिकां वा, तस्योदवसितम् ॥ २६ ॥

अथवा वेश्या को ही नायक के घर ले जाए ॥ २६ ॥

आगतस्य प्रीतिकौतुकजननं किंचिद्द्रव्यजातं स्वयमिदम-साधारणोपभोग्यमिति प्रीतिदायं दद्यात् ॥ २७ ॥

यत्प्रीतिं जनयति तस्मै हितत्वात् । कौतुकं चादृष्टपूर्वत्वात् । द्रव्यमेव द्रव्य-जातम् । स्वयमित्यनुरागख्यापनार्थं नान्येन । असाधारणेति भवत एवेदमुपभो-गार्हं नान्यस्येत्युक्त्वा देयम्, प्रीतिदायं यत्पुनर्नादीयते ॥ २७ ॥

यदि नायक वेश्या के घर आये तो उसे नायिका प्रेमोपहार की ऐसी अद्भुत वस्तुएँ प्रदान करे जो देखने में आश्चर्यजनक कुतूहल उत्पन्न करने वाली हों ॥ २७ ॥

यत्र च रमते तया गोष्ठ्यैनमुपचारैश्च रञ्जयेत् ॥ २८ ॥

यत्र चेति काव्यगोष्ठ्यां कलागोष्ठ्यां वा । उपचारैः स्रक्ताम्बूलादिभिः ॥२८॥

और जिस स्थान पर नायक का मन बहलता हो उसी स्थान पर वेश्या उचित साधनों, उपायों द्वारा उसका मनोरंजन करे ॥ २८ ॥

प्रत्यवच्छेदनार्थं विधिमाह—

गते च सपरिहासप्रलापां सोपायनां परिचारिकामभीक्ष्णं प्रेषयेत् ॥ २९ ॥

सपरिहासेति सक्रीडप्रकृष्टालापा हि प्रीतिं वर्धयति । सोपायनामभिज्ञानार्थं सह ढौकनिकया प्रेषयेत् । तत्राप्यभीक्ष्णम् अन्तरा नायकप्रवेशो माभूदिति ॥२९॥

वेश्या के घर से जब नायक चला जाय तो वह वेश्या मुस्कराकर मधुर बोलनेवाली अपनी परिचारिका के हाथ कुछ प्रेमोपहार देकर नायक के पास भेजे । इस प्रकार उपहार भेजते रहने का क्रम तब तक जारी रखे जब तक नायक फिर से उसके घर न आ जाए ॥ २९ ॥

सपीठमर्दायाश्च कारणापदेशेन स्वयं गमनमिति गम्यो-पावर्तनम् ॥ ३० ॥

सपीठमर्दायाश्चेति । पीठमर्दो हि मन्त्री संप्रयोगस्य घटयिता । कारणापदेशेन गमनमिति सहसा गमने हि हेया स्यात् ॥ ३० ॥

आवश्यकता पड़ने पर पीठमर्द को साथ लेकर वेश्या स्वयं नायक के घर जाए। नायक को अपनी तरफ झुकाने का प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ३० ॥

उक्तमनुक्तं श्लोकैराह—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

ताम्बूलानि स्रजश्चैव संस्कृतं चानुलेपनम्।
आगतस्याहरेत्प्रीत्या कलागोष्ठीश्च योजयेत् ॥ ३१ ॥

संस्कृतमिति सर्वत्र योज्यम्। कलागोष्ठीश्चेति चशब्दात्काव्यगोष्ठी च ॥ ३१ ॥

इस विषय में प्राचीन श्लोक हैं—सुसंस्कृत पान, सुसंस्कृत माला, सुसंस्कृत चन्दन, सुसंस्कृत इत्र आदि आए हुए नायक को प्रीतिपूर्वक प्रदान करे एवं कलागोष्ठियों की योजना करे ॥ ३१ ॥

द्रव्याणि प्रणये दद्यात्कुर्याच्च परिवर्तनम्।
संप्रयोगस्य चाकूतं निजेनैव प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥

द्रव्याणीति प्रीतिकौतुकजनकानि। परिवर्तनमुत्तरीयांशुकानामंगुलीयानाम्। तत्रापि प्रणये सति। अनुत्पन्नप्रणयाया दानं परिवर्तनं च कपटं ज्ञायते। आकूतमभिप्रायं। प्रयोजयेत्प्रकाशयेत् ॥ ३२ ॥

प्रेम बढ़ाने के लिए धन का आदान-प्रदान करे। संभोग के गुप्त इशारों को वेश्या स्वयं प्रकट करे ॥ ३२ ॥

यस्तु कथंचिदागत्यागत्य गच्छति। यत्र योज्यमानं लाघवं जनयति तत्र कथं योजयेदित्याह—

प्रीतिदायैरुपन्यासैरुपचारैश्च केवलैः।
गम्येन सह संसृष्टा रञ्जयेत्तं ततः परम् ॥ ३३ ॥

प्रीतिदायैरिति। प्रीत्यर्थं यानि दीयन्ते। उपन्यासैः पीठमर्दादिकृतैः। अत्रैव किं न सुप्यत इति। केवलैः शुद्धैः ये संप्रयोगमेव सूचयन्ति। संसृष्टा संप्रयुक्ता। ततः परमित्यनन्तरप्रकरणानुसंधानम्। इति गम्योपावर्तनमेकपञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृत्रसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणे सहायगम्यागम्यचिन्ता गमनकारणं गम्योपावर्तनं प्रथमोऽध्यायः।

प्रेमोपहारों से, पीठमर्द आदि की बातों से, रति, रागसूचक भावों से प्रेमी को अनुरक्त कर फिर उसके साथ संभोग करे ॥ ३३ ॥

पिछले प्रकरणों में भार्या, परस्त्री, और पुनर्भू—इन तीन प्रकार की नायिकाओं से समागम करने के उपाय बताये जा चुके हैं। अब वेश्याओं के साथ समागम करने के उपाय इस अधिकरण में विस्तार से बताये जायँगे। वात्स्यायन ने इस वेश्याओं के समागम के उपाय बताने तथा उस पर पूर्वापर विचार करने से पूर्व वेश्याओं के सहायक एवं उनसे मिलने योग्य, न मिलने योग्य तथा समागम के कारणों पर विचार किया है। क्योंकि यदि इनका निरूपण नहीं होता तो वेश्याओं के सम्बन्ध में जो भी विचार और निर्णय किया जाए वह बेबुनियाद, निराधार रहता है। इस बुनियादी विचार के कारण ही प्रस्तुत प्रकरण का नाम उन्होंने 'सहायगम्यागम्यगमन कारणचिन्ता' रखा है।

स्त्री और पुरुष का जब परस्पर समागम होता है तब रति सुख दोनों को ही होता है, किन्तु फिर भी क्या कारण है कि वेश्याएँ ही पुरुषों से समागम प्राप्त करने के उपाय करती हैं, हर प्रकार के सम्मोहन के जाल बिछाती हैं। वात्स्यायन इसे वेश्या का जन्मसिद्ध अधिकार मानकर कहता है कि यही होना चाहिए क्योंकि वेश्याओं की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही है। वह स्वभाव से ही रति और जीविका के लिए पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट किया करती हैं, इस विषय में पुरुषों को अपनी ओर से प्रेरित न होना चाहिए।

वेश्याएँ जब किसी पुरुष पर आसक्ति प्रकट करती हैं तो उनकी उस आसक्ति में यदि केवल रति की भावना रहती है तो उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति समझनी चाहिए और यदि धन के लोभ से प्रवृत्त होती हैं तो उनकी वह आसक्ति कृत्रिम होती है, किन्तु उनकी यह कृत्रिम प्रवृत्ति भी देखने में किसी कदर अस्वाभाविक नहीं जान पड़ती है। धन लेने के लिए वे पुरुष को अपने हाव-भाव, कटाक्षों से इस प्रकार विमोहित बना लेती हैं कि वह समझ ही नहीं सकता कि उसका उस पर जो प्रेम है वह कोरा बनावटी है। वेश्याएँ किसी पुरुष को जब फँसाना चाहती हैं तो पहले वे अपने मददगारों से मदद लेती हैं, उनके ये मददगार जिन्हें दलाल कहा जाता है, वेश्या की प्रशंसा के पुल बाँधकर पुरुषों को आकृष्ट किया करते हैं।

वेश्या अपने जन्मजात संस्कारों और स्वभावों के वशीभूत होकर केवल दो प्रकार के मनुष्यों से संभोग कराती हैं। एक तो वे होते हैं जिनके पास संपत्ति होती है, उसका धन लेने की इच्छा से वेश्या बनावटी प्रेम रखती हुई उससे समागम कराती है। दूसरे प्रकार के मनुष्य वे हैं जिनसे वेश्या रति-सुख और यश प्राप्त करने की कामना रखकर स्वाभाविक प्रेम करती है।

केवल धन प्राप्त करने के लिए वेश्या जिनसे समागम करती है वे लोग धनी होने के साथ ही कुलमर्यादा, जातिमर्यादा और समाज की मर्यादा का उल्लंघन कर स्वेच्छाचारी ही होते हैं। वे हर प्रकार की चेष्टाओं द्वारा वेश्या को धन देने का प्रयत्न करते हैं, उसे सर्वथा खुश देखना चाहते हैं। वेश्या के कृत्रिम भाव को न जानते हुए ऐसे व्यक्ति उस पर न्यौछावर हो जाते हैं। लेकिन वेश्या जब उन्हें निःसत्व समझ लेती है तो तुरन्त ठुकरा देती है।

धन के कारण वेश्या जिससे प्रेम करती है उसके उस प्रेम में राग नहीं बनावट रहती है। उसका रागजनित प्रेम तो केवल गुणों के कारण ही होता है। रूप-यौवनसम्पन्न होते हुए कोई तरुण जब अनेक कलाओं अथवा एक ही कला का विशेषज्ञ होता है तो वेश्या नायिका उसके लिए आत्मसमर्पण कर देती है।

वात्स्यायन का सुझाव है कि जो पुरुष तपेदिक, कृमि, पायोरिया आदि रोगों से आक्रान्त हो वेश्या उससे हरगिज़ समागम न कराये भले ही वह विपुल वैभवशाली या चौंसठ कलाओं का ज्ञाता हो। संक्रामक रोगी के साथ संभोग करना उसके रोग को अपने ऊपर आने का निमंत्रण देना है। तपेदिक-ग्रस्त व्यक्ति से यदि स्त्री संभोग कराती है, तो वह भी उसी मौत मरती है और यदि उस हालत में गर्भवती होती है तो उसकी सन्तान को भी वही रोग धर दबाता है। कृमि एक प्रकार के कीड़े हैं जो पेट में पड़ जाते हैं। इन्हें पाख़ाना के कीड़ा या चुन्ना अथवा केचुवा भी कहा जाता है। कृमि रोगी के साथ संभोग कराने से स्त्री का यौवन बहुत जल्दी ढल जाता है, उससे उत्पन्न सन्तान कमजोर, लीवर रोग से आक्रान्त रहती है। जिसका मुँह गन्धाता हो उससे भी सहवास नहीं करना चाहिए। उसकी साँस के साथ कीटाणु उड़कर स्त्री में भी प्रविष्ट हो जाते हैं। पायोरिया रोग से ही अक्सर मुँह में बदबू रहती है। इस रोग से मनुष्य का हाज़मा बिगड़ जाता है। मुँह की मवाद लार के साथ पेट में जाकर आँतों को सड़ा देती है। इसलिए ऐसे भयंकर रोग से भी बचने के लिए स्त्री को उस पुरुष से समागम न कराना चाहिए जो मुख रोग से पीड़ित हो।

रोगी व्यक्तियों के अतिरिक्त वात्स्यायन कुछ और ऐसे व्यक्ति बताता है जो समागम करने योग्य नहीं होते। एक तो वेश्या उस व्यक्ति से दूर रहे जो पत्नीव्रत पालन करता हो। क्योंकि वह पराई स्त्रियों को माता-बहिन समझता है। वेश्या यदि उसे फँसाने के लिए, उसे अपने व्रत से च्युत करने के लिये जाल बिछाती है तो उसका यह प्रयत्न धार्मिक और सामाजिक द्रोह के साथ मानवता की हिंसा है। इसके साथ ही जो कटुभाषी, निर्दयी, अपने नौकरों को पीड़ित करके धन संचित करता हो तथा टोटका, टोना और जादू

करनेवाला हो—वेश्या ऐसे लोगों के समागम से दूर रहे। क्योंकि इन पर उसका सहज राग उत्पन्न नहीं हो सकता और धन के लिए यदि वह अपना प्रेम दिखाती है तो ऊसर में बीज बोना है। ऐसे व्यक्तियों से धन की भी आशा नहीं रखनी चाहिए।

वात्स्यायन का मत है कि अर्थ, अनर्थ की हानि और प्रीति—यही तीन मुख्य कारण वेश्यागमन के हैं।

इस प्रकरण में वात्स्यायन ने दो बातें मुख्यरूप से कही हैं—एक तो यह कि परपुरुष को फँसाना, उससे समागम कराना वेश्याओं का पैदायशी गुण है, दूसरी बात यह कि वेश्याएँ दो कारणों से किसी पर अनुरक्त होती हैं। एक तो धन के लोभ से दूसरे रतिभाव से।

परपुरुष से समागम कराना वेश्याओं का पैदायशी गुण है—वात्स्यायन के इस कथन पर चित्त विकलन द्वारा यदि विचार किया जाए तो प्रतीत होता है कि मानवचित्त में कुछ स्वाभाविक और प्राग्भवीय वृत्तियाँ पायी जाती हैं। यही वृत्तियाँ सभी प्रकार के विचारों एवं क्रियाओं की मूलभूत शक्तियाँ हैं। इन्हीं के द्वारा मनुष्य की इच्छाओं—वासनाओं का विकास होता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष में यही मूलभूत शक्तियाँ सभी क्रियाओं और लक्ष्यों को निर्धारित करती हैं। इन्हीं से सारी मानसिक क्रियाएँ पालित और चालित हुआ करती हैं। कदाचित् इन मूल प्रवृत्तियों को उनकी सशक्त उत्तेजनाओं से अलग कर दिया जाए तो मनुष्य की सारी हरकतें समाप्त हो जाती हैं। वस्तुतः इन मूल-प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति ही 'वासना' कहलाती है।

भूख और काम, अशना और पिपासा तथा मैथुन और तृष्णा को ही मुख्य वासना माना जाता है। कुछ आचार्यों का मत है कि वासनाएँ अनेक हैं और वे चित्त की ऐसी रीतियाँ हैं जो पशुओं और मनुष्यों में एक प्रकार से अभिव्यक्त हुआ करती हैं, और प्राणिमात्र उनका प्रतिवेदन भी अनजाने एक ही प्रकार से करता है। ये वृत्तियाँ प्राग्भवीय हैं और वंशानुक्रम से चला करती हैं। तब प्रश्न यह उठता है कि वात्स्यायन ने केवल वेश्याओं के लिए ही क्यों कहा है कि वे केवल संभोग के लिए पैदा हुआ करती हैं।

यदि हम सिद्धान्त पक्ष को छोड़कर व्यवहार पक्ष में आते हैं तो वात्स्यायन का कथन अनर्गल नहीं प्रतीत होता है। सिद्धान्त यह कहता है कि वासनाएँ प्राग्भवीय हैं और वंशपरम्परागत चला करती हैं। इस सिद्धान्त के आधार पर वेश्याओं का समाज व्यावहारिक दृष्टि से संभोग का पेशा ही अपने जीवन का लक्ष्य मानता है, वेश्याओं की लड़कियाँ वंशपरंपरागत वेश्यावृत्ति ही अपनाती हैं और उनके भाई, बाप, भँडुये, साजिन्दे उनके सहायक बनते हैं।

वात्स्यायन के दूसरे कथन की कि वेश्यायें धन के लोभ से अथवा रति के लोभ से पुरुषों को आकृष्ट कर उनसे संभोग कराती हैं—व्याख्या करने से पूर्व हमें वासनाओं का स्तर समझ लेना चाहिए। वासनाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं और प्रत्येक वासना का अध्ययन भी भिन्न दृष्टिकोण से किया जा सकता है क्योंकि हर वासना में कुछ विशिष्ट अंश पाये जाते हैं। वासना की मूल प्रवृत्ति की चार अवस्थाएँ हुआ करती हैं—(१) वेग, (२) उद्देश्य, (३) विषय और (४) आश्रय स्थान। हर वासना का सार ही वेग कहलाता है। इस वेग की तीव्रता और कोमलता की पहचान सावधानी से करनी चाहिए।

प्रत्येक वासना का उद्देश्य सदा निजी रहता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वासना के अनेक रूप परिवर्तित हुआ करते हैं। कुछ वासनाएँ किसी मात्रा में तृप्त भी हुआ करती हैं और कुछ निरुद्ध हो जाया करती हैं।

जिस वस्तु के द्वारा वासना अपनी तृप्ति पूरी करती है उसे विषय कहते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वासना अपनी तृप्ति के मार्ग को छोड़कर अन्य विषयों को ग्रहण कर लेती है। किन्तु जिस विषय के संसर्ग से तृप्ति मिलती है उसे वासना-विषय कहा जाता है। वेश्याएँ बनाव-शृङ्गार करके शीशे के सामने खड़ी होकर अपने जिस अंग को विशेष रुचि और सावधानी से देखती और सँवारती हैं वही अंग उनकी वासना का विषय होता है।

शरीर के जिस स्थान पर उत्तेजना लगने से वासना की अभिव्यक्ति होती है उसे वासना का आश्रय कहा जाता है। यह सामान्य नियम है कि वासना सदैव अपने से भिन्न जाति के सामने अभिव्यक्त हुआ करती है। स्त्री को देखकर पुरुष के हृदय में वासना की अभिव्यक्ति होती है और पुरुष को देखकर स्त्री के हृदय में मिथुन-वासना पैदा होती है। वात्स्यायन ने भी इसे स्वीकार किया है कि रति—संभोग में जो आनन्द वेश्या को होता है वही पुरुष को। किन्तु पुरुष को आकृष्ट करने तथा उससे संभोग कराने के लिए वेश्या को ही उपाय करने चाहिए।

वात्स्यायन के इस कथन का निष्कर्ष यही निकलता है कि वेश्या का यह पेशा है, धन पैदा करना उसका प्रधान लक्ष्य है इसलिए उसे स्वयं प्रवृत्त होना चाहिए। किन्तु जहाँ तक स्वभाव और प्रवृत्ति का प्रश्न है वहाँ यह कहना पड़ता है कि वह दुरतिक्रम है। वेश्या के भी मानवीय हृदय होता है, वह भी रति और राग कर सकती है किन्तु सर्वत्र नहीं, किसी एक पर वह अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकती है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणे सहायगम्या-
गम्यचिन्ता गमनकारणं गम्योपावर्तनं नाम प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः

कान्तानुवृत्तप्रकरणम्

उक्तमपि संबन्धं स्पष्टीकुर्वन्नाह—

संयुक्ता नायकेन तद्रञ्जनार्थमेकचारिणीवृत्तमनुतिष्ठेत् ॥ १ ॥

एकचारिणीवृत्तमनुतिष्ठेद्यद्येकचारिणी स्यात्। तथा चोक्तं प्राक्—'वेश्या चाप्येकचारिणी' इति। यदा तु नैकचारिणी तदा कान्तानुवृत्तमुच्यते। संप्रयुक्तस्य गम्यस्य कान्तत्वात्। तच्च संक्षेपेण विस्तरेण च॥ १ ॥

वेश्या को चाहिए कि जिस नायक से वह संयुक्त हो जाए उसी की बन कर वह एकचारिणी वृत्त का अनुसरण करे ॥ १ ॥

तत्र पूर्वमुद्घाटितबुद्धीनामाह—

रञ्जयेन्न तु सज्जेत सक्तवच्च विचेष्टेतेति संक्षेपोक्तिः ॥ २ ॥

रञ्जयेदिति। सक्तमिवात्मानं प्रकाशयेदित्यर्थः, विस्तरोक्तावपि प्रथमं परतन्त्रा स्याद्, व्याधींश्चात्मनः प्रकाशयेत् ॥ २ ॥

वेश्या को चाहिए कि नायक पर अनुरक्त न होते हुए भी उसके साथ आसक्त का-सा व्यवहार करे। यही संक्षिप्त वेश्याचरित्र है ॥ २ ॥

माभूत्कार्यहानिरित्याह—

मातरि च क्रूरशीलायामर्थपरायां चायत्ता स्यात् ॥ ३ ॥

मातरीति। आयत्ता स्यान्न वचनमतिक्रमेदित्यर्थः ॥ ३ ॥

क्रूर स्वभाव की अत्यन्त लालची माँ के अधीन वेश्या को रहना चाहिए॥

तदभावे मातृकायाम् ॥ ४ ॥

मातृकायां कृतकमातरि ॥ ४ ॥

सगी माँ के न रहने पर मानी हुई माँ के अधीन रहे ॥ ४ ॥

सा तु गम्येन नातिप्रीयेत ॥ ५ ॥

सा त्विति सत्या कृतका वा। नातिप्रीयेत नातिस्निह्येत। अयमप्युद्देशः। यदि प्रीयेत कार्यमेव हन्यादित्यर्थः ॥ ५ ॥

चाहे सगी माँ हो या मानी गई माँ हो—दोनों वेश्यापुत्री पर आसक्त व्यक्ति के साथ अत्यन्त प्रेम नहीं प्रकट किया करतीं। अति प्रेम दिखाने से कार्यहानि होती है ॥ ५ ॥

अप्रीयमाणाया व्यापारमाह—

प्रसह्य च दुहितरमानयेत् ॥ ६ ॥

प्रसह्य च दुहितरमानयेदिति । गम्यमभिभूय कार्यवशाद्गम्यान्तरं नयेदित्यर्थः॥

माँ को चाहिए कि मिलनेवाले के साथ देर तक बैठी हुई लड़की को जबर्दस्ती ले आए ॥ ६ ॥

तत्र तु नायिकायाः संततमरतिर्निर्वेदो व्रीडा भयं च ॥७॥

तत्र त्विति तस्मिन्गमने सति । नायिकायाः कालविशुद्धयर्थमाह—संततमिति । अरतिरसुखं रम्येऽपि स्यात् । निर्वेदो निर्विण्णता । व्रीडा कथं मया द्रष्टव्य इति । भयं किं मयि प्रतिविधास्यतीति ॥ ७ ॥

माँ के द्वारा ऐसा व्यवहार किए जाने पर वेश्या अपने प्रेमी के सामने से जाने में अरुचि, भय और लज्जा प्रदर्शित करे ॥ ७ ॥

न त्वेव शासनातिवृत्तिः ॥ ८ ॥

न त्वेवेति । काममरत्यादयः स्युर्न पुनराज्ञामतिक्रमेदित्यर्थः ॥ ८ ॥

अरुचि, भय, लज्जा प्रदर्शित करते हुए भी माँ के आदेश का उल्लंघन न करे॥

व्याधिं चैकमनिमित्तमजुगुप्सितमचक्षुर्ग्राह्यमनित्यं च ख्यापयेत् ॥ ९ ॥

व्याधिं चेति । किंविशिष्टमित्याह—एकमित्यनन्यं ख्यापयेत् । कृतको ज्ञायते । अनिमित्तमाकस्मिकम् । अनिन्द्यमजुगुप्सितम् । निन्दिते ह्यनभिगमनीया स्यात् । अचक्षुरिति । इन्द्रियोपलक्षणार्थं चक्षुर्ग्रहणम् । शिरोर्तिमुदरशूलं च । अनित्यमस्थायिनम् ॥ ९ ॥

प्रेमी के पास से उठने के लिए वेश्या को चाहिए कि कोई एक ऐसी व्याधि का बहाना बना दे जो निन्दित न हो, देखी न जा सके और अकस्मात् हो जानेवाली तथा स्थायी न रहनेवाली हो ॥ ९ ॥

अस्मिन्ख्यापिते किं फलमित्याह—

सति कारणे तदपदेशं च नायकानभिगमनम् ॥ १० ॥

सतीति । कारणे कारणान्तराभिगमने । तदपदेशं व्याध्यपदेशम् ॥ १० ॥

जब प्रेमी आया हो और उससे मिलने का कारण भी उपस्थित हो फिर भी यदि न मिलना हो तो कोई बहाना कर देना चाहिए ॥ १० ॥

अनभिगमने च व्याधिपीडाख्यापनार्थं विधिमाह—

निर्माल्यस्य तु नायिका चेटिकां प्रेषयेत्ताम्बूलस्य च ॥११॥

निर्माल्यस्य चेति कृते इत्यध्याहार्यम् । नायिकेत्युक्ते न माता चेटिकां प्रेषयेत् । अनेनापि सुखं स्थास्यामीत्युक्त्वा ताम्बूलस्योपयुक्तस्य वा कृते ॥ ११ ॥

न मिलने के बहाने का दूसरा ढंग यह है कि प्रेमी के आ जाने पर वेश्या खुद न जाकर नौकरानी से पान, इलायची आदि भेज दे ॥ ११ ॥

व्यवाये तदुपचारेषु विस्मयः ॥ १२ ॥

व्यवाये मैथुने नायकसंबन्धिनि । तदुपचारेषु मैथुनोपचारेषु सरकताम्बूलादिषु विस्मयो न तु भूतपूर्वं सर्वमेतदिति ॥ १२ ॥

संभोग काल में जब नायक पान आदि जो भी वस्तु वेश्या को दे तो उसे खाकर वह आश्चर्य प्रकट करती हुई कहे कि इससे पहले ऐसी स्वादिष्ट वस्तु कभी नहीं खाई थी ॥ १२ ॥

चतुःषष्ट्यां शिष्यत्वम् ॥ १३ ॥

चतुःषष्ट्यां पाञ्चालिक्यां शिष्यत्वं, तद्विज्ञाय कर्तव्यं शिक्षय मामिति ॥१३॥

संभोग के समय काम-कलाओं से अनभिज्ञ बनकर नायक से कहे कि जैसा आप कहें वैसा मैं करूँ, मैं तो कुछ जानती नहीं ॥ १३ ॥

तदुपदिष्टानां च योगानामाभीक्ष्ण्येनानुयोगः ॥ १४ ॥

योगानामिति चातुःषष्टिकानां तेनोपदिष्टानामाभीक्ष्ण्येनानुयोगः । पश्चात्तस्मिन्नेव नायके पुनःपुनर्योज्या इत्यर्थः । येनावगच्छेदस्मत्सुखार्थमेवास्या यत्न इति ॥

नायक द्वारा बताये गये योगों पर ही वह प्रयोग करे ॥ १४ ॥

तत्सात्म्याद्रहसि वृत्तिः ॥ १५ ॥

तत्सात्म्यादिति । यथा तस्य सुखं तथैकान्ते वर्तत इत्यर्थः ॥ १५ ॥

एकान्त में प्रेमी के अनुकूल ही वर्ताव करे ॥ १५ ॥

मनोरथानामाख्यानम् ॥ १६ ॥

मनोरथेति । रहसीत्यनुवर्तते । मम मनोरथा एवमासन् कदा त्वया सह दीर्घरजन्यां सपरिहासः संप्रयोगः स्यात् ॥ १६ ॥

एकान्त में उससे यह भी कहे कि मेरी तो इच्छा है कि रात भर हास-विलास सहित सम्भोग होता रहे ॥ १६ ॥

गुह्यानां वैकृतप्रच्छादनम् ॥ १७ ॥

गुह्यानामिति कक्षोरुजघनानां यद्वैकृतं वैरूप्यं किंचित्तस्य, प्रच्छादनं । स्प्रष्टुं द्रष्टुं न दद्यादित्यर्थः । मा भूद्वैराग्यमस्येति ॥ १७ ॥

गुह्यांगों में यदि कुछ अंग-भंग या विकार हो तो उसे छिपाये रहे ॥ १७ ॥

शयने परावृत्तस्यानुपेक्षणम् ॥ १८ ॥

शयने परावृत्तस्यानुपेक्षणम् । स्नेहख्यापनार्थमभिमुखं स्वपेदित्यर्थः ॥ १८ ॥

मिलनेवाला जिस करवट से सो रहा हो उसके मुख की ओर अपना मुख कर वेश्या लेटे, जिससे आसक्ति प्रकट हो ॥ १८ ॥

आनुलोम्यं गुह्यस्पर्शने ॥ १९ ॥

गुह्यस्पर्शने आनुलोम्यं कक्षां वराङ्गं च स्पृशन्तं न वारयेत् । माभूत्संप्रयोगेच्छाविघात इति ॥ १९ ॥

नायक द्वारा गुप्तांगों का स्पर्श किये जाने पर कोई विरोध न प्रकट करे ॥

सुप्तस्य चुम्बनमालिङ्गनं च ॥ २० ॥

सुप्तस्य चुम्बनमालिङ्गनं च, येन स्नेहात्स्वप्तुमपि न ददातीति जानीयात् ॥ २० ॥

सोये हुए नायक का चुम्बन और आलिंगन करे ॥ २० ॥

वृत्तं च प्रत्यक्षे परोक्षे वेति प्रत्यक्ष एव बहिर्गतं वृत्तमाह—

प्रेक्षणमन्यमनस्कस्य । राजमार्गे च प्रासादस्थायास्तत्र विदिताया व्रीडा शाठ्यनाशः ॥ २१ ॥

प्रेक्षणमित्यन्यचित्तं पश्येत् । किमयमुत्कण्ठयोद्वेगाद्वान्यमनस्क इति राजमार्गे वर्तमानस्य प्रेक्षणम् । तत्रापि प्रासादस्थायाः । कर्त्रर्थेयं षष्ठी । तत्रेति प्रेक्षणे विदिताया नायकस्य मम पश्यतीति व्रीडा लज्जा स्यात् । सैव शाठ्यनाश इत्युच्यते । तद्धेतुत्वादस्याः । यदि व्रीडां न दर्शयेत् कृतकस्नेहोऽस्याः यन्मामसक्तं पश्यतीति शाठ्यं संभाव्येत ॥ २१ ॥

जाते हुए नायक को टकटकी लगाकर देखे, दूर सड़क पर निकल जाने पर झरोखे से उद्विग्न होकर देखे और यदि नायक की नजर उस पर पड़ जाए तो शरमा कर झुक जाए । यदि नहीं शरमाती है तो बनावटी प्रेम प्रकट हो जाएगा ॥ २१ ॥

तद्द्वेष्ये द्वेष्यता । तत्प्रिये प्रियता । तद्रम्ये रतिः । तमनु हर्षशोकौ । स्त्रीषु जिज्ञासा । कोपश्चादीर्घः ॥ २२ ॥

तद्द्वेष्येत्यादिनानुलोम्यं ख्यापितं भवति । तद्रम्य इति यद्यसावसंप्रयोगशीलस्तदा रम्ये प्रदेशेऽनया रतिः कार्या । येन तद्गतस्य संप्रयोगेच्छा भवति । स्त्रीषु जिज्ञासा अन्यासु स्त्रीषु किमस्य स्नेहोऽस्ति न वेति चरप्रणिधानेन जिज्ञासा कार्या । किमेवं स्यादित्याह—कोपश्चादीर्घः । यदि तत्र स्नेह ईर्ष्या तदा कोपः स्नेहख्यापनार्थं कार्यः । स चादीर्घः, कदाचिद्विरागः स्यात् ॥ २२ ॥

नायक के शत्रु से शत्रुता रखे, उसके प्रेमी से प्रेम करे, जहाँ वह चाहे वहीं सहवास करे, उसके हर्ष पर हर्षित, शोक पर शोकातुर हो, स्त्रियों के सम्बन्ध में जानने की इच्छा करे और क्रोध करे तो थोड़ी देर तक ही ॥ २२ ॥

स्वकृतेष्वपि नखदशनचिह्नेष्वन्याशङ्का ॥ २३ ॥

स्वकृतेष्वपीति एतदपीर्ष्याख्यापनार्थं स्नेहनिर्बन्धसूचनम् ॥ २३ ॥

नायक के अंगों पर खुद अपने दाँतों और नाखूनों से काट कर निशान बना दे और दूसरे दिन किसी और के निशान होने की शंका करे ॥ २३ ॥

अनुरागस्यावचनम् ॥ २४ ॥

अनुरागस्येति जातरागास्मि कामयस्व मामिति न वाच्यम् ॥ २४ ॥

अनुराग को मुँह से न कहे ॥ २४ ॥

लज्जापरिहारार्थं कामातुरा तिष्ठेदित्याह—

आकारतस्तु दर्शयेत् ॥ २५ ॥

आकारत इति । यथा जानाति कामातुरेति ॥ २५ ॥

भाव-भंगिमाओं से अनुराग प्रकट करे ॥ २५ ॥

तत्राप्यपरिज्ञाने—

मदस्वप्नव्याधिषु तु निर्वचनम् ॥ २६ ॥

मदस्वप्नादिषु निर्वचनम्, कृतकमत्ता कृतकसुप्ता च ब्रूयात्, अगत्या व्याधिमपदिशेत् । असंयोगेनैव व्याधितास्मीति ॥ २६ ॥

नायक के आने पर सोने का या बेहोशी का बहाना करके यह प्रकट करे कि तुम्हारे न मिलने से यह हालत हुई है ॥ २६ ॥

श्लाघ्यानां नायककर्मणां च ॥ २७ ॥

श्लाघ्यानामिति श्लाघनीयानां देवकुलतडागादीनां धर्मयशोऽर्थानां निर्वचनं साधु कृतमिति ॥ २७ ॥

ऐसे ही बहानों से नायक के अच्छे कामों को भी कहे ॥ २७ ॥

तस्मिन्ब्रुवाणे वाक्यार्थग्रहणम् । तदवधार्य प्रशंसात्रिषये भाषणम् । तद्वाक्यस्य चोत्तरेण योजनम् । भक्तिमांश्चेत् ॥२८॥

तस्मिन्निति नायक इत्यर्थः । वाक्यार्थग्रहणम् । अवधीरणेऽवज्ञा संभाव्येतेत्यर्थः । न केवलमर्थग्रहणं प्रशंसा कर्तव्या सुभाषितमुक्तं को नाम जानात्येवमुभिधातुमिति । विषये भाषणं—शब्दस्पर्शादिषूक्तिः कर्तव्या, कस्मिन्विषये रुचिरिति ज्ञापनार्थम् तथैवानुतिष्ठेद वाक्यस्योत्तरेण योजनं बुद्धिवैदग्ध्यख्यापनार्थम् ।

तत्रापि यदि भक्तिमांश्चेत् यदि स्नेहवान् । अजातस्नेहस्य वचने प्रत्युतावधीर्यमाणं वैलक्ष्यं स्यात् ॥ २८ ॥

नायक की बातों का तात्पर्य समझे और उसको निश्चय करके प्रशंसा करे, प्रसंगात् विषयों पर बोले, उसकी बात का उत्तर उस हालत में दे जब कि समझ ले कि यह स्नेहशील है ॥ २८ ॥

कथास्वनुवृत्तिरन्यत्र सपत्न्याः ॥ २९ ॥

कथास्वनुवृत्तिस्तेन कथ्यमानास्वनुवर्तनम् । तन्मुखावलोकनहुंकाराभ्याम् । अन्यथास्या मय्यवज्ञेति मन्येत । अन्यत्रेति सपत्न्याः । सपत्नीकथायामीर्ष्याकोपख्यापनार्थं नानुवृत्तिः ॥ २९ ॥

केवल सौतों की बात छोड़कर नायक की हर बात में हाँ करनो चाहिए ॥

निःश्वासे जृम्भिते स्खलिते पतिते वा तस्य चार्तिमाशंसीत ॥ ३० ॥

निश्वासे दीर्घनिःश्वसिते स्खलितेऽर्थविस्मरणे आर्तिमाशंसीत माभूत्पीडेति । तेषामनिष्टसूचकत्वात् ॥ ३० ॥

नायक के उसाँसें भरने पर, पैसा-रुपया भूल जाने पर, गिरने पर दुःख प्रकट करे ॥ ३० ॥

क्षुतव्याहृतविस्मितेषु जीवेत्युदाहरणम् ॥ ३१ ॥

क्षुतं छिक्का । तदादिषु जीवेत्युक्तिः स्नेहसूचिका ॥ ३१ ॥

नायक के छींकने पर, कोई चौकस बात कहने पर और आश्चर्य व्यक्त करने पर 'जीते रहो' कहना चाहिए ॥ ३१ ॥

दौर्मनस्ये व्याधिदौर्हृदापदेशः ॥ ३२ ॥

दौर्मनस्य इति नायकसंबन्ध्यनिष्टश्रवणाद्दौर्मनस्ये जाते तत्कारणं पृच्छेत् । चिरानुबन्धो मे व्याधिः शत्रुर्बाधत इति ॥ ३२ ॥

नायक का मन मलीन देखकर उसका कारण पूछे, बताने पर तुरन्त कहे कि यह व्याधि तो मुझे भी बहुत दिनों से लगी है ॥ ३२ ॥

गुणतः परस्याकीर्तनम् ॥ ३३ ॥

गुणतः परस्याकीर्तनम्, अन्यथान्यासक्तेति जानीयात् ॥ ३३ ॥

नायक के सामने किसी दूसरे के गुणों की प्रशंसा न करे ॥ ३३ ॥

न निन्दा समानदोषस्य ॥ ३४ ॥

समानदोषस्येति नायकेन तुल्यदोषस्यान्यस्य न निन्दा । मा भूदेतद्द्वारेण मां जुगुप्सत इति ॥ ३४ ॥

और जिसमें नायक के समान ही दोष हों उसकी निन्दा भी न करे ॥ ३४ ॥

दत्तस्य धारणम् ॥ ३५ ॥

प्रेमी द्वारा दी गई वस्तु का उपयोग उसके सामने ही करना चाहिए ॥३५॥

वृथापराधे तद्व्यसने वालङ्कारस्याग्रहणमभोजनं च ॥ ३६ ॥

यावदेव जानात्यनयापराद्धमिति तावदेव प्रतिविधानार्थं खेदाभ्यङ्गोपवासादिभिः शरीरपीडा दर्शयितव्या। तद्व्यसने नायकस्य पुत्रभ्रात्रादिनाशे व्याधौ वा ज्वरादावुत्पन्नेऽलंकाराग्रहणम् ॥ ३६ ॥

नायक द्वारा झूठा आरोप लगाने पर अथवा नायक पर कोई आपत्ति आ जाने पर भोजन और श्रृङ्गार का परित्याग कर दे ॥ ३६ ॥

तद्युक्ताश्च विलापाः ॥ ३७ ॥

तद्युक्ताश्चेति कथमपापस्य पतितमेतदिति विलापाः कार्याः। तथैतद्दुःखेनाहं दुःखितेति सूचितं भवति ॥ ३७ ॥

हाय हाय, ऐसा कैसे हो गया, कह कर विलाप करे ॥ ३७ ॥

तेन सह देशमोक्षं रोचयेद्राजनि निष्क्रयं च ॥ ३८ ॥

तेनेति नायकेन सह देशमोक्षः स्वदेशत्यागः तमेव रोचयेत्। माता मे विषमशीला। अपलाप्य मां देशान्तरं नयेति। येन स्वातन्त्र्यं स्यादिति। राजनि निष्क्रयं च यदि राजप्रतिबद्धा तदानीं राज्ञः साकाशान्मां निष्क्रीणीहीति रोचयेत्। अन्यथा पलायितां मामानाययेत् ॥ ३८ ॥

मुझे लेकर दूसरे प्रदेश चलो, राज्य शासन को हरजाना देकर मुझे रख लो या चुपचाप भगा ले चलो--ऐसा नायक से कहना चाहिये ॥ ३८ ॥

सामर्थ्यमायुषस्तदवाप्तौ ॥ ३९ ॥

तदवाप्ताविति यत्प्रायशो न घटते तस्यावाप्तौ सत्यां समर्थनमायुषः येन त्वं घटितः अन्यथा नियतं विनष्टास्मीति ब्रूयात् ॥ ३९ ॥

उससे कहना चाहिये कि तुम्हारे मिलने से ही मेरा जीवन सार्थक है ॥३९॥

तस्यार्थाधिगमेऽभिप्रेतसिद्धौ शरीरोपचये वा पूर्वसंभाषित इष्टदेवतोपहारः ॥ ४० ॥

अर्थाधिगम इति तस्यार्थलाभे अभिप्रेतसिद्धौ शरीरोपचये वा व्याध्यपगमात्। पूर्वमिति न तदानीमेव संभाषेत। अर्थलाभादिनिमित्तमाशापूरिकाया देव्या मयोपयाचितकं कृतं तेन च संपन्ना मनोरथाः। सांप्रतं तस्यै बलिरुपहर्तव्य इति ॥४०॥

नायक को धन मिलने, चाही चीज के मिल जाने तथा शारीरिक रोग के दूर हो जाने पर पहिले बोली हुई देव-भेंट चढ़ाये ॥ ४० ॥

नित्यमलङ्कारयोगः । परिमितोऽभ्यवहारः ॥ ४१ ॥

नित्यमिति । यत्तु 'नित्यमलंकारयोगिनी स्यात्' इत्युक्तं तदुपावर्तनकाले द्रष्टव्यम् । परिमित इति बहुभक्षणे प्रायशो वेश्यानां दोषवत्त्वात् । तत्रापि स्निग्धं, न रूक्षम् । ज्वरकारित्वाद्रूक्षस्य ॥ ४१ ॥

सदैव श्रृङ्गार किए रहना चाहिए और सन्तुलित भोजन करना चाहिए ॥

गीते च नामगोत्रयोर्ग्रहणम् । ग्लान्यामुरसि ललाटे च करं कुर्वीत । तत्सुखमुपलभ्य निद्रालाभः ॥ ४२ ॥

गीते चेति । ग्लान्यामिति । करं नायकसंबन्धिनं स्वहस्तेन गृहीत्वा स्थापयेदित्यर्थः । तत्सुखमिति हस्तस्पर्शसुखम् ॥ ४२ ॥

एकचारिणी वेश्या जब गाए तो अपने प्रेमी का नाम और गोत्र जरूर उसमें रखे । तबीयत खराब होनेपर प्रेमी के हाथ अपने माथे और हृदय पर रख ले । उसके हाथ के स्पर्श के बहाने सो जाया करे ॥ ४२ ॥

उत्सङ्गे चास्योपवेशनं स्वपनं च । गमनं वियोगे ॥ ४३ ॥

उत्सङ्ग इति । गमनं वियोग इति सुहृद्गृहं देवतां वा द्रष्टुं गच्छति, तदा मा भूत् क्षणमप्यनेन वियोग इति, तन्निमित्तं स्वयमनुगच्छेत् ॥ ४३ ॥

प्रेमी की गोद में बैठ जाया करे, सो भी जाया करे, जब कहीं उसके साथ जाए तो पीछे-पीछे चले ॥ ४३ ॥

तस्मात्पुत्रार्थिनी स्यात् । आयुषो नाधिक्यमिच्छेत् ॥४४॥

तस्मात्पुत्रार्थिनीति ऋतुमत्यहमन्यत्र त्वया न शयितव्यमिति । नाधिक्यमिति एतस्मान्मम मृतिः प्राग्भवति चेद्भद्रमिति ॥ ४४ ॥

अपने प्रेमी से पुत्र लाभ की कामना करे और उससे पहले ही मर जाने की इच्छा व्यक्त करे ॥ ४४ ॥

एतस्याविज्ञातमर्थं रहसि न ब्रूयात् ॥ ४५ ॥

जिस धन का पता प्रेमी को न हो उसका रहस्य वह एकान्त में भी न बताए ॥ ४५ ॥

व्रतमुपवासं चास्य निर्वर्तयेद् मयि दोष इति । अशक्ये स्वयमपि तद्रूपा स्यात् ॥ ४६ ॥

तद्रूपा गृहीतव्रता स्यात् ॥ ४६ ॥

मुझे दोष पड़ेगा यह कहकर उसे व्रत उपवास करने दे, यदि न माने तो खुद भी उसके साथ करे ॥ ४६ ॥

विवादे तेनाप्यशक्यमित्यर्थनिर्देशः ॥ ४७ ॥

विवाद इति। कस्मिश्चिद्वस्तुनि केनचिद्विप्रतिपत्तौ। तेनाप्यशक्यमिति। शक्तश्चेत्स एवेति कथयेदित्यर्थः ॥ ४७ ॥

किसी दूसरे के साथ विवाद हो तो कह दे कि इसे तो वही (उसका प्रेमी) कर सकता है, दूसरा नहीं ॥ ४७ ॥

तदीयमात्मीयं वा स्वयमविशेषेण पश्येत् ॥ ४८ ॥

स्वामिनो द्रव्यं नायकसंबन्धि आस्थापनपालनाभ्यामविशेषेण पश्येत् ॥ ४८ ॥

अपनी संपत्ति के समान अपने प्रिय की सम्पत्ति को भी समझे ॥ ४८ ॥

तेन विना गोष्ठ्यादीनामगमनमिति ॥ ४९ ॥

उसके बिना किसी गोष्ठी में न जाए ॥ ४९ ॥

निर्माल्यधारणे श्लाघा उच्छिष्टभोजने च ॥ ५० ॥

निर्माल्यमिति। स्वकीयं माल्यादि मम देयमिति। उच्छिष्टेति। यद्युपनिमन्त्रितो न मां नयसि भुक्तशेषमवश्यं प्रेषयितव्यमिति ॥ ५० ॥

उसकी उतरी हुई वस्तु को धारण करने और उसका जूठा खाने में अपना गौरव समझे ॥ ५० ॥

कुलशीलशिल्पजातिविद्यावर्णवित्तदेशमित्रगुणवयोमाधुर्यपूजा ॥ ५१ ॥

कुलशीलेति। उदितोदितं कुलमस्य नानुदितमनुदितं वेति। शोभनं शीलं न विषममिति। प्रकृष्टमालेख्यादि शिल्पं नाप्रकृष्टमिति। विशुद्धास्य जातिर्न संकीर्णेति। निर्मलास्यान्वीक्षिक्यादिविद्या न दुर्गृहीतेति। कनकपिञ्जरोऽस्य वर्णो न पाण्डुरिति। न्यायेनोपार्जितं वित्तं नान्यायेनेति। पूज्योऽस्य देशो नापूज्य इति। गुणवन्त्यस्य मित्राणि न दोषवन्ति। शोभना गुणा न त्वशोभनाः। प्रथमं वयो न द्वितीयं न तृतीयमिति। मधुरं वचो नामधुरं चेति पूजा स्तुतिः कर्तव्या ॥ ५१ ॥

अपने प्रिय के कुल, शील, शिल्प, जाति, विद्या, रूप, रंग, धन, निवासस्थान, मित्र, गुरु, अवस्था और मधुरता की प्रशंसा करे ॥ ५१ ॥

गीतादिषु चोदनमभिज्ञस्य ॥ ५२ ॥

अभिज्ञस्य गीतादौ प्रेरणम्। अनभिज्ञश्चोद्यमानो मामुपहसतीत्याशङ्कते। अभिज्ञस्तु मद्विज्ञानं श्लाघत इति मन्यते ॥ ५२ ॥

यदि प्रेमी गाना-बजाना जानता हो तो उसे गाने-बजाने के लिए प्रेरित करे ॥ ५२ ॥

भयशीतोष्णवर्षाण्यनपेक्ष्य तदभिगमनम् ॥ ५३ ॥

भयेति । इदमासक्तिख्यापनार्थम् ॥ ५३ ॥

कदाचित् प्रेमी के यहाँ अभिसार के लिए जाना हो तो गर्मी, जाड़ा और बरसात की परवाह न करे ॥ ५३ ॥

स एव च मे स्यादित्यौर्ध्वदेहिकेषु वचनम् ॥ ५४ ॥

और्ध्वदैहिकेष्विति वर्तमानलोकादन्यलोकेऽपि यो देहः स जन्मान्तरे स्यात् । (तत्रापि) अयमेव मे प्रियः स्यादिति वचनमुदाहार्यम् ॥ ५४ ॥

प्रेमी से यह भी कहती रहे कि मरने के बाद भी मुझे तुम पति के रूप में मिलो ॥ ५४ ॥

तदिष्टरसभावशीलानुवर्तनम् ॥ ५५ ॥

प्रेमी को जो रस, भाव और शील रुचता हो उसी का वह भी अनुसरण करे ॥ ५५ ॥

मूलकर्माभिशङ्का ॥ ५६ ॥

नियतमपि वशीकरणमलीकतया प्रयुंक्ते येन तव विधेयास्मीत्याशङ्का कार्या ॥

उसके ऊपर जादू टोना की शंका करे ॥ ५६ ॥

तदभिगमने च जनन्या सह नित्यो विवादः ॥ ५७ ॥

तदभिगमन इति । नायकमनुगच्छन्तीं किं मां धारयसीति मात्रा सह नित्यं कृतककलहोऽनुरागप्रकटनार्थः ॥ ५७ ॥

प्रेमी से मिलने के लिए माँ से नित्य लड़ाई करे ॥ ५७ ॥

बलात्कारेण च यद्यन्यत्र तया नीयेत तदा विषमनशनं शस्त्रं रज्जुमिति कामयेत ॥ ५८ ॥

बलात्कारेण चेति । अन्यत्र गम्ये कार्यापेक्षया नीयेत मात्रा तदा तत्समक्षं पूर्वोक्ताश्चारत्यादयः संभवन्त्येव किं त्वेतदधिकं विषाद्यशनमिति । आपातमृत्युहेतुं कामयेद्वाचैव न तु क्रियया ॥ ५८ ॥

यदि माँ जबरदस्ती किसी और से संभोग के लिए प्रेरित करे तो कहे कि जहर खा लूंगी, छूरी मार लूंगी, फाँसी लगा लूंगी ॥ ५८ ॥

प्रत्यायनं च प्रणिधिभिर्नायकस्य । स्वयं वात्मनो वृत्तिग्रहणम् ॥ ५९ ॥

प्रत्यायनं च प्रणिधिभिरिति मातुरेवास्या दोषो न त्वस्या इति । स्वयं वेति । कुत्सिता वेश्यानां जीविका यस्मिन्नर्थं संत्यज्यार्थतृष्णया मातरोऽन्येन योजयन्तीति ॥

एकचारिणी वेश्या के परगमनका पता यदि नायक को मिल जाए तो अपने सहचर व्यक्तियों द्वारा नायक को यह विश्वास करा दे कि उसका दोष नहीं है उसकी माँ का ही दोष है, यदि उनके समझाने पर भी उसे विश्वास न हो तो खुद उसके सामने वेश्यावृत्ति की निन्दा करे ॥ ५९ ॥

न त्वेवार्थेषु विवादः ॥ ६० ॥

न त्वेवेति । कामं तदभिगमने विवादः स्यात्, नायकेन तु यद्येवं तत्साधयन्त्या जनन्या न विवादस्तदर्थत्वात्प्रयासस्य ॥ ६० ॥

मुख्य प्रेमी को छोड़कर दूसरे से संभोग कराने में माँ से भले ही विवाद करे किन्तु धन के बारे में उससे कतई बहस न करे, जहाँ वह भेजे उसे प्रसन्न करके विपुल धन ले आए ॥ ६० ॥

मात्रा विना किंचिन्न चेष्टेत ॥ ६१ ॥

मात्रा विना न किञ्चिच्चेष्टेतेति । अन्ततो भोक्तुमपि यदाह माता तदन्यथा न कुर्यात् । कार्येषु सैव व्यापारयितव्येत्यर्थः ॥ ६१ ॥

बिना अपनी माँ से पूछे कोई काम न करे ॥ ६१ ॥

प्रवासे शीघ्रागमनाय शापदानम् ॥ ६२ ॥

प्रवास इति नायकस्य कार्यवशात् । शापदानं शपथदानम् । मज्जीवितेन शापितोऽसि यदि शीघ्रं नागच्छसीति ॥ ६२ ॥

एकचारिणी वेश्या का प्रेमी यदि परदेश जाने लगे तो उससे कहे—'तुम्हें मेरी कसम–जल्दी लौट आना' ॥ ६२ ॥

परोक्षे वृत्तमाह—

प्रोषिते मृजानियमश्चालङ्कारस्य प्रतिषेधः । मङ्गलं त्वपेक्ष्यम् । एकं शङ्खवलयं वा धारयेत् ॥ ६३ ॥

प्रोषित इति । मृजानियमः शरीरासंस्कृतिः । परोक्षे विफलमिति चेन्न । तदीयजनसमक्षे सफलत्वात् । प्रवासचर्यायामुक्तमपि चैतत्प्रायशः कुलयोषितस्तत् । इदं तु वेश्याया एवेति । प्रतिषेधोऽधारणम् । मङ्गलं शंखवलयादि त्वपेक्ष्यम् । प्रोषितस्य मङ्गलापेक्षया तावन्मात्रं धार्यमित्यर्थः ॥ ६३ ॥

प्रेमी के परदेश चले जानेपर एकचारिणी वेश्या साबुन, तेल, उबटन आदि से शरीर का संस्कार न करे, अलंकार न धारण करे, हाँ मांगलिक चिह्न शंख की चूड़ियाँ आदि न उतारे ॥ ६३ ॥

स्मरणमतीतानाम् । गमनमीक्षणिकोपश्रुतीनाम् । नक्षत्रचन्द्रसूर्यताराभ्यः स्पृहणम् ॥ ६४ ॥

स्मरणमतीतानां नायकेन सहोपभुक्तानाम् । ईक्षणिका विप्रश्निकास्तासां गमनं गृहे इत्यर्थात् । उपश्रुतिर्निशीथे शुभाशुभपरिज्ञानार्थं प्रथमवाक्यग्रहणम् । तेन तस्या रथ्याचत्वरेषु गमनमिति । नक्षत्रादिभिः स्पृहणमिति पुण्यवन्त एते यन्नायकेन दृश्यन्ते । अहमपुण्या यन्मां नेक्षत इति ॥ ६४ ॥

नायक की बीती बातों का स्मरण करे, शीघ्र लौटाने के लिए सगुन धरानेवाली स्त्रियों के पास जाए। रात का सगुन देखे और चाँदनी रात के चाँद-तारोंपर ईर्ष्या प्रकट करे ।। ६४ ।।

इष्टस्वप्नप्रदर्शने तत्सङ्गमो ममास्त्विति वचनम् ॥ ६५ ॥

इष्टस्वप्नेति । सद्भूतं शुभं दृष्ट्वा प्रत्यूषे तज्जनसमक्षं प्रकाश्य आस्तां तावदन्यत्तत्समागम एष ममास्त्विति वचनमुदाहर्तव्यम् । दृष्ट्वापि कृतकमदृष्टं स्वप्नं प्रकाशयेत् । यदि देशान्तरस्थस्य नायकस्याभिप्रेतसिद्धिस्तैस्तैरुपलब्धा स्यात् ॥ ६५ ॥

सुन्दर सपने देखकर प्रेमी से समागम हो ऐसी बातें करे ।। ६५ ।।

उद्वेगोऽनिष्टे शान्तिकर्म च ॥ ६६ ॥

उद्वेगोऽनिष्ट इति । अशुभसूचके स्वप्नदर्शने सत्युद्वेगः । तस्य किमप्यनिष्टमस्तीति शान्तिकर्म ब्राह्मणानाहूय कार्यम् ॥ ६६ ॥

बुरे सपने देखने पर अनिष्ट की शान्ति कराए ॥ ६६ ॥

आगते प्रत्यक्षे वृत्तमाह—

प्रत्यागते कामपूजा ॥ ६७ ॥

कामेति । त्वत्प्रसादादागत इति कामपूजनम् ॥ ६७ ॥

प्रेमी के सकुशल लौट आनेपर कामदेव का पूजन कराए ॥ ६७ ॥

देवतोपहाराणां करणम् ॥ ६८ ॥

देवतोपहाराणां च तज्जनसमक्षं प्रतिपन्नानां करणं निष्पादनम् ॥ ६८ ॥

जिस-जिस देवता को मनौती मानरखी हो उसे जाकर भेंट चढ़ाए ॥ ६८ ॥

सखीभिः पूर्णपात्रस्याहरणम् ॥ ६९ ॥

पूर्णपात्रस्येति । इष्टबुद्ध्या स्वजनाद्युत्तरीयमाच्छिद्य गृह्यते तत्पूर्णपात्रम् । तस्य सखीभिराहरणम् ॥ ६९ ॥

इष्टकामना रखकर स्वजन से पूर्णपात्र (उत्तरीय) सखियों के साथ झपट कर ले-ले ॥ ६९ ॥

वायसपूजा च ॥ ७० ॥

वायसेति । वल्लभे समागते पिण्डं ते दास्यामीति प्रतिज्ञातं गृहाणेति ॥७०॥

काक बलि प्रदान करे ॥ ७० ॥

प्रथमसमागमानन्तरं चैतदेव वायसपूजावर्जम् ॥ ७१ ॥

नायकेन सह यः प्रथमः समागमस्तदनन्तरमेतत्कामपूजादिकमनुष्ठेयम् ॥७१॥

काक बलि को छोड़कर शेष काम—पूजा, देवताओं को भेंट चढ़ाना आदि प्रवास से लौटे हुए प्रेमी के साथ संभोग करने के बाद ही करे ॥ ७१ ॥

प्रत्यक्षे परोक्षे च वृत्तमाह—

सक्तस्य चानुमरणं ब्रूयात् ॥ ७२ ॥

सक्तस्य चेति। अनुमरणं ब्रूयात् स्वर्याते न मया जीवितव्यमिति। सक्तो ह्येवं संभावयति नान्यः ॥ ७२ ॥

प्रेमी के साथ सती हो जाने की बात कहा करे ॥ ७२ ॥

कः पुनः सक्त इत्याह—

निसृष्टभावः समानवृत्तिः प्रयोजनकारी निराशङ्को निरपेक्षोऽर्थेष्विति सक्तलक्षणानि ॥ ७३ ॥

निसृष्टभाव इति सर्वात्मना विश्वस्तः। समानवृत्तिस्तावत्प्रवृत्तौ निवृत्तौ च। प्रयोजनकारी नायिकाया यत्कार्यं तदुदीरितमात्रं यः कर्तुं शक्नोति। निराशङ्को न कुतश्चिदाशङ्कते तस्यां प्रवर्तमानः। निरपेक्षोऽर्थेषु स्वात्मीयेषु तया गृह्यमाणेष्वपि ॥ ७३ ॥

आसक्त प्रेमी वही है जो प्रेमिका पर पूर्ण विश्वास रखे, उसके समान अपना शील स्वभाव बना ले, प्रेमिका के मुँह से निकलते ही उसका काम कर दे, उसके प्रति सन्देहशील न हो, और धन की कोई परवाह न करे ॥७३॥

तदेतन्निदर्शनार्थं दत्तकशासनादुक्तम्। अनुक्तं च लोकतः शीलयेत्पुरुषप्रकृतितश्च ॥ ७४ ॥

तदित्युक्तं वृत्तम्। निदर्शनार्थं दत्तकशासनादिति दत्तकशास्त्रं दृष्ट्वा। लोकत इति पराराधनकुशलाच्छीलयेदागमयेत् ॥ ७४ ॥

आचार्य दत्तक के शास्त्र को देखकर संक्षेप में यह वेश्यावृत्त लिखा गया है। जो बात यहाँ नहीं कही गई है उसे परायी स्त्रियों, वेश्याओं की आराधना करने में कुशल व्यक्तियों के आचरणों को देखकर समझ लेना चाहिए ॥ ७४ ॥

गम्यस्याप्यनुवर्तमानस्य वेश्यास्वरूपप्रतिपत्त्यर्थमाह—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

सूक्ष्मत्वादतिलोभाच्च प्रकृत्याज्ञानतस्तथा।
कामलक्ष्म तु दुर्ज्ञानं स्त्रीणां तद्भावितैरपि ॥ ७५ ॥

स्त्रीणामिति वेश्याशब्दत्वादिति । चेतोधर्मेणातीन्द्रियत्वाद्वेश्याशब्दवाच्यानां यदिच्छालक्षणः कामस्तस्य लक्ष्म स्वरूपं दुर्ज्ञानं किमिदं स्वाभाविकं वा कृत्रिममिति दुःखेन ज्ञायते। कथमित्याह—सूक्ष्मत्वादिति, चेतोधर्मेणातीन्द्रियत्वात्। क्रियया सुज्ञानमिति चेदाह—अतिलोभादिति। लुब्धा हि स्वाभाविकमिव रूपयन्ति प्रवृत्त्या न ज्ञायन्त इति। कामपरासु हि विश्वसन्ति पुमांसः। त...श्च तेषां स्वभावत एव रागाचरणसंभवादज्ञानमेव प्रादुर्भवति न ज्ञानम्। तद्भावितैरपि लक्ष्मपरिज्ञानाभियुक्तैरपि दुर्ज्ञेयं किमिदं स्वाभाविकं कृत्रिमं वेति ॥

इस विषय के दो श्लोक हैं—वेश्याओं को समझना बड़ा मुश्किल है। इसलिए कि चित्त के धर्म काम को इन्द्रियाँ देख नहीं सकतीं तब वेश्याओं के इच्छारूप काम को कैसे समझा जासकता है कि यह असली है या बनावटी क्योंकि वेश्याओं में माया और लोभ दोनों बहुत मात्रा में रहते हैं। इसके अलावा उनके प्रेमी भी अक्सर बुद्धि के दिवालिए ही तो हुआ करते हैं ॥ ७५ ॥

तदेवं कृतकं च कामलक्ष्म दर्शयन्नाह—

कामयन्ते विरज्यन्ते रञ्जयन्ति त्यजन्ति च।
कर्षयन्त्योऽपि सर्वार्थाञ्ज्ञायन्ते नैव योषितः ॥ ७६ ॥

कामयन्त इति। अकृतकं कामयन्ते तदपि न स्थिरमित्याह—कृतककेलिवशाद्विरज्यन्ते। कृतककेलिवशाद्रञ्जयन्ति। तदपि न स्थिरमित्याह—त्यजन्तीति। किमर्थमित्याह—कर्षयन्त्योऽपीति। सर्वार्थान् गृह्णन्त्योऽपीत्यर्थः। अलक्तकवन्निष्पीडितसारत्वाज्ज्ञायन्ते नैव किंरूपा इति। योषितो वेश्या इत्यर्थः। तस्मात्तासु नासक्तिं कुर्यात्। केवलं यावदर्थं प्रतिपद्येरन्नित्युपदेशः। इति कान्तानुवृत्तं द्विपञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणे कान्तानुवृत्तं द्वितीयोऽध्यायः।

वेश्याएँ अपने प्रेमी को चाहती हैं, उन पर अनुरक्त रहती हैं और विरक्त भी। अपना बना कर परित्याग भी कर दिया करती हैं। वे ऐसे ढंग से धन खींचती हैं कि न तो जाना जा सकता है और न देखा जा सकता है ॥ ७६ ॥

वेश्या अपने प्रेमी से किस प्रकार प्रेम करे, उस प्रेम को कैसे सुदृढ़ बनाए इसका उपाय पिछले प्रकरण में दिया जा चुका है। अब यह बताया जाता है

कि वह प्रेमिका अपने प्रेमी के साथ कैसा व्यवहार करे। वात्स्यायन वेश्या में स्त्रीत्व का गौरव लाने के लिए सर्वप्रथम उसे एकचारिणी बनने की सलाह देते हैं। यानी वह वेश्या गाने-नाचने का पेशा करती हुई किसी एक व्यक्ति की होकर रहे। जैसा कि भार्याधिकरण में एकचारिणी भार्या का वृत्त बतलाया गया है, उसी ढंग का आचरण एकचारिणी वेश्या के लिए भी वात्स्यायन ने बताया है।

एकचारिणी वृत्त का अनुसरण करने से वेश्या का प्रेमी उस पर विश्वास करता है उस पर अनुरक्त रहता है। यहाँ पर एकचारिणी वेश्या को सावधान करते हुए वात्स्यायन यह भी सुझाव देते हैं कि जिस प्रकार पत्नी एकचारिणी होकर पति पर अपना सर्वस्व आत्मसमर्पण कर देती है, वैसा आचरण, वैसा समर्पण वेश्या के लिए उचित नहीं, क्योंकि वेश्या एक पेशेवर स्त्री, दूसरों को मुग्ध बना कर उनसे पैसा ऐंठना ही उसके प्रेम, अनुराग का मुख्य लक्ष्य है इसलिए वह अनुरक्त होने का प्रदर्शन मात्र करे, प्रेमी को अपना तन सौंप दे किन्तु हृदय नहीं अन्यथा उसका अर्थ व्यापार चौपट हो जाएगा, वह इस प्रकार का कृत्रिम अनुराग स्वतंत्र होकर नहीं कर सकती इसलिए उसे यह अनुराग नाटक अपनी माँ या खाला के अधीन रहकर करना चाहिए। प्रेमी के पास जब प्रेमिका वेश्या बैठी हो और कोई दूसरा ग्राहक आ जाए तो उसकी माँ या खाला उसे वहाँ से उठा ले, वह दिखावटी ढंग से माँ के इस प्रकार के प्रस्ताव का विरोध करे जिससे उसका प्रेमी उसे अपने में पूर्ण अनुरक्त समझे, माँ या खाला और बातों में चाहे जो विरोध करे किन्तु जहाँ अर्थोपार्जन का प्रसंग हो वहाँ वह विरोध न करे। दूसरे ग्राहक से भी ऐसा प्रेम दिखाए कि उससे आशातीत धन ऐंठ सके। वेश्याएँ जिस समय अपनी लड़कियों या पालित लड़कियों को वेश्याकर्म की शिक्षा देती हैं उस समय उन लड़कियों के नारी हृदय रहता है। वह एकमना प्रेम करने और प्रेमी पर न्यौछावर हो जाने का भाव रखती हैं, किन्तु क्रमशः विमर्दन होते-होते वे इतनी ट्रेण्ड हो जाती हैं कि उनका सारा प्रेम व्यापार जबानी जमा खर्च रहता है। वे मनुष्य से प्रेम न करके उसके धन से ही प्रेम किया करती हैं। वेश्याओं की माँ या खाला से वेश्याओं के कपट-व्यवहार का प्रदर्शन बड़ी कुशलता से हुआ करता है इसलिए एक खाला हर वेश्यालय में अनिवार्य रूप से रहती है। खाला की आड़ में वेश्याओं की मनोवृत्तियाँ छिपी रहती हैं, आश्रय पाती हैं और पलतीं हैं।

खालाओं की क्रूरता और सख्ती से वेश्याओं के प्रेमी भी सहमे रहते हैं। उसका परिणाम यह होता है कि किसी प्रेमी के साथ कोई वेश्या

अधिक समय तक न ठहर कर अपना समय बचा लेती है और दूसरे प्रेमी के पास चली जाती है। माँ या खाला के इस प्रकार के दुर्व्यवहार की आड़ में वेश्याएँ अनेक प्रेमियों को धता बताकर धन ऐंठा करती हैं। साधारण से साधारण मिलनेवाले जब आते हैं और उनकी जेब गर्म रहती है तो पुराने प्रेमी को जो उस पर मर रहा है अपना सब कुछ उसके नाम पर स्वाहा कर चुका, लटका दिया जाता है। प्रेमी को धता बताने का ढंग भी बड़ा निराला और शिष्टता का होता है। जब कोई वेश्या अपने प्रेमी के साथ एकान्त में हो, सहवास करा रही हो या प्रेमालाप कर रही हो और दूसरा कोई ग्राहक इसी बीच आ जाए तो माँ या खाला दरवाजे के बाहर से कर्कश शब्दों में आवाज लगाती है। उस समय वह प्रेमिका वेश्या माँ का भय बतला कर, उसे क्रूर, पिशाचिनी कह कर अनमने ढंग से प्रेमी को छोड़कर हड़बड़ा कर उठ बैठती है और बाहर निकल जाती है। प्रेमी ताकता ही रह जाता है। उसके मन पर यही असर होता है कि खाला ही दुष्ट है, मेरी प्रेमिका तो मुझे क्षणमात्र भी नहीं छोड़ना चाहती है। खूबी यह कि नवागन्तुक इस रहस्य को कतई नहीं जान पाता है।

इसके अतिरिक्त और भी बहाने होते हैं। प्रेमी के आ जाने पर प्रेमिका यदि उससे सहवास नहीं करना चाहती है या प्रेमालाप करके दूसरे ऐसे ग्राहक को नहीं खोना चाहती है जिससे भरपूर रकम मिलती है तो शिरदर्द, पेट-पीड़ा आदि के ऐसे बहाने करती है जो घंटा आध घंटा बाद ठीक हो जाने वाली हो। अथवा 'आज तो मैं कपड़े से (रजस्वला) हूँ' कह कर उठ जाती है।

कामकलाओं में पूर्ण दक्ष होते हुए भी वेश्या अपने प्रेमी को ठगकर उस पर आसक्त होने का बहाना उस समय करती है जब सहवास का अवसर आता है। वह एकदम अनजान-सी बन कर कहती है, मुझे तो कुछ मालूम नहीं है, आप जैसा चाहें मैं करने के लिए तैयार हूँ। पागल प्रेमी इसे आत्मोत्सर्ग की चरम परिणति समझ कर उस पर अपना सब कुछ लुटा देता है और अपनी प्रवीणता पर फूला नहीं समाता है।

एकान्त में प्रेमी को पाकर वेश्या उसे अपने हाव-भाव विलास द्वारा प्रसन्न करने की हरचन्द कोशिश करती है। कामसूत्र में वेश्याओं के विलास-चातुर्य का जो सजीव चित्रण हुआ है वैसा ही साहित्य में भी मिलता है—

गाने वाद्ये च नृत्ये च भाषणे दर्शने रतौ।
अद्वितीयाऽऽहिता धाम्रा गणिका भुवनत्रये॥

अर्थात् ब्रह्मा ने गाने, बजाने, नाचने, बोलने, देखने और संभोग करने में गणिका की सृष्टि तीनों लोकों से न्यारी की है।

क्व स भावः क्व वा हावः परिष्वङ्गविधिः क्व सः।
यस्या दर्शनमात्रेण निर्वृत्तिर्गणिका परा॥

गणिका के हाव भाव, आलिंगन, परिरम्भण को क्या कहना है, जब कि वह केवल देखने मात्र से स्खलित कर देती है।

यद्यपि वात्स्यायन ने वेश्यागमन को शिष्टाचार नहीं माना है, वह एकपत्नीव्रत का समर्थन करता है, लेकिन कामसूत्रकार ने इस प्रश्न का समाधान नहीं किया है कि रूपवती, गुणवती तरुणी पत्नी के रहते हुए लोग वेश्यागामी क्यों बन जाते हैं। इस प्रश्न का हल यद्यपि सूत्रकार के उन सूत्रों से मिल जाता है जो उन्होंने वेश्याओं के विलास-चातुर्य और हाव-भाव के निरूपण में प्रस्तुत किए हैं। वस्तुतः वेश्याएँ बचपन से ही काम-क्रीड़ाओं की शिक्षा पाती हैं, पुरुषों को किस ढंग से आकृष्ट किया जाए, किस प्रकार के रतिविलास से उन्हें चरणदास बनाया जाए यह कला वेश्याओं में ही रहती है, गृहस्थ स्त्री में नहीं। वेश्याओं की सब से बड़ी खूबी प्रेमकला की अभिज्ञता है।

प्राच्य पाश्चात्य सभी कामशास्त्रिओं की मान्यता है कि यौन आवेग की किसी अभिव्यक्ति की जब अतिशय प्रशंसा की जाती है तो वही प्रेम कहलाता है। सारे शरीर के यौन आवेग के विकरण होने से प्रेम का विकास होता है। जब प्रेम पूर्ण विकास को प्राप्त होता है तो वह भावावेग बन जाता है। भारतीय कामशास्त्रियों ने प्रेम का विश्लेषण नौ उपादानों द्वारा किया है। ठीक इसी पद्धति पर पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक हरबर्ट स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक 'मनोविज्ञान के सिद्धान्त' पर विवेचन किया है। काम का शारीरिक आवेग, सौन्दर्य भावना, लगाव, प्रशंसा भाव, वाह-वाही की इच्छा, आत्ममर्यादा, सांपत्तिक भावना और सहानुभूतियों को उभाड़ना, यही प्रेम के नौ उपादान हैं। वात्स्यायन ने वेश्या वृत्त को इन्हीं उपादानों के माध्यम से विस्तृत बनाया है।

वात्स्यायन ने प्रेम को महज़ भावुकता और मनोवेग समझ कर वेश्या-वृत्त का निरूपण किया है। वात्स्यायन के इस कथन का समर्थन पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक वायसगिब्स भी करता है। वेश्या वृत्त में प्रेम केवल भावुकता पर आधारित रहता है इसलिए यह इस स्थल पर अधिक बौद्धिक परिमार्जित और सूक्ष्म बन जाता है। वेश्या का प्रेम भावों और इच्छाओं की एक संगठित

पद्धति बन कर आत्मनियंत्रण का उदय वेश्या के हृदय में करता है। यही कारण है कि देखने में वेश्या का प्रेम अद्वैत, अथाह, निष्कलुष और समर्पण की भावना से सराबोर प्रतीत होता है किन्तु आत्मनियंत्रण का उदय होने से वह केवल प्रदर्शन मात्र रहता है, और अति सूक्ष्म भाव होने से प्रेमी को समझ में नहीं आता।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणे
कान्तानुवृत्तं द्वितीयोऽध्यायः॥

तृतीयोऽध्यायः

अर्थागमोपायप्रकरणम्

एवमनुवर्तितात्कान्ताद्वित्तमाददीत। तच्च नानुपायेन साधयेदित्युक्तम्। इदानीमर्थागमोपायः उच्यन्ते। तच्चादानं द्विविधं स्वाभाविकमितरच्च। यदाह—

सक्ताद्वित्तादानं स्वाभाविकमुपायतश्च ॥ १ ॥

सक्तादित्युक्तलक्षणात्। स्वाभाविकं न यत्नमपेक्षते। सक्तस्यार्थेषु निरपेक्षत्वात्। उपायतश्च यदसक्ताद्भवति तत्प्रायलिंकम् ॥ १ ॥

वेश्या पर आसक्त होने वालों से दो प्रकार से धन मिलता है। एक तो स्वाभाविक ढंग से, दूसरे प्रयत्न करने से ॥ १ ॥

तत्र स्वाभाविकं संकल्पात्समधिकं वा लभमाना नोपायान् प्रयुञ्जीतेत्याचार्याः ॥ २ ॥

तत्र स्वाभाविकं वित्तं संकल्पितम्, एतावत्त्वया देयमिति संकल्पितात्समधिकं वा लभमाना नोपायान्प्रयुञ्जीत, सुलभत्वात्, तेनासंकल्पिते च प्रयोगः ॥ २ ॥

आचार्यों का मत है कि वेश्या अपने मिलने वाले से जितना धन लेना चाहती हो उतना यदि उसे आसानी से मिल जाता है तो उसे उपाय न करने चाहिए ॥ २ ॥

विदितमप्युपायैः परिष्कृतं द्विगुणं दास्यतीति वात्स्यायनः ॥

विदितमपीति—स्वाभाविकत्वेन समधिकत्वेन चापरिच्छिन्नमप्युपायैः परिष्कृतमुपबृंहितं द्विगुणं दास्यतीति तत्र प्रयोगो युक्तः ॥ ३ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि यदि नियत फीस से अधिक धन लेना चाहे तो उपायों के प्रयोग से दुगुनी फीस मिल सकती है ॥ ३ ॥

यैरुपायैरादीयमानेऽप्यर्थे नार्थपरता ज्ञायते तानुपायानाह—

अलंकारभक्ष्यभोज्यपेयमाल्यवस्त्रगन्धद्रव्यादीनां व्यवहारिषु कालिकमुद्धारार्थमर्थप्रतिनयनेन ॥ ४ ॥

भक्ष्यं लड्डुकादि। भोज्यमन्नादि कृतमकृतं वा। पेयं सुरादि। वस्त्रं चतुर्विधं त्वक्फलकृमिरोमजम्। गन्धः कुंकुमादिः। माल्यं ग्रथितकुसुमादि। आदिशब्दात् ताम्बूलफलपूगपशुभाण्डोपस्करादि। तदुद्धार्यमिति संबन्धः। व्यवहारिष्विति

विक्रेतृषु व्यवस्थितम्। कालिकमिति कालेन देयम्। उद्धार्यमादावित्यर्थः। अर्थप्रतिनयनेनेति मूल्यप्रतिदानेन न तु द्रव्यस्यैव प्रतिनयनेन ॥ ४ ॥

अलङ्कार, भक्ष्य (लड्डू, जलेबी आदि), भोज्य (अन्न आदि), पेय (सुरा आसव आदि), वस्त्र (रेशमी, ऊनी, सूती आदि), गन्ध (कुंकुम आदि), माल्य (फूलों के हार), पान, सुपारी आदि वस्तुएँ जब वेश्या उधार किसी नियत समय पर दाम चुकता करने के वायदे पर ख़रीदे अथवा चीज़ों के बदले में ज़ेवर अमानत में रख दिए हों तो वायदे पर दाम चुकता करने अथवा दाम देकर ज़ेवर छुड़ाने के बहाने वह अपने प्रेमी अथवा मिलने वालों से रुपया ले-ले किन्तु केवल ज़ेवर छुड़ाने के लिए रुपए न ले ॥ ४ ॥

तत्समक्षं तद्वित्तप्रशंसा ॥ ५ ॥

तत्समक्षमिति नायकसमक्षम्। यतो दृष्ट्वा स्वयमेव रोचते मदीयमिति तत्प्रशंसत इति ददाति ॥ ५ ॥

प्रेमी या मिलने वाले के सामने वेश्या उसके धन की भरपूर प्रशंसा करे ॥ ५ ॥

व्रतवृक्षारामदेवकुलतडागोद्यानोत्सवप्रीतिदायव्यपदेशः ॥६॥

व्रतेति। आगाम्यष्टम्यां मम व्रतं तत्रानेन प्रयोजनमिति। दर्शे मया वृक्षो रोपितस्तस्य प्रतिष्ठेति। आम्राणां मधूकानां मया आरामः कार्यः। कृतस्य वा कर्णवेधादिकं कार्यमिति, देवकुलमुत्थाप्यमुत्थापितस्य वा प्रतिष्ठेति। तडागं पुष्करिण्यादिकं खातयितव्यं खानितस्य वा प्रतिष्ठेति। उत्सवः परश्वो भविता तत्रानेन प्रयोजनमिति। स्निग्धोऽयमागतस्तस्य प्रीत्या अवश्यं किञ्चिद्देयमिति तद्व्यपदेशः ॥ ६ ॥

व्रत के बहाने दान पूजा की वस्तुएँ ख़रीदने के लिए, बाग़ बगीचा लगाने के बहाने, मन्दिर आदि की प्रतिष्ठा कराने के बहाने, कुआँ, बावड़ी खुदवाने के बहाने, उत्सव के बहाने एवं अपने किसी प्रेमी या अतिथि को प्रेमोपहार देने के बहाने वेश्या अपने मिलने वालों से रुपए वसूल करे ॥ ६ ॥

तदभिगमननिमित्तो रक्षिभिश्चौरैर्वालङ्कारपरिमोषः ॥ ७ ॥

तदभिगमनमिति नायकाभिगमनं निमित्तं यस्य, रक्षिभिर्दाण्डपाशिकैः सहायैः कृतसंवित्कैश्चोरैर्वा कृतसंवित्कैरलङ्कारपरिमोषः कार्यः। येनेयमस्मन्मूलमागच्छन्ती मुषितेति ज्ञात्वा अन्यमलङ्कारं प्रयच्छति ॥ ७ ॥

अथवा यह बहाना करे कि आप से मिलने जा रही थी तो रास्ते में पुलिस ने या चोरों ने मेरे ज़ेवर उतार लिए ॥ ७ ॥

दाहात्कुड्यच्छेदात्प्रमादाद्भवने चार्थनाशः ॥ ८ ॥

दाहादिति। प्रमादादुत्थितेऽग्नौ च दग्धमिति नाशः प्रकाश्यः। न तु स्वयमादीप्यः। अनेकप्राण्युपघातदोषात्। कुड्यच्छेदादिति चौरैः सन्धिखातादपहृतमिति नाशः। चौरव्यञ्जनैर्वा कुड्यच्छेदान्नाशः। प्रमादादिति। मम मातुर्वा प्रमादाद् गृह एव द्रव्यनाशः ॥ ८ ॥

अथवा घर में आग लग जाने से, नक़ब हो जाने से या असावधानी से धन के नष्ट हो जाने का बहाना करे ॥ ८ ॥

तथा याचितालङ्काराणां नायकालङ्काराणां च तदभिगमनार्थस्य व्ययस्य प्रणिधिभिर्निवेदनम् ॥ ९ ॥

तथेति यथा द्रव्यस्य दाहादिना नाशः याचितालङ्काराणां कार्यवशादन्यतो मार्गितानां नायकालङ्काराणां तेन स्थापितानां दाहादिना नाशे प्रकाशितेऽवश्यं प्रयच्छति स्वकीयं च न मृगयते। प्रणिधिभिरिति परिचारकमुखा ये नायकेन प्रणिहितास्तैर्व्ययस्य निवेदनं नायकाग्रतस्त्वामभिगन्तुमस्याः सरकताम्बूलादिभिरियान् व्यय उत्थित इति ॥ ९ ॥

माँगे हुए अलंकारों को तथा नायक के दिए हुए अलङ्कारों को इस प्रकार नष्ट हुआ बताने से नायक अपने दिए हुए ज़ेवर माँगेगा नहीं और फिर वह वेश्या विश्वस्त सेवकों से नायक के पास सन्देश भेजकर उससे मिलने के समय जो खर्च हुआ हो उसे भी मँगा ले ॥ ९ ॥

तदर्थमृणग्रहणम्। जनन्या सह तदुद्भवस्य व्ययस्य विवादः ॥

तदर्थमिति नायकनिमित्तव्ययार्थम्। ऋणग्रहणं तत्समक्षमित्यर्थात्। जनन्येति। ऋणं किमिति गृह्णासि कथं त्वया शोधयितव्यमित्यभिदधत्या मात्रा सह तदुद्भवस्य नायकसम्बन्धिनः कृते नात्मीयस्य विवादः कर्तव्यः। किं तव अहमेवात्मानमपि विक्रीय शोधयिष्यामीति। तेन तथाविधं दृष्ट्वावश्यं ददातीत्यर्थः ॥ १० ॥

नायक की खातिरदारी के लिए कर्ज़ लेकर फिर अपनी माँ से उस कर्ज़ के बारे में झगड़ा करे ॥ १० ॥

सुहृत्कार्येष्वनभिगमनमनभिहारहेतोः ॥ ११ ॥

सुहृत्कार्येष्विति नायकमित्रोत्सवादिष्वनभिगमनं कार्यमाहूयमानयाऽपि। नायकेन शब्द्यमानया अपि, कारणमाह—अनभिहारहेतोरिति। अभिहारः उपायनं तन्मम नास्तीति ॥ ११ ॥

नायक के मित्र के यहाँ कोई जलसा होने पर नायक जब वेश्या से भी

वहाँ चलने के लिए कहे तब वह यह कह कर नहीं कर दे कि वहाँ जाकर उपहार देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है ॥ ११ ॥

तैश्च पूर्वमाहृता गुरवोऽभिहाराः पूर्वमुपनीताः पूर्वं श्राविताः स्युः ॥ १२ ॥

तैश्च पूर्वमाहृता इति सुहृद्भिरस्माकमभ्युत्सवे महान्तोऽभिहाराः । पूर्वमुपनीता इति नायकस्य । पूर्वं श्राविताः स्युः यावदेव सुहृत्कार्यं न संभवति । पूर्वं याचितं हि कार्यकाले प्रयच्छति, यदि न दद्यादवश्यमेव तदानीमनभिगमनम् ॥ १२ ॥

जब नायक मित्र के उत्सव में उपहार देने को राज़ी हो जाए तो उपहार ले आने से पूर्व उसे यह सुनाकर कहे कि तुम्हारे यहाँ उन्होंने कीमती उपहार दिए हैं और तुमने रख लिए हैं ॥ १२ ॥

उचितानां क्रियाणां विच्छित्तिः ॥ १३ ॥

उचितानामिति प्रत्यहं शरीरस्थित्यर्थं क्रियमाणानां विच्छेदः कार्यः, येनायमिदानीं शरीरस्थितिरप्यस्या न सम्भवतीति प्रयच्छति ॥ १३ ॥

शरीर की दैनिक सजावट और क्रिया कलाप इसलिए बन्द कर दे कि नायक यह समझ कर उसे धन दे कि अर्थाभाव के कारण इसकी यह दशा हो रही है ॥ १३ ॥

नायकार्थं च शिल्पिषु कार्यम् ॥ १४ ॥

नायकार्थं चेति । नायकादर्थो यस्मिन् तत् कार्यं, शिल्पिषु निर्देश्यमिति शेषः । अयमुत्कृष्टः शिल्पी कारयेयं बहु मृगयते, तच्च मम नास्ति यदि त्वं प्रयच्छसि कारयेयं नो चेद्यदा भविष्यति तदा कारयिष्यामीति ॥ १४ ॥

शिल्पियों से ऐसी चीजें बनवाले जिससे नायक को खर्च करना पड़े ॥ १४ ॥

वैद्यमहामात्रयोरुपकारक्रिया कार्यहेतोः ॥ १५ ॥

उपकारक्रिया उपकारकरणम् । कार्यहेतोरिति । इदं तत्कार्यं यदुपकृतो वैद्यो भेषजापदेशेन नायकेन दापयति । महामात्रश्चोपकृतो हठाददातुकामेनापि ॥ १५ ॥

वेश्या वैद्यों और राज पुरुषों को अपने कार्यों से इस प्रकार उपकृत कर दे कि वह मनचाहे नायक से मिलाने में अथवा नायक को उस पर खर्च करने में उसकी मदद करें ॥ १५ ॥

मित्राणां चोपकारिणां व्यसनेष्वभ्युपपत्तिः ॥ १६ ॥

मित्त्राणामिति नायकसम्बन्धिनामुपकर्तुं शीलं येषां नान्येषाम् । व्यसनेषु दैवमानुषेषु अभ्युपपत्तिः साहाय्यम् । तानि हि व्यसनेष्वभ्युपपन्नानि नायकमभिधायोपकुर्वन्ति ॥ १६ ॥

नायक के मित्रों तथा उसका उपकार करने वालों पर यदि विपत्ति पड़े तो वेश्या उनकी सहायता करे ॥ १६ ॥

गृहकर्म सख्याः पुत्रस्योत्सञ्जनम् दोहदो व्याधिर्मित्रस्य दुःखापनयनमिति ॥ १७ ॥

गृहकर्मच्छादनेष्टकादि कारयितव्यम् । सख्याः स्वस्याः पुत्रस्योत्सञ्जनं यस्योत्सवताप्रतिपत्तिः । क्रियाकालोपलक्षणं चैतत् । अन्नप्राशनं चूडाकरणादि वा करणीयम् । दोहदोऽभिलाषः, अस्मत्सख्याः । व्याधिर्वा आकस्मिकः प्रतिकर्तव्यः । मित्रस्य च युष्मदीयस्य पुत्रादिमरणान्ममेह दुःखमुत्पन्नं तस्य दर्शनादपनेतव्यमिति । इत्येवं गृहकर्मादि व्यपदेश्यमिति शेषः ॥ १७ ॥

नायक से धनलेने के लिए वेश्या घर बनवाने का, सहेली के पुत्र के किसी संस्कार का, गर्भावस्था की उत्कट इच्छा का, अथवा किसी रोग, दुःख दूर करने का बहाना करें ॥ १७ ॥

अलङ्कारैकदेशविक्रयो नायकस्यार्थे ॥ १८ ॥

अलङ्कारैकदेशविक्रय इति स्वस्यालङ्कारस्यैकदेशमाकृष्य तत्समक्षं विक्रेयो येनायं मदर्थं विक्रीणातीति प्रयच्छति ॥ १८ ॥

नायक के किसी काम के लिए वेश्या अपने कुछ जेवरों को बेच दे ॥ १८ ॥

तया शीलितस्य चालङ्कारस्य भाण्डोपस्करस्य वा वणिजो विक्रयार्थं दर्शनम् ॥ १९ ॥

तया नायिकया । शीलितस्य रुचितालंकारस्य भाण्डोपस्करस्य वा शीलितस्य । वणिजः कृतसङ्केतस्य नायकसमक्षं दर्शनं कर्तव्यं येनायं नास्त्यस्याः किमपि यच्छीलितमपि विक्रेतुमारब्धमिति प्रयच्छति ॥ १९ ॥

अपने प्यारे ज़ेवरों को, घर के बर्तन और सजावट की वस्तुओं को नायक के सामने ही व्यापारी को बेचने के लिए दिखाने का बहाना करे ॥ १९ ॥

प्रतिगणिकानां च सदृशस्य भाण्डस्य व्यतिकरे प्रतिविशिष्टस्य ग्रहणम् ॥ २० ॥

'भाण्डसम्प्लवे विशिष्टग्रहणम्' इति दत्तकसूत्रस्पष्टार्थं सूत्रान्तरमाह—प्रतिगणिकानामिति । भाण्डस्य सादृश्यात्स्वेन भाण्डेन व्यतिकरे परिवर्ते सति माभूत्पुनरेवमिति प्रतिशिष्टस्य प्रमाणसंस्थानाभ्यां ततोऽधिकस्य ग्रहणं वणिजो हस्तात् क्रमेण नायकसमक्षं कुर्यात् येनायं क्रीत्वा प्रयच्छति । प्रायशश्च वेश्यानां सामान्यानां कार्योत्पत्तावन्योन्यस्य भाण्डं याचितकं भवतीति प्रतिगणिकाग्रहणम् ॥ २० ॥

अथवा उसी के समान अन्य गणिकाओं के बर्तनों से अपने बर्तन बदल जाने के कारण अपने बर्तनों को बड़े कराने का बहाना करे ॥ २० ॥

पूर्वोपकाराणामविस्मरणमनुकीर्तनं च ॥ २१ ॥

अविस्मरणमिति विस्मरणे हि तवेदं मयोपहृतमिति यदि तेनाभिहिता किं ब्रूयात्। अनुकीर्तनं च तत्समक्षं मयोपकृतमत्र न नश्यतीति पुनः प्रयच्छति ॥२१॥

नायक द्वारा किए गए उपकारों को न भूलकर उनका बखान करे ॥ २१ ॥

प्रणिधिभिः प्रतिगणिकानां लाभातिशयं श्रावयेत् ॥ २२ ॥

प्रणिधिभिश्चारैः प्रतिगणिकानामात्मना तुल्यदानमनर्हाणां, लाभातिशयश्रावणम्। नायकसमक्षं भवदावासाद्विष्णुमित्त्रया लब्धमिदमधिकमित्यादि ॥२२॥

अपने विश्वस्त सेवकों द्वारा दूसरी गणिकाओं को होने वाले अधिक लाभ नायक को सुनवाए ॥ २२ ॥

तासु नायकसमक्षमात्मनोऽभ्यधिकं लाभं भूतमभूतं वा व्रीडिता नाम वर्णयेत् ॥ २३ ॥

तास्विति प्रतिगणिकासु यो लाभस्तस्मादप्यधिकमिति योज्यम्। भूतं वा नायकेन दत्तम्। अभूतमदत्तम्। व्रीडिता नामेति लज्जितेव वर्णयेत्। येन सोऽपि लज्जितः प्रयच्छेत् ॥ २३ ॥

यदि दूसरी गणिकाएँ उस वेश्या के यहाँ आई हों तो नायक के सामने लाभ को बढ़ा-चढ़ा कर उनसे बताए। यदि कुछ भी लाभ न हुआ हो तो नायक की ओर देखकर कुछ शरमा कर कहे ॥ २३ ॥

पूर्वयोगिनां च लाभातिशयेन पुनः सन्धाने यतमानानामाविष्कृतः प्रतिषेधः ॥ २४ ॥

पूर्वयोगिनामिति। पूर्वसंसृष्टानां विशीर्णानां लाभातिशयेनाधिकेन लाभेन पुनः सन्धाने यतमानानां यत्नं कुर्वतामाविष्कृतः प्रकटः प्रतिषेधः कर्तव्यः। तथासौ श्रुत्वा मय्यनुरक्तेति प्रयच्छति ॥ २४ ॥

पुराने प्रेमी जो सम्पर्क छोड़ चुके हों और अधिक धन देकर फिर से उस वेश्या से सहवास करना चाहते हों तो नायक के सामने साफ इनकार कर दे ॥ २४ ॥

तत्स्पर्धिनां त्यागयोगिनां निदर्शनम् ॥ २५ ॥

तत्स्पर्धिनां चेति नायकस्पर्धिनां त्यागयोगितानिदर्शनं प्रणिधिभिस्त्यागयोगित्वख्यापनार्थमित्यर्थः, येनायं श्रुत्वाऽवतार एषां मा भूदिति प्रयच्छति ॥ २५ ॥

नायक से स्पर्धा करने वाले उन व्यक्तियों को नायक को दिखाये जो अधिक धन देकर वेश्या से सहवास करना चाहते हों ॥ २५ ॥

न पुनरेष्यतीति बालयाचितकमित्यर्थागमोपायाः ॥ २६ ॥

न पुनरेष्यतीति । न पुनर्गृहमनेनागन्तव्यमिति बालेन प्रयुक्तेन याचितकं कार्यमिदं मे देहीति । बालवद्वा लज्जां त्यक्त्वा याचितव्यमित्यर्थः । एतेऽर्थागमोपाया देशकालावस्थापेक्षया प्रयोक्तव्याः । इत्यर्थागमोपायास्त्रिपञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ २६ ॥

यदि यह मालूम हो जाए कि अब यह दुबारा न आएगा तो बच्चों की तरह ज़िद करके ठुनुक-ठुनुक करके उससे धन माँगे ॥ २६ ॥

सक्ताद्वित्तादानमुपायैरुक्तं विरक्ते तु किं प्रतिपद्येतेति विरक्तप्रतिपत्तिरुच्यते । तत्र विरक्तस्य लक्षणमाह—

विरक्तं च नित्यमेव प्रकृतिविक्रियातो विद्यात् मुखवर्णाच्च ॥

नित्यमेवेति सर्वत्र क्रियासु वर्तमानम् । प्रकृतिविक्रियात इति स्वभावान्यथात्वेनेत्यर्थः । अनेनेङ्गितमन्यथावृत्तिलक्षणं दर्शयति । मुखवर्णाच्च विद्यादित्येव । मुखरागादित्यर्थः । कश्चिदेव मुखरागेऽभिरागं सूचयति तेनेङ्गिताकाराभ्यां रक्तवद्विरक्तमपि विद्यादित्युक्तम् ॥ २७ ॥

विरक्तिप्रतिपत्ति प्रकरण

वेश्या अनुराग न रखनेवाले व्यक्ति को उसके परिवर्तित स्वभाव और चेहरे के बनते बिगड़ते भावों को देखकर पहचान ले ॥ २७ ॥

तामन्यथावृत्तिमाह —

ऊनमतिरिक्तं या ददाति ॥ २८ ॥

अतिरिक्तं वा यथादीयमानात् ॥ २८ ॥

जब नायक वेश्या के प्रति विरक्ति रखने लगता है तो कभी कम और कभी ज्यादा धन दे देता है ॥ २८ ॥

प्रतिलोमैः सम्बध्यते ॥ २९ ॥

प्रतिलोमैः सम्बध्यते नायिकाया विपक्षैः सह प्रीतिं करोति ॥ २९ ॥

नायिका के विरोधियों से संबंध जोड़ने लगता है ॥ २९ ॥

व्यपदिश्यान्यत्करोति ॥ ३० ॥

व्यपदिश्य स्नातव्यमिति अन्यत्करोति सज्जीकृतेऽपि स्नानोपकरणे भुंक्ते ॥३०॥

जिस काम को कहे उसे न करके दूसरा करने लगता है ॥ ३० ॥

उचितमाच्छिनत्ति ॥ ३१ ॥

उचितमाच्छिनत्ति—प्रत्यहं दीयमानं न ददाति ॥ ३१ ॥

जो उचित काम होता है उसे भी रोक देता है ॥ ३१ ॥

प्रतिज्ञातं विस्मरति । अन्यथा वा योजयति ॥ ३२ ॥

प्रतिज्ञातमिदं मया देयमिति विस्मरति। मृग्यमाणे न प्रतिज्ञातमित्यन्यथा योजयति न त्विदमिति ॥ ३२ ॥

विरक्त नायक देने का वायदा करके भी मुकर जाता है, अथवा यह कह कर इनकार कर देता है कि मैंने कब वायदा किया था ॥ ३२ ॥

स्वपक्षैः संज्ञया भाषते ॥ ३३ ॥

स्वपक्षैरिति मित्रादिभिः सह संज्ञया भाषते न वचसा। माश्रौषीदियमिति ॥

अपने निजी मिलने वालों से इशारे से बातें करे ॥ ३३ ॥

मित्रकार्यमपदिश्यान्यत्र शेते ॥ ३४ ॥

मित्रकार्यमपदिश्य मयाद्य कर्तव्यमित्यन्यत्र शेते नायिकान्तरगृहे ॥ ३४ ॥

मित्र के कार्य का बहाना करके दूसरी जगह जा कर सो जाता है ॥ ३४ ॥

पूर्वसंसृष्टायाश्च परिजनेन मिथः कथयति ॥ ३५ ॥

पूर्वसंसृष्टायाश्च नायिकायाः परिजनेन परिचारकेण सह मिथो रहसि कथयति यत्पूर्ववृत्तं वर्तमाननायिकागतं वा ॥ ३५ ॥

पहिली प्रेमिका के सेवकों से इस नायिका के सारे भेद बता दे ॥ ३५ ॥

तस्मिन्विरक्त इति ज्ञातेऽनुष्ठानमाह—

तस्य सारद्रव्याणि प्रागवबोधादन्यापदेशेन हस्ते कुर्वीत ॥

प्रागवबोधादिति यावदसौ न जानाति ज्ञातोऽहमनया विरक्त इति। अन्यथा प्रतिविधानान्तरं चिन्तयेत्। तत्राप्यन्यापदेशेन। यत्किंचिद्व्याजं कृत्वेत्यर्थः ॥३६॥

नायक के इस प्रकार विरक्त हो जाने पर नायिका को चाहिए कि जब तक नायक को यह पता न चल पाए कि यह मेरी विरक्ति को जान गई है उससे पहले ही वह उससे जितना बन पड़े धन खींच कर अपने हाथ में कर ले ॥ ३६ ॥

तानि चास्या हस्तादुत्तमर्णः प्रसह्य गृह्णीयात् ॥ ३७ ॥

तानि चेति। सारद्रव्याणि, अस्या इति। नायिकाया हस्ताद्, उत्तमर्ण इति। यस्मादुत्तमर्णान्नायकार्थंमृणमाहृतं गृहीतवती स तया कृतसंकेतः प्रसह्याभिभूय गृह्णीयात् ॥ ३७ ॥

अथवा नायिका का सिखाया हुआ साहूकार जिसने उसे कर्ज़ दिया हो नायक का जो भी जमा किया धन है जबर्दस्ती नायिका से खींच ले ॥ ३७ ॥

विवदमानेन सह धर्मस्थेषु व्यवहरेदिति विरक्तप्रतिपत्तिः ॥

विवदमानेनेति मदीयमेतत्त्वं किं गृह्णासीति विवादं कुर्वता नायकेन सह धर्मस्थेषु प्राड्विवाकादिषु च व्यवहरेदुत्तमर्णः । यदि तु न विवदेत्सिद्धं कार्यम् । इति विरक्तप्रतिपत्तिश्चतुःपञ्चाशं प्रकरणम् ॥ ३८ ॥

यदि नायक साहूकार से लड़ जाए तो अदालत तक जाना चाहिए। विरक्तप्रतिपत्ति प्रकरण समाप्त ॥ ३८ ॥

विरक्तस्य स्वयमेव निष्कासितत्वान्न निष्कासनम् । यस्तु सक्तत्वात्स्वयं न निष्कसति तस्य निष्कासनक्रमा उच्यन्ते, तत्रायं प्रथमः कल्पो, यदस्यानुपासनम् । यदाह—

सक्तं तु पूर्वोपकारिणमप्यल्पफलं व्यलीकेनानुपालयेत् ॥ ३९ ॥

अल्पदत्तमपि व्यलीकेनापराधेनानुपालयेत् । तस्य सक्तत्वात् । पूर्वं बहुधा कृतोपकारोऽपि परामिच्छति तदा निष्कासयेदित्यर्थः ॥ ३९ ॥

निष्कासन-क्रम प्रकरण

वेश्या को चाहिए कि थोड़ा देने वाले पहले के उपकारी प्रेमी के अपराध करने पर भी उसे धक्का देकर न निकाले ॥ ३९ ॥

असारं तु निष्प्रतिपत्तिकमुपायतोऽपवाहयेत् । अन्यमवष्टभ्य ॥

असारं निर्द्रव्यम् । अपवाहयेन्निष्कासयेत् । यद्यपि तदात्वेनापि तथा भविष्यतीति चेदाह—निष्प्रतिपत्तिकमिति । निरनुष्ठानमित्यर्थः । ननु रतिफलत्वात्कथं निष्कास्य इति चेदाह—अन्यमवष्टभ्येति । अन्यस्मादुभयोपपत्तेः । वर्तमानादन्यं पूर्वसंसृष्टं विशीर्णमन्यं वासृत्यापवाहयेदिति योज्यम् । अन्यथा विपक्षस्याभावात् सत्यप्युपायप्रयोगे सक्तस्यानिष्कासनात् ॥ ४० ॥

धनहीन किन्तु अनुरक्त प्रेमी को किसी धनवान् अनुरक्त व्यक्ति को प्रतिपक्षी बना कर निकालना चाहिए। स्वयं नहीं ॥ ४० ॥

ते च निष्कासनोपायाः प्रकाशे रहसि वा स्थितस्य । तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

तदनिष्टसेवा । निन्दिताभ्यासः । ओष्ठनिर्भोगः । पादेन भूमेरभिघातः । अविज्ञातविषयस्य संकथा । तद्विज्ञातेष्वविस्मयः समानदोषाणां निन्दा । रहसि चावस्थानम् ॥ ४१ ॥

तस्य नायकस्य यदनिष्टं तस्य सेवा कर्तव्या येनायं प्रागेवेयं मम च्छन्दानुवर्तिनी संप्रति कामं परीवादयुक्ता विरक्तेति व्यावर्तते । निन्दितं गर्हितं तृणच्छेदलोष्टमर्दनादि तस्याभ्यासः पुनः पुनः करणं तदग्रतः । येनायं ममाशुभं कांक्षत

इति जानाति । ओष्ठनिर्भोगः तं दृष्ट्वा स्वमोष्ठं च क्रोडीकृत्य भयं निष्कासयेत् । पादेन भूमेरभिघातो भूमौ पादास्फालनम् । तदुभयं नित्यक्रुद्धताख्यापनार्थम् । अविज्ञातविषयस्य संकथेति यस्मिन्विषये नायकस्य परिज्ञानं नास्ति तस्मिन् तस्य संबन्धिनी शोभनमिदं जानातीति संकथा कर्तव्या यथास्य लोकमध्ये वैलक्ष्यं भवति । विज्ञातेष्वविस्मयो विरागख्यापनार्थम् । कुत्सा च दुःशिक्षितमस्य । दर्पविघातः शौर्यादिजनितदर्पस्यापनयनमन्यं प्रोत्साह्य । येनायं विलक्षीभवति । अधिकैः सह संवासो येन तेभ्यो बिभ्यन्न ढौकते । अनपेक्षणमिष्टानिष्टवस्तुष्ववज्ञाख्यापनार्थम् । समानदोषाणां निन्दा यथायं तद्द्वारेण मां कुत्सतीति जानाति । रहसि चावस्थानं संकथा वा ॥ ४१ ॥

नायक को एकान्त अथवा प्रकट में निकालने के लिए नायिका को ये उपाय करने चाहिए—जिसे नायक नहीं चाहता उसकी सेवा करना, निन्दनीय कामों को जान बूझ कर बार-बार करना, ओंठ चबाना, जमीन पर पैर पटकना, जिन बातों को न जाने उनकी चर्चा करना, जिन विषयों को नायक जानता हो उन पर आश्चर्य न प्रकट करना, और निन्दा करना, उसके अभिमान पर चोट करना, उसके गुरुजनों के साथ रहना, उसकी ओर उपेक्षा रखना, नायक में जो दोष हों उन्हीं के समान दोषों की बुराई करना, और एकान्त में बैठना ॥ ४१ ॥

तत्र रतमधिकृत्याह—

रतोपचारेषूद्वेगः । मुखस्यादानम् । जघनस्य रक्षणम् । नखदशनक्षतेभ्यो जुगुप्सा । परिष्वङ्गे भुजमय्या सूच्या व्यवधानम् । स्तब्धता गात्राणाम् । सक्थ्नोर्व्यत्यासः । निद्रापरत्वं च । श्रान्तमुपलभ्य चोदना । अशक्तौ हासः । शक्तावनभिनन्दनम् । दिवापि । भावमुपलभ्य महाजनाभिगमनम् ॥ ४२ ॥

रतार्थं सरकताम्बूलादिषूपचारेषु उद्वेग इत्यप्रतिग्रहणम् । प्रतिग्रहणे वा असौमनस्यम् । मुखस्यादानं मुखं चुम्बितुं न देयम् । जघनस्य रक्षणं स्प्रष्टुं वा न देयम् । नखदशनक्षतेभ्यस्तत्कृतेभ्यो जुगुप्सा । 'जुगुप्साद्यर्थानाम्' इत्यपादानसंज्ञा । भुजमय्येति । भुजौ व्यत्यस्य स्वस्कन्धयोर्निदध्यात् । ततो भुजमेकीकृत्य सूचीव सूची तया व्यवधानं परिष्वङ्गस्य । स्तब्धता गात्राणां कर्तव्या । नाकृष्टुं दद्यादित्यर्थः । सक्थ्नोर्व्यत्यासः सक्थिनी व्यत्यासयीत । यन्त्रयोगे प्रतिषेधार्थमूरू व्यत्यसेदित्यर्थः । निद्रापरत्वं चात्मनः ख्याप्यम् । श्रान्तमुपलभ्येति । यदि कथंचिद्रन्तुं प्रवृत्तस्तत्र श्रान्तं चोदयेत्प्रवर्तयितुम् । न पुरुषायितेन साहाय्यं दद्यात् ।

तत्र चोदितस्याशक्तौ हासः कर्तव्यः पाष्र्ण्यभिहत्य यथायं विरक्तीभवति । शक्तावनभिनन्दनं वैराग्यख्यापनार्थम् । दिवापीति । अस्त्येव कश्चित्कामगर्दभो यः प्रतिषिद्धमपि दिवामैथुनमाचरति । भावमुत्कण्ठां संप्रयोगेच्छामुपलभ्य चेङ्गिताकाराभ्यां महाजनाभिगमनं रतिगृहान्निर्गत्य । तदिच्छाव्याघातार्थम् ॥ ४२ ॥

जिस प्रेमी को वेश्या अपने यहाँ से हटाना चाहती हो तो संभोगकाल में उसके साथ यह व्यवहार करे—रति के निमित्त दिए जाने वाले पान, सुंगधि आदि को न स्वीकार करे, मुख को न चूमने दे। जाँघों में हाथ न फेरने दे। पहले कभी संभोगकाल में नायक द्वारा नखक्षत, दन्तक्षत किए जाने की निन्दा करे। आलिंगन करते समय दाहिने बाएँ हाथ की कैंची बनाकर सीने को ढक ले। शरीर के अंगों को तान कर कड़ा कर दे जिससे खींचे न जा सकें। दोनों जाँघों को एक दूसरे पर चढ़ा कर टिपिट ले। संभोग के अवसर पर नींद आने का बहाना करे, किसी प्रकार नायक यदि संभोग में प्रवृत्त होकर स्खलित होने को हो तो उसे उसकी मर्दानगी का उलाहना देते हुए कहे कि बस इतना ही जोर है। यदि नायक की संभोग शक्ति कमज़ोर हो तो तालियाँ बजाकर उसकी खिल्ली उड़ाए। और प्रचण्डवेग हो तो उसका अभिनन्दन न करके उदासीन बनी रहे। दिन में मैथुन करने पर उसे कामगर्दभ कह कर उसकी बुराई करे। यदि नायक की इच्छा सहवास करने की हो तो उसे शयनागार से निकाल कर किसी बड़े आदमी से मिलने चली जाए।

ये उपाय केवल संभोगकाल में ही उपयोग में लाए जाएँ ॥ ४२ ॥

सङ्कथामधिकृत्याह—

वाक्येषु च्छलग्रहणम् । अनर्मणि हासः । नर्मणि चान्यमपदिश्य हसति वदति तस्मिन्कटाक्षेण परिजनस्य प्रेक्षणं ताडनं च । आहत्य चास्य कथामन्याः कथाः । तद्व्यलीकानां व्यसनानां चापरिहार्याणामनुकीर्तनम् । मर्मणां च चेटिकयोपक्षेपणम् ॥४३॥

वाक्येष्विति—विरूपकमुक्तमिति । अनर्मणीति—क्रीडारहितेऽपि संकथने हासोऽकस्मात्कर्तव्यः येनायं विनैव क्रीडाक्रियया मामुपहसतीति मन्यते । क्रीडायां प्रस्तुतायां वदति तस्मिन्नायके हसति । तेनाभिधीयमानादन्यमन्यमर्थमपदिश्य परिजनस्य कटाक्षेण प्रेक्षणं कर्तव्यम् । ताडनं च सहासं हस्तेन । येनान्यायां जानाति नाकस्मात्कथायां रमत इति । आहत्य चेति । तेन क्रियमाणां कथामपास्यान्याः कथाः कर्तव्याः । तद्व्यलीकानां नायकापराधानाम् । व्यसनानां द्यूतादीनाम् । अपरिहार्याणामिति यान्युभयान्यपि परिहर्तुमशक्यानि तेषामनुकी-

र्तनं वैराग्यजननार्थम् । मर्मणां चानुकीर्तनं येषूक्तेषु दुःखमास्ते । चेटिकोपक्षेपणं चेटिकामुपक्षिप्य सर्वमभिधापयेत् ॥ ४३ ॥

नायक को हटाने के लिए इस विषय की बातें नायिका छेड़े—छल-कपटभरी बातें, बिना खेल के उपहास। खेल में दूसरे के बहाने उपहास करना, उसके कुछ कहने पर उसी को लक्ष्य करके अपने परिजनों की ओर कनखियों से देखना अथवा ताड़ना देना। उसकी बात को बीच में काट कर दूसरी बात कहना। नायक के ऐसे दोषों और अवगुणों का ज़िक्र करना जिन्हें वह न छोड़ सके। अपनी सेविका पर ढाल कर उसके गुप्त रहस्यों का उद्घाटन ॥ ४३ ॥

एभिरुपायैर्निष्क्रमणयोग्यतामापादितस्योपायद्वयं यतः पुनर्नागच्छतीति। यदाह—

आगते चादर्शनम्। अयाच्ययाचनम्। अन्ते स्वयं मोक्षश्चेति परिग्रहकस्येति दत्तकस्य ॥ ४४ ॥

आगते चादर्शनमिति। यावद्यावदागच्छति तावत्तावदात्मानं न दर्शयेत्। पश्यति चेदयाच्ययाचनम्। यन्न याचितुमर्हति तद्याचेत। अन्ते चावसाने मोक्षः स्वयमेव परित्यागः कर्तव्यः। तस्योपायैः प्रायेण निवारितत्वात्। परिग्रहकस्येति। वेश्याया गम्यस्य यः परिग्रहस्तस्य विधिरेतावानेव दत्तकप्रोक्तो न मयाभिहितः। तेन हि गणिकानां नियोगात्संक्षेपेणाभिधातुमीप्सितत्वात् ॥ ४४ ॥

उपर्युक्त बातें कह कर नायक को मानसिक चोट पहुँचाने के बाद निम्नांकित उपायों द्वारा उसे निकाल बाहर करे—नायक के आने पर उससे भेंट न करे, न मांगने योग्य वस्तुएँ माँगे और अन्त में स्वयं नौकरों से धक्का देकर निकलवा दे। यह विषय क्रम आचार्य दत्तक का कहा हुआ है ॥ ४४ ॥

यत्तु तत्सेवकभूतं विशीर्णप्रतिसन्धानादिकमपि बाभ्रव्योक्तं तदहं वक्ष्यामीति मन्यते। यदि परिग्रहः कर्तव्योऽनेनाधिकरणेन कथ्यते। कथं वैशिकमित्युच्यत इत्याह—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

परीक्ष्य गम्यैः संयोगः संयुक्तस्यानुरञ्जनम्।
रक्तादर्थस्य चादानमन्ते मोक्षश्च वैशिकम् ॥ ४५ ॥

परीक्ष्येति सहायगम्यागम्यगमनकारणचिन्तां कृत्वेत्यर्थः। गम्यैः संयोगो गम्योपावर्तनेन। संयुक्तस्यानुरञ्जनं कान्तानुवृत्तैः। रक्तादर्थस्य चादानं तदुपायैः। अतो मोक्षः स निष्कासनक्रमैः। एतत्सर्वं वेश्योचितं न कुलयोषिदुचितम्। तत्र वैशिक-

मिति संज्ञितम्। यदाह कात्यायनः—'वेशं वेश्याजनोचितम् इति सप्रयोजनमस्येति वैशिकम्' ॥ ४५ ॥

इस विषय के दो प्राचीन श्लोक हैं—वेश्या अपने मिलने वालों की परीक्षा करके उनसे समागम करे। जिससे संयोग हो जाए उसे अपने पर अनुरक्त करे। रंगीन उपायों द्वारा उस का धन खींचे। और अन्त में धता बता कर उसे निकाल दे ॥ ४५ ॥

तस्य वेशस्य प्रयोजनमाह—

एवमेतेन कल्पेन स्थिता वेश्या परिग्रहे।
नातिसन्धीयते गम्यैः करोत्यर्थांश्च पुष्कलान् ॥ ४६ ॥

एवमिति। कल्पेनेति वैशिकाख्येन। नातिसन्धीयते नातिवञ्च्यते पुष्कलानिति अनेकानित्यर्थः। इति निष्कासनक्रमाः पञ्चपञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणेऽर्थागमोपाया विरक्तलिङ्गानि विरक्तप्रतिपत्तिर्निष्कासनक्रमास्तृतीयोऽध्यायः।

उपर्युक्त विधि से यदि वेश्या मिलन, समागम, अर्थसंग्रह में स्थिर रह कर अपने प्रेमियों को धोखा नहीं देती तो वह विपुल धन एकत्र कर लेती है ॥४६॥

यह वैशिक अधिकरण आचार्य दत्तक ने वीरसेना वेश्या की प्रार्थना पर लिखा था, जिसे वात्स्यायन ने कामसूत्र में स्थान दिया है। आचार्य दत्तक वेश्या के शील, स्वभाव और आचरण के महान् पारखी थे, उन्होंने इस अधिकरण में वेश्याओं का जो वृत्त बताया है वह संक्षिप्त होते हुए सर्वांगीण और पूर्ण है।

इस अधिकरण के समस्त वेश्यावृत्त का सार हमें दशकुमारचरित के अपहारवर्मा के चरित में मुनि मरीच और काममंजरी वेश्या के संवाद में मिलता है। वेश्याओं की मनोवृत्ति, उनके रहस्यमय चरित और दुर्भेद्य व्यवहार का सचित्र चित्रण करती हुई काममंजरी कहती है—वेश्याओं की पैदायशी प्रवृत्ति यह होती है कि लड़की के पैदा होते ही उसे जन्म से ही सर्वांगसुन्दरी बनाने की चेष्टा की जाती है। अंग-प्रत्यंग की गठन सुघर और आकर्षक बनाने के लिए उन प्रयोगों को उपयोग में लाया जाता है जो सौन्दर्यशास्त्र और कामशास्त्र में लिखे रहते हैं। बचपन से ही लड़कियों

को भोजन संतुलित ढंग का दिया जाता है जिससे शारीरिक विकारों का शमन हो और रूप, लावण्य की वृद्धि हो। बुद्धि प्रखर हो। पाँच वर्ष की आयु पूरी होने पर उन लड़कियों को इस प्रकार छिपा कर रखा जाता है कि पिता भी न देख सके। इसी आयु से उन्हें चौसठ कलाओं की शिक्षा देती हैं, विभिन्न भाषाएँ और बोलियों का ज्ञान कराया जाता है। सभी प्रकार के द्यूत, छल, कपट के व्यवहार सिखाए जाते हैं। संभोग कलाओं की शिक्षा ऐसे पुरुष से दिलाती हैं जिन पर उन्हें यह विश्वास हो कि बिटिया को अधिक कष्ट न पहुँचाएगा और किसी से बताएगा भी नहीं। लड़कियों का जन्म-दिवस बड़े धूम-धाम से मनाती हैं। जब किसी जलसे या उत्सव में ले जाती हैं तो खूब आकर्षक ढंग से सजाकर ले जाती हैं।

लड़की की उम्र जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे ही उसके रूप, गुण, शील, स्वभाव और सौन्दर्य की प्रशंसा उन व्यक्तियों द्वारा कराती हैं, जो सौन्दर्यशास्त्र, कलाशास्त्र, कामशास्त्र के विशेषज्ञ और समीक्षक माने जाते हैं। ज्योतिषियों को धन देकर लड़की को शुभलक्षणा, सुभगा प्रसिद्ध कराती हैं। विट, विदूषक, पीठमर्द, दूतियों और भिखारिनों से बेटी के सौन्दर्य, तारुण्य और माधुर्य की प्रशंसा का प्रचार कराती हैं। जब युवती वेश्या की खूबियाँ सुनकर मनचले युवक भौंरे बनकर उस पर गूँजना शुरू करते हैं तो प्रथम सम्भोग की लम्बी फीस नियत कर देती हैं। संभोग के लिए आकुल-व्याकुल तरुणों की परीक्षा करती हैं और जब देख लेती हैं कि अमुक व्यक्ति उम्र से, धन से, उदारता से, कला-कौशल की प्रवीणता से, शील-सौजन्य और माधुर्य से सम्पन्न है और बेटी पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार है तो उसे प्रथम संभोग का अवसर प्रदान करती हैं। अथवा विशेष धनवान व्यक्ति से चुपके-चुपके धन लेकर गुप्त संभोग करा देती हैं और लड़की को 'अभी अक्षतयोनि है' प्रसिद्ध रखती हैं। या किसी मनचले कुलीन युवक से विपुल धन लेकर उसे फँसा देती हैं और फिर उसके अभिभावकों से तगादा कर धन ऐंठती हैं। उनसे यदि अर्थसिद्धि नहीं होती तो अदालत का दरवाज़ा खटखटाती हैं। यदि कोई रूप, गुण, यौवनसंपन्न तरुण लड़की पर अनुरक्त हो जाता है तो उसकी माँ उस लड़की को उसकी एकचारिणी प्रेमिका बनाकर उसे खूब मूंड़ती है। एकचारिणी बन कर वेश्या अपने प्रेमी से जिन उपायों से धन-संपत्ति चूसती है उन्हें कामसूत्रकार ने बड़े विस्तार से बताया है।

दशकुमारचरितकार ने यह भी बताया है कि जो प्रेमी, नायिका पर आसक्त हो किन्तु धन न दे सके उसे उपायों द्वारा नायिका या उसकी माँ

बड़े जतन से हटा देती है। उसे हटाने के लिए उसका प्रतिद्वन्द्वी खड़ा कर देती हैं। जिसका सर्वस्व हरण कर उसे बिल्कुल निःसत्व बना देती हैं उसे तो ठोकर मार कर जीने से ढकेल देती हैं।

वेश्या की वृत्ति और उसके धन्धों तथा दन्द-फन्दों को दण्डी ने दशकुमारचरित में वेश्या के मुँह से ही कहला कर कामसूत्र के वैशिक अधिकरण की सारी बातें बता दी हैं। वेश्या का चरित्र कुलीन और आभिजात्य चरित्र से विपरीत होता है, जो वेश्या इस विपरीत आचरण को ग्रहण नहीं करती वह वेश्या नहीं सती साध्वी भार्य्या कही जाती है। वसंतसेना ऐसी ही गणिका थी जो चारुदत्त पर उसी प्रकार आसक्त रही जैसे एक पतिव्रता अपने पति पर रहती है। उसका यह आचरण वेश्याओं के आचरण के विरुद्ध था, जिसे उसके अनुचर सहायक बरदाश्त नहीं कर सकते थे। वसन्तसेना के इस वेश्या-धर्म के विपरीत आचरण को देखकर उसके विट ने उसे वेश्या-धर्म समझाते हुए शिक्षा दी कि तुम्हें अपने निवासस्थान को इस प्रकार सजाना चाहिए कि कामी तरुण भ्रमर बनकर हर समय गूंजा करें, तुम्हें अपने यौवन और शरीर को खुले बाजार की बिक्री की वस्तु के समान रखना चाहिए, कि जो भी पैसा दे वही खरीद ले। तुम्हारा प्रयाजन केवल धन ही होना चाहिए। जो धन दे वही तुम्हारा प्रेमी है, जो न दे सके उसे धक्का देकर बाहर कर देना चाहिए। तुम अपने को पथ की लता समझो, जो भी पथिक इस रास्ते से गुज़रे चाहे नीच हो या ऊँच तुम्हारा स्पर्श कर ले।[1]

वसन्तसेना, तुम वह बावड़ी हो जिसमें एक विद्वान् ब्राह्मण और म्लेच्छ समान भाव से उतर कर स्नान करते हैं। तुम वह फूली हुई लता हो जिसे कौआ और मोर दोनों झुका लेते हैं। तुम वह नाव हो जिस पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी बैठ कर पार होते हैं। वसन्तसेना, जिस प्रकार नाव, बावड़ी और लता किसी को ऊँच-नीच नहीं समझते, उसी तरह तुम्हें भी समता का भाव रखना चाहिए. जो भी धन लेकर आए उसी को अपना नायक बना लिया करो।[2]

---

१. तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो, विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं, सममुपचर भद्रे सुप्रियं चाप्रियं च॥
—मृच्छकटिक

२. वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे
त्वं वापीव लतेव नौरिव सदा वेश्यासि सर्वं भज॥ —मृच्छकटिक

वसन्तसेना को विट द्वारा दिया गया यह उपदेश वेश्या-धर्म का परिचायक है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वेश्या किसी की नहीं होती वह केवल धन से मुहब्बत रखती है। इस अध्याय में वेश्याओं की विरक्ति और नायक के निष्कासन के जो कारण बताए गए हैं उनमें मुख्य कारण दरिद्रता है। जब मनुष्य दरिद्र हो जाता है तो उसके स्वभाव और रहन-सहन में मलिनता आ जाती है, वह कंजूस हो जाता है और वेश्या जिसका प्रेम स्वार्थ पर आधारित रहता है उसका त्याग कर देती है।

किन्तु यह प्रवृत्ति केवल वेश्या जाति में ही नहीं देखी जाती, कुछ सती-साध्वी स्त्रियों को छोड़कर नारी जाति में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। स्त्रियाँ अधिकतर जिस पर आसक्त होती हैं उसकी किसी विशेषता पर ही। चाहे धन की विशेषता हो या कला अथवा रूप-यौवन की। यह प्रवृत्ति एकदेशीय नहीं संसार भर की स्त्रियों में पाई जाती है। वेश्या आखिर नारी ही है, भले ही व्यभिचार उसका पेशा हो किन्तु नारीहृदय और नारीस्वभाव उसमें रहता ही है। जैसे कुलीन समाज की स्त्रियों में न तो सभी सती-साध्वी होती हैं और न सभी कुलटायें—वैसे ही वेश्या समाज में सभी वेश्यायें न तो वसन्तसेना ही होती हैं और न सभी अर्थानुगामिनी।

आज हम सर्वत्र पति-पत्नी में मनोमालिन्य, गृह-कलह और तलाक आदि जो कार्यकारण और परिणाम देखते हैं उन सबके मूल में एक ही बात रहती है, पत्नी की इच्छा के अनुकूल पति में विशेषता का न होना।[1] वेश्याएँ नाज़-नखरे अधिक करती हैं, जरा-सी बात पर रोने और हँसने लगती हैं, अपना विश्वास सबको कराती हैं किन्तु दूसरों पर विश्वास नहीं करती हैं, इत्यादि। जो अवगुण या छलना हम वेश्याओं में पाते हैं वही सामान्य नारी में भी विद्यमान पाये जाते हैं। नीतिकारों ने इसे स्पष्ट स्वीकार करते हुए कहा है कि

---

१. दारिद्र्यादसहिष्णुता मलिनता कार्पण्यकालाऽज्ञता
पारुष्यादतिनिष्ठुरात् प्रणयिनो भूषानिषेधादपि।
मिथ्यादोषविशङ्कनादतिशयोद्योगाद्वियोगात्तथा
कार्कश्याद्वपुषो व्रजन्ति नियतं वैराग्यमुच्चैः स्त्रियः॥
नैनं पश्यति नास्य नन्दति सुहृन्मित्रे प्रतीपस्थिति-
र्योगे सीदति हृष्यतीव विरहे धाष्टर्यानन्नं चुम्बिता।
नास्मादिच्छति मानमीर्ष्यति वचः प्रत्युत्तरं नार्पये-
त्स्पर्शादुद्विजते स्वपित्युपगता शय्यां विरक्ता सती॥

कुलीन, शीलवान पुरुष ऐसी स्त्रियों को श्मशान का घड़ा समझ कर इनसे दूर रहे।[1]

दार्शनिक क्षेत्र में स्त्रियों की जो अतिशय निन्दा की गई है, उन्हें माया-रूपिणी और नरक का द्वार बताया गया है उसका कारण नारी स्वभाव की अस्थिरता और उसके हृदय का छिछलापन ही है।[2]

वेश्या हो या कुलवधू हो—नारी होने के कारण दोनों समानप्रसवा जाति की हैं। संसर्ग, वातावरण और परिस्थितियों के प्रभाव में पड़कर एक नारी वेश्या बनती है और एक नारी कुलवधू बनती है। किन्तु स्त्री स्वभाव से रहित दोनों नहीं हो सकतीं। इसीलिए नीतिकार ने बड़े समीक्षात्मक ढङ्ग से कहा है कि केवल नितंबिनी को छोड़कर और न कहीं विष है और न कहीं अमृत है। अनुरक्त होने पर स्त्री अमृत बनती है और विरक्त होने पर वही विष बन जाती है—

नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम्।
सैवामृतलता रक्ता विरक्ता विषवल्लरी॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणेऽर्थागमोपाया विरक्तलिङ्गानि विरक्तप्रतिपत्तिर्निष्कासनक्रमास्तृतीयोऽध्यायः।

—

१. एता हसन्ति च रुदन्ति च कार्यहेतो-
र्विश्वासयन्ति च परं न च विश्वसन्ति।
तस्मान्नरेण कुलशीलवता सदैव।
नार्य्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः॥

२. द्वारं किमेकं नरकस्य नारी।

चतुर्थोऽध्यायः

विशीर्णप्रतिसंधानप्रकरणम्

शास्त्रकार एव प्रकरणसम्बन्धमाह—

वर्तमानं निष्पीडितार्थमुत्सृजन्ती पूर्वसंसृष्टेन सह सन्दध्यात् ॥ १ ॥

वर्तमानमिति तस्यां यो वर्तते तमलक्तकवन्निष्पीडितार्थमुत्सृजन्ती यदा त्यक्तुकामा तदा, विशीर्णेनेति, पूर्वसंसृष्टेन निष्कासितेन सन्धित्सुना सह संदध्यात्। एवं सति 'अपवाहयेदन्यमवष्टभ्य' इत्यनुगतं भवतीति विशीर्णप्रतिसन्धानमुच्यते ॥

वेश्या जिसका धन चूस चुकी हो उसे छोड़ती हुई वह अपने पूर्व प्रेमी से सुलह कर ले ॥ १ ॥

विशीर्णस्यालक्तकवदुत्सृष्टस्य किं सन्धानेनेति चेदाह—

स चेदवसितार्थो वित्तवान्सानुरागश्च ततः सन्धेयः ॥ २ ॥

वित्तवानपि यदावसितार्थोऽवश्यं दास्यतीति। सानुरागश्च। अन्यथा विश्वसनार्थं यत्किञ्चिद्दत्त्वापि निष्कासितोऽहमनयेति विरक्तोऽपकुर्यात्। तत इति तस्मात्कारणात् सन्धेयः ॥ २ ॥

यदि वह धनवान् हो और धन देगा यह भी निश्चय हो, साथ ही अनुरक्त भी हो तो उसे फौरन् मिला लेना चाहिए ॥ २ ॥

सोऽप्यनया यदि न संसृष्टस्तत्र विधानान्तरमाह—

अन्यत्र गतस्तर्कयितव्यः। स कार्ययुक्त्या षड्विधः ॥३॥

अन्यत्र गत इत्यनेन षड्विधो विशीर्ण इति। तर्कयितव्य इति निरूप्यः। वक्ष्यमाणेन न्यायेन। सहसा न सन्धेयः। स इति योऽन्यत्र गतः। कार्ययुक्त्येति षड्विधः संसृष्टस्त्वेकविधः ॥ ३ ॥

अपने पास से हटा हुआ नायक दूसरी जगह गया होगा—यह जानने के लिए छह तरकीबें हैं ॥ ३ ॥

कार्ययुक्तिमाह—

इतः स्वयमपसृतस्ततोऽपि स्वयमेवापसृतः ॥ ४ ॥

इत इति। स्वदोष एवास्य, यदस्या नायिकातः स्वयमेवापसृत्यान्यत्र गतः, यत्रापि गतस्तत्रापि स्वयमेवापसृत इत्येकः ॥ ४ ॥

यहाँ से स्वयं हटा और वहाँ से भी स्वयं हटा ॥ ४ ॥

इतस्ततश्च निष्कासितापसृतः ॥ ५ ॥

इतस्ततश्चेति । अत्राश्रययोर्दोषो नाश्रितस्य दोषः । यस्मादितो निष्कासितोऽपसृत इत्याश्रयस्य दोषः । ततो यत्र गतस्ततोऽपि निष्कासित एवापसृत इति द्वितीयः ॥ ५ ॥

यहाँ से और वहाँ से दोनों जगहों से धक्का खा कर ही हटा है ॥ ५ ॥

इतः स्वयमपसृतस्ततो निष्कासितापसृतः ॥ ६ ॥

इतः स्वयमपसृत इत्याश्रितस्य दोषः ततोऽपि निष्कासितोऽपसृत इत्याश्रयस्य चेति तृतीयः ॥ ६ ॥

यहां से तो स्वयं हटा और वहां से निकाले जाने पर हटा ॥ ६ ॥

इतः स्वयमपसृतस्तत्र स्थितः ॥ ७ ॥

इतः स्वयमपसृत इत्याश्रितस्य दोषः तत्र स्थित इति नोभयोरिति चतुर्थः ॥७॥

यहां से स्वयं हटकर वहां स्थित हो गया ॥ ७ ॥

इतो निष्कासितापसृतस्ततः स्वयमपसृतः ॥ ८ ॥

इतो निष्कासितापसृत इत्याश्रयस्य दोषः । ततः स्वयमपसृत इत्याश्रितस्येति पञ्चमः ॥ ८ ॥

यहां से धक्के खाकर हटा और वहां से स्वयं हट गया ॥ ८ ॥

इतो निष्कासितापसृतस्तत्र स्थितः ॥ ९ ॥

इतो निष्कासितः सन्नपसृत इत्याश्रयदोषः, तत्र स्थित इति । नोभयोरपीति षष्ठः ॥ ९ ॥

यहाँ से निकाला जाकर वहाँ स्थित हो गया ॥ ९ ॥

एषु सन्धेयासन्धेयतया तर्कमाह—

इतस्ततश्च स्वयमेवापसृत्योपजपति चेदुभयोर्गुणानपेक्षी चलबुद्धिरसन्धेयः ॥ १० ॥

उपजपति चेदिति । यदि सन्धातुं पीठमर्दादिमुखेनोपसृत्य भणतीत्यर्थः, तत्र द्वितीयपक्षाभावात्तर्कयितव्य इति नोक्तम् । यदाह—उभयोरपीति—तस्यास्तस्याश्च, ताभ्यामनिष्कासितत्वात् । सतोऽपि गुणाननपेक्ष्य चलबुद्धित्वात्स्वदोषेणैवापसृतः । स संहितोऽपि न स्थायी । न च तस्मादर्थेन योग इत्यसन्धेयः ॥१०॥

यदि नायक यहाँ और वहाँ दोनों जगहों से स्वयं हटकर फिर आने को कहे तो वह दोनों प्रेमिकाओं के गुणों की परवाह न करने वाला चंचल बुद्धि का होता है, उससे फिर से संसर्ग न किया जाए ॥ १० ॥

इतस्ततश्च निष्कासितापसृतः स्थिरबुद्धिः। स चेदन्यतो बहु लभमानया निष्कासितः स्यात्ससारोऽपि तया रोषितो ममामर्षाद्बहु दास्यतीति संधेयः ॥ ११ ॥

इतस्ततश्च निष्कासित उपजपति चेदिति वर्तमाने। स्थिरबुद्धिः स्वयमनपसृतत्वात्। अत्र पक्षद्वयमप्यस्ति। स चेदिति। अत्र तर्कयितव्य इति नोक्तम्। चेच्छब्देनैव यद्यर्थेन तदर्थस्योक्तत्वात्। अन्यत इति। अन्यस्माद्गम्याद्बहु लभमानयापि निष्कासितः। संसारोऽपि सद्रव्योऽपि। ततश्च तया रोषितो जनितरोषोऽमर्षाद्बहु दास्यतीति ज्ञात्वा तदानीमेव संधेयः। तयैव रोषितत्वात् तस्यामनुशयं बध्नाति ॥ ११ ॥

जो यहाँ और वहाँ दोनों जगहों से निकाले जाने पर बिल्कुल संबंधविच्छेद कर देता है वह स्थिर बुद्धि का व्यक्ति होता है। यदि वेश्या ने दूसरों की अपेक्षा उस हटे हुए स्थिर बुद्धि के नायक से अधिक लाभ उठाया हो, धनी हो किन्तु नाराज कर दिया गया हो और वेश्या को यह विश्वास हो कि दूसरी पर क्रुद्ध होने के कारण मुझे अधिक धन देगा तो उससे अवश्य संधि कर लेनी चाहिए ॥ ११ ॥

निःसारतया कदर्यतया वा त्यक्तो न श्रेयान् ॥ १२ ॥

निःसारतया निर्द्रव्यतया ससारश्च कदर्यतया अवदान्यतया त्यक्तो निष्कासितोऽपि न श्रेयान्। संधातुमिहापि तुल्यत्वात् ॥ १२ ॥

यदि नायक निर्धनता या दुष्टता के कारण हटाया गया हो तो उससे दुबारा मिलना श्रेयस्कर नहीं ॥ १२ ॥

इतः स्वयमपसृतस्ततो निष्कासितापसृतो यद्यतिरिक्तमादौ च दद्यात्ततः प्रतिग्राह्यः ॥ १३ ॥

इतः स्वयमपसृतस्ततो निष्कासितापसृत इत्यत्राप्युपजपेदिति वर्तते। अत्रापि यदिशब्दात्तर्कयितव्य इति नोक्तम्। अतिरिक्तं पूर्वस्माद्दानात्। आदौ च यावन्न संप्रयोगः, कृतकृत्यस्य हि स्वयमपसर्पणसंभवात्। प्रतिग्राह्यः संधेयः। अत्र विपर्ययेणाप्रतिग्राह्य इत्यर्थोक्तो द्वितीयः पक्षः ॥ १३ ॥

एक वेश्या के यहाँ से खुद अलग हुआ दूसरी वेश्या के यहाँ से निकाला गया नायक यदि पेशगी धन दे तो उससे सहवास किया जा सकता है ॥ १३ ॥

इतः स्वयमपसृत्य तत्र स्थित उपजपंस्तर्कयितव्यः ॥१४॥

तर्कयितव्यः किमुपकर्तुं वोपजपतीति ॥ १४ ॥

यहाँ से स्वयं हटा और दूसरी जगह जाकर जम गया और फिर कुछ कहलाता है तो उसके कथन पर भली भाँति विचार कर लेना चाहिए ॥ १४ ॥

अत्र सन्धेयपक्षमाह—

विशेषार्थी चागतस्ततो विशेषमपश्यन्नागन्तुकामो मयि मां जिज्ञासितुकामः स आगत्य सानुरागत्वाद्दास्यति ॥ तस्यां वा दोषान्दृष्ट्वा मयि भूयिष्ठान्गुणानधुना पश्यति स गुणदर्शी भूयिष्ठं दास्यति ॥ १५ ॥

विशेषार्थितया यत्र गतस्तत्र विशेषं सुरतगतमपश्यन् । तस्या अविदग्धत्वात् । तत इति तस्याः सकाशात् । अस्मिन्मूलम्—आगन्तुकामो मयि दृष्टविशेषत्वात् । मां जिज्ञासितुकाम इति । तत्रत्य एव मयि जिज्ञासां कर्तुमिच्छुः किमियं मां स्वयमपसृतमिच्छति न वेति । सानुरागत्वाद्दास्यति दृष्टविशेषत्वात् । तस्यां वा दोषान्गुणविपर्ययान्दृष्टवान् । आगन्तुकाम इति योज्यम् ! सत्सु वा गुणेषु मयि भूयिष्ठान्प्रभूततमान्गुणानधुना पश्यति । तद्गुणान्स्तोकान्दृष्ट्वा स उभयस्मिन्नपि पक्षे मयि गुणदर्शी भूयिष्ठं प्रभूततमं दास्यति ॥ १५ ॥

यह नायक विशिष्टता को चाहता है इसीलिए मुझे त्याग कर वहाँ गया था, लेकिन मुझसे अधिक विशेषता उसमें न पाकर फिर वापस आना चाहता है और मेरे पास रहकर मेरी विशेषताओं को जानना चाहता है। मुझमें अनुरक्त है इसलिए यहाँ आकर जरूर धन देगा। अथवा दूसरी की अपेक्षा मुझमें विशेष गुणों को देखकर वह गुणग्राही नायक विपुल धन देगा ॥ १५ ॥

असन्धेयपक्षमाह—

बालो वा नैकत्रदृष्टिरतिसन्धानप्रधानो वा हरिद्रारागो वा यत्किंचनकारी वेत्यवेत्य संदध्यान्न वा ॥ १६ ॥

हरिद्राराग इव रागो यस्य न चिरस्थायी । मयि विरक्तो यत्र गतस्तत्राति-विरक्तः सुतरां गन्तुकामः किं दास्यति । यत्किंचनकारी वा सोऽनर्थमपि कुर्यात् । इत्येवमवेत्य ज्ञात्वा संदध्यात् । प्रथमे पक्षे । न वेति । नैव संदध्यात् इति द्वितीये ॥

यह बालक बुद्धि का नायक है, स्थिर चित्त एवं विचारशील नहीं है, हल्दी की तरह इसका अस्थायी रंग (राग) है। जो मन में आता है कर बैठता है—इन सब बातों पर विचार करके नायिका उसे देखे, यदि फिर से सहवास करने योग्य हो तो सहवास करे अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥

इतो निष्कासितापसृतस्ततः स्वयमपसृत उपजपंस्तर्कयितव्यः ॥ १७ ॥

तर्कयितव्य इत्युपकारापकाराभ्याम् ॥ १७ ॥

एक जगह से निकाला हुआ नायक दूसरी जगह जाकर वहाँ से स्वयं हट जाए और यदि फिर से मिलने के लिए सन्देश भेजे तो उस पर विचार करना चाहिए ॥ १७ ॥

अनुरागादागन्तुकामः स बहु दास्यति । मम गुणैर्भावितो योऽन्यस्यां न रमते ॥ १८ ॥

अनुरागादागन्तुकामः । सक्तस्य निष्कासितत्वात् । मम गुणैर्भावितो रञ्जितोऽयम् । योऽन्यस्यां न रमते । येन ततोऽपि स्वयमेवापसृतः ॥ १८ ॥

वह मुझ पर अनुरक्त होने के कारण आने की इच्छा कर रहा है इसलिए बहुत देगा । मेरे गुणों से प्रभावित है इसीलिए दूसरी में उसका मन नहीं रम रहा है ॥ १८ ॥

पूर्वमयोगेन वा मया निष्कासितः स मां शीलयित्वा वैरं निर्यातयितुकामो धनमभियोगाद्वा मयास्यापहृतं तद्विश्वास्य प्रतीपमादातुकामो निर्वेष्टुकामो वा मां वर्तमानाद्भेदयित्वा त्यक्तुकाम इत्यकल्याणबुद्धिरसन्धेयः ॥ १९ ॥

पूर्वमयोगेनेत्यन्यायेन निष्कासितः । स मां शीलयित्वेत्यनुरागप्रदर्शनेन वानुप्रविश्य वैरं निर्यातयितुकामः । प्रयच्छन्नप्यहमनया हठान्निष्कासित इति । धनमभियोगाद्वेति । अस्याभियोगमेव कुर्वत्यानया धनं बह्वपहृतमाकृष्टम् । संप्रयोगश्च कादाचित्कः कृतः । तद्धनं स्नेहोपनयनेन मां विश्वास्य प्रतीपमादातुकामः । निर्वेष्टुकामो वेति । निःपूर्वो विशतिर्निर्वेशे भृतौ वर्तते । इदानींतनसंप्रयोगे तदेव धनं निर्वेशं कर्तुकामो नान्यद्दातुकामः । मां वा वर्तमानादिति । निष्कास्यैनं येन सह वर्तेऽहं तस्माद्वर्तमानाद्दातुकामात् सन्धानेन मां भेदयति, मा भूदस्या लाभेन योग इति । स्वयं दास्यतीति चेदाह— त्यक्तुकाम इति । अकल्याणबुद्धिर्वैरनिर्यातनाद्यभिप्रायः ॥ १९ ॥

पहले मैंने इसे अन्यायपूर्वक निकाला था इसलिए अब यह मुझसे मिल कर अपना वैर निकालना चाहता है । मैंने दन्द-फन्द करके इसका सारा धन हरण कर लिया था, इसलिए अब यह मुझे विश्वास दिलाकर उस धन को निकालना चाहता है । अथवा मेरे वर्तमान प्रेमी को फोड़कर उसे मुझसे अलग करने के लिए मिलना चाहता है और फिर मुझे छोड़ देगा । इस प्रकार यह अशुभचिन्तक है, इससे सन्धि न करनी चाहिए ॥ १९ ॥

अन्यथाबुद्धिः कालेन लम्भयितव्यः ॥ २० ॥

अन्यथाबुद्धौ रागाद्दातुकामः कालेन । तदानीमेव तस्य निष्कासनेनापादित-वैकृतत्वात् । लम्भयितव्य इति प्रापयितव्यो न तु प्राप्यः । स्वातन्त्र्येण लाघवात् ॥ २० ॥

और यदि वह केवल अनुराग के कारण आना चाहता हो तो उसे कुछ समय बाद मिलाना चाहिए जल्दी न करे ॥ २० ॥

इतो निष्कासितस्तत्र स्थित उपजपन्नेतेन व्याख्यातः ॥२१॥

एतेनेत्यनन्तरोक्तेन विशीर्णेन व्याख्यातः । अयमपि तथैव तर्कयित्वा अकल्याणबुद्धिरसन्धेयोऽन्यथाबुद्धिः कालेन लम्भयितव्य इति । इतो निष्कासितस्तत्र स्थित उपजपंश्चेत्तर्कयितव्यः ॥ २१ ॥

जो अपने यहाँ से निकाल दिए जाने के बाद दूसरी जगह स्थित हो गया हो और फिर मिलने के लिए किसी से कहलाए तो यदि मिलने योग्य हो तो मिले अन्यथा नहीं ॥ २१ ॥

तेषूपजपत्स्वन्यत्र स्थितः स्वयमुपजपेत् ॥ २२ ॥

येऽन्यत्र गता उपगतास्तेषूपजपत्सु अनुपजपत्सु वा लाघवात् । अन्यत्र स्थित इति द्विधा वर्तमानस्त्याज्य इतरश्चेति । तत्रापि स्थितौ कारणापेक्षया स्वयमुपजपेत् ॥ २२ ॥

जो अपने यहाँ से जाकर दूसरी नायिका के यहाँ टिक जाए और सन्देश भेजने पर भी वहाँ जमा रहे तो उससे स्वयं बातें चलानी चाहिए ॥ २२ ॥

बहूनि कारणान्याह—

व्यलीकार्थं निष्कासितो मयासावन्यत्र गतो यत्नादानेतव्यः ॥

व्यलीकमपराधो यदन्यस्याभिगमनं तन्निमित्तं मया निष्कासितः स पुनर्ददातीति यत्नादानेतव्यः ततोऽपि फलेन योगात् ॥ २३ ॥

मैंने इस नायक को अपराध पर निकाला था और मेरे यहाँ से जाकर दूसरी नायिका के यहाँ टिक गया है । इसलिए इसे कोशिश करके फिर बुलाना चाहिए ॥ २३ ॥

इतः प्रवृत्तसंभाषो वा ततो भेदमवाप्स्यति ॥ २४ ॥

इतः प्रवृत्तसंभाषो वेति । मामुद्दिश्य यो वृत्तसंभाष इदं दास्यामीति तत इति यत्र गतस्तस्याः सकाशाद्भेदमवाप्स्यति ॥ २४ ॥

यदि यहाँ से बात चलाई जाती है तो वह वहाँ से अलग होकर आ सकता है ॥ २४ ॥

तदर्थाभिघातं करिष्यति ॥ २५ ॥

किमन्यस्या ददासीति तद्दर्पविघातं करिष्यामि। येन तद्दर्पो वर्तमानो विलक्षीभूतो निष्क्रामति ॥ २५ ॥

मेरे यहाँ आ जाने पर वह उसको आर्थिक क्षति पहुँचाएगा ॥ २५ ॥

अर्थागमकालो वास्य। स्थानवृद्धिरस्य जाता। लब्धमनेनाधिकरणम्। दारैर्वियुक्तः। पारतन्त्र्याद्व्यावृत्तः। पित्रा भ्रात्रा वा विभक्तः ॥ २६ ॥

अर्थागमकालो वास्य वाणिज्यया सेवया वा। स्थानवृद्धिर्वा ग्रामादेरधिकस्य लाभात्। लब्धं वा तेनाधिकरणमक्षपटलादिकम्। दारैर्वियुक्तो ममेदानीमवसरः प्राप्तः। पारतन्त्र्याद्व्यावृत्तः कर्मस्थानेषु गृहे वा स्वतन्त्रः शुभं दास्यति। पित्रा जीवतैव विभक्तो भ्रात्रा पितरि मृते ॥ २६ ॥

इसे व्यापार या नौकरी से अधिक आमदनी हुई है; ज़र-जमीन की भी तरक्की हुई है, अक्षपटल (ए० जी० आफिस), अदालत आदि से धन मिल गया है। अपनी स्त्री से, पिता और भाई से अलग हो जाने से परम स्वतंत्र हो गया है, इसलिए यही समय है इससे धन पैदा करने का ॥ २६ ॥

अनेन वा प्रतिबद्धमनेन सन्धिं कृत्वा नायकं धनिनमवाप्स्यामि ॥ २७ ॥

अनेन वा प्रतिबद्धमिति तस्य मित्रत्वात्। अनेन सन्धिं कृत्वा संक्रमस्थानीयेन ॥ २७ ॥

मेरा नायक इससे मिला हुआ है, मैं इससे मिलकर उस धनवान को प्राप्त कर लूंगी ॥ २७ ॥

विमानिता वा भार्यया तमेव तस्यां विक्रमयिष्यामि ॥२८॥

विमानिता वेति मत्तो विशीर्णः स्वभार्यया संसृष्टः। तां चास्माद्विमर्शादवमानितां चानाय्य तमेव सन्धाय तस्यां विक्रमयिष्यामि विग्रहं कारयिष्यामि। आक्रोशस्य निर्यातनार्थम् ॥ २८ ॥

उसने मेरा अपमान किया है, अथवा अपनी स्त्री से जाकर मिल गया है। अब मैं उसे उसकी स्त्री से अलग करके दोनों को लड़ा दूंगी ॥ २८ ॥

अस्य वा मित्रं मद्द्वेषिणीं सपत्नीं कामयते तदमुना भेदयिष्यामि ॥ २९ ॥

अस्य वा विशीर्णस्य मित्रं शक्तिद्रव्यसम्पन्नं मद्द्वेषिणीमपकर्तुंकामां मम

सपत्नीं वर्तमानां भूतपूर्वां वा कामयते तन्मित्त्रमधुना विशीर्णेन भेदयिष्यामि येन सा लाभेन न योक्ष्यते मां चोपकरिष्यति ॥ २९ ॥

इसका मित्र मुझसे वैर रखने वाली मेरी सौत को चाहता है, तो इसके मित्र को इससे लड़ा दूंगी ॥ २९ ॥

चलचित्ततया वा लाघवमेनमापादयिष्यामीति ॥ ३० ॥

चलचित्ततया वेति । इतोऽन्यत्र गतस्ततोऽप्यन्यत्र गतस्तमपि चलचित्ततया लाघवमापादयिष्यामि ॥ ३० ॥

इसे चंचल चित्त प्रसिद्ध करके दूसरी वेश्याओं की दृष्टि से गिरा दूंगी ॥ ३० ॥

स्वयमुपजपेदित्युक्तं तस्य स्वरूपमाह—

तस्य पीठमर्दादयो मातुर्दौःशील्येन नायिकायाः सत्यप्यनुरागे विवशायाः पूर्वं निष्कासनं वर्णयेयुः ॥ ३१ ॥

तस्येति विशीर्णस्य । मातुर्दौःशील्येनेति मातैवास्या दुःशीला । तया तथार्थपरतया त्वं निष्कासितः । नायिका त्वय्यनुरक्तैव । केवलं परवशा सती ॥३१॥

वेश्या के पीठमर्द आदि विश्वस्त सेवक जाकर नायक से कहें कि वह आप पर अनुरक्त है किन्तु माँ की कुटिलता से विवश होकर उसने आपको निकाल दिया है ॥ ३१ ॥

वर्तमानेन चाकामायाः संसर्गं विद्वेषं च ॥ ३२ ॥

वर्तमानेन गम्येन यः संसर्गः संप्रयोगो नायिकाया अनिच्छन्त्याः औषधपानवत् । विद्वेषः परमार्थतः यत्तस्य दर्शनपथेऽपि न तिष्ठतीति वर्णयेयुः ॥ ३२ ॥

जो इस समय उसका प्रेमी है उससे बिना अनुराग के सहवास कराती है दिल से तो उससे घृणा करती है ॥ ३२ ॥

तस्याश्च साभिज्ञानैः पूर्वानुरागैरेनं प्रत्यापयेयुः ॥ ३३ ॥

तस्याश्चेति नायिकायाः । साभिज्ञानैरिति साभिज्ञानं वक्ष्यति । पूर्वानुरागैरिति पूर्वं विशीर्णे येऽनुरागा आसंस्त एनं प्रत्यापयेयुर्नायकं बोधयेयुः । येन तथैव प्रतिपद्यते ॥ ३३ ॥

वे पीठमर्द आदि सेवक निकाले गए नायक से निकलने से पहले का नायिका का अनुराग बताकर उसे विश्वास दिलाएँ ॥ ३३ ॥

अभिज्ञानं च तत्कृतोपकारसंबद्धं स्यादिति विशीर्णप्रतिसंधानम् ॥ ३४ ॥

तत्कृतोपकारसंबद्धमिति नायकेन यः कृत उपकारोऽर्थेनामर्थप्रतीकारेण वा तेन युक्तं स्यात् । कृतज्ञतासूचनार्थम् ॥ ३४ ॥

उसके प्रेम की पहचान उसके किए गए उपकारों से संबद्ध करानी चाहिए । यह वियुक्त नायक का मिलन पूर्ण हुआ ॥ ३४ ॥

अपूर्वस्यासंभवे विशीर्णप्रतिसंधानमुक्तं, सम्भवति चापूर्वे, विशीर्णे चोपजपति सति, केन संधानं युक्तमित्याह—

अपूर्वपूर्वसंसृष्टयोः पूर्वसंसृष्टः श्रेयान् । स हि विदितशीलो दृष्टरागश्च सूपचारो भवतीत्याचार्याः ॥ ३५ ॥

विदितशील इति सहवासेन ज्ञातस्वभावः । दृष्टानुरागश्च पूर्वमासक्तत्वात् । स ह्युभयधर्माध्यासितत्वात्कान्तानुवृत्त्या सुखेनोपचर्यत इति ॥ ३५ ॥

वेश्या से पहले मिले हुए और कभी न मिले हुए व्यक्तियों में से पहले मिला हुआ व्यक्ति उत्तम होता है । क्योंकि उसके शील-स्वभाव से परिचय रहता है । उसका प्रेम पहचाना हुआ रहता है । उससे अपनी खुशामद आसानी से करायी जा सकती है ।—ऐसा आचार्यों का मत है ॥ ३५ ॥

पूर्वसंसृष्टः सर्वतो निष्पीडितार्थत्वान्नात्यर्थमर्थदो दुःखं च पुनर्विश्वासयितुम् । अपूर्वस्तु सुखेनानुरज्यत इति वात्स्यायनः ॥

नात्यर्थमर्थद इति । अर्थार्थं सन्धीयते । स चेन्न यथावत् किं तेन संहितेन । दुःखं च पुनर्विश्वासयितुम् । तस्य सत्यपि विदितशीलत्वे दृष्टानुरागत्वे च निष्कासनोत्पादितवैकृत्यात् । सुखेनानुरज्यत इति तेन तद्दोषस्यादृष्टत्वात् । तया वा अनिष्पीडितार्थत्व र्थमर्थद इत्यर्थोक्तम् । पूर्वो द्विविधः—अन्यवेश्यासंसृष्टोऽसंसृष्टश्चेति । संसृष्टोऽपि द्विविधः—निष्कासितोऽनिष्कासितश्च । तेषां संधानोपायो गम्योपावर्तने द्रष्टव्यः ॥ ३६ ॥

वात्स्यायन का मत है कि—धन प्राप्त करने के लिए ही मिला जाता है यदि पहला नायक धन से खोखला बनाकर निकाला गया हो तो उसे फिर मिलाने से क्या मिलेगा । इसके अलावा उसे अपना विश्वास प्राप्त कराना भी मुश्किल होगा । और दूसरा नया नायक तो आसानी से अनुरक्त बनाया जा सकता है ॥ ३६ ॥

तथापि पुरुषप्रकृतितो विशेषः ॥ ३७ ॥

पुरुषप्रकृतित इति पुरुषस्वभावात् । कश्चिदपूर्वोऽपि दुरुपचरः कदर्यश्च भवति । पूर्वसंसृष्टश्च निष्पीडितार्थोऽपि दाता । निष्कासितोऽपि सविश्वास इति संक्षेपेण संधानम् ॥ ३७ ॥

तथापि स्वभाव भेद से पुरुषों में भी विशेषताएँ होती हैं। कोई नया आदमी ऐसा होता है जो स्वभाव से कृपण होता है कुछ भी नहीं देता अथवा खुशामद करने पर भी अनुरक्त नहीं होता। कुछ आदमी ऐसे होते हैं जो चूस लिए जाने पर भी, निकाल दिए जाने पर भी नायिका पर अनुराग और विश्वास रखते हैं॥ ३७॥

कारणं त्रिविधम्—नायकान्तरस्थं विशीर्णस्थं वर्तमानस्थं चेति। तदेव दर्शयन्नाह—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

अन्यां भेदयितुं गम्यादन्यतो गम्यमेव वा।
स्थितस्य चोपघातार्थं पुनः संधानमिष्यते॥ ३८॥

अन्यामिति। भेदयितुं विशीर्णत्वात्। 'तदानेन विमानितो वा भार्यया तमेव तस्यां विक्रमयिष्यामि।', 'अस्य वा मित्रं मद्द्वेषिणीं कामयते तदमुना भेदयिष्यामि' इत्युक्तं वेदितव्यम्। स्थितस्योपघातार्थमित्यनेन तदर्थाभिघातं करिष्यतीति। अत उक्तम्—अन्यतो गम्यमेव वेति–अन्यस्या नायिकातो विशीर्णं भेदयितुमिति अनेनापि विशेषं विशीर्णं वेत्यनुरक्तं चापेक्ष्य तदेव सम्प्रयोग इति॥

इस विषय के श्लोक हैं—

अट्ठाइसवें, उन्तीसवें और पच्चीसवें सूत्र में कही गई बातों को यहाँ समझा जा रहा है कि दूसरी नायिका को धन की हानि पहुँचाने के लिए अथवा दूसरी नायिका से बिछुड़ा हुआ मिलने वाला नायक, या दूसरी से जुदा करने के लिए नायक को मिलाया जा सकता है॥ ३८॥

विभेत्यन्यस्य संयोगाद्व्यलीकानि च नेक्षते।
अतिसक्तः पुमान्यत्र भयाद्बहु ददाति च॥ ३९॥

विभेतीति। यत्र यस्मिन्संस्थाने वर्तमानोऽतिसंसक्तोऽप्यन्यस्य संयोगाद्बिभेति संयुक्तोऽयं कदाचिदपकरिष्यतीति। व्यलीकानि च नायिकाकृतानपराधान्नेक्षते अवधीरयति सत्यतिसक्तत्वादेव। भयादिति परित्यागभयाद्बहु ददाति॥३९॥

अत्यन्त आसक्त जो नायक दूसरे से संभोग करने में डरता है और नायिका के अपराधों को भी नहीं देखता है। ऐसा व्यक्ति डरते-डरते बहुत धन दे देता है॥ ३९॥

असक्तमभिनन्देत सक्तं परिभवेत्तथा।
अन्यदूतानुपाते च यः स्यादतिविशारदः॥ ४०॥

असक्तमिति । यो विशीर्णोऽप्यतिरक्तः अतिरक्तत्वाद्वर्तमानं तमसक्तमभिनन्देत । विज्ञात भावत्वात् । यदस्यां न रक्त इति सक्तं परिभवेत् । असक्तावस्थां प्राप्तस्य चिरेणेति । अन्यदूतानुपाते चेति । अन्यस्य सम्बन्धिन्यायाते दूतेऽतिविशारदोऽत्यर्थमर्थदो मा भूदनेन सन्धानमिति ॥ ४० ॥

जो नायक अत्यन्त चतुर हो उसे चाहिए कि किसी दूसरे का दूत आ जाने पर उसके सामने असमर्थ की प्रशंसा और समर्थ की निन्दा करे ॥४०॥

तत्रोपयायिनं पूर्वं नारी कालेन योजयेत् ।
भवेच्चाच्छिन्नसंधाना न च सक्तं परित्यजेत् ॥ ४१ ॥

तत्रेति तस्मिन्संधाने । पूर्वमसंसृष्टं विशीर्णमुपयायिनम् । नारीति सामान्याभिधानेऽपि प्रकरणाद्वेश्यैव द्रष्टव्या । कालेन योजयेत् न तदैव संप्रयोजयेत् । अन्यथा तदात्व एव वर्तमानेनापि सक्तेन फलवता विश्लेषः स्यात् । विशीर्णोऽप्यतिरक्तत्वात्प्रत्याशया कालान्तरमपेक्षत एव । यदाह—'भवेच्चाच्छिन्नसन्धानेति' । विशीर्णेन सहेत्यर्थः । न च सक्तं परित्यजेत् । तदात्व एव तस्य सफलत्वात् ॥ ४१ ॥

नारी को चाहिए कि कदाचित् यदि नया धनवान प्रेमी और मिलने वाला बिछुड़ा प्रेमी दोनों आ रहे हों तो पहले समर्थ धनी से सहवास करे क्योंकि बिछुड़ा हुआ आसक्त इन्तज़ार कर सकता है । बिछुड़े हुए से संभोग कराने में न तो हिचकिचाहट करे और न धनवान नये प्रेमी का परित्याग करे ॥ ४१ ॥

यस्य तदात्वेऽन्यस्माल्लाभो महान्; न च संप्रयोगं विना तत्र किं प्रतिपत्तव्यमित्याह—

सक्तं तु वशिनं नारी संभाष्याप्यन्यतो व्रजेत् ।
ततश्चार्थमुपादाय सक्तमेवानुरञ्जयेत् ॥ ४२ ॥

सक्तं त्विति । वशिनं यथोक्तकारिणम् । अन्यत इत्यन्यमुद्दिश्य व्रजेत् । ततश्चेति । तत्र प्रव्रजिता सक्तमेवानुरञ्जयेत् । कान्तानुवृत्त्या तत्र स्थितत्वात् । नान्यं प्रति संदध्यात् ॥ ४२ ॥

नारी (वेश्या) वशीभूत सक्त नायक से बतलाकर दूसरी जगह चली जाए और वहाँ से धन लाकर सक्त नायक को ही प्रसन्न करे ॥ ४२ ॥

प्रोक्तानुष्ठाने निरूप्यमाह—

आयतिं प्रसमीक्ष्यादौ लाभं प्रीतिं च पुष्कलाम् ।
सौहृदं प्रतिसंदध्याद्विशीर्णं स्त्री विचक्षणा ॥ ४३ ॥

आयतिमिति प्रभावम्, लाभमायत्याम् तदात्वे प्रीतिं पुष्कलां निर्व्याजं तस्यात्मविषये। विचक्षणेति। परीक्षणे विचक्षणा कुशला। इति विशीर्णप्रतिसन्धानं षट्पञ्चाशं प्रकरणम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणे विशीर्णप्रतिसन्धानं चतुर्थोऽध्यायः।

चतुर स्त्री को चाहिए कि सर्वप्रथम प्रभाव, लाभ, अत्यन्त प्रेम और सौहार्द देख ले तब बिछुड़े हुए को मिलाए ॥ ४३ ॥

वेश्याएँ अनेक उपायों से अपने प्रेमी का धन जब चूसकर उसे खोखला बना देती हैं, तब उसे शिष्टता या अशिष्टता से अपने यहाँ से निकाल देती हैं—यह पिछले प्रकरण में बताया जा चुका है। अब इस प्रकरण में उन प्रेमियों की चित्तवृत्ति का विश्लेषण किया गया है जो वेश्या द्वारा ठोकर देकर निकाले जाने पर भी उस पर आसक्त बने रहते हैं, फिर से उससे सम्बन्ध जोड़ने के लिए आतुर रहते हैं। ऐसे विवेकशून्य प्रेमियों को वेश्या फिर से किस स्थिति में किन शर्तों में पुनः अङ्गीकार करे—इसीका विस्तृत वर्णन है।

पूरा वैशिक अधिकरण आचार्य दत्तक का लिखा हुआ है, उन्होंने वेश्याओं और उनके प्रेमियों की चित्तवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सविस्तर किया है, किन्तु उनके इस विस्तृत विवेचन के मध्य वात्स्यायन ने अपना जो संक्षिप्त मत दिया है वह इस सारी व्याख्या का सारभूत तत्व या वैशिक अधिकरण का आइना बन गया है।

वात्स्यायन ने प्रेमविवश प्रेमियों का मनोविश्लेषण करते हुए कहा है कि मिलन और वियोग की इस प्रक्रिया में वेश्या को चाहिए कि पुरुष की अन्तःप्रकृति का अध्ययन करके उसे मिलाए या हटाए। कोई व्यक्ति ऐसा होता है, कि पुराने प्रेमी के हट जाने पर वह वेश्या से मिलता है किन्तु वेश्या की सारी करामातें उसके कदाचार और कार्पण्य के समक्ष फेल हो जाया करती हैं और कुछ ऐसे स्वभाव के व्यक्ति होते हैं जो वेश्या द्वारा अपमानित होकर निकाले जाने पर सारी सम्पत्ति और प्रतिष्ठा गँवा देने पर भी उस वेश्या पर आसक्त रहते हैं, उससे पुनः सम्बन्ध जोड़ने के लिए लालायित रहते हैं। वह सर्वहारा होकर भी वेश्या को धन देने में पीछे नहीं पिछड़ता और अपमानित होने पर भी, धोखा खाने पर भी उस पर विश्वास रखता है। इसलिए वेश्या

दुतकारे हुए अपने पूर्व प्रेमी से पुनः संसर्ग प्राप्त करने में बुद्धि और हृदय से विचार करे, केवल बुद्धि से सोचने और निर्णय करने में कभी-कभी धोखा भी हो जाता है।

इस प्रकरण में वेश्याओं की चंचल चित्तवृत्ति, अस्थिर बुद्धि और महती स्वार्थपरता का विशद चित्रण किया गया है। वस्तुतः यदि देखा जाय तो मालूम पड़ता है कि वेश्याओं की चित्तवृत्तियाँ समुद्र तरङ्गों की भाँति चञ्चल हुआ करती हैं। सायंकाल, सूर्यास्त के समय आकाश की क्षणिक लालिमा की भाँति ही वेश्याओं के यहाँ उनके प्रेमियों की अवस्थिति क्षणभंगुर रहा करती है। जिस प्रकार पैर में अलता लगाने के लिए मेंहदी की पत्तियों का रस निचोड़ कर उन्हें फेंक दिया जाता है उस प्रकार वेश्याएँ भी अपने प्रेमियों की धन-शक्ति पुरुषार्थ-शक्ति निचोड़ कर उन्हें अलग फेंक देती हैं।[1]

इस प्रकरण के वेश्यावृत्त और प्रेमियों की स्थिति का अध्ययन कर पुरुष और स्त्री के बीच का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। अन्तिम श्लोकों में एक जगह वेश्या को नारी कहा गया है और एक जगह स्त्री कहा गया है, इससे आचार्य की भावना का पता चलता है कि वे वेश्या को नारी या स्त्री से भिन्न नहीं समझते बल्कि सामान्यतया नारी ही समझते हैं। ऐसी स्थिति में वेश्या और उसके प्रेमी को पुरुष और स्त्री मान कर उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सामान्य स्तर पर किया जाना अनुचित न होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुष जीवन में प्रेम, जोश, कामवासना की तृप्ति एक साधारण-सी घटना है। उसका आत्मा से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इसके विरुद्ध स्त्री के लिए प्रेम, कामवासना की तृप्ति ही उसके जीवन का आदि और अन्त है, उसकी आत्मा से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

पुरुष प्रेमिका को प्यार करता है और अपने को उसके पीछे दीवाना समझ बैठता है, किन्तु मनोविश्लेषण द्वारा समझा जाए तो अधिकांश प्रेमी अपने शरीर से, जड़ से प्रेमिका के शरीर और जड़ को ही प्रेम करते हैं। उसका प्रेम आत्मा को, चेतन को स्पर्श नहीं करता फिर भी एक विचित्र बात यह है कि वह अपने को उसकी आत्मा का प्रेमी समझता है।

इसके विपरीत जब स्त्री किसी पुरुष से प्रेम करती है तो वह अपने शरीर और आत्मा, जड़ और चेतन सभी से प्रेम करती है। स्त्री प्रकृति के अधिक

[1] समुद्रवीचीव चलस्वभावाः सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः।
स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत् त्यजन्ति ॥

निकट है, यदि वह अशिक्षिता भी हो तब भी शिक्षित पुरुष से स्वभाव, बुद्धि की सहायता से अधिक चतुर होती है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्त्री पुरुष की अपेक्षा सृष्टि के नियमों और अनन्त सत्यों को अधिक पहचानती है। यही कारण है कि विद्वान्, ज्ञानी और महान् कहलाने वाले पुरुष एक स्त्री के सामने अबोध बच्चे बन जाते हैं। स्त्री को सहजबोध रहता है, अपने इस सहजबोध से वह भलीभाँति जानती है कि जीव और जड़ एक दूसरे के बिना कोई परिणाम निकालने में सफल नहीं हो सकते। इसीलिए उसके प्रेम में शरीर आत्मा दोनों का लगाव रहता है। किन्तु पुरुष जब उसे इस प्रकार का प्रेम करने दे! पुरुष की इसी ग़लती का परिणाम है कि अधिकांश दाम्पत्य जीवन, अधिकांश वेश्याभोग जीवन, निराशा और अशान्ति के वातावरण में तड़प रहे हैं। जब तक पुरुष अपनी ग़लती नहीं सुधारेगा तब तक उसका दाम्पत्य जीवन अथवा प्रेमी जीवन असफल और अशान्त ही रहेगा। इसके सुधारने की तरकीब यही है कि विवाहिता पत्नी से सुहागरात के प्रथम मिलन में और प्रेमिका (वेश्या या आभिजात्य) के प्रथम प्रेमालाप में पुरुष स्त्रियों की भाँति दो आत्माओं, दो हृदयों के मिलन का क्षण समझे, दो शरीरों के मिलन और संघर्षण का सुनहला मौक़ा नहीं।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणे विशीर्णप्रति-
सन्धानं चतुर्थोऽध्यायः।
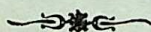
पञ्चमोऽध्यायः

लाभविशेषप्रकरणम्

त्रिविधा वेश्या—एकपरिग्रहा अनेकपरिग्रहा अपरिग्रहा चेति। तत्र पूर्वस्या लाभ उक्तः। द्वितीयाया वक्ष्यति। तृतीयाया विना परिग्रहमनेकस्माल्लभमानाया लाभविशेषा उच्यन्ते। तत्रापरिग्रहकारणमाह—

गम्यबाहुल्ये बहु प्रतिदिनं च लभमाना नैकं प्रतिगृह्णीयात् ॥

यदा गम्या बहवस्तेभ्यः स्पर्धया बहु लभते। प्रतिदिनं चैकैकमभिगच्छन्ती तद्दिन एकं प्रतिगृह्णीयात्। स हि बहु प्रतिदिनं च न ददाति। तदेवमनियतो लाभः। सततश्च कश्चित्स्वल्पमपि दद्यात्। तद्ग्रहणे चान्ये तावन्मात्रकमेव दद्युरित्यूहेत् ॥ १ ॥

वेश्या के साथ गमन करने वालों की संख्या अधिक होने से एक दूसरे की प्रतियोगिता के कारण प्रतिदिन की आमदनी बढ़ जाती है। इसलिए नित्य एक ही आदमी को न पकड़ कर नित्य नये-नये आदमियों से धन लेकर वेश्या सहवास कराए ॥ १ ॥

देशं कालं स्थितिमात्मनो गुणान्सौभाग्यं चान्याभ्यो न्यूनातिरिक्ततां चावेक्ष्य रजन्यामर्थं स्थापयेत् ॥ २ ॥

देशं सम्पन्नमितरं वा। कालं यत्र काम उद्भूतशक्तिरनुद्भूतशक्तिर्वा स्थितिं देशप्रवृत्तिं यथा अपरकायं सेवमानस्यैकगुणः पूर्वकायमपि द्विगुणः। आत्मनो गुणान्रूपवैदग्ध्यादीन् सतोऽसतो वा तथा सौभाग्यम्। अन्याभ्य इति। वेश्याभ्यः स्थानमानाभ्यामात्मनो न्यूनत्वं चाधिक्यं चावेक्ष्य तदनुरूपं रजन्यामर्थं स्थापयेत्, इयमेकां रात्रिमियता शेत इति ॥ २ ॥

वेश्या को चाहिए कि वह देश और काल, अपनी स्थिति, गुण, सौभाग्य एवं दूसरी वेश्याओं से अपने रूप, गुण आदि की अधिकता या न्यूनता देख कर एक रात की फ़ीस नियत करे ॥ २ ॥

तत्र यदावस्थापितार्थेन गम्य एव स्वदूतसम्प्रेषणेन भाणयति सिद्धं कार्यं, नो चेदाह—

गम्ये दूतांश्च प्रयोजयेत्। तत्प्रतिबद्धांश्च स्वयं प्रहिणुयात् ॥

तत्प्रतिबद्धान् गम्यप्रतिबद्धान्प्रयोजयेदभिप्रायजिज्ञासार्थम्। विदिताभिप्रायांश्च प्रेषयेदात्मीयानित्यर्थः ॥ ३ ॥

समागम करने योग्य व्यक्ति का अभिप्राय जानने के लिए अपने दूतों को लगा दे और स्वयं उसके सम्पर्क के व्यक्तियों द्वारा अपने अभिप्राय भेजे ॥ ३ ॥

दूतसम्प्रेषणाद्गम्यसम्प्रयोगे रजन्यर्घलाभः, तस्मान्नियमितादधिको योऽनुरागाल्लभ्यते स लाभातिशयः । तं चेत्तदैव लभते भद्रकमेव नो चेदत्राह—

द्वित्रिश्चतुरिति लाभातिशयग्रहार्थमेकस्यापि गच्छेत् । परिग्रहं च चरेत् ॥ ४ ॥

इतिशब्दो विकल्पार्थः । द्वौ त्रीन् चतुरो वा एकस्यापि मूलं गच्छेत् । परिग्रहं च चरेत्परिग्रहकल्पं चेति । तावत्सु दिवसेष्वन्यनिरपेक्षानुरञ्जनेन । ४ ॥

उससे अधिक धनलाभ प्राप्त करने की इच्छा से लगातार दो, तीन, चार रात्रियों तक नियत फ़ीस पर ही सम्भोग कराए, किसी और की अपेक्षा न रखकर निजी पत्नी की भाँति उसकी सेवा करती रहे ॥ ४ ॥

गम्यतश्च विशेषमाह—

गम्ययौगपद्ये तु लाभसाम्ये यद्द्रव्यार्थिनी स्यात्तद्दायिनि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः ॥ ५ ॥

लाभसाम्य इति । यदि बहवो गम्या युगपदुपस्थिता एको हिरण्यमपरस्तुल्यमूल्यं लाभतो येन द्रव्यार्थिनी तद्दायिनि गम्ये लाभविशेषः प्रत्यक्षः । तस्यार्थिनी स्यादित्याचार्याणाम् ॥ ५ ॥

आचार्यों का मत है कि यदि समागम के लिए कई आदमी आ जाएँ और एक आदमी जितनी फ़ीस देता है उतनी ही फ़ीस दूसरा भी देता है, ऐसी हालत में वेश्या जिससे फ़ीस ले लेगी तो दूसरा उससे अधिक देगा—यह अधिक लाभ तो प्रत्यक्ष है ॥ ५ ॥

अप्रत्यादेयत्वात्सर्वकार्याणां तन्मूलत्वाद्धिरण्यद इति वात्स्यायनः ॥ ६ ॥

हिरण्यमत्र लोकप्रतीत्या कपर्दकाः ते च दत्ता गम्येन पुनर्न प्रत्यादीयन्ते वस्त्रादिकं दत्त्वाऽपि किञ्चित्प्रत्यादत्ते । सर्वकार्याणामिति । तद्द्रव्यमन्यच्च कार्यं सर्वं हिरण्यमूलम् । तेन लभ्यमानत्वात् । तेन तत एव विशेषः । तस्मात्तत्रैवार्थित्वं कर्तव्यम् ॥ ६ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि अविश्वास की अवस्था में भी न लौटाया जानेवाला हिरण्य (गिन्नी, रुपया, पैसा) ही सभी कार्यों का मूल है अर्थात् ज़ेवर, जवाहरात आदि सभी चीजें सिक्कों से ही खरीदी जा सकती हैं इसलिए वेश्या को जहाँ तक हो सके अपने प्रेमी से सिक्के ही खींचना चाहिए ॥ ६ ॥

द्रव्यस्वरूपमाह —

सुवर्णरजतताम्रकांस्यलोहभाण्डोपस्करास्तरणप्रावरणवासो-विशेषगन्धद्रव्यकटुकभाण्डघृततैलधान्यपशुजातीनां पूर्वपूर्वतो विशेषः ॥ ७ ॥

सुवर्णरजते घटिते अघटिते वा। ताम्रकांस्यलोहैर्घटितं भाण्डोपस्करम्। आस्तरणं तूलिकादि। प्रावरणं कम्बलादि। वासोविशेषः क्षौमादिः। गन्धद्रव्यं चन्दनादि। कटुकं मरिचादि। भाण्डः पट्ट खट्वादिः। पूर्वपूर्वत इति क्षुद्रपशुजातेर्धान्यं ततस्तैलादिरित्यादिना विशेषः ॥ ७ ।

सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, लोहा, बरतन, सामान, बिस्तर, लिहाफ़, कम्बल, रेशमी वस्त्र, चन्दन आदि गन्ध द्रव्य, कटुक (काली मिर्च), घड़े आदि घी, तेल, अन्न, पशु इन चीजों में आखिर से पहले की एक-एक वस्तु उत्तम होती है, अतएव वेश्या को ऐसी वस्तुएँ लेनी चाहिए ॥ ७ ॥

यत्तत्र साम्याद्वा द्रव्यसाम्ये मित्रवाक्यादतिपातित्वादायतितो गम्यगुणतः प्रीतितश्च विशेषः ॥ ८ ॥

यत्तत्र साम्याद्वति यद्वा एतन्न ते प्रियं ततो विशेषः। द्रव्यसाम्य इति। यच्चादावपि रूपतः प्रमाणतुल्यं प्रयच्छतस्तत्र मित्रवचनमनुष्ठेयम्। यत्र वा तदानीमदीयमानमतिपतति यत्र चायतिः प्रभावः पुरुष गुणे वा यत्र गम्ये सति प्रीतिर्वा नायिकाया नायकस्य नायिकायामिति ॥ ८ ॥

यदि दो समान प्रेमी हों तो शुभचिन्तक लोग जिसे पसन्द करें अथवा जिसको अधिक गुणी, सुन्दर एवं प्रभावशाली समझें उसी की दी हुई वस्तु ग्रहण करे ॥ ८ ॥

गम्यतो विशेषमाह—

रागित्यागिनोस्त्यागिनि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः ॥९॥

रक्तात्त्यागिनो विशेषः प्रत्यक्षः। तदात्व एव द्रव्यप्राप्तेः ॥ ९ ॥

आचार्यों का मत है कि अधिक अनुराग रखनेवाले की अपेक्षा दानशील त्यागी से अधिक लाभ होना निश्चित रहता है ॥ ९ ॥

शक्यो हि रागिणि त्याग आधातुम् ॥ १० ॥

रागिणि अत्यागिनि रक्ते शक्यस्त्याग आधातुमुपायेन ॥ १० ॥

न देनेवाले अनुरक्त व्यक्ति से भी उपायों द्वारा त्याग कराया जा सकता है ॥ १० ॥

कुत इत्याह—

लुब्धोऽपि हि रक्तस्त्यजति न तु त्यागी निर्बन्धाद्रज्यत इति वात्स्यायनः ॥ ११ ॥

त्यजति द्रव्यं ददाति। निर्बन्धादिति प्रयासेनापि न रज्यते, तस्य तेजस्वित्वात्। अनुरक्तस्तु त्यजति ॥ ११ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि अनुरक्त लोभी होते हुए भी धन दे सकता है किन्तु त्यागी को अनुरक्त बनाना टेढ़ी खीर है ॥ ११ ॥

तत्रापि धनवदधनवतोर्धनवति विशेषः। त्यागिप्रयोजनकर्त्रोः प्रयोजनकर्तरि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः ॥ १२ ॥

धनवदधनवतोरिति रागित्यागिनोर्यो धनवान्स विशिष्यते नेतरो निर्धनः। प्रयोजनकर्तरीति नायिकायाः कार्यस्य यः कर्ता तस्मिन्नत्यागिनि विशेषः प्रत्यक्षः। तदात्व एव कार्यकरणात्। त्यागी तु दास्यतीति न प्रत्यक्षः ॥ १२ ॥

आचार्यों का मत है कि यहाँ पर भी धनवान् और निर्धन व्यक्तियों में धनवान् विशिष्ट होता है एवं त्यागी और नायिका का स्वार्थ सिद्ध करने वाले में स्वार्थ सिद्ध करने वाला नायक विशिष्ट होता है ॥ १२ ॥

प्रयोजनकर्ता सकृत्कृत्वा कृतिनमात्मानं मन्यते त्यागी पुनरतीतं नापेक्षत इति वात्स्यायनः ॥ १३ ॥

सकृत्कृत्येति एकवारं कृतमस्याः कार्यं किमपरं करिष्यामीति। अतीतमिति दत्तमेवास्यै न पुनर्ददामीति नापेक्षते। त्यागशीलत्वात् ॥ १३ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि वेश्या का प्रयोजन सिद्ध करने वाला एक बार प्रयोजन सिद्ध करके यह सोचता है कि एक बार काम कर दिया अब क्यों करूं; किन्तु दानशील त्यागी नायक तो दिए गए धन को सोचता भी नहीं ॥ १३ ॥

तत्राप्यात्ययिकतो विशेषः ॥ १४ ॥

आत्ययिकत इति यदा तत्प्रयोजनमवधारितमतिपतति तदा तत एव विशेषः ॥ १४ ॥

आवश्यकतानुसार इन दोनों में भी विशेषता होती है ॥ १४ ॥

कृतज्ञत्यागिनोस्त्यागिनि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः ॥ १५ ॥

कृतज्ञत्यागिनोस्त्यागिनि विशेषः प्रत्यक्षो द्रव्यदर्शनात्। न तु कृतज्ञे। तस्यात्यागित्वात् ॥ १५ ॥

पूर्वाचार्यों का मत है कि कृतज्ञ और त्यागी इन दोनों में त्यागी से विशेष लाभ प्राप्त किया जा सकता है ॥ १५ ॥

चिरमाराधितोऽपि त्यागी व्यलीकमेकमुपलभ्य प्रतिगणिकया वा मिथ्यादूषितः श्रममतीतं नापेक्षते ॥ १६ ॥

चिरमिति दीर्घकालम् । आराधितोऽपि कान्तानुवृत्त्या । व्यलीकं नायिकापराधमुपलभ्य । मिथ्यादूषित इति मिथ्यैव दोषं ग्राहितः सदैवेयं व्यलीकं कुरुत इति । श्रममतीतमाराधनक्लेशं नापेक्षते ॥ १६ ॥

बहुत दिनों तक उपायों द्वारा सिद्ध किया गया त्यागी वेश्या के एक अपराध को देखकर अथवा दूसरी सामने की वेश्याओं से बहकाया जाकर वेश्या के किये गए परिश्रम के कष्टों की परवाह नहीं करता ॥ १६ ॥

कुत इत्याह—

प्रायेण हि तेजस्विन ऋजवोऽनादृताश्च त्यागिनो भवन्ति ॥

प्रायेण हीति बाहुल्येन त्यागिनां तेजस्वितादयस्त्रयो धर्माः सम्भवन्ति । तत्र तेजस्वितया व्यलीकं नोपेक्षन्ते । ऋजुतया मिथ्यादोषं ग्राह्यन्ते । अनादृतत्वात् श्रमं नापेक्षन्ते ॥ १७ ॥

प्रायः तेजस्वी—त्यागी, सरल नहीं होते और अनादर को बरदाश्त नहीं करते ॥ १७ ॥

ततः कथमादरः—

कृतज्ञस्तु पूर्वश्रमापेक्षी न सहसा विरज्यते । परीक्षितशीलत्वाच्च न मिथ्या दूष्यत इति वात्स्यायनः ॥ १८ ॥

पूर्वश्रमापेक्षीति । कृतज्ञ इति कृतज्ञत्वादेव सहसा न विरज्यते व्यलीकमुपलभ्यापि । परीक्षितशीलत्वाच्चेति कृतज्ञतयैव परीक्षणस्वभावत्वान्न मिथ्यैव दोषं ग्राह्यते ॥ १८ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि कृतज्ञ परिश्रम को समझता है इसलिए एकदम अचानक विरक्त नहीं होता, वह नायिका के स्वभाव से परिचित रहता है, इसलिए दूसरी वेश्याओं के बहकाने में नहीं आता ॥ १८ ॥

तत्राप्यायतितो विशेषः ॥ १९ ॥

यत्र प्रभावोऽस्ति यत्रार्थोपगमनहेतुस्तथा मित्रवचनमनर्थप्रतीघातोऽर्थसंशयश्च ॥ १९ ॥

अनुरक्त, त्यागी और कृतज्ञ इन तीनों में से जिसके साथ समागम करने से अधिक धन मिले, प्रभाव बढ़े उसी को अपनाना चाहिए ॥ १९ ॥

तेषां विशेषमाह—

मित्रवचनार्थागमयोरर्थागमे विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः ॥

मित्रवचनादर्थः प्रत्यक्षः । तस्य दृश्यमानत्वात् । अन्यत्र वचनमेव केवलम् ॥

पूर्वाचार्यों का मत है कि मित्रों के सुझाव और धन की प्राप्ति इन दोनों में से धन का लाभ प्रत्यक्ष विशेषता रखता है ॥ २० ॥

सोऽपि ह्यर्थागमो भविता । मित्रं तु सकृद्वाक्ये प्रतिहते कलुषितं स्यादिति वात्स्यायनः ॥ २१ ॥

सोऽप्यर्थागमो भविता भविष्यति । प्रतिहत इत्यननुष्ठिते । कलुषितं रोषितं स्यात् ततश्च तत्प्रतिबद्धकार्यहानिरेव स्यात् ॥ २१ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि मित्रों की बात न मानने पर भी धन मिलेगा ही किन्तु बात न मानी जाने पर मित्र नाराज़ हो जाएँ तो उनसे बनने वाले कार्य बिगड़ जाएँगे ॥ २१ ॥

तत्राप्यतिपातततो विशेषः ॥ २२ ॥

अतिपातत इति यदा तदानीमुपेक्षितोऽर्थोऽतिपतति च दास्यत्येवेति विशेषः ॥

इस अर्थसंचय में भी फिर न मिलने वाले को अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए ॥ २२ ॥

मित्रं कलुषितं स्यादिति चेदाह—

तत्र कार्यसन्दर्शनेन मित्रमनुनीय श्वोभूते वचनमस्त्विवति ततोऽतिपातिनमर्थं प्रतिगृह्णीयात् ॥ २३ ॥

कार्यसन्दर्शनेनेति जनानां कार्यं तत्तवापि कार्यं न चेदं महदुपस्थितमतिपतति । त्वद्वचनं च श्वः कर्तास्मीत्यनुनयपूर्वमुक्त्वा प्रतिगृह्णीयात् ॥ २३ ॥

कार्य के बहाने मित्र से अनुनय विनय करके तात्कालिक लाभ प्राप्त कर ले और उससे कहे कि कल तुम्हारी बात पूरी करूँगी ॥ २३ ॥

अर्थागमानर्थप्रतीघातयोरर्थागमे विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः ॥ २४ ॥

अर्थागमे विशेषः प्रत्यक्ष इति दृश्यमानत्वात् ॥ २४ ॥

धनलाभ और अनर्थ का निवारण—इन दोनों में धनागम विशेष लाभ माना जाता है—ऐसा पूर्वाचार्यों का मत है ॥ २४ ॥

अर्थः परिमितावच्छेदः, अनर्थः पुनः सकृत्प्रसृतो न ज्ञायते क्वावतिष्ठत इति वात्स्यायनः ॥ २५ ॥

अर्थ इति । अस्यावच्छेद इयत्ता । सा परिमिता, यस्येत्यर्थस्यानतिशयत्वात् । सकृत्प्रसृत इति । अखण्डितप्रसरत्वादेकवारप्रसृतो न ज्ञायते क्वावतिष्ठते किं मूलघाते सर्वघाते वेति । अत्र मधुबिन्दूपाख्यानमुदाहरणम् ॥ २५ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि धन तो नियमितरूप से मिलता है किन्तु अनर्थ का यदि आरंभ हो गया तो उसके अन्त का कोई ठिकाना नहीं रहता है ॥ २५ ॥

तत्रापि गुरुलाघवकृतो विशेषः ॥ २६ ॥

गुरुलाघवकृत इति लघोरनर्थात्पूर्वाद्गुरुरर्थो विशेष्यते लघुश्चेद्गुरुरनर्थ इति ॥

यहाँ पर भी न्यूनाधिक्य समझ कर विशेष को ग्रहण करना चाहिए ॥२६॥

एतेनार्थसंशयादनर्थप्रतीकारे विशेषो व्याख्यातः ॥ २७ ॥

अर्थसंशयादर्थः स्यान्न वेति संशयः अन्यस्मादनर्थप्रतीकारः तदार्थसंशये विशेषः प्रत्यक्षः । तत्र संशयितेऽपि लोकस्य प्रवर्तनात् । परिमितावच्छेदोऽर्थोऽनर्थः पुनः सकृत्प्रसृतो न ज्ञायते क्वावतिष्ठत इति । अत्रैव विशेषः । न लघोरनर्थात्प्रतिकर्तव्याद्गुरावर्थे संशयिते विशेष इति व्याख्यातः ॥ २७ ॥

इस कथन से यह स्पष्ट कर दिया गया कि अर्थ के संशय से अनर्थ की रोक-थाम करने में ही विशेष लाभ है ॥ २७ ॥

एवं द्विविधेन रजन्यर्थेण विशेषितेन यदुपचितं धनं स प्रकृष्टो नाम लाभातिशयः । प्रधानार्थस्य साधनाद् अतस्तद् द्वारा कर्तव्यं दर्शयन्नाह—

देवकुलतडागारामाणां करणम्, स्थलीनामग्निचैत्यानां निबन्धनम्, गोसहस्राणां पात्रान्तरितं ब्राह्मणेभ्यो दानम्, देवतानां पूजोपहारप्रवर्तनम्, तद्व्ययसहिष्णोर्वा धनस्य परिग्रहणमित्युत्तमगणिकानां लाभातिशयः ॥ २८ ॥

त्रिविधा वेश्या—गणिका रूपाजीवा कुम्भदासी च । ताः प्रत्येकमुत्तममध्यमाधमभेदात्त्रिविधाः । तडागं पुष्करिणी । स्थलीनामिति । निम्नेषु प्रदेशेषु लोकागमार्थं सेतूनां निबन्धनम् । अग्निचैत्यानामिति । स्थानाद्बहिर्मृद्भिर्गेहानि कृत्वा सर्वै रसगन्धव्रीहिरत्नैरापूर्याग्नये समुत्सृज्यन्ते । पात्रान्तरितमिति । वेश्याद्रव्यस्याप्रतिग्राह्यत्वादन्यहस्तेन दानम् । देवतापूजनानां प्रवर्तनं घटानिबन्धेन । उपहाराणां भक्ष्यादीनाम् । देवतांशमुद्दिश्य सर्वमेतत्प्रधानभूतोऽर्थः, तद्व्ययसहिष्णोरिति । तस्मिन्प्रधानेऽर्थे साध्ये यद्व्ययं सहते धनं तस्य परिग्रहणभयं प्रकृष्टो लाभातिशयः । उत्तमगणिकानामिति । रूपादिभिर्नायिकागुणैः, कालादिभि-

श्चान्विता उत्तमगणिकाः । गुणानां च पादार्धाभ्यां शून्या मध्यमाधमाः ॥ २८ ॥

जो उत्तम श्रेणी की गणिकाएँ होती हैं उन्हें चाहिए कि वे अतिशय लाभ प्राप्त करने के लिए देवमंदिर बनवाएँ, तालाब खुदवाएँ, बाग-बगीचा लगवाएँ, नीची जगहों में लोगों को आने-जाने की सुविधा के लिये पुल बनवाएँ, अपने निवास से बाहर मिट्टी का घर बनवाकर उसमें अग्निहोत्र का सब सामान रखकर प्रतिदिन अग्निहोत्र कराएँ। किसी सुपात्र व्यक्ति को माध्यम बनाकर उसके द्वारा ब्राह्मणों को हजार गौएँ दान दें, देवताओं के भोग-प्रसाद का प्रबन्ध करें, इत्यादि ऐसे ही लोकोपकारी एवं धार्मिक कार्यों को भली भांति करने का ख़र्च बरदाश्त करें तो उनके अतिशय लाभ का उपयोग भी हो जाएगा ॥ २८ ॥

सार्वाङ्गिकोऽलङ्कारयोगो गृहस्योदारस्य करणम् । महार्हैर्भाण्डैः परिचारकैश्च गृहपरिच्छदस्योज्ज्वलतेति रूपाजीवानां लाभातिशयः ॥ २९ ॥

सार्वाङ्गिक इति । सर्वेष्वङ्गेषु यो भवति । उदारस्येति संस्थानतः संस्कारतश्चेति । महार्हैरिति लोहताम्रराजतैः । परिचारकैरिति यथास्वं कर्मणा परिचरन्ति ये । गृहपरिच्छदस्येति गृहसंविधानकस्योज्ज्वलतेत्ययं प्रधानार्थः । तद्व्ययसहिष्णोर्धनस्य परिग्रहणमिति वर्तते । अयं प्रकृष्टो लाभातिशयः । रूपाजीवानामित्युत्तमानाम् । सत्स्वपि गुणेषु रूपाजीवायां रूपस्य प्रधानत्वात् कलास्तु न सन्ति । तत्र रूपस्य गुणानां पादार्धहान्या मध्यमाधमाः । अत्र यः प्रधानार्थः स गणिकानामस्त्येव ॥ २९ ॥

मध्यम श्रेणी की रूपाजीवा वेश्यायें विशेष लाभ प्राप्त करने के लिये, सम्पूर्ण शरीर पर अलंकार धारण करें, निवासस्थान को कलात्मक ढंग से सजाकर रखें और उसमें बड़े-बड़े कीमती बरतन रखे हों, नौकर-चाकर कमरों की खिड़कियों, दरवाजों, परदों को साफ़ करने में संलग्न रहें। घर के हर वस्त्र, परदे दूध की तरह उज्ज्वल बनाए रखें ॥ २९ ॥

नित्यं शुक्लमाच्छादनमपक्षुधमन्नपानं नित्यं सौगन्धिकेन ताम्बूलेन च योगः सहिरण्यभागमलङ्करणमिति कुम्भदासीनां लाभातिशयः ॥ ३० ॥

आच्छादनमिति परिधानीयं प्रावरणीयं च सदैव शुक्लम् । अपक्षुधमिति अकदर्थितत्वात्क्षुधमपनयति । सौगन्धिकेन सुगन्धिसमूहेन चतुःसमकादिना

ताम्बूलेन च नित्यं योगः । एतत्सर्वं गणिकानां रूपाजीवानां चास्त्येव । विशेष-माह—सहिरण्यभागमिति । सुवर्णलेशेन युक्तमित्यर्थः । अयं प्रधानार्थः । तद्व्यय-सहिष्णोर्धनस्य परिग्रहणमिति वर्तते । अयं च प्रकृष्टो लाभातिशयः । कुम्भ-दासीनामित्युत्तमानाम् । कुम्भग्रहणं च कर्मोपलक्षणार्थम् । कर्मकरीणामित्यर्थः । आसां चोत्तममध्यमाधमकर्मापेक्षयैव तथाविधत्वं द्रष्टव्यम् ॥ ३० ॥

अधम श्रेणी की कुम्भदासी वेश्याओं को अतिशय लाभ प्राप्त करने के लिये नित्य साफ-सुथरे कपड़े पहनना चाहिए, पेट भरकर भोजन करना चाहिये, इत्र, तेल, पान का व्यवहार करना चाहिए और चांदी के जेवरों के साथ एकाध सोने के भी जेवर पहनना चाहिए ॥ ३० ॥

एतेन प्रदेशेन मध्यमाधमानामपि लाभातिशयान् सर्वासामेव योजयेदित्याचार्याः ॥ ३१ ॥

एतेनेति । प्रदेशेनेत्युत्तमानां लाभातिशयमार्गेण । मध्यमाधमानामपीति गणिकारूपाजीवाकुम्भदासीनाम् । लाभातिशयानिति प्रकृष्टापेक्षं मध्यमाधमान् योजयेत् । तथा चोक्तम्—'यद्वेश्यास्वर्जितं द्रव्यं प्रधानार्थस्य साधकम् । अव-स्थानं हि वेश्यानां स लाभ उत्तमो मतः ॥' इति ॥ ३१ ॥

पूर्वाचार्यों का मत है कि उत्तमा, मध्यमा, अधमा गणिका के साथ ही उनके अतिशय लाभ को भी उत्तम, मध्यम और अधम समझना चाहिए ॥ ३१ ॥

देशकालविभवसामर्थ्यानुरागलोकप्रवृत्तिवशादनियतलाभा-दियमवृत्तिरिति वात्स्यायनः ॥ ३२ ॥

देशेति । देशस्य सुसम्पन्नस्यासम्पन्नस्य वा । कालस्य सुभिक्षस्य दुर्भिक्षस्य वा । विभवस्यात्मीयस्य महतोऽल्पस्य वा । सामर्थ्यस्याविपन्नशक्तेर्महत्या इतरस्य वा । ततश्च नेयं वृत्तिरियत्ताप्रधानार्थद्वारेण या निर्दिष्टा कदाचित्तन्न्यूनादिका वा सम्भवति ॥ ३२ ॥

आचार्य वात्स्यायन का मत है कि देश, काल, वैभव, सामर्थ्य, अनुराग और लोकव्यवहार के कारण लाभ नियत नहीं रह सकते, इसलिए धन-प्रधान वेश्याओं की जो वृत्ति बताई गई है वह कभी समान नहीं रह सकती, उसमें घटती-बढ़ती का होना सम्भव रहता है ॥ ३२ ॥

एवं च कार्यनिरपेक्षया कश्चित्स्वल्पोऽपि लाभो गृह्यते कश्चिन्नैव कश्चित्तदात्वे गृह्यते कश्चिदायत्यां यदाह—

गम्यमन्यतो निवारयितुकामा सक्तमन्यस्यामपहर्तुकामा वा अन्यां वा लाभतो वियुयुक्षमाणागम्यसंसर्गादात्मनः स्थानं

वृद्धिमायतिमभिगम्यतां च मन्यमाना अनर्थप्रतीकारे वा साहाय्यमेनं कारयितुकामा सक्तस्य वान्यस्य व्यलीकार्थिनी पूर्वोपकारमकृतमिव पश्यन्ती केवलप्रीत्यर्थिनी वा कल्याणबुद्धेरल्पमपि लाभं प्रतिगृह्णीयात् ॥ ३३ ॥

अन्यत इति । अन्यस्या नायिकातो निवारयितुकामा मान्यत्र यासीदिति । अपहर्तुकामा मद्द्वेषिण्यां सक्तं त्यक्ष्यामीति । लाभत इति अन्यस्या नायिकातो गम्यसम्बन्धिनो लाभात् । वियुयुक्षमाणा वियोक्तुमिच्छन्ती, अगम्यसंसर्गादिति । येन गम्येन सह संसर्गस्तस्मात् । स्थानं जनसंसदि विशिष्टदेशावस्थानं मन्यमाना । वृद्धिं प्रकृष्टाख्यां लाभातिशयं आयतिं प्रभावं अभिगम्यतामन्येषां नायकानामभिगमनीयत्वं अनर्थप्रतीकारं वेति अनर्थं प्रतिकर्तुं सहायमेनं कर्तुकामा। सक्तस्य वेति यस्तस्यां सक्तः । अन्यो वर्तमानः । तेन यः पूर्वमुपकारः कृतस्तं स्वल्पत्वादकृतमिव पश्यति । तस्यातीतस्य व्यलीकार्थिनी अपराधं कर्तुकामा अल्पमपि गृह्णीयात् येनायमपराद्धमनयेति सक्तस्त्यजति । केवलप्रीत्यर्थिनी वेति प्रीत्यैव केवलयार्थिनी नार्थैः । कल्याणबुद्धेरित्यविसंवादकात् ॥ ३३ ॥

अवसर और आवश्यकता के अनुसार कभी थोड़ा लाभ भी ग्रहण कर लेना चाहिए। किस स्थिति और स्थान में वेश्या को अल्प लाभ ग्रहण करना चाहिए, कह रहे हैं—

नायक को किसी अन्य गणिका के पास सहवास के लिये जाने से रोकने में, किसी दूसरी नायिका के धनवान नायक को छीन लेने में, अथवा उसको लाभ से वंचित करने में, नायक के संसर्ग से घर, मन्दिर आदि कोई स्थान बनवाने में, अपनी वृद्धि करने में, अपना प्रभाव जमाने में, दूसरे नायकों को आकृष्ट करने के लिए उनकी पसन्द की कोई चीज बनवाने में, अथवा पहले किये गये उपकारों को भूलकर निर्धन नायक को अपराधी ठहराकर उसे छोड़ने में और किसी शुभचिन्तक व्यक्ति को अपना प्रेमी बनाने में गणिका थोड़ा लाभ भी ग्रहण कर सकती है ॥ ३३ ॥

यदा आयतिमनर्थप्रतीकारे वेत्युभयमुक्तम् । अत्र विशेषमाह—

आयत्यर्थिनी तु तमाश्रित्य चानर्थं प्रतिचिकीर्षन्ती नैव प्रतिगृह्णीयात् ॥ ३४ ॥

यदा आयतिर्महती स्यादनर्थश्च न महान्प्रतिकर्तव्यस्तदा नैव प्रतिगृह्णीयात् ॥

यदि वेश्या भविष्य में महान् लाभ देखती है और ऐसा करने में कोई विशेष अड़चन न समझे तो नायक से तत्काल कुछ भी न ले ॥ ३४ ॥

त्यक्ष्याम्येनमन्यतः प्रतिसन्धास्यामि, गमिष्यति दारैर्योक्ष्यते नाशयिष्यत्यनर्थान्, अंकुशभूत उत्तराध्यक्षोऽस्यागमिष्यति स्वामी पिता वा, स्थानभ्रंशो वास्य भविष्यति चलचित्तश्चेति मन्यमाना तदात्वे तस्माल्लाभमिच्छेत् ॥ ३५ ॥

त्यक्ष्याम्येनं तदात्वे ततो लाभं गृहीत्वान्यतः प्रतिसन्धास्यामि। तस्याधिकत्वात्। गमिष्यति दारैर्योक्ष्यते गतः कृतदारपरिग्रहो वा कथं दास्यति। नाशयिष्यत्यनर्थान् स्वकीयान्। तस्य परवशप्रायत्वात्। अंकुशभूत इति दमयिता। उत्तराध्यक्ष उपरिकः। अस्येति गम्यस्येति कर्मणि आगमिष्यति तदायमस्वतन्त्रः कथं दास्यतीति। स्वामी पिता वांकुशभूतः। स्थानभ्रंशो वेति यस्मिन्स्थानेऽस्याधिपत्यं तस्माद्विच्युतिः। चलचित्तो वा प्रतिज्ञायापि न दास्यति। तदात्व इति तदानीम् ॥ ३५ ॥

इस नायक को छोड़कर दूसरे से सम्बन्ध जोड़ूँगी, यह अपने आप छोड़ जाएगा, अपनी स्त्री से फिर मिल जाएगा। अथवा यह अड़चनों, रुकावटों को दूर कर देगा, इसके ऊपर पिता आदि का नियंत्रण है, अथवा यह अपने पद या अधिकार से भ्रष्ट हो जाएगा, या चंचल चित्त का है—यदि वेश्या ऐसा समझती हो तो ऐसे नायक से तत्काल जो मिले उसी समय ले ले ॥ ३५ ॥

प्रतिज्ञातमीश्वरेण प्रतिग्रहं लप्स्यते अधिकरणं स्थानं वा प्राप्स्यति वृत्तिकालोऽस्य वा आसन्नः वाहनमस्यागमिष्यति स्थलपत्रं वा सस्यमस्य पक्ष्यते कृतमस्मिन्न नश्यति नित्यमविसंवादको वेत्यायत्यामिच्छेत्। परिग्रहकल्पं वाचरेत् ॥ ३६ ॥

प्रतिग्रहं लप्स्यत इति स ह्यक्लेशेनोपलब्धार्थो दास्यति। अधिकरणमक्षपटलादिकं स्थानं यत्राधिपत्यं करिष्यति। वृत्तिकालो वेति सेवकत्वाज्जीवनकालोऽस्यासन्नः। राजकुले विलम्बस्य वर्तमानत्वात्। वाहनं यानपात्रमागमिष्यति। वाणिज्यधर्मस्थितत्वात्। स्वराष्ट्रादिसस्यमस्य पक्ष्यत इति। कृषिवृत्तित्वात्। ततश्च पक्वं सस्यं दास्यति। कृतमस्मिन्न नश्यति अभिगम्यत्वं न निष्फलम्। कृतज्ञत्वात्। नित्यमविसंवादको वा प्रतिज्ञायावश्यं दास्यति। आयत्यामित्यागमनकाले। परिग्रहकल्पं वा चरेत् तत्रार्थस्य लप्स्यमानत्वात् ॥ ३६ ॥

राजा या शासन से इसे धन की प्राप्ति निश्चित होगी, अथवा यह न्यायालय या अक्षपटल में कोई उच्च पद प्राप्त करेगा, इसे जीविका निकट भविष्य में मिलेगी, व्यापारिक वस्तुयें बेचकर इसके जहाज या अन्य व्यापारिक वाहन

शीघ्र ही वापस आने वाले हैं, इसकी जागीर या ज़मींदारी की जमीन उपजाऊ है, इसकी खेती पक कर तैयार होनेवाली है, यह कृतज्ञ है इससे संसर्ग करना हानिकर न होगा, यह गप्पी या धूर्त नहीं है यह जो कहेगा उसे पूरा करेगा, इसी प्रकार अन्यान्य नायकों में से किसी एक से भविष्य में पूरा लाभ उठाने की इच्छा और आशा रख कर गणिका उसकी सेवा उसकी पत्नी की भाँति करे ॥ ३६ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

कृच्छ्राधिगतवित्तांश्च राजवल्लभनिष्ठुरान् ।
आयत्यां च तदात्वे च दूरादेव विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

कृच्छ्राधिगतवित्तांश्चेति क्लेशार्जितवित्तान् । राजवल्लभनिष्ठुरानिति ये राष्ट्रा निष्ठुराः क्रूरा येषां नाकरणीयमस्ति, आयत्याञ्च तदात्वे चासत्यपि लोभप्रतिग्रहण-कारणे दूरादेव विवर्जयेद्, न तद्दर्शनं सम्भाषणं च कुर्यादित्यर्थः, प्रायशस्तेभ्योऽन-र्थसम्भवात् ॥ ३७ ॥

इस विषय में प्राचीन श्लोक हैं—जिन्हें बड़ी मुश्किल से धन मिला हो, जो राजा को प्रसन्न रखने के लिये क्रूर कर्म करते हों, उनसे चाहे तत्काल या भविष्य में पूर्ण लाभ की आशा हो तब भी वेश्या को उनसे दूर रहना चाहिए ॥ ३७ ॥

केषां तर्हि उपादानमित्याह—

अनर्थो वर्जने येषां गमनेऽभ्युदयस्तथा ।
प्रयत्नेनापि तान् गृह्य सापदेशमुपक्रमेत् ॥ ३८ ॥

अनर्थ इति । यांस्त्यक्त्वान्यस्मादनर्थोऽभिगमने चाभ्युदयस्तानुभयप्रयोजन-त्वात् प्रयत्नेनापि तान्गृह्येत्यभिगम्य । सापदेशमुपक्रमेदिति यत्किंचिन्निमित्तीकृत्या-नभिगच्छन्तमभिगच्छेदित्यर्थः । वृत्ताद्यभावादात्मनेपदं न भवति ॥ ३८ ॥

जिनको त्याग देने से दूसरे से अनर्थ की सम्भावना होते हुये भी अपने अभ्युदय की आशा हो तो ऐसे प्रेमियों से प्रयत्नपूर्वक सहवास करना चाहिए ॥ ३८ ॥

येष्वर्थ एव प्रयोजनं तानाह—

प्रसन्ना ये प्रयच्छन्ति स्वल्पेऽप्यगणितं वसु ।
स्थूललक्षान्महोत्साहांस्तान्गच्छेत्स्वैरपि व्ययैः ॥ ३९ ॥

महोत्साहानिति महानुत्साहो येषाम्। महत्त्वं चोत्साहस्य शौर्यादिभिः। ते तुष्टाः स्वल्पेऽपि वेश्याविषये प्रभूतं द्रव्यं प्रयच्छन्ति तस्मात्तान्गच्छेत्। स्वैरपि व्ययैरुपचारलक्षणैः। इति लाभविशेषाः सप्तपञ्चाशं प्रकरणम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणे लाभविशेषाः पञ्चमोऽध्यायः।
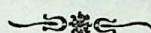
जो थोड़ी सी प्रसन्नता पर अपार धन देनेवाले होते हैं, ऐसे स्थूल लक्ष्य रखने वाले पुरुषों को अपना धन खर्च करके मिलाना चाहिए ॥ ३९ ॥

इस प्रकरण में वेश्याओं के उस विशेष धन-लाभ की चर्चा की गई है जिसे वे नानाविध उपायों से प्रेमियों को फँसाकर प्राप्त करती हैं। प्रारम्भ में तीन प्रकार की वेश्याओं का उल्लेख किया गया है। १ एकपरिग्रहा, २ अनेकपरिग्रहा और ३ अपरिग्रहा। जो एकचारिणी बनकर एक नायक के पास बैठ जाती है वह एकपरिग्रहा, जो अनेक प्रेमियों से सहवास कर धन वसूलती है वह अनेकपरिग्रहा और जो किसी से भी सम्बद्ध न होकर जो भी आता है उसी से सहवास कर धन पैदा करती है वह अपरिग्रहा वेश्या कहलाती है।

आगे चलकर कामसूत्रकार ने अनेकपरिग्रहा और अपरिग्रहा वेश्या को ऐसे उपाय बताये हैं जिनसे वह आसानी से सबको प्रसन्न रखकर सभी से धन प्राप्त कर सकती है। जिस वेश्या के अनेक प्रेमी होते हैं उसे अपने प्रेम-व्यवहार को बहुत सुरक्षित और गुप्त रखने की कला कामसूत्रकार ने बतायी है, वह ऐसा व्यवहार करे कि एक ही रात में अपने कई प्रेमियों से संसर्ग करे और किसी प्रेमी को उसके दूसरे प्रेमी का पता न चले कि वह कब आया और कब गया। वेश्या के इस चातुर्य का वर्णन भोजप्रबंध में बड़े रोचक ढङ्ग से किया गया है। धारा की एक वारवनिता पर धाराधीश भोज और राजकवि कालिदास दोनों आसक्त थे। नित्य ही वह दोनों से सम्भोग कराती थी। एक दिन राजा भोज को ज्ञात हो गया कि कवि कालिदास भी यहाँ आते हैं। उन्होंने वेश्या से कहा कि कालिदास की आसक्ति का परिचय लेने के लिये तुम उससे सिर के बाल मुँड़ा देने के लिये कहो। भोज के सुझाव के अनुसार वेश्या ने कालिदास से कहा कि मुझे यह कैसे प्रमाणित हो सके कि तुम मुझ पर जी-जान से आसक्त हो। कालिदास ने कहा कि तुम्हारी हर बात का मान रखना ही प्रबल प्रमाण है। वेश्या ने कहा कि तुम्हारी घुँघराली अलकें मुझसे भी अधिक तुम्हें और जन-समाज को प्रिय लगती हैं, इनसे मुझे सौतिया-

डाह है। क्या मेरे कहने पर तुम आज इन्हें मुँड़ा सकते हो ? 'बेशक !' कहकर कालिदास ने तत्काल अपना सिर घुटवा दिया। भाव-विभोर वेश्या के मुँह से निकल पड़ा कि महाराज भोज को शक था कि तुम मुझे छोड़ सकते हो किन्तु अपनी घुँघराली आयत अलकों को नहीं। निःसन्देह तुम्हारा प्रेम मुझ पर अपार है।

कालिदास समझ गये कि राजा भोज भी वेश्या पर आसक्त हैं और मुझे इससे हटाने या मेरा अपमान करने के लिये ही उन्होंने यह कुचक्र रचा है। कवि-बुद्धि पराजय स्वीकार करनेवाली नहीं थी। उन्होंने कहा कि राजा भोज तुम पर मुझसे अधिक आसक्त होने का यदि दावा करते हैं तो तुम्हें उनकी भी परीक्षा लेनी चाहिए। वेश्या ने पूछा—कैसे ? कालिदास ने कहा—बगीचे में गधे की भाँति रेंकने के लिये उनसे कहना। वेश्या मान गई और राजा भोज जब आये तो उनसे उसने अपने प्रेम की परीक्षा लेने के लिये बगीचे में गधे की तरह रेंकने को कहा। राजा भोज इनकार न कर सके और बगीचे में खड़े होकर चीपों-चीपों कर रेंकने लगे। उन्हें यह विश्वास था कि इस रेंकनेवाली बात को वेश्या के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। इसलिये दूसरे दिन दरबार में जब उपस्थित हुए तो कालिदास की खिल्ली उड़ाने के लिए भोज ने कालिदास से पूछा—

'कालिदास कविश्रेष्ठ ! कस्मिन् पर्वणि मुण्डितम् ?'

(कविश्रेष्ठ कालिदास ! किस पर्व में मूँड़ मुँड़ाया है ?)

कालिदास नें तुरन्त जवाब दिया—

'राजानः गर्दभायन्ते तत्र पर्वणि मुण्डितम् ।'

(राजा लोग जिस पर्व पर गधे की तरह रेंकते हैं, महाराज ! उसी पर्व पर मैंने मूँड़ मुँड़ा लिया है।)

कालिदास की रहस्यवाणी सुनकर भोज लज्जित होकर चुप हो गए।

कामसूत्र में देश, काल, स्थिति, अपने गुण, सौन्दर्य आदि के अनुसार वेश्या को एक रात के सम्भोग की फ़ीस निश्चित करने का सुझाव दिया गया है। किन्तु कौटलीय अर्थशास्त्र यह अधिकार वेश्या को न देकर शासन को देता है। कौटल्य गणिकाओं के व्यापार का निरीक्षण करने, उनकी सुरक्षा और हरकतों पर नजर रखने के लिए गणिकाध्यक्ष नियुक्त करता है जो वेश्याओं की फ़ीस निर्धारित करता है और उनके पास आने-जाने वालों तथा आमदनी-खर्च का लेखा-जोखा रखता है। कामसूत्रकार के समय में वेश्याओं को जो स्वतंत्रता थी वह कौटलीय अर्थशास्त्रकार के समय में नहीं थी। उस काल में वेश्याओं पर शासन का पूरा नियंत्रण था। वे न तो किसी से अधिक फ़ीस ले सकती थीं, न किसी का धन अपहरण कर सकती थीं और न किसी का अपमान ही कर सकती थीं। वे न तो आवश्यकता से अधिक धन पैदा कर

सकती थीं और न नियत खर्च से अधिक व्यय कर सकती थीं। जवानी ढलने पर उन्हें वेश्यावृत्ति से रिटायर होना पड़ता था, उनकी आमदनी पर शासन की ओर से कर लिया जाता था। राजनियमों के विरुद्ध आचरण करने पर वेश्याओं को कठोर दण्ड दिया जाता था।

किन्तु कामसूत्र में वेश्याओं पर शासन का कोई नियंत्रण नहीं प्रतीत होता। वैशिक अधिकरण में प्रेमियों, वेश्यागामियों को हर प्रकार से ठगने, उन्हें मूँड़ने की और निःसत्व हो जाने पर धक्का देकर निकाल देने की, अपराध, लांछन लगा कर उनकी सामाजिक बदनामी फैलाने की पूरी छूट थी। राजा और राजपुरुष भी कुछ खास वेश्याओं की हिमायत किया करते थे। किसी पुरुष से उचित धन न मिलने पर वेश्या अदालत में दावा कर उससे वसूल कर लेती थी। कौटलीय अर्थशास्त्र के गणिकाध्यक्ष प्रकरण और कामसूत्र के वैशिक अधिकरण का तुलनात्मक अध्ययन करने पर कुछ विद्वानों की यह मान्यता निरस्त हो जाती है कि कौटल्य और वात्स्यायन एक ही थे। यह ठीक है कि दोनों शास्त्रों की रचनापद्धति में साम्य है किन्तु एक ही काल में एक ही आचार्य द्वारा लिखे गए दो ग्रन्थों में नियम और विधान तथा सामाजिक और राजनीतिक परम्पराओं में इतना वैषम्य कथमपि नहीं हो सकता है।

कौटल्य की भाँति कामसूत्रकार ने भी उत्तम, मध्यम और अधम, वेश्याओं के ये तीन भेद माने हैं किन्तु सिद्धान्त और उद्देश्य भिन्न हैं। कौटल्य के भेद राजाओं की परिचर्या के लिए हैं, भेद के अनुसार उन्हें अधिक और न्यून वेतन दिए जाने के लिए हैं। किन्तु कामसूत्र के भेद अर्थोपार्जन और प्रेमियों के साथ व्यवहार पर आधारित हैं। नियम-विधान और व्यवस्था का यह भारी अन्तर, दृष्टिकोण का यह भेद सिद्ध करता है कि कामसूत्र कौटलीय अर्थशास्त्र से परवर्तीकाल का है।

वात्स्यायन ने 'तन्मूलत्वाद्धिरण्यद' लिखकर अपने समय में प्रचलित सबसे बड़े सिक्के की ओर संकेत किया है। गुप्त काल में हिरण्यमुद्रा, सुवर्णमुद्रा का प्रचलन था। मौर्यकाल में सबसे बड़ा सिक्का 'पण' कहलाता था। कौटल्य ने वेश्याओं के वेतन, फीस और जुरमाने के प्रसंग में 'पण' का ही व्यवहार किया है और वात्स्यायन के कामसूत्र में पण शब्द का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है। सुवर्ण-मुद्रा का उल्लेख वेश्या को फीस देने के प्रसंग में दशकुमारचरित में भी मिलता है जो गुप्तयुग की परम्परा का बोधक है। उज्जैन की वारवनिता सुगन्धा ने अपने एक बार के मिलने की फीस सौ सुवर्णमुद्रा पेशगी निर्धारित कर दी थी, उसकी फीस का भारी बोझ बहुत कम युवक उठा

सकते थे। उसके अनिन्द्य सौन्दर्य पर मुग्ध होकर बड़े-बड़े वेदपाठी ब्राह्मणों का चरित्र भ्रष्ट हुआ, राजा और राजकुमार अपना सर्वस्व गँवाकर उसके घर से निकाले गए। उन्हें बेइज्जत करके नंगा करके उसने धक्के दिलाकर निकलवाया।[1] वात्स्यायन ने अनेक प्रकार की वेश्याओं का समुच्चय कर गणिका, रूपाजीवा और कुम्भदासी ये तीन प्रकार की वेश्यायें निर्धारित की हैं। उन्होंने गणिका को उत्तमा, रूपाजीवा को मध्यमा और कुम्भदासी को अधमा माना है।

गणिका वही है जो अपनी आमदनी को आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और लोकोपकारी कार्यों में खर्च करे। गणिका उत्तमा नायिका होने के कारण उत्तम श्रेणी के नायक से सम्बद्ध रहती है। उसमें कामुकता, अर्थतृष्णा आदि न होकर कुलांगना का सा आचरण रहता है। सांख्यदर्शन की पिंगला, महाराज सगर की गणिका इन्दुमती तथा अवन्ती की विलासिनी और सुगन्धा, दक्षिण की लक्ष्मणा और कर्णाटकी, वैशाली की आम्रपाली, ऐसी गणिकाएँ पुराणों और इतिहास में प्रसिद्ध हो चुकी हैं जो अनिन्द्यसुन्दरी, गुण-शीलसम्पन्ना होने के साथ संस्कार लेकर उत्पन्न हुई थीं। किसी न किसी प्रसंग में जब उनके संस्कार जाग्रत हो गए तो उन्हें अपने वर्तमान पेशे से तुरंत घृणा हुई और वे भगवद्भक्त बनकर स्वर्ग या मोक्ष की अधिकारिणी बनीं। वात्स्यायन ने ऐसी वेश्या को उत्तमा या गणिका कहा है।

रूपाजीवा वह वेश्याएँ हैं जो रूप-गुण-शील-सम्पन्न होकर कलात्मक जीवन व्यतीत करती हैं, कलाप्रिय, कलाकोविद पुरुषों को आकृष्ट करती हैं। उनके हर कार्य और व्यापार में कला का प्राधान्य रहता है। अपनी कलाओं से वे नगरवधू बन जाया करती हैं।

तीसरी प्रकार की कुम्भदासी वेश्यायें वे हैं जो आजकल हमें रूप के बाजारों में अपना यौवन बेचती हुई दिखायी पड़ती हैं। अपने शील, स्वभाव,

---

[1] शिप्रायास्तु तटे रम्या पुरी चोज्जयिनी शुभा।
तस्यामासीत् सुगन्धा च वारस्त्री ह्यतिसुन्दरी॥
तया शुल्कं कृतं विप्र युवभिश्च सुदुःसहः।
सुवर्णानां शतं साग्रं प्रतिज्ञातं च तैः कृतम्॥

तथा—

युवानश्च तथा विप्रा अंशिताश्च सुगन्धया।
राजानो राजपुत्राश्च नग्नीकृत्य पुनः पुनः॥
तेषां भूषा गृहीता च धिक्कृतास्ते सुगन्धया।
एवं हि बहवो लोका लुण्ठिताश्च सदा तया॥

कला अनभिज्ञता के कारण ये वेश्याएँ अधम मानी गई हैं। इनकी वृत्ति मात्र भोगप्रधान होती है।

पिछले विशीर्णप्रतिसन्धान प्रकरण में उदाहरणार्थ जो प्राचीन श्लोक दिये गये हैं, उनमें बयालीसवें श्लोक में वेश्या को नारी और तैंतालीसवें श्लोक में स्त्री कहा गया है। शास्त्रकार ने यहाँ पर 'समानप्रसवा जातिः' सिद्धान्त को स्वीकार कर वेश्या को स्त्री जाति के अन्तर्गत मानकर अपनी सदाशयता का परिचय दिया है। वेश्या नारी का एक विकृत रूप है अथवा नारी वर्ग का विकृत रूप वेश्या वर्ग है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण स्त्री जाति के भेदों का वर्णन करते हुए कहता है कि—एक पति वाली स्त्री पतिव्रता है, जिसके दो पति हों वह कुलटा है, तीन पतियों वाली स्त्री वृषली, चार पतियों वाली स्त्री पुंश्चली होती है। इससे अधिक जिसके पांच-छह पति हों वह वेश्या कही जाती है। एवं सात-आठ पतियों वाली स्त्री युङ्मी कहलाती है, इससे भी अधिक जिसके पति हों वह महावेश्या कही जाती है।[1]

कामसूत्रकार की भाँति ब्रह्मवैवर्तकार भी स्त्री—नारी को सामान्यतया ग्रहण करता है। एक ही स्त्री अपने शील, चरित्र के कारण अनेक रूप ग्रहण करती है। पुराणकार का यह कथन कि नारी एक-दो-तीन आदि पतियों के कारण पतिव्रता, कुलटा आदि बनती है; कामसूत्र का यह कथन कि वेश्या संभोग के लिए ही पैदा होती है, सैद्धान्तिक मतभेद रखता है। कामसूत्रकार एक प्रकार से वेश्या को जन्मना वेश्या मानता है और पुराणकार उसे कर्मणा मानता है। कामसूत्रकार की दृष्टि कदाचित् यह रही होगी कि वेश्या की पुत्री उसकी पुत्री परम्परागत जन्मतः वेश्या ही होती है। इसलिए उसने जन्मना वेश्या कहना ही उचित समझा है। कामसूत्रकार की भाँति काव्य, साहित्य, नाटककार एक ओर वेश्या को नायिकाओं के अन्तर्गत एक नायिका मानकर नारी जाति के अन्तर्गत बैठाते हैं; दूसरी ओर रम्भा, मेनका, उर्वशी आदि अप्सराओं की एक योनि विशेष मानते हैं। पुराणों, इतिहासग्रन्थों और धर्मग्रन्थों में भी अप्सरा, गणिका की एक योनिविशेष ही मानी जाती है।

---

[1] पतिव्रता चैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता।
तृतीये वृषली ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चली मता॥
वेश्या तु पञ्चमे षष्ठे युङ्मी च सप्तमेऽष्टमे।
तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु॥

ब्रह्मवैवर्त प्र० खं० ३१ अ०

किन्तु ब्रह्मवैवर्त का कथन कि वेश्या नारी का एक विकृत अंग या रूप है, अधिक वैज्ञानिक और तथ्यपूर्ण जान पड़ता है।

यह माना जा सकता है कि जिस प्रकार मनुष्य से उच्च देवता से निम्न यक्ष, गन्धर्व योनियाँ होती हैं उसी प्रकार मानवी स्त्री से उच्च अप्सरा स्त्री हो सकती है, किन्तु गणिका, वेश्या को स्त्री योनि से अलग एक योनि मान लेना तर्क, बुद्धि और मानवविज्ञान के विरुद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार मुख्य वर्णों के अन्तर्गत जन्मना अनेक वर्ण मान लिए गये हैं उसी प्रकार नारी जाति के अन्तर्गत वेश्या को भी जन्मना जाति स्वीकार किया गया है किन्तु यह सिद्धान्ततः नहीं व्यवहारतः माना जा सकता है। वस्तुतः गणिका या वेश्या स्त्री जाति के अन्तर्गत सामान्य स्त्री है, कर्म से पतित हो गई है। जो स्त्री पतिव्रता कही जाती है वही पथभ्रष्ट होने पर कुलटा, वृषली, पुंश्चली और वेश्या बन जाती है। और जब वह महापतित बन जाती है तो महावेश्या कहलाती है और अस्पृश्य एवं अधम समझी जाने लगती है। कदाचित् पुराणकार के इसी मत का अवलंबन कर कामसूत्रकार ने उत्तमा वेश्या या अन्य वर्ग की वेश्या का दिया हुआ दान उसके हाथ से न लिया जाकर किसी माध्यम के द्वारा लेने के लिये व्यवस्था दी है। पुराणकार का कथन है कि वेश्या का धान्य वर्जित है, जो द्विज वेश्या का धान्य खाते हैं वे कालसूत्रनरक में जाते हैं।[1]

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणे
लाभविशेषाः पञ्चमोऽध्यायः।

[1] ब्र० वै० प्र० खं० अ० २१

षष्ठोऽध्यायः

अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारप्रकरणम्

शास्त्रकार एव प्रकरणसम्बन्धमाह—

अर्थानाचर्यमाणाननर्था अप्यनूद्भवन्त्यनुबन्धाः संशयाश्च ॥

अर्थानिति लाभविशेषाननन्तरोक्तान् आचर्यमाणान्साध्यमानान्। अपरिग्रहाया वेश्याया इत्यर्थः। अनर्था इति। अर्थविरुद्धाः। अनूद्भवन्तीति। 'अनुर्लक्षणे' इत्यनोः कर्मप्रवचनीयत्वे अर्थानिति द्वितीया। अर्थान्साध्यमानांल्लक्ष्यीकृत्यानर्था अपि स्वहेतुभ्य उत्पद्यन्ते। तत्र यदा अर्था एवोत्पद्यन्ते तदा निरनुबन्धोऽर्थपक्षः। यदार्थं बाधित्वानर्थास्तदा निरनुबन्धोऽनर्थपक्षः। अनुबन्धा इति। अर्थानर्थयोः संशयाश्चोभयोरेव गृह्यन्ते, तस्मात्तेषु हानोपादानार्थं तद्विचारो युक्तः। इत्यर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारा उच्यन्ते। तत्रार्थास्तदनुबन्धाश्चोपादेया एव। तत्संशयाश्च केषांचित्प्रवृत्तेः। येऽनर्थास्तदनुबन्धास्तत्संशयाश्च तेषामनुपादेयत्वात् ॥१॥

धनोपार्जन के लिये प्रयत्न करती हुई वेश्याओं को कई प्रकार के अनर्थ, अनुबन्ध तथा संशयों का सामना करना पड़ता है[1] ॥ १ ॥

उत्पत्तिकारणान्याह—

ते बुद्धिदौर्बल्याद‌तिरागादत्यभिमानादतिदम्भादत्यार्जवादतिविश्वासादतिक्रोधात्प्रमादात्साहसाद्दैवयोगाच्च स्युः ॥ २ ॥

त इति। अनर्थादयः। बुद्धिदौर्बल्यादिति—ऊहानूहतत्त्वाभिनिवेशाविवेकाभ्यां बुद्धिदौर्बल्यम्। रागः सक्तिः। अभिमानोऽहङ्कारः। दम्भश्छद्म। आर्जवमृजुता। विश्वासो विस्रम्भः। क्रोधः कोपः। एते कार्यवशाद्युक्तितः प्रयुज्यमाना नैव दोषाय आधिक्येन तु दोषायेत्यतिशब्देनाह। प्रमादो योऽन्यत्र व्यासङ्गः। साहसमविमृष्यकारित्वम्। एतन्नवधा मानुषम्। दैवयोगादिति। दैवेनाशुभकर्मसंज्ञकेन योगादित्यर्थः ॥ २ ॥

वे अनर्थ उनके अनुबन्ध और संशय, मूर्खता से, अधिक प्रेम करने से, अत्यधिक अभिमान से, अधिक दम्भ करने से, निहायत सरलता से, अधिक

---

[1] अर्थ से अर्थ, धर्म, काम का बोध होता है। अनर्थ का तात्पर्य अनिष्ट, अनुबन्ध से संकीर्णानुबन्ध का भी ग्रहण होता है और संशय के साथ शुद्ध और संकीर्ण दोनों तरह के संशय समझ लेने चाहिये।

विश्वास करने से, अति क्रोध से, प्रमाद से, बिना सोचे-समझे काम करने से और दैवयोग से वेश्याओं पर टूट पड़ते हैं ॥ २ ॥

तेषां फलं कृतस्य व्ययस्य निष्फलत्वमनायतिरागमिष्यतोऽर्थस्य निवर्तनमाप्तस्य निष्क्रमणं पारुष्यस्य प्राप्तिर्गम्यता शरीरस्य प्रघातः केशानां छेदनं पातनमङ्गवैकल्यापत्तिः ॥ ३ ॥

तेषां बुद्धिदौर्बल्यादीनाम्, अथवा एतेषामित्यनर्थानां सानुबन्धानां तत्संशयानां च फलमिति परिणामः। अनर्थवेदनविपरिणामरूपेण संशय्यमानत्वादनर्थसंशयानामपि फलम्। व्ययस्येति गम्याभिगमनाय कृतस्य। अनायतिः प्रभावहानिः। आगमिष्यत इत्यधिकृते व्यये लप्स्यमानस्य निवर्तनमिति बोद्धव्यम्। आप्तस्येति प्राप्तस्येत्यर्थः। निष्क्रमणमन्यतः गृह्यमाणत्वात्। पारुष्यस्येति। द्विरुक्तस्य, गम्यता अपरिचेयता, शरीरस्य प्रघातः प्राणैर्वियोगः, केशानां छेदनं लवनम्। पातनं बन्धनं ताडनम्। अङ्गवैकल्यं कर्णनासाविच्छेदः ॥ ३ ॥

इनके दुष्परिणाम ये हैं—उपचार आदि में खर्च किया गया धन व्यर्थ हो जाता है। नायक पर प्रभाव नहीं रह जाता। जो धन प्राप्त होता था वह भी नहीं मिलता और संचित धन भी निकल जाता है। बहुधा परस्पर कलह के कारण मृत्यु भी हो जाया करती है। अथवा क्रोध में आया हुआ नायक बालों को पकड़ कर वेश्या को नीचे गिरा कर पीटता है, हाथ-पैर तोड़ देता है ॥३॥

तस्मात्तानादित एव परिजिहीर्षेदर्थभूयिष्ठांश्चोपेक्षेत ॥ ४ ॥

तान्बुद्धिदौर्बल्यादीनादित एव परिहर्तुमिच्छेद्। यावदर्थहेतूनुपायान्प्रयुंक्ते। अन्यथा ह्यर्थं बाधित्वानर्थोऽपि स्यात्। कारणानां संनिहितत्वात्। अर्थभूयिष्ठांश्चेति। अर्थबहुलाननर्थहेतूनुपेक्षेत। तत्र ह्यर्थहेतूनामेवोपायानां बाहुल्यात् ॥ ४ ॥

इसलिये वेश्या को चाहिये कि शुरू से ही मूर्खता आदि को दूर करने का यत्न करे और उनसे यदि अधिक धन मिलता भी हो तो उपेक्षा कर दे॥४॥

इदानीं निरनुबन्धान्विचारयितुमाह—

अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ, धर्म और काम यह अर्थत्रिवर्ग है ॥ ५ ॥

अनर्थोऽधर्मो द्वेष इत्यनर्थत्रिवर्गः ॥ ६ ॥

अनर्थ इति। अर्थत्रिवर्गो ह्यर्थ इति कृत्वा तद्विरुद्धोऽनर्थत्रिवर्गः। तत्सार्थानर्थानुबन्धसंशयविचारा इत्यस्मिन्सूत्रे धर्माधर्मयोः कामद्वेषयोरपि संग्रहः सिद्धः। अनेन निरनुबन्धपक्ष उक्तो वेदितव्यः ॥ ६ ॥

अनर्थ, अधर्म और द्वेष यह अनर्थत्रिवर्ग है ॥ ६ ॥

तेष्वाचर्यमाणेष्वन्यस्यापि निष्पत्तिरनुबन्धः ॥ ७ ॥

तेष्वित्यर्थादिषु षट्सु साध्यमानेषु अन्यस्यापातिनः केवलं साध्यमानस्यान्यस्यापि सजातीयस्य विजातीयस्य वा षण्णामन्यतमस्येति ॥ ७ ॥

अर्थ आदि छहों के सिद्ध हो जाने पर उनके साथ जो दूसरा भी स्वतः सिद्ध हो जाता है वह अनुबन्ध है ॥ ७ ॥

संदिग्धायां तु फलप्राप्तौ स्याद्वा न वेति शुद्धसंशयः ॥ ८ ॥

संप्राप्तौ तु संदिग्धायां स्याद्वा न वेति यो विकल्पः स शुद्धसंशयः ॥ ८ ॥

यह होगा या नहीं इस प्रकार फल में सन्देह होना शुद्ध संशय है ॥ ८ ॥

इदं वा स्यादिदं वेति संकीर्णः ॥ ९ ॥

द्वयोरन्यतरोत्पत्त्या विकल्पस्य संकीर्यमाणत्वात् ॥ ९ ॥

यह फल होगा या वह फल होगा—यह संकीर्ण सन्देह है ॥ ९ ॥

एकस्मिन् क्रियमाणे कार्ये कार्यद्वयस्योत्पत्तिरुभयतोयोगः ॥

एकस्मिन्कार्य इति । अर्थादिसाधने क्रियमाणे द्वयस्येत्यर्थादीनां षण्णामन्यतमस्य सजातीयस्य विजातीयस्य वा द्वयस्योत्पत्तिरुभयतो योग इत्युभाभ्यां संबन्धः ॥ १० ॥

एक काम करते हुए दूसरे कार्य की उत्पत्ति हो जाये तो वह उभययोग है ॥ १० ॥

समन्तादुत्पत्तिः समन्ततोयोग इति तानुदाहरिष्यामः ॥ ११ ॥

समन्तादिति । एकस्मिन् क्रियमाणे बहुभ्योऽर्थादीनामुत्पत्तिः समन्ततो योगः । अस्य योगद्वयस्य निरनुबन्धपक्ष एवान्तर्भावः ।ताननुबन्धादीनुदाहरणादुदाहरिष्यामः । स्पष्टोऽर्थः ॥ ११ ॥

चारों ओर से उत्पत्ति हो तो वह समन्तत योग है—इन सब के उदाहरण आगे दिए जाएँगे ॥ ११ ॥

ननु च त्रिवर्गोऽनर्थोऽनर्थश्च तयोः स्वरूपतोऽपरिज्ञाने कथमुदाहरणमित्याह—

विचारितरूपोऽर्थत्रिवर्गः । तद्विपरीत एवानर्थत्रिवर्गः ॥ १२ ॥

विचारितरूप इति त्रिवर्गप्रतिपत्तौ निरूपितस्वभाव इत्यर्थः । तद्विरुद्धत्वादनर्थोऽपि विचारितरूप इत्याह—तद्विपरीत इति ॥ १२ ॥

जिसके स्वरूप का विचार किया जा चुका है वह अर्थत्रिवर्ग है उसी के विपरीत अनर्थत्रिवर्ग है ॥ १२ ॥

तत्रार्थानर्थयोस्त्रिवर्गयोरर्थानर्थावाद्यावधिकृत्याह—

यस्योत्तमस्याभिगमने प्रत्यक्षतोऽर्थलाभो ग्रहणीयत्वमायतिरागमः प्रार्थनीयत्वं चान्येषां स्यात्सोऽर्थोऽर्थानुबन्धः ॥१३॥

उत्तमादिभेदात्त्रिविधो नायको व्याख्यातः। तत्र यः समस्तगुणस्तस्योत्तमगुणस्याभिगमने। प्रत्यक्षतोऽर्थलाभ इति तत एव प्रत्यक्षात्तदानीमर्थलाभः। ग्रहणीयत्वमिति लोकग्राह्यत्वमुपादेयत्वम्। आयतिः प्रभावः। आगमस्तत्कालीयानां प्रार्थनीयत्वं गम्यादीनाम्। सोऽर्थ इति योऽसौ तदात्वे लाभः। अर्थानुबन्ध इति ग्रहणीयत्वादिरर्थैरनुबन्धो यस्य। अयं सजातीयानुबन्धः॥ १३॥

नायक के सभी गुणों से युक्त उत्तम नायक के साथ सहवास करने में तत्काल उससे अर्थलाभ मिलता है, उसके कारण वह वेश्या दूसरों की आकांक्षा की वस्तु बन जाती है। उसका प्रभाव बढ़ जाता है। उससे समागम करने के लिए लोग प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार का अर्थ दूसरे प्रकार के अर्थों से सम्बन्धित होने से अर्थानुबन्ध होता है॥ १३॥

लाभमात्रे कस्यचिदन्यस्य गमनं सोऽर्थो निरनुबन्धः॥

लाभमात्र इति तदात्वे यो लाभस्तन्मात्रमेव निमित्तम्। कस्यचिदिति लोके यो गुणैर्दोषैर्वा न विवक्षितस्तस्याभिगमनमात्रोऽर्थो निरनुबन्धः, ग्रहणीयत्वाद्यभावात्॥

लाभ की दृष्टि से किसी से भी समागम करना अनुबन्धरहित अर्थ अर्थात् निरनुबन्ध है॥ १४॥

अन्यार्थपरिग्रहे सक्तादायतिच्छेदनमर्थस्य निष्क्रमणं लोकविद्विष्टस्य वा नीचस्य गमनमायतिघ्नमर्थोऽनर्थानुबन्धः॥१५॥

सक्तादिति यः सक्तो निःसारत्वादन्यदीयमर्थमपहृत्य प्रयच्छति तस्यार्थस्य परिग्रहे आयतिच्छेदनं प्रभावहानिर्दस्युना सह तिष्ठतीति। अर्थस्येति पूर्वोपात्तस्य। निष्क्रमणं चात्र द्रव्यस्य नागरकेण गृह्यमाणत्वात्। लोकविद्विष्टस्य च चौर्यमकुर्वतोऽपि। नीचस्य वा जातिन्यूनस्य। गमनमायतिघ्नमिति प्रभावं हन्ति। अत्रार्थोऽनर्थानुबन्धः। तदात्वे लाभस्यायतिच्छेदानर्थानुबन्धित्वात्। अयं विरुद्धानुबन्धः॥ १५॥

जो निर्धन नायक दूसरे का धन अपहरण कर वेश्या को देता है तो ऐसा धन लेने से वेश्या का प्रभाव घटता है और वह धन निकल भी जाता है अथवा लोकद्रोही या नीच के साथ समागम करने से भी प्रभाव घटता है। ऐसा अर्थ अनर्थ उत्पन्न करता है इसलिए इसे अर्थोऽनर्थानुबन्ध कहते हैं॥१५॥

स्वेन व्ययेन शूरस्य महामात्रस्य प्रभवतो वा लुब्धस्य गमनं निष्फलमपि व्यसनप्रतीकारार्थं महतश्चार्थघ्नस्य निमित्तस्य प्रशमनमायतिजननं वा सोऽनर्थोऽर्थानुबन्धः ॥ १६ ॥

किसी शूर-वीर या प्रभावशाली, लोभी अथवा राजमन्त्री के लिए खुद खर्च करने पर भी प्रयोजन सिद्ध न हो तब भी अवसर पर संकटों, अनर्थों के प्रतीकार के लिए तथा लोगों में प्रभाव जमाने के लिए वह मिलना लाभदायक होता है। एक प्रयोजन के न सिद्ध होने पर भी दूसरा प्रयोजन तो सिद्ध हो ही जाता है ॥ १६ ॥

कदर्यस्य सुभगमानिनः कृतघ्नस्य वातिसन्धानशीलस्य स्वैरपि व्ययैस्तथाराधनमन्ते निष्फलं सोऽनर्थो निरनुबन्धः ॥

कदर्यस्येति आत्मानं भृत्यांश्च पीडयित्वा योऽर्थान्संचिनोति तस्य सुभगमानिन इति। असुभगः सन्नात्मानं सुभगं यो मन्यते स न प्रयच्छति। यः सुदुर्भगः सुभग-मानी स केवलार्थो गम्य उक्तः। कृतघ्नस्य वेति। 'वा' शब्दः पूर्वापेक्षया सर्वत्र योज्यः। अतिसन्धानशीलस्य छलेन सन्धानपरस्य। तथाराधनमिति यथा स्वैरपि व्ययैरभिगमनम्। निष्फलं यथानुरञ्जनमप्यन्ते निष्फलम्। सोऽनर्थं इति यः कृतो व्ययो निरनुबन्धः ॥ १७ ॥

अपने को सुन्दर समझने वाले दुराचारी, कृतघ्न नायक से जब वेश्या अपना खर्च कर काफ़ी खुशामद करके समागम करती है तो उसका धन और अनुराग निष्फल हो जाता है। ऐसा धन अनर्थोनिरनुबन्ध होता है ॥

कदर्यादिविशेषमाह—

तस्यैव राजवल्लभस्य क्रौर्यप्रभावाधिकस्य तथैवाराधनमन्ते निष्फलं निष्कासनं च दोषकरं सोऽनर्थोऽनर्थानुबन्धः ॥ १८ ॥

क्रौर्यप्रभावाधिकस्येति दोषत्रयमत्राधिकम्। तथैवाराधनमिति यथा स्वैर्व्ययै-रभिगमनं निष्फलम्। कदर्यादीनामदातृत्वात्। निष्कासनमददतां दोषकरम्। ते हि निष्कासिता दोषत्रययुक्तत्वात्पारुष्यशरीरप्रघातादीननर्थान्कुर्युः। इत्यनर्थोऽ-नर्थानुबन्धः। अयं सजातीयानुबन्धः ॥ १८ ॥

उसी प्रकार से किसी क्रूर राजपुरुष या राज्याधिकारी के साथ समागम करना भी निष्फल है और उसे निकाल देना बहुत बड़ी ग़लती है। इस प्रकार दूसरे अनर्थों को साथ लिए हुए यह अनर्थोऽनर्थानुबन्ध है ॥ १८ ॥

एवं धर्मकामयोस्प्यनुबन्धान्योजयेत् ॥ १९ ॥

एवमन्यानपि धर्मकामयोरनुबन्धान्योजयेत् । तत्र ब्राह्मणस्य गृहस्थस्यानुरक्तस्य मुमूर्षोर्गमनात्प्राणसंरक्षणं कुटुम्बसंधारणं गार्हस्थ्यधर्मप्रवर्तनं च धर्मो धर्मानुबन्धः । काममात्रं च तद्धर्मो निरनुबन्धः । तस्यैवाकृतस्नानभोजनस्य गमनं कामो द्वेषानुबन्ध इति । अत्रानुबन्धाः षट् विजातीयविरुद्धाभ्यामनुबन्धा द्वादश ॥ १९ ॥

इसी प्रकार धर्म और काम के अनुबन्धों की योजना कर लेनी चाहिए ॥

परस्परेण च युक्त्या संकिरेदित्यनुबन्धाः ॥ २० ॥

युक्त्येति विरुद्धं त्यक्त्वा शेषाणां विजातीयानामन्ययोगादित्यर्थः । तत्रार्थो धर्मानर्थकामद्वेषैः प्रत्येकमनुबद्धश्चतुर्विधः । तथानर्थोऽपि धर्मोर्थानर्थकामद्वेषः प्रत्येकमनुबद्धश्चतुर्विधः । तथा अधर्मोऽपि कामोऽर्थानर्थधर्माधर्मैः प्रत्येकमनुबद्धश्चतुर्विधः । तथा द्वेषोऽपि । इति चतुर्विंशतिसंकीर्णानुबन्धा ॥ २० ॥

इन्हें आपस में युक्तिपूर्वक मिलाना चाहिए । ये अनुबन्ध पूरे हुए ॥२०॥

शुद्धसंशयमधिकृत्याह—

परितोषितोऽपि दास्यति न वेत्यर्थसंशयः ॥ २१ ॥

यदि तदात्वे न ददाति सुरतोपचारेण परितोषितोऽपि दास्यति । तत्राज्ञानशीलत्वाद्द्यान्न वेत्यर्थसंशयः ॥ २१ ॥

राज़ी करने पर भी 'देगा' या 'नहीं' इस प्रकार के सन्देह को अर्थसंशय कहते हैं ॥ २१ ॥

निष्पीडितार्थमफलमुत्सृजन्त्या अर्थमलभमानाया धर्मः स्यान्न वेति धर्मसंशयः ॥ २२ ॥

उत्सृजन्त्या इति । कामुकेभ्योऽङ्गानि दत्त्वार्थार्जनं चेत्स्याद्धर्मः । अङ्गार्पणं वेश्याया धर्मः । तथा हि—'यथा स्ववृत्तिधर्मः' इत्याचार्याः । तत्रार्थमलभमानाया निष्पीडितार्थस्योत्सर्जनमपि किं धर्मो न वेति संशयः ॥ २२ ॥

वेश्या ने जिस नायक का सारा धन निचोड़ लिया हो और उससे धन न मिलने से उसे त्याग देने को उद्यत हो तो उसका इस प्रकार परित्याग करना वेश्या का धर्म होगा या नहीं—यह संशय, धर्मसंशय होता है ॥ २२ ॥

अभिप्रेतमुपलभ्य परिचारकमन्यं वा क्षुद्रं गत्वा कामः स्यान्न वेति कामसंशयः ॥ २३ ॥

अभिप्रेतमपि रुचिरं नायकं परिचारकमात्मीयं वा क्षुद्रं निकृष्टं गत्वा तयोरनभिप्रेतत्वादज्ञातकामत्वाच्च कामः स्यान्न वेति संशयः ॥ २३ ॥

अभीष्ट नायक को पाकर वेश्या जब अनभिप्रेत आत्मीय सेवक या क्षुद्र व्यक्ति के पास जाकर यह सन्देह करती है कि काम होगा या नहीं—यही सोचना कामसंशय है ॥ २३ ॥

प्रभाववान् क्षुद्रोऽनभिगतोऽनर्थं करिष्यति न वेत्यनर्थसंशयः ॥ २४ ॥

अनभिगत इति । अभिगन्तुमिच्छन् क्षुद्रत्वात्प्रत्याख्यातः । स हि राजकुले लब्धप्रभावत्वादनर्थं करिष्यति न वेति संशयः ॥ २४ ॥

प्रभावशाली नीच समागम न होने पर अनर्थ करेगा या नहीं—यह अनर्थसंशय है ॥ २४ ॥

अत्यन्तनिष्फलः सक्तः परित्यक्तः पितृलोकं यायात्तत्राधर्मः स्यान्न वेत्यधर्मसंशयः ॥ २५ ॥

सक्त इति । अनुरक्तोऽभिगन्तुमिच्छन् । परित्यक्तो निष्फलत्वात् । पितृलोकं यायादिति । अवस्थान्तरप्राप्तौ यमलोकं यायादिति संभाव्यते । तत्रेति । परित्यागेऽधर्मः स्यान्न वेति संशयः ॥ २५ ॥

समागम के लिए इच्छुक धनहीन प्रेमी को सारहीन समझ कर छोड़ देना और फिर यह सोचना कि कदाचित् वह वियोगी मर जाय तो अधर्म होगा या नहीं—इस प्रकार सोचना अधर्मसंशय है ॥ २५ ॥

रागस्यापि विवक्षायामभिप्रेतमनुपलभ्य विरागः स्यान्न वेति द्वेषसंशयः । इति शुद्धसंशयाः ॥ २६ ॥

रागस्यापि विवक्षायामिति । कामो न भविष्यतीति न विवक्षितं रागेण पीड्यमानत्वात् । अभिप्रेतोऽपि नास्ति यदायमाश्रित्य स्यादित्याह—अभिप्रेतमनुपलभ्येति । केवलमेव वर्तमानाया विद्वेषः स्यान्न वेति संशयः । शुद्धसंशया इति । एकस्यैव भावाभावाभ्यां संशय्यमानत्वात् ॥ २६ ॥

रतिसंभोग से पीड़ित वेश्या अभीष्ट नायक को न पाकर अपनी कामव्यथा की शान्ति के लिए जब तड़पती है उस समय उसे विराग होगा या नहीं—यही द्वेष का संशय है । शुद्धसंशय समाप्त हुए ॥ २६ ॥

अथ संकीर्णाः ॥ २७ ॥

अथेत्यानन्तर्ये । संकीर्णा निर्दिश्यन्ते । शुद्धानन्तरं हि संकीर्णस्योद्दिष्टत्वात् । इदं वा स्यादिदं वेति संकीर्णा इति ॥ २७ ॥

अब संकीर्ण संशय कहे जाते हैं ॥ २७ ॥

स च विरुद्धाविरुद्धाभ्यां, तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

आगन्तोरविदितशीलस्य वल्लभसंश्रयस्य प्रभविष्णोर्वा समुपस्थितस्याराधनमर्थोऽनर्थ इति संशयः ॥ २८ ॥

आगन्तोरिति । कुतश्चिदागतस्याभिगमनेऽविदितशीलत्वादर्थोऽनर्थो वेति संशयः । अप्रत्ययस्य वा अतिथितया समुपस्थितत्वादर्थः । वल्लभसंश्रयात्प्रभविष्णुत्वाद्वानर्थ इति कारणद्वयस्य निधानात्संशयः ॥ २८ ॥

आश्रित नायक या प्रभावशाली नायक की उपस्थिति में यदि अपरिचित व्यक्ति मिलने के लिए आ जाए तो उससे समागम करना अर्थकर है या अनर्थकर—यह संशय होना अर्थानर्थसंकीर्णता है ॥ २८ ॥

श्रोत्रियस्य ब्रह्मचारिणो दीक्षितस्य व्रतिनो लिङ्गिनो वा मां दृष्ट्वा जातरागस्य मुमूर्षोर्मित्रवाक्यादानृशंस्याच्च गमनं धर्मोऽधर्म इति संशयः ॥ २९ ॥

श्रोत्रियस्येति गृहस्थस्यापि क्रियावतः । ब्रह्मचारिण इति प्रथमाश्रमस्य । व्रतिन इति कियन्तं कालं गृहीतपराकादिव्रतस्य । लिङ्गिन इति भौतादेः । मुमूर्षोरिति मर्तुमिच्छोः । कामस्यावस्थान्तरप्राप्तत्वात् । मित्रवाक्यादिति । श्रोत्रियादीनां मित्रस्याभ्यर्थनावचनात् । आनृशंस्याच्च करुणायाः । अभिगमने धर्मोऽधर्म इति मा भूत्प्राणत्याग इति धर्मनियमभ्रंशः दूष्य इत्यधर्मः । तदुभयमपि कस्मान्न भवतीति चेत् , न । अन्यतरस्य बलीयसं उत्पादनात् ॥ २९ ॥

नायिका को देखकर श्रोत्रिय, ब्रह्मचारी, दीक्षित, व्रती, साधु, संन्यासी अथवा मरने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के साथ मित्रों के कहने पर या अपनी दयालुता के कारण समागम करना धर्म होगा या अधर्म—यह सन्देह धर्माधर्मसंकीर्ण है ॥ २९ ॥

लोकादेवाकृतप्रत्ययादगुणो गुणवान्वेत्यनवेक्ष्य गमनं कामो द्वेष इति संशयः ॥ ३० ॥

अकृतप्रत्ययादिति अकृतनिश्चयाल्लोकात् । किमयं गुणवान्न वेति स्वयमनवेक्ष्यानिश्चित्य केवलं लोकप्रवादाद् गुणवानित्यभिगमनादभिसरणे किं कामो द्वेषो वेति विरुद्धसंकीर्णास्त्रयः ॥ ३० ॥

नायक के गुण, अवगुण पर स्वयं कोई विचार न करके केवल लोगों से सुनकर कि यह गुणवान है—नायिका उससे जब समागम करती है तो उसे यह सन्देह पैदा होता है कि इस प्रकार का समागम काम होगा या द्वेष—इस सन्देह को कामद्वेष संकीर्णसंशय कहते हैं ॥ ३० ॥

संकिरेच्च परस्परेणेति संकीर्णसंशयाः ॥ ३१ ॥

जो आपस में मिलते समय संशय हो वह संकीर्ण संशय है। **संकीर्ण संशय पूरे हुए** ॥ ३१ ॥

अविरुद्धमधिकृत्याह—

यत्र परस्याभिगमनेऽर्थः सक्ताच्च संघर्षतः स उभयतोऽर्थः ॥

यत्रेति यस्मिन्नुभयतो योगे। परस्येत्यपूर्वस्य। उत्तरत्राप्यधिकृतं वेदितव्यम्। अभिगमनेऽर्थः परस्मादेव। सक्ताच्चेत्यनुरक्तात्। अभिगमने। संघर्षत इति स्पर्धमानादर्थः। स मा भूदनेनास्याः संप्रयोग इति स्पर्धया ददाति। स उभयतोयोग उभयतोऽर्थो नाम। अन्यत्र यस्मिन् क्रियमाणे कार्यस्योत्पत्ति-रुभयतो योग इति भूतसूत्रार्थो योज्यः ॥ ३२ ॥

किसी दूसरे नायक के साथ धन लेकर समागम करने से वेश्या पर आसक्त नायक भी दूसरे नायक का सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए धन देता है तो दोनों ओर से धन का योग होने से—यह उभयतोऽर्थयोग हुआ ॥३२॥

यत्र स्वेन व्ययेन निष्फलमभिगमनं सक्ताच्चामर्षिताद्वित्त-प्रत्यादानं स उभयतोऽनर्थः ॥ ३३ ॥

यस्मिन्नुभयतोयोगे स्वेन व्ययेनाभिगमनम्। परस्येति वर्तते। निष्फलमि-त्यर्थः। सक्ताच्चानुरक्तादभिगमनम्। विभक्तिविपरिणामेन योज्यम्। अमर्षिता-दिति कदाचिदर्थयुक्तात् क्रुद्धात्। वित्तप्रत्यादानमिति तेनैव दत्तं प्रतीपमादीय-मानम्। अनर्थः अन्ते निष्क्रमणात्। स उभयतोयोग उभयतोऽनर्थो नाम। उभ-यतोगम्यस्य भिन्नविषयत्वात्। निरनुबन्धपक्षेऽन्तर्भावः ॥ ३३ ॥

अपना खर्च करके भी नायिका जिस नायक से समागम करती है और उससे कुछ भी नहीं मिलता है तथा रुष्ट प्रेमी से उसके दिये गए धन के छिन जाने का भी भय रहता है तो उसे उभयतोऽनर्थयोग कहते हैं ॥ ३३ ॥

संशयोऽत्रास्त्येवेत्याह—

यत्राभिगमनेऽर्थो भविष्यति न वेत्याशङ्का सक्तोऽपि संघर्षाद्दास्यति न वेति स उभयतोऽर्थसंशयः ॥ ३४ ॥

यत्रेति यस्मिन्नुभयतोयोगे। अभिगमन इति परस्य। भविष्यति न वेत्या-शङ्का न निश्चयः। सक्तश्चाभिगमने संघर्षात्स्पर्धया दास्यति न वेति स उभयतो-ऽर्थसंशयो नाम ॥ ३४ ॥

जिसके समागम से अर्थ प्राप्त होगा या नहीं यह शंका हो, धनहीन आसक्त संघर्ष में पड़कर धन देगा या नहीं—दोनों ओर से ऐसा सन्देह होने पर उभयतोर्थसंशय होता है ॥ ३४ ॥

यत्राभिगमने व्ययवति पूर्वो विरुद्धः क्रोधादपकारं करिष्यति न वेति सक्तो वामर्षितो दत्तं प्रत्यादास्यति न वेति स उभयतोऽनर्थसंशयः । इत्यौद्दालकेरुभयतो योगाः ॥ ३५ ॥

यत्रेति यस्मिन्नुभयतोयोगे । व्ययवतीति व्ययं कृत्वापि परस्याभिगमनम् । पूर्व इति पूर्वसंसृष्टः । विरुद्धः परस्यैव । क्रोधादिति । स्वेन व्ययेनाभिगमनमनया क्रियत इति तद्द्वारेण क्रोधान्ममापकार करिष्यति न वेति संशयः । सक्तश्च प्राक्कयाचिदर्थयुक्त्यामर्षितो गमने दत्तं प्रत्यादास्यति न वेति संशयः, स उभयतोयोगोऽनर्थसंशयो नाम ॥ ३५ ॥

अपने पास से धन खर्च करके जिससे समागम किया जाए तो कहीं पुराना प्रेमी क्रोध में आकर अपमान न कर दे अथवा नया प्रेमी नाराज़ होकर अपना दिया हुआ धन कहीं वापस न कर ले । इस प्रकार दोनों ओर से अनर्थ का सन्देह हो तो उभयतोऽनर्थ सन्देह होता है । श्वेतकेतु औद्दालकि के कहे हुए उभयतोयोग समाप्त हुए ॥ ३५ ॥

बाभ्रवीयास्तु— ॥ ३६ ॥

बाभ्रवीयास्त्विति । उभयतोयोगा वक्ष्यन्त इति शेषः ॥ ३६ ॥

और बाभ्रवीय सम्प्रदाय के आचार्य तो इन संशयों को जैसा कहते हैं, वैसा सुनाते भी हैं ॥ ३६ ॥

यत्राभिगमनेऽर्थोऽनभिगमने च सक्तादर्थः स उभयतोऽर्थः ॥

यत्रेत्युभयतोयोगे । अनभिगमने च सक्तादिति अनभिगतात्सक्तादित्यर्थः । यः सक्तो वशी सोऽनभिगत एव दास्यति यथोक्तं प्राक्—'सक्तं तु वशिनं नारी संभाष्यान्यत्र वा व्रजेत्' इति । पूर्वस्मिन्दर्शनेऽन्यतराभिगमनेऽन्यतरस्मादर्थः । इहत्वेकस्यैवाभिगमन उभयस्मादर्थः । ततश्च स एवात्र मूलसूत्रार्थः ॥३७॥

जिस उभयतोयोग में अपने पूर्व प्रेमी से विना समागम किए ही दूसरे से समागम करके अर्थ प्राप्त किया जाए और बाद में पुराने प्रेमी को प्रसन्न कर उससे भी अर्थ प्राप्त किया जाए यह उभयतोऽर्थयोग है ॥ ३७ ॥

यत्राभिगमने निष्फलो व्ययोऽनभिगमने च निष्प्रतीकारोऽनर्थः स उभयतोऽनर्थः ॥ ३८ ॥

यत्रेत्युभयतोयोगे। अभिगमन इति परस्य। निष्फलो व्यय इति अनर्थः। अनभिगमने च सक्तादित्यनुवर्तते। यः पराभिगमने सक्तो जातामर्षस्तस्मान्निष्प्रतीकारोऽनर्थो यद्वित्तप्रत्यादानं स उभयतोऽनर्थो नाम ॥ ३८ ॥

जिस समागम में निरर्थक व्यय हो और न समागम करने से अनिवार्य संकट उपस्थित होने का भय हो, तथा समागम करने पर पुराना प्रेमी क्रुद्ध होकर कुछ अनर्थ कर बैठे तो यह उभयतोऽनर्थ हुआ ॥ ३८ ॥

यत्राभिगमने निर्व्ययो दास्यति न वेति संशयोऽनभिगमने सक्तो दास्यति न वेति स उभयतोऽर्थसंशयः ॥ ३९ ॥

यत्रेत्युभयतोयोगे। अभिगमने परस्य। निर्व्यय इति विना व्ययेन। अनभिगमने सक्त इति विनाभिगमनं दास्यति न वेति। तस्य वशित्वं न निश्चितं स चोभयतोऽर्थसंशय इति नाम ॥ ३९ ॥

जिसके समागम से कुछ अपना खर्च नहीं किन्तु वह कुछ देगा या नहीं यह सन्देह बना हो और अपना आसक्त प्रेमी भी विना मिले देगा या नहीं यह भी सन्देह हो तो यह उभयतोऽर्थसन्देह है ॥ ३९ ॥

यत्राभिगमने व्ययवति पूर्वो विरुद्धः प्रभाववान् प्राप्स्यते न वेति संशयोऽनभिगमने च क्रोधादनर्थं करिष्यति न वेति स उभयतोऽनर्थसंशयः ॥ ४० ॥

यत्रेत्युभयतोयोगे। अभिगमने परस्य। पूर्वो विरुद्धः प्राप्स्यते मया तद्द्वारेणायमपकरिष्यति न वेति संशयः। अनभिगमने च सक्त इति वर्तते। क्रोधादनर्थं करिष्यति न वेति संशयः। पराभिगमने तदीयामर्षस्यानिश्चितत्वात्। उभयतोऽनर्थसंशयो नाम। एते चत्वार उभयतोयोगा दर्शनद्वयेऽपि शुद्धा उक्ताः ॥ ४० ॥

अपना खर्च कर देने पर भी जिससे समागम करने में यह सन्देह हो कि पहला प्रेमी जो प्रभावशाली है इसके साथ समागम करने पर क्रुद्ध होकर कहीं मिलना न बन्द कर दे, और न मिलने पर यह क्रोध से कुछ अनर्थ करेगा या नहीं—इस प्रकार का सन्देह उभयतोऽनर्थ संशय है ॥ ४० ॥

संकीर्णानाह—

एतेषामेव व्यतिकरेऽन्यतोऽर्थोऽन्यतोऽनर्थः, अन्यतोऽर्थोऽन्यतोऽर्थसंशयः, अन्यतोऽर्थोऽन्यतोऽनर्थसंशय इति षट् संकीर्णयोगाः ॥ ४१ ॥

एतेषामेव व्यतिकर इति। सजातीयं त्यक्त्वा शेषाणां परस्परसंकीर्णत्वे षट्संकीर्णयोगाः। यदाह—अन्यत इति। यत्र परस्याभिगमने एकतो योऽर्थः। सक्ताच्चामर्षिताद्वित्तप्रत्यादानमित्यन्यतोऽनर्थो य उभयतोयोगोऽर्थानर्थरूपः। अन्यतोऽर्थ इति पूर्ववत्। सक्तः संवर्षाद्दास्यति न वेत्यन्यतोऽर्थसंशयः। अयमर्थार्थसंशयरूपः। यत्र परस्य स्वेन व्ययेन निष्फलमभिगमनमित्यन्यतोऽनर्थसंशयः। अन्यतोऽर्थः इति पूर्ववत्। सक्तोऽमर्षितो दत्तं प्रत्यादास्यति न वेत्यन्यतोऽनर्थसंशयरूपः। अयमर्थानर्थसंशयरूपः। एवं बाभ्रव्यदर्शनेऽपि योज्यम् ॥४१॥

इन्हीं के विषम संयोग से एक-एक के छह संकीर्ण योग बनते हैं—एक से अर्थ एक से अनर्थ, एक से अर्थ एक से अर्थसंशय, तथा एक से अर्थ एक से अनर्थसंशय—ये तीन श्वेतकेतु के मत से और तीन ही बाभ्रवीय मत से दोनों मिला कर छह हो जाते हैं। षट्संकीर्ण योग समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

तेषु सहायैः सह विमृश्य यतोऽर्थभूयिष्ठोऽर्थसंशयो गुरुरनर्थप्रशमो वा ततः प्रवर्तेत ॥ ४२ ॥

तेष्विति दर्शनद्वयेऽपि शुद्धेषु संकीर्णेषु च। सहायैः पूर्वोक्तैः। यत इति यं गम्यमाश्रित्य। अर्थभूयिष्ठ इत्यर्थबहुलो योऽर्थसंशयो नेतरः। गुरुरनर्थप्रशमो वा। अर्थाद्धि महतोऽनर्थस्य प्रतिकार्यस्य गुरुत्वात्। तत इति। तं लक्ष्यीकृत्य प्रवर्तेत ॥

इनमें से इनके सहायकों के साथ विचार करके जिससे अधिक अर्थ वाला अर्थसंशय हो अथवा जिसमें महान् अनर्थ की शान्ति हो उसी के साथ प्रवृत्त होना चाहिए ॥ ४२ ॥

एवं धर्मकामावप्यनयैव युक्त्योदाहरेत्। संकिरेच्च परस्परेण व्यतिषञ्जयेच्चेत्युभयतोयोगाः ॥ ४३ ॥

अनयैवेत्युक्तयुक्त्या उदाहरेत् तत्र परस्य द्विजत्वादभिगमने धर्मः सक्ताच्चानुरागान्मुमूर्षोः स उभयतो धर्मः। यत्र ब्रह्मचारिणोऽभिगमनेऽधर्मः सक्ताच्च व्रतस्थादनिच्छतः स उभयतोऽधर्मः। यत्र परस्य निर्द्रव्यस्याऽभिगमने धर्मो न भविष्यतीत्याशंसा, सक्ताच्च निष्पादितार्थत्वादप्रयच्छतो धर्मो न वेति स उभयतो धर्मसंशयः। यत्र परस्याभिप्रेतस्याभिगमने कामः सक्ताच्चाभिप्रेतात्स उभयतः कामः। यत्र परस्यानभिप्रेतस्य गमने विरागः सक्ताच्चानभिप्रेतात्स उभयतो द्वेषः। यत्र परस्याविदितशीलस्य गमने कामो भविष्यति न वेति स उभयतः कामसंशयः। यत्र परस्याभिगमने रागापनयनविवक्षायां विरागः स्यान्न वेति संशयः सक्ताच्च तथैव विरागः स्यान्न वेति स उभयतो द्वेषसंशयः। इत्यौद्दालकेः शुद्धा उभयतो योगाः।

तथैव गमनागमनाभ्यां बाभ्रवीयेषूदाहरेत् संकिरेच्च।

धर्मकामावप्येतैव प्रकारैरेकैकशः संकिरेच्च परस्परेणेति—सजातीयांस्त्यक्त्वा। तथान्यतो धर्मोऽन्यतोऽधर्म इति धर्मसंशयेनाधर्मसंशयेन संकीर्णास्त्रिविधः। तथान्यतो धर्माधर्माभ्यान्यतो धर्मसंशयो वान्यतोऽधर्मसंशयेन संकीर्णास्त्रयः। इति षट्संकीर्णाः। औद्दालकेः बाभ्रव्यस्य च एवमन्यतः कामोऽन्यतो द्वेषेण कामसंशयेन च संकीर्णास्त्रयः, इति षट् संकीर्णाः। औद्दालकेर्बाभ्रव्यस्य च।

इहापि सहायैर्विमृश्य यतो धर्मभूयिष्ठस्तत्संशयो गुरुर्धर्मद्वेषप्रशमश्च ततः प्रवर्तेत न तु यतो धर्मो द्वेषतः संशयश्चेति योज्यम्।

व्यतिषञ्जयेच्चेति। अर्थादीनां विरुद्धं तं त्यक्त्वा शेषान्परस्परतः संश्लेषयेदित्यर्थः। तत्रान्यतो अर्थः अन्यतो धर्माधर्मकामद्वेषैस्तत्संशयैश्च संयोजितोऽष्टप्रकारः। तथानर्थसंशयोऽर्थोऽनर्थसंशयश्च। समुदायेन द्वात्रिंशद्भवन्ति। एवमन्यतो धर्मोऽन्यतोऽर्थानर्थकामद्वेषैस्तत्संशयैश्च संयोजितोऽष्टप्रकारः। तथा धर्मोऽधर्मसंशयश्चेति द्वात्रिंशत्। एवमन्यतः कामोऽन्यतोऽर्थानथधर्मैस्तत्संशयैश्च संयोजितोऽष्टप्रकारः। तथा द्वेषः। कामसंशयश्चेति द्वात्रिंशत्। समुदायेन षण्णवतिः। विपर्ययेणैतावन्तः। एवमौद्दालकेर्व्यतिषङ्गसंयोगानां च द्वानवतिशतम्। एवं बाभ्रव्यस्य। तेष्वपि सहायैर्विमृश्येत्यादि योज्यम्॥ ४३॥

अर्थशुद्ध उभयतोयोग के ढंग पर ही धर्म और काम के भी शुद्ध उभयतोयोग बना लेना चाहिए। जिस प्रकार अर्थ के संकीर्ण योग हैं उसी प्रकार परस्पर संकीर्ण योग बना लिया जाए और फिर उनके विरोधी भाव हटाकर आपस में संश्लिष्ट कर दे। औद्दालकि द्वारा बताए गए शुद्ध उभयतोयोग समाप्त हुए॥ ४३॥

उक्ता उभयतो योगास्त्रिविधाः—शुद्धाः संकीर्णा व्यतिषक्ताश्च।

समन्ततो योगं दर्शयितुं विशेषमाह—

संभूय च विटाः परिगृह्णन्त्येकामसौ गोष्ठीपरिग्रहः॥ ४४॥

संभूयेत्येकीभूय, जातविश्वासत्वात्परिगृह्णन्त्येवैकां विटाः। प्राप्तापूर्वसमाचारत्वात्। असौ गोष्ठीपरिग्रह उच्यते यो बहुभिरेकस्याः परिग्रहः॥ ४४॥

बहुत से विट (लम्पट) मिलकर एक वेश्या के साथ रतिक्रीडा करें तो उसे गोष्ठीपरिग्रह कहते हैं॥ ४४॥

तेनानेकपरिग्रहायाः समन्ततोयोग इति तामेवाधिकृत्याह—

सा तेषामितस्ततः संसृज्यमाना प्रत्येकं संघर्षादर्थं निर्वर्तयेत्॥

अनेकपरिग्रहासेषामितस्तत इत्यनेनैकेन कदाचिद्द्वाभ्यां बहुभिर्वा संसृज्यमाना

संपर्कमयन्ती । संघर्षादिति । परस्परस्य संघर्षात्तेषां संसृज्यमाना प्रत्येकमेकैकशोऽर्थान्निर्वर्तयेत् ॥ ४५ ॥

गोष्ठीपरिग्रह करने वाली वेश्या इधर-उधर मिलकर अपने मिलनेवालों से संघर्ष कराकर उनसे धन खींच ले ॥ ४५ ॥

स्पर्धाकारणमाह—

सुवसन्तकादिषु च योगे यो मे इममधुं च संपादयिष्यति तस्याद्य गमिष्यति मे दुहितेति मात्रा वाचयेत् ॥ ४६ ॥

सुवसन्तकादिष्विति । तेषूत्सवेषु विटानां कामदौर्बल्यं जायते । मनोरथमित्यभिप्रेतम् । वाचयेत् । सा हि निरनुरोधत्वात् शक्ता व्यवस्थापयितुम् ॥४६॥

वेश्या की माँ उसके प्रेमियों के पास सन्देश भेज दे कि सुवसन्तक, कौमुदी-महोत्सव, मदनमहोत्सव आदि निकट आनेवाले उत्सव में मेरी लड़की प्रथम सहवास उसी से करेगी जो इन-इन वस्तुओं को लाकर पहले उसे देगा ॥४६॥

तेषां च संघर्षजेऽभिगमने कार्याणि लक्षयेत् ॥ ४७ ॥

संघर्षज इति संघर्षजनिते । कार्याणीति लाभान् ॥ ४७ ॥

उस अवसर पर वहां जब प्रेमी लोग प्रेमिका से मिलने के लिए आपस में संघर्ष करने लगें उस समय वह अपना लक्ष्य अधिक लाभ पर ही रखे ॥४७॥

तान्याह—

एकतोऽर्थः सर्वतोऽर्थः एकतोऽनर्थः सर्वतोऽनर्थः । अर्धतोऽर्थः सर्वतोऽर्थः अर्धतोऽनर्थः सर्वतोऽनर्थः । इति समन्ततो योगाः ॥ ४८ ॥

एकतोऽर्थ इति । यावद्भिः परिगृहीता तेषामन्यतमस्यैकस्य द्वयोरन्यतरस्यैकस्य शेषेण सह स्पर्धा तस्मादेकतोऽर्थं लक्षयेत् । सर्वत इति—सर्वेभ्योऽर्थम् । एकतोऽनर्थं सर्वतोऽनर्थं यदोभौ स्पर्धेते तदोभयतोऽर्थं सर्वतोऽर्थमुभयतोऽर्थम् । उभयतोनर्थः सर्वतोऽनर्थं इति । यदार्धः स्पर्धते तदार्धतोऽर्थमर्धतोऽनर्थमिति समन्ततो योगास्त्रिधा भिन्नाः ॥ ४८ ॥

एक से अर्थ सब से अर्थ, एक से अनर्थ सब से अनर्थ, आधे से अर्थ पूरे से अर्थ, आधे से अनर्थ सबसे अनर्थ—ये समन्ततो—चारों ओर के योग हैं ॥४८॥

अभिन्नविषयत्वादनुबन्धो नास्ति संशयस्तु विद्यत इत्याह—

अर्थसंशयमनर्थसंशयं च पूर्ववद्योजयेत् । संकिरेच्च तथा धर्मकामावपि । इत्यर्थानर्थानुबन्धसंशयविचाराः ॥ ४९ ॥

पूर्ववदिति । एकतोऽर्थसंशयः सर्वतोऽर्थसंशयः । एकतोऽनर्थसंशयः सर्वतोऽनर्थसंशयः । इति द्वौ, पूर्वोक्तौ च द्वाविति चत्वारः शुद्धाः । संकिरेच्चेति । सजातीयं त्यक्त्वा, तत्रैकतोऽर्थः सर्वतोऽनर्थ इत्येकः । सर्वतोऽनर्थसंशये च द्वितीयः । एकतोऽर्थः सर्वतोऽनर्थसंशय इति तृतीयः । एकतोऽनर्थः सर्वतोऽर्थसंशयश्चेति चतुर्थः । एकतोऽनर्थः सर्वतोऽनर्थसंशय इति पञ्चमः । एकतोऽर्थसंशयः सर्वतोऽनर्थसंशयः इति षष्ठः । इति संकीर्णाः षट् शुद्धाश्चत्वारः । एवं स्वजातीयं त्यक्त्वा संकीर्णाः षट् । संघर्षजेऽभिगमने कार्याण्येतान्युक्तानि । यदा त्वसंघर्षजमभिगमनं तदा तेषामेकाभिप्रायत्वाद्द्वादश समन्ततो योगाः । सर्वतोऽर्थः । सर्वतोऽनर्थः । सर्वतो धर्मः । सर्वतोऽधर्मः । सर्वतः कामः । सर्वतो द्वेषः । इति षट् । त एव संशयिताः षट् । इत्युक्ता अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचाराः ॥ ४९ ॥

पूर्ववत् अर्थसंशय और अनर्थसंशय की योजना कर लेनी चाहिये । साथ ही संकीर्ण को भी समझ लेना चाहिए । इसी प्रकार धर्म और काम के समन्ततोयोग समझने चाहिए ।

अर्थ, अनर्थ, अनुबन्ध और संशय सम्बन्धी विचार पूरे हुए ॥ ४९ ॥

वेशप्रयोजनमिदमधिकरणम् । वेशस्य कारणस्य शेषभूतमाह—

कुम्भदासी परिचारिका कुलटा स्वैरिणी नटी शिल्पकारिका प्रकाशविनष्टा रूपाजीवा गणिका चेति वेश्याविशेषाः ॥ ५० ॥

कुम्भदासीति कुम्भग्रहणं निकृष्टकर्मोपलक्षणम् । लोके सामान्यास्त्रयः प्रसिद्धाः । कुम्भदासी गणिका रूपाजीवा चेति । शेषाणामपि सामान्यात्वात्तत्रैवान्तर्भावः । परिचारिका याः स्वामिनं परिचरन्ति । तस्या औपनिषदिके विधिं वक्ष्यति । कुलटा या पतिभयाद्गृहान्तरं गत्वा प्रच्छन्नमन्येन संप्रयुज्यते । स्वैरिणी या पतिं तिरस्कृत्य स्वगृहेऽन्यगृहे वा संप्रयुज्यते । नटी रङ्गयोषित् । शिल्पकारिका रजकतन्तुवायादिभार्या । प्रकाशविनष्टा या जीवति मृते वा पत्यौ सग्रहणधर्मेण गृहीता कामचारं प्रवर्तते । एताः षड् रूपाजीवायामेवान्तर्भवन्तीति वेश्याविशेषा इति वेशेन संपद्यन्ते ॥ ५० ॥

कुम्भदासी, परिचारिका, कुलटा, स्वैरिणी, नटी, शिल्पकारिका, प्रकाशविनष्टा, रूपाजीवा और गणिका—वेश्याओं के ये भेद हैं ॥ ५० ॥

सर्वासां चानुरूपेण गम्याः सहायास्तदुपरञ्जनमर्थागमोपाया निष्कासनं पुनः संधानं लाभविशेषानुबन्धा अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचाराश्चेति वैशिकम् ॥ ५१ ॥

सर्वासामिति । आनुरूप्येणेति । आत्मनो हीनमध्यमोत्तमापेक्षयेत्यर्थः, तदुप-

रञ्जनमिति । कान्ताऽनुवृत्तम्, पुनःसन्धानमिति । विशीर्णप्रतिसन्धानं, वैशिकमिति । वेशो वेश्याजनोचितं वृत्तं. दत्तकाचार्य्यदर्शनेन षड्विधं सहायग्रहणं गम्यपरीक्षण-मनुरञ्जनमर्थादानं निष्कासनं विशीर्णप्रतिसन्धानं चेति बाभ्रव्यमतेन दर्शनेनाष्टविधं शेषाभ्यां सह तत् प्रयोजनमस्येति वैशिकम् ॥ ५१ ॥

जितने प्रकार की वेश्यायें बतायी गई हैं, उतने ही प्रकार के उनसे मिलने वाले भी होते हैं। इस वैशिक अधिकरण में वेश्यायें, वेश्याओं के प्रेमी, उनके सहायक, अनुरक्त करने के उपाय, धन खींचने के उपाय, प्रेमी को निकालने का ढंग और निकाल कर फिर मिलाने का ढंग, लाभ विशेष, अर्थ, अनर्थ; अनुबन्ध और संशय विचार—मुख्यतया इन्हीं का वर्णन है ॥ ५१ ॥

ननु च शतायुः पुरुषो विभज्य कालं त्रिवर्गं सेवेतेत्युक्तं, ततश्च तस्यैवात्र शास्त्रोपदेशो युक्तो न योषित इत्याह—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

रत्यर्थाः पुरुषा येन रत्यर्थाश्चैव योषितः ।
शास्त्रस्यार्थप्रधानत्वात्तेन योगोऽत्र योषिताम् ॥ ५२ ॥

रत्येति । रतिरर्थः प्रयोजनं तुल्यं शास्त्रस्यार्थप्रधानत्वात्, तेनोपदिश्यत इति कृत्वा योगोऽत्र योषितामधिकार इत्यर्थः ॥ ५२ ॥

इस संबंध में दो श्लोक हैं—

स्त्री और पुरुषों का परस्पर प्रयोजन रतिसुख का ही रहता है। स्त्रियों और पुरुषों के रति-सुख का प्रयोजन ही इस शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है, इसीलिये वैशिक अधिकरण में स्त्रियों के रतिप्रयोजन पर विस्तार से विचार किया गया है ॥ ५२ ॥

सन्ति रागपरा नार्यः सन्ति चार्थपरा अपि ।
प्राक्तत्र वर्णितो रागो वेश्यायोगाश्च वैशिके ॥ ५३ ॥

इत्यर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारा वेश्याविशेषाश्चाष्टापञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ।

ताश्च द्विविधाः—रागपरा अर्थपराश्च, तत्र पूर्वासां प्रणीतो रागः—कन्यासंप्रयुक्तकभार्य्याऽधिकारिकपारदारिकैस्त्रिभिरधिकरणैस्तासां रागपरत्वात् तदनुरूपमेव वृत्तमुक्तं, वेश्यायोगाश्चेति । वेश्यानां सत्यपि रत्यर्थेऽर्थपरत्वाद् वैशिकेऽधिकारः, तासां हि पुरुषाधिगमे रतिर्वृत्तिश्च सर्गादिति ॥ ५३ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणेऽर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारा वेश्याविशेषाश्च षष्ठोऽध्यायः ।

अनेक स्त्रियाँ विशुद्ध अनुरागिणी होती हैं, बहुत-सी स्त्रियाँ रति के साथ धन की भी इच्छा रखती हैं। विशुद्ध अनुरागिणी स्त्रियों का वर्णन प्रारंभ में ही दिया जा चुका है, और जो स्त्रियाँ रति-राग के साथ अर्थ की भी इच्छा रखती हैं उनका वर्णन इस वेश्याधिकरण में किया गया है ॥ ५३ ॥

वैशिक अधिकरण देखने में तो कामुकता, अनाचार और उच्छृङ्खलता बढ़ाने वाला प्रतीत होता है। इसमें आदि से अन्त तक वेश्याओं की मोहिनी माया का विशद विश्लेषण किया गया है। विट, पीठमर्द जैसे हीनवर्ग के नायकों से लेकर आभिजात्य, कुलीनवर्ग तक के नायकों के वेश्या-संगम करने का प्रमाण और विधान इस अधिकरण में है। उनके साथ वेश्या कैसा आचरण करे यही इस अधिकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

सम्पूर्ण अधिकरण पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि काम-शक्ति, संवेग और निरोध यही तीन वेश्याओं के आचरण के आधार हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि लोग वेश्यागमन में क्यों प्रवृत्त होते हैं ? इसका सरल उत्तर हमें शिशुपालवध में मिलता है—

सततममृतादेवाहाराद् यदापदरोचकं
तदमृतभुजां भर्ता शंभुर्विषं बुभुजे विषम्। (४।१७)

अर्थात् सदा अमृत ही अमृत खाते रहने के कारण भगवान् शिव को जब अरुचि हो गई तो अमृतभोजी देवताओं के देव महादेव ने विष का भक्षण कर लिया।

यह कथन नीति की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त है। आभिजात्य हो या कुलीन हो, अमृतमयी पतिव्रता पत्नी का उपभोग करते-करते उसका जब जी ऊब उठता है तो वह विषमयी वेश्या का संसर्ग करता है।

मनोवैज्ञानिक धरातल पर सोचने से सिद्धान्ततः यह कहा जा सकता है कि भाव-परिवर्तन की इच्छा सभी को रहती है। मनुष्य जन्मतः परिवर्तन-प्रिय होता है, सुन्दरता और आकर्षण नवीनता में निहित रहते हैं, इसका समर्थन योगवासिष्ठकार दार्शनिक ढंग से करते हैं—

जिस प्रकार प्रथम क्षण में किसी वस्तु की प्राप्ति से तृप्ति होती है, उसी प्रकार की तृप्ति की प्राप्ति दूसरे क्षण में नहीं मिलती, ऐसा किसने नहीं अनुभव किया है ?

यथा प्राप्तिक्षणे वस्तु प्रथमे तुष्टये तथा।
न प्राप्त्येकक्षणादूर्ध्वमिति को नानुभूतवान् ॥[1]

1. निर्वाण प्रकरण, पूर्वार्द्ध ४४-२

योगवासिष्ठकार के मत का सारांश यह है कि नवीनता रमणीयता का द्योतक है। महाकवि माघ ने भी इसे स्पष्ट स्वीकार किया है कि रमणीयता वही है जो क्षण-क्षण में नवीनता को प्राप्त होती है—

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।

(शिशुपालवध ४।१७)

स्त्री हो या पुरुष, वेश्या हो या सती, गृहस्थ हो या विरक्त, सभी की क्रियाएँ संवेग के कारण प्रतिक्षण परिवर्तित हुआ करती हैं, एक ही दशा, एक ही स्थिति पर सदैव रहने से रमणीयता का ह्रास होता है इसलिये यह निश्चय है कि एक ही विषय से उत्पन्न संवेग में परिवर्तन अवश्य होता है। विष्णुपुराण का स्पष्ट कथन है कि एक ही विषय पर दो भाव या संवेग एक साथ उत्पन्न हो सकते हैं क्योंकि जब एक ही वस्तु से दुःख-सुख, ईर्ष्या-क्रोध आदि उत्पन्न होते हैं तब वह वस्तु दुःख देनेवाली कैसे कही जा सकती है। यही एक समय प्रीति उत्पन्न करती है; दुःख, क्रोध और प्रसन्नता उत्पन्न करती है।[1]

ठीक यही बात, यही प्रवृत्ति वेश्याओं और उनके प्रेमियों की होती है, जिसे कामसूत्रकार ने व्यावहारिक मनोविज्ञान के आधार पर समझाया है। वेश्याओं की रमणीयता पर मर मिटनेवाले प्रेमी उससे अपमानित होकर, उसकी ठोकरें खाकर, उससे लुट जाने पर भी उसका पीछा नहीं छोड़ना चाहते, प्रेमिका का वियोग उन्हें क्षण भर बरदाश्त नहीं होता। कामसूत्रकार के इस कथन का समर्थन धर्मशास्त्र भी करता है—

कान्ताविरहिणामेकं वासरं वत्सरायते ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि वेश्याओं और उनके चाहनेवालों का संवेग निरन्तर परिवर्तनशील होकर उन्हें विवश बना देता है।

इन संवेगों की अभिव्यक्ति में रुकावट डालनेवाले अवरोध कहलाते हैं। जहाँ अवरोध उपस्थित हो जाते हैं वहाँ अवरोधों के कारण संवेग पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं हो पाता। फल यह होता है कि चित्त अव्यवस्थित हो जाता है, अकुलाहट और चिन्ता व्याप्त हो जाती है। जब तक अकुलाहट दूर नहीं हो पाती तब तक व्यक्ति के हृदय में कोलाहल भरा रहता है। यही कारण है कि नैतिक विषयों में आन्तरिक संग्राम छिड़ा करता है।

कामसूत्रकार ने इस आन्तर-युद्ध का उदाहरण वेश्या के उस प्रेमी का दिया है जिसे छोड़कर वेश्या दूसरे की हो जाती है। त्यक्त प्रेमी को उस समय

१. अंश २, अध्याय ६, श्लोक ४५—४६

गहरी चोट लगती है, वह व्याकुल, विक्षिप्त बन जाता है। नैतिक आदर्श, सामाजिक आचरण की दृष्टि से तो यही उचित है कि ऐसा प्रेमी उस वेश्या पर कामदृष्टि न रखे, किन्तु उससे ऐसा नहीं हो पाता, और वह कामान्ध होकर प्रेमिका के पीछे भटकता फिरता है। वह प्रतिक्षण अशान्ति की वैतरणी में डूबता-उतराता रहता है।

वस्तुतः ऐसी प्रवृत्तियाँ प्रत्येक व्यक्ति में पायी जाती हैं। अन्तर इतना ही है कि जिस व्यक्ति के आदर्श ऊँचे हैं, सांस्कृतिक वातावरण जिसे प्राप्त है और जो अपने आदर्शों पर विश्वास रखता है वह सदा ऐसी प्रवृत्तियों से युद्ध करता है, किन्तु जो इन विशेषताओं से रहित होता है, वह पतन के गड्ढे में गिर पड़ता है।

वैशिक अधिकरण के मूल में यही प्रवृत्ति है जिसे वात्स्यायन ने मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से उभारा है।

अधिकरण समाप्त करते हुए शास्त्रकार ने कुम्भदासी, परिचारिका, कुलटा, स्वैरिणी, नटी, शिल्पकारिका, प्रकाशविनष्टा, रूपाजीवा, गणिका, इतने भेद वेश्याओं के बताए हैं। कामसूत्र के टीकाकार यशोधर ने अपनी जयमंगला टीका में इनके लक्षण बतलाते हुए लिखा है कि निकृष्ट कर्म करनेवाली स्त्री कुम्भदासी, जो अपने स्वामी की सेवा करती है ऐसी दासी परिचारिका वेश्या, जो पति के भय से दूसरों के घरों में जाकर व्यभिचार कराती है, अपने पति का अनादर करके जो अपने घर पर ही या अन्यत्र व्यभिचार-रत होती है वह स्वैरिणी वेश्या कहलाती है। रङ्गमञ्च पर नाचने वाली स्त्री नटी, वेश्या एवं धोबी, दर्जी की स्त्री शिल्पकारिका वेश्या, जो पति के जीवित रहते अथवा मर जाने पर किसी दूसरे के बैठ जाती है वह प्रकाशविनष्टा। परिचारिका वेश्या से लेकर प्रकाशविनष्टा तक की स्त्रियाँ रूपाजीवा वेश्या कही जाती हैं।

यशोधर ने परिचारिका की टीका लिखते समय लिखा है—परिचारिका याः स्वामिनं परिचरन्ति। तस्याः औपनिषदिके विधिं वक्ष्यति।

औपनिषदिक अधिकरण कामसूत्र का अन्तिम सातवाँ अधिकरण है और जयमंगला टीका केवल छठे अधिकरण तक ही है। कुछ समीक्षकों का अनुमान है कि औपनिषदिक अधिकरण बाद का जोड़ा हुआ है। वात्स्यायन ने छह अधिकरण ही लिखे हैं। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सम्भव है जयमंगला टीका सातवें अधिकरण की भी रही होगी किन्तु किसी कारणवश नष्ट हो गई है। औपनिषदिक अधिकरण के प्रारम्भ में 'व्याख्यातं कामसूत्रम्' सूत्र से यह अनुमान लगाया जाता है कि कामसूत्र छठे अधिकरण तक ही है और यशोधर ने इसीलिए सातवें अधिकरण पर टीका नहीं लिखी है। किन्तु 'तस्या औप-

निषदिके विधिं वक्ष्यति' यशोधर का यह वाक्य ही प्रमाणित करता है कि कामसूत्र का सातवाँ अधिकरण औपनिषदिक है और यशोधर ने उस पर जयमंगला टीका भी लिखी थी।

जयमंगला टीका के अन्तिम हर अधिकरण की पुष्पिका से यशोधर के बहुत उदात्त चरित्र का परिचय मिलता है। उसने स्वयं लिखा है कि—विदग्धाङ्गना-विरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायाम्...।

इससे विदित होता है कि यशोधर ने अपनी परमसुन्दरी पत्नी के देहान्त से दुःखी होकर संन्यास ले लिया था। उसके गुरु ने संन्यस्त अवस्था का नाम इन्द्रपाद रखा। किन्तु संन्यास लेने के बाद भी जब पत्नी-वियोग उसे व्यथित बना रहा था तो उसके गुरु ने उसे कामसूत्र का भाष्य लिखने का आदेश दिया। बहुत सम्भव है कि यशोधर की पत्नी का नाम भी जयमंगला रहा हो।

इस अधिकरण के छठे अध्याय में वात्स्यायन ने वेश्या को अर्थ, अनर्थ तथा संशय सम्बन्धी आपत्तियाँ और उनके प्रतीकार के जो उपाय बतलाये हैं, वे विशुद्ध राजनीति के क्षेत्र के हैं। कौटल्य ने कौटलीय अर्थशास्त्र के ९वें अधिकरण के सातवें अध्याय में राजा के लिये यही उपाय बताये हैं। शत्रु की वृद्धि के सम्बन्ध में कौटल्य ने राजा के लिए १ आपदर्थ, २ अनर्थ और ३ संशय जो तीन बातें मुख्यरूप से विचारणीय बतलायी हैं वही वात्स्यायन ने शत्रु उत्पन्न होने पर वेश्या के लिए भी बतायी हैं।

जो अर्थ प्राप्त होने पर भी शत्रु की ही बुद्धि रखे अथवा दूसरों को लौटाया जाये या क्षय तथा व्यय को बढ़ाये वह आपत्तिजनक होने पर आपदर्थ कहलाता है। अपने या पराये से भय पैदा होना ही अनर्थ है। यह अर्थ है या नहीं, यह अनर्थ है या नहीं, यह अर्थ है या अनर्थ, यह अनर्थ है या अर्थ, इस प्रकार अर्थ और अनर्थ को लेकर चार प्रकार का संशय होता है।

कौटल्य की भाँति वात्स्यायन ने भी प्रत्येक अर्थ और अनर्थ के साथ अनुबन्ध योग करके अथवा अनुबन्धरहित करके अर्थानुबन्ध, अर्थ अर्थानुबन्ध, अर्थनिरनुबन्ध, अनर्थ अनर्थानुबन्ध, अर्थानुबन्ध अनर्थ, निरनुबन्ध अनर्थ, अनर्थानुबन्ध अनर्थ—इतने भेद किये हैं। वात्स्यायन ने भी इन्हें अनुबन्ध-षड्वर्ग माना है।

इसके बाद कौटलीय अर्थशास्त्र के अनुकरण पर एक साथ चारों ओर से अर्थ की उत्पत्ति होने को समन्ततो अर्थ कहा है। यदि उसमें पार्ष्णिग्राह द्वारा विरोध किया जाये तो उसे समन्ततो अर्थ संशय बताया है। जब चारों ओर से

शत्रुओं का भय उत्पन्न होता है तो उसे समन्ततोऽनर्थ बतलाया है और यही यदि मित्र द्वारा विगृहीत हो जाए तो समन्ततोऽनर्थ संशय कहलाता है।

जहाँ पर दो ओर से अर्थ सम्बन्धी आपत्ति प्राप्त हो उसे उभयतोऽर्थ बताया है। उभयतोऽर्थ और समन्ततोऽर्थ में से किसी में यदि आदेय या प्रत्यादेय आदि लाभ गुणों में से युक्त अर्थ के प्राप्त होने की सम्भावना हो तो उस अर्थ को प्राप्त करने के लिए वेश्या को जाने के लिये वात्स्यायन ने कहा है और कौटल्य ने राजा को कहा है।

जब दोनों ओर से अनर्थ पैदा हो तो उसे उभयतोऽनर्थ कहा गया है। कौटल्य की भाँति वात्स्यायन ने भी सुझाव दिया है कि उभयतोऽनर्थ और समंततोऽनर्थ उपस्थित होने पर मित्रों द्वारा सफलता प्राप्त करनी चाहिये। एकतोऽनर्थ का प्रतीकार मित्रों द्वारा और उभयतोऽनर्थ का प्रतीकार अदालत द्वारा करने को कहा गया है।

जब दोनों ओर से अर्थ और अनर्थ उपस्थित होते हैं तो उसे उभयतोऽर्थानर्थ कहा है। इसी प्रकार समन्ततोऽर्थानर्थ को समझाया गया है। एक ओर अनर्थ दूसरी ओर संशय उपस्थित होता है तो उसे उभयतोऽनर्थार्थ संशय बताया है। ऐसी आपत्ति आने पर पहले अनर्थ का प्रतीकार करना चाहिए, फिर अर्थ संशय का।

वात्स्यायन की अर्थ-अनर्थ सम्बन्धी इस व्याख्या से वेश्याओं की कूटनीति का अद्भुत परिचय मिलता है।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणे अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारा वेश्याविशेषाश्च षष्ठोऽध्यायः, समाप्तं चाधिकरणम्।

औपनिषदिकं नाम सप्तममधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

सुभगंकरणादिप्रकरणम्

शास्त्रकार एवाधिकरणसम्बन्धमाह—

व्याख्यातं च कामसूत्रम् ॥ १ ॥

व्याख्यातमिति । कामसूत्रमिति । तन्त्रावापात्मकं, साधारणं तु तदङ्गत्वादुभयात्मकम् ॥ १ ॥

कामसूत्र की व्याख्या समाप्त हुई ॥ १ ॥

तत्रोक्तैस्तु विधिभिरभिप्रेतमर्थमनधिगच्छन्नौपनिषदिकमाचरेत् ॥ २ ॥

तदुक्तैरिति । तदुक्तैः = तन्त्रावापोक्तैः, अभिप्रेतमनधिगच्छन्निति । ईप्सितमप्राप्नुवन्, औपनिषदिकमित्यभिधाकमात्मनो विधेयमिति ॥ २ ॥

कामसूत्र में बताई गई विधियों से जिस किसी को अभीष्ट वस्तु न मिले वह औपनिषदिक अधिकरण में बताए गये उपायों को काम में लाए ॥ २ ॥

सुभगङ्करणमुच्यते—

रूपं गुणो वयस्त्याग इति सुभगंकरणम् ॥ ३ ॥

रूपमिति । रूपं वर्णसंस्थानं सहजम्, इतरदनित्यं नित्यस्नानं द्वितीयमुत्सादनमित्यादि संस्कारवशाच्चेतोहारि भवति, गुणा ये नायकस्योक्तास्ते विरूपमपि सुभगङ्कुर्वन्ति, अतस्तेषु यत्नः कार्यः, वय इति । यौवनं सर्वकार्य्यसमर्थं तत् पुनस्तन्मतेन स्थिरं कार्यं वार्धक्ये हि पलित इति; अनादरो विशेषतः स्त्रीणां तदपि केशरञ्जनादिसंस्कारापाते वैमुख्यं नोत्पादयति, त्याग इति । दानन्तत्सर्वं बाधते यतो विरूपो निर्गुणो वृद्धो वा दाता सर्वैरेवाभिगम्यते ॥ ३ ॥

रूप, गुण, आयु और त्याग—ये चार वस्तुएँ मनुष्य को सौभाग्यशाली बनाती हैं ॥ ३ ॥

यत्र रूपादयो न सन्ति तत्र विधिमाह—

तगरकुष्ठतालीसपत्रकानुलेपनं सुभगंकरणम् ॥ ४ ॥

तगरेति । तगरन्तु कन्दमौत्तरापथिकं न नेपालभवं, कुष्ठं यच्छ्वेतं, तालीसपत्रकम्प्रतीतम्, एतैरनुलेपनं शरीरस्य ॥ ४ ॥

तगर, कूट, तालीश पत्र का लेप लगाने से सौभाग्य सौन्दर्य बढ़ता है ॥४॥

एतैरेव सुपिष्टैर्वर्तिमालिप्याक्षतैलेन नरकपाले साधितमञ्जनं च ॥ ५ ॥

एतैरेवेति । वर्तिमालिप्य दुकूलमयीम्, अक्षतैलेन = बिभीतकतैलेन, साधितमिति । नरकपाले पातितमित्याम्नायः, कज्जलं तेन स्नेहेन योज्यं, सुभगङ्करणमिति सर्वत्र योजनीयम् ॥ ५ ॥

उपर्युक्त औषधियों को कूट-पीस कर रूई की बत्ती में उस चूर्ण को लपेट कर बहेड़े के तेल में जलाकर मनुष्य की खोपड़ी में काजल पार ले ॥ ५ ॥

पुनर्नवासहदेवीसारिवाकुरण्टोत्पलपत्रैश्च सिद्धं तैलमभ्यञ्जनम् ॥

पुनर्नवेति । पुनर्नवा, सहदेवी=दण्डोत्पलकं, सारिवेति । उत्पलशारिवा ग्राह्या, कुरण्टकः प्रतीतः, उत्पलपत्रमिति, यदाभ्यन्तरं न बाह्यं, शेषाणां मूलं, सिद्धमिति। तैलविधानेन पक्वम्, एतैरेव कषायं कल्कं च कृत्वा, तैलमिति । तिलानाम् अभ्यञ्जनं सुभगङ्करणम् ॥ ६ ॥

पुनर्नवा (पथरचटा—गदापुन्ना), सहदेई, सारिवा (छितवन), अनन्तमूल, कुरण्ट (लाल फूल का पियाबाँसा) और उत्पल (नीलकमल) इन सबका तेल बनाकर लगाने से सौभाग्य-सौन्दर्य बढ़ता है ॥ ६ ॥

तद्युक्ता एव स्रजश्च ॥ ७ ॥

तद्युक्ता इति । पुनर्नवादिचूर्णयुक्ताः स्रजो धारिताः सुभगङ्करणम् ॥ ७ ॥

इन सब चीजों की माला बनाकर पहनना ॥ ७ ॥

पद्मोत्पलनागकेसराणां शोषितानां चूर्णं मधुघृताभ्यामवलिह्य सुभगो भवति ॥ ८ ॥

पद्मोत्पलेति । नाग इति नागकेसरः, पद्मादीनाङ्केसराण्येकीकृत्य संचूर्ण्य, अवलिह्येति । वमनविरेचनं कृत्वा तत्रापि न तदैव सुभगो मासादूर्ध्वं दृष्टशक्तिः ॥

सूखे हुए कमल, नीलकमल के फूल और नागकेसर के चूर्ण को शहद और घी के साथ अवलेह बनाकर सेवन करने से सौभाग्य-सौन्दर्य बढ़ता है ॥ ८ ॥

तान्येव तगरतालीसतमालपत्रयुक्तान्यनुलिप्य ॥ ९ ॥

तान्येवेति । पद्मादिकेसराणि तगरादियुक्तानि, अनुलिप्येति । अनुलेपनं कृत्वा शरीरस्य, सुभगो भवति ॥ ९ ॥

इन्हीं चीजों में तगर, तालीसपत्र, तमालपत्र मिलाकर सौभाग्य-सौन्दर्यवर्द्धक लेप भी तैयार किया जाता है ॥ ९ ॥

मयूरस्याक्षि तरक्षोर्वा सुवर्णेनावलिप्य दक्षिणहस्तेन धारयेदिति सुभगंकरणम् ॥ १० ॥

मयूरस्येति । यो न विशीर्णबर्हः, तरक्षोर्वेति । यो मत्तः स हि ग्रीष्मे माद्यति, अक्षीति । दक्षिणं वामं च ग्राह्यन्द्वयोरेव सामर्थ्यमित्याम्नायः, सुवर्णेनावलिप्येति । शुद्धसुवर्णपत्रेण पुष्ययोगेन वेष्टयित्वा ॥ १० ॥

मोर और चीता की आँखें सोने के तावीज में भर कर दाहिने हाथ में बाँधने से सौन्दर्य और सौभाग्य की वृद्धि होती है ॥ १० ॥

तथा बादरमणिं शङ्खमणिं च तथैव तेषु चाथर्वणान्योगान् गमयेत् ॥ ११ ॥

बादरमणिमिति । बदरस्य बदरीवृक्षस्योत्तरशिफाघटितां वृत्तगुलिकां, शङ्खमणिमिति । दक्षिणावर्तशङ्खनाभिघटितां, तथैवेति । सुवर्णेनावलिप्य हस्तेन धारयेत्, तेषु चेति । धारणायोगेषु, आथर्वणानिति । अथर्ववेदे बहवो धारणायोगा उक्ताः ॥ ११ ॥

इसी प्रकार बादरमणि और शंख मणि भी हैं, अथर्ववेद में लिखे हुए इनके प्रयोगों को समझ लेना चाहिए ॥ ११ ॥

विद्यातन्त्राच्च विद्यायोगात्प्राप्तयौवनां परिचारिकां स्वामी संवत्सरमात्रमन्यतो वारयेत् । ततो वारितां बालां वामत्वाल्लालसीभूतेषु गम्येषु योऽस्यै संघर्षेण बहु दद्यात्तस्मै विसृजेदिति सौभाग्यवर्धनम् ॥ १२ ॥

विद्यातन्त्रेति । मन्त्रवादात्तत्रापि भूर्जपत्रलिखितविद्याधारणयोगाः, अनुष्ठानविशेषोऽपि क्वचित्सौभाग्यनिबन्धनमित्याह—प्राप्तयौवनामिति । या बाल्य इवानन्यपूर्वा स्वामिनं परिचरति तां तरुणीमन्यतो वारयेद् रक्षयेद्, यथाऽन्यैर्नाभिगम्येत स्वयन्त्वभिगच्छेदित्यर्थोक्तं, तत इति । तस्यावारितत्वाद्, वामत्वादिति । रक्षणयोगात् कामिनो वारिताः कौतूहलात्प्रतिकूला भवन्ति, ततश्च तेषु लालसीभूतेषु = अत्यन्तं गृघ्नुषु, योऽस्यै परिचारिकायै, संघर्षेणेति । स्पर्द्धया, बहु द्रव्यं दद्याद् दुर्लभं हि प्रियमन्वितं च भवतीति प्रायोवादः, विसृजेदिति । अभिगन्तुन्दद्याद्, विशेषतो वेश्यापाणिग्रहणेऽपि विधिः सौभाग्यनिबन्धनं, पाणिग्रहश्च द्विविधः, यथोक्तं—

'दैवमानवभेदेन वेश्याविवहनं द्विधा ।
दैवं मन्मथकाण्डेन गम्येनाप्यपरं भवेद्' ॥ १२ ॥ इति ।

विद्यातन्त्र और विद्यायोग से यौवनप्राप्त नौकरानी को उसका मालिक साल भर तक दूसरों के सहवास से रक्षित रखे। इस प्रकार रक्षित परिचारिका को दूसरे लोग बाला मानकर उससे सहवास और विवाह को इच्छा प्रकट करेंगे। इस प्रकार लालसा की प्रतियोगिता में जो अधिक धन दे, मालिक उसी के साथ परिचारिका का विवाह कर दे ॥ १२ ॥

तत्र मानुषमधिकृत्य विधिमाह—

गणिका प्राप्तयौवनां स्वां दुहितरं तस्या विज्ञानशीलरूपानुरूप्येण तानभिनिमन्त्र्य सारेण योऽस्या इदमिदं च दद्यात्स पाणिं गृह्णीयादिति संभाष्य रक्षयेदिति ॥ १३ ॥

गणिकेति। प्राप्तयौवनां रक्षयेदिति सम्बन्धः, तस्या इति। स्वदुहितुः, यादृशं रूपादि तदानुरूप्येणेति तत्सदृशः, तानिति। दुहितुर्ये गम्याः, अभिनिमन्त्र्य सारेणेति। विभवेन स्वेनाभिमुख्येन स्वगृहे निमन्त्र्य योऽस्यै दुहित्रे, इदमिदञ्चेति। ईप्सितमाह, संभाष्येति। सम्भावयेदित्युक्त्वा, रक्षयेत् पण्यधर्मत्वात् ॥ १३ ॥

गणिका की पुत्री जब युवती हो जाये तो उसकी माँ अपनी तरुणी पुत्री के समान रूप, गुण, शील और यौवन सम्पन्न युवकों को आमंत्रित कर उनकी गोष्ठी में घोषणा करे कि जो तरुण मेरी लड़की को ये ये वस्तुएँ प्रदान करेगा उसके साथ इस लड़की का विवाह कर दूँगी। इस प्रकार अपनी लड़की का विवाह कर वेश्या उसके चरित्र को बचा सकती है ॥ १३ ॥

सा च मातुरविदिता नाम नागरिकपुत्रैर्धनिभिरत्यर्थं प्रीयेत ॥

सा चेति। दुहिता, अविदिता नामेति। यथैते जानन्त्यस्मास्वनुरक्तेयं येन रक्ष्यमाणाऽपि मातुरविदितैवागच्छतीति, धनिभिरन्यैर्निरर्थत्वाद्, प्रीयेत = प्रीतिं कुर्यात् ॥ १४ ॥

और उस तरुणी वेश्या पुत्री को चाहिये कि उन आमंत्रित प्रेमियों के साथ इस ढंग का प्रेम-व्यवहार प्रदर्शित करे मानो उसकी माँ को कुछ पता ही नहीं है ॥ १४ ॥

प्रीतिश्च दर्शनपूर्विका दर्शनं च विशिष्टे देशे काले चेत्याह—

तेषां कलाग्रहणे गन्धर्वशालायां भिक्षुकीभवने तत्र तत्र च संदर्शनयोगाः ॥ १५ ॥

तेषामिति। कलाग्रहणकाले, गान्धर्वशालायामिति। यत्राचार्यो नृत्यगीतं शिक्षयति, भिक्षुकीभवन इति। भिक्षुक्यादिः कलाविदग्धोपगम्यते, तत्र तत्र चेति। सरस्वतीभवनोद्यानादिषु ॥ १५ ॥

धनियों, राजाओं, आभिजात्य कुल के तरुण जब कला की शिक्षा लेने वेश्या के घर आयें तो उनसे मिलने का अवसर अपनी तरुणी लड़की को दे और वह लड़की अपने घर में मिलने के बाद गन्धर्व शाला, भिक्षुकों के घर, जहाँ कहीं मौका मिले, उनसे भेंट-मुलाकात करती रहे ॥ १५ ॥

तेषां यथोक्तदायिनां माता पाणिं ग्राहयेत् ॥ १६ ॥

तेषामिति । प्रीत्यनुबद्धानामिति, यथोक्तदायिनामिति । मात्रा यत्संभाषितं तद्दायिनां, पाणिं ग्राहयेदिति । देशप्रवृत्तिरत्रानुसर्तव्या ॥ १६ ॥

तरुणी वेश्यापुत्री की माँ जो-जो वस्तुओं की माँग करे और जिससे वे वस्तुएँ प्राप्त हों उसीके साथ अपनी लड़की का विवाह कर दे ॥ १६ ॥

तावदर्थमलभमाना तु स्वेनाप्येकदेशेन दुहित्र एतद्दत्तमनेनेति ख्यापयेत् ॥ १७ ॥

तावदिति । यावत्प्रमाणं संभाषितमलभमाना पाणिग्रहणादूर्ध्वं, स्वेनापीति । आत्मीयेन, एकदेशेनेति । सम्भाषितार्धपादमात्रकमनेन दत्तं तावतैकदेशेन संयोज्य ख्यापयेत् सौभाग्यख्यापनार्थम् ॥ १७ ॥

घोषित वस्तुएँ यदि नियत मात्रा में कोई न दे सके तो अपने ही धन को दिखाकर वेश्यापुत्री की माँ कहे कि यह सब धन मेरी पुत्री को अमुक तरुण ने दिया है ॥ १७ ॥

ऊढाया वा कन्याभावं विमोचयेत् ॥ १८ ॥

ऊढाया वेति । दैवेन विवाहेन योजिताया इत्यर्थः, कन्याभावं विमोचयेदिति । पूर्वेणैव प्रकारेण कौमारं हारयेदित्यर्थः, तेन प्राप्तयौवनामूढां स्वदुहितरमित्यादि सर्वं योज्यं, विशेषोऽत्र स पाणिं गृह्णीयादित्यस्य स्थाने स कौमारकं हरेदिति, यथोक्तदायिनं ग्राहयेदित्यस्य स्थाने कौमारकं हारयेदिति ॥ १८ ॥

वेश्या को चाहिए कि जब उसकी कन्या पूर्ण यौवन को प्राप्त हो जाए तब उपर्युक्त विधि से तरुणों को फाँस कर वह अपनी तरुणी कन्या का कौमार्य भंग कराए ॥ १८ ॥

प्रच्छन्नं वा तैः संयोज्य स्वयमजानती भूत्वा ततो विदितेष्वेतं धर्मस्थेषु निवेदयेत् ॥ १९ ॥

प्रच्छन्नं वेति । योऽभिप्रेतः कन्याभावं विमोचयेत्, तेन प्रच्छन्नं संयोज्य, अजानती भूत्वेति । न मयाऽनुज्ञातमिति दर्शनार्थम्, एवं च सति तत उत्तरकालं विदितेषु धर्मस्थेष्वेतं निवेदयेद्, अभिसंभाषितमर्थं येन दद्यादित्यभिप्रायः, तावदलभमाना तु स्वेनाप्येकदेशेनेति, तत्रापि योज्यम् ॥ १९ ॥

प्रच्छन्न रूप में उन तरुणों से मिलाकर उनके प्रेम की खबर राज-अधिकारियों तक पहुँचा दे और फिर वह माँ उन प्रेमियों के विरुद्ध अदालत में फरियाद करे ॥ १९ ॥

यस्यास्तु न कश्चित् कन्याभावं मोचयति, तत्र विधिमाह—

सख्यैव तु दास्या वा मोचितकन्याभावां सुगृहीतकामसूत्राभ्यासिकेषु योगेषु प्रतिष्ठितां प्रतिष्ठिते वयसि सौभाग्ये च दुहितरमवसृजन्ति गणिका इति प्राच्योपचाराः ॥ २० ॥

सख्यैव त्विति । दास्या वा कुशलया, मोचितकन्याभावामिति । अङ्गुलिकर्मणा हारितकौमारविधिं. कथमेवं सौभाग्यमिति चेदत्राह—सुगृहीतकामसूत्रामिति । आभ्यासिकेषु वाडवकादिषु प्रतिष्ठितां शिक्षितां वयसि तारुण्ये प्रतिष्ठितां यदा रूपयौवनवती विदग्धेत्यभिपतन्ति नागरिकाः, तदा सौभाग्ये प्रतिष्ठितेत्यवसृजन्ति व्यवहारे प्रवर्तयन्ति, प्राच्योपचारा इति । व्यवहारात् पूर्वकालिको विधिर्यत् कन्याभावमोचनम् ॥ २० ॥

पूर्व प्रदेश की वेश्यायें अपनी लड़की की सखी एवं दासी के द्वारा लड़की का कन्या भाव छुड़ाकर काम के रहस्यों और योगों का अभ्यास कराती हैं । उन अभ्यासों, कलाओं में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर लेने पर वेश्या की लड़की का भाग्य जवानी के साथ ही चमक उठता है । तब वे अपनी लड़की को वेश्याचरित में निपुण समझ कर स्वतंत्र कर देती हैं ॥ २० ॥

पाणिग्रहश्च संवत्सरमव्यभिचार्यस्ततो यथा कामिनी स्यात् ॥

पाणिग्रह इति । यः पाणिं गृहीतवान्, गृह्णातीति ग्रहः पाणिग्रह इति समासः, अव्यभिचार्य इति । संवत्सरं तेनैव सह वसेत्, तत इति । संवत्सरादूर्ध्वं, यथा कामिनीति । यथेप्सिता कामयते, वेश्याधर्मस्थितत्वात् ॥ २१ ॥

जिस पुरुष ने वेश्या की लड़की के साथ विवाह किया है उसके साथ वह लड़की एक सालतक रहे इसके बाद जहाँ वह चाहे या जो उसे चाहे वहाँ उसके साथ वह स्वेच्छापूर्वक भोग करे ॥ २१ ॥

ऊर्ध्वमपि संवत्सरात्परिणीतेन निमन्त्र्यमाणा लाभमप्युत्सृज्य तां रात्रिं तस्यागच्छेदिति वेश्यायाः पाणिग्रहणविधिः सौभाग्यवर्धनं च ॥ २२ ॥

ऊर्ध्वमिति परिणीतेनेति । गृहीतपाणिना, निमन्त्र्यमाणेति । अद्य रात्रौ मया सह शयितव्यमिति, लाभमुत्सृज्य; अन्यस्माद् भवन्तमपि, सौभाग्यवर्धनं चेति । एवं च कृत्वा पुनरभियातव्यमिति वैशिकेनोक्तम् ॥ २२ ॥

एक वर्ष बाद जब विवाहित वेश्यापुत्री का पति बुलाये तो वह अर्थलाभ की छोड़ कर उस रात उसके साथ समागम के लिये जाये।

वेश्या के विवाह और सौभाग्यवर्द्धन का विषय समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

एतेन रङ्गोपजीविनां कन्या व्याख्याताः ॥ २३ ॥

रङ्गोपजीविनामिति। नटादीनाम् ॥ २३ ॥

रंगमंच पर नृत्य, नाट्य करने वाली कन्याओं के विवाह की भी यही व्यवस्था है ॥ २३ ॥

विशेषमाह—

तस्मै तु तां दद्युर्य एषां तूर्ये विशिष्टमुपकुर्यात्। इति सुभगंकरणम् ॥ २४ ॥

तूर्यं इति। नृत्यविधौ विशिष्टमुपरञ्जयेद् नृत्यगीतादिभिः ॥ २४ ॥

इति सुभगङ्करणमेकोनषष्टितमं प्रकरणम्।

किन्तु नट, नर्तक की लड़की का विवाह उसी के साथ किया जाना चाहिये जो उसके नृत्य-गान को उन्नत बनाने में सहायक हो।

सुभगंकरण नाम का प्रकरण समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

एवं लोकप्रियतामात्मनो विहितवतोऽभिप्रेतसिद्ध्यर्थं वशीकरणमुच्यते—

धत्तूरकमरिचपिप्पलीचूर्णैर्मधुमिश्रैर्लिप्तलिङ्गस्य सम्प्रयोगो वशीकरणम् ॥ २५ ॥

धत्तूरकेति। धत्तूरकबीजानि, चूर्णैरिति। समीकृतानाम्, मधुमिश्रैरिति। माक्षिकमधुमिश्रैः, यथा न च प्रयोज्या जानाति लिप्तलिङ्गो मामभिगच्छतीति ॥

धतूरा, काली मिर्च और छोटी पीपल के चूर्ण में शहद मिलाकर लिङ्ग पर लेप करके जिस स्त्री से सम्भोग किया जाए वह वशीभूत हो जाती है ॥२५॥

वातोद्भ्रान्तपत्रं मृतकनिर्माल्यं मयूरास्थिचूर्णावचूर्णं वशीकरणम् ॥ २६ ॥

वातोद्भ्रान्तपत्रं वामहस्तेन ग्रहीतव्यं, मृतकनिर्माल्यं यत्तदुरसि स्थितं, मयूरास्थि जीवञ्जीवकास्थि न केकिसम्बन्धि ग्राह्यमेषां चूर्णेनावचूर्णनं स्त्रीणां शिरसि पुरुषाणां पादयोः ॥ २६ ॥

हवा से उड़े हुए पत्ते, शव पर चढ़ाया गया चन्दन, मोर की हड्डी के चूर्ण का अवचूर्ण बनाकर लिङ्ग पर लेप किया जाए और फिर रमण करे तो स्त्री वशीभूत होती है ॥ २६ ॥

स्वयं मृताया मण्डलकारिकायाश्चूर्णं मधुसंयुक्तं सहामलकैः स्नानं वशीकरणम् ॥ २७ ॥

स्वयं मृताया इति । तस्या एव कार्यकरणाद्, मण्डलकारिकायाः = गृध्रचाः, मण्डलकारिकाया इति, या मण्डलेन पानीये सङ्घशो भ्रमन्ति ॥ २७ ॥

अपने आप मरे हुए गीध के चूर्ण में शहद मिलाकर आँवले के रस के साथ लेप लगाकर स्नान करने से भी स्त्री वशीकरण होता है ॥ २७ ॥

वज्रस्नुहीगण्डकानि खण्डशः कृतानि मनःशिलागन्धपाषाणचूर्णेनाभ्यज्य सप्तकृत्वः शोषितानि चूर्णयित्वा मधुना लिप्तलिङ्गस्य संप्रयोगो वशीकरणम् ॥ २८ ॥

वज्रस्नुहीति । या साश्रिः, गण्डकानि खण्डश इति । खण्डं खण्डं कृतानि, सप्तकृत्व इति । सप्तवारान् ॥ २८ ॥

थूहर की गाँठें टुकड़े-टुकड़े करके उसमें मैनसिल और गन्धक को लपेटकर सात बार सुखाए फिर उसका चूर्ण बनाकर शहद के साथ लिंग पर लेप करके जिस स्त्री से सम्भोग किया जाए वह वशीभूत होती है ॥ २८ ॥

एतेनैव रात्रौ धूमं कृत्वा तद्धूमतिरस्कृतं सौवर्णं चन्द्रमसं दर्शयति ॥ २९ ॥

एतेनैवेति । चूर्णेन सौवर्णं दर्शयति विस्मापनमेतत्प्रासङ्गिकम् ॥ २९ ॥

उपर्युक्त वस्तुओं के चूर्ण का रात में धुआँ करने पर धुएँ से ढका हुआ चन्द्रमा सोने का दिखाई पड़ता है ॥ २९ ॥

एतैरेव चूर्णितैर्वानरपुरीषमिश्रितैर्यां कन्यामवकिरेत्साऽन्यस्मै न दीयते ॥ ३० ॥

एतैरेवेति । वज्रस्नुह्यादिचूर्णैः, वानरपुरीषमिश्रितैरिति । जातमुखरागो यो वानरः, तस्य पुरीषेणेत्याम्नायः ॥ ३० ॥

अथवा इन्हीं चीजों के चूर्ण में मनुष्य या बन्दर की विष्ठा मिलाकर जिस कन्या पर छिड़क दे वह वशीभूत हो जाती है ॥ ३० ॥

वचागण्डकानि सहकारतैललिप्तानि शिंशपावृक्षस्कन्धमुत्कीर्य षण्मासं निदध्यात् ततः षड्भिर्मासैरपनीतानि देवकान्तमनुलेपनं वशीकरणं चेत्याचक्षते ॥ ३१ ॥

वचेति । वचागण्डकानि श्वेताया वचायाः, वृक्षस्कन्धमिति । यतः शाखा निःसृता, देवकान्तं = देवप्रियं, वशीकरणं चेति । स्वहृदयान्मूलमुत्पाट्य योजितमित्याम्नायः, केवलं त्वात्मनोऽनुलेपनं सुभगङ्करणं न वशीकरणम् ॥ ३१ ॥

बचा का गाँठें आम के तेल से तर करके शीशम के तने को खोदकर उसमें छह महीने तक बन्द रखे । फिर उसका अनुलेपन शरीर में लगाए तो स्त्री वशीभूत होती है । यह अनुलेपन देवकान्त कहलाता है । इसके लगाने से शरीर की कान्ति बढ़ती है ॥ ३१ ॥

तथा खदिरसारजानि शकलानि तनूनि यं वृक्षमुत्कीर्य षण्मासं निदध्यात्तत्पुष्पगन्धानि भवन्ति गन्धर्वकान्तमनुलेपनं वशीकरणं चेत्याचक्षते ॥ ३२ ॥

तथेति । सहकारतैललिप्तानीति वर्तते, यं वृक्षमिति । सुरभिकुसुममुत्कीर्य, स्कन्धदेश इत्युत्तरत्रापि योज्यम् ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार खदिरसार (कत्था) की लकड़ी के टुकड़ों को पतला करके आम के तेल से तर करके जिस पेड़ के तने में छह महीने तक गाड़ रखे और फिर उसका अवलेपन करे तो उसी वृक्ष की-सी सुगन्धि शरीर में व्याप्त रहती है । इस वशीकरण अवलेप को गन्धर्वकान्त अनुलेप कहते हैं ॥ ३२ ॥

प्रियङ्गवस्तगरमिश्राः सहकारतैलदिग्धा नागवृक्षमुत्कीर्य षण्मासं निहिता नागकान्तमनुलेपनं वशीकरणमित्याचक्षते ॥ ३३ ॥

प्रियङ्गव इति । प्रियङ्गुकुसुमानि, तगरमिश्रा इति । कौरण्टकेन तुल्यभागेन मिश्राः, नागवृक्षं नागकेसरम्, एतत् त्रिविधमनुलेपनं देवगन्धर्वनागसत्त्वेष्वेव योजयेत्, सत्त्वपरिज्ञानं च शास्त्रान्तरादवगन्तव्यम् ॥ ३३ ॥

तगर और काकुन (कांगुनी) को एक में मिलाकर आम के तेल से भिगोकर उपर्युक्त विधि से नागकेसर के तने में गाड़ कर छह महीने बाद उसका लेप करने से स्त्री वशीभूत होती है । इस लेप को नागकान्त अवलेप कहते हैं ॥ ३३ ॥

उष्ट्रास्थि भृङ्गराजरसेन भावितं दग्धमञ्जनं नलिकायां निहितमुष्ट्रास्थिशलाकयैव स्रोतोऽञ्जनसहितं पुण्यं चक्षुष्यं वशीकरणं चेत्याचक्षते ॥ ३४ ॥

उष्ट्रास्थीति । तण्डुलभेदं कृत्वा, भावितं त्रिःसप्तकृत्वः दग्धमिति । अन्तर्धूमम्, अञ्जनमिति । मषीभावमुपगतं, नलिकायामिति । उष्ट्रास्थिनलिकायां,

स्रोतोऽञ्जनेन तुल्यभागेन सह दृषदि श्लक्ष्णीकृत्य निहितम्, उष्ट्रास्थिशलाकयैव घटितया चक्षुषोर्योजितं, पुण्यमिति । पवित्रं, चक्षुष्यन्तिमिराद्यपनयाद्, वशीकरणं चेति । यः प्रथमं दृश्यते स वशीभवति, शेषं सुभगङ्करणमित्युपदेशः ॥ ३४ ॥

ऊँट की हड्डियाँ भृङ्गराज के रस की भावना देकर सुरमा के साथ पुट-पाक द्वारा जला कर ऊँट की हड्डी से बनी हुई सुरमेदानी में उस सुरमा को रखे और ऊँट की हड्डी की सलाई से ही आँखों में लगाए। यह सुरमा आँखों को लाभ पहुँचाता है और स्त्रियों को वशीभूत बनाता है ॥३४॥

एतेन श्येनभासमयूरास्थिमयान्यञ्जनानि व्याख्यातानि ॥

एतेनेति । उष्ट्रास्थ्यञ्जनविधानेन, तत्र भासो गोष्ठः, कर्कटकः पक्षी ॥ ३५ ॥

इति वशीकरणं षष्टितमम्प्रकरणम् ।

इसी प्रकार श्येन, भास, मयूर पक्षियों की हड्डियों से भी सुरमा बनाया जा सकता है। वशीकरण प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

वशीकृताऽपि प्रयोज्या रन्तुमसमर्थस्य निष्फलैवेति, वृषाय हिता वृष्या योगा उच्यन्ते—

उच्चटाकन्दश्चव्या यष्टीमधुकं च सशर्करेण पयसा पीत्वा वृषीभवति ॥ ३६ ॥

उच्चटा प्रसिद्धा, तस्याः कन्दः, चव्या वणिग्द्रव्यं, यष्टीमधुकं च, एतद् गोपयसा सह क्वथितं, सशर्करेणेति । शीतीभूतं शर्करां दत्त्वा पीत्वा वृषीभवति व्यवायक्षम इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

बीजबन्द, सफेद मूसली, मुलहठी के चूर्ण में मधु और शक्कर मिलाकर दूध के साथ पीने से आदमी साँड़िया जाता है, बल-वीर्य की वृद्धि होती है ॥ ३६ ॥

मेषवस्तमुष्कसिद्धस्य पयसः सशर्करस्य पानं वृषत्वयोगः ॥

मेषः प्रसिद्धः, वस्तः = छागः, तयोरन्यतरस्य, मुष्कः = वृषणं, तेन सिद्धस्य क्वथितस्य ॥ ३७ ॥

भेड़ा या बकरा के अण्डकोशों को दूध में पकाकर चीनी डालकर पीने से बल-वीर्य की वृद्धि होती है ॥ ३७ ॥

तथा विदार्याः क्षीरिकायाः स्वयगुप्तायाश्च क्षीरेण पानम् ॥

विदारी प्रसिद्धा तस्याः कन्दं, क्षीरिका = राजादनं, तस्याः फलानि, स्वयं-

गुप्ता = कपिकच्छुः, तस्या मूलं, क्षीरेण पानं क्वथितेन वृषत्वयोगः, असमासनिर्देशात् प्रत्येकं योगः ॥ ३८ ॥

विदारीकन्द, वंशलोचन और केवाच के बीज का चूर्ण बनाकर दूध के साथ पीने से बल-वीर्य की वृद्धि होती है ॥ ३८ ॥

तथा प्रियालबीजानां मोरटाविदार्योश्च क्षीरेणैव ॥ ३९ ॥

प्रियालबीजानामिति । अस्थ्यपनीय गृहीतानामित्येको योगः, मोरटाविदार्योरिति द्वितीयः, तत्र, मोरटा = इक्षुमूलम् ॥ ३९ ॥

चिरौंजी, मुरहरी, दूधिया विदारीकन्द का चूर्ण दूध के साथ पीने से बल-वीर्य बढ़ता है ॥ ३९ ॥

शृङ्गाटककसेरुकामधूलिकानि क्षीरकाकोल्या सह पिष्टानि सशर्करेण पयसा घृतेन मन्दाग्निनोत्करिकां पक्त्वा यावदर्थं भक्षितवानन्ताः स्त्रियो गच्छतीत्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ४० ॥

शृङ्गाटकः प्रसिद्धः, तस्य सर्वं ग्राह्यं, कशेरुका प्रतीता, क्व च मल्लिकाऽऽख्या ग्राह्या, मधूलिका मधुकफलत्वाद्, मधुकं = यष्टीमधु, क्षीरकाकोली वणिग्द्रव्यं, पिष्ट्वा समांशानि, उत्करिका = अपूपिका, यावदर्थमिति । यावत्तृप्ति भक्षितवान्, अनन्ता इति । बह्वीः ॥ ४० ॥

आचार्यों का कहना है कि सिंघाड़ा, कसेरू और महुआ के फूलों को क्षीरकाकोली के साथ पीसकर उसमें दूध और शक्कर मिला दे फिर घी में मन्द आँच से हलवा बनाकर नित्य खाने से इतनी शक्ति बढ़ती है कि अनन्त स्त्रियों के साथ सम्भोग करने की क्षमता आ जाती है ॥ ४० ॥

माषकमलिनीं पयसा धौतामुष्णेन घृतेन मृदूकृत्योद्धृतां वृद्धवत्सायाः गोः पयःसिद्धं पायसं मधुसर्पिर्भ्यामशित्वाऽनन्ताः स्त्रियो गच्छतीत्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ४१ ॥

माषकमलिनीं माषद्विदलिकां, पयसा धौतामिति । जलेन निस्तुषीकृत्य संशोध्य च धौतां, वृद्धवत्साया इति । वर्करिकायाः, अशित्वेति । शीतीभूतं मधुसर्पिर्भ्यां विषमाभ्यां सहेत्यर्थः ॥ ४१ ॥

आचार्यों का कहना है कि दूध-भिगोई धोयी उड़द की दाल की भूसी को जल से धोकर साफ कर ले फिर उसे पीस कर घी से भून डाले । भुनकर जब लाल हो जाए तो बकायन (बहुत दिन की ब्यायी हुई) गाय या बकरी का दूध छोड़कर हलवा बना ले । इसके बाद विषम मात्रा में शहद और घी छोड़ कर नित्य खाने से असंख्य स्त्रियों से सम्भोग करने की शक्ति आती है ॥४१॥

विदारी स्वयंगुप्ता शर्करा मधुसर्पिर्भ्यां गोधूमचूर्णेन पोलिकां कृत्वा यावदर्थं भक्षितवाननन्ताः स्त्रियो गच्छतीत्याचार्याः प्रचक्षते ॥

गोधूमचूर्णेनेति । कणिक्कया ॥ ४२ ॥

आचार्यों का कहना है कि, बिदारीकंद, कौंच के बीज के चूर्ण में गेहूँ का आटा, शहद और शक्कर मिलाकर घी में पकौड़ियाँ काढ़ ले, इन पकौड़ियों को नित्य खाने से इतना बल-वीर्य बढ़ता है कि हजारों स्त्रियों के साथ सम्भोग करने की क्षमता उत्पन्न होती है ॥ ४२ ॥

चटकाण्डरसभावितैस्तण्डुलैः पायसं सिद्धं मधुसर्पिर्भ्यां प्लावितं यावदर्थमिति समानं पूर्वेण ॥ ४३ ॥

चटकेति । ग्राम्यपक्षिणोऽण्डानां रसे भावितैस्तण्डुलैः संपादितं पायसं मधुघृत-प्लावितं यदि भुङ्क्ते, ततः प्रभूतरतिशक्तिस्तरुणोऽनन्ताः स्त्रिय उपगच्छतीति पूर्वेणान्वयः ॥ ४३ ॥

गौरैया चिड़िया के अण्डों के रस की भावना देकर तैयार किए गए चावलों की खीर दूध से बनाए, उस पर घी और शहद छोड़कर खाने से हजारों स्त्रियों के साथ सम्भोग करने की शक्ति उत्पन्न होती है ॥ ४३ ॥

चटकाण्डरसभावितानपगतत्वचस्तिलान् शृङ्गाटककसेरुक-स्वयंगुप्ताफलानि गोधूममाषचूर्णैः सशर्करेण पयसा सर्पिषा च पक्वं संयावं यावदर्थं प्राशितवानिति समानं पूर्वेण ॥ ४४ ॥

चटकाण्डरसेति । ग्राम्यचटकस्य स्वयं स्फुटितेऽण्डे स्वयं मृतेन पोतेन रसकः कार्यः, तेन भावितानीत्यर्थः, अपगतत्वच इति । निस्तुषाः, स्वयंगुप्तायाः फलानि न तु मूलं ग्राह्यं, पक्वं संयावमिति पानकम् ॥ ४४ ॥

काले तिलों को भिगोकर उनका छिलका निकाल लिया जाए और उनमें गौरैया के अण्डों के रस की भावना दे, फिर सिंघाड़ा, कसेरू और केवांच के बीज का चूर्ण करे और उड़द की पीठी, गेहूँ का आटा इन सबको एक में मिलाकर घी में भूनकर दूध शक्कर मिलाकर लप्सी बना लें। इस लप्सी को नित्य खाने से अतुल संभोग-शक्ति बढ़ती है ॥ ४४ ॥

सर्पिषो मधुनः शर्करायाः मधुकस्य च द्वे द्वे पले मधुरसायाः कर्षः प्रस्थं पयस इति षडङ्गममृतं मेध्यं वृष्यमायुष्यं युक्तरस-मित्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ४५ ॥

सर्पीति । द्वे द्वे इति । एकैकस्य, मधुरसाया इति । तिक्तवल्लिकायाः प्रस्थं पयस इति । द्वात्रिंशत्पलानि, षडङ्गमिति । सर्पिरादयः षडिति कृत्वा, अमृतं स्वादुत्वाद्, मेध्यं = मेधाहितं, युक्तरसमिति ।-योगवाहि स्त्रीसहायमित्यर्थः ॥४५॥

आचार्यों का कहना है कि घी, मधु, शक्कर और महुआ का फूल दो पल, मुलहठी एक कर्ष, दूध एक प्रस्थ यह छह अंगों वाला अमृत मेध्य है, बाजीकरण और आयुवर्द्धक है । इसका नाम युक्तरस है ॥ ४५ ॥

शतावरीश्वदंष्ट्रागुडकषाये पिप्पलीमधुकल्के गोक्षीरच्छागघृते पक्के तस्य पुष्यारम्भेणान्वहं प्राशनं मेध्यं वृष्यमायुष्यं युक्तरसमित्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ४६ ॥

शतावरी प्रतीता, श्वदंष्ट्रा = गोक्षुरकः, एभिः कषायो यस्मिन् घृते पिप्पलीमधुककल्को यस्मिन् गोक्षीरस्य प्रक्षेपो यस्मिन्, पक्व इति । पाकविधानेन, पुष्यारम्भेणेति । पुष्यनक्षत्रे प्राशितमारब्धव्यम् ॥ ४६ ॥

सतावर, पहाड़ी गोखुरू इन दोनों चीज़ों के कषाय में छोटी पीपल और शहद का कल्क मिला गाय के घी में भूनकर दूध से पका ले । इसे पुष्य नक्षत्र से आरंभ कर नित्य चाटना मेध्य है, वाजीकरण है, आयुवर्द्धक है । यह भी युक्तरस कहलाता है ॥ ४६ ॥

शतावर्याः श्वदंष्ट्रायाः श्रीपर्णीफलानां च क्षुण्णानां चतुर्गुणितजलेन पाक आप्रकृत्यवस्थानात् तस्य पुष्यारम्भेण प्रातः प्राशनं मेध्यं वृष्यमायुष्यं युक्तरसमित्याचार्याः प्रचक्षते ॥४७॥

श्रीपर्णी काश्मीरी ॥ ४७ ॥

शतावर, पहाड़ी गोखरू, श्रीपर्णी (कसेरू) के फल इनका यवकुट करके जितनी दवा हो उससे चौगुने जल में इन दवाओं को छोड़कर आग पर चढ़ा दे । पानी जल जाने पर आग से उतार ले । इसे पुष्य नक्षत्र से प्रारम्भ कर नित्य चाटना चाहिए । यह मेध्य है, वाजीकरण है, आयुवर्द्धक है । यह युक्तरस है ॥ ४७ ॥

श्वदंष्ट्राचूर्णसमन्वितं तत्सममेव यवचूर्णं प्रातरुत्थाय द्विपलकमनुदिनं प्राश्नीयान्मेध्यं वृष्यं युक्तरसमित्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ४८ ॥

यद्भाण्डस्थापितं ततो द्विपलकं चूर्णमादाय प्राश्नीयात् ॥ ४८ ॥

पहाड़ी गोखरू का चूर्ण और जव का पिसान समान मात्रा लेकर दोनों को मिला ले। प्रातःकाल नित्य दो पल सेवन करने से मेधा शक्ति बढ़ती है, ओज बढ़ता है और आयु बढ़ती है। इसे भी युक्तरस कहा जाता है ॥ ४८ ॥

उक्तमेवार्थं पङ्क्तिपरिहारार्थमाह—

आयुर्वेदाच्च वेदाच्च विद्यातन्त्रेभ्य एव च।
आप्तेभ्यश्चावबोद्धव्या योगा ये प्रीतिकारकाः ॥ ४९ ॥

आयुर्वेदेति। वैद्यकाद्, वेदाच्चेति। अथर्ववेदाद्, विद्यातन्त्रेभ्य इति। मन्त्रवादेभ्यः, आप्तेभ्य इति। तन्त्रकुशलेभ्यो विश्वासिभ्यः ॥ ४९ ॥

उपर्युक्त बाजीकरण योगों को बतलाकर वात्स्यायन कहते हैं कि—इन योगों से अतिरिक्त आयुर्वेद, वेद तथा अन्य शास्त्रों, अधिकारी विद्वानों, अनुभवी वैद्यों से राग-रति बढ़ाने वाले योगों को सीखना चाहिए ॥ ४९ ॥

न प्रयुञ्जीत संदिग्धान्न शरीरात्ययावहान्।
न जीवघातसंबद्धान्नाशुचिद्रव्यसंयुतान् ॥ ५० ॥

नेति। सन्दिग्धान् द्रव्ययोगे मात्रयाऽपि सन्दिग्धान्, शरीरात्ययावहान् ये प्रयुक्ताः शरीरविनाशमप्यावहन्ति, जीवघातसम्बद्धान् ये प्राणिनो विनाश्य युज्यन्ते, अशुचिद्रव्यसंयुतान् शुक्रशोणितादिभिः संयोज्याशनपानेन दीयन्ते ॥५०॥

संदिग्ध, शरीर को हानि पहुँचाने वाले, जीवों को मार कर बनाए जाने वाले योग अथवा जिनमें अपवित्र वस्तुएँ मिलाई जाएँ—ऐसे बाजीकरण योगों का कभी प्रयोग न करना चाहिए ॥ ५० ॥

तपोयुक्तः प्रयुञ्जीत शिष्टैरनुगतान् विधीन्।
ब्राह्मणैश्च सुहृद्भिश्च मङ्गलैरभिनन्दितान् ॥ ५१ ॥

तपोयुक्त इति। प्रयुञ्जीत सर्वसिद्धीनान्तपोमूलकत्वाद्, शिष्टैराचारविद्भिः, विधीनिति। अविधिपूर्वं हि सुभगङ्करणादिः क्रियमाणो न सिद्ध्यति, मङ्गलैः प्रशस्तवचनादिभिः ॥ ५१ ॥

इति वृष्ययोगा एकषष्टितमम्प्रकरणम्।

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां यशोधररचितायां जयमङ्गलाऽऽख्यायामौपनिषदिके सप्तमेऽधिकरणे सुभगंकरणं वशीकरणं वृष्यायोगाः प्रथमोऽध्यायः।

साधनापूर्वक केवल उन्हीं औषधियों का सेवन करना चाहिए जो शिष्ट लोगों द्वारा बरती जाती हों और शुभचिन्तक ब्राह्मण, विद्वान् तथा मित्र लोग जिसकी प्रशंसा करें। वशीकरणयोग ६१वाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

कौटलीय अर्थशास्त्र की रचना-शैली के अनुकरण पर लिखे गए कामसूत्र के अंतिम सातवें अधिकरण का भी नाम 'औपनिषदिक' है। यह अधिकरण शास्त्र का परिशिष्ट भाग है। छठे अधिकरण से शास्त्र समाप्त होने की सूचना शास्त्रकार औपनिषदिक अधिकरण के प्रारंभ में 'व्याख्यातं च कामसूत्रं' लिखकर देते हैं।

औपनिषदिक का साधारण अर्थ गुप्त रहस्य या रहस्य विद्या। जो काम छिपा कर किया जाता है वह औपनिषदिक कहलाता है। कौटलीय अर्थशास्त्र राजनीति शास्त्र है, इसलिए कौटल्य ने अर्थशास्त्र के औपनिषदिक अधिकरण में राजनीति संबंधी ऐसे गुप्त प्रयोगों का उल्लेख किया है जो अद्भुत, आश्चर्य-जनक एवं अनिष्ट (शत्रु के लिए) कारक हैं। कौटल्य ने ऐसे औपनिषदिक उपायों से विजिगीषु राजा को अपने शत्रु को उद्विग्न करने एवं उसके राज्य में क्रान्ति और अराजकता पैदा कर देने का सुझाव दिया है। कौटल्य ने ऐसे औपनिषदिक उपायों को निहायत अनिष्टकारक, हेय और कलंकित करने वाले बताए हैं। लेकिन जब राजाओं में परस्पर शत्रुता बढ़ जाए तब अपने राज्य की, जनता की शत्रु से रक्षा करने के लिए विजिगीषु (जीतने की इच्छा रखने वाले) राजा को औपनिषदिक उपायों से काम लेना चाहिए।

कौटल्य का-सा दृष्टिकोण रख कर वात्स्यायन ने कामसूत्र के अन्तिम अधिकरण में औपनिषदिक उपायों का समावेश किया है। इस शास्त्र के सभी उपाय राजनीतिक नहीं, कामशास्त्रीय हैं। कौटल्य की भाँति वात्स्यायन ने भी इन अनिष्टकारी उपायों को हेय, निन्दित और वर्ज्य मानते हुये यह आदेश दिया है कि इन उपायों का उपयोग उसी स्थिति में किया जाये.जब कामसूत्र में बताए गये उपायों से अभीष्ट सिद्ध न होता हो।

सम्पूर्ण कामसूत्र विषय की दृष्टि से तंत्र और आवाप इन दो भागों में विभक्त है। वात्स्यायन ने प्रथम अधिकरण में ही यह हिदायत कर दी है कि यदि आप तन सम्प्रयोग और अङ्ग सम्प्रयोग को प्राप्त करने में तथा रागोत्पादक उपाय आलिंगन-चुम्बन से स्त्री में रतिभाव पैदा करने में असफल हों, तो उस अवसर पर औपनिषदिक प्रकरण में बताई हुई विधियों का उपयोग किया जाए।

इस अधिकरण में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में सौभाग्य, सौन्दर्य वृद्धि के उपाय, वशीकरण के प्रयोग और वाजीकरण के प्रयोग लिखे गए हैं। औषधि और तंत्र के आधार पर इन प्रयोगों और योगों का वर्णन किया गया है। सभ्यता और शिष्टता की थोथी परिभाषा और बनावटी परिवेश में इन प्रयोगों और योगों को व्यभिचारमूलक, अशिष्ट, असामाजिक और नितान्त हेय कहा जा सकता है किन्तु मानव-जीवन के लक्ष्य, उसके उद्देश्य तथा कार्य-व्यापार को दृष्टिगत रखते हुये यदि विचार किया जाए तो इनकी उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। अर्थ, धर्म और काम इस त्रिवर्ग की सिद्धि ही मानव जीवन का लक्ष्य माना गया है। जब तक इनकी सिद्धि नहीं प्राप्त कर ली जाती है तब तक चरम लक्ष्य—मोक्ष कथमपि प्राप्त नहीं किया जा सकता है। कामसूत्र की रचना का मूल उद्देश्य इसी लक्ष्य पर आधारित है।

ऐसा लक्ष्य वात्स्यायन की निजी उद्भावना नहीं बल्कि वैदिक सिद्धान्त है। कामसूत्र या कामशास्त्र की रचना से बहुत पूर्व वेदों में मानव जीवन और गृहस्थ जीवन को सफल एवं संयत, सुचारु बनाने के लिये अथर्ववेद में भी ऐसे ही प्रयोगों और योगों का उल्लेख किया गया है। जिस प्रकार वात्स्यायन ने इस अध्याय में सौभाग्य, सौन्दर्य की वृद्धि के उपाय, वशीकरण प्रयोग और वाजीकरण योग लिखे हैं ऐसे ही प्रयोग, योग और तन्त्र अथर्ववेद में लिखे हुये हैं[1]। सौभाग्यवृद्धि के लिए अथर्ववेद कहता है—

न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम। शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः। तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते।

शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम्। अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर।

संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद। अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि।

यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम्। एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर।

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः। एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति।

कामसूत्र ने आयुवृद्धि के लिए जिन प्रयोगों का उल्लेख किया है वे प्रयोग अथर्ववेद में अत्यधिक मात्रा में लिखित मिलते हैं।[2] सौभाग्य और आयु-

[1] अथर्ववेद का० ६, प्र० १५, सूक्त १३९, मंत्र १-५।

[2] १९।६३, ६।७६, ५।२८, ७।३२, १।३०, ३५, २।४.९,१३,२८, ३।११; ६।४१,४७, ११०;८।१,२,१९।६४,६७,२।२९; ५।३०।

वृद्धि के साथ ही वात्स्यायन ने कामिनी को वशीभूत करने के लिए वशीकरण योग बताए हैं। इन योगों में उबटन लगाकर, माथे में तिलक लगाकर, बुकनी को स्त्री के ऊपर छिड़ककर, उसे खिलाकर और चमत्कार दिखाकर वशीभूत करने की औषधियाँ और उपाय हैं।

स्त्री को वशीभूत करने की परम्परा बहुत पुरानी है। वेदों, आगमों में वशीकरण की चर्चा विस्तार से मिलती है। यंत्रों, मंत्रों और तंत्रों द्वारा वशीकरण के प्रयोग किए जाते हैं। शास्त्रीय प्रयोगों के अतिरिक्त शाबरीय मंत्रों के प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। यंत्र-मंत्र-तंत्र के प्रयोग इस्लाम धर्म में बहुत प्रचलित होने से इस्लामी वशीकरण मंत्रों की कमी नहीं है। अथर्ववेद में ऐसे अनेक मंत्र मिलते हैं[1]—

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति।
एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ १ ॥
सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥ २ ॥
यत्सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः।
तत्र मे गच्छताद्धवं शल्य इव कुल्मलं यथा ॥ ३ ॥
यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम्।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥ ४ ॥
एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम्।
अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमम् ॥ ५ ॥

आगम ग्रन्थों में जो वशीकरण मंत्र मिलते हैं उनकी विधियाँ कई ढंग की होती हैं। कामगायत्री के जप और ध्यान का वशीकरण महत्त्व बताते हुए आगमतंत्र कहता है कि कामगायत्री का सवा लक्ष जप कर लेने से कामदेवता सिद्ध हो जाता है—

ॐ मनोभवाय विद्महे कन्दर्पाय धीमहि तन्नः कामः प्रचोदयात् ॥

कुचुमारतंत्र का कहना है कि ॐ क्लीं एनामानय नय वशताम् ॐ स्वं नमः। इसका दस हजार जप करके पलाश और कदम्ब के फूलों का दशांश हवन करने से यह मंत्र सिद्ध होता है।

ताम्बूल खिलाकर वशीभूत करने के लिए आगमतंत्र लिखता है—

ॐ चामुण्डे हुलु हुलु चुलु वशमानय अमुकीं स्वाहा।

इस मंत्र से सात बार अभिमंत्रित कर पान देने से स्त्री वशीभूत हो जाती है।

---

[1] अथर्ववेद २।३०

पान खिलाकर वशीभूत करने का एक शाबर मंत्र इस प्रकार है—

ॐ कामरू कमच्छा की देवी तहँ बैठे इस्माइल जोगी इस्माइल जोगी ने दिया चार पान एकहि पान राजी भाजो दूसर पान बिरह संजोती तीसर पान व्याकुल करे चारों पान जो मेरे खाय मेरे पास से कहीं न जाए फुरो मंत्र ईश्वरोवाच ॐ ठं ठं ठं ठं ठः।

संभोग शक्ति को कम न होने देने तथा दीर्घकालिक बनाए रखने के लिए, वात्स्यायन ने वाजीकरण औषधियों के आयुर्वेदिक प्रयोग दिए हैं। यह विषय आयुर्वेद का है। वाजीकरण संबंधी उत्तमोत्तम प्रयोग चिकित्सा ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। अथर्ववेद में भी वाजीकरण के प्रयोग बहुतायत से मिलते हैं।[1]

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूँषि कृण्वन्नसुरस्य मायया।
एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥ १ ॥

यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम्।
यावत्परस्वतः पसस्तावत्ते वर्द्धतां पसः ॥ २ ॥

यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत्।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत्ते वर्द्धतां पसः ॥ ३ ॥

इस अध्याय में सौभाग्य-वृद्धि, आयुवृद्धि, स्त्री-वशीकरण और वाजीकरण के जो प्रयोग दिये गये हैं, प्रायः आयुर्वेदिक और तान्त्रिक प्रयोग हैं। वात्स्यायन ने शास्त्र का विषय होने के कारण इन प्रयोगों को स्थान दिया है न कि कामियों को अमर बनने, घोड़ा बनने अथवा पराई बहू-बेटियों को वशीभूत करने के लिए। कदाचित् धर्मसंकट पड़ जाये, आत्मसम्मान की रक्षा का प्रश्न उपस्थित हो जाए तो इन प्रयोगों को व्यवहार में लाना आवश्यक है। लेकिन विशेषज्ञों, अनुभवी लोगों से पूछकर, उनसे समझकर ही प्रयोग करना उचित है। इसीलिये वात्स्यायन ने अंत में स्पष्ट निर्देश करते हुए कहा है कि आयुर्वेदग्रन्थों से, वैदिकग्रन्थों से, आगमशास्त्रों से, तंत्रग्रन्थों से और अनुभवी विद्वानों से समझ कर ही इन योगों का प्रयोग करना चाहिए, अन्यथा दुष्परिणाम भी हो सकता है। जैसे एक वाजीकरण प्रयोग में कामसूत्रकार ने लिखा है—

सर्पिषो मधुना शर्करायाा मधूकस्य च द्वे द्वे पले।

[1] अथर्व० ६।७२

यहाँ घी और मधु दोनों समान मात्रा में खाने को बताया गया है, जब कि आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि घी और मधु की समान मात्रा विष बन जाती है। यहां पर किसी अनुभवी वैद्य से निर्णय कर लेना चाहिए, अपने-आप पढ़कर, कूट-पीसकर दवा न खानी चाहिये। यही हाल मंत्रों और तंत्रों का भी है। पुस्तकों में लिखे हुये मन्त्रों और उनकी विधियों को पढ़कर उन्हें सिद्ध करना अज्ञानता है। किसी मांत्रिक गुरु से समझकर प्रवृत्त होना चाहिए।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे औपनिषदिके सप्तमेऽधिकरणे
सुभगंकरणं वशीकरणं वृष्ययोगाः प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः

नष्टरागप्रत्यानयनप्रकरणम्

द्विविधं रतमपत्यफलं रतिफलञ्च, पूर्वत्र वृष्ययोगा उक्ताः, द्वितीये नष्टराग-प्रत्यानयनमुच्यते, कस्यचित्स्वभावतोऽवस्थाया वा विनष्टो रागः प्रयोगात् प्रत्यानीयते—

यदाह—

चण्डवेगां रञ्जयितुमशक्नुवन्योगानाचरेत् ॥ १ ॥

चण्डवेगामिति । रञ्जयितुं सुखयितुमशक्नुवन् नष्टरागत्वाद्, योगानिति । प्रयोगान् ॥ १ ॥

प्रचण्ड वेगवाली स्त्री को अनुरक्त और प्रसन्न करने में असमर्थ पुरुषों को योगों (औषधि-साधन) का प्रयोग करना चाहिए ॥ १ ॥

नष्टो रागो द्विविधः—मन्दो ऽवस्तश्च, तत्र मन्दः प्रवर्तकोऽप्रवर्तकश्च, तत्र पूर्व-मधिकृत्याह—

रतस्योपक्रमे संबाधस्य करेणोपमर्दनं तस्या रसप्राप्तिकाले च रतयोजनमिति रागप्रत्यानयनम् ॥ २ ॥

रतस्येति । सम्प्रयोगस्य, उपक्रम इति । अयमारम्भे, यद्यपि मन्दो रागो रते प्रवर्तयति स्तब्धलिङ्गत्वात्, तथाऽपि प्रथमतः सम्बाधस्य भगस्य करेणोपमर्दनं गजहस्तेन क्षोभणङ्कार्यं, तस्या इति । चण्डवेगायाः करोपमर्दनाद्रसप्राप्तिकाले, रतयोजनमिति । यन्त्रयोजनं, रागप्रत्यानयनमिति । स्त्रीच्छया तावन्तं कालं रागस्य प्रवर्तितत्वात् ॥ २ ॥

स्त्री से पहले स्खलित हो जानेवाला पुरुष यदि स्त्री से खोये हुए अनुराग को पुनः प्राप्त करना चाहता हो तो उसे चाहिए कि वह सम्भोग-रत होने से पूर्व स्त्री की योनि में अंगुली डालकर उसे द्रवित करे इसके बाद सम्भोग करे ॥ २ ॥

अप्रवर्तकमधिकृत्याह—

औपरिष्टकं मन्दवेगस्य गतवयसो व्यायतस्य रतश्रान्तस्य च रागप्रत्यानयनम् ॥ ३ ॥

मन्दवेगस्येति । यस्योत्पन्नोऽपि रागो न प्रवर्तयति लिङ्गस्यानतिस्तब्धत्वात् तस्यौपरिष्टकेन रागप्रत्यानयनं तेनैव विसृष्टिसुखस्योत्पादनाद्, गतवयस इति । वृद्धस्य, व्यायतस्य चेति । मेदस्विनः, उभयस्यापि ध्वस्तो रागो लिङ्गस्य दुःखेनोत्थाप्यमानत्वात् ताभ्यामेवौपरिष्टकमेव रागप्रत्यानयनं रतयोजने प्रवर्त्तयितव्यमसमर्थत्वात् ॥ ३ ॥

जिस पुरुष की इन्द्रिय में शिथिलता आ गयी हो, बुढ़ाई या शरीर में अधिक मुटापा आ गया हो अथवा सम्भोग करते-करते वह थक गया हो उसे चाहिए कि साम्प्रयोगिक अधिकरण में बताई गई औपरिष्टक विधि से वह उत्तेजना प्राप्त करे ॥ ३ ॥

अपद्रव्याणि वा योजयेत् ॥ ४ ॥

अपेति । अपद्रव्याणि च योजयेद्, यस्य प्रवर्तकोऽप्रवर्तकश्च रागः स कृत्रिमाणि साधनप्रकाराणि च योजयेत् ॥ ४ ॥

अथवा वह रबड़, लकड़ी, आदि के बने हुए कृत्रिम साधन से काम चलाए ॥ ४ ॥

तान्यविद्धस्य विद्धस्य वा लिङ्गस्य, तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

तानि सुवर्णरजतताम्रकालायसगजदन्तगवलद्रव्यमयाणि ॥५॥

तानीति । सुवर्णादयो द्रव्याणि येषामपद्रव्याणामिति समासः, तत्र कालायसं = लोहं, गवलं = शृङ्गं प्रतीतं, द्रव्यशब्दः प्रत्येकं योज्यः ॥ ५ ॥

इस प्रकार के कृत्रिम साधन सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, हाथी दाँत और सींग से बनाए जाते हैं ॥ ५ ॥

त्रापुषाणि सैसकानि च मृदूनि शीतवीर्याणि कर्मणि च घृष्णूनि भवन्तीति बाभ्रवीया योगाः ॥ ६ ॥

त्रापुषाणि त्रपुषो विकारत्वात्, 'त्रपुजतुनोः षुक्' तेषां गुणानाह—मृदूनीति । मृदुत्वात् साधनस्पर्शं नयन्ति, शीतवीर्यत्वञ्च प्रवेशकाले शीतलं स्पर्शं, कर्मणि च व्यवहारे घृष्णूनि घर्षणशीलानि भवन्ति, अत्युत्तेजकत्वाद्, दारुमयाणि तु विपरीतानीत्यभिप्रायः ॥ ६ ॥

बाभ्रवीय आचार्यों के मत से सीसा और रांगा के बने हुए कृत्रिम साधन (लिङ्ग) कोमल, ठंडे और संघर्षणशील होते हैं ॥ ६ ॥

दारुमयानि साम्यतश्चेति वात्स्यायनः ॥ ७ ॥

साम्यतश्चेति । किञ्चिदेव कस्याश्चित् प्रियम्भवति, अतो दारुमयाण्यपि योज्यानीति मन्यते ॥ ७ ॥

आचार्य वात्स्यायन का कहना है कि यदि कोई स्त्री लकड़ी के बने हुए साधन से सन्तुष्ट होनेवाली हो तो लकड़ी के साधन का भी प्रयोग किया जा सकता है ॥ ७ ॥

तानि प्रकारान्तरेण दर्शयन्नाह—

लिङ्गप्रमाणान्तरं बिन्दुभिः कर्कशपर्यन्तं बहुलं स्यात् ॥८॥

लिङ्गप्रमाणान्तरमिति । यत् स्तब्धस्य लिङ्गस्यानाहः प्रमाणं, तदन्तरं छिद्रं यस्य, बिन्दुभिरिति । उत्कीर्णैः कर्कशपर्यन्तं कर्कशपृष्ठमित्यर्थः, तलद्वयमिव पिनद्धं स्तब्धलिङ्गं संपिण्ड्य तिष्ठति ॥ ८ ॥

पुरुष के लिंग की नाप का ही कृत्रिम लिंग होना चाहिए । स्त्री की खुजलाहट मिटाने के लिए उस कृत्रिम साधन के अग्रभाग को खूब गोदवा देना चाहिए ॥ ८ ॥

एते एव द्वे संघाटी ॥ ९ ॥

एते एवेति । वलये द्वे चतुर्षु त्रिषु वा स्थानेषु विघिष्टसन्धिनी घटिते ॥ ९ ॥

कृत्रिम साधनों में दो जोड़ अथवा उतार-चढ़ाव अवश्य होना चाहिए ॥९॥

त्रिप्रभृति यावत्प्रमाणं वा चूडकः ॥ १० ॥

त्रीति । त्रिप्रभृति यावत्प्रमाणं लिङ्गस्यायामस्तावत्प्रमाणश्चडकः ॥ १० ॥

पुरुष के लिङ्ग के जो आयाम शश से लेकर अश्व तक बताए गए हैं उतने प्रमाण का कृत्रिम साधन 'चूड़क' कहा जाता है ॥ १० ॥

एकामेव लतिकां प्रमाणवशेन वेष्टयेदित्येकचूडकः ॥११॥

एकामेव लतिकामिति । लताऽऽकारा सीसकादिमयी, प्रमाणवशेनेति । लिङ्गस्यायामपरिणाहवशेन वेष्टयेदेकचूडकः ॥ ११ ॥

जो अपने आयाम के अनुसार सीसा आदि की बनी हुई एक ही लता को लपेट सके वह कृत्रिम साधन 'एकचूड़क' कहलाता है ॥ ११ ॥

उभयतोमुखच्छिद्रः स्थूलकर्कशवृषणगुटिकायुक्तः प्रमाणवशयोगी कट्यां बद्धः कञ्चुको जालकं वा ॥ १२ ॥

उभयत इति । द्वयोः पार्श्वयोः, मुखच्छिद्र इति । येन भागेन लिङ्गं प्रवेश्यते तन्मुखन्तद्द्वयोः पार्श्वयोश्छिद्रं कटिबन्धनसूत्रप्रक्षेपणार्थं यस्य, कर्कशवृषणगुटिकायुक्त इति । उत्कीर्णैः कर्कशबिन्दुभिर्युक्तः कञ्चुकः सर्वलिङ्गमवच्छाद्यावस्थितत्वाद्, यस्य जालकमिति, प्रतीतिः स द्विधा—खरकञ्चुको यो मसृणपृष्ठः, तदुभयमपि समन्तात् कञ्चुकः, यस्तु मणिभागमाच्छाद्य तिष्ठति सोऽर्धकञ्चुको यस्य मणिरक्ष इति

प्रतीतिः, गुलिकाभिरन्तरान्तरामुक्तसन्धिकतयोत्कीर्णाभिर्युक्तो जालकं तद् द्विविधम्, उत्कीर्णजालकं यदिदमुक्तं, वलयं बहुच्छिद्रं कृत्वा दृढसूत्राण्यवबध्य छिद्रस्फोटितगुलिकादिभिर्विवृद्धगुलिकां दत्त्वा विरच्यते, तन्मणिजालकं तस्याग्रे विधानिकायोजनं कार्यं, प्रमाणवशयोगीति । उभयोरपि घटितलिङ्गस्यायामपरिणाहावपेक्ष्य समन्तात्कञ्चुकस्य जालकस्य च योग इत्यर्थः ॥ १२ ॥

जिस कृत्रिम साधन में अण्डकोश भी लगाए गए हों, जिसमें दोनों तरफ छेद किए गए हों, जो कमर से बाँधा जा सके और जिसकी लम्बाई, मोटाई अनुपात के अनुसार हो उसे 'कंचुक' या 'जालक' कहते हैं ॥ १२ ॥

तदभावेऽलाबूनालकं वेणुश्च तैलकषायैः सुभावितः सूत्रेण कट्यां बद्धः श्लक्ष्णा काष्ठमाला वा ग्रथिता बहुभिरामलकास्थिभिः संयुक्तेत्यपविद्धयोगाः ॥ १३ ॥

तदभाव इति । यथोक्तसंस्थानघटनाभावे वेण्वादीनां योजनं तेषां लिङ्गसंस्थानत्वाद्, अत्र वेण्वलाबूनालयोरग्रं तु प्रमृष्टं कार्यं सूत्रेण कट्यां बद्ध इति । प्रमाणवशेन निर्मोकवदाकृष्य चर्म, सुभावित इति । तैलकषायैः कषायितैस्तैलैः स्नेहितः कर्मण्यो भवति, श्लक्ष्णा काष्ठमाला वेति । मसृणाभिः काष्ठगुलिकाभिरन्तरान्तराऽऽमलकास्थीनि दत्त्वा ग्रथिता माला, तया तथा लिङ्गस्य वेष्टनं यथा सुश्लिष्टं भवति ॥ १३ ॥

यदि इस प्रकार के कृत्रिम लिङ्ग सम्भव न हो सकें तो तुम्बी या बाँस का साधन अपने प्रमाण के अनुसार बनाकर उसे तेल और कषाय (उबटन) से खूब चिकना करके कमर में बाँधना चाहिए । अथवा आँवले के समान चिकने काठ की गोलियों की माला अपने लिङ्ग में पहन लेनी चाहिए ॥ १३ ॥

विद्धमधिकृत्याह—

न त्वविद्धस्य कस्यचिद्व्यवहृतिरस्तीति ॥ १४ ॥

न त्विति । अविद्धस्य लिङ्गस्येति सम्बन्धः, व्यवहृतिः = सम्प्रयोगः ॥ १४ ॥

ऐसे कृत्रिम लिङ्गों का सम्बन्ध किसी सम्भोग से नहीं है । असमर्थों और नपुंसकों के लिए ये योग हैं ॥ १४ ॥

दाक्षिणात्यानां लिङ्गस्य कर्णयोरिव व्यधनं बालस्य ॥ १५ ॥

बालस्येति । कर्णयोर्बालावस्थायामेव व्यधनं तथा लिङ्गस्य यूनां च तत्रान्यस्य वा लिङ्गस्य ॥ १५ ॥

दक्षिण भारत के लोगों में बचपन में ही कान की तरह लिङ्ग का भी छेदन होता है ॥ १५ ॥

व्यधनविधिमाह—

युवा तु शस्त्रेण च्छेदयित्वा यावद्रुधिरस्यागमनं तावदुदके तिष्ठेत् ॥ १६ ॥

युवा तु शस्त्रेणेति । भेदयित्वेत्यनेन कुशलेन बहिश्चर्माकृष्यान्यत्र स्थापयित्वा शिरां त्यक्त्वा तिर्यग् छेदयेद् यथोभयतश्छिद्रम्भवति, उदके तिष्ठेद्रुधिरस्तम्भनार्थम् ॥

जवान आदमी यदि अपना खतना (लिङ्गच्छेदन) कराए तो ऊपर का चमड़ा सरका कर, नसों को बचाकर किसी तेज शस्त्र से कुशलतापूर्वक तिरछा छेदे और जब तक खून बहे तब तक लिंग को पानी में डुबाए रखे ॥ १६ ॥

वैशद्यार्थं च तस्यां रात्रौ निर्बन्धाद्व्यवायः ॥ १७ ॥

वैशद्यार्थमिति । छिद्रस्यासङ्कोचार्थं, निर्बन्धाद् व्यवाय इति । बहून् वारान् मैथुनं कार्यं, ममत्वे हि तत्प्रतीकारस्य पीडाऽभावात् ॥ १७ ॥

यदि उस छेद को अधिक बड़ा बनाना हो तो उसी रात कई बार मैथुन करना चाहिए ॥ १७ ॥

ततः कषायैरेकदिनान्तरितं शोधनम् ॥ १८ ॥

ततः कषायैरिति । पञ्चकषायशोधनं प्रक्षालनं व्रणस्य ॥ १८ ॥

इसके बाद पंचकषायों (अमलतास, ब्राह्मी, कनेर, मालती, शंखपुष्पी) से एक-एक दिन का अन्तर डालकर उसे धोना चाहिए ॥ १८ ॥

वेतसकुटजशङ्कुभिः क्रमेण वर्धमानस्य वर्धनैर्बन्धनम् ॥१९॥

वेतसादिशङ्कुभिः कीलकादिभिः क्रमेण वर्द्धनन्तेषां क्रमेण वर्द्धमानत्वात् ॥

वेत और केसरैया के कीलों द्वारा धीरे-धीरे उस छेद को बढ़ाना चाहिए ॥ १९ ॥

यष्टीमधुकेन मधुयुक्तेन शोधनम् ॥ २० ॥

यष्टीमधुकेन मधुयुक्तेन प्रलेपनं शोधनं शुद्धं हि व्रणं रोहति ॥ २० ॥

घाव भरने के लिए मुलहठी के चूर्ण में शहद मिलाकर लेप किया जाए ॥ २० ॥

ततः सीसकपत्रकर्णिकया वर्धयेत् ॥ २१ ॥

तत इति । उत्तरकालं, सीसकपत्रकर्णिकयेति । सीसकस्य वर्द्धनहेतुत्वात्, तत्पत्रन्तु तालपत्रवत्संवेष्टितं क्षिप्रं वर्द्धयेत् ॥ २१ ॥

फिर शीशम की पत्तियाँ बाँधनी चाहिए । इससे छेद बढ़ता है ॥ २१ ॥

अक्षयेद्भल्लातकतैलेनेति व्यधनयोगाः ॥ २२ ॥

अक्षयेद् भल्लातकतैलेन प्रवेशनार्थम् ॥ २२ ॥

इसके बाद भिलामा के तेल से भिगोते रहना चाहिए । व्यधन योग पूरे हुए ॥ २२ ॥

तस्मिन्ननेकाकृतिविकल्पान्यपद्रव्याणि योजयेत् ॥ २३ ॥

तस्मिन्निति । बहुच्छिद्रे, अनेकाकृतिविकल्पानीति । अनेकसंस्थानेन कल्पितानि ॥ २३ ॥

जब छेद बड़ा हो जाए, घाव भर जाए, पीड़ा न रह जाए तब उसमें हड्डी, लकड़ी, मिट्टी, पत्थर आदि के लम्बे या गोले अपद्रव्य पहना देना चाहिए ॥ २३ ॥

वृत्तमेकतो वृत्तमुदूखलकं कुसुमकं कण्टकितं कङ्कास्थि गजकरकमष्टमण्डलकं भ्रमरकं शृङ्गाटकमन्यानि चोपायतः कर्मतश्च बहुकर्मसहता चैषां मृदुकर्कशता यथासात्म्यमिति नष्टरागप्रत्यानयनं द्विषष्टितमं प्रकरणम् ॥ २४ ॥

वृत्तमिति । वर्तुलं मध्येऽस्य द्रोणिका कार्या यत्र चर्मपाशस्तिष्ठति, एकतो वृत्तमिति । अन्यतो दीर्घमष्टमीचन्द्रसदृशन्द्रोणिका तथैव, उदूखलकमुलूखलाकृति मध्ये निम्नं यत्र पाशस्तिष्ठति, कुसुमकं पद्मकलिकाकृति मध्येऽस्य द्रोणिका, कण्टकितं कारविल्लसंस्थानन्द्रोणिका तथैव, द्वयोरप्यायामेन योजनं, कङ्कास्थिसमं चतुरस्रन्द्रोणिका तथैव, गजकराकृति तस्य ग्रीवाशिरोदन्तान्तरभागेन द्रोणिका, अष्टमण्डलकमष्टाश्रि तस्योर्ध्वाधःकोणेन द्रोणिका, भ्रमरकं शकटाकृति पार्श्वतः कीलिकायोगाच्च चलच्चक्रमायामेन द्रोणिका, द्वयोरपि कोणेन प्रवेशनम् , अन्यानि च योजयेत् , तत्राप्युपायतो य उपायास्ते प्रतिपद्यन्ते, कर्मतश्चेति । यानि चर्मपाशेन संयोज्य कर्मणि निरपायं व्यापार्यन्ते, यथासात्म्यमिति । मृदुमध्यातिमात्रेण सम्बाधस्य कार्कश्यं बुद्ध्वा तदनुरूपं कार्कश्यं विधेयं मार्दवं च येषां मसृणता विद्यते।।

जिस प्रकार का अपद्रव्य जिसे अनुकूल पड़े उस प्रकार का गोल, चपटा, ओखली जैसा, कमल, करैला जैसा काँटेदार, हौज के ढङ्ग का, हाथी की सूंड की तरह, अठपहलू, चक्करदार, सिंघाड़े की आकृति का कोमल या कठोर बनाया जा सकता है। नष्ट हुए राग को फिर से लाने की विधि का ६२वाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

यथाऽपद्रव्यसंयोगाल्लिङ्गं कर्मण्यं तथाऽऽकारस्य वर्द्धनमपीति वृद्धिविधय उच्यन्ते—

एवं वृक्षजानां जन्तूनां शूकैरुपहितं लिङ्गं दशरात्रं तैलेन मृदितं पुनरुपतृंहितं पुनः प्रमृदितमिति जातशोफं खट्वाया-मधोमुखस्तदन्तरे लम्बयेत् ॥ २५ ॥

एवमिति । वृक्षजातानामन्येषामनुपयोगित्वाद्, जन्तूनामिति । कन्दलिकानां, शूकैर्लोमभिः, उपतृंहितमिति । संदंशिकया जन्तून् गृहीत्वा शूकैः पार्श्वेषु लिङ्गं ताडयेत् , तृहू हिंसायामिति धातुपाठात् , तैलमृदितमाकृष्य, जातशोफमिति । जातश्वयथु, शुल्वान्तरेणेति खट्वावस्त्रान्तरेण लम्बयेद् दैर्घ्यार्थम् ॥ २५ ॥

इस प्रकार वृक्षों में पैदा होने वाले रोयेंदार जन्तुओं (जोरई) के रोम (रोएँ) लिंग पर लेप करे और तेल की मालिश करे । बार-बार यही क्रिया दस रात तक करने के बाद जब लिंग में सूजन आ जाए तो चारपाई के छेद में उसे डालकर औंधे मुँह सो जाए ॥ २५ ॥

तत्र शीतैः कषायैः कृतवेदनानिग्रहं सोपक्रमेण निष्पाद-येत् ॥ २६ ॥

तत्रेति । ईप्सिते प्रमाणे जाते शीतैः पञ्चकषायैः, कृतवेदनानिग्रहमिति । परिषिच्य परिषिच्यापनीतवेदनम् , अन्यथा शोफो वर्द्धते वेदना चेति ॥ २६ ॥

इसके बाद ठंडे लेप लगाकर पीड़ा और जलन मिटानी चाहिए ॥ २६ ॥

स यावज्जीवं शूकजो नाम शोफो विटानाम् ॥ २७ ॥

स इति । स पूर्वोक्तः शूकजो नाम शोफो यावज्जीवं चिरस्थायी विटानां भवति ॥ २७ ॥

इस प्रकार कामुक विलासियों के जीवन भर उनके लिंग की मोटाई बनी रहती है ॥ २७ ॥

अश्वगन्धाशबरकन्दजलशूकबृहतीफलमाहिषनवनीतहस्तिक-र्णवज्रवल्लीरसैरेकैकेन परिमर्दनं मासिकं वर्धनम् ॥ २८ ॥

शबरकन्दकं = शबरमूलं, जलशूकं लोकप्रतीतं, हस्तिकर्ण—बृहत्पत्रम् , अटव्यां भवति, वज्रवल्ली = अस्थिसंहारः, मासिकमिति वर्द्धितं मासे तिष्ठति ॥ २८ ॥

असगंध, बड़े लोध की जड़, जलशंकु (एक जंतु), बड़ी भटकटैया (कटेरी) के पके हुए फल, मक्खन, छिउल (ढाक) के पत्ते और हरजोर का रस इनमें से किसी एक को लगाने से एक मास तक लिंग मोटा बना रहता है ॥ २८ ॥

एतैरेव कषायैः पक्केन तैलेन परिमर्दनं षाण्मास्यम् ॥२९॥

एतैरेवेति । अश्वगन्धादिभिः कषायैरिति । कल्कीकृतैः, तैलेन परिमर्दनं षाण्मास्यमिति । वर्धनमिति योज्यम् ॥ २९ ॥

असगंध आदि के कल्क से सिद्ध किए हुए तेल की मालिश करने से छह मास तक लिंगवृद्धि रहती है ॥ २९ ॥

दाडिमत्रापुषबीजानि बालुका बृहतीफलरसश्चेति मृद्वग्निना पक्केन तैलेन परिमर्दनं परिषेको वा ॥ ३० ॥

दाडिमत्रापुषबीजानीति । बालुकेति । एडबालुका, बृहती बृहत्येव कङ्क-बृहती हस्तिनस्तुम्बा, अनयोः फलरसः परिमर्दनं परिषेको वा वर्द्धनं षाण्मास्यमिति योज्यम् ॥ ३० ॥

अनार, बालमखीरा के बीज, एडबालुक (एलुवा) और भटकटैया के फलों के रस का मंद-मंद आँच से तेल निकाल कर लिंग में मालिश करने से छह महीने तक लिंग-वृद्धि रहती है ॥ ३० ॥

तांस्तांश्च योगानाप्तेभ्यो बुध्येतेति वर्धनयोगाः ॥ ३१ ॥

तांस्तांश्च योगानिति । वर्द्धनस्य योगाः, वृद्धिविधयः ॥ ३१ ॥

इनके अतिरिक्त लिंग-वृद्धि के अन्य जो योग हैं, उन्हें इस विषय के प्रामाणिक व्यक्तियों से समझना चाहिए । वर्द्धनयोग नाम का ६३ वाँ प्रकरण समाप्त ॥ ३१ ॥

उक्तव्यतिरिक्तकार्यसाधनार्थं प्रकीर्णकन्यायेन चित्रा योगा उच्यन्ते—

अथ स्नुहीकण्टकचूर्णैः पुनर्नवावानरपुरीषलाङ्गलिकामूलमिश्रैर्यामवकिरेत्सा नान्यं कामयेत ॥ ३२ ॥

अथेति । प्रकरणाधिकारार्थ, स्नुहीति । वज्री ग्राह्या, अवकिरेदिति । शिरस्यवचूर्णयेद्, नान्यं कामयेत, तस्या अनेन रक्षितत्वात् ॥ ३२ ॥

थूहर के काँटों का चूर्ण, पुनर्नवा (पथरचटा या गदापुन्ना), बन्दर की बीट, करिहारी (इन्द्रायन) की जड़ सबको पीसकर चूर्ण बना ले और फिर उस चूर्ण को जिस स्त्री के सिर पर छोड़े वह वशीभूत हो जाती है ॥ ३२ ॥

तथा सोमलताऽवल्गुजाभृङ्गलोहोपजिह्विकाचूर्णैर्व्याधिघातकजम्बूफलरसनिर्यासेन घनीकृतेन च लिप्तसंबाधां गच्छतो रागो नश्यति ॥ ३३ ॥

सोमेति । सोमलता, अवल्गुजं = बाकुचीबीजं, भृङ्गः = भृङ्गराजः, लोहं = लोहचूर्णम् , उपजिह्विका या बल्मीकं चिनोति । व्याधिघातकः=सुवर्णशेफालिका, तस्याः पत्रत्वङ्निर्यासः, जम्बूफलं तस्य च निर्यासः फाणितीकृतेन, तैस्सह कल्कीकृतेन रागो नश्यति संस्पर्शमात्रेण लिङ्गं नोत्तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

उसी प्रकार सोमलता, अवल्गुजा (बकुची), भँगरैया, लोह भस्म, उपजिह्विका (गराज—जो बरसात में बाँबी के आस-पास पैदा होती है) का चूर्ण तथा अमलतास और जामुन के फल की गुठली खरल करके योनि में लेप करने से जो भी पुरुष उस स्त्री से सम्भोग करता है उसकी आसक्ति नष्ट हो जाती है । अर्थात् उस पुरुष की इन्द्रिय की उत्तेजना नष्ट हो जाती है ॥ ३३ ॥

गोपालिकाबहुपादिकाजिह्विकाचूर्णैर्माहिषतक्रयुक्तैः स्नातां गच्छतो रागो नश्यति ॥ ३४ ॥

बहुपादिका=रुण्डिका या वर्षासु भवति, स्नातां गच्छतो रागो नश्यति ॥३४॥

गोपालिका, बहुपादिका और जिह्विका का चूर्ण भैंस के मट्ठा में मिला कर स्नान करने वाली स्त्री से जो पुरुष सम्भोग करता है वह रागरहित हो जाता है ॥ ३४ ॥

नीपाम्रातकजम्बूकुसुमयुक्तमनुलेपनं दौर्भाग्यकरं स्रजश्च ॥३५॥

स्रजश्चेति । कुसुमयुक्ताः पिनद्धा दौर्भाग्यकृतः ॥ ३५ ॥

कदम्ब, आँवड़ा और जामुन के फूलों को घिसकर चन्दन लगाना या इन फूलों की माला पहनना दुर्भाग्य का वर्द्धक होता है ॥ ३५ ॥

कोकिलाक्षप्रलेपो हस्तिन्याः संहतमेकरात्रे करोति ॥ ३६ ॥

कोकिलाक्षः श्वेतः, संहतमिति । सङ्कोचम् ॥ ३६ ॥

तालमखाना को पानी में पीसकर योनि में लेप करने से हस्तिनी स्त्री की भी योनि सिकुड़कर मृगी स्त्री की भाँति छोटी बन जाती है ॥ ३६ ॥

पद्मोत्पलकदम्बसर्जकसुगन्धचूर्णानि मधुना पिष्टानि लेपो मृग्या विशालीकरणम् ॥ ३७ ॥

पद्मोत्पलेति । कदम्बमिति, व्रजकदम्बं, सर्जकसुगन्धौ वीरणस्थाने वर्षासु जायेते, विशालीकरणमेकरात्रे ॥ ३७ ॥

कमलगट्टा, नीलोफल, कदम्ब, विजयसार और नेत्रबाला का चूर्ण मधु के साथ घोटकर उसका लेप बना लिया जाए, फिर जो भी स्त्री उसे अपनी योनि में लगाती है उसकी छोटी-से-छोटी योनि गहरी और विशाल बन जाती है ॥ ३७ ॥

स्नुहीसोमार्कक्षारैरवल्गुजाफलैर्भावितान्यामलकानि केशानां श्वेतीकरणम् ॥ ३८ ॥

स्नुहीसोमार्कक्षारैरिति । दग्ध्वा परिस्राव्य च जलं ग्राह्यम्, अवल्गुजाफलैश्च क्षारैः ॥ ३८ ॥

थूहर, पुतली और मदार के पत्तों को जलाकर राख बना ले फिर उस भस्म के साथ बकुची के बीज और आँवला की भावना देकर उसे बालों में लगाया जाए तो काले से काले बाल सफेद हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

मदयन्तिकाकुटजकाञ्जनिकागिरिकर्णिकाश्लक्ष्णपर्णीमूलैः स्नानं केशानां प्रत्यानयनम् ॥ ३९ ॥

मदयन्तिका प्रसिद्धा, कुटजको यस्येन्द्रयवाः फलानि, अञ्जनिका कृष्णकुसुमा प्रतीता, गिरिकर्णिका प्रतीता, श्लक्ष्णपर्णी काश्मीरी, केशानामिति । श्वेतीकृतानां प्रत्यानयनं पुनः कृष्णीकरणमित्यर्थः ॥ ३९ ॥

मेंहदी, केसरैया, पहाड़ी चमेली, माषपर्णी की जड़ का चूर्ण सिर पर मल कर नहाने से सिर के सफेद बाल जड़ से काले हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

एतैरेव सुपक्वेन तैलेनाभ्यङ्गात्कृष्णीकरणात् क्रमेणास्य प्रत्यानयनम् ॥ ४० ॥

एतैरेवेति । कषायकल्कीकृतैः, क्रमेणेति । दिवसक्रमेण स्वयमेव निवर्तते काष्र्ण्यम् ॥ ४० ॥

इन्हीं से बनाए गए तेल से भी बाल काले हो जाते हैं ॥ ४० ॥

श्वेताश्वस्य मुष्कस्वेदैः सप्तकृत्वो भावितेनालक्तकेन रक्तोऽधरः श्वेतो भवति ॥ ४१ ॥

श्वेतेति । मुष्कस्वेदेनेति । वृषणप्रस्वेदेन ॥ ४१ ॥

सफेद घोड़े के अण्डकोष के पसीने की इन्हीं औषधियों में सात भावना देने के बाद जो योग तैयार होता है वह सफेद ओठों को तुरन्त लाल बना देता है ॥ ४१ ॥

मदयन्तिकादीन्येव प्रत्यानयनम् ॥ ४२ ॥

मदयन्तिकेति । स्पष्टम् ॥ ४२ ॥

इन्हीं दवाओं को पीस कर पुनः ओठों में लगाने से लाल ओंठ सफेद हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

बहुपादिकाकुष्ठतगरतालीसदेवदारुवज्रकन्दकैरुपलिप्तं । वंशं वादयतो या शब्दं शृणोति सा वश्या भवति ॥ ४३ ॥

बह्विति । उपलिप्तमिति । औषधजलेन बहिरन्तश्च बहुशः क्षालित उपलिप्तो भवति ॥ ४३ ॥

बहुपादिका, कुष्ठ, तगर, तालीशपत्र, देवदारु और वज्रकन्द का लेप बाँस पर करके फिर उस बाँस की बाँसुरी बनाकर बजाने से जो स्त्री उसकी ध्वनि सुनती है वह बजाने वाले पर मोहित हो जाती है ॥ ४३ ॥

धत्तूरफलयुक्तोऽभ्यवहार उन्मादकः ॥ ४४ ॥

धत्तूरेति । अभ्यवहार इति । यदशनं पानं वा ॥ ४४ ॥

पेय, खाद्य पदार्थों में धतूर के बीज मिला कर जिसे पिला या खिला दे वही पागल हो जाता है ॥ ४४ ॥

गुडो जीर्णितश्च प्रत्यानयनम् ॥ ४५ ॥

गुडो भक्षितः प्रत्यानयनम्, अभ्यवहारो वा यदा जीर्णो भवति तदा स्वच्छता ॥ ४५ ॥

पुराना गुड़ खिला देने से धतूरे का विष उतर जाता है ॥ ४५ ॥

हरितालमनःशिलाभक्षिणो मयूरस्य पुरीषेण लिप्तहस्तो यद्द्रव्यं स्पृशति तन्न दृश्यते ॥ ४६ ॥

हरितालमनःशिलाभक्षिण इति । उपवासं कारितस्य मासेन देयम् ॥ ४६ ॥

हरताल और मैनसिल खाने वाले मोर के बीट को हाथ में लेकर जिस वस्तु को स्पर्श किया जाए वह वस्तु दूसरों को दिखायी नहीं पड़ती है ॥४६॥

अङ्गारतृणभस्मना तैलेन विमिश्रमुदकं क्षीरवर्णं भवति ॥

अङ्गारेति । तृणं लोकप्रतीतम् ॥ ४७ ॥

खस की भस्म तेल में मिलाकर पानी में डालने से पानी दूध की तरह सफेद हो जाता है ॥ ४७ ॥

हरीतकाम्रातकयोः श्रवणप्रियङ्गुकाभिश्च पिष्टाभिर्लिप्तानि लोहभाण्डानि ताम्रीभवन्ति ॥ ४८ ॥

हरीतकाम्रेति । यस्य चटचट इति प्रतीतिः, आम्रातकः प्रसिद्धः, तयोः पत्रमित्यर्थः, श्रवणप्रियङ्गुका ज्योतिष्मतीति तत्फलैः सह पिष्ट्वा ॥ ४८ ॥

हरड़ और आँवला को मालकांगुनी के साथ पीस कर लोहे के बरतन पर लेप करने से वह ताँबे के रंग का हो जाता है ॥ ४८ ॥

श्रवणप्रियङ्गुकातैलेन दुकूलसर्पनिर्मोकेण वर्त्या दीपं प्रज्वाल्य पार्श्वे दीर्घीकृतानि काष्ठानि सर्पवद् दृश्यन्ते ॥ ४९ ॥

श्रवणेति । दुकूलं शुद्धं गृहीत्वा सर्पनिर्मोकेण सह वर्तिका कार्या, दीपे प्रज्वलिते सति सर्पवद् दृश्यन्ते तदाकारमात्रदर्शनाद् विस्मापनमेतत् ॥ ४९ ॥

साँप की केंचुल में मालकांगुनी पीस कर लेप करे और उसमें कपड़ा लपेट कर बत्ती बना ले, फिर उसे यदि जलाया जाये तो आस-पास पड़ी हुई लकड़ियाँ उसके प्रकाश से साँप की तरह दिखलायी पड़ती हैं ॥ ४९ ॥

श्वेतायाः श्वेतवत्साया गोः क्षीरस्य पानं यशस्यमायुष्यम् ॥

श्वेतेति । क्षीरपानं धन्यं पवित्रत्वाद् यशस आयुषे च हितं भवति सर्वदा सेव्यमित्युपदेशः ॥ ५० ॥

सफेद बछड़े वाली सफेद गाय का दूध पीने से आयु और यश की वृद्धि होती है ॥ ५० ॥

ब्राह्मणानां प्रशस्तानामाशिषः ॥ ५१ ॥

ब्राह्मणानामिति । तथाऽऽशिषश्च प्रसन्नेभ्यो मृग्याः ॥ ५१ ॥

प्रशस्त ब्राह्मणों के आशीर्वाद से भी आयु और यश बढ़ता है । चित्रयोग नाम का ६४ वाँ प्रकरण समाप्त ॥ ५१ ॥

एवं संक्षेपविस्तराभ्यां शास्त्रं प्रणीय ग्राह्यतां प्रतिपादयितुमाह—

पूर्वशास्त्राणि संदृश्य प्रयोगाननुसृत्य च ।
कामसूत्रमिदं यत्नात्संक्षेपेण निवेदितम् ॥ ५२ ॥

पूर्वशास्त्राणीति । संदृश्येति । शब्दतोऽर्थतश्च दृष्ट्वा, तेषां प्रमाणत्वात्, प्रयोगाननुसृत्य च प्रयोगतश्च ज्ञात्वेत्यर्थः, संक्षेपेणेति । स्वशास्त्रस्य प्रयोजनं निवेदितं = कथितम् ॥ ५२ ॥

पूर्वाचार्यों के शास्त्रों को एकत्र कर, उनका अध्ययन तथा उनके प्रयोगों का परीक्षण करके बड़े यत्न से संक्षेप में कामसूत्र को कहा गया है ॥ ५२ ॥

ननु च संप्रयोगाङ्गं शास्त्रमिदं, संप्रयोगश्च रागहेतुः, तं च रागमेवानर्थहेतुं दीपयत्येतदित्याह—

धर्ममर्थं च कामं च प्रत्ययं लोकमेव च ।
पश्यत्येतस्य तत्त्वज्ञो न च रागात्प्रवर्तते ॥ ५३ ॥

धर्ममिति । एतस्येति । शास्त्रस्य यस्तत्त्वज्ञः स नियतं धर्मादीन् पश्यति, तांश्च पश्यन् न रागादनर्थहेतुकात् प्रवर्तते, प्रत्ययं = विश्वासं, लोकमिति । शिष्टमशिष्टं चेति ॥ ५३ ॥

इस कामशास्त्र के तत्त्व को भली भाँति समझने वाला व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम, आत्मविश्वास और लोकाचार को देखते हुए प्रवृत्त होते हैं न कि राग या कामुकता से ॥ ५३ ॥

यद्येवं किमिति धर्मविरुद्धा औपरिष्टकादयोऽत्र विहिता इत्याह—

अधिकारवशादुक्ता ये चित्रा रागवर्द्धनाः ।
तदनन्तरमत्रैव ते यत्नाद्विनिवारिताः ॥ ५४ ॥

अधिकारवशादिति । प्रकरणवशाद् , रागवर्धना इति । रागहेतवः, तदनन्तरमिति । विधानानन्तरं, प्रयत्नान्निर्धारितदेशपुरुषापेक्षया निषिद्धाः ॥ ५४ ॥

इस शास्त्र में प्रकरणवशात् अच्छी और बुरी सभी बातें दी गई हैं और अन्त में यह बतला दिया गया है कौन सी बात की जाए और कौन सी न की जाए ॥ ५४ ॥

तदेव स्फुटयन्नाह—

न शास्त्रमस्तीत्येतेन प्रयोगो हि समीक्ष्यते ।
शास्त्रार्थान्व्यापिनो विद्यात्प्रयोगांस्त्वैकदेशिकान् ॥ ५५ ॥

न शास्त्रमस्तीति । व्याख्यातं चैतत्प्राक् ॥ ५५ ॥

जितनी बातें शास्त्र में दी गई हैं, वे सभी प्रयोग के लिए नहीं हैं, शास्त्र का विषय तो व्यापक सार्वभौम होता है किन्तु उसके प्रयोग एकदेशी होते हैं ॥ ५५ ॥

यतश्च शास्त्रात् प्राधान्येन संक्षिप्य निबद्धं; येन च तदुभयं दर्शयन्नाह—

बाभ्रवीयांश्च सूत्रार्थानागमय्य विमृश्य च ।
वात्स्यायनश्चकारेदं कामसूत्रं यथाविधि ॥ ५६ ॥

बाभ्रवीयांश्चेति । आगमय्य गुरुभ्यः, विमृश्य च स्वबुद्ध्या ॥ ५६ ॥

बाभ्रवीय सूत्रों के अर्थ एवं कामशास्त्र का भली भाँति अनुशीलन करके इस कामसूत्र को वात्स्यायन ने शास्त्रीय विधि से लिखा है ॥ ५६ ॥

ययाऽवस्थया यदर्थं च विहितं तद्दर्शयन्नाह—

तदेतद् ब्रह्मचर्येण परेण च समाधिना ।
विहितं लोकयात्रार्थं न रागार्थोऽस्य संविधिः ॥ ५७ ॥

तदेतदिति । परेण च समाधिना समाहितेन, लोकयात्रार्थमिति । चातुर्वर्ण्ये गृहस्थव्यवहारार्थं न पुना रागार्थोऽस्य संविधिः ॥ ५७ ॥

इस कामसूत्र की रचना अमोघ ब्रह्मचर्य और निर्विकल्प समाधि के द्वारा वात्स्यायन ने लोक-व्यवहार को सुचारु, सफल बनाने के लिए की है। इसका प्रयोजन और विधान रति-राग नहीं है ॥ ५७ ॥

कथं न रागार्थो भवतीत्याह—

रक्षन्धर्मार्थकामानां स्थितिं स्वां लोकवर्तिनीम् ।
अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥

रक्षन्निति । अस्य शास्त्रस्य यस्तत्त्वं वेत्ति सोऽवश्यं धर्मादीन् परस्परस्यानुपघातेन रक्षन्, लोकवर्तिनीमिति । इहलोकपरलोकमार्गशोभनाशोभनात् ॥ ५८ ॥

जो कामसूत्र का तत्त्वज्ञ है और धर्म, अर्थ और काम की स्थिति एवं अपने लोक-व्यवहार की रक्षा करता है वह निश्चय जितेन्द्रिय होता है ॥५८॥

तदेतत्कुशलो विद्वान्धर्मार्थाववलोकयन् ।
नातिरागात्मकः कामी प्रयुञ्जानः प्रसिध्यति ॥ ५९ ॥

तदेतत्कुशल इति । एतस्मिन् शास्त्रे कुशलो विद्वान् ज्ञानवान्, धर्मार्थाविति । धर्मार्थोभयं यथा कामेन न बाध्यते, कामीति । गृहस्थः, प्रयुञ्जान इति । शास्त्रार्थं, प्रसिद्धयति लोकेषु प्रमाणपुरुषो भवति नातिरागात्मकत्वादिति । इति चित्रयोगाश्चतुःषष्टितमं प्रकरणम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां यशोधरविरचितायां जयमङ्गलाऽऽख्यायामौपनिषदिके सप्तमेऽधिकरणे नष्टरागप्रत्यानयनं वृद्धियोगाश्चित्रयोगा द्वितीयोऽध्यायः ।

जो मनुष्य कामी बनकर, अत्यन्त रागात्मक भाव से इस शास्त्र का अध्ययन और प्रयोग करता है उसे कथमपि परिपूर्ण सिद्धि नहीं मिल सकती, किन्तु जो विवेकशील, कुशल विद्वान् धर्म और अर्थ को दृष्टिगत रखकर इसका उपयोग करता है उसे पूर्ण सिद्धि मिलती है ॥ ५९ ॥

इस दूसरे अध्याय में स्त्री और पुरुष के बीच मैथुनिक अयोग्यता के कारण अनुराग जब घट जाता है, परस्पर घृणा, उपेक्षा के भाव उत्पन्न हो जाते हैं तो किन उपायों द्वारा रति, राग को उभारा और बढ़ाया जाए उन उपायों को वात्स्यायन ने 'नष्टराग प्रत्यानयन' प्रकरण में दिया है। दूसरा प्रकरण 'चित्रयोग' है। इसमें काम विषय से सम्बन्धित अनेक फुटकर योग बताए गए हैं।

पुरुष की मैथुनिक शक्ति जब कमज़ोर हो जाती है, वह सम्भोग द्वारा स्त्री को सन्तुष्ट नहीं कर पाता तब स्त्री विरक्त, उदासीन हो जाती है, जो स्त्रियाँ अपनी प्रबल भोगेच्छा को इस परिस्थिति में दबा लिया करती हैं वे अक्सर बीमार रहती हैं, मृगी, मूर्च्छा के रोग पकड़ लेते हैं, उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। वासनाओं को छिपाए रखना, उन्हें दबा देना स्त्री का स्वभाव है। स्त्रियाँ स्वभावतः अधिक गंभीर हुआ करती हैं, पुरुषों की भाँति वे व्याकुल और उत्तेजित नहीं हुआ करती हैं। संभोग के लिए पुरुष ही आदि से अन्त तक सक्रिय रहता है, इसलिए वह स्त्री की अपेक्षा शीघ्र तृप्त और स्खलित होता है। उसके इस शीघ्र स्खलन से स्त्री को पूर्ण तृप्ति न मिलने से वह उदास, अप्रसन्न और असन्तुष्ट रहने लगती है, धीरे-धीरे रोगों का शिकार बन जाती है। भोगेच्छा की तृप्ति न होने से स्त्री पुरुष से प्रेमभाव नहीं रखती, उस पर उसकी अश्रद्धा हो जाती है, इस प्रकार सुनहला दाम्पत्य-जीवन बोझिल और कलह-प्रधान बन जाता है।

इस प्रकार के नीरस, बोझिल दाम्पत्य जीवन को सरस और रागयुक्त बनाने के लिए कामशास्त्रियों ने अनेक विधान बताए हैं, कामसूत्र, रतिरहस्य, अनंगरंग, नागरसर्वस्व आदि कामशास्त्रीय ग्रन्थों में इस प्रकार के विधान बहुत अच्छे और मनोवैज्ञानिक ढंग से लिखे गए हैं। वात्स्यायन ने इस सम्बन्ध में एक तत्त्व की बात बतायी है कि शीघ्र स्खलित होने वाला पुरुष बाह्य उपचारों से कामातुरा स्त्री को संभोग से पूर्व उत्तेजित और द्रवित कर ले और जब स्त्री कामातुर होकर विह्वल हो जाए तब मैथुन आरम्भ करे। ऐसा करने से पुरुष और स्त्री दोनों को समान आनन्द मिलता है, दोनों को तृप्ति मिलती है। वात्स्यायन ने कामसूत्र में स्त्री के अंगों में चन्द्रकला का निवास इसी उद्देश्य से बताया है। किस तिथि को किस अंग में काम का निवास होता है—यह सिद्धान्त चन्द्रकला से समझा जाता है। यह सिद्धान्त समझ लेने पर उस अंग को दबाने से स्त्री शीघ्र ही कामोत्तेजित होकर द्रवित हो जाती है।

चन्द्रकला के अतिरिक्त स्त्री के शरीर में कुछ ऐसी नाड़ियाँ होती हैं, जिन्हें दबाने से स्त्री शीघ्र द्रवित हो जाती है। इन शारीरिक, मनोवैज्ञानिक उपायों के अतिरिक्त अनेक ऐसी औषधियाँ हैं जो स्तम्भन करती हैं। वाजीकरण और स्तम्भन की दवाएँ इस औपनिषदिक प्रकरण में भी दी गई हैं किन्तु चिकित्सा ग्रन्थों में इस विषय की विविध औषधियाँ मिलती हैं। स्तम्भनवटी आदि औषधियों के सेवन से शारीरिक ह्रास होता है, ओज और वीर्य की न्यूनता बढ़ती है। स्नायुदौर्बल्य भी हो जाता है। जो पुरुष संभोग काल

में शीघ्र स्खलित हो जाते हैं, जिनकी मैथुनिक, स्नायविक शक्ति कमज़ोर होती है अथवा जो रतिमल्लता प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें योगाभ्यास करना चाहिए। योगशास्त्र में 'अश्विनीमुद्रा' का उल्लेख किया गया है। जो व्यक्ति इस मुद्रा को सिद्ध कर लेता है वह यथेच्छ भोग कर सकता है, जब तक वह अपने अपानवायु और प्राणवायु को एक दूसरे से अलग रखेगा तब तक स्खलित होगा ही नहीं। अश्विनीमुद्रा एक सहज साधना है, थोड़े दिन के अभ्यास से यह मुद्रा सिद्ध हो जाती है। इस मुद्रा को सिद्ध कर पुरुष स्त्रीजित् बन जाता है।

मैथुनिक शक्ति की कमज़ोरी मुख्यतया दो कारणों से होती है एक तो अस्थायी मानसिक नपुंसकता के कारण, दूसरे वास्तविकरूप से शिथिल बनाने वाली दशाओं के कारण, इन दोनों में से कोई भी एक कारण उपस्थित रहने पर पुरुष सशंकित हो जाता है, उस पर स्नायविक आतंक इस हद तक छा जाता है कि वह अपनी मैथुनिक शक्ति के बारे में निरन्तर चिन्तित और व्याकुल रहता है। वह अपनी कामशक्ति को उद्दीप्त करने की बराबर चेष्टा किया करता है, कदाचित् ऐसा कमज़ोर पुरुष अविवाहित होता है, तो वह अपनी शक्ति की आज़माइश के लिए वेश्याओं के यहाँ जाता है और मुँह लटका कर वहाँ से वापस लौट आता है।

मानसिक नपुंसकता होने पर पुरुष का मानसिक तनाव संभोग काल में बढ़ जाता है और वह असफल हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों की मानसिक कुंठा और नपुंसकता दूर करने के लिए उनके संशयों और सन्देहों को निर्मूल कर मानसिक तनाव घटाने की चेष्टा करनी चाहिए.

दूसरे प्रकार के शिथिल व्यक्ति में जब स्नायविक विकार पैदा हो जाते हैं तो उसमें न्यूनाधिक रूप में शिथिलता आ जाती है। चिकित्सक लोग ऐसे नपुंसक रोगी को असाध्य घोषित कर देते हैं। किन्तु यदि दोनों प्रकार के शिथिल व्यक्तियों के अन्दर समाये हुए मानसिक आतंक को धीरे-धीरे हटाया जाए और उसकी उस विन्दु पर केन्द्रित विचारधाराओं को दूसरी दिशा में मोड़ दिया जाए तो उसके सशक्त होने की संभावना की जा सकती है।

भारतीयदर्शन जिन्हें एषणाएँ, तृष्णाएँ और वासनाएँ कहता है उन्हीं को पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक काम और आहार बताते हैं। इन वासनाओं की अभिव्यक्ति 'जाया मे स्यात्' और 'इदं मेऽस्त्विति रूपिणी'—यह स्त्री मेरी हो जाए या यह सुन्दरी मेरी हो जाए—के रूप में हुआ करती है। हमारे दार्शनिकों ने पुत्रैषणा, लोकैषणा और वित्तैषणा—तीन प्रकार की वासनाएँ

मानी हैं। यदि विचार किया जाए तो हमारी एषणाओं में पुत्रैषणा (दारैषणा) मैथुनेच्छा या काम ही प्रधान है। वित्त की इच्छा और यश की इच्छा का समाहार आहार के अन्तर्गत किया जाता है। मैथुनेच्छा और आहारेच्छा इन दोनों वासनाओं में परिवर्तन हुआ करते हैं। डाक्टर भगवानदास ने लोकैषणा को मानसिक आहार माना है। उनके मत से काम से आनन्द प्राप्त होता है और आहार से परिवर्द्धन होता है। पाश्चात्य दार्शनिक कवि शिलर का कहना है कि भूख और काम ही इस संसार के संचालक हैं।

भारतीयदर्शन का सिद्धान्त है कि कामासक्त, उदरपरायण व्यक्ति पशु के समान होते हैं, ऐसे व्यक्ति अज्ञानजनित दुःख भोगा करते हैं।

एवं पशुसमैर्मूढैः अज्ञानप्रभवं महत्।
अवाप्यते नरैर्दुःखं शिश्नोदर परायणैः॥[1]

जब तक तत्त्वज्ञान नहीं उत्पन्न होता तब तक मनुष्य पशुवत् विचरण करता है। इस भारतीय सिद्धान्त का सामञ्जस्य पाश्चात्य विचारधारा भूख और काम से दुनिया संचालित है—पूर्णतया सिद्ध होता है।

नीतिकारों ने भी इसी का अनुमोदन करते हुए कहा है—

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्य मेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनः पशुभिः समानाः॥[2]

इस नीतिवचन से यह सिद्ध होता है कि आहार और निद्रा से सत्त्व की पुष्टि होती है, भय से रक्षा होती है और फिर पुष्ट तथा रक्षित सत्त्व का विस्तार मैथुन में होता है। इसलिये यह स्वाभाविक तथ्य निकल आता है कि भूख और काम ये दो प्रधान हैं।

इसी सिद्धान्त को प्रमुख मान कर वात्स्यायन ने कामसूत्र की रचना कर काम विषयक सभी अंगों पर विचार किया है। वासना कब और किस प्रकार अभिव्यक्त होती है इस सार्वजनीन प्रश्न का हल हमें कामसूत्र में मिलता है। इस शास्त्र में वात्स्यायन ने यह भी बताने की चेष्टा की है कि स्त्री के शरीर में उत्तेजना होने से वासना की अभिव्यक्ति होती है। कैसे स्त्री को देखकर पुरुष में और पुरुष को देखकर स्त्री में मिथुन वासना उत्पन्न होती है—इस प्रश्न का भी समाधान हमें कामसूत्र में मिलता है। वात्स्यायन ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुये बताया है कि पुरुष के लिये मिथुन-वासना का कारण स्त्री है इसलिए स्त्री ही मिथुन-वासना का विषय है। स्त्री के कुछ

[1] विष्णुपुराण ६।५।२४
[2] पञ्चतंत्र

अंग ही मिथुन-वासना के आश्रय हुआ करते हैं, जिन्हें दबाने से, थपथपाने से या जिनका स्पर्श करने मात्र से स्त्री की कामवासना उत्तेजित हो उठती है और वह द्रवित हो जाती है। इसीलिए शीघ्र स्खलित होनेवाले पुरुषों के लिये वात्स्यायन ने संभोग से पूर्व स्त्री के गुह्यांग का स्पर्शन कर उसे द्रवित करने का सुझाव दिया है।

वात्स्यायन का यह सुझाव मनोवैज्ञानिक स्तर का है। गुह्यांगों के स्पर्श-मात्र से स्त्री क्यों उत्तेजित होती है? इसे समझने के लिये कामशास्त्रीय विज्ञान की अपेक्षा होती है। उपस्थ-संस्पर्श, अंस-निपीडन, अधर-चुम्बन आदि से मैथुनेच्छा उद्दीप्त होती है इसलिये कि ये अंग मिथुन-वासना के आश्रय हैं। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि मिथुन-वासना का एक वेग होता है, एक स्थायीभाव होता है जिसे रति कह सकते हैं। स्थायीभाव का एक विषय होता है, विषय का एक आलंबन होता है और त्वचा संस्पर्श आदि उद्दीपन विभाव होते हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक वासना के वेग, उद्देश्य, विषय और आश्रय हुआ करते हैं।

यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाये तो वात्स्यायन ने कामसूत्र की रचना सामाजिक अभ्युदय की दृष्टि से की है। समाज स्वाभाविक प्रवृत्तियों को रोकता है और उनमें अभिव्यक्त होनेवाली काम-शक्ति को विभिन्न पथ-प्रवाहों में प्रवाहित करना चाहता है। वह उन प्रवृत्तियों या वासनाओं के वेग को सामाजिक कार्यों में उपयोग करने का प्रयत्न करता है। समाज का यह सिद्धांत है कि वह किसी वस्तु को खोना नहीं चाहता है बल्कि छोटी से छोटी, बुरी से बुरी वस्तु का भी उपयोग करता है। काम एक शक्ति है और निःसन्देह प्रबल शक्ति है। जिस प्रकार मनुष्य जल प्रवाह के वेग से बिजली पैदा करता है उसी प्रकार प्रबल कामशक्ति से भी उसे पूर्ण लाभ उठाना ही चाहिए। काम एक प्रकार की महत्त्वपूर्ण मानसिक शक्ति है। इस मानसिक शक्ति का उपयोग किये बिना समाज कैसे रह सकता है। दैवायत्त इस शक्ति का उपयोग शुभ नियुक्ति द्वारा करना चाहिये। इस एक ही सिद्धान्त का आश्रय ले लेने पर मनुष्य अनेक भौतिक लाभ उठा सकता है। यही कारण है कि मानव आदिकाल से व्यक्ति के आचरणों के मूल की खोज करता आ रहा है और समाज उस खोजे हुये मूल पर नियंत्रण कर उसे शुभ की ओर प्रेरित करता है, उसके लिये नियम निर्धारित करता है—इन सामाजिक नियमों के कारण मनुष्य को अपनी कुछ इच्छाओं की तृप्ति देर से भी मिलती है। उसे अपनी वृत्तियों का निरोध भी करना पड़ता है।

इन सामाजिक नियमों के कारण मनुष्य की बहुत-सी भौतिक और मानसिक शक्तियाँ कुण्ठित भी हो गईं—इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता है। दूसरा परिणाम यह हुआ कि मानसिक शक्तियाँ दो भागों में विभक्त हो गईं। एक तो वह जो सामाजिक नियमों और निरोध के कारण अभिव्यक्त न होकर अन्तर्मुखी बन गईं और दूसरी वह जो समाज के लिये समर्पित हो गईं।

चित्त की इन दो महान् शक्तियों को भीतर ही भीतर दबा देने से समाज के सामने एक बहुत बड़ी समस्या उठ खड़ी हुई, यह कहना पड़ता है कि समाज ने अपने नियमों से चित्त की दो भयंकर शक्तियों को भीतर ही बाँध कर गलती की है, यदि वह इन भयंकर शक्तियों को किसी अच्छे मार्ग से बाहर न निकाल सका तो चित्त के अन्तर्गत कभी न कभी एक भयंकर विस्फोट उत्पन्न हो सकता है। इस विस्फोट का ही परिणाम मानसिक रोगों की वृद्धि है। समाज में ऐसे रोगियों की कमी नहीं है।

समाज का प्रथम कर्त्तव्य है कि वह वासनाओं को शुभ की ओर नियुक्त करे। व्यक्ति की उन्नति के बाधक तत्वों को समाज अशुभ मानता है। सभ्यता को शुभ और असभ्यता को अशुभ कहा जा सकता है। सहज प्रवृत्तियों के प्राकृतिक रूप की तृप्ति असभ्यता मानी जाती है इसके विपरीत सभ्यता। समाज द्वारा निर्धारित सभ्यता का तात्पर्य यही है कि वासनाओं के स्वाभाविक रूप को तृप्त न होने देना बल्कि उनका संशोधन कर उनकी शक्ति को दूसरे उपयोगी क्षेत्रों में लगा देना। भारतीय सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार का शुभ अभ्युदय और निःश्रेयस दो प्रकार का होता है। उपनिषदों में अभ्युदय को प्रेय कहा गया है। अभ्युदय सांसारिक होता है, इसमें बिना किसी संघर्ष के अर्थ और काम की तृप्ति हुआ करती है। जब अर्थ और काम दोनों की तृप्ति होती है तो समाज में सुख-शान्ति रहती है। किसी प्रकार की आर्थिक क्रान्ति या अनाचार का राज्य नहीं व्याप्त होता। व्यक्ति समाज की इकाई है इसलिये व्यक्ति का अभ्युदय समाज का अभ्युदय माना जाता है। इसलिये समाज सदैव व्यक्ति के अभ्युदय की अपेक्षा रखता है। इसलिए कहा जा सकता है कि व्यक्ति की सारी मानसिक शक्ति या कामशक्ति बाह्य विषयों में संलग्न रहती है।

धर्मशास्त्रों, नीतिशास्त्रों और आचारशास्त्रों में लिखा विधि और निषेध का बहुत बड़ा भाग रहता है। धार्मिक तत्वों का उपदेश 'एष धर्मः सनातनः' नैतदाचरणीयम्। 'ऐसा मत करना' इस प्रकार के हर निषेध एक विधान की अपेक्षा रखते हैं। परस्त्री को बुरी निगाह से देखना पाप है, झूठ बोलना पाप

है आदि उपदेश हमें बचपन से ही समाज देता है। 'ऐसा करो', 'ऐसा न करो' का विधान जब हम पर लादा जाता है तो उस विधान के अनुकूल काम करने की इच्छा हममें नहीं होती। बचपन से ही सहज प्रवृत्ति ऐसे विधानों के विरुद्ध आचरण किया करती है। किसी बच्चे से कहा जाए कि ऐसा मत करना, ऐसा मत कहना तो वह निश्चय ही वही करेगा और वही कहेगा। इसकी वजह यही है कि उसका अवचेतन मन बार-बार सोचता है कि ऐसा न करने के लिये मना क्यों किया जा रहा है। ऐसा काम करने के लिए क्यों आज्ञा दी जा रही है? क्योंकि जिस काम को वह करना चाहता है उसके विरुद्ध उससे काम कराया जाता है और जिसे वह नहीं करना चाहता उसे उससे कराया जाता है।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि समाज स्वाभाविक प्रवृत्तियों को रोकता है और उन प्रवृत्तियों में अभिव्यक्त होनेवाली कामशक्ति को दूसरी दिशा में बहाना चाहता है। मनुष्य के हृदय में शुभ भावनाएँ तभी उत्पन्न हो सकती हैं जब समाज के आचरणों के शुभ संस्कार धीरे-धीरे उसको प्रभावित करते जाएँ। ऐसे संस्कार व्यक्ति को तभी प्रभावित कर सकते हैं जब समाज साम-नीति का अवलंबन करता है। धन-संपत्ति से संस्कार नहीं बनाए जा सकते हैं। वातावरण ही अच्छे और बुरे संस्कार पैदा करता है और मनुष्य के विचार ही वातावरण का सृजन करते हैं। विचार शक्तियों को बढ़ाने के लिये अनुकूल परिस्थिति की अपेक्षा रहा करती है। साथ ही समाज का वायु-मण्डल भी पवित्र होना चाहिए। व्यक्ति और समाज की उन्नति के लिये सुशासन और तत्त्वान्वेषी आचार्य परमावश्यक होते हैं। जब किसी देश का शासन कानून द्वारा और वहाँ के आचार्य उपदेशों या धार्मिक व्यवस्था द्वारा समाज के प्रबल वेगों का निरोध कर देते हैं किन्तु निरुद्ध शक्ति का उपयोग किसी सुपथ पर नहीं कर पाते तभी समाज विशृङ्खल बन जाता है। भारतीय आचार्यों ने समाज की इस नाड़ी को भली भांति परखा था, प्रकृति की सहज वासनाओं की भीषणता से वे पूर्ण परिचित थे, व्यक्ति या समाज के चित्त में विस्फोट न उत्पन्न हो इसलिये निरुद्ध वासनाओं को निकालने के लिये उन्होंने पथ आविष्कृत कर लिये थे। उन्हें यह अनुभव था कि वासनाओं का निरुद्ध वेग अज्ञातरूप से जब कभी प्रकट होता है तभी व्यक्ति के अहंकार पर चोट कर बैठता है। यही निरुद्ध वेग मृगी, मूर्च्छा, भूत, प्रेत आदि आधियों के रूप में व्यक्ति पर सवार हो जाता है। इसलिये हमारे आचार्यों ने ऐसी आज्ञाएँ दी हैं जो वासनाओं की तृप्ति में खुले रूप से निन्द्य कही जा सकती हैं। होली, कौमुदीमहोत्सव, मदनमहोत्सव, सुवसन्तक, उद्यानयात्रा आदि उत्सवों पर सहज कामशक्ति को अभिव्यंजित करने की छूट आचार्यों ने दे रखी है।

प्राचीन भारत में वेश्याएँ नगर और राष्ट्र की शोभा के रूप में सम्मानित की जाती थीं, नगरवधू कह कर जनता और राष्ट्र उसका अभिनन्दन करता था। यही नहीं बल्कि उस समय वेश्यागमन आभिजात्य लक्षण माना जाता था। उस समय का समाज नववधू के लिए नगरवधू से आशीर्वाद ग्रहण करता था। न तो पूर्वकाल में आजकल की-सी वेश्यायें थीं और न आज की भाँति वेश्यागमन निन्द्य समझा जाता था। आचार्यों की इस छूट को व्यक्तियों ने अपना अधिकार समझ कर उसे विकृत बना दिया, अब तो धार्मिक पद्धति से होनेवाले विवाह भी रस्म अदायगीमात्र हैं।

हमारा हिन्दू धर्म या हिन्दू समाज अतिशय अणुवीक्षण शक्तिसंपन्न एवं उदार है, यह अनेक स्वाभाविक इच्छाओं का निरोध करता तो अवश्य है किन्तु वह उनके वेगों को नियमबद्ध रूप से निकालने का अनुमोदन भी करता है। धर्मशास्त्र कहता है कि मांस खाने, मद्य पीने और मैथुन करने की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक रूप से रहा करती है लेकिन अगर इनसे निवृत्त होता है तो वह अपनी वासनाओं की शुभ नियुक्ति करता है।[1]

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥

श्रीमद्भागवत का कथन है कि संसार में जीव सदा स्वभाव से ही मांसभक्षण, मद्यपान और मैथुन में प्रवृत्त होता है, किन्तु समाज ने इनके रूप को निन्द्य मान कर इनके घटाने की चेष्टा की है।[2]

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा, नित्यास्ति जन्तोर्न हि तत्र चोदना।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥

वात्स्यायन ने इन्हीं शुभ और अशुभ नियुक्तियों को दृष्टिपथ पर रखकर कामसूत्र की रचना की है, जिसमें व्यक्ति और समाज का अभ्युदय निहित है, जो हर व्यक्ति का कल्याणमित्र बना हुआ है।

शास्त्र का उपसहार करते हुए वात्स्यायन ने लिखा है कि—पूर्वशास्त्राणि संहृत्य प्रयोगमनुसृत्य च। अर्थात् पूर्व आचार्यों द्वारा बनाये गये शास्त्रों के मतों का सार ग्रहण करके और भिन्न-भिन्न देशों में प्रचलित काम सम्बन्धी आचरणों का अनुशीलन करके कामसूत्र की रचना की गई है।

[1] मनुस्मृति अ० ५ श्लोक ५६

[2] श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११, अध्याय ५, श्लोक ११

कामशास्त्र के आदि आचार्य नन्दी माने जाते हैं, जिनका बनाया हुआ कामशास्त्र एक सहस्र अध्यायों का बताया जाता है। नन्दी के कामशास्त्र को बाभ्रव्य ने संक्षिप्त करके पाँच सौ अध्यायों का बनाया। श्वेतुकेतु, गोनर्दीय, दत्तक, घोटकमुख और गोणिकापुत्र आदि आचार्यों ने कामशास्त्र के एक-एक विषय पर अलग-अलग शास्त्रों की रचना की। बाभ्रव्य का बनाया हुआ कामशास्त्र अति विशाल था और श्वेतकेतु, गोनर्दीय आदि आचार्यों द्वारा बनाये गये शास्त्र एकांगी थे। अति विस्तृत होने के कारण बाभ्रव्य का कामशास्त्र और एकांगी होने के कारण श्वेतकेतु आदि आचार्यों के शास्त्र सर्वसाधारण के लिये अनुपयोगी जानकर लोककल्याण की भावना रखकर वात्स्यायन ने उक्त सभी शास्त्रों का सार ग्रहण कर तथा अपने समय में प्रचलित विभिन्न देशों के यौन आचरणों का परिशीलन करके कामसूत्र की रचना की।

कामसूत्र से हमारा देश प्रारम्भ से ही परिचित था, किन्तु इसके अध्ययन-अध्यापन की रुचि उस समय से समाप्त होने लगी, जब हमारे देश में विदेशी आक्रामकों ने राज्यसत्ता कायम कर हमारे साहित्य और हमारी संस्कृति को क्षीण और अस्त-व्यस्त करने के प्रयत्न शुरू किये। हमारे साहित्य और संस्कृति के लिये यह सबसे बुरा समय ईसवी ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध रहा। हम अपने इस उपयोगी शास्त्र को भूलने लग गये, किन्तु अंगरेज़ी सत्ता क़ायम हो जाने के बाद जब हमारे देश का अक्षय साहित्य भण्डार यहाँ से यूरोप ले जाया गया तो इस शास्त्र का भी अनुशीलन पाश्चात्य विद्वानों ने उसी प्रकार किया जैसे अन्य शास्त्रों का। जिस प्रकार कालिदास जैसे कवि की विश्वसाहित्य की सर्वोत्तम कृति अभिज्ञानशाकुन्तलम् की विशेषताओं का ज्ञान हमें यूरोपीय विद्वानों की प्रशंसा से हुआ उसी प्रकार कामशास्त्र की महत्ता और उपयोगिता का परिचय हमें यूरोपीय विद्वानों ने ही कराया। कामसूत्र को पढ़कर उसका मूल्यांकन करते हुए रिचर्ड बर्टन ने लिखा है कि—

"जब तक मनोवेग रहेंगे तब तक प्रेम रहेगा, जब तक सौन्दर्यानुभूति की शक्ति रहेगी, तब तक वात्स्यायन का कामसूत्र रहेगा और मानवता को जीवन-दान देता रहेगा।"

इतने पर भी भारत में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो कामसूत्र से अपरिचित हैं अथवा जो केवल इसके नाम से परिचित हैं, कभी इसका अध्ययन नहीं किया है और इस उपयोगी शास्त्र को हेय समझते हैं।

वात्स्यायन ने बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा है कि—'जो आदमी इस शास्त्र के सिद्धान्तों से भली भाँति परिचित है, जिसने इसके तत्त्व को हृदयंगम

कर लिया है, वह धर्म, अर्थ, काम और आत्मविश्वास एवं प्रचलित आचारों का यथोचित अनुष्ठान करता है, इतना ही नहीं, वह कामान्ध होकर अनीति नहीं करता ।

आगे चलकर आचार्य शास्त्र के वर्ण्य विषय का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इस शास्त्र में विभिन्न विषयों का सजीव चित्रण किया गया है, वर्ण्य विषयों से कामवासनाएँ जाग्रत और प्रवर्द्धित अवश्य होती हैं किन्तु तत्काल उनके अशिव पक्ष को भी प्रस्तुत कर दिया गया है, इसलिये कि वर्णन का अवाञ्छनीय प्रभाव किसी पर न पड़े।

वात्स्यायन कहते हैं कि शास्त्रों में जो कुछ लिखा रहता है, उसे कार्यान्वित करना, उसका ज्यों का त्यों उपयोग करना सर्वथा आवश्यक या अनिवार्य नहीं हुआ करता। वर्णन तो केवल इसलिये किये जाते हैं कि कोई पक्ष छूटने न पाये। रह गई वर्णित विषयों के व्यवहार की बात, वह तो व्यक्ति की आवश्यकता पर निर्भर करती है। व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार अच्छे या बुरे विषय का व्यवहार कर सकता है। शास्त्र का तो कर्त्तव्यमात्र यही है कि वह बतला दे कि यह अच्छा है, यह बुरा है। यह विधि है या निषेध है। लेकिन फिर भी आचार्य सावधान करते हुए कहते हैं—अच्छे या बुरे किसी भी विषय का व्यवहार करते समय स्थान, समय और अन्य परिस्थितियों का भी विचार करना चाहिये। कामसूत्र में दी गई शिक्षाओं का कथमपि दुरुपयोग न होने पाये।

कामसूत्र की रचना क्यों और कैसे की गई इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वात्स्यायन ने स्वयं बताया है कि—बाभ्रव्य आदि प्राचीन आचार्यों के कामशास्त्रीय सिद्धान्तों की व्याख्या मैंने सुनी, समझी और पढ़ी, यही नहीं बल्कि उन सिद्धान्तों का भली भाँति निरीक्षण और परीक्षण भी किया, इसके बाद कामसूत्र की रचना की।

इस शास्त्र की रचना का प्रयोजन और वर्ण्य विषय की उपयोगिता बताते हुए आचार्य कहते हैं कि समाज को जीवन और सुव्यवस्था देना इस शास्त्र का प्रयोजन है। इस शास्त्र में कहे गये उपदेशों की उपयोगिता ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों पर निर्भर है। कामुकता और व्यभिचार को प्रसारित करना इस शास्त्र का उद्देश्य नहीं है।

इस शास्त्र को जो व्यक्ति भली भाँति हृदयंगम कर लेता है, वह बिना किसी अड़चन के धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति करता है, वह इन्द्रियजित होकर श्रेय और प्रेय प्राप्त करता है। सफलताएँ उसका पैर चूमती हैं।

वात्स्यायन ने बड़े दावे के साथ कहा है कि लोकोत्तर ब्रह्मचर्य का पालन करने से और निर्विकल्प समाधि के द्वारा कामशास्त्रीय विषयों का विधिवत् साक्षात्कार करके समाज को जीवित, जाग्रत बनाये रखने के लिये मैंने इस शास्त्र की रचना की है, कामुकता के प्रचार के लिए नहीं।

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे औपनिषदिके सप्तमेऽधिकरणे
नष्टरागप्रत्यानयनं वृद्धियोगाश्चित्रयोगाः द्वितीयोऽध्यायः।

समाप्तमौपनिषदिकं सप्तममधिकरणम्।

समाप्तं सव्याख्यानं कामसूत्रम्।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

पदानुक्रमणी